

शिक्षा मन्त्रालय-भारत सरकार की आर्थिक सहायता द्वारा  
प्रकाशित—

# अष्टाङ्गहृदयम्

(वैद्यक ग्रन्थः)

महामति श्रीमद्वाग्भटविरचितम्



वाराणसी (भदंगी) वास्तव्य वैद्यवरिभूषणदत्तगुजनुपा माधव-  
निदान-शार्ङ्गधरमहिताञ्जननिदानग्रन्थसंस्कृतटिप्पणीकर्त्रा रोग-  
परिचय-भारतीयभोजन वृ० चूटीप्रचारपुस्तक लेखक-  
संपादयेन, प्रतापगढ (अवध) स्थ वी० एन्० सं०  
महाविद्यालयस्य भू०, पू० प्रधानाध्यापकेन  
काव्यतीर्थार्थयुक्ताचार्यप्राप्तस्वर्णपदकेन

श्री हरिनारायण शर्मणा दत्तेन

वृत्तवा विपमस्थलेषु 'प्रभा'ख्य

संस्कृतटिप्पण्या तथा विपय

विभाजकशोर्षकयोजनेन

च विभूषितम् तेनैव

च मंशोधितम् ।



वै० २०२४ शकः १८८६

प्रकाशक—

हरिनारायण शर्मा वैद्य  
श्रीलार्ककुण्ड, मदेनी,  
वाराणसी-१



प्रथम संस्करण : १०००

मूल्य ४०० रु०



मुद्रक—

शिवनारायण उपाध्याय,  
नया मुंगार प्रेस,  
मदेनी, वाराणसी-१

ॐ श्रीः

## प्राक्कथन



स मुखामास समन्वित दुःश्चमय संसार मे सब प्राणिमों के मध्य 'पुरुष' हो श्रेष्ठ माना गया है। प्राचीन मिथ ऋषि मुनियों ने शान्तिपूर्वक जीवन व्यतीत करने के लिए चार पुरुषार्थों का निर्देश किया है। वे हैं - धर्म, २ अर्थ, ३ काम ४ और मोक्ष। शास्त्रविहित प्रकारानुसार इन पुरुषार्थों के अनुष्ठान द्वारा मनुष्यों को अवश्य ही शान्तिमय जीवन प्राप्त करने में सहाय्य प्राप्त होता है, किन्तु इन चारों पुरुषार्थों का उत्तम मूल शारीरिक एवम् मानसिक आरोग्य ही है। शरीर-मन मे अल्पमात्र भी विकृति होने में उपर्युक्त चारों पुरुषार्थों में एक का भी व्यवहार पंगुमय हो जाता है।

इस बात का सह-सही अनुभव चरकचार्य ने किया था और इसकी उद्घोषणा भी कर दी है—

धर्माथकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम् ।

रोगास्तस्यापहतारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥

अतः शारीरिक तथा मानसिक आरोग्य सुरक्षित रखने के लिए त्रिकालदर्शी ऋषियों ने सारे जगत् के मनुष्यों के कल्याणार्थ उपायभूत चिकित्सा ( जावन ) विज्ञान 'आयुर्वेद' का भी प्रसार किया।

संप्रति हमारे देश में दो प्रकार का आयुर्वेदिक संप्रदाय प्रचलित है। १ आत्रेय संप्रदाय, २ धन्वन्तरि-संप्रदाय। उनमें आत्रेय संप्रदाय का काय-चिकित्सा प्रधान, एवं धन्वन्तरि संप्रदाय वालों का शल्य ( सर्जरी ) सन्त्र प्रधान ग्रन्थ का इस देश में प्रचलन है, किन्तु एक माथ दोनों मतों को प्रदर्शित करने-वाला कोई एक ग्रन्थ चरक मुश्रुत के बाद नहीं था। इसी अभाव को दूर करने

के हेतु से सिंहगुप्त के आत्मज परमकुशल विद्वद् वरिष्ठ आचार्य वाग्भट ने दोनों सम्प्रदायों का इधर उधर फैलते हुए विषयों का अनेक ग्रन्थों से संग्रह द्वारा, जो कि नती अति संक्षेप और न अति विस्तार है, सारस्वर भाग लेकर आयुर्वेद के आठों अङ्गों का प्रतिपादन करने वाले 'अष्टाङ्ग हृदय' नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। ग्रन्थ के अन्त ४०वें अध्याय में उन्होंने स्वयं लिखा है—

यदि चरकमधीते तद्गुह्यं सुश्रुतादि—  
प्रणिगदितगदानां नाममात्रेऽपि बाह्यः ।  
अथ चरकविहीनः प्रक्रियायामस्मिन्नः  
किमिव खलु करोति अध्यायितानां चराकः ॥

इसी कारण इस ग्रन्थ में शरीर एवं भेषज के तत्त्वादि तथा शल्य-शालास्य आदि के विवरण, आयुर्वेद के सभी प्रकार के ज्ञातव्य चिकित्सा विज्ञान के सभी अङ्गों का उल्लेख करने में बहुत अधिक निपुणता पाई जाती है।

इसकी भाषा प्राञ्जल-प्रौढ़ विमुद्ध एवं रचनारीति सुमाजित है। आयुर्वेद के तन्त्रों में संप्रति ऐसा ग्रन्थ आज तक दुर्लभ ही है। केवल इसी एक ग्रन्थ से दोनों ग्रंथों का मर्म सुगमता से विज्ञात हो सकता है। आयुर्वेद तन्त्र में "अष्टाङ्ग हृदय" महदा अन्य ग्रन्थ सर्वथा दुर्लभ ही है।

किसी का कथन है—“निदाने माधवः श्रेष्ठः, सूत्रस्थाने तु वाग्भटः” यह वचन विद्वानों को सत्य ही प्रतीत होता है। “अष्टाङ्ग हृदय” का सूत्रस्थान जैसा होना चाहिए, प्रातिपाद्य आयुर्वेदिक अनेक विषयों से परिपूर्ण, क्रमबद्ध किसी भी तन्त्र का नहीं है। अतः आयुर्वेदिक विषयज्ञान के लिए इच्छुक विद्वान् एवं छात्रों को यह ग्रन्थ अवश्य द्रष्टव्य है।

आयुर्वेद वेदका उपाङ्ग होने में वेद निःसृत ही है। प्राचीन कालिदास भारवि-भवभूति श्रीहर्ष आदि कविवरों के संगे काव्यनाटक आदि ग्रंथों में प्रसंगवश आयुर्वेद के मिद्वान्तों का उल्लेख किया गया है। उन ग्रन्थों के टीकाकारों ने “यशह-वाग्भटः” लिखकर उन मिद्वान्तों का प्रतिपादन किया है। श्रीहर्ष कवि ने तो स्वविरचित नीपथ चरित्र में चरक मुध्न का स्पष्ट उल्लेख किया है।



कन्यान्तःपुरबाधनाय यदधीकारान्न दोषा नृपम्  
 ह्रीं मन्त्रिप्रवरश्च तुल्यमगदङ्कारश्च तावूचतुः ।  
 देवाकर्ण्य सुश्रुतेन चरकस्योक्तेन जानेऽखिलम्  
 स्यादस्या नलदं चिना न दलने तापस्य कोऽपीश्वरः ॥

लघुमंजूपा में प्रसिद्ध वैयाकरण आचार्य श्री नागेशभट्ट की उक्ति तो संस्कृत के बुधवरो को आयुर्वेद ज्ञान के लिए आह्वान कर स्पष्ट रूप से उत्साहित कर रही है। भट्टाचार्य जी ने आत्म का लक्षण प्रदर्शित करने के अनन्तर 'इति चरके पतञ्जलिः' लिखा है। पुराणों, धर्मशास्त्र एवं दर्शनशास्त्रों में भी आयुर्वेद के विषय पाये जाते हैं। इस प्रकार प्राचीन संस्कृत के सभी विद्वान् आयुर्वेद ज्ञान से सम्पन्न थे। मत्स्य तो यह है कि आयुर्वेद का मार्मिक ज्ञान संस्कृतजो को ही सुगम एवं सुलभ है, क्योंकि आयुर्वेद संस्कृत भाषा में ही मौलिक रूप में है। अतः आधुनिक संस्कृत के कोविदों के प्रति मेरी सीख्यदायिनी सम्मति है कि वे अष्टाङ्ग हृदय अथवा चरकसंहिता का स्वाध्याय कर अनुभव करें कि कितना आनन्द आता है।

कुछ लोग तो आयुर्वेद-प्रवर्तक ऋषियों की पङ्क्ति में वाग्भट को कलियुग का ऋषि मानते हुए कहते हैं कि—

'अत्रिः' कृतयुगे चैव द्वापरे सुश्रुतो मतः  
 कलो वाग्भटनामा चेत्यायुर्वेदप्रवर्तकाः ।

इसमें वाग्भट का अत्यन्त प्रामाण्य स्वीकार किया गया है।

## वाग्भट का परिचय

ऐसी किंवदन्ती है कि वाग्भट सिन्धु देश के निवासी ब्राह्मण तथा वैदिकाचार परामर्श थे। पीछे विरोध विद्या के सीखने के लिए किसी बौद्धाचार्य से बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। अष्टाङ्ग हृदय में ही वाग्भट के बौद्ध होने का प्रमाण उपलब्ध है।

( १ ) अष्टाङ्गहृदय के मङ्गलाचरण में किसी विशेष देवता का नाम न होना ।

( २ ) मुश्रुत आदि तन्त्रों में समन विरेचन के औषधदान के समय जिन मन्त्रों को प्रयोजनीय बतलाया गया है। 'अष्टाङ्गहृदय' में उसमें एक मन्त्र अधिक है—

ॐ नमो भगवते भैषज्यगुरवे वैदूर्यप्रभराजाय । तथाऽगतायाऽहंते सम्यक्  
संबुद्धाय । इमं मन्त्रं को 'आगताय' 'संबुद्धाय' पद स्पष्ट रूप से बौद्धसंप्रदाय का  
बतला रहा है । ( वा० मू० अ० १८ )

१३ 'सिद्धं योगं ग्राह यचो मुमुचो  
भिचोः प्राणान् माणिभद्रः किलेशम्'

( वा० चि० अ० १९ )

बौद्ध संप्रदाय में साधुओं का "भिन्नु" नाम से व्यवहार होता है । किसी  
व्यापित भिन्नु से वाग्भट का परिचय हुआ होगा । अथवा उन्हें इस प्रयोग का  
उपदेश किसी बौद्ध ने ही किया होगा ।

( ४ ) अष्टाङ्ग हृदय के उत्तर स्थान पञ्चमाध्याय—भूतविद्या तन्त्र में सर्व  
महनिवारण मन्त्र है—

ईश्वरं - द्वादशभुजं नाथमार्थावलोकितम् ।

मर्वध्याभिषिक्तिसन्तं जपन् सर्वग्रहान् जयेत् ॥

महाविद्यां च मायूरीं शुचिं तं श्रावयेत्तदा ॥

बौद्धग्रन्थानुसार इस मन्त्र के "अवलोकित" एतन्नामक कोई बौद्धाचार्य थे ।  
मायूरी महाविद्या भी बौद्धधर्म से सम्बन्ध रखती है ।

वाग्भटाचार्य ने अपने नाम से एक वाग्भटालङ्कार ग्रंथ की भी रचना की  
थी, किन्तु एक अष्टाङ्गसंग्रह एवं अष्टाङ्गहृदय से ही विश्व में उनकी सुप्रतिष्ठा  
स्थिर हो गई ।

आयुर्वेद के अद्वितीय विद्वान् श्रीगणनाथ नेन जी स्वकीय प्रत्यक्ष शरीर के  
उपोद्घात में एवं कविराज श्री देवेन्द्रनाथ सेन ने भी वाग्भट को बौद्धधर्म में  
दीक्षित होना माना है ।

## वाग्भट का काल निर्णय

श्रीगणनाथ मेन जी का ही मत है कि वाग्भट का समय ईसा की पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ में ही सकता है, क्योंकि चीन देश का "इत्सिङ्ग" नामक परिव्राजक अपने भारत भ्रमण के समय में वाग्भट को अष्टाङ्गसंग्रहक नवीनाचार्य लिखा है। इत्सिङ्ग के ही लेख से पता चलता है कि उन्होंने ईसा की सातवीं शताब्दी में भारत की यात्रा की थी। इस प्रकार वाग्भट का काल परिव्राजक के समय से दो सौ वर्ष पहले अथवा ईसा की पाँचवीं शती का प्रारम्भ ही माना जा सकता है।

( २ ) प्राचीन चक्रपाणि, डल्लन आदि आचार्यों ने वाग्भट के पाठों का उद्धरण किया है, जिससे उनके काल से भी दन्तून पाँच सौ वर्ष पहले का ही वाग्भट का समय जान पड़ता है।

( ३ ) मुहम्मद बिन कासिम ने ईसा के आठवें शतक के आरम्भ में सिन्धु देश पर आक्रमण किया था। अतः सिन्धुदेशीय वाग्भट इसमें पहले ही हो सकते हैं, क्योंकि सिन्धुराज्य के विप्लव के समय अष्टाङ्ग-संग्रह का निर्माण सर्वथा असम्भव है।

किसी विदेशी विद्वान् का यह मत कि संग्रह एवं हृदय के कर्ता-वाग्भट भिन्न-भिन्न हैं, सर्वथा निर्मूल तथा आश्चर्यजनक है, क्योंकि दोनों ही ग्रन्थों का भाषा-मादृश्य तथा पिता का नाम एक ही है और किसी स्थान में मतभेद भी नहीं है।

ग्रंथ समाप्ति स्थल में वाग्भट ने स्वयं लिखा है कि बहुत बड़े "अष्टाङ्गसंग्रह" ग्रंथ का निर्माण कर उमी को संक्षेप में "हृदयमिव हृदयमेतत् "अष्टाङ्ग हृदय" ग्रंथ का निर्माण किया।

रसरत्नसमुच्चय और अष्टाङ्गहृदयके कर्ता वाग्भट भिन्न-भिन्न हैं। एक नहीं। क्योंकि समुच्चय के कर्ता वाग्भट, अष्टाङ्गहृदय के कर्ता वाग्भट से बहुत पीछे के हैं। इस विषय में उपपत्ति यह है कि इतने बड़े समुद्रवत् गम्भीर अष्टाङ्ग संग्रह ग्रंथ में रसतन्त्रोक्त विषय-रससंस्कार-धातूपधातु आदि का लेखमात्र भी गन्ध नहीं मिलता, प्रत्युत समुच्चय में प्राचीन वाग्भट से नवीनकालिक सोमदेव, भगवान् गोविन्द पाद आदि के पाठों के उद्धरण मिलते हैं। सोमदेव के ग्रंथ से तो समुच्चय

मे रस की परिभाषाओं का प्रकरण पूरा का पूरा उद्धृत किया गया है। २० २० २० २० ६। गोविन्द भगवत्पाद के रसहृदयतन्त्र से 'मुक्तफलंतावदिदम्' आदि तथा 'ध्रुवगमध्यगतम्' आदि कुछ पद्य समुच्चय में संगृहीत किये गये हैं।

गोविन्द भगवत्पाद भगवान् शङ्कराचार्य के गुरु थे। यह बात 'रसहृदय तन्त्र' के उपोद्घात में विद्वद्वर श्री गुरुनाथ त्र्यम्बक काले महाशय ने ममुद्धाटित किया है।

यह कहना ही व्यर्थ है कि फिर कैसे "सुनुना सिंहगुप्तस्य" अपना यह परिचय समुच्चय के आदि में दिया है, क्योंकि अनेक हस्तलिखित पुस्तकों में "सुनुना संवगुप्त गुप्तस्य" यही पाठ सीधा लिखा मिलता है, अतः "सिंह-गुप्तस्य" किसी पण्डितमानी के संशोधन का फल ही हो सकता है। और रस-तान्त्रिक वाग्मट ईसा से तेरहवीं सदी में हुए है। यह मत डा० प्रफुल्लचन्द्र राय का ठीक जैसा है।

### पुस्तक प्रकाशन का प्रयोजन

आयुर्वेदज्ञानामिलायियों छात्रों एवं विद्वानों को भारलाभवपुक्त तथा स्वल्पाकार के रूप में पुस्तक व्यवहृत करने की चिरकाल से इच्छा थी। उसी अभाव को दूर करने के अभिलाष से, ग्रंथ के सुखबोधार्थ मैंने विषमस्थलों पर 'प्रभा' नामक संस्कृत में टिप्पणी की, और प्रत्येक अध्याय में शीर्षक संलग्न कर विषयो का पार्थक्य प्रदर्शित किया है। आज तक हिन्दी या संस्कृत टीका समेत अथवा मूलरूप में अष्टाङ्गहृदय की जितनी मुद्रित पुस्तकें दृष्टिगोचर हुई हैं, उनमें किसी में भी विषय-विभाजक शीर्षक संयुक्त नहीं है। शीर्षक से विषयो का ज्ञान शीघ्र हो जाता है। ३ दोषों और ६ रसों के ६३ भेदों का कोष्ठक भी शीघ्र ज्ञान के लिए अलग से लगा दिया गया है। इसमें धारीर तथा यन्त्र शस्त्रों के चित्र भी देने की मेरी बड़ी ही इच्छा थी, परन्तु विविध अड़चनों के कारण वह इच्छा कार्यरूप में परिणत न होकर हृदयगत ही रह गई। अब अगले संस्करण में परमेश्वर की इच्छा ही प्रधान है। यह कार्य लिखित रूप में २० वर्ष पहले ही मैं कर चुका था, किन्तु पुस्तक प्रकाशक के चातुर्य से अब तक उसका मुद्रण न हो सका था, जिसका मुझे बराबर खेद रहता था कि मेरा यह परिश्रम व्यर्थ हो जायगा। भगवत् के अनुग्रह से केन्द्रीय शिक्षा मन्त्रालय द्वारा

इसके मुद्रण के लिए कुछ धर्तों पर ६० प्रतिशत अनुदान प्राप्ति की स्वीकृति मिल गई। तदनुसार मैं इसका मुद्रण कार्य गंभीर कर आप महानुभावों के कर-कमलों में प्रस्तुत कर रहा हूँ। मेरे जरा-सुलभ दृष्टि-दोष और मुद्रण कलाविदों की अनवधानता से यत्र-तत्र छापे की कुछ ही अनुद्धियाँ मिल सकती हैं, जिन्हें पाण्डित्य पूर्ण जन अवश्य गुधार लेंगे। इसकी प्रमुख संस्कृत टिप्पणी के गुणागुण का निर्णय करना साधु-वृत्त-आगमशाली अम्यस्त-रुमा रागद्वेषविरहित आयुर्वेद विद्वानों के ही अधीनस्थ है।

अष्टाङ्गहृदय की नितान्त उपादेयता ममज्ञ कर अप्रतिम बुद्धि वैभवशाली श्रीमदरुणदत्त ने इसकी 'सर्वाङ्ग सुन्दरा' नामक संस्कृत टीका की। यह टीका "यथा नाम तथा गुणः" ही है। हेमाद्रि निर्मित संस्कृत टीका का भी प्रचार था। सम्प्रति चाम्मत संहिता के अनेक स्थलों की विभिन्न संस्कृत टीकायें समुपलब्ध है।

टिप्पणी करते समय मुझे केवल इन दोनों टीकाओं का आलोडन करना पड़ा, तथा चरक-मुश्रुत राज-मदनपाल निषण्ड, योगरत्नाकर एवं अनेक संस्कृत ग्रंथों की सहायता लेनी पड़ी। इनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मेरा परम कर्तव्य है। स्नेहभाजन साहित्य—व्याकरणाचार्य एम० ए० कविवर श्रीरतिनाथ झा प्राध्यापक सं० कालेज काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी ने मेरे अन्तिम निवेदन कार्य में सुमम्मति द्वारा बड़ा उपकार किया। मेरे चि० पुत्र श्री नागेन्द्र नारायण शर्मा, एवं प्रेस के स्वामी श्री शिवनारायण उपाध्याय बी० ए० विद्यारद ने पुस्तक के मुद्रण कार्य का प्रबन्ध सुचारु रूप से सम्पादन किया, अतः इन लोगों के प्रति मेरा श्रुमाशीर्वाद विशेषरूप से प्रस्तुत है।

• सर्वे सन्तु निरामयाः •

महाशिवरात्रि।

वैक्रम सं० २०२४ चाके १८८६

श्री पूर्णचन्द्र औषधालय

भदौनी—लोलार्ककुण्ड,

वाराणसी।

विनीत निवेदक—

हरिनारायण शर्मा वैद्य

# अष्टाङ्गहृदयस्य संक्षिप्त विषयानुक्रमणिका

## सूत्रस्थानम्—

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
मङ्गलाचरणम्		स्वस्थवृत्तम्	९
अष्टाङ्गकामीयाध्यायः प्रथमः	१	दन्तधावनादयः	१०
आयुर्वेदोत्पत्तिः	२	स्वास्थ्यस्याग्रे नियमाः	११
अष्टाङ्गानि	२	( सद्वृत्तम् )	
दोषाः	२	तृतीयोऽध्यायः	१६
अग्निस्वरूपम्	३	ऋतुचर्या	१६
प्रकृतिः	३	हंसोदकम्	२२
रमाः	४	संशेषादृष्टतुचर्या	२३
द्रव्यादयः	४	ऋतुसन्धिः	२३
विद्यतिर्गुणाः	५	चतुर्थोऽध्यायः	२३
रोगारोग्ययोरेकहेतुः	५	स्वस्थवृत्तम्	२३
रोगिपरीक्षणम्	५	वातादिवेगधारण निषेधः	२३
भूमिदेहदेशाः	५	तदुत्पन्ना रोगास्तज्चिकित्सा च	२३
चिकित्सामास्रवत्वारः पादाः	६	असाध्यवेगरोधी	२६
रोगाणां चत्वारोभेदाः	७	वेगोदीरणधारणात्सर्वरोगोत्पत्तिः	२६
अचिकित्स्यरोगिणः	७	धारणीयवेगाः	२६
ग्रन्थस्थानाध्यायः	८	वातादीनां यथाकालं शोषनम्	२६
द्वितीयोऽध्यायः	९	भेषजक्षपिते भोजनादि व्यवस्था	२७
दिनचर्या	९		

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
आगन्तुरोगास्तज्ज्विकित्सा च	"	शालिगुणाः	"
आरोग्यहेतवः	२८	गोधूमगुणाः	३६
पञ्चमोऽध्यायः	२८	सिम्बीधान्यगुणाः	"
द्रव्यगुणशास्त्रम्	"	तिलातसी गुणाः	४०
गंगाजलगुणाः	"	मण्डपेयादि निर्देशः	"
पानायोग्यजलम्	२६	ओदनः	४१
नदीनिरूपणम्	"	रसांश	"
जलपानविधेयः	३०	पानकम्	"
भोजने जलपानव्यवस्था	"	मांस वर्गः	४२
दीतोष्ण-जलगुणाः	"	मत्स्यगणः	४४
कथितशीतजलगुणाः	"	शक वर्गः	४६
वर्षायां योग्यजलनिर्देशः	३१	मूलकगुणाः	४६
दुग्धनिर्देशस्तदगुणाश्च	"	लघुगुणाः	५०
वर्षिगुणास्तद्वर्णननिषेधश्च	३२	पलाण्डु गुञ्जनरु गुणाः	५१
सक्तगुणाः	"	फल वर्गः	"
मस्तुगुणाः	"	आम्रगुणाः	५२
नवनीतगुणाः	"	सूच्य वर्गः	५४
घृतगुणाः	३३	क्षारहृगुणाः	५५
इधुरसगुणाः	"	हरीतकीगुणाः	"
मधुगुणाः	३४	आमलक गुणाः	५६
तैलगुणाः	"	मरिचादि गुणाः	"
मद्यगुणाः	३५	पञ्चकोल गुणाः	५७
अरिष्टगुणाः	३६	पञ्च पञ्चमूल गुणाः	"
मूत्रगुणाः	३७	सप्तमोऽध्यायः	५८
पटोऽध्यायः	३७	अन्नरसाध्यायः	"
अन्नस्वरूपविज्ञानीयोऽध्यायः	३७	अण्डः	"

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
राजः समीपे वैद्यस्थितिः	॥	अनुपान कथनम्	"
विषदुष्टौदनलक्षणम्	"	भोजनकालः	७४
व्यञ्जनानां परीक्षा	"	नवमोऽध्यायः	७४
विषदानुः लक्षणम्	५६	द्रव्यादि विज्ञानीयम्	७४
सविषस्यान्नस्य परीक्षा	"	द्रव्यस्य श्रेष्ठता	७४
आमाशयादिगते दोषाः	६०	गर्भद्रव्यमोषम्	७६
भुक्तविषस्योषम्	६१	वीर्यादिवर्णनम्	"
हेमपाने विषबाधाभावः	"	द्विविधं वीर्यम्	७७
विषहृत्हारकथनम्	"	रमादीनां वीर्यकथने हेतुः	"
तुल्य प्रमाणमध्वादेर्विरोधः	६२	दशमोऽध्यायः	७६
व्यायामादि हेतोर्विषहृत्प्रकारम्	६३	रसभेदीयोऽध्यायः	७६
पथ्यापथ्यसेवनत्यागप्रकारः	"	मधुरादिरसाः	७६
निद्रागुणाः	६४	मधुरादि द्रव्याणि	८०
दिनचयनम्	"	मधुरादिगुणापवादः	८२
अतिमन्दनिद्रा विकृतिता	६५	कट्वादीनां उष्णवीर्यता	"
निद्राकरप्रयोगः	६६	तिक्तकादीनां शीतवीर्यता	"
मैथुनविधिः	"	रमाना रसादिगुणाः	"
अष्टमोऽध्यायः	६७	रसभेदाः	"
मात्राश्रित्योऽध्यायः	६७	एकादशोऽध्यायः	८४
परिमित भक्षणम्	६७	दोषादि विज्ञानीयोऽध्यायः	८४
अलसकादिनिर्देशः	६८	ओजोनिरूपणम्	८८
आमनिर्देशः	६९	दोषभेदीयाध्यायः	८९
अन्यव्याधिचिकित्सा	७०	वातादीनां देहे स्थानम्	"
आमाश्वजीर्णकथनम्	७१	दोषाणां ज्वरकोपहेतवः	९१
समयनादीनां लक्षणादि	"	दोषाणां व्याप्तिनियुक्तिविशेषता	९२
भोजनविधिः	७२	दोषाणां भव्यरोगकारणत्वम्	९३
त्रिफलासेवनंहितम्	७३		



विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
असात्म्येन्द्रियार्थसंयोगः	६३	स्थौल्यचिकित्सा	१०६
त्रिविधं कर्म	६४	कृशाचिकित्सा	१०७
बाह्यरोगस्थानम्	"	पञ्चदशोऽध्यायः	"
कुपितवातादिकर्म	६५	धोघनादिगणसंग्रहः	१०८
व्याधेरर्थविध्यलक्षणम्	६६	वमनविरेचनकराणि	"
तेषां चिकित्सा	"	वातादिहराणि	१०९
अक्षयोरोगाणां नामाभासः	६७	जीवनीयादिगणाः	११०
चिकित्सा विधिः	"	शोथरादिगणः	११३
अल्पज्वरनिन्दा	"	गणानां प्रयोगव्यस्था	११७
दोषभेदाः	६८	षोडशोऽध्यायः	११८
त्रयोदशोऽध्यायः	६९	स्नेह विधिः	"
दोषोपक्रमणीयः	"	सप्तदशोऽध्यायः	१२४
वातादि दोषचिकित्सा	"	स्वेदविधिः	"
चिकित्साकालः	१००	अष्टादशोऽध्यायः	१२७
दोषाणां स्थानगमनम्	"	वमन विरेचनविधिः	"
परत्थानगतदोषाणां चिकित्सा	१०१	मन्त्राः	१२९
आनस्वरूपम्	"	पेयादिक्रमः	१३०
सामरोगास्तेषां चिकित्साविधिः	१०२	वमनविरेचनपोषणसंख्या	१३१
तेषां धोषनकालः	"	दोषाधिनये रसतो विरेकः	"
औषधभक्षणकालः	१०३	एकोनविंशोऽध्यायः	१३५
चतुर्दशोऽध्यायः	"	वस्तिविधिः	"
द्विविधोपक्रमणीयः	"	कर्म काल योगाख्य वस्तिः	१४२
द्विविधोपक्रमः	"	मात्रावस्तिः	१४३
लघनस्य द्विविध्यम्	१०४	उत्तरवस्तिः	"
बृंहणा ह्रीः	"	वस्तिश्रेयः	१४४
लघना ह्रीः	१०५		

विषयः	पृष्ठम्	विषय	पृष्ठम्
विशोऽध्यायः	१४६	चतुर्विंशोऽध्यायः	१६२
नस्याध्यायः	"	तपस्यापुटपाकविधिरध्यायः	"
मर्शादिनस्यकथनम्	"	नेत्रबलाय यत्नः	१६५
अरण्य तैलनिर्देशः	१५०	पञ्चविंशतितमोऽध्यायः	"
नस्यशालिनः फलम्	"	यन्त्रविधिरध्यायः	"
एकविंशोऽध्यायः	१५१	अनुपमन्त्रम्	१६८
धूमपानाध्यायः	१५१	षड्विंशोऽध्यायः	१७१
कासघ्नधूमविधिः	१५३	शस्त्रविधिरध्यायः	"
धूमपानफलम्	१५४	अनुद्यस्त्राणि	१७३
द्वाविंशतमोऽध्यायः	"	दास्त्रकर्माणि	"
गण्डूपादिविधिरध्यायः	"	जलोकमा योजनम्	१७४
गण्डूपपक्वत्वयोर्भेदः	१५५	अलायुषटिकाविषयः	"
प्रतिसारणम्	१५६	शृंगविषयः	"
मुखलेपः	"	प्रच्छानविधिः	"
मूर्द्धतैलम्	१५७	सप्तविंशोऽध्यायः	१७७
अभ्यंगविषयः	१५७	शिराभ्यधविधिः	"
शिरोवस्तिविधानम्	१५७	रक्तक्षोषजाः रोगाः	"
मूर्द्धतैलफलम्	१५८	शिरामोक्षविधिः	१७६
त्रयोविंशोऽध्यायः	१५६	वातादिदुष्टरक्तलक्षणम्	१८१
आरुच्योतनाञ्जनविधिरध्यायः	१५६	रक्तम्यातिशयविषयः	"
अञ्जनप्रयोगः	"	रक्तपानकथनम्	१८२
अञ्जनशलाकाप्रकारः	१६०	विशुद्धरक्तमुख्यलक्षणम्	१८३
निगादावञ्जननिषेधप्रकारः	"	अष्टाविंशोऽध्यायः	"
अन्याचार्यमतम्	१६१	शल्याहरणविधिः	"
तन्मतदूषणम्	"	त्वगादित्यशत्यस्य लक्षणम्	१८४
नेत्रशालनप्रकारः	१६२		

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
कण्ठगतशल्याहरणम्	१८७	क्षारस्य घेष्टता	"
अस्थिगतशल्याहरणम्	१८६	क्षारनिर्माणप्रकारः	१८६
जलमग्न चिकित्सा	१८८	क्षारस्य दश गुणाः	२०१
कर्णगतजलाहरणम्	१८८	क्षारप्रयोगः	"
कर्णगतकीटाहरणम्	"	अम्लनिर्वापणे हेतुः	२०३
शल्यानां वेहोष्मणा विलयः	"	त्वगादिष्वग्निदाहः	"
मृदु वेण्वादीनामविलयः	"	तुल्यदग्धलक्षणम्	२०४
एकोनविंशोऽध्यायः	१८९	शरीरस्थानम्	२०५
शस्त्रकर्मविधिः	"	प्रथमोऽध्यायः	"
श्वयम्भूपक्रमादिः	"	प्रसूत्रि सन्ध्रम्	२०६
आमपच्यमान-पक्वशोथलक्षणम्	"	गर्भोत्पत्तिः	२०६
रक्तपाकलक्षणम्	१९०	गर्भवृद्धिः	"
शस्त्रविशेषप्रकारादिः	१९१	पुंस्त्रीनपुंसकानामुत्पत्ती हेतुः	२०७
शस्त्रकर्मणि वंशगुणाः	"	विकृताकाराणामुत्पत्ती हेतुः	"
शस्त्रैऽवधारिते कर्तव्यविधिः	"	वीर्यवद् पुनोत्पत्ती हेतुः	"
अग्निनोरक्षाकरणम्	१९२	द्युक्कर्तव्यदोषाः	२०८
अग्निनः पथ्यापथ्य निरूपणम्	१९३	तेषां चिकित्सा	"
अग्निनः स्त्याज्यपदार्थाः	"	द्युद्धद्युक्लक्षणम्	"
अग्निनो मद्यनिषेधः	"	द्युद्धातव्यलक्षणम्	२०९
सीव्यव्रणाः	१९५	गर्भोत्पत्तेः पूर्वमितिकर्तव्यता	"
बन्धन-योगः	"	अनृती गर्भस्याग्रहणम्	"
बन्धनस्य स्वरया नोपरोहणम्	१९६	रजस्वलायाआहारविहार कथनम्	"
पञ्चदश बन्धाः	१९६	ऋतुमत्याः चतुर्थदिनकृत्यम्	"
अवस्थायां व्रणाः	१९७	पुत्रार्थं यज्ञकरणम्	२१०
व्रणानां धृमिचिकित्सा	"	इच्छानुरूपपुत्रप्राप्तिसाधनम्	"
त्रिंशोऽध्यायः	१९८	सद्योऽहोतनर्मा लक्षणम्	२११
क्षाराग्निकर्मविधिः	"		

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
प्रत्येऽरिष्ट चिह्नम्	२६०	आगन्तुज्वरः	२७८
वैद्यस्यानुरमरणकथन निषेधः	२६१	द्यापाभिचारयोरसह्यतमत्वम्	"
पष्ठोऽध्यायः	२६२	मन्त्रोत्पन्नज्वरलक्षणम्	"
रोगविज्ञानम्	"	संदोषाज्ज्वरद्विविध्यम्	२७६
दूतादिविज्ञानीयोऽध्यायः	"	प्राकृतवैकृतयोर्लक्षणम्	"
अशुभं निमित्तम्	२६७	सामज्वरलक्षणम्	"
मार्जारादिभिः पथच्छेदः	"	ज्वरस्य पञ्चविधत्वम्	२८०
पक्षिणां वाचः	"	संततसम्प्राप्तिः	"
पशुपक्षिणां गमनादयः	२६५	ज्वराणां स्थितिमर्यादायां	"
रोगिगृहेऽशुभाशुभे	"	मतद्विविध्यम्	...
अशुभस्वप्नदर्शनम्	२६७	विषमज्वरप्रकारः	"
स्वप्नोद्भवकारणम्	२६८	ज्वरस्य रसादिधातुषु लीनता	२८१
मत्तविधः स्वप्नः	"	दोषाणां बलाबलेन ज्वरः	२८२
स्वप्नानां फलाफलत्वे	"	ज्वरमोक्षकाललक्षणम्	"
शुभस्वप्ननिर्देशः	२६९	विगतज्वरलक्षणम्	"
निदानस्थानम्	२७१	तृतीयोऽध्यायः	"
प्रथमोऽध्यायः	"	रक्तपित्तकासनिदानम्	"
सर्धरोगनिदानम्	"	रक्तपित्तस्य स्वरूपम्	२८३
रोगपर्यायाः	"	रक्तपित्ते दोषमबन्धज्ञानम्	२८४
रोगविज्ञानम्	"	कासानां पञ्चविधत्वम्	"
निदानपूर्वरूपादिलक्षणम्	"	क्षतजकासलक्षणम्	२८५
वातकोपकारणानि	२७२	चतुर्थोऽध्यायः	२८६
द्वितीयोऽध्यायः	"	आसद्विकृष्टानिदानम्	"
ज्वरनिदानम्	२७४	तमकश्वासलक्षणम्	२८७
ज्वरनिर्देशः	२७४	छिन्नमहोर्ध्वश्वासलक्षणम्	२८८
		हिक्कास्वरूपम्	"

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
सिराणां रक्तादिवहत्वम्	"	चतुर्योऽध्यायः	"
धमनीवर्णनम्	२३०	मर्मविभाग शारीरोऽध्यायः	"
स्रोतोवर्णनम्	२३१	मर्ममंख्याः	"
पाचकपित्तम्	२३२	कोष्ठगतमर्मणां नामानि	२४२
अन्नपाकस्याग्निहेतुः	२३२	उरोगतमर्मणां नामानि	"
अन्नपाकप्रकारः	"	पृष्ठगतमर्मणां नामानि	२४३
अन्नस्याद्विप्रकारः परिणामः	२३३	जम्बूध्वजगतमर्मणां नामानि	२४४
भौमाद्यग्नीनां कर्माणि	"	सामान्यमर्मलक्षणम्	"
घातरीरघातुनिरूपणम्	"	मांसजानि दशमर्माणि	२४५
धातुमलनिरूपणम्	"	स्नायुमर्माणि	"
धातूनां पाकस्य द्वैविध्यम्	"	धमनीस्यमर्माणि	"
धातुस्नेहपरम्परा	"	तिरामर्माणि	"
शरीरे रमष्यातिः	२३४	संधिमर्माणि	"
जाठराग्नेः पालनादिक्रमः	"	मांसादिसर्मणां विट्फलक्षणम्	२४६
जाठराग्नेश्चातुर्विध्यम्	२३५	सद्यः प्राणहर मर्मनिर्देशः	"
देहबलस्य त्रैविध्यम्	"	कालान्तरप्राणहरमर्मनिर्देशः	"
देद्यत्रैविध्यम्	"	मर्मणां प्रमाणम्	२४७
मज्जादीनां प्रमाणम्	२३६	मर्माभिघातेमरणप्रकारः	२४८
प्रकृतिनिरूपणम्	"	मर्माभिघातो रक्ष्यः	२४८
षड्विभागः	२३९	पञ्चमोऽध्यायः	२४९
शरीरप्रमाणम्	"	रोग विज्ञानम्	"
अष्टौ निन्दिताः	"	विकृतिविज्ञानीयः शारीरः	"
कोष्ठाङ्गानि	"	रिष्टमृत्योर्लक्षणम्	"
वपुषः शुभत्वम्	२४०	रिष्टलक्षणम्	"
बलप्रमाणज्ञानम्	"	प्रमायाः सप्तप्रकारत्वम्	२५४
मत्वादिप्रकृतिलक्षणानि	२४१	शोफेरिष्टचिह्नम्	२५८

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
वातवस्त्रादिलक्षणानि	३१३	तेषामामत्वादि	३२२
उष्णवातलक्षणम्	३१४	स्त्रीणां स्तनविद्रधिः	"
मूत्रक्षयलक्षणम्	३१५	वृद्धिनिर्देशः	"
दशमोऽध्यायः	३१५	अन्त्रवृद्धिः	३२३
प्रमेहनिदानम्	"	गुल्मलक्षणम्	"
प्रमेहाणामुत्पादकानि	"	रक्तगुल्मलक्षणम्	३२५
कफजमेहसम्प्राप्तिः	"	गुल्मविद्रध्योर्भेदः	"
साध्यासाध्यविभागः	३१६	आनाहः	३२६
प्रमेहस्य सामान्यलक्षणम्	"	प्रत्यष्टीला ल०	"
प्रमेहाऽनेकत्वे हेतुः	"	तूनीप्रतून्योर्लक्षणम्	"
कफजा दश मेहाः	"	गुल्मपूर्वरूपम्	"
पित्तजाः षट् मेहाः	३१७	द्वादशोऽध्यायः	"
चरवारो वातजा मेहाः	"	उदरनिदानम्	"
मधुमेहस्य द्वैविध्यम्	"	उदरस्पाष्टी भेदाः	३२७
उपेक्षया सर्वेषां मधुमेहित्वम्	"	अतोपमुदरम्	"
प्रमेहोपद्रवाः	"	श्रीहोदरलक्षणम्	"
मेहिनां दश पिटिकाः	३१८	यकृदुदरलक्षणम्	३२९
रक्तपित्तप्रमेहयोर्भेदः	"	जलादरलक्षणम्	३३०
प्रमेहाणां पूर्वरूपम्	३१९	सर्वोदरान्ते जलसम्भवः	"
प्रमेहे द्विविधो विचारः	"	उदररोगाणां साध्यासाध्यविभागः	"
एकादशोऽध्यायः	३२०	जन्मनैवोदरस्य कृच्छ्रता	३३१
विद्रधिबृद्धिगुल्मनिदानम्	"	त्रयोदशोऽध्यायः	"
विद्रधेः षड्विधरत्नम्	"	पाण्डुरोगशोथविसर्पनिदानम्	"
उत्पत्तिस्थानम्	"	पाण्डुरोगस्य सम्प्राप्तिः	"
क्षतविद्रधिलक्षणम्	३२१	मृत्तिकाजपाण्डुरोगः	३३२
आन्त्यन्तरविद्रधिः	"	कामला	"

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
अन्नजादिद्विषास्वरूपम्	२८६	द्योनिजन्ममदेषु दोषज्ञानम्	३००
हिष्माश्वामयोः क्षीघ्रकारित्वम्	२८७	मूल्ठा मंन्यासलक्षणम्	"
पञ्चमोऽध्यायः	"	सप्तमोऽध्यायः	३०१
राजयक्ष्मादिनिदानम्	"	अशोनिरुक्तिः	"
राजयक्ष्मसंज्ञा, राजयक्ष्मणो हेतवः	"	गुदवली स्वरूपम्	३०२
राजयक्ष्मपूर्वरूपम्	२८९	महजार्द्यमो हेतुः	"
राजयक्ष्मण एकादश रूपाणि	"	अर्चसः षट्प्रकारत्वम्	"
यक्ष्मिणोधातुपुष्टपभावेयुक्तिः	२९२	अशोन्ननप्रकारः	"
यक्ष्मिणो जीवने हेतुः	"	अर्चसां पूर्वरूपम्	३०३
साध्यासाध्यत्वम्	"	रक्तजार्द्यसो लक्षणम्	३०४
स्फुटभेदनिर्देशः	"	मेढ्रादिगताश्यांसि	३०६
अरोधकनिर्देशः	२९३	चर्मकोलोत्पत्तिः	३०७
छदिनिर्देशः	"	अष्टमोऽध्यायः	
हृद्रोगनिर्देशः	२९४	अतिसार-ग्रहणी-निदानम्	३०७
तृष्णानिर्देशः	२९५	अतिसारद्विविध्यम्	३०८
पष्ठोऽध्यायः	२९६	ग्रहणीरोगस्य चातुर्विध्यम्	३०९
मदात्ययनिदानम्	"	मन्दाग्निग्रहणीरोगः	३१०
मद्यगुणाः	"	अष्टौ महारोगाः	"
मद्येन चेतोविकारस्य प्रकारः	"	नवमोऽध्यायः	"
मद्ये पीते मोहादयः	२९७	मूत्राघातनिदानम्	"
युक्तिहीनं मद्यं व्याधिकरम्	"	बस्त्यादय एकसम्बन्धनाः	"
अतिमदामाये हेतुः	२९८	मूत्राघातस्य कारणम्	३११
मदात्ययलक्षणम्	"	अश्मरी लक्षणम्	"
ध्वंसकलक्षणम्	२९९	अश्मरीनयाणां बालेष्वेवोत्पत्तिः	३१२
विशयलक्षणम्	"	शुक्राश्मरी	"
सप्तधा मदाः	"	शर्करानिर्देशः	"

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
हलीमकः	३३३	त्वगादिगतवायोः कर्म	३४५
शोषसंप्राप्तिः	"	मर्वाङ्गकुपितवायुः	"
शोफस्य नयभेदाः	"	घमनीस्थितवायुलक्षणम्	"
विपणशोफलक्षणम्	३३५	अपतन्त्रक लक्षणम्	"
विमर्षनिर्देशः	"	अन्तरायाम लक्षणम्	३४६
चतुर्दशोऽध्यायः	३३८	बाह्यायाम लक्षणम्	"
कुष्ठश्चित्रक्रिमिनिदानम्	"	त्रणायाम लक्षणम्	"
कुष्ठनिदानम्	"	हनुस्रंफलक्षणम्	३४७
कुष्ठानामष्टादशप्रकाराः	"	जिह्वास्तम्भः	"
पूर्वरूपम्	३३९	अदितलक्षणम्	"
कुष्ठेषु दोषाधिक्यम्, कुष्ठस्या- साध्यादिधिभागः ...	३४१	सिराग्रहः	"
त्वगादिस्थितकुष्ठलक्षणम्	"	एकाङ्गरीयः	३४८
श्चित्रनिर्देशः	३४२	दण्डकायामः	"
साध्यामाध्यविभागः	"	विश्वाची	"
संचारिणो विकाराः	"	सञ्जालक्षणम्	"
क्रिमोणां द्विविध्यम्	"	कलायस्त्रयः	"
बाह्याभ्यान्तरक्रिमयः	"	ऊरुस्तम्भः	"
पुटीषोऽप्यकफजरक्तक्रिमयः	३४३	क्रोष्टुशीर्षलक्षणम्	३४९
विद्भेदादिजनकाः क्रिमयः	"	वातकण्ठकलक्षणम्	"
पञ्चदशोऽध्यायः	३४४	शृङ्गमीलक्षणम्	"
वातव्याधिनिदानम्	"	खल्ली, पाद-हर्षदाहो	"
अर्थानर्थकरणे पवनो हेतुः	"	षोडशोऽध्यायः	३५०
तत्राकारणम्	"	वातशोणितनिदानम्	"
वायोः कोपद्वयम्	"	पूर्वरूपम्	"
पक्वासाये द्रववायोः कर्म	"	वातशोणितस्य सर्वाङ्गचारित्वम्	"
		वातशोणितद्विविध्यम्	"
		वाताद्यधिकवातशोणितनिर्देशः	३५१



विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
वायुता रक्तमार्गहनननिर्देशः	"	प्राणादीनां परस्परमावरणम्	"
वायुपञ्चकोरलक्षणानि	३५२	आवरणस्यासंख्येयत्वम्	"
सामनिरामवायुलक्षणम्	"	आवरणप्रकारः	"
वातावरणभेदाः	"	प्राणादेर्जीवितत्वादि	३५५
प्राणादिपञ्चकनायोः पित्तोनावरणम्	३५३	आवृतानामुपेक्षणाद्वोपोत्पत्तिः	"
कफोनावरणम्	३५४		

### उत्तरार्धम्—

चिकित्सितस्थानम्	१	श्रीपदवाने मतभेदः	६
प्रथमोऽध्यायः	१	" कालः	"
ज्वरचिकित्सितम्	१	श्रीपधम्	"
ज्वरादी लघनम्	१	कषायाः	"
उपवासः	२	यवाः ( बाली )	६
शीतजलविधिः	३	मूषः ( जूस )	"
ज्वरस्य पित्तसंबन्धः	"	मासरसा ( गोरवा )	"
ज्वरे श्यामः	"	व्यञ्जनानि	"
श्यामज्वरस्थीपघनिषेधः	"	भोजनकालः	१०
स्वेदः	"	घृतपातकालः	"
लघनापवादः	"	जीर्णज्वरानुवृत्तिः	"
पेयानिर्देशः	४	जीर्णज्वरघ्नाः पञ्च स्नेहाः	१२
पेयानिषेधः	५	विरेचनम्	"
जीर्णं तर्पणभोजनादि	"	आमज्वरे क्षोषहरणनिर्णयः	१३
ज्वरस्य पट्टहोऽतिवाह्यः	"	दुग्धप्रयोगः	"
कषायः	"	वस्तिः ( एनीमा )	१४
कषायनिषेधः	"	नस्यम्	१५

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
अरुचिनाशकः	"	अगस्त्यहरीतकी	३७
अभ्यङ्गादिप्रयोगः	"	वसिष्ठरसायनम्	३८
तैलाम्यङ्गः	१६	क्षयजकासचिकित्सा	३९
घातज्वरे तैलाम्यङ्गः	"	कासे शोथफलदाप्रयोगाः	४१
मन्त्रिपातज्वरचिकित्सा	१७	चतुर्योऽध्यायः	४३
कर्णमूलशोथचिकित्सा	१८	श्वसहिकाचिकित्सा स्वेदः	४३
ज्वरे व्यायामादित्पाणः	१९	अनेकप्रयोगाः	४६
द्वितीयोऽध्यायः		हितविहाराः	४८
रक्तपित्तचिकित्सा	२०	हिक्काश्वसयोःशान्तिकर्मणि हेतुः	४९
अशुद्धरक्तधारणनिषेधः	२१	पञ्चमोऽध्यायः	४९
रक्तस्यातिआये रुधिरप्रयोगः	२१	राजयक्ष्मादिचिकित्सा	४९
विआद्रक्तपित्तनिःसरणे चिकित्सा	२४	भामप्रयोगः	५०
गुदाग्निःमरणे चिकित्सा	"	आजमासरसः	"
चामाघृतम्	२५	मद्यप्रयोगः	५१
घ्राणाग्निःसरणचिकित्सा	"	घृतप्रयोगः	"
तृतीयोऽध्यायः	२६	अरुचि-चिकित्सा	५४
कासचिकित्सा	"	समशर्करचूर्णम्	५५
कण्टकारीघृतम्	२१	यवान्यादि चूर्णम्	"
कण्टकारीलेहः	३२	तालीमादि "	"
धूमाः	"	प्रसेकचिकित्सा	"
उरःसतचिकित्सा	"	यक्ष्मिणःपुरोपरक्षणम्	५७
एलादिवटी	३३	उद्धर्तनस्नाने	"
अमृतप्राशोऽवलेहः	३४	षष्ठोऽध्यायः	५८
यक्ष्मादिहरंघृतम्	३५	छर्दिद्विद्वोगवृण्णा चिकित्सा	५८
घृतसेवने प्रकारः	३६	छर्दिरोगेस्तम्भनवृंहणे	६०
कूपमाण्डावलेहः	"	द्विद्वोगचिकित्सा	६०

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
सप्तमोऽध्यायः	६६	तक्रप्रयोगः	"
मदात्ययचिकित्सा	६६	गाढवर्चसिचिकित्सा	८५
विधियुक्तं मद्यपानम्	"	हरीतकीप्रयोगः	"
अपघ्नकालः	६७	गुदाङ्कुरनाशनायोगाः	"
पञ्चाम्लप्रयोगः	६८	अभयारिष्टः	८६
दाहचिकित्सा	"	दुरालभारिष्टः	८७
दुग्धपानम्	"	घृतप्रयोगः	"
विदग्धपथ्यंसकमोश्चिकित्सा	७१	चाङ्गैरीघृतम्	"
मद्यात्सर्वरोगनाशः	७२	मांसशाकप्रादिप्रयोगः	८८
मद्यादृते मांसपाकाभावः	७३	विह्वताद्यनुलोमने हेतुः	"
मद्येन विना लघुनस्याल्योगुणः	"	रक्तार्शचिकित्सा	८९
मद्येन शस्त्रवेदनासहरणम्	"	दुष्टेऽश्लेष्मोघनादि	"
मद्यमारोग्यकरम्	"	रक्तस्त्रावेचिकित्सा	९०
मद्यपानविधिः	"	कुटजावलेहः	"
मद्यपान-निषेधः	७७	रक्तस्तम्भनाः प्रयोगाः	९१
पानकालः	"	छागनवनीतादि-प्रयोगः	"
चिकित्सा	"	पलाण्डु-प्रयोगः	९२
संन्यासरागचिकित्सा	७९	पिच्छावस्तिः	"
अष्टमोऽध्यायः	७९	घृतस्वेदादि	९३
अशंसिचिकित्सा	७९	कल्याणकदारः	९४
पुरीषादिरोधेचिकित्सा	८०	चुक्रशुक्तप्रयोगः	"
गुदज्ज्वातिनीवर्तिः	८१	गुडावलेहः	९५
गोरसपानम्	८२	मूरणप्रयोगः	९६
तक्रतर्पणम्	८३	मरिचादिगुटिका	"
तक्रप्रयोगकालादि	"	अर्शसिप्रधानमोषघ्नम्	९७
तक्रारिष्टपानम्	८४	जठराग्निरक्षा	९८

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
नवमोऽध्यायः	६८	ताल्लोसादि गुटिका	११४
अतिसारचिकित्सा	६८	निरामग्रहणी चिकित्सा	"
संचितदोषेषूपेक्षा	"	मधुकासवः	११७
आमातिसारे भेषजनिषेधः	६९	स्नेहश्रेष्ठः	११९
अग्रम्	"	भस्मकरोग चिकित्सा	१२०
भोज्यानि	"	एकादशोऽध्यायः	१२२
अतिसारमिचिकित्सा	१००	मूत्राघातचिकित्सा	१२२
तक्रयवागूः	१०१	अरमरीचिकित्सा	१२३
प्रवाहिकोपमम्	१०२	शर्कराचिकित्सा	१२४
पुरीषशये चिकित्सा	"	मूत्राघातचिकित्सा	१२५
तैलप्रयोगः	१०३	शुक्राशमरीचिकित्सा	"
गुदभ्रंशचिकित्सा	१०४	शस्त्रप्रयोगः	१२६
अजादुग्धप्रयोगः	१०५	शस्त्रनिषेधः	१२८
वस्तिः	१०६	द्वादशोऽध्यायः	१२८
स्योनाकप्रयोगः	१०७	प्रमेहचिकित्सा	१२८
रक्तातिमार-चिकित्सा	"	पंचप्रयोगाः	१२९
लाक्षादिघृतम्	१०८	कपायाः	"
श्लेष्मातिसार-चिकित्सा	१०९	वातजप्रमेहेषु स्नेहकल्पना	"
पाठादिपानम्	११०	धान्वन्तरं घृतम्	१३०
कपित्थाष्टक दाडिमाष्टक-धूर्जम्	"	रोध्रासवः-अयस्कृतिः	१३१
खलः	१११	शिलाजतु-प्रयोगः	१३२
दशमोऽध्यायः	११२	निर्धनप्रमेहि-चिकित्सा	"
ग्रहणीरोगचिकित्सा	११२	प्रमेहपित्तकोपचारः	"
गवागूः	"	मधुमेहे प्रयोगः	१३३
तक्रस्य हितत्वम्	"	त्रयोदशोऽध्यायः	१३३
धूर्जम्-विट्त्वण प्रयोगः	११३	विदधिवृद्धिचिकित्सा	१३३

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
शक्यतन्त्रम्	१३३	यातोदर-पित्तोदर चिकित्सा	१५६
आम्यन्तरविद्रधिचिकित्सा	१३४	कफोदर चिकित्सा	१६०
स्तनजविद्रधिचिकित्सा	१३६	सन्निपातोदर चिकित्सा	१६१
वृद्धिचिकित्सा	१३७	विषप्रयोगः	"
सुसुमारं रसायनम्	१३८	उष्ट्रीदुग्धप्रयोगः	१६२
चतुर्दशोऽध्यायः	१३९	श्रीहोदर चिकित्सा	"
कायचिकित्सा २२ अध्यायान्तम्	१३९	रोहीतक प्रयोगः	"
गुल्म चिकित्सा	१४०	यक्षुचिकित्सा	१६३
धृतानि	१४०	बद्धोदर-छिद्रोदर-उदकोदरचिकित्सा	"
हिम्वादि घूर्णम्	१४२	क्षल प्रयोगः	१६४
वैश्वानर-हिरण्यक शार्ङ्गल-		मर्बोदर चिकित्सा	१६५
सैन्धवादि घूर्णानि ...	१४३	मोज्यानि	"
लशुन-मातुलुग एरण्ड-तैलप्रयोगः	१४४	तक्रपानम्	१६६
शिलाजतु-नीलिनीघृतम्	१४५	पौडशोऽध्यायः	
भस्मातकघृतम्	१४८	पाण्डुरोग चिकित्सा	१६७
घटयोजनम्	१४९	लोह-मण्डूर प्रयोगः	१६८
देवदार्वार्दिक्षारः-आसवादिप्रयोगः	१५१	द्राक्षासेहः	१७०
अन्नपानम्	"	मृत्तिकाजपाण्डु-चिकित्सा	"
दाहकरणम्	१५२	कामला चिकित्सा	१७१
नार्यारक्तगुल्मचिकित्सा	"	कुम्भकामला-हृलीमक चिकित्सा	१७२
योनिविशोधनानि	१५३	सप्तदशोऽध्यायः	१७३
पञ्चदशोऽध्यायः		श्वययुचिकित्सा	"
उदररोग चिकित्सा	१५४	अमया सेहः	१७४
नारायण घूर्णम्	१५५	भोजनादि-पेया	१७५
हरीतकीप्रयोगः	१५६	लेपः	१७६
स्तुक्शीरघृतप्रयोगः	१५७	वात-पित्तजशोषचिकित्सा	"

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
अनाज्यादि पानम्	१७७	वाक्यो प्रयोगः	१६८
स्याज्यानि	१७८	क्रिमिचिकित्सा	१६९
अष्टादशोऽध्यायः	"	अश्वविट् प्रयोगः	२००
विसर्पचिकित्सा	"	स्याज्य-पदार्थाः	२०१
दुरालभादि पानम्	१७९	एकविंशोऽध्यायः	"
अग्नि-ग्रन्थि विसर्पचिकित्सा	१८१	अङ्गगत वायु चिकित्सा	२०२
रक्तहरणहेतुः	१८२	अपतानक चिकित्सा	२०३
एकोनविंशोऽध्यायः	१८३	आयाम चिकित्सा	२०४
कुष्ठचिकित्सा	"	ऊर्ध्वस्तम्भिनो व्यायामादि	२०६
वित्तमहावित्तप्लुतम्	"	व्यायामः, घृतम्	"
सर्वकुष्ठचिकित्सा	१८४	पञ्चवित्त घृत-गुग्गुलुः	"
महावज्रकघृतम्	१८५	प्रसारिणीतैलम्	२०७
सेलीतकवमाप्रयोगः	१८६	सहाचर-बलातैलम्	२०८
अप्रपानादि	"	तैल प्रयोग कालाः	२०९
जितेन्द्रियाणां कुष्ठनाशकः प्रयोगः	१८७	द्वाविंशोऽध्यायः	२१०
लाक्षाविचूर्णम्	१८८	वातशोणित चिकित्सा	"
सप्तसमा-शयाङ्गावलेहः	१८९	खीदाहृणा	२११
महावज्रकतैलम्	१९३	उपनाहनम्-लेपाः	"
पट् लेपाः	१९४	अङ्गशोषादि चिकित्सा	२१५
घटादीनि कुष्ठघ्नानि	१९५	शोषादिरोगसिद्धौ सन्देहः	"
विंशोऽध्यायः	१९६	पित्ताद्यानुतचिकित्सा	"
शिवत्र क्रिमि चिकित्सा	"	सर्वधात्वानुतचिकित्सा	२१६
शिवत्रेयोध्र यत्नः	"	लघुन प्रयोगः	२१७
गोमूत्र-सृङ्गराज प्रयोगः	१९७	आयुर्वेदफलम्	"
दग्धचर्म भस्मातक प्रयोगः	"	चिकित्सापर्यायाः	"
चातस्याधि चिकित्सा	"	कल्पस्थानम्	२१८

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
प्रथमोऽध्यायः	"	वेगगोभाक्षणः	२४२
वननवत्पः	"	अतिव्ययने भयानकम्	२४३
वमनविरेचनेमदनविद्वग्भूते श्रेष्ठे	"	विरेचन वमनादिभोगे विविक्तः	"
प्राणैः वमनम्	२२०	वीणादानं विविक्तः च	२४४
इत्याहुः कृतः	२२१	चतुर्थोऽध्यायः	२४५
षामार्गवः तितकोदातकोष	२२२	वस्तिद्वयः	"
कुटिलप्रयोगः	२२३	मन्त्रेण प्रमाणा वस्तिः	"
द्वितीयोऽध्यायः	"	मर्दानिलध्यामिर्गोर्गोर्गः	२४६
विरेचन कृतः	"	दीपनां वस्तिः	"
प्रिवृत् गुणाः	"	वाहादिनाशको निष्कः	२४७
हृद्यविरेचनमिष्टुर्गडिकावदणम्	२२४	मुकुमाराणां निष्कः	२४८
कल्याणको गुडः	२२५	मिष्टवन्ति.	२४९
शुद्धविरेचनानि	२२६	मापुर्वन्तिको निष्कः	"
राजकुशप्रयोगः	"	युक्तः मिष्टवन्तिः	२५०
अरिष्टः-तिलक प्रयोगः	२२७	बलघ्नः मिष्टवन्तिः	२५१
गुणा प्रयोगः	२२८	रमायनवस्तिः	२५२
धातुनां वसला प्रयोगः	"	पुत्रीवदनुवाचनम्	२५३
दक्षीवन्ती प्रयोगः	२२९	वस्तिभोगनाप्रकारः	२५४
हरीतकी प्रयोगः	"	वस्तेरभोग्यता	"
कारणविरोधमहाल्पकर्मत्वम्	२३०	पञ्चमोऽध्यायः	"
तृतीयोऽध्यायः	"	वस्तिभोग्यवस्तिद्विः	"
वमनविरेचनव्यापस्तिद्विः	२३१	अयोगः	"
रमनेऽप्योऽने पुनर्वचनम्	"	अत्युष्णादि वस्तिनिषेधः	२५६
विरेचनेऽपूर्वगतं पुनर्वचनम्	"	विद्वद्भनस्य रक्षा	२५६
निर्वचनस्यायोगः	"	षष्ठोऽध्यायः	२५७
	"	दुग्धादेर्गहनविधिः	२५८

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
प्रद्यस्तभेषजलक्षणम्	२५१	रोगज्ञानमुपायः, मारस्यते चतुर्थम्	२६०
व्यायस्यरसं पूर्ण-यदीनां लक्षणानि	"	चक्षुरोत्तिहाः	२६१
मात्राविचारः	"	द्वितीयोऽध्यायः	२६१
मानं स्नेहपाकपरिभाषा	२५२	बालरोग चिकित्सा	"
मानपरिभाषा	"	विविधो बालः	"
शुष्काद-द्रव्य-अनुत्तद्रव्य भगवत्पाठ्यता	२५३	बालस्य रोगज्ञान प्रकारः	२६२
मानकपनम्	२५४	धात्रीदुग्धसोपनोपायः	२६३
क्षौलभेदाद्वैद्यविशेषः	"	सहः, क्षीरालमकरोगचिकित्सा	२६३
उत्तरस्थानम्	२५५	दन्तोद्भेदप्रकरणम्	२६४
प्रथमोऽध्यायः	"	बालशोषः (मुर्खही) चिकित्सा	२६५
कीमारशूक्ष्मम्	"	काशादि संलम्	२६७
बालोपचारः	"	दन्तैः महजाते बाले धान्यादिः	"
उत्तरबालस्य कर्म	"	तालुकण्टक-मुदरोगी	२६८
मन्त्रनिर्देशः	"	मृत्तिकाभक्षणजन्य रोगनाशः	"
मालज्जेदन-तालूमनम्	२५६	औषधैर्लितं रोगनाशः	२६९
गभग्निभोवमनम्	"	तृतीयोऽध्यायः	२७०
मातुर्दुग्धप्रादुर्भावे हेतुः	२५६	भूतविषा	"
दुग्धपानार्थं धात्रीयोजना	२५७	बालग्रह चिकित्सा	"
स्तन्यनाश-वृद्धिहेतवः	"	पूर्वलेपम्	"
स्तन्यं बालस्य रोगहेतुः	"	वसद्ग्रहं शुद्धिव लक्षणानि	"
मातुर्दुग्धाभावे छागादिपयः	"	पूतना लक्षणम्	२७२
पट्टीरात्रिकृत्यं नामकरणं च	२५८	ग्रहग्रहे हेतुत्रयम्	२७३
आयुः परीक्षणं, मण्यादिधारणम्	"	हिसारमके लक्षणम्	"
कर्णव्ययः	"	ग्रह चिकित्सा	२७४
जातदन्तस्य कर्म, मोहकः	२५९	धूपः, सर्वग्रहरोगहरं चतुर्थम्	२७५



विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
चतुर्थोऽध्यायः	२७७	कूटमाण्डपृत्तं, त्रिकलादिर्लम्	२६६
भूतविज्ञानम्	"	रमायनप्रयोगः, गतापस्मार-	
भूतमर्या, भूतग्रहणे हेतुः	"	चिकित्सा	३००
भूतग्रहणकालः	२७८	अष्टमोऽध्यायः	३००
देवगृहीतलक्षणम्	"	शास्त्राव्ययतन्त्रम्	"
यक्ष-ब्रह्मराक्षस लक्षणम्	२७९	नयनरोगमंत्रातिः	"
अमाध्यलक्षणम्	२८१	वर्मरोगाः	३०१
पञ्चमोऽध्यायः	२८२	नवमोऽध्यायः	३०३
भूतचिकित्सा	२८२	वर्मरोगचिकित्सा	"
महामूतरावधृतम्	२८५	पदपतनचिकित्सा	३०५
ग्रहणी बलपादिस्नानानि	"	कुक्कुडचिकित्सा	३०६
देशाशौचार्थापज्ये	२८८	पद्मरोगचिकित्सा	३०७
षष्ठोऽध्यायः	२८९	दशमोऽध्यायः	३०८
बन्धाश्चिकित्सा	२९०	संधिमित्तामित्तरोगाः	"
घोकोन्मादविचारः	"	श्वेतप्राणारोगाः	३०९
आह्वीधृतम्	२९१	कुष्ठगतद्वारोगाभिधानम्	३१०
महाक्लियाणर्पणाचधृतम्	२९२	एकादशोऽध्यायः	३११
रोगिणः कूपे प्रक्षेपणादिः	२९४	सन्ध्यादितोगचिकित्सा	"
भूतपथम्	२९५	अर्मचिकित्सा	३१२
उन्मादानुत्पत्ती हेतुः	"	शुक्रधृतम्	३१४
विगतोन्माद लक्षणम्	"	शुक्रे मेकःगुटिका	३१५
सप्तमोऽध्यायः	२९६	शुक्रहरीवर्तिः	३१६
अपस्मारलक्षणम्	२९६	द्वादशोऽध्यायः	३१८
अपस्मारचिकित्सा	२९७	तिमिररोग लक्षणम्	"
महापञ्चगव्य-आह्वीधृतम्	२९८	नकुलान्धरोगः	३२०

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
दोषान्धराश्वन्धरोगः	३२०	व्यपनिषेधः	३३५
त्रयोदशोऽध्यायः	३२१	लिङ्गनाश व्ययः	"
तिमिरचिकित्सा	"	पञ्चदशोऽध्यायः	
तिमिरस्यशीघ्रपुपक्रमः	"	सर्वनेत्ररोग विज्ञानम्	३३८
महान्निकला घृतम्	३२२	अभिप्यन्दाधिमन्यल०	"
गरुड दृष्टिवृत्तेहः	३२३	षोडशोऽध्यायः	३४०
त्रिकला प्रयोगः	"	सर्वनेत्ररोग चिकित्सा	"
तिमिरापहमञ्जनम्	"	विडालकं, नेत्रसेकः	३४१
भास्कराञ्जनम्	३२४	पाशुपत प्रयोगः	३४४
मुत्पाञ्जनम्	३२५	सद्योफ नेत्ररोगचि०	"
सीमक घालाका	"	विल्वचिकित्सा	३४६
पृष्ठाञ्जनम्	"	नेत्ररोगे पथ्यापथ्ये	३४७
सर्गाञ्जनम्	३२६	पादत्राणादि सेवनम्	३४८
अभ्यानि अञ्जनानि	"	सप्तदशोऽध्यायः	"
पण्माशिकयोगः, दृष्टिवलकरं नस्यम्	३२७	कर्णरोग विज्ञानम्	"
तैलं नस्यम्, वमाञ्जनम्	३२८	वात कर्णशूल रोगः	"
तिमिरघ्नमञ्जनम्	३२९	अष्टादशोऽध्यायः	३५१
त्रिमला कोकिलाख्ये वर्तते	३३०	कर्ण रोग चिकित्सा	३५१
रक्तजतिमिरचिकित्सा	"	कर्णशूल चिकित्सा	"
वाचचिकित्सा	३३१	कर्णपुय कर्णस्त्राव चिकित्सा	३५३
अतिजेजस्विनीपहतचिकित्सा	३३२	कर्णनाद-बाधिर्य चिकित्सा	"
चित्रादिभिस्तमिरिददयलोकनम्	"	क्षारतैलं-प्रतिनाह चिकित्सा	३५४
नेत्ररक्षकणि	३३३	कर्णपालीशोप-दुबिद्धकर्ण	
चतुर्दशोऽध्यायः	३३४	चिकित्सा	३५५
लिङ्गनाश प्रतिषेधः	"	परिनेही-छिन्नकर्ण चिकित्सा	३५६
आवर्तयो दृष्टिः	"		

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
कर्णरोग विधानम्	३५६	दन्तहर्ष-चलदन्त चिकित्सा	३७२
छिन्ननामिका चिकित्सा		जिह्वारोगे चिकित्सा-गलगण्डो	
ओष्ठमण्डानम्	३५७	छेदनम्	३७५
एकोनविंशोऽध्यायः	३५८	तालुशोष चिकित्सा	३७६
नासारोग चिकित्सा	"	कण्ठरोग-रोहिणी चिकित्सा	"
प्रतिश्यायसंप्राप्तिः	३५८	गलगण्ड चिकित्सा	३७७
दुष्टनक्त प्रतिश्याय लक्षणम्	३५९	मुत्तपाक चिकित्सा	३७८
भृशभ्रव्यु-नासाशोष लक्षणम्	"	बृहत्सदिरादिगुटिका	३८०
अपीनम लक्षणम्	३६०	दन्तदाल्प्यकरणम्—	"
विंशोऽध्यायः	३६१	प्रतिमारणम्	३८१
नासारोग चिकित्सा	"	कालक-रीतकचूर्णौ	"
पीनम चिकित्सा	"	हरीतकी प्रयोगः	३८२
व्याध्यादि षटो	"	अ जनादि	३८३
एकविंशोऽध्यायः	३६३	त्रयोविंशोऽध्यायः	३८४
मुखरोग निदानम्	"	शिरोरोग निदानम्	३८४
ओष्ठरोगाः-दन्तरोगाः	३६४	क्रिमिज रोग-शूलक-मूर्धनिवर्त	
क्रिमिदन्तकः-दन्तमामरोगाः	३६५	लक्षणम्	३८५
जिह्वारोगाः-तालुरोगाः	३६७	धिरःकपालरोगाः-उपशीर्षक	
कण्ठरोगाः	"	लक्षणम्	३८६
मर्बमुखरोगः	३६८	दारुण-इन्द्रलुप्त खलतिरोगाः	"
मुखरोगगणना	३६९	पलितरोगः	३८७
द्वाविंशोऽध्यायः	३७०	चतुर्विंशोऽध्यायः	३८८
मुखरोग चिकित्सा	"	शिरोरोग चिकित्सा	"
गण्डोष्ठ चिकित्सा	"	उपशीर्षक-अरुणिका-दारुण	"
जलायुदशीतदन्तचिकित्सा	३७१	इन्द्रलुप्त चिकित्सा	"
		खलत्यादि चिकित्सा	३९१

विषयः	पृष्ठम्	विषयः	पृष्ठम्
पञ्चविंशोऽध्यायः	३६५	अष्टाविंशोऽध्यायः	४१२
अणविज्ञानम्	"	भगन्दर चिकित्सा	४१२
क्षैत्यतन्त्रम्	"	शतपोनकादि भगन्दराः	४१३
शृङ्गेदारणीयधानि	३६७	अम्यङ्गार्थं तैलम्	४१४
अणरोपणम्	३६६	स्त्रास्यंभुवाख्यो गुग्गुलुः	४१७
स्वच्छाजनकंभूर्णम्	"	गुल्फेर्महिषाख्यमाक्षिकम्	"
अणक्षोधनम्	४००	एकोनत्रिंशोऽध्यायः	४१८
षड्विंशोऽध्यायः	४०१	अग्निमलक्षणम्	"
सद्योमण चिकित्सा	"	नवग्रन्थवस्तेपांलक्षणानि	"
अष्टधा सद्योमणाः	"	अस्थीनां साध्यत्वादि	४१६
स्फुटितनेत्र चिकित्सा	४०२	अबुंद-श्रीपद लक्षणम्	४२०
अन्त्रप्रवेशोमतम्-प्रवेशनप्रकारः	४०५	हस्तादावपिश्रीपदोत्पत्तिः	४२१
रोपणं तैलम्	४०६	नाडी अण ( नाभूर ) विज्ञानम्	"
प्रेहोरादौचिकित्सा तैलद्रोण्यांवातः	"	क्षत्पनादौ	४२२
सप्तविंशोऽध्यायः	४०७	त्रिंशोऽध्यायः	४२२
भङ्ग चिकित्सा	"	अन्ध्यादीनां चिकित्सा	"
भङ्गस्यद्विप्रकारः	"	श्रीपद चिकित्सा	"
असन्धिभग लक्षणम्	"	अपकृग्रन्थेस्तेदनम्	४२३
भिर्द्रं कपालादि वर्ज्यम्	"	अवधी चिकित्सा	४२४
अस्थिभङ्गः-अन्धनप्रकारः	४०८	गण्डमाला चिकित्सा	"
संवेगंभङ्ग चिकित्सा	"	तैलानि	४२५
मध्ये स्पर्शकालः	...	नाडी चिकित्सा	४२६
वट्यादिभगचिकित्सा चिरविमुक्त	"	एकत्रिंशोऽध्यायः	४२८
मध्ये स्पर्शकालः	...	पुद्गरोगाः	"
भङ्गे भोजनम्	"	अभिरोहिणी	४२६
भङ्गे स्थापयानि	४११		
भङ्गगंधानगर्भतैलम्	"		

विषयः	५४५	विषयः	५४८
व्यङ्ग नीलिकादयः	४३१	पुरुषस्यशुक्र चिकित्सा	४४७
द्वात्रिंशोऽध्यायः	४३२	फलपूतम्	"
कायचिकित्सा	"	पञ्चत्रिंशोऽध्यायः	४४८
व्यङ्ग चिकित्सा	४३३	३५तः ३८ पर्यन्तमगदतन्त्रम्	"
कान्तिकरः स्नेहः	४३५	विष चिकित्सा	"
त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः	४३५	विषस्य प्रायुत्पत्तिदर्शनम्	"
प्रसूतिसन्त्रम्	"	स्थावर जङ्गमं विषं, त्रिविधं विषम्	"
उपदंशादीनां निदानम्	"	विषगुणास्तत्रहेतुः	४४९
मामकौलक ल०	४३६	स्थावरविषवेगादि	"
निघृत्तल०	४३७	विषवेग चिकित्सा	"
योनिव्यापदः-वातजा व्यापत्	४३८	विषघ्नी यवागूः, बन्धोदयागदः	४५०
अन्तर्मुखी महायोनिः	४३९	दूषीविषविवरणम्	"
पित्तजाव्यापत्	"	विषलितशस्त्रहृत् ल०	४५२
कफजा व्यापत्	४४०	तत्र चिकित्सा	"
गर्भाऽग्रहणे हेतुः	४४१	देहव्याप्ती कालः	"
चतुस्त्रिंशोऽध्यायः	"	विषदाताः	४५३
उपदंश-निघृत्त चिकित्सा	४४२	गरपीडित ल०	"
योनिव्यापत्सु वातजयः कार्यः	४४३	विषसकटम्, विषस्य मन्द वीर्यता	४५४
बलातैल पानादि	"	घृतस्य विषनाशने श्रेष्ठता	४५५
बचादिकं योनिरोगहरम्	४४४	सर्वविषस्यसाध्यत्वादि	"
गर्भदं घृततैलम्	४४५	षट्त्रिंशोऽध्यायः	४५६
पुष्पानुगं घूर्णम्	"	सर्वं विष चिकित्सा	"
योनिपेच्छित्य दुर्गन्धादिनाशकघूर्णः	४४६	त्रिविधाः सर्पाः	"
कठिनयोनि मादंकरम्	४४७	दंशसंज्ञा	४५७
शुद्धयोनिषु गर्भधारणम्	"	सर्पजविषस्य रक्तप्राप्तस्यैव दूषणम्	"
		सर्वविषनिर्णय दंश ल०	"

विषयः	५४म् ।	विषयः	पृष्ठम्
दूर्वाकरादि विषयेण छ०	४५८	सर्वसूत्रादंश लक्षणम्	४७२
चिकित्सा	४५९	प्रथमादिदिनेषु दंश ल० वि०	४७३
अल्पविषाः सर्पाः	"	अगद त्रयम्	४७५
अमाध्यदृष्ट लक्षणम्	"	सूतान्नोऽगदः	४७६
विषस्पन्देहव्याप्ती कालः	४६०	अष्टत्रिंशोऽध्यायः	"
दृष्टे समेव मर्षदन्तशृङ्गेदनम्	"	अष्टादश मूर्षिकाः	"
अरिष्टावगन्धनम्-दंशदाहादि	"	एषां विपाणि	"
सविषाविपरक्त लक्षणम्	४६१	विषयुक्त कुक्कुर लक्षणम्	४७७
अस्क्मनेरक्ते भूचर्डादीनां ज्वर	"	अलर्कदृष्ट लक्षणम्	"
वमन-विशिष्ट चिकित्सा	४६२	सविषनिर्विषालर्कदृष्ट लक्षणम्	"
हिमवन्नामागदः	"	दंशस्तुर्वेष्टाकरण्ये मरणम्	४७८
दूर्वाकर विष चिकित्सा	४६३	अल संश्रामः	"
निःशेष विषोद्धरणम्	४६५	मूर्षिक दंशचिकित्सा	"
विषशान्त्यर्थं मध्यादि धारणम्	"	अलर्कदृष्ट चिकित्सा	४७९
रात्री गमने छत्रभर्त्सर धारणम्	"	चतुष्पदादि नखादि क्षतलिङ्गम्	४८०
सप्तत्रिंशोऽध्यायः	४६६	एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः	४८०
कीटलूतादि विष चिकित्सा	"	रसायनाऽध्यायः	"
चतुर्विधाः कीटाः	"	रसायनाद्दीर्घायुः प्रभृति लाभः	"
वृश्चिक दंश लक्षणम्	"	रसायनप्रयोगस्य वयः	"
महावृश्चिकदंश लक्षणम्	४६७	अशुद्धशरीरे रसायनं निष्फलम्	४८१
चिकित्सा	४६८	रसायनानां द्विविधप्रयोगः	"
विषघ्नं घूपम्	"	कुटी प्रादेशिक विधिः	"
मर्षकीट विषघ्नोऽगदः	४६९	शुद्धिकरणम्	"
वृश्चिकदंश चिकित्सा	"	बाह्यरसायनम्	४८२
कीटविषघ्नोऽगदः	४७०	अभयामलकर०	४८३
लूताविषविचारः	"	आमलक रसायनम्	"

# अष्टाङ्गहृदय में आयुर्वेद के विषय और अङ्ग

## स्वस्थवृत्त

मूलस्थान—२, ३, ४, ६, ८ अध्याय ।

## रोगविज्ञान

मूल०—१, ११, १२, १३, १४ अ० ।

शारीर—५, ६ अ० ।

निदान—समग्र ।

उत्तर०—३१, ३३ अ० ।

## कायचिकित्सा

मूल०—१२, १३, १६ से २४ तक अ० ।

चिकित्सा०—१ से १२ तक अ० ।

॥ १४ से २२ तक अ० ।

कल्पस्थान—सम्पूर्ण ।

उत्तर०—६, ७, ३२ अ० ।

## शाल्य

मूल०—२५ से ३० तक अ० ।

शारीर०—३, ४ अ० ।

चिकित्सा०—१३, १८ अ० ।

उत्तर०— ३० तक अ० ।

## शालाक्य

उत्तर०—८ मे २४ तक अ० ।

## अगद ( विपतन्त्र )

मूल०—७ अ० ।

उत्तर०—३५ से ३८ तक अ० ।

## भूतविद्या

उत्तर०—३, ४, ५, ६, ७ अ० ।

## प्रसूति

शारीर०—१, २ अ० ।

उत्तर—३३, ३४ अ० ।

## कीमारभृत्य

उत्तर०—१, २ अ० ।

## रसायन

उत्तर०—३६ अ० ।

## वाजीकरण

उत्तर०—४० अ० ।

	पृष्ठम्		पृष्ठम्
लिङ्गनाशव्ययः	३३५	शुण्ठीयोगः, वाकुची प्र०	४६३
नेत्ररोगे पाशुपत प्रयोगः	३४४	लशुन रसायनम्	४६६
नामारोगेष्ठीपादि वटी	३६१	शिलाजतु रसायनम्	४६७
कालक-पीतक चूर्णम्	३६०	वातातपिक रसायनम्	४६६
हरीतकी प्रयोगः	३८२	शीतोदकादि रसायनम्	"
मुखरोगे वृ० खदिरादि वटी	३८७	हरीतकी-आमलक रसायनम्	"
स्वामंभुवाख्यो गुग्गुलुः	४१७	लोह रसायनम्	५००
पुष्यानुर्ग चूर्णम्	४४५	विडङ्गादि त्रिफला रसायनम्	"
फलपूतम्	४४७	पुनर्नवा-क्षतावरी-अश्वगन्धा	
चन्द्रोदयोऽगदः	४५०	कृष्णतिल रसायनम्	५००
हिमवन्नामाऽगदः	४६२	नारसिंहो रसायनम्	५०४
व्यवनप्राशः	४८४	भृङ्गराज र०	५०५
त्रिफला रसायनम्	४८५	कान्ताक्षतदर्पण चूर्णम्	५०८
मागवला-गोक्षुरक-बिबारी		सर्वरात्री रविकारको योगः	५०९
चित्रक रसायनम्	४८७-४८८	मधुक (मुलेठी) योगः	"
वर्धमान पिप्पली	४९२	ताह्म्यकरो योगः	,





# अष्टाङ्गहृदय में आयुर्वेद के विषय और अङ्ग

## स्वस्थवृत्त

सूत्रस्थान—२, ३, ४, ६, = अध्याय ।

## रोगविज्ञान

सूत्र०—१, ११, १२, १३, १४ अ० ।

शारीर—५, ६ अ० ।

निदान—समग्र ।

उत्तर०—३१, ३३ अ० ।

## कायचिकित्सा

सूत्र०—१२, १३, १६ से २४ तक अ० ।

चिकित्सा०—१ से १२ तक अ० ।

॥ १४ से २२ तक अ० ।

कल्पस्थान—सम्पूर्ण ।

उत्तर०—६, ७, ३२ अ० ।

## शल्य

सूत्र०—२५ से ३० तक अ० ।

शारीर०—३, ४ अ० ।

चिकित्सा०—१३, १८ अ० ।

उत्तर०—२५ से ३० तक अ० ।

## शालाक्य

उत्तर०—८ मे २४ तक अ० ।

## अगद ( विपतन्त्र )

सूत्र०—७ अ० ।

उत्तर०—३५ से ३८ तक अ० ।

## भूतविद्या

उत्तर०—३, ४, ५, ६, ७ अ० ।

## प्रसूति

शारीर०—१, २ अ० ।

उत्तर—३३, ३४ अ० ।

## कीमारभृत्य .

उत्तर०—१, २ अ० ।

## रसायन

उत्तर०—३६ अ० ।

## वाजीकरण

उत्तर०—४० अ० ।

धीगणेशायनमः

प्रभास्यसंस्कृतटिप्पणीसंवलितम्—

**अष्टाङ्ग हृदयम् ।**

**सूत्रस्थाने प्रथमोऽध्यायः**

**ग्रन्थकर्तुर्मङ्गलाचरणम्—**

रागादिरोगान्सततानुपक्ता—

नभोपकायप्रसृतानशेषान् ।

श्रोतुमुक्थमोहारविदाम् जघान

योऽपूर्ववंचाय नमोऽस्तु तस्मै ॥१॥

**निदानविययाः**

अघात आयुष्कामीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इतिहस्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

**टिप्पणीकर्तुर्मङ्गलाचरणम्**

आश्रित्य लोके विविधं विधेयम् ग्रह्यान्नुतश्चम्बकनामभिर्यः ।

व्यातः, परं गीयत एक एव देवविभिस्तं परमेशमीडे ॥

१ रागा विषयाभिलाषः । आदिना द्वेषकामक्रोधादयः । सततानुपक्तान् सर्वकालमात्मना सम्बद्धान्सहजान् । अशेषाश्रिते कायास्ताम् सर्वाणिनरगो मजादिशरीराणि - अत्रिव्याप्य स्थितान् । अशेषान् सर्वान् । श्रोतुमुक्थमिष्टार्थं त्वरापूर्वकीमानम् उद्योगः । मोहः कार्यकार्ययोरज्ञानम् । अरतिः कार्येषु मनमोह-मलम्लता । जघान मोक्षशास्त्रप्रणयनेन बभोषार्थं दशितवान् नतु स्वयं हतवान्, अन्यथा रागादिरधुनोपताग्निनं स्यात् ।

१ आयुः कामयमानेन धर्मार्थशुखसाधनम् ।

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥ २

### आयुर्वेदागमनम्

ब्रह्मा स्मृत्यायुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।

२ सोऽग्निनी, ती सहस्राक्षं, मोऽग्निपुत्रादिकाम् मुनीम् ॥ ३ ॥

३ तेऽग्निवेशादिकास्ते तु पृथक् तन्त्राणि ते निरे ।

४ तेभ्योऽतिविप्रकीर्णं प्रायः सारतरोच्चयः ॥ ४ ॥

क्रियतेऽष्टाङ्गहृदयं नातिमंदोपविस्तरम् ॥

### आयुर्वेदस्याष्टाङ्गानि

५ कायवासग्रहोर्वाङ्मनस्यदंष्ट्राजरावपाम् ॥ ५ ॥

अष्टावङ्गानि तस्याहुश्चिकित्सा येषु संभिता ।

### दोषाः

वामुः पित्तं कफश्चेति त्रयो दोषाः समासतः ॥ ६ ॥

विकृताऽविकृता देहं ध्वन्ति ते० वर्तयन्ति च ।

१ एति गच्छतीत्यायुः-जीवनकालः । सुखं द्विविधमैहिकमात्यन्तिकं मोक्षाख्यं च आयुर्वेदयति हिताहिततः, सुखामुखतः, प्रमाणाप्रमाणतश्चेत्यायुर्वेदः । यदुक्तं चरकेण हिताहितं सुखं दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् । मानं च तच्च यत्रोक्तं मायुर्वेदः स उच्यते । २ सः प्रजापतिः । ती अग्निनी अजिग्रहताम् । स. सहस्राक्ष-इन्द्रः । आग्नेयधन्वन्तरिनिनिकाशयपादयः । ३ ते अग्निपुत्रादयः । अग्निवेशादयः अग्निवेश-भेद जातृकर्णं पाराशर हारीत क्षारपाणि नामान् । ४ तेऽग्निवेशादयः । स्वनाम्ना तन्त्राणि, तन्त्र्यन्ते धार्यन्ते आयुर्वेदार्था अभिरिति तन्त्राणि । ते निरे विरचयाश्चक्रुः । ५ तेभ्योऽग्न्येभ्यः । विप्रकीर्णं विक्षिप्तम् । उच्चैर्यन्ते आयुर्वेदार्था दष्टा अत्रेत्युच्चयः संग्रहः । अष्टाङ्गं हृदयं नाम । ६ कायेत्यत्रेतरद्वन्द्वः । कायः कायचिकित्सा । बालः कौमारभृत्यम् । ग्रहोगूतविद्या । ऊर्वाङ्गं शालाक्यम्, दंष्ट्रा अगदतन्त्रम् । जरा रमायनम् । वृषोवाजीकरणम् । तस्यायुर्वेदस्य । येषु वाशाद्यष्टाङ्गेषु । ७ ते दोषाः । विकृताः कुपिता देहं ध्वन्ति । अविकृता अकुपिताः । वर्तयन्ति रक्षन्ति ।

ते<sup>१</sup> व्यापिनोऽपि हृन्नाभ्योरधोमध्योर्ध्वसंश्रयाः ॥ ७ ॥  
वयोऽहोरात्रिभुक्तानां तेऽन्तमध्यादिगाः क्रमात् ।

चतुर्विधोऽग्निः कोष्ठश्च ।

<sup>२</sup>तर्भवेद्विषमस्तीक्ष्णो मन्दश्चाग्निः समैः समः ॥ ८ ॥  
<sup>३</sup>कोष्ठः क्रूरोमृदुर्मध्यो मध्यः स्यात्तैः मर्मरपि ।

प्रकृतिः

<sup>४</sup>शुक्रार्तवस्यैजन्मादौ विप्रेणेव विपक्रिमेः ॥ ९ ॥  
तैश्च तिस्रः प्रकृतयो हीनमध्योत्तमाः पृथक् ।  
समधातुः समस्तासु श्रेष्ठा, निम्न्या द्विदोषजाः ॥ १० ॥

वातादीनां गुणाः

<sup>१</sup>तत्र रुक्षो लघु शीतः खरः सूक्ष्मश्चलोऽनिलः ।  
पित्तं<sup>२</sup> मस्नेहतीक्ष्णोष्णं लघु विरलं सरं द्रवम् ॥ ११ ॥

१ ते-दोषाः । नाभेरधोवासुः । हृन्नाभ्योर्मध्ये पित्तम् । हृदयादूर्ध्वं कफः ।  
वयसः शरीरस्यावस्थायाः, ब्रह्मो दिनस्य, रात्रेः, भुक्तस्याहारस्य च अन्तमध्यादयो  
वातादीनां क्रमतः कालः ।

२-तैः-वातपित्तकफैः । वातेन विषमः नित्येन तीक्ष्ण कफेन मन्दश्च ।  
समैः समप्रमाणैरतैः समोऽग्निः । ३ ग्रामादीनामाधारस्थानं कोष्ठम् । अधिकं वातेन  
क्रूरः, पित्तेन मृदुः, कफेनमध्यः । समस्तैर्दोषैर्मध्यः । ४ जन्मादौ गर्भाधानकाले  
शुक्रार्तवस्यैस्तैर्दोषैः क्रमशो हीनावातप्रकृतिः २ मध्या पित्तप्रकृतिः ३ उत्तमा कफ  
प्रकृतिश्च । समस्तासुमर्वासु समधातुः प्रकृतिः श्रेष्ठा । धातुर्दोषः । ५. खरो मृदु  
विपरीतः । सूक्ष्मः सूक्ष्मश्चिद्वातुगारी । न्यायमते वायोरनुष्णाशीतत्वं गुणं शीतोष्ण-  
सम्बन्धेन तदगुणवाहित्वान्मन्यमानेनाप्यायुर्वेदेन उपेक्षेनायंशाम्यतीति दर्शनाय तस्य  
स्वाभाविकः शीत एव गुणो निर्दिष्टः । ६. सस्नेह गोपस्तिनग्न्यम् । तीक्ष्णमरिचवशात्  
व्याप्तिस्वभावम् । विरलं दुर्बलम् । सरंगमनशीलम् । श्लक्ष्णश्चिक्रणः । मृत्स्तनः

## विपाकः

त्रिधा विपाको द्रव्यस्य स्वाद्रम्लरुदुकात्मकः ॥ १७ ॥

## गुणाः

गुरुमन्दहिमस्निग्धश्लेष्मदान्द्रमृदुस्थिराः ।

गुणाः समूक्षमविणदाः विंशतिः सविपर्ययाः ॥ १८ ॥

## रोगारोग्ययोरेकहेतुः

कालार्थकर्मणां योगो होनमिध्यानिमात्रकः ।

मम्बयोगश्च विज्ञेयो रोगारोग्यैकारणम् ॥ १९ ॥

रोगस्तु दांपर्यम्भं, दोषमाम्बमरोगता ।

निजागमन्तुविभागेन नत्र रोगा द्विधा स्मृताः ॥ २० ॥

तेषां कायमनोभेदादधिष्ठानमपि द्विधा ।

रजस्तमश्च मनसो द्वौ च—दांपाबुदाहृतौ ॥ २१ ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैः परीक्षेत च रोगिणम् ।

रोगं निदानप्राप्तपलक्षणां पश्याग्निभिः ॥ २२ ॥

भूमिदेहप्रभेदेन देशमाहुरिह द्विधा ।

जातलं वातभूमिष्ठमनूपं तु कफोन्मत्तम् ॥ २३ ॥

१ विपर्ययाः—नपु तीक्ष्ण-उष्ण-रूक्ष-खर-द्रव-कठिन-मर-स्थूल-पिच्छिला-क्रमाद्-गुर्वादीनां विपर्ययाः । लक्षण-मैदाकी तरह विकना, मान्द्र ( गाढा ) ।

२ कालार्थकर्मणा हीनयोगः, मिध्यायोगः, अतियोगश्च रोगस्यैकं कारणम् । तेषामेव मम्बयोगः—न्यूनातिरिक्ततरहितो योग आरोग्यस्यैकं कारणमित्यर्थः । योग मम्बन्धः । तत्र काल—जीतोष्णवर्षरूपः । अर्थाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः । कर्म—प्रविष्टं-कार्यिकं वाचिकं मानसं च । हीनयोगः स्वरूपहानिः । मिध्यायोगः—स्वरूपाद्विपरीतता । अतियोगः स्वरूपाधिक्यम् । ३ तेषां-रोगाणाम् । ४ आग्निः सम्प्राप्तिः । ५ इह-आयुर्वेदे । ६ अलोदकद्रुपोयस्तु प्रवातः प्रचुरातपः । ज्ञेयः गजाङ्गुली देशः स्वप्नरोगतमोर्जा च । प्रचुरोदरवृद्धो यो निवातो—दुर्लभातपः । अन्तर्गो बहुदोषश्च, समः साधारणो मतः । साधारणमुभयस्तथागुयुक्तम् । जातलदेशो—मरुभूमिः ( रेगिस्तान-बीकानेर आदि ) अनूपदेशो यत्र कृपादो गर्भाणि जलमुपलभ्यते यथा विहारप्रान्तोया देशाः ( पटना, छाररा, गया आदि ) ।

साधारणं सममर्लं त्रिधा भूदेशमादिशेत् ।

१ क्षणादिव्याव्यवस्था च कालो भेषजयोगकृत् ॥ २४ ॥

जोधनं शमनं चेति समानादौषधं द्विधा ।

शरीरमनोदोषयोरौषधम्

शरीरजानां दोषाणां क्रमेण परमौषधम् ॥ २५ ॥

१ वस्तिविरेकोधमनं, तथा तैलं घृतं मधु ॥

धोधैर्वात्मादिविज्ञानं मनोदोषोपधं परम् ॥ २६ ॥

चिकित्सायाश्चत्वारः पादाः

१ निपक्व द्रव्याण्युपपस्याना रोगो पादचतुष्टयम् ।

चिकित्सितस्य निश्चितं, प्रत्येकं तच्चतुर्गुणम् ॥ २७ ॥

भिषगादीनां लक्षणानि

१ दशस्तीर्थात्ताम्राद्यौ दृढकर्मा शुचिर्भिषक् ।

१ बहुकल्पं बहुगुणं संपन्नं योग्यमौषधम् ॥ २८ ॥

अनुरक्तो शुचिर्दक्षो बुद्धिमान् परिचारकः ।

१ आद्यो रोगी निपक्वश्चो आपकः मत्तवानपि ॥ २९ ॥

१ क्षणोऽक्षिनिमेषः । आदिनामूर्तव्यामदिनरात्रिपक्षमाभादीनां ग्रहणम् ।  
व्याध्यवस्था—नामनिरामादयः । द्विविधोऽयं काल औषधं स्वार्थकारिणं करोति ।  
क्षणादिर्यथा—पूर्वाह्णे वसनं देयमध्याह्ने तु विरेचनम् । व्याध्यवस्था यथाज्वरे  
पङ्कते कषायं दद्यात् । २ वस्तिनिष्ठवस्तिः । तैलादि शमनम् । ३ उपस्थाता  
परिचारकः ( कम्पाउन्डर ) वैद्यरोगिणोरपसमीपेतिष्ठति चिकित्साकार्यं  
सम्पादनार्थमित्युपस्थाता । ४ दश चिकित्साकर्मणि शीघ्रकारी, तीर्थात्  
ताम्राद्यौ गुरोरधोतामित्रवैद्यविद्यः, शुचिर्वाक्यमनोदोषैरदूषितः । ५ बह्वः  
कल्पाः—स्वरगन्तुर्गोत्रेहादिरूपेण निर्माणत्रिषो यस्मिंस्तत् । सम्पन्नं  
रुग्नादिनायुक्तम् । योग्यम्—रोगनाशनमर्थम् । ६ आद्यो घनवान् । आपकः  
मधुरीशरोणादिमर्षवृत्तवत् । मत्तवान्—धीयंश्च मर्षकनेशवत् ।

## रोगाणां चत्वारो भेदाः

(साध्योऽसाध्य इति व्याधिद्विधा, १ ती तु पुनर्द्विधा ।

मुसाध्यः कृच्छ्रसाध्यश्च, याप्यो यश्चानुपक्रमः ॥ ३० ॥ )

सर्वविषयमेदेहे यूतः पुंसो जितात्मनः ।

अगमगोऽल्पहेत्वग्रूपरूपोऽनुपद्रवः ॥ ३१ ॥

अतुल्यदूष्यदेशतुप्रकृतिः पादसम्पदि ।

ग्रहेष्वनुगुणेष्वेकदोषमार्गो नवः सुखः ॥ ३२ ॥

शस्त्रादिमाधनः कृच्छ्रः सङ्करे च ततो गदः ।

शेषत्वादायुषो याप्यः पथ्याभ्यासाद्विपर्यये ॥ ३३ ॥

अनुपक्रम एक स्यात्स्थितोऽत्यन्तविपर्यये ।

श्रीसुनयमोहारतिशृत् दृष्टरिष्टोऽनाशतः ॥ ३४ ॥

## अचिकित्स्यरोगिणः

त्यजेदार्तं निषम्रूपं द्विष्टं, तेषां द्विषं, द्विषम् ।

हीनोपकरणं व्यग्रमविधेयं गतायुषम् ॥ ३४ ॥

१ ती साध्योऽसाध्यश्च । असाध्यभेदः—याप्योयावच्चिकित्साहारविहार  
यन्त्रणा नावद्रोगशान्तिस्तत्स्यामेतु रोगप्रादुर्भावः । अनुपक्रमोऽ-  
चिकित्स्यः । २ दूष्यादयो रोगसमानाः न स्युः—यथा—कफेनखतमुष्णा  
दूषितम् । अनूपदंशे पित्तजंरोगः । शरद्वती कफजंरोगः । पित्त प्रवृत्तेः कफ  
जंरोगः । पादमम्पत्—चिकित्सायाः पादचतुष्टयं गुणयुक्तम् । एक दोषजः ।  
बाह्यादिएकमार्गजः । सुखः सुखमाध्यः । कृच्छ्रः कष्टसाध्यः । ततः साध्यलक्षणात्  
संकरे मिश्रणे । अपूर्णमाध्यलक्षणे रोग इत्यर्थः । ३ विपर्यये—साध्यलक्षणा  
वैपरीत्ये । पथ्याभ्यासाद्धेतोः शेषत्वात्—नश्यन्नपिरोमो न सम्पूर्णतया नश्य-  
तीतिशेषः । आ-आयुषः नियतजीवनकालपर्यन्तमित्यर्थः । अथवा—आयुषः  
शेषत्वादितियोग्यम् । ४ नास्त्युपक्रमः साधनं यस्येत्यनुपक्रमः—अचिकित्स्यः ।  
अत्यन्तविपर्यये—मुखसाध्यादिलक्षणात् सर्वथा विपरीते । रिष्टंभरणचिह्नम् ।  
अक्षारणीन्द्रिमणिः ।

५ निषजो भूपाश्चयं द्विषन्तितम् । यश्चेतेषां वैश्वनृपाणां द्वेष्टा । द्विषं वैश्वान्रम् ।  
उपकरणं चिकित्सासामग्री । अविधेयो वैदानधीनः । चण्डस्त्वत्यन्तक्रोधी ।

- विद्रघोगुल्मजठरपाण्डुशोफविसर्गिषु ।  
 कुष्ठश्विन्नानिलव्याचिवात्ताश्लेषु चिकित्सितम् ॥ ४३ ॥  
 द्वाविंशतिरिमेऽध्यायाः, कल्पसिद्धिरनः परम् ।  
 कल्पो यमं विरेकस्य तस्मिद्धि र्वैस्तिक्लाना ॥ ४४ ॥  
 मिद्धिर्वैस्तिक्लाना पशो द्रव्यक्लाः, यत उत्तरम् ।  
 बालोपचारे तद्व्याधौ तद्ग्रहे, द्वौ च भूतगे ॥ ४५ ॥  
 उन्मादेऽपस्मृतिभ्रंशे, द्वौ द्वौ वत्सं सु मन्थिषु ।  
 हृत्तमोलिङ्गनानेषु, त्रयो, द्वौ द्वौ च सर्वे ॥ ४६ ॥  
 कर्णनासासुखगिरोन्नये भङ्गे भगन्दरे ।  
 ग्रन्थ्यादौ धुदरोगेषु गुह्यरोगे पृथग्द्वयम् ॥ ४७ ॥  
 विणे भुजङ्गे कीटेषु मूषकेषु रमायने ।  
 चत्वारिंशोऽनपस्यानामध्यायो बीजपोषणः ॥ ४८ ॥  
 इत्यध्यायगतं विंश पञ्चभिः स्थानैरुदीरितम् ।

## द्वितीयोऽध्यायः

### स्वस्थवृत्तम्

- अथातो दिनचर्याध्यायं व्याख्यास्यामः ।  
 इतिहस्मादुरात्रेयादमीमर्त्यम् ।  
 ग्राह्ये मूर्तं उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षणमायुषः ।  
 शरीरचिन्ता निर्वर्त्य कृतशीचविधित्ततः ॥ १ ॥

१ तस्मिद्धिर्वैस्तिक्लाना विरेचनव्यापत्तिमिद्धिः । २—तद्व्याधौ-बालरोगप्रतिषेधे ।  
 तद्ग्रहे बालग्रहे । ३ सर्वाशिरोगे । ४ बीजपोषणो वाजीकरणध्यायः ।  
 सर्वेऽध्यायाः १२० । स्थानानि ६ । ५ चरणं चर्या दिनस्य चर्या दिनचर्याचरे-  
 गतिभक्षणार्थत्वादुभयलोकहिताहारविहारौ । ७, रात्रेऽश्विमेयामस्य मूर्तं यस्तृती-  
 यम् । न बाह्य इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने, आह्निक, स्थूलतत्त्वार्जुन-  
 समयेरात्रौ जाग्रयात् । कीदृशं शरीरं, किञ्चास्य हितं हृतं, किञ्च कर्तव्यमितिशरी-  
 रचिन्ता निष्पाद्य ।



वातपित्तामयी शालो वृद्धोऽजीर्णी च १ तं त्यजेत् ।  
 अर्धशक्त्या निषेव्यस्तु वनिभिः स्निग्धभोजिभिः ॥ ११ ॥  
 शीतकाले वसन्ते च, . मन्दमेव ततोऽन्यदा ।  
 तं कृत्वानुमुखं देहं मर्दयेच्च समन्ततः ॥ १२ ॥  
 तृष्णाशयः प्रतमको रक्तपित्तं श्रमः क्लमः ।  
 अतिव्यायामतः कासो ज्वर छर्दिश्च जायते ॥ १३ ॥  
 व्यायामजागराध्वस्त्रीहास्यभाष्यादिसा'हसम् ।  
 गजं तिह इवाकर्षम् भ्रमन्नति विनश्यति ॥ १४ ॥  
 'उद्धर्तने कफहरं येशनः प्रविलापनम् ।  
 स्थिरोक्तरणमङ्गानां स्वक्प्रसादकरं परम् ॥ १५ ॥

### स्नानम्

दीपनं वृष्यमायुष्यं स्नानमूर्जाश्च'प्रदम् ।  
 कण्ठमलश्रमस्वेदतन्त्रातृद्वाहपाप्मजित् ॥ १६ ॥  
 उष्णाभ्युनामः कायस्य परिषेको बलावहः ।  
 'तेनैवतूत्तमाङ्गस्य बलहृत्केनचक्षुषाम् ॥ १७ ॥  
 स्नानमदितनेषांश्चकर्णरोगातिभारिषु ।  
 प्राप्मानपीनमाजीर्णभृक्त्वत्सु च गहितम् ॥ १८ ॥

### स्वास्थ्यस्यान्येनियमाः

जीर्णे हितं मित्रं चाद्यान्नवे'गान्नीरयेद्वलात् ।  
 न वेगितोऽन्यकार्यं, स्यान्नाजित्वा माध्यमामयम् ॥ १९ ॥  
 मुखायां सर्वभूतानां मताः सर्वाः प्रवृत्तयः ।  
 मुखं च न विना धर्मात्तस्माद्धर्मपरो भवेत् ॥ २० ॥

१ तं ध्यायामम् । व्यायाम ( कसरत ) । २ अन्यदा-ततः शीतवसन्त  
 कालाभ्यामन्यस्मिन् काले । वलार्थलक्षणं-कक्षान्नाटनामासुहृत्पादादिमन्त्रिषु ।  
 प्रस्वेदान्मुष्मशोषाच्च वलार्थं तद्धि निर्दिशेत् । ३ साहसमयथाबलमारम्भः ।  
 ४ उद्धर्तनम् ( अपटन, धुक्वा ) कपायादिचूर्णैः शरीरोद्धर्षणं वा । ५ ऊर्जा-चित्तो-  
 त्साहः । ६ तेनैवोष्णाभ्युनैव । ७ वेगान्मनमूत्रादोनाम् । ईरयेत्प्रेरयेत् । माध्यं  
 रोगमजित्वा'न्यकार्यं नारभेत् । ८ प्रवृत्तयः कार्याणि ।

भक्त्या १ कल्याणमित्राणि भवेत्तेतरदूरगः ।

१ हिंसास्तेयान्मयाकामं पैशुन्यं पश्यान्नुने ॥ २१ ॥

ममिभ्रातापथ्यानादममिध्याहृदिपर्ययम् । १

पापं कर्मेति दशभा कायवाङ्मानसैस्त्वजेत् ॥ २२ ॥

अवृत्तिभ्यामिशोकाताननुवर्तेतशक्तितः ।

आत्मवत्समर्तं पश्येदपि कीटपिर्षान्निक्म् ॥ २३ ॥

अचयेद्देवमोविप्रपूज्यं च नृपातिधीम् ।

विमुखाप्रापिनः कुर्यान्नावमन्येत नाभिपेत् ॥ २४ ॥

उपकारप्रधानः स्वादपकारपरेऽप्यग्रे ।

मंपद्विपरस्वेकमना, हेतावोप्येतफले न तु ॥ २५ ॥

३ काले हितं मितं ब्रूयाद्विगन्धादि वेगनम् ।

पूर्वाभिभाषी मुमुक्षुः मुनीलः १ करणामृदुः ॥ २६ ॥

नैकः सूक्ष्मः, न सर्वत्र विप्रव्यो, न च शङ्कितः ।

न कंचिदात्मनः शत्रुं, नात्मानं कस्यचिदिषुम् ॥ २७ ॥

प्रकाशयेन्नापमानं न च निःस्नेहतां प्रमोः १

जनस्याशयमानस्य यो यथा परितुष्यति ॥ २८ ॥

१ येन सह मैत्रोत्करणेन सर्वथा कल्याणं सम्भवेत् स कल्याणमित्रम् ।

इतरोऽनल्पाणमित्रम् । २ अन्यथाकामः—मैशुनं नियमप्रतिकूलकरणम् । पश्यं

कठोरवचनम् । ममिभ्रातापः—असंबद्धभाषणम् । व्यापादोऽन्यस्यानिष्टचिन्तनम् ।

अभिध्या—पराधितृतवस्तुनोऽन्यायेनग्रहणेच्छा । हिनादीनिश्रीणि कायिकानि,

पैशुन्यादीनि चत्वारि वाचिकानि, व्यापादीनिचत्रीणि मानसानि पापानि । हृदि-

पर्ययः—शास्त्रविपरीताचरणम् । अनुवर्तेत आनिनिवारणे साहाय्यं कुर्यात् ।

त्रिधा—आचकट्यं न कुर्यात्, विप्रसूचकरणमनादरं परप्रापणं चेति । हेतो—प्रमोष्ट-

फलप्राप्तिमापनमीर्ष्यायानुष्ठितव्यमात्मज-फलाप्राप्तावन्मैलंत्वफलेनैरी यो न कर्तव्ये-

त्यर्थः । ३ मितं वक्तव्यमात्रकथनम् । अविगन्धादि मत्पम् । पेजसंमधुरम् । मिलिते

मित्रे पूर्वकुशलादिप्रश्नकर्ता पूर्वाभिभाषी । ४ करणामृदुः—शक्तिमानपिदबालुत्वात्सराप

कारसहिष्णुः । ५ अविश्वसनोयेषु विश्वासमग्नशून्येषु च शङ्का न कुर्यात् ।

प्रमोः स्वामिनः, निःस्नेहता स्नेहहीननम् ।

तं तथैवानुवर्तेत पराराधनपरिहृतः ।  
 न पांड्येन्द्रिण्याणि न चैतान्यतिलालयेत् ॥ २९ ॥  
 त्रिवर्गशून्यं नारम्भं भजेतं चाविरोधयन् ।  
 अनुयायात्प्रतिपदं सर्वधर्मेषु मध्यमाम् ॥ ३० ॥  
 नीचरोमनसश्मश्रुनिमलाग्निमलायनः ।  
 स्नानशीलः शुश्रूभिः सुषेजोऽनुस्त्रणोज्ज्वलः ॥ ३१ ॥  
 धारयेत्मततं रत्नसिद्धमन्त्रमहोपवीः ।  
 सातपत्रपदधालो विनरेद्युगमाश्रयः ॥ ३२ ॥  
 निशि चात्ययिके कार्ये दण्डो मौला सहायकाम् ।  
 चैत्यगुजश्चजाशस्तच्छ्रायाभस्मत्पाशुचीम् ॥ ३३ ॥  
 नाश्रमेच्छर्करालोष्टयनिस्नानभुवोऽपि च ।  
 नदी तरेषु बाहुभ्या नाम्नि स्नानमभियजेत् ॥ ३४ ॥  
 संदिग्धनावृत्तं च नारोहेदुष्टमानवत् ।  
 नागवृत्तमुप कुर्यात्पुतिहास्यविजृम्भणम् ॥ ३५ ॥

१ अनुवर्तेत-आराधयेत् । २ त्रिवर्गः—धर्मोऽर्थः कामश्च । आरम्भं कामम् ।  
 तं त्रिवर्गम् । अविरोधयन्—यत्र कर्मणि एको नश्यन्वेकः कलति तं त्यजेद्विषयः ।  
 प्रतिपदं मार्गम् । धर्मेषु-आचारेषुआत्मवृत्त्येषु वा । मध्यमारागद्वेषरहिताम् ।  
 ३ नीचान्यदीर्घाणि । रोमजब्देन केशाग्रपि गृह्यन्ते । श्मश्रु-मुखस्थं दीर्घलोम  
 ( दाढी मोछ ) अग्नि-पाद । मत्तायनं नासिकादि । सुश्रूभिः शोभनगन्धवाम् ।  
 सुषेपः—जीर्णमनिनवस्त्रादिवर्जितः । अनुस्त्रण-अनुद्धतः ( उद्धन-चटर्फीला  
 भटकीला, भाषा ) उज्ज्वल शृङ्गारः । ४ युगहेस्तचष्टुयमग्रेपश्यञ्चरेत् ।  
 ५ अत्ययो चिनाशमन्देहस्तग्रभवमान्यविकंठस्मिन्नात्ययिके । मौलिः शिरोवेष्टनम् ।  
 चैत्यो विशिष्टदेवाधिकृतो ग्राम प्रचानवृक्षः ( डीह ) । ध्वजः पताका । अशस्तः  
 कुरकर्मरतः । अशुचिः-विशमूत्रोच्छिष्टादिः । शर्करा ( कंकड़ी, वातू ) लोष्टम्  
 ( डेला ) घलिः पूजोपहारः । ६ अग्निस्कन्धः अग्निराशिः । दुष्टमानवत् दुष्टाश्वादिकं  
 नारोहेत् । पुतिः-छिन्ना ।

अत्रु<sup>१</sup>मत्रगणाकीर्णगणिकपणिकाशनम् ।

गात्रवचनसंवाद्यं हस्तकेशवधूननम् ॥ ४३ ॥

तोयाग्निपूज्यमध्येन यानं, धूमं शवाश्रयम् ।

मद्यातिसांक्ति, विश्रम्भस्वातन्त्र्ये स्त्रोपु त्यजेत् ॥ ४४ ॥

आचार्यः सर्वचेष्टासु लोक<sup>१</sup> एव हि धीमतः ।

अनुकुर्यात्तमेवातो लोकिकेऽर्थे परोक्षकः ॥ ४५ ॥

आर्द्रसन्तानता, त्यागः कायवाक्चेतसां दमः ।

स्वार्थबुद्धिः परार्थेषु, पर्याप्तमिति सद्ग्रन्थतम् ॥ ४६ ॥

नक्तंदिनानि मे यान्ति कथम्भूतस्य सम्प्रति ।

दुःखभाङ्गं न भवत्येवं नित्यं सन्निहितस्मृतिः ॥ ४७ ॥

इत्याचारः समासेन, यं प्राप्नोति समाचरन् ।

प्रापुरारोग्यमैश्वर्यं यशोलोकाश्च शाश्वताम् ॥ ४८ ॥

१ तत्र यतः ( ऋत्विजादीम्वर्जयित्वा ) गणाः कथञ्चकारणादमः—तैराकीर्णं व्याप्तम् । गणा बहुव्रीहिलिङ्वा दातारो वा । आकीर्णो योग्यायोग्यमविचिन्त्यपन्न दाता वा । पणिक आपणिको धणित्पथः । एतेषामशनम् । अवधूननं कम्पनम् । २ मध्यशब्दस्तोयादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते तेन तोययोरग्नयो, पूज्ययोः । तोयान्नयोः, तोयपूज्ययोरग्निपूज्ययोश्च । यानं गमनम् । विश्रम्भः सर्वतोभावेन विश्रामः । ३ लोको विनिष्टलोकः । आचार्यः शिक्षकः । तलोकम्, लोकिकेऽर्थे-परोक्षकः—लोके कः किमर्थमाचरतीतिपरीक्षा कुर्वन् ।

४ आर्द्रः कृपालुता, सन्तानः चित्तवृत्तिपरम्परा यस्य तस्यभावः सर्वजन्तुषु परमकृपालुत्वम्, त्यागो दानम् । कायादीनां दमश्चाश्रम्यनिरोधः । पर्याप्तं सम्पूर्णोदमः । सतांश्रतम्, नक्तमिति सदा सावधानेन भवितव्यमित्यर्थः । समाचारं समाचरन् । ऐश्वर्यं सर्वकार्येषु सामर्थ्यम् । शाश्वताश्चित्याम् लोकान्मोक्षकरां, स्थानानि मृतेषां ।

रसाप्रतिग्धाम् पलं पुष्टं गोहमञ्जसुरां सुराम् ।

गोधूमपिष्टमापेक्षुक्षीरोत्पविकृतीः शुभाः ॥१२॥

नवगन्धं चसां-तैलं, शीचकार्ये सुखोदकम् ।

प्रावाराजिनकोदयप्रवेणीकोचवास्तुतम् ॥१३॥

उष्णस्वभावैर्लघुभिः प्रावृतः शयनं भजेत् ।

युक्त्यार्ककिरणाम् स्वेदं पादत्राणं च सर्वदा ॥१४॥

पीवररोस्तनश्रोण्यः समदाः प्रमदाः प्रियाः ।

हरन्ति शीतमुष्णाङ्गघो धूपकुङ्कुमयौवनैः ॥१५॥

अङ्गारतापसंतप्तगर्भभूवेशमचारिणः ।

शीतपारुष्यचर्चितो न दोषो जातु जायते ॥१६॥

### शिशिरचर्या—

अथमेव विधिः कार्यः शिशिरेऽपि, विशेषतः ।

तदा हि शीतमधिकं रोक्ष्यं चादानकालजम् ॥ १७ ॥

### वसन्तचर्या—

कफत्रितो हि शिशिरे वसतेऽकांशुतापितः ।

हृत्वाऽङ्गि कुस्ते रोमानतस्तं स्वरया जयेत् ॥ १८ ॥

तीक्ष्णवर्गमनस्यार्तैर्लघुक्षौद्रं भोजनैः ।

व्यायामोद्धर्तनाभ्यातैर्जित्वा श्लेष्माणमुल्बणम् ॥ १९ ॥

स्नातोऽनुलितः कर्पूरचंदनागुरकुङ्कुमैः ।

पुराणयवगोधूमसीद्वज्रांशुलैश्च ॥ २० ॥

सहकाररसौन्मिश्रानास्वाद्य प्रिययापिताम् ।

प्रियास्यसंगसुरभीम् प्रियानेत्रोत्पलाकिताम् ॥ २१ ॥

१. पीवरं स्थूलमूहस्तनश्रोणिषांताः । प्रिया मनोजुक्ताः । गर्भवेशम  
गृहान्तर्वतिगृहम् ( भीतरो कमरा ) भूवेशम भूम्यन्तर्वतिगृहम् ( तहखाना ) ।  
पारुष्यं रोक्ष्यं काल्पितं च । दोषो दुःखम् । ( जातु कदाचिदपि ) ।

२ अथमेव-हेमन्तोक्तः । ३ आघातः-विमर्दनम् । ४ शूल्यं-शूलपाचितं  
मासम् । सहवारः-भात्रः ।

१ सोमनस्पृहृतो हृद्यान्वयस्यैः सहितः पिवेत् । .

२ निर्गदानासवारिष्टमीधुमार्द्धीकमाधवाय ॥ २२ ॥

शृंगवेरावु ३ सारावु मध्ववु जलाशवु वा ।

४ दक्षिणानिलशीतेषु परितो जलत्राहिषु ॥ २३ ॥

अदृष्टनष्टसूर्येषु मणिकुट्टिमकांतिषु ।

परपुष्टविधुष्टेषु कामकर्मातिभूमिषु ॥ २४ ॥

विचित्रपुष्पवृक्षेषु काननेषु मुगंधिषु ।

गोष्ठीरूपाभिश्चित्राभिर्मध्याह्नं गमयेत्सुखी ॥ २५ ॥

वसन्तेत्याज्यानि

गुहरीतदिवास्वप्नभिन्नाभ्यसमधुरास्त्यजेत् ।

प्रीदमचर्या—

१ तीक्ष्णांशुरतितीक्ष्णांशुर्गोष्मे संक्षिपतीव यत् ॥ २६ ॥

प्रत्यहं क्षीयते श्लेष्मा तेन वायुश्च वर्धते ।

अतोऽस्मिन् पटुकद्वन्द्वव्यापारमार्ककरास्त्यजेत् ॥ २७ ॥

भजेन्मधुरमेकाग्रं लघुं स्निग्धं हिमं द्रवम् ।

सुरीततोयसिक्तागो लिह्यात्सक्तून् सशर्करां ॥ २८ ॥

मद्यं न पेयं, पेयं वा स्वल्पं, मुबट्वारि वा ।

२ अग्न्या शोफशैथिल्यदाहमोहान् करोति तत् ॥ २९ ॥

१ सोमनस्पृहृतः श्वेतप्रसादकृतः । २ निर्गदाय-निर्दोषाय ! सहकारात्  
हृद्यार्थं समस्तमासवादीना विशेषणम् । ३ साराम्बुच-दनासनसारकायम् ।  
मारः—वृक्षमध्यस्थितं काष्ठम् “हीर” इति लोके । मध्वम्बु-मधुनामिश्रितं जलम् ।  
जलदाम्बु जलदेन कृतं कायम् । जलदः “नागरमोया” इति भाषा । ४ दक्षिणे-  
त्यादिसर्वकाननेषु इत्यत्यस्यविशेषणम् । जलं वहन्ति सदा यानि तेषु । अदृष्ट-  
ईषदृष्टः क्वचिदतिपनत्वात् नष्टः सर्वथाऽदृश्यः सूर्येधिषु । मणोनां कुट्टिमानितिः  
कान्तियेषाम् । कुट्टिमं “फर्ज” इति भाषा । परपुष्टविधुष्टेषु—कोकिलैः  
वृत्तशब्देषु । कामस्य कर्मांताः प्रशस्यव्यापारास्तन्निमित्तं भूमयो येषाम् ।  
५ तीक्ष्णांशुः सूर्यः । संक्षिपतीव संहरीव, जगतः सारं-बलम्, इति शेषः ।  
६ पटुः—लवणः । ७ अन्यथा तन्मद्यमन्येन प्रकारेण पीतम् ।

कुन्देदुधवलं शातिमशनीयाब्जगर्तः पलैः ।  
 विवेदमं नैनातिघनं, रसालां, रागखाड्यौ ॥ ३० ॥  
 पानकं पंचसारं वा नवमृदमाजनस्यितम् ।  
 मोचचीचदलेर्गुलं साम्लं मृन्मयशुक्तिभिः ॥ ३१ ॥  
 पाटलावामितं चाभः सकर्पूरं सुषीतलम् ।  
 शशांककिरिणाम् भक्ष्याम् रजन्मां भक्ष्यम् विवेत् ॥ ३२ ॥  
 ससितं माहिषं दीरं चंद्रनक्षत्रशीतलम् ।  
 भ्रंशकयमहाद्यालतालरुद्धोष्णरश्मिषु ॥ ३३ ॥  
 वनेषु माधवोशिवष्टद्राक्षास्तत्रकतालिषु ।  
 सुगन्धिहिमवानीयसिचमानपटालिके ॥ ३४ ॥  
 कायमाने चित्ते चूतप्रवालफनलुंविभिः ।  
 कदलीदलकल्लारमृणालकमलोत्तलैः ॥ ३५ ॥  
 कल्पिते कोमलैस्तल्पे हसत्कुमुदपल्लवे ।  
 मर्ष्यदिनेऽर्कतापार्तः स्वप्न्यादारागृहेऽथवा ॥ ३६ ॥  
 पुस्तस्त्रीस्तनहस्तास्यप्रसूतोशोखवारिणि ।

१ रसमांतरसम् 'शोर्वा', रसाला 'शिलरन' इतिभाषा । पानकं—“पना, शर्बत” इति हिन्दी । रसाला निमित्तिः—यथा—मर्षादिकं सुचिरपसुंयितस्य दध्नः, क्षण्डस्य षोडश पलानि शशिनभस्य । सविष्णुलं मधुपलं मरिचं द्विकर्षं, शूष्ण्याः पलार्धमपि चार्धनलं चतुर्णाम् ॥ सूक्ष्मे पटे चलनया मृदुपाणिषृष्टा, कर्पूरघूलिसुरभीकृतपात्र संस्था । एषा मृकोदरकृता सरसा रसाला, या स्वादिता भगवता मधुसूदनेन ॥ यत्र चतुर्णमिलात्वक्पत्रनागकेशराणां मिलितानां माशार्धपलमिताग्राह्या । रागखण्डयो—यथा—सितामध्वादिमधुरा रागास्तत्राच्छ्रकान्तयः । ते साम्लाः खण्डया लेह्याः पेयाश्चांशकुमालिताः । पञ्चमारं यथा—द्राक्षामधुकर्षजुंर काश्मर्यैः सपरुषकैः । तुल्यांशैः कल्पितं पूर्वं शीतं कर्पूरवासितम् । पानकं पञ्च मारारूपं दाहवृष्णानिर्वर्तकम् ॥ मोचं “केला” चोचं “नारियल” इतिभाषा । तयोर्दलैः फलखण्डैः । २ भ्रंशमाकाशंकपन्ति—अत्युन्नता इत्यर्थः । स्तवकः “गुच्छा” इतिभाषा । कायमाने—वैष्णवादिरचिते गृहे, “छप्पर” इतिभाषा ।

चूतानामास्त्राणाप्रवालैः फनलुम्बिभिश्च चित्तेव्यासे लुम्बिः—“गुच्छा” इतिभाषा कल्लारं श्वेतकमलं, मृणालं कमलनालम् । कमलं रक्तम्, उत्पलं नीलकमलम्, सततं यत्र जलधाराः ( कुलारा ) पतन्ति तद्धाराग्रहम् । ५ पुस्तस्त्रीः क्षीप्रमस्त्री-प्रतिमा पुतरी इति भाषा ।

निशाकरकराकीर्णं सोधपृष्ठे<sup>१</sup> निशासु च ॥ ३७ ॥

भासना, स्वस्थचित्तस्य चंदनाद्रस्य मालिनः ।

निवृत्तकामर्तत्रस्य सुसूक्ष्मतनुवाससः ॥ ३८ ॥

जलाद्रास्तालवृत्तानि विस्तृताः पद्मिनीपुटाः :

<sup>२</sup>उत्क्षेपाश्च मृदुत्क्षेपा जलवर्षिहिमानिलाः ॥ ३९ ॥

कर्पूरमल्लिका भासा हाराः सहर्षिचंदनाः ।

मनोहरकलात्तापाः शिशवः मारिकाः शुकाः ॥ ४० ॥

मृणालवलयः कांताः प्रीत्युल्लसकमलोज्ज्वलाः ।

जंगमा इव पद्मिन्यो हर्षति दयिताः क्लमम् ॥ ४१ ॥

### वर्षाचर्या—

आदानग्लानवपुषामग्निः<sup>१</sup> सन्नोऽपि सीदति ।

वर्षासु दोषैः, दुष्यति तैर्बुलंबाबुद्धेऽवरे<sup>२</sup> ॥ ४२ ॥

सतुषारेण मस्ता सहसा शीतलेन च ।

भूवाप्तेणाम्लपाकेन मलिनेन च वारिणा ॥ ४३ ॥

बह्निर्नैव च मंदेन तेध्वित्यन्योन्यदूषिषु<sup>३</sup> ।

भजेत्माघारणं सर्वमूष्मण्युस्तेजनं च यत् ॥ ४४ ॥

आस्थापनं शुद्धतनुर्जीर्णं धान्यं रसाम् कृताम् ।

जांगलं पिशितं मृषाम् मध्वरिष्टं चिरंतनम् ॥ ४५ ॥

मस्तु सौवर्चलाढ्यं वा<sup>४</sup> पंचकोलावर्जितम् ।

१ सुधाभिः कृतं सौधतत्पृष्ठं "धृत" । निवृत्तकामर्तत्रस्य-कृतकामपरिच्छ-  
दस्य । २ उत्क्षेपाः—“मोरपंखी” भाषा । मृदुत्क्षेपोपेयाम् ते, सारिका “मैना”  
इति भाषा । ३ सन्नो मन्दः । ४ ते दोषाः । अम्बुलम्बाः सजला अम्बुदा यस्मिन्  
तथोक्ते । ५ तेषु-वातादिषु । अन्योन्यं परस्परं दूषयितुं शीलं येषां वातादीनां तेषु ।  
सजलकणेन शीतलेन च वातेन वायुः, भूवाप्पादिना पित्तं, मलिनवारिणाच  
मन्दतांगतेन बह्निना च श्लेष्मा दुष्यति । ६ आस्थापनं-निवृत्तकामर्तत्रस्य ।  
७ पिप्पली-पिप्पलीमूल-चव्य-चित्रक-नागराणि द्रव्याणि पञ्चकोले वर्तन्ते ।



• दिव्यं कीपं शृतं चांभो मोजनं त्वत्तिदुद्दिने ॥ ४६ ॥  
 व्यक्ताम्सजवणस्नेहं मंशुष्कं शीद्रवह्लषु ।  
 अपादचारी सुरभिः मततं घृपितांबरः ॥ ४७ ॥  
 हर्म्यपृष्ठे वसेद्वाप्यशोतशीकरवजिते ।  
 १ नदीजलोदमंयाह-स्वप्नायामातपास्त्यजेत् ॥ ४८ ॥

शरदृतु र्या

वर्षाशोतोचितागानां सहर्षवाकैरश्मिभिः ।  
 तप्तानां संचितं कृष्टो पित्तं शरदि कुप्यति ॥ ४९ ॥  
 तज्जयाय घृतं तिक्तं विरेको रक्तमोक्षणम् ।  
 तिक्तं स्वादु कषायं च क्षुधितोऽन्नं भजेह्लषु ॥ ५० ॥  
 क्षालिमुद्गनिताभात्रीपटोलमधुजांगलम् ।

हंसोदकम्

तप्तं तप्तांशुकिरणैः शीतं शीतांशुरश्मिभिः ॥ ५१ ॥  
 समतादप्यहोरात्रमगस्त्यशयनिषिषम् ।  
 क्षुचि हंसोदकं नाम निर्मलं मलजिञ्जलम् ॥ ५२ ॥  
 नाभिप्यंदि न वा ह्रस्वं पानादिष्वमृतोपमम् ।  
 चंदनोक्षीरकर्पूरमृक्ताम्रग्वसनोज्ज्वलः ॥ ५३ ॥  
 सौधेषु मौघधवला चंद्रिकां रजनीमुखे ।  
 १ तुषारशारसीहित्यदधितैलवसातपाम् ॥ ५४ ॥  
 सोऽक्षमद्यदिवास्वप्नपुरोवातान् पारित्यजेत् ।

संक्षेपादृतुचर्या—

शीते वर्षामु चाद्यांस्त्रीम्<sup>१</sup>, वसंतंऽश्यान् रसान्भजेत् ।  
 स्वादुं निदाधे, शरदि स्वादुतिक्तकषायकाम् ।

ऋतुविशेषेऽन्नपानादि—

शरद्वसंतयो ह्रस्वां, शीतं धर्मधर्मातयोः<sup>२</sup> ॥ ५६ ॥

१ उदमन्थः—जलमिश्रितवक्तुः । २ सौहित्यंवृत्तिभोजनम् । ३ आद्यांस्त्रीम्-  
 मधुराम्ललवणान् । अंत्याम्-तिक्तकटुकषायकाम् । ४ धर्मः-श्रीष्मः । अनान्तः शरत् ।

अन्नपानं समासेन विपरीतमतोऽन्यदा ।

उपदिष्टस्याहारस्यापवादः—

नित्यं मर्वरसाभ्यासः, स्वस्वाधिक्यमृतावृत्तौ ॥ ५७ ॥

ऋतुसन्धिस्तर्ज्या च—

ऋत्वोरंत्यादिसप्ताहावृत्तुसंधिरिति स्मृतः ।

तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः, सर्वनीयोऽपरः क्रमात् ॥ ५८ ॥

सहसात्यागशीलने रोगाः—

असात्म्यजा हि रोगाः स्युः सहसा त्यागशीलनात् ।”

## चतुर्थोऽध्यायः ।

स्वस्थयुक्तम् ।

अपातो रोगानुत्पादनीयाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

वातादि वेगधारणनिषेधः—

“वेगान्न धारयेद्वातविण्मूत्रक्षवतृदुधाम् ।

निद्राकासधमन्धासज्जुभाश्चुर्द्धिरेतसाम् ॥ १ ॥

वातरोधजायिकारास्तश्चिकित्सा च—

अथोवातस्य रोधेन गुल्मोदावर्तश्चक्षुलमाः ।

वातमूत्रशकृत्सर्गहृष्टपश्विबधहृद्गदाः ॥ २ ॥

स्नेहस्वेदविधिस्तत्र वर्तयो भोजनानि च ।

पानानि वस्तयश्चैव शस्तं वातानुलोमनम् ॥ ३ ॥

१ अतः शरदमन्ताभ्यां विपरीतं स्निग्धमन्यदा हेमन्तशिशिरप्रीष्मवर्षामु ।  
एवं हेमन्त शिशिरवगन्तवर्षामु उष्णमन्नपानम् । २ ऋतौ ऋतौ ये ये रसाउक्ता  
स्तेषां सेवनं तस्मिन्तस्मिन् ऋतौ बहुकार्यम् । यथा शीते वर्षामु च मधुराम्ल  
लवणान् । ३ तत्र ऋत्वाः सप्ताहद्वयोः पूर्वः—पूर्वतुर्विहितः । अपरः—भागमिष्य  
दुतुसम्बन्धो । ४ वर्तयः—मनहरैर्ब्रवीति स्या मुदे प्रक्षेप्याः फलवर्तयः ।

## शकृन्निरोधजा रोगाः ।

शयनतः १ पिडिकोद्वेष्टप्रतिश्यामशिरोरुजः ।

ऊर्ध्ववायुः परोक्षतौ हृदयस्योपरोधनम् ॥ ४ ॥

मुषेन विट्प्रवृत्तिश्च पूर्वोक्ताभ्यामप्याः २ स्मृताः ।

## मूत्ररोधजरोगाः—

अंगभंगाश्मरीबस्तिमेढबंक्षणवेदनाः ॥ ५ ॥

मूत्रस्य रोधात्पूर्वं च ३ प्रायो रोगास्तदीपधम् ।

## पुरीषरोधजरोगेष्वौपधम्—

वर्त्यर्भगाहगाहारश्च स्वेदनं बस्तिकर्म च ॥ ६ ॥

भक्षपानं च विड्मेदि विड्रोधोत्पेषु यक्ष्मसु ।

## मूत्ररोधजरोगेष्वौपधम्—

मूत्रजेषु च पाने च प्राग्भक्तं ४ शस्यते घृतम् ॥ ७ ॥

जीर्णान्तिकं चोत्तमया मात्रया योजनाद्वयम् ।

भवपीडकमेतच्च संज्ञितं, धारणात्पुनः ॥ ८ ॥

## उद्गाररोधजारोगास्तच्चिकित्सा च —

उद्गारस्यारुचिः कंपो विबंघो हृदयोरतोः ।

आध्मानकासहिष्माश्च हिष्मावत्तत्र ५ भेषजम् ॥ ९ ॥

१ पिडिका जानुनोऽप्यस्तात्मासलप्रदेशः “पेंडुरी” इतिभाषा, तदुद्वेष्टः—  
उद्वेष्टनमिव । २ उपरोधनं रजापूर्वकः क्षोभः । ३ पूर्वोक्ताः—वातरोधजा-  
गुल्मादयः । ४ पूर्वं वातनिरोधजाः । ५ तदीपधम्—तेषां वातादिरोधजानां  
रोगाणामौपधम् ।

६ भवतं भोजनं तस्य, घृतपानादनन्तरमेवभोजनमित्यर्थः । जीर्णान्तिभवं  
जीर्णान्तिकं ह्यस्तगेऽन्नेजीर्णेषुउत्तमयामात्रया पेयम् । एतद्धृतस्य योजनाद्वयं  
प्राग्भक्तस्नेहयोजना, जीर्णान्तिकस्नेहयोजना चेतिद्वयमवपीडकं नामकम् । ७ तत्र-  
उद्गाररोधजरोगेषु ।

**क्षुतिनिरोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—**

शिरोर्तीद्विषदौर्बल्यमन्या<sup>१</sup>स्तंभादितं धुतेः ।  
 सीदण्डमूमांजनाघ्राणनावनार्कबिलोक्तैः ॥ १० ॥  
 प्रवर्तयेत्क्षुतिं सक्तां सहेस्वेदौ च शीलयेत् ।  
 तृष्णानिरोधोत्पन्नारोगास्तच्चिकित्सा च—

शोषागसादबाधिर्यसंगोहभ्रमहृद्गदाः ॥ ११ ॥  
 तृष्णाया निग्रहात्तत्र शीतः सर्वो विधिहितः ।

**क्षुद्रोद्वज्जरोगास्तच्चिकित्सा च—**

भ्रंगभ्रंगारुविम्लानिकार्ष्यशूलभ्रमाः क्षुधः ॥ १२ ॥  
 तत्र योज्यं लघु क्षिग्धमुष्णमर्त्यं च भोजनम् ।

**निद्रारोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—**

निद्राया मोहमूर्च्छाक्षिणोरवालस्यजृम्भिकाः ॥ १३ ॥  
 भ्रंगमर्दश्च तत्रेष्टः स्वप्नः संवाहनानि<sup>२</sup> च ।

**कासरोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—**

कासस्य<sup>३</sup> रोषात्तद्बृद्धिः श्वासाश्चिह्नदामयाः ॥ १४ ॥  
 शोषो हिष्मा च, कार्याञ्ज कातहा सुखरां विधिः ।

**भ्रमश्वासरोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—**

शूलमहृद्गोषमोहाः भ्रमश्वासाद्विषारितात् ॥ १५ ॥  
 हितं विषमणं तत्र वातघ्नश्च क्रियाक्रमः ।

**जृम्भारोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—**

जृम्भायाः शक्वद्रोषाः<sup>४</sup> सर्वश्चानिमज्जिद्विधिः ॥ १६ ॥

**अश्रुरोधजरोगास्तच्चिकित्सा च—**

पीनसाप्तिशिरोदृग्दुग्मन्यास्तंभाश्चिभ्रमाः ।

१ मन्या मलपाशैर्गृथिता । २ संवाहनानि मर्दनानि । ३—तद्बृद्धिः कास-  
 वृद्धिः । ४—क्षक्वद् शक्वरोधजरोगाः ।

सगुल्मा वाप्यस्तत्र स्वप्नो मर्द्य प्रियाः वेयाः ॥१७॥

वमिरोधजरोगास्तच्चिकित्सां च—

सकासश्वासहृत्लासव्यगंश्वयथवो वमेः ॥१८॥

गर्हपधूमानाहाराम रुक्षं भुक्त्वा तदुद्वमः ।

व्यायामः सुतिरस्य शस्त चात्र विरेचनम् ॥१९॥

सक्षारसवणं संलमभ्यंगार्थं च शस्यते ।

शुक्ररोधजरोगास्तच्चिकित्सां च—

शुक्रतत्त्वत्रणं मुह्यवेदना श्वयष्टुर्वरः ॥२०॥

हृदव्यथा मूत्रसंगीगर्भगदृष्टघश्मर्षदताः ।

ताम्रचूडपुराशालिवस्त्यर्म्यगाधमाहनम् ॥२१॥

वस्तिशुद्धिकरैः सिद्धं भजेत्सीरं प्रियाः स्त्रियः ।

असाध्य वेगरोधी—

तृट्कुलार्तं त्यजेत् क्षीणं विह्वलं वेगरोधिनम् ॥२२॥

वेगोदीरणधारणैः सर्वरोगोत्पत्तिः—

रोगाः सर्वेऽपि जायन्ते वेगोदीरणधारणैः ।

दिदिष्टं साधनं तत्र भूमिष्ठं ये तु ताम् प्रति ॥२३॥

ततश्चानेकधा प्रायः पवनो यत्प्रकृप्यति ।

घ्नन्गानौपमं तत्र मुञ्जीतातोऽनुलोमनम् ॥२४॥

धारणीयवेगाः—

धारयेत्तु मदा वेगाम् हितं पीप्रेत्ये चेह च ।

जीभेऽप्यद्विषमात्सर्वरागादीनां जितेन्द्रियः ॥२५॥

वातादीनां यथा कालं शोधनम्—

यतेत च यथाकालं मलानां शोधनं प्रति ।

अत्ययमं चित्तास्ते हि क्रुद्धाः स्युर्जीवितच्छिरः ॥२६॥

१ वाप्यत अश्रुणो विधारितात्, हृत्लासो हृदयादीपदव्यथः पद्वन्दुनिर्गमः ।

२ तदुद्वमः, तस्य रुक्षस्वीद्वमोवमनम् । ४ अग्न्यस्य रक्तस्य स्रुतिः स्रवणम् । ५ घ्नय-  
मंशमरीरोगः । ६ ताम्रचूडः कुबुटः । ७ उदीरणमनुपस्थितवेगानां मलाच्छरेणम् ।

८ प्रेत्य—परलोके । ९ ते—मलाः ।

संशोधनगुणाः—

दीपाः कदाचित्कुप्यन्ति जिता मंथनपाचनैः ।

ये तु संशोधनैः शुद्धा न तेषां पुनरुद्भवः ॥२७॥

रसाय प्रयोगः—

रसायनानि सिद्धानिवृष्ययोगांश्च कालवित् ॥२८॥

भेषजक्षपिते भोजनादिव्यवस्था—

भेषजक्षपिते पच्यमाहारैर्बृंहणं कृमात् ।

शालिपट्टिकगोघूममुद्गमासपृजादिभिः ॥२९॥

हृद्यदीपनभेषज्यमयोगाद्बुद्धिपक्तिर्दे ।

मात्र्यगोद्वर्तनस्नाननिरुहस्नेहवस्त्रिभिः ॥३०॥

तथा स लभते शर्म<sup>१</sup> सर्वपापकटावबम् ।

धीवर्णोद्विगर्भमस्यं धूपतां र्वर्धमापुपः ॥३१॥

आगन्तुरोगकथनं तच्चिकित्साच—

ये भूतविषवाग्निक्षतभंगादिसंभवाः ।

कामक्रीधमयाद्याश्च<sup>२</sup> ते स्युरागतवो गदाः ॥३२॥

रमागः<sup>३</sup> प्रज्ञापराधानामिद्वियोऽशमः स्मृतिः ।

देशकालात्मविज्ञानं सद्भुसस्यानुवर्तनम् ॥३३॥

अथर्वविहिता शातिः प्रतिकूलप्रहार्वनम् ।

भूताद्यस्पर्शनापायो निदिष्टश्च पृषक् पृषक् ॥३४॥

अनुत्पत्त्यै समासेन विधिरेव प्रदर्शितः ।

निजागंतुविकाराणामुत्पद्धानां च शान्तये ॥३५॥

१ शर्म—कल्याणमारोग्यमित्यर्थः । पाटवं शक्तिम् । २ आद्यशब्देन रागद्वेष मोहलोभादीनां ग्रहणम् । ३ प्रज्ञाया कुद्वेषपराधोऽहिताचरणम् । धीधृतिस्मृति विभ्रष्टः कर्म यन् कुद्वेषेऽनुमम् । प्रज्ञापराधं तं विद्यात्सर्वदोषप्रकोपणम् ॥ इति चरकशारीरे ।

मलशोधनसमयनिर्देशः एतत्सारभूतम्—

शोतोद्भवं दोषचयं वसंते विशोषयम् श्रोष्मजमभ्रकाले ।

१ घनात्यये वार्षिकमाशु सम्यक् प्राप्नोति रोगानृतुजान् जातु ॥३६॥

आरोग्यहेतवः—

नित्यं हिताहारविहारसेवी समोक्ष्यकारी विषयेष्वसत्तः ।

दाता समः २ मत्पपरः क्षमावा ३ नातोपसेवो च भवत्यरोगः ॥३७॥

## पञ्चमोऽध्यायः ।

द्रव्यगुणशास्त्रम्—

अथातो द्रवद्रव्यविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ॥

गङ्गाजलगुणाः—

१ 'जोषनं तर्पणं हृद्यं ह्लादि बुद्धिप्रबोधनम् ।

तन्वध्यस्तरसं १ मृष्टं शीतं लघ्वमृतोपमम् ॥ १ ॥

गंगां नभसो भ्रष्टं स्पृष्टं त्वर्केन्दुमास्तैः ।

हिताहितत्वे तद्भूमौ देशकालावपेक्षते ॥ २ ॥

गङ्गाजलपरीक्षणम्—

येनाभिवृष्टममलं शात्यमर्न राजतस्थितम् ।

अखिलमविचर्णं च तत्पेयं गौमम्, अन्यथा ॥ ३ ॥

सामुद्रं तत्र पातंभ्यं मासादाश्वयुजाद्विना ।

आकाशीयजलपानविधानम्

१ ऐन्द्रमंबु सुपात्रस्यम्विपन्नं सदा पिबेत् ॥ ४ ॥

१ घनात्यये—शरदि । जातु—कदाचित् । २ समः—नर्वप्राणिषु समचित्तः ।

३ आतः—यथार्थवक्ता पुरुषः । ४ मृष्टं मुस्नाडु । ५ अन्यथा—गङ्गेयलक्षणा-

भावे । ६ ऐन्द्रमाकाशीयम् ।

तदभावे च भुविष्ठमंतरिक्षानुकारि यत् ।  
शुचिपृथ्वसितश्वेते देशेऽर्कपवनाहतम् ॥ ५ ॥

### पानायोग्यंजलम्—

न पिबेत्पंकशैवालतृणपर्णाविलास्तृतम् ।  
सूर्येणुपवनादृष्टमभिवृष्टं घनं शुद्धं ॥ ६ ॥  
केनित्तं जलुमत्तर्षं दत्तग्राह्यतिशयतः ।  
अनार्तवं च यद्विष्यमार्तवं प्रथमं च यत् ॥ ७ ॥  
सूतादितंतुविण्मूत्रविषसंश्लेषद्रूपितम् ।

### नदी निरूपणम्—

पश्चिमोदधिगाः शीघ्रवहा याश्चामलोदकाः ॥ ८ ॥  
पथ्याः समामात्ता नद्यो विपरीतास्त्वतोऽन्यथा ।

### हिमालयाद्युद्भूत नदी निरूपणम्—

उपलास्फालनाशेषविच्छेदः खेदितोदकाः ॥ ९ ॥  
हिमवन्मलयोद्भूताः पथ्यास्ता एव च स्थिराः ।  
कृमिश्लोषदहृत्कंठशिरोरोगान् प्रकुर्वन्त ॥ १० ॥  
प्राच्याऽऽवन्त्यपरांतोत्था दुर्नामानि, महेंद्रजाः ।  
उदरश्लोषदातंकाश्च, सहायिध्यांश्रुवाः पुनः ॥ ११ ॥  
कुष्ठांशुशिरोरोगान्, दोषघ्न्यः पारियात्रजाः ।  
बलपीरूपकारिण्यः, सागरामस्त्रिदोषहृद् ॥ १२ ॥

१ आर्तवमपि यत् प्रथमं प्रथमं वृष्टम् । २ पश्चिमोदधिगा नद्यः—पथा—  
नर्मदाद्याः । ३ अतः पश्चिमेत्यादिलक्षणहीना नद्यो विपरीता अपथ्याः ।  
४ उपलानां पाषाणानामास्फालनं ताडनमभिधातादुच्छन्ननम्, आक्षेपः स्खलनादिः  
विच्छेदोद्वेगोभावस्तीः खेदितं जातक्षीयं प्राप्तलाघवमुदकं यासां नदीनाम् ।  
५ प्रावन्त्यो मालवाः । अपरान्ताः कोट्टणप्रदेशोद्भवाः । दुर्नामानि-अर्शाति ।



## भूपादयुत्तमम्—

विद्यात्कूपतटीगादीम् जांगलानूपशैलतः ।

## जलपान निषेधः—

नांबु पेयमशक्त्या वा स्वल्पमल्पासिगुल्मभिः ॥ १३ ॥

पाण्डूदरातिसाराशोभ्रहृषीदोषशोयिभिः ।

ऋते शरश्रिदाघाभ्या पिबेत्स्वस्थोऽपि चात्पशः ॥ १४ ॥

## भोजने जलपान व्यवस्था—

ममस्थूलकृशा भुक्तमध्यातप्रथमांबुपाः ।

## शीतजल गुणाः—

शीतं मदात्ययग्लानिमूर्च्छाच्छदिश्रमभ्रमात् ॥ १५ ॥

तृष्णोष्णदाहपित्तालविपाएयंबु नियच्छति ।

## उष्ण जलगुणाः—

दीपनं पाननं कंठ्य लघूष्णं बस्तिशोधनम् ॥ १६ ॥

हिष्माकमानाऽनिलश्लेष्मसद्यः क्रुद्धे नवज्वरे ।

कासामपीनसश्वासपार्श्वरुधु च शस्यते ॥ १७ ॥

## कथितशीतलजलगुणाः—

अनभिष्यंदि लघु च तीक्ष्णं कथितशीतलम् ।

पित्तपुक्ते हितं दीपे, व्युषितं तस्मिन्दीपवृत् ॥ १८ ॥

नालिकेरोदकं लिम्बं स्वादु कृष्यं हिमं लघु ।

तृष्णापित्तानिसहरं दीपनं बस्तिशोधनम् ॥ १९ ॥

## वर्षायां योग्यायोग्यजलनिर्देशः—

वर्षायां दिव्यनादेये परं तोये वरावरे ।

१ आदिना सरः जुएटी प्रसवणीद्भिद्वापीनदीनां ग्रहणम् । तडागः—  
“ताल” इतिभाषा । जुएटीभवद्वकूपः “जूवा” भाषा । २ निदाघः श्लेष्मः । ३ भुक्त-  
मध्ये जलपानात्समशरीरः, अन्ते स्थूलशरीरः, आदौ च कृशः । ४ व्युषितं—रात्रौ  
तप्तं दिने, दिने तप्तं वा रात्रौ व्युषितम् । ५ दिव्यमाकाशीयं जलं वर्षायां वरं,  
नादेयमवरम् ।

### दुग्धनिर्देशस्तद्गुणारचः—

‘गव्यं माहिषमाजं च कारभं स्वैणमाविकम् ॥ २० ॥

ऐक्यैकशफं चेति क्षीरमष्टावधं मतम् ।’

स्वादुपाकरसं सिग्धमोजस्यं धातुवर्धनम् ॥ २१ ॥

वातपित्तहरं कृष्यं श्लेष्मलं गुह्यं शोतलम् ।

#### गव्यदुग्धगुणाः

प्रायः पयः, घृतं गव्यं तु जीवनीयं रसायनम् ॥ २२ ॥

क्षतक्षौणहितं मेघ्यं बल्यं स्तन्यकरं सरम् ।

श्रमभ्रममदालक्ष्मीश्वासकासातिवृद्धुध ॥ २३ ॥

जीर्णज्वरं मूत्रवृन्दं रक्तपित्तं च नाशयेत् ।

#### माहिषोदुग्धगुणाः

हितमत्यग्ननिद्रैर्भ्यो गरीयो माहिषं हिमम् ॥ २४ ॥

#### अजादुग्धगुणाः—

अल्पावुपानव्यायामकटुतिक्ताशनैर्लघु ।

माजं शोषज्वरश्वासरक्तपित्तातिसारजित् ॥ २५ ॥

#### उष्ट्रोदुग्धगुणाः—

ईषद्रक्षोष्णलवणमोक्षकं दीपनं लघु ।

शस्तं घातकफानाहृमिशोफोदरार्शसाम् ॥ २६ ॥

#### क्षीदुग्धगुणाः—

मानुषं वातपित्तासृग्भिघाताक्षिरोमजित् ।

तर्पणशोतनैर्नैर्नैः, ग्रह्यं क्षणमाविकम् ॥ २७ ॥

#### हस्तिनीदुग्धगुणाः—

वातव्याधिहरं हिष्माश्वासपित्तकफप्रदम् ।

हस्तिन्याः स्थायैकृत्वाढमुष्णं त्वैकशफं लघु ॥ २८ ॥

#### अश्वदुग्धगुणाः—

शोषावातहरं साम्ललवणं जडताकरम् ।

## पक्ववापक्वदुग्धगुणाः—

†पयोभिष्यदि गुर्वानं, युक्त्या शृतमतोज्ञ्यथा<sup>१</sup> ॥ २६ ॥  
भवेद्गरीबोऽतिशृतं पारोप्यममृतोपमम् ।

## दधिगुणाः

ग्रन्तपःकरसं ग्राहि गुरुपूर्णं दधि यातजित् ॥ ३० ॥  
मेदःशुक्रवल्गुश्लेष्मपित्तरक्ताऽग्निशोफहृत् ।  
रोचिष्यु शस्तमरुचौ शीतके विषमज्वरे ॥ ३१ ॥  
पीनसे मूत्रकृच्छ्रे च स्थानं तु ग्रहणीगदे ।

## दधिभक्षणनिषेधः—

नैवाद्याग्निश नैबोप्यं वसंतोप्यशरस्तु न ॥ ३२ ॥  
नामुद्वगमूपं नालोद्रे तप्रापृतकितोपलम्<sup>१</sup> ।  
न चानामलकं नापि निर्यं नार्मदमन्यथा ॥ ३३ ॥  
श्वरासृक्पित्तबीसर्पकुप्टपाङ्गुभ्रमप्रदम् ।

## सक्रगुणाः—

तक्रं लघु कषायाम्लं दीरनं कफवासजित् ॥ ३४ ॥  
शोफोदरागोऽग्रहणीबोपमूत्रग्रहावृचः ।  
प्लीहगुल्मघृतव्यापद्वरपांद्वाभयाम् जयेत् ॥ ३५ ॥

## मस्तुगुणाः

सङ्गमस्तु<sup>२</sup> सरं त्रोटःशोधि विष्टंभजिह्वु ।

## नवनीतगुणाः—

नवनीतं नवं मृष्यं शीतं वर्णवस्त्राग्रिकृत् ॥ ३६ ॥  
संग्राहि वातपित्तासृक्षयोर्शोदितकासजित् ।  
क्षीरोदभवं तु संग्राहि रक्तपित्तादिरोगजित् ॥ ३७ ॥

† पारोप्यं शस्यते यथ्यं पाराशीतं तु माहिपम् ।

शृतोप्यमाविकम्पय्यं शृतशीतमजापयः ॥

मदनः ।

१ अत आमादुग्धादन्यथा—अननिष्यन्दि लघु च । रोचिष्यु स्वयं रोचते ।  
३ सितोपला—“मिषी” इतिभाषा । ४ मस्तु—दधिजलम् । सरम्—मलनिःसार-  
कम् । ५ नवनीतं “नैनू” इतिभाषा । क्षीरोदभवं नवनीतं “मवसन” इतिलोके ।

घृतगुणाः—

शस्तं धीस्मृतिमेधामिचक्षुःशुक्रचक्षुषाम् ।  
 बालवृद्धप्रजावांतिसौकुमार्यस्वरायिनाम् ॥ ३८ ॥  
 क्षतक्षोणुपरोसर्पशस्त्राग्निग्लपितात्मनाम् ।  
 वातपित्तविषोन्मादशोषाऽलसमोज्वरापहम् ॥ ३९ ॥  
 श्लेहानामुत्तमं शीतं वयसः स्थापनं परम् ।  
 सहस्रवीर्यं विषिभिर्घृतं कर्मसहस्रकृत् ॥ ४० ॥

पुराणघृतगुणाः—

मवापस्मारमूर्ध्नायशिरःकर्णोदियोनिकाम् ।  
 पुराणं जयति व्याधौ व्रणशोधनरोपणम् ॥ ४१ ॥  
 घल्याः किलाटपीयूषकूचिकामोरणादयः ।  
 गुरुनिद्राकफकरा विष्टंभिगुरुबोपलाः ॥ ४२ ॥

दुग्धघृतयोर्वरावरत्वे—

गन्धे क्षीरघृते श्रेष्ठे निधिते चावितम्बवे ।

इक्षुरसगुणाः—

इक्षो रम्यो गुरुः सिग्धो वृंहणः कफमूत्रघृत् ॥ ४३ ॥  
 घृप्यः शीतोऽलपित्तघ्नः स्वादुपाकरसः सरः ।  
 सोऽग्रे सनवणो, दंतपीडितः शर्करासमः ॥ ४४ ॥

यान्त्रिकरसगुणाः—

मूलाग्रजंतुजग्धादिपीडनान्मलसंकरात् ।  
 किञ्चित्कालं विघृत्या च विवृतिं याति यान्त्रिकः ॥ ४५ ॥  
 विदाहो गुरुविष्टंभी तेनासौ, तत्रपीडकः ।  
 शैत्यप्रगादमाधुर्येर्वरस्तमनुवाशिकः ॥ ४६ ॥

१ सहस्रवीर्यमनेकशक्ति । विषिभिरनेकद्रव्यैः संसृष्टम् । २ किलाटः “छेना”  
 पीयूषः “पेडुम” इति लोके । समरात्रात्परं क्षीरमप्रसन्नं तु मोरणम् । “क्षीरं तत्का-  
 लमूलायाः पीयूषं धनमुच्यते” “पक्वं दध्ना समं क्षीरं विज्ञेया दधिकूचिका” तत्रेण  
 तत्रकूचिका तयोः पिरण्डः किलाटकः । ३ स इक्षुः । ४ यान्त्रिकः यन्त्रैः कोल्लु  
 द्वारानिष्पीडितः । ५ पीडकः “पीडा” इति लोके ।

शातपर्वककांतारनेपासाद्यास्ततः क्रमात् ।  
 ससाराः सकषायाम्ना सोष्णाः किञ्चिद्विदाहिनः ॥ ४७ ॥  
 १ फणितं गुर्वभिष्यंदि चयमृन्मूत्रशोधनम् ।  
 नातिश्लेष्मकरो घृतः सृष्टमूत्रशृङ्गुहः ॥ ४८ ॥  
 प्रभूतकृमिमज्जासृङ्मेदोमांसकफोऽपरः ।  
 हृस्वः पुराणः पथ्यश्च, नवः श्लेष्माग्निसाख्यत् ॥ ४९ ॥  
 मृष्याः क्षतलीणहिता रक्तपित्तानिनापहाः ।  
 २ मत्स्यंङ्किंकासंङ्कसिवाः क्रमेण गुणवत्तमाः ॥ ५० ॥  
 ताम्रुणा तित्तमधुरा कषाया यासशर्करा १ ।  
 दाहवृद्धिदमूच्छसिक्पित्तबन्धः सर्वशर्कराः ॥ ५१ ॥  
 शकरोधुविकाराणा फणितं च बराबरे ।

### मधुगुणाः—

चक्षुष्यं छेदि वृद्धश्लेष्मविपहिष्मासपित्तनुत् ॥ ५२ ॥  
 मेहकुष्ठकमिच्छंदिश्वासकासातिसारनुत् ।  
 अणुशोधनसंभानरोपणं वातसं मधु ॥ ५३ ॥

### मधुसेवननिषेधापघादौ—

रुक्षं कषयामधुरं तत्तुल्या मधुशर्करा ।  
 उष्णमुष्णार्तमुष्णं च युक्तं चोष्णं निहंति तत् ॥ ५४ ॥  
 प्रच्छर्दने निरुद्धे च मधूष्णं न निवार्यते ।  
 भक्ष्यपाकमात्रेव तयोर्गन्धमाश्रितवर्तते ॥ ५५ ॥

### तैलगुणाः—

तैलं स्वयोनौ १ वत्तत्र मुख्यं तीक्ष्णं व्यवायि च ।  
 त्वग्दोषवृद्धचक्षुष्यं सूक्ष्मोष्णं कफहृत्त च ॥ ५६ ॥

१ फणितं "राव" इति प्राञ्चाः । २ मत्स्यस्य ण्डिका—"कञ्ची चोनी" इति-  
 भाषा, खण्डः "खाण्ड" इति लोके । ३ यासशर्करा यथासशर्करा "शिरेश्वस्त"  
 यवनचिकित्सकाः । ४ स्वयोनौ चत् स्वस्य तैलस्य योनिरुत्पत्तिस्थानं-तिलम् तद्वत्  
 तिस्रवगुणयुक्तमित्यर्थः । मुख्यं-तैलेषु विलोदमवं तैलं मुख्यम् ।

कृशानां बृंहणायालं स्थूलानां कर्शनाय च ।  
 चद्विट्कं कृमिघ्नं च संस्कारात्मवर्द्धोपजित् ॥ ५७ ॥  
 सतिक्तोपणमैरुदं तैलं स्वादु सरं गुरु ।  
 यध्मगुल्मानिलकफानुदरं विषमज्वरम् ॥ ५८ ॥  
 रुक्शोफो च कटीमुहकोष्ठपृष्ठाथयी जयेत् ।  
 तीक्ष्णोष्णं पिच्छिलं विषं रक्तैरुदोद्भवं त्वति ॥ ५९ ॥  
 कट्फलं सार्पपं तीक्ष्णं कफदुक्रानिषापहम् ।  
 लघुपित्तास्रगृत् कोष्ठकुष्ठार्शोद्वेगजंतुजित् ॥ ६० ॥  
 'आक्षं स्वादु हिमं केश्यं गुह्यं पित्तानिलापहम् ।  
 नात्सुप्यं निबजं तिक्तं कृमिकुष्ठकफप्रणुत् ॥ ६१ ॥  
 'उमाकुसुंभजं चोष्णं त्वग्दोषकफपित्तशृत् ।  
 वसा मज्जा च वातघ्नौ बलपित्तकफघ्नी ॥ ६२ ॥  
 मासानुगस्वरूपौ च विद्यान्मेदोऽपि ताविव ।

### मद्यगुणाः—

दीपनं रोचनं मद्यं तीक्ष्णोष्णं तुष्टिपुष्टिदम् ॥ ६३ ॥  
 गस्वादुतिक्तकटुकमम्लपाकरसं सरम् ।  
 मकपायं स्वरारोग्यप्रतिभावर्यवृक्षपु ॥ ६४ ॥  
 'नष्टेतिद्रासतिनिद्रेभ्यो हितं पित्तास्रदूषणम् ।  
 कृशस्फुलहितं रुक्षं मूढमं स्रोतोविशोधनम् ॥ ६५ ॥  
 वातश्लेष्महरं मुवत्या पीतं विषवदन्यथा ।  
 गुरु त्रिदोषजननं नवं, लीर्णमतोऽन्यथा ॥ ६६ ॥  
 पेयं नोष्णोपचारेण न विरिक्तधुधातुरे ।

### मद्यपाननिषेधः—

नात्यर्थतीक्ष्णमृद्वत्य<sup>१</sup>संभारं कतुपं न च ॥ ६७ ॥

१ आक्षं विभीतकतेलम् । २ उमा-अलमी । कुसुम्भः "बरे" इतिलोके ।  
 ३ नष्टेति-गुणोऽयं मद्यस्य प्रभावकृतः । ४ अलसम्भारमलद्रव्यविष्पादितम् ।

## सुरागुणाः—

मुल्मोदराशोग्रहणीशोषहृत् स्नेहनी मुरुः ।  
 'मुराऽनिलघ्नी मेदोसूक्तन्यमूत्रकफावहा ॥ ६८ ॥  
 तदगुणा चारुणी<sup>१</sup> हृद्या लघुतोक्ष्णा निर्हन्ति च ।  
 मूलकासवमिश्रासविबंघाभ्मानपोनसाप् ॥ ६९ ॥  
 नातितोन्नमदा सङ्घी पथ्या वैभीतकी सुरा ।  
 ग्रणे पाण्ड्वामये कुष्ठे न चात्यर्थं विरुध्यते ॥ ७० ॥  
 विष्टंभिर्ना यवसुरा युर्वी रुक्षा त्रिदोषता ।

## अरिष्टगुणाः—

यथाद्रव्यगुणोऽरिष्टः सर्वमद्यगुणाधिकः ॥ ७१ ॥  
 ग्रहणीपाण्डुकुष्ठार्शःशोफशोषोदरज्वराप् ।  
 हन्ति गुल्मवृमिर्झाहान् कपायकटुवातलः ॥ ७२ ॥  
 भार्द्विकं लेखनं हृद्यं नास्युष्णं मधुरं सरम् ।  
 अल्पपित्तानिलं पाण्डुमेहार्शःशृमिनाशनम् ॥ ७३ ॥  
 अस्मादल्पांतरगुणं खार्जूरं वातलं गुरु ।  
 शार्करः मुरभिः स्वादुहृद्यो नातिमदो लघुः ॥ ७४ ॥  
 सृष्टमूत्रशङ्कटातो गौडस्तर्पणदीपनः ।  
 वातपित्तकरः सीधुः<sup>२</sup> स्नेहधृष्टविकारहा ॥ ७५ ॥  
 मेदःशोफोदराशोघ्नस्त्रय पकरसो<sup>३</sup> वरः ।  
 छेदो मध्वासवस्तीक्ष्णो मेहपीनसकासञ्चि<sup>४</sup> ॥ ७६ ॥  
 रक्तपित्तकफोत्पन्नेदि<sup>५</sup> शुक्तं वातानुलोमनम् ।  
 भृञोष्णतीक्ष्णलक्ष्णस्तद्वृद्यं हचिकरं सरम् ॥ ७७ ॥

१ "परिपक्वान्नसंभानममुत्पन्ना सुरा जग्मुः" शात्तिपट्टिक पिष्टाद्विकृतं मद्य सुरा मतम्"

२ "मत्तलसर्जरसैः संधिता सा हि चारुणी" भा० "पुनर्नवाशानिपिष्टेविहिता चारुणी मता" मदनपालः । ३ संपकमपुनर्द्रवः कृतं मद्यं सीधुः स एव पकरमः, ४ शुक्तं—कन्दमूलफलादीनि सस्नेहलवणानि च । यत्र द्रवेऽभिपूयन्ते तच्च्युक्तमभिधीयते, "शिरका" इति लोके ।

दीपनं शिशिरस्पर्शं पाण्डुककृमिनाशनम् ।  
 गुडेक्षुमद्यमार्द्धीकशुक्तं लघु यथोत्तरम् ॥ ७८ ॥  
 कंदमूलफलाद्यं च तद्विद्यात्तदाऽऽयुतम् ।  
 शाण्डाकी<sup>१</sup> चासुतं चान्यत्कालाम्भं रोचनं लघु ॥ ७९ ॥  
 धान्याम्लं भेदि तीक्ष्णोष्णं पित्तवृत्तस्पर्शशीतलम् ।  
 श्रमकलमहरं रुच्यं दीपनं वस्तिशून्यनुत् ॥ ८० ॥  
 शस्तमास्थापने हृद्यं लघु वातरूपापहम् ।

मूत्रगुणाः—

मूत्रं गोऽजाविमहिषीगजाश्वीष्टसरोद्भवम् ॥ ८१ ॥  
 पित्तलं रुक्षतीक्ष्णोष्णं लवणानुरसं कटु ।  
 कृमिशोफोदरानाहशूलपाण्डुकफानिलाम् ॥ ८२ ॥  
 गुल्माऽरुचिषिपश्विप्रकुष्ठार्शामि जयेज्जघु ।

द्रवैकदेशोदाहरणम्—

तीयक्षीरेक्षुतलानां वनैर्मद्यस्य च क्रमात् ॥ ८३ ॥  
 इति द्रवैकदेशोऽयं यथास्थूलमुदाहृतः ।<sup>२</sup>

## पष्ठोऽध्यायः ।

स्वस्थवृत्तम्—

अधातीऽन्नस्वरूपविज्ञानोयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

शालिगुणाः—

“रक्तो महाम् सकलमस्तूर्णकः शकुनाहृतः ।  
 सारामुखो दीर्घश्लको रोध्रश्लकः मुग्धकः ॥ १ ॥

१ “शाण्डाकी सन्धिता ज्ञेया मूलकः सर्पपादिभिः” २ धान्याम्लं—काञ्जिकम् ।  
 ३ गोऽजाविमहिषीणां तु स्त्रीणां मूत्रं प्रशस्यते । सरोष्ट्रेभनराश्वानां पुंसां मूत्रं  
 हितं मतम् । इति मदनपासः ।



पतंगास्तपनोयाश्च ये चान्ये शालयः शुभाः ।  
 स्वादुपाकरसाः स्निग्धा वृष्या बद्धाल्पवर्चसः ॥२॥  
 कपायानुरमाः पथ्या नववी मूत्रला हिमाः ।  
 सूक्ष्मेषु, वरस्तत्र रक्तस्तृष्णात्रिदोषहा ॥३॥  
 महोस्तस्यानुकम्बमस्तं चाप्यनु, ततः परे ।

### यवकादिगुणाः—

यवका ह्यायना. पांसुवाण्यनैपघकादयः ॥४॥  
 स्वादूष्णा गुरवः श्लिग्धाः पाकेऽम्लाः श्लेष्मपित्तलाः ।  
 सृष्टमूत्रपुरीषाश्च पूर्व पूर्व च निदिताः ॥ ५ ॥

### पट्टिकस्पश्रेष्ठता—

लिग्धो ग्राही गुरुः स्वादुस्त्रिदोषघ्नः स्थिरो हिमः ।  
 पट्टिको ब्राह्मिषु श्रेष्ठो, गौरश्चाभितगौरतः ॥ ६ ॥

### महाग्रीहादिगुणाः—

ततः क्रमान्महाग्रीहिर्वृष्णग्रीहिः सतृपुष्पाः ।  
 कुवकुटाङ्कपालाल्पपारावतकम्बूकराः ॥ ७ ॥  
 वरकोदासकंज्वानवीनसारदुर्दुराः ।  
 गंधनाः कुशविदाश्च गुणैरत्यन्तरा स्मृताः ॥ ८ ॥

### अन्यग्रीहिगुणाः—

स्वादुरम्भाविपाकोऽन्यो ब्रोहिः पित्तहरो गुरुः ।  
 बहुमूत्रपुरीषोष्मा त्रिदोषस्त्वेव पाटलः ॥ ९ ॥  
 कंगुकोद्रवनीवारश्चामाकादिहिमं तपु ।  
 नृगुधान्यं पवनवृत्लेघनं कफपित्तहृत् ॥ १० ॥

१ पट्टिकः “गाढी चावल” इतिभाषा । २ कंगु—“ककुनो” तंगु त्रियंगु  
 रितिहेमाद्रिः । कोद्रवः “कोदध” । नीवारः “विष्मो” । श्यामाकः “मावी” इति  
 भाषायाम् । आदिष्वेन जूलाङ्गि वर्जरो धान्यानि ।

भग्नसंधानकृत्तत्र प्रियंगुवृंहणी गुरुः ।

कोरदूयः परं ग्राही स्पर्शशीतो विषापहः ॥ ११ ॥

रूक्षः शीतो गुरुः स्वादुः सरो विट्वातकृत्तवः ।

वृष्यः स्वेयंकरो मूत्रमेदः पित्तकृत्तवः जयेत् ॥ १२ ॥

पोतसञ्चासकासोऽस्तमकंठस्वगामयाम् ।

न्यूनी यवादन्यवः, रूक्षोऽप्यो वंशजो यवः ॥ १३ ॥

### गोधूमगुणाः

वृष्यः शीतो गुरुः स्निग्धो जीवनो बार्तपित्तहा ।

संधानकारी मधुरो गोधूमः स्वेयंकृत्तरः ॥ १४ ॥

### नन्दीमुखी गुणाः—

पथ्या नन्दीमुखी शीता कषायमधुरा लघुः ।

### शिथीधान्यगुणाः—

मुदगाढकीमसूरादि शिथीधान्यं विबन्धकम् ॥ १५ ॥

कषायं स्वादु संग्राहि कटुपार्कं हिमं लघु ।

मेदःश्लेष्मास्रपित्तेषु हितं लेपोपसेकयोः ॥ १६ ॥

धरोऽत्र मुदगोऽन्वसलः कलापस्त्वतिवातलः ।

राजमापोऽनिलकरो रूक्षो बहुशुद्धगुरुः ॥ १७ ॥

उष्णः कुनस्थाः पाकेऽम्बाः शुक्राशमशवासपीनसाम् ।

कासार्षः ककवातांश्च ध्वंति पित्ताग्नदाः परम् ॥ १८ ॥

निष्पावो वातपित्तास्रस्तम्भमूत्रकरो गुरुः ।

मरो विदाही हृक्शुक्रकफशोफविपात्रहः ॥ १९ ॥

मापः गिम्बो बलश्लेष्ममलपित्तकरः सरः ।

गुरुऽप्योऽनिमहा स्वादुः शुक्रवृद्धिविरेककृत् ॥ २० ॥

फलानि माषवडियात्काकांडोलाः स्मगुप्तयोः ।

१ नन्दीमुखी-दीर्घमूदमगोधूमः, भादकीः "भरहर" इति लोके । कलापः "मटर" इति लोके । २ राजमापः—वृहन्मापः, ३—कुलस्यः "कुरधी" इति लोके । ४ निष्पावः "बोड़ा" इति लोके । ५ आत्मगुप्ता "केवांच" इति लोके । काकांडोला निःशुक्रावपिकच्छूरितिहेमाद्रिः ।

## तिल गुणाः—

उष्णस्त्वचो हिमः स्पृशे केशयो बल्यस्तितो गुरुः ॥ २१ ॥  
अल्पमूत्रः कटुः पाके मेवाऽनिकफपित्तवृत् ।

## अवसी गुणाः—

श्लिष्योष्ण स्वादुतिक्तोष्णो कफपित्तकरो गुरुः ॥ २२ ॥  
हृक्शुक्रहृत्कटुः पाके, तदद्दीर्घं कुर्मुभजम् ।

## माषयवकयोर्न्यूनत्वम्—

माषोऽत्र सर्वेष्ववरो यवकः शूकजेष्ठ च ॥ २३ ॥  
नवं घान्यमभिष्यदि, लघु, संवासरतोपितम् ।  
शोघ्नजग्ग तथा सूप्यं निस्तुषं युक्तिर्भजितम् ॥ २४ ॥

## मण्डादीनां यथापूर्वं लाघवम्—

मण्डपेयाविलेपीनामोदनस्य च लाघवम् ।  
यथापूर्वं शिषस्तत्र मण्डो वातानुलोमवः ॥ २५ ॥

## मण्ड गुणाः—

तृणानिदोषशेषघ्नः पाचनो घातुगाम्यकृत् ।  
स्रोतोमार्दवकृत्स्वेदी संधुक्षयति चानवम् ॥ २६ ॥

## पेया गुणाः—

क्षुतृष्णाग्निनिदोर्बल्यकुक्षिरोगज्वरापहा ।  
मलानुलोमनी पय्या पेया दीपनपाचनी ॥ २७ ॥

## विलेपी गुणाः—

विलेपी प्राहिणी हृवा तृष्णाघ्नी दीपनी हिता ।  
अग्नाक्षिरोगसंसृद्धुर्वलसो हपायिनाम् ॥ २८ ॥

१ शोघ्नमल्पकाले जन्मोत्पत्तिर्यस्यतत् । सूप्यं सूपयोग्यं मुद्गादि । युक्ति-  
भजितं भाष्ट्रमजितं "कोरी" इति लोके । २ मण्डः "मण्ड" इति लोके "नीरे-  
चतुर्दशगुणे सिद्धोमण्डस्त्वतिषयकः" अतिषयक भोदनरहित इत्यर्थः । द्रवाधिका  
स्त्वतिषयया, चतुर्दशगुणे चने सिद्धा पेया बुधेज्ज्या, यूपः किञ्चिदनः स्मृतः । विलेपी  
पनसिवया स्यात्सिद्धा नीरे चतुर्गुणे ।

### श्रीदण लक्षणम्—

मुषोतः प्रमुतः स्विधोऽत्यक्तोऽप्या चोदनो लघुः ।  
यश्चाग्नेयोपयकायसाधितो अष्टतंडुलः ॥ २९ ॥  
विपरीतो गुरुः क्षीरमांसाद्यैर्मथ साधितः ।  
इति द्रव्यप्रियायोगमानाद्यैः सर्वमादिनेत् ॥ ३० ॥

### मौद्गरस लक्षणम्—

बृंहणः प्रीणनो वृष्यश्चक्षुष्यो ब्रणहा रसः ।  
मौद्गरस्तु पथ्यः संशुद्धन्नैर्बोधाक्षिरोगिणाम् ॥ ३१ ॥  
वातानुलोमी कौलत्थो गुल्मनूनिप्रनूनिजिव् ।

### तिलविट्कृत्यादि गुणाः—

तिलपिण्णकविकृतिः, शुष्कशार्क, विरुद्धवम् ॥ ३२ ॥  
शांडाकीवटकः हृग्धनं दोषलं खलपनं गुरु ।

### रसाला गुणाः—

रसाला बृंहणी घृष्णा स्निग्धा मत्वा रुचिप्रदा ॥ ३३ ॥

### पानक गुणाः—

अमधुतुद्वक्तमहर् पानकं प्रीणनं गुरु ।  
विष्टंभि मूत्रलं हृद्यं यथाद्रव्यगुणं च तत् ॥ ३४ ॥  
‘ताजास्तृट्छर्ष’तोमारमेहमेदःकफच्छिदः ।  
कासपित्तोपशमना दीपना तथैवो हिमा ॥ ३५ ॥  
‘पृथुका गुरवो मत्पाः कफविष्टंमकारिणः ।  
‘धाना विष्टंभिनी रुक्षा तर्पणी संपत्नी गुरुः ॥ ३६ ॥  
गक्तयो लघवः क्षुत्क्षमनेत्रामयप्रणाम् ।  
ध्मंति संतर्पणाः पानात्मस्य एव बलप्रदाः ॥ ३७ ॥  
‘नोदकातरितान्न ‘द्विर्न निशाया न केवलाम् ।  
न भुक्त्वा न ‘द्विजैश्चिह्त्वा गवतूनघात्र वा बहून् ॥ ३८ ॥

१ ताजा—“लावा-लोत” भा० । २ पृथुकाः “चिबड़ा” इति भा० ।  
३ धाना “बहुरी, परमल” इतिलोके । ४ नोदकं पृथक् पीत्वा । ५ एकस्मिन्दिनेद्वि  
द्वियारम् । ६ द्विजैः—क्षन्तैः पित्तिकं कृत्वा ।

‘पिथ्याको ग्लानोः स्थो विष्टो हृष्टिद्रूपणः ।

वैसवारो गुरुः सिन्धो बलोपचयवर्धनः ॥ ३९ ॥

मुद्गादिजास्तु गुरवो यथाद्रव्यगुणानुपाः । . .

कुक्कुलादिपक्वगुणाः—

‘कुक्कुलकर्परभाष्टकद्वंद्वगारविपाचिताम् ॥ ४० ॥

एकयोर्नीलघ्नविद्यादूपानुत्तरोत्तरम् ।

मांसवर्गः—

‘हरिणोरुगुरंगर्भगोकर्णमृगमातृकाः ॥ ४१ ॥

शशशंखरवास्तकजरभासा मृगाः स्मृताः ।

विट्किरगणः—

‘लाववर्तीकवार्तीरवतवर्त्मककुक्कुभाः ॥ ४२ ॥

कपिजलोपचक्राख्यचकोरकुस्त्राहवः ।

वर्तको वर्तिका चैव तित्तिरिः क्रकरः शिखी ॥ ४३ ॥

ताम्रचूडाख्यनकरगोनर्दगिरिवर्तिकाः ।

तथा शारपदं द्वाभवारटाश्चेति विट्किराः<sup>१</sup> ॥ ४४ ॥

१ विट्याकः “खली” भाषा । २ वैसवारः कुट्टिर्ब निरस्मि घान्यकहिङ्गुन-  
वङ्गजीरकादिसंस्कृतं मांसम् । ३ कुक्कुलकः भोराभूमल, कर्परः “खपरा” । भाष्टः  
“भाड़” कन्दू “तन्दूर” । इतिभाषा, एकयोनीम्—एकद्रव्यद्विताम् । ४ हरिणोरुक्त  
वर्गः, एणः कृष्णवर्णः, गुरङ्ग ईपताम्रो मृगः । श्वशः “रीछ-भाजू” इति लोके ।  
गोकर्णः गोकर्णसमकण्ठी रासभाकारः । ‘शुरिहारी’ नामको बन्धः पशुरित्यस्ये,  
मृगमातृका लघुपृष्ठदरः । शशः “खरगोश” इतिलोके । शम्बरः—महाद् गवयः  
५ लावः “लवा” । वर्तीकः वनचटकः । वार्तीरो वर्तीकजातिः रवतवर्त्मककुक्कुभै  
“जंगलीमृगी” नीलच्छविः कृष्णगलः स्याद्ग्रामचटकाकृतिः । कुक्कुभः कुक्कुभाराव-  
स्थलजो रवत वर्त्मकः । कपिजलोगोरतित्तिरिः । उपचक्रः श्वभ्रवरः कृष्णचक्षुर्भ-  
दाबिलः । कुस्त्राहवः नीलग्रीवः रक्तशिखः श्वेतपदाः, वर्तको वार्तीरादस्यः । वर्तिका  
वर्तकमदृशा । क्रकरः कुचशन्दकारो । ताम्रचूडः कुक्कुटः । शंकरः बकसदृशाक्षः ।  
गोनर्दगोशब्दा नुकारो । गिरिवर्तिकावर्तिकाभेदः । शारपदः कच्छुसदृशभ्राणतिः,  
इन्द्राभः कच्छुसदृशो विविधवर्णः, बारटोहंसभेदः । ‘विकीर्यभसयात् विट्किराः ।

प्रतुङ्गणः—

‘जीवजीवकदात्यूहृ’गाह्यशुकसारिकाः ।

सट्पाकोकिलहारीतकपोतचटकादयः ॥ ४५ ॥

प्रतुदा, भेकगोधाहिश्वाविदाद्या विलेशयाः ।

प्रसङ्गणः—

‘गोखराश्वतरोष्ठाश्वद्वीपिसिहर्षवानराः ॥ ४६ ॥

। मार्जारमूषिकभ्याघ्रवृकबभ्रुतरदावः ।

लोपाकजंबुकश्येनचापवातादवायसाः ॥ ४७ ॥

जशष्णीभासकुररघृधोवृककुलिङ्गकाः ।

धूमिका मधुहा चेति प्रसहा मृगपक्षिणः ॥ ४८ ॥

महामृगाः

‘वराहमहिषन्यकुर्वुरोहितवारणाः ।

सुमरश्चमर. खङ्गो गवयश्च महामृगाः ॥ ४९ ॥

१—प्रतुङ्ग—तुङ्गेनाहस्यमक्षणात्प्रतुदाः । जीवजीवकः—एकोदरोद्विधिराः दान्यूहो-  
ऽध्रकाकः । भृंगाह्वोभृङ्गराजः, लदालटेरा । हारीत, ‘हारिल’ । भेकः मेघा । गोधा  
‘गोह’ । ग्रहिःसर्पः । श्वावित् ‘साही’ । २ अश्वतरः ‘खच्चर’ । द्वीपी ‘चीता’ ।  
मार्जारो विडालः । वृकः भेड़िया हुंजार । बभ्रुर्नकुल इतिपदार्थं चन्द्रिका, तरधु-  
मृगादनः । लोपाकः ‘लोमडी’ । जम्बुकः स्फार । श्येनः, बाजः । चाप नीलकण्ठः, वातादः  
कुरकुरः । वायम. काकः । जशष्णी जशारिः । भासोगुप्तसदृशः । कुररः कण्ठाकुल  
हिन्दी । कुमिगो गृहचटकः । धूमिकाधूम्यारः । मधुहामधुवातकः । ३—न्यङ्कुः  
‘वाराहिरा’ बहुविपाणोमृगः । कुर्वन्बद्धभेदः शरदिमृङ्गत्वागो । रोहितोत्तोहित-  
वर्णः । वारणो हस्ती, स्तमरोयननुरगः । चमरः ‘चैवरी गाय’ । खङ्गो ‘गैदा’ ।  
‘गवयः’ नीलगाय ।

काश्यं केवलवार्ताञ्च गोमांसं मनियच्छति ।  
 उद्युगो गरीयान्महिषः स्वल्पादाज्यं बृहत्कृतम् ॥ ६५ ॥  
 तद्वद्वराहः यमहा रुचिगुणवज्रप्रदः ।  
 मत्स्याः परं कफकराः विलिचं मस्त्रिदोषघ्नम् ॥ ६६ ॥  
 सावरोहितगोर्बिलाः स्वे स्वे गर्भे वराः परम् ।

सैन्यत्याज्यमांसम्—

मांसं सद्योहतं शुद्धं भयःस्यं च भजेत्, त्यजेत् ॥ ६७ ॥  
 भृतं कृत्वा भृतं मेघं व्याधियारिविप्रेतम् ।

मांसविषयेऽन्यस्तातन्याः—

पुत्रियोः पूर्वपश्चार्धे<sup>१</sup> गुरुणौ, गर्भिणी गुरुः ॥ ६८ ॥  
 सधुर्योपि चतुष्पात्सु, विहगेषु पुनः पुमान् ।  
 गिरःस्वर्धोरगृह्यस्य कच्छाः सक्म्नोञ्च गौरवम् ॥ ६९ ॥  
 स्थामपकागमयोर्ध्वमातूर्वं विनिदिमद् ।  
 शोणितप्रभृतीनां च घातूनामुत्तरोत्तरम् ॥ ७० ॥  
 मांसादगूरीयो वृषणमेद्वकृमकृदगुदम् ।

शाकवर्ग—

शाकं पाठासठीमूषामूषामुनिपण्णततीजम् ॥ ७१ ॥  
 त्रिदोषघ्नं सधु ग्राहि सरावक्षववास्तुकम् ।  
 मुनिपण्णोऽग्निहृद्यस्तेषु राजक्षवः परम् ॥ ७२ ॥  
 ब्रह्मण्यशोविकारध्नः, वर्षाभिदि सुधास्तुकम् ।

काकमाचीगुणाः—

हन्ति दोषत्रयं कुष्ठं वृष्या सोप्या रसायनम् ॥ ७३ ॥

१ वयस्यं तरुणम् । २ मेघं-मेदुरं स्पृष्टमित्यर्थः । ३—गुंसः पूर्वार्धं त्रिमासं पशुवार्धं गुरुः । ४—पाठा "पाढो" । सठी कर्चूरः, मूषा—कासमदिका । मुनिपण्णो वर्तुलचान्नेरीसदृशपत्रः, "चोनविया" । सतीनो विष्णुकान्ता, राजक्षवः "नक-  
 धिकनी" । वास्तुकं "बधुवा" ।

लकाकमाची सरा स्वर्वा, चांगेर्यंस्तोऽग्निदीपनी ।  
ग्रहभ्रमशोऽनिलश्लेष्महितीप्ला ग्राहिणी सधुः ॥ ७४ ॥

पटोलादीनां गुणाः—

पटोलं सप्तलारिष्टशार्ङ्गंष्टावल्गुजामृताः ।  
येनाग्रं बृहती वासा कुंतली तिलपर्णिका ॥ ७५ ॥  
मंहुकपर्णी कर्कोटककरवेह्लकर्पटाः ।  
नाडाकसायं गोजिह्वा वार्ताकं वनतिक्तकम् ॥ ७६ ॥  
करीरं कुलकं नंदी कुचेलां शकुलादनी ।  
कठिलं केम्बुकं शोतं सकोशातककर्कशम् ॥ ७७ ॥  
तिक्तं पाके कटु ग्राहि वातलं कफपित्तजित् ।  
हृद्यं पटोलं कामनुस्वादुपार्कं रसप्रदम् ॥ ७८ ॥  
पित्तल दीपनं भेद वातघ्नं बृहतीद्वयम् ।  
वृषं तु वमिकासपर्नं रक्तनिहं परम् ॥ ७९ ॥  
कारवेह्ल सकटुकं दीपनं कफजस्परम् ।  
वार्ताकं कटुतिक्तोष्णं मधुरं कफवातजित् ॥ ८० ॥  
सक्षारमग्निजननं हृद्यं हृद्यमपित्तलम् ।  
करीरमाघ्मानकरं कषायस्वादुतिक्तम् ॥ ८१ ॥  
कोशातकावल्गुजकी भेदनावग्निदीपनी ।  
तंडुलीयो हिमो रुक्षः स्वादुपाकरसा सधुः ॥ ८२ ॥

लकाकमाची “मकीय” भ्रमकुड्या इति भाषा । चांगेरी “ममलोनिमा” इति लोके ।

१ सप्तला मातला । अरिष्टोनिम्बः । शार्ङ्गंष्टा—काकजह्वामसी । अवल्गुजा वाकुची । अमृता गुडची । कुंतली—मूदमतिलजातिः । तिलपर्णिका—‘हुरहुर’ इति लोके । मंहुकपर्णीब्राह्मो । कर्कोटकः ‘खेकसा’ इति लोके । कर्पटः पित्तपापडा नाडी कलायं—मत्स्याधः । गोजिह्वा “वनगोभी” इति लोके । वार्ताकं ‘भटा,’ इति लोके । वनतिक्तकम् “कुरैया” हिन्दी । कुलकं काकतिन्दुकम् । नंदी मेपशृङ्गी । कुचेला पाठाभेदः, शकुलादनी ‘कुटकी’ हि० । कठिलं पुनर्नवा । कोशातकः ‘सरोई’ हि० । कर्कशः कम्पिलकः । तंडुलीयः चौराई हि० ।



मदपित्तविपासप्लवः, 'मुंजातं वातपित्तजित् ।  
 स्निग्धं शीतं गुरु स्वादु बृंहणं शुक्रवृत्तपरं ॥ ८३ ॥  
 गुर्वो मरा तु पालकया, 'मदपनी चाप्सुषोदका' ।  
 पालनयावत्स्मृतञ्चुः स तु संग्रहणात्मकः ॥ ८४ ॥  
 'विदारो वातपित्तप्ला मूत्रला स्वादुको ला ।  
 जीवनो बृंहणो कंठ्या गुर्वो वृष्ट्या रगावनम् ॥ ८५ ॥  
 चधुष्या मर्षदोषपनी जीवंती मधुरा हिमा ।

कूप्माण्डादि गुणाः—

'कूप्माण्डतुंबकालिगकककौर्वैर्वास्तिडिजम् ॥ ८६ ॥  
 तथा त्रपुसचोनाकचिर्भटं कफवातवृत् ।  
 भेदि विष्टंममिष्यंदि स्वादुपाकरसं गुरु ॥ ८७ ॥  
 बल्लीफलानां प्रवरं कूप्माण्डं वातपित्तजित् ।  
 बस्तिशुद्धिकरं मृष्यम्, त्रपुसं त्वत्तिमूत्रलम् ॥ ८८ ॥  
 तुंब कक्षतरं ग्राहि, कालिगंवाक्चिर्भटम् ।  
 बालं पित्तहरं शीतं विद्यात्पकमतोज्ज्वला ॥ ८९ ॥  
 'शीर्णवृत्तं तु सक्षारं पित्तलं कफवातजित् ।  
 रोचनं दोषनं हृद्यमष्टोलाऽऽमाहनुजम् ॥ ९० ॥

मृणालादि गुणाः—

'मृणालविसशाखककुमुदोत्पलकदकम् ।  
 नंदीमापककेलूटभृंगाटककशेरुकम् ॥ ९१ ॥

१ मुंजातं कन्दविशेष इति हेमेन्द्रिः । २ पालकया 'पालक' चतुः शाकविशेषः हि० । ३ उषोदका "षोई" हि० । ४ विदारो विदारोवन्दः । "पताल कोहड़ा" हि० । ५ मुंजम् 'लोकी' हि० । कालिङ्गः 'वरवृज' हि० । कर्करिः "फूट" हि० । एर्वाहः "करुड़ी" हि० । तिडिजम्—"देहसो" । त्रपुषम् 'खीरा' हि० । चोनाकम् तदारूपम् । चिर्भटम् "चिचिड़ा" । ६ शीर्णवृत्तम् 'पेहटा-कवरी' हि० । ७ मृणालम् मूदमकमलनालः । विसम् स्थूलकमलमूलम् "भमोड़ा" । शाखकवन्दम् पथकन्दम् । कुमुदं 'कोई' हि०, नंदीपापकः—वानोरकः । केलूटं—जलोदुम्बरः । भृंगादनम् विशेषभेदनाम् । कलोड्यर्थ 'कमल गट्टा' हि० ।

प्रोवादनं कलोह्यं च स्नं ग्राहि हिमं गुहं ।

कलंवादि गुणाः—

‘कलंवातिकामार्यकुटिञ्जरकुतुंबकम् ॥ ६२ ॥

चिल्लोत्तवाकलोणीकाकुट्टकगवेयुकम् ।

जीवतमुभवेदगजयवशाकमुवर्चलम् ॥ ६३ ॥

घ्रासुकानि च सर्वाणि तथा मूष्यानि लक्ष्मणम् ।

स्वादु हसं सलवणं वातश्लेष्मकरं गुह ॥ ६४ ॥

शीतलं सृष्टपित्तमूत्रं प्रायो विष्टम्य जीर्यति ।

स्विन्नं निष्पीडितरसं स्नेहाढ्यं नातिदोषसम् ॥ ६५ ॥

समुपना तु या चिल्लो सा वास्तुकसमा मता ।

तर्कारीवरणं स्वादु सतिषत् कफवातजिव् ॥ ६६ ॥

‘वर्गाम्बौ कालघाकं च सत्तारं कटुतिक्तम् ।

दीपनं भेदनं हंति गरशोककफानिवाध् ॥ ६७ ॥

दीपनाः कफवातघ्नाग्निरिबि<sup>१</sup>त्वांकुराः सराः ।

शतावयंकुरास्तित्ता मूष्या दोषत्रयापहाः ॥ ६८ ॥

रुक्षो वंशकरीरस्तु विदाही वातपित्तलः ।

‘पत्तुरो दीपनस्तित्तः प्लीहाशः कफवातजिव् ॥ ६९ ॥

कृमिकसकफोत्प्लेदाम् कास<sup>२</sup>मर्दो जयेत्सरः ।

स्त्रोष्णमम्लं कौमुभं गुह पित्तकरं सरम् ॥ ७० ॥

गुष्णं सार्यपं बद्धविष्मूत्रं सर्वदोषहृत् ।

मूलक गुणाः—

यद्रासमव्यक्तरसं किञ्चित्सारं सतिक्तम् ॥ १०१ ॥

१ कलम्बः कदम्बः । नालिका—अल्पसूक्ष्मकलम्बः “करेमु” । मार्यः “मरसा” । कुटिञ्जरस्ताम्रमूलकम् । कुतुम्बको द्वौष्णपुष्पी । लट्वाको गुग्गुलु-  
शाकम् । एडगजश्चक्रमर्दः । सुवर्चला—सूर्य मुखी” । २ मूष्यानि—चणुकमुद्गा-  
दिपत्राणि । लक्ष्मणं लक्ष्मणा—यष्टीमधुना । ३ वर्गाम्बौ रक्तश्वेतपुनर्वे ।  
४ चिरिचित्तः करंजः । ५ पत्तुरोमत्स्यासः । ६ कासमर्दः “कसीदो” ।

तन्मूलकं<sup>१</sup> दोषहरं लघु सोम्यं नियच्छति ।  
 गुल्मकाससद्यश्वासवणनेत्रगन्धामयम् ॥ १०२ ॥  
 स्वराभिसादोदावर्तपीनसांघ्र, महत्पुनः ।  
 रसे पाने च कटुकमुष्णवीर्यं त्रिदोषहृत् ॥ १०३ ॥  
 गुर्वमिष्यंदि च, स्निग्धस्त्रिघ्नं<sup>२</sup> तदपि वातजित् ।  
 वातश्लेष्महरं शुष्कं सर्वम्, आमं तु दोषलम् ॥ १०४ ॥

### पिण्डालु गुणाः—

कटूप्रणो वातकफहा पिण्डालुः<sup>३</sup> पित्तवर्धनः ।

### कुठेरादि गुणाः—

कुठेरन्निपुसुरसगुप्तामुरिभूस्तुल्यम् ॥ १०५ ॥  
 फणिल्लार्णकजंबीर्यभृति ग्राहि शालनम् ।  
 विदाहि कटु स्फोष्णं हृद्यं दोषनरोचनम् ॥ १०६ ॥  
 दृक्शुक्रमिहृत्तीक्ष्णं दोषोत्त्वलेशकरं लघु ।

### सुरस गुणाः—

हिष्मकासप्रमथवासपाश्वस्वपूतिगन्धहा ॥ १०७ ॥  
 सुरसः, सुमुखो नातिविदाहो गरशोकहा ।  
 आद्रिका तित्तमधुरा मूत्रला न च पित्तहृत् ॥ १०८ ॥

### लशुन गुणाः—

लशुनो भृशतीक्ष्णोष्णः कटुपाकरसः सरः ।  
 हृद्यः केश्यो गुरुर्वृष्यः स्निग्धो रीचनदोषनः ॥ १०९ ॥  
 मन्मसंधानवृद्धल्यो रक्तपित्तप्रदूषणः ।  
 किन्नासकुष्ठगुल्माऽशोमेहकिमिकन्नाऽनिलाधु ॥ ११० ॥  
 सहिष्मपीनसश्वासकासान् हन्ति रसायनम् ।

१ तन्मूलकं वातादिगुणयुक्तं मूलकम् । २ तदपि-महन्मूलकमपि । सर्वं-लघु-  
 महत्तु च । ३ पिण्डालुः-"पातू" । वाराही कन्द इति हेमाद्रिः । ४ कुठेरः-वन-  
 तुलसी । शिपुः शोमाञ्जनः । सुरसस्तुलसी । सुमुखः कुठेरभेदः । आयुरो राजिका ।  
 शालनमर्चदंशो येन सहार्घं भोक्तुं युज्यते । आद्रिका-आर्द्रभान्यकम् ।

पलाण्डु गुणाः—

पितांडुस्तदगुणान्नूनः श्लेष्मलो नाऽविपित्तलः ॥ १११ ॥

रूपवातार्शसां पथ्यः स्वेदेऽभ्यवहृत्तो तथा ।

गृजनक गुणाः—

तीक्ष्णो गृजनको ग्राही पित्तिनां हितकृत्त सः ॥ ११२ ॥

दीपनः सूरणो रुच्यः कफघ्नो विमदो लघुः ।

विरोपादर्शसो पथ्यः, भूकंदस्त्वतिदोपलः ॥ ११३ ॥

पत्रादीनां यथोत्तरं गुरुत्वम्—

पत्रे पुष्पे फले नाले कंदे च गुरुता क्रमात् ।

वरावरत्वे—

वरा शाकेषु जीवंतो, सर्पपास्त्ववराः परम् ॥ ११४ ॥

फलवर्गः—

द्राक्षा<sup>१</sup> फलोत्तमा कृष्या भक्षुष्या सुष्टमूत्रविद् ।

स्वादुपाकरसा स्निग्धा सकपाया हिमा गुरुः ॥ ११५ ॥

निहंत्यनिसपित्ताक्षतित्तास्मत्त्वमदात्यमा<sup>२</sup> ।

तृष्णाकामभयस्वासस्वरभेदक्षतक्षया<sup>३</sup> ॥ ११६ ॥

दाडिम गुणाः—

उद्रित्तपित्ता<sup>४</sup> जयति त्रीन् दोषान् स्वादु दाडिमम् ।

पित्ताविरोधि नात्युष्णमभलं वातकफापहम् ॥ ११७ ॥

सर्वं हृद्यं मधु स्निग्धं ग्राहि रोचनदीपनम् ।

मोचादि गुणाः—

गोचक्षूर्जरपत्तनालिकेरपरूपकम् ॥ ११८ ॥

भाम्नाततालकाश्मर्यराजादनमधूकजम् ।

१ पलाण्डुः 'प्याज' हि० । २ गृजनकः 'गाजर' हि० । ३ भूकन्दः, मरुषी, पुद्गर्वा । ४ द्राक्षा मुनक्का किशमिश । ॥ उद्रित्तपित्ता<sup>४</sup> पित्ताधिक्यम् त्रीन्दोषान् । ५ मोचः 'केला' पत्तसः 'कटहर' । नालिकेरः 'नारियल' । परूपकं 'फालसा' । ६ भाम्नातः 'भामड़ा' । राजादनं 'खिरनी' ।

- १ सोवीरबदरांकोल्लफल्गुश्लेष्मातकोद्भवम् ॥ ११९ ॥  
 १ वातामाभिपुकाशोऽमुकूलकनिकोचकम् ।  
 उरुमाणं प्रियालं च बृंहणं गुरु शीतलम् ॥ १२० ॥  
 दाहक्षतक्षयहरं रक्तपित्तप्रसादनम् ।  
 २ स्वादुपाकरसं स्निग्धं विष्टंभि कफशुक्रवृत् ॥ १२१ ॥  
 फलं तु पित्तलं सालं सरं कार्मर्यजं हिमम् ।  
 शङ्खमूत्रविबन्धप्लं केश्यं मेघ्यं रमायनम् ॥ १२२ ॥  
 चातामाद्युष्णवीर्यं तु कफपित्तकरं सरम् ।  
 परं वातहरं स्निग्धमनुष्णं तु प्रियालजम् ॥ १२३ ॥  
 प्रियालमज्जा मधुरो वृष्यः पित्तानिलापहः ।  
 कोलमज्जा गुणैस्तद्वत्तृद्यदि कासजिच्च सः ॥ १२४ ॥  
 पक्वं सुदुर्जरं धिल्वं दोषलं पूतिमारुतम् ।  
 दोषलं कफवातघ्नं बालं, 'शाह्यभय' हि तत् ॥ १२५ ॥  
 कपित्थगामं कंठप्लं दोषलं दोषघाति तु ।  
 पक्वं हिष्माणवमश्रुजित्सर्वं शाहि विषापहम् ॥ १२६ ॥  
 जांबवं गुरु विष्टंभि शीतलं भृशवातलम् ।  
 संग्राहि भूषणशुक्रोत्कंठ्यं कफपित्तनुत् ॥ १२७ ॥

आम्र गुणाः—

- १ वातपित्तालवृद्ध्यालं, बद्धास्थि कफपित्तवृत् ।  
 गुर्वांशं वातजित्पक्वं स्वादुम्लं कफशुक्रवृत् ॥ १२८ ॥  
 'मृक्षाम्लं' ग्राहि रुक्षोष्णं वातश्लेष्महरं लघु ।  
 'शम्या' गुरुष्णं केशघ्नं रुक्षं, पीलु तु पित्तलम् ॥ १२९ ॥  
 कफवातहरं भेदि प्लोहार्षःकुमिगुल्मनुत् ।  
 सतिक्तं स्वादु यत्पीलु नात्युष्णं तत्त्रिदोषजिद् ॥ १३० ॥

१ सोवीरं बदरभेदः । बदरं "वेर" । अङ्गुलं "देरा" । फल्गुः "कठमर" ।  
 श्लेष्मातकः "लसोडा" । वातामं "वाताम" । अभिपुकाः विलगोजा, अशोढः,  
 "अलरोट" । मुकूलकोदन्तीफनम् । निकोचम् "पिस्ता" । उरुमाणं स्निग्ध फलम्,  
 प्रियालं "चिरोजी" । २ उमर्यं—बालपक्ष ३ सर्वगामं पक्वं च । ४ वृक्षाम्लं  
 "चिपावित" । ५ शम्या 'अमलता' हि० ।

त्वक्तित्कन्दुका स्निग्धा मातुलुंगस्य<sup>१</sup> वातजित् ।  
 बृंहणं मधुरं मांसं वातपित्तहरं गुरु ॥ १३१ ॥  
 लघु तत्केसरं कासश्वासहिष्मामदात्ययाम् ।  
 आस्थशोपानिलशुष्मविवंधच्छर्दरोचकाम् ॥ १३२ ॥  
 गुल्मोदरार्शःशूलानि मंदाग्नित्वं च नाशयेत् ।

**भक्ष्यातकगुणाः—**

भक्ष्यातकस्य त्वङ्मांसं बृंहणं स्वादु शीतलम् ॥ १३३ ॥  
 तदस्थ्यग्निसमं मेध्यं कफवातहरं परम् ।  
 स्वाद्वर्त्म शीतमुष्णं च द्विधा पालेवतं गुरु ॥ १३४ ॥  
 रुच्यमत्यग्निप्रमनं रुच्यं मधुरमारुकम्<sup>१</sup> ।  
 पक्वमाणु जरां याति नात्युष्णं गुरु दोषलम् ॥ १३५ ॥

**द्राक्षादिगुणाः—**

द्राक्षा परुषकं चार्द्रमम्लं पित्तकफप्रदम् ।  
 गुरुष्णवीर्यं वातघ्नं गरं च करमर्दकम् ॥ १३६ ॥  
 तथाऽम्लं कोलकर्मधूलकुचाग्रातमारुकम् ।

**ऐरावतादिगुणाः—**

ऐरावतं दंतशठं सतूदं मृगलिङ्गिकम् ॥ १३७ ॥  
 नातिपित्तकरं पक्वं शुष्कं च करमर्दकम् ॥

**अम्लीकादिगुणाः—**

दीपनं भेदनं शुष्कमम्लीकाकोलयोः फलम् ॥ १३८ ॥

- 
- १ मातुलङ्ग-विजीरानीवृत् हि० । मांसत्वक्केसरव्यतिरिक्तोऽवयवः ।  
 २ तदस्थि भक्ष्यातकास्थि । पालेवतं तिन्दुकाकारिरिवतकाख्यम् । ३ भारकं  
 "प्राइ" ॥ परुषकं 'कालसा' हि० । ४ करमर्दकं 'चरोडा' हि० । ५ ऐरावतं—  
 'नारंगो' हि० । कोलः 'बड़ा बेर' कर्कन्धू 'छोटी बेर' । लकुचं 'बड़हर'  
 हि० । आग्रातः 'ग्रामड़ा' हि० । दन्तशठं 'जमीरी नीबू' हि० । तूदं—  
 'महतूत' हि० ।

तृप्णाश्रमवत्तमन्त्रेदि लघ्विष्टं कफवातयोः ।

लकुचस्यावरत्नम्—

फलानामवरं तत्र लकुचं सर्वदोषहृत् ॥ १३९ ॥

त्याज्यफलशाकनिर्देशः—

हिमानिलापणदुर्वातभ्याललादिद्रूपितम् ।

जंतुषुष्टं जले मद्यमभूमिजगतार्तवम् ॥ १४० ॥

अन्यधान्ययुतं हीनवीर्यं जीर्णतयाऽपि च ।

धान्यं रथजेतया, शाकं ह्यसिद्धमकीमलम् ॥ १४१ ॥

असंजातरमं तद्वच्छुष्कं, चाग्न्यत्र भूलकात् ।

प्रायेण फलमप्येवं तथापि, बिल्दवर्जितम् ॥ १४२ ॥

लवणवर्गः—

विध्यदि लवणं सर्वं मूर्ध्नि सृष्टमलं विदुः ।

वातघ्नं पाकि तीक्ष्णोष्णं रोचनं कफपित्तहृत् ॥ १४३ ॥

सैन्धवगुणाः—

सैन्धवं तत्र सत्त्वाद् वृष्यं हृद्यं त्रिदोषनुत् ।

लघ्वनुष्णं दृशः पथ्यमविद्याहृदिपनम् ॥ १४४ ॥

सौवर्चलगुणाः—

लघु सौवर्चलं हृद्यं गुग्गुप्सुद्गारघोषनम् ।

कटुपाकं विबंघघ्नं दीपनीयं रुचिप्रदम् ॥ १४५ ॥

बिडगुणाः—

ऊर्ध्वाध्वजफवातानुलोपनं दीपनं बिडम् ।

विबंघानाहविष्टं भक्षुलगोरवनाशनम् ॥ १४६ ॥

सामुद्रगुणाः—

विपाके स्वादु सामुद्रं गुरु श्लेष्मविवर्धनम् ।

## औद्भिदगुणाः—

मतितक्तदुक्तसारं तीक्ष्णमुत्पलेदि'चोद्भिदम् ॥ १४७ ॥

कृष्णे सौवर्चनगुणा लवणे गंधवर्जिताः ।

रोमकं लघु पांसूत्थं सधारं श्लेष्मलं गुरु ॥ १४८ ॥

नवगुणानां प्रयोगे तु संधवादीन् प्रयोजयेत् ।

## यवशूकजगुणाः—

गुल्महृदग्रहणीपांडुलीहानाहगतामयाम् ॥ १४९ ॥

आसारः कृपणसांश्च शमयेद्यवशूकजः ।

## क्षारगुणाः—

क्षारः सर्वंश्च परमं तीक्ष्णोष्णः कृमिजिह्वकृः ॥ १५० ॥

पित्तासृग्दूषणः पाको ह्येवहृद्यो विदारणः ।

अपथ्यः कटुलावण्याचक्षुक्रोजः केणचक्षुषाम् ॥ १५१ ॥

## हिङ्गुगुणाः—

हिङ्गु वायवकफानाहशूलघ्नं पित्तकोपनम् ।

कटुपाकरसं रुच्यं दीपनं पाचनं लघु ॥ १५२ ॥

## हरीतकीगुणाः—

कपाया मधुरा पाके रुक्षा विलवणा' लघुः ।

दोपनी पाचनी मेघ्या वयसः स्थापनी परा ॥ १५३ ॥

उष्णवीर्या सराऽऽयुष्या बुद्धीदियबलप्रदा ।

कृष्टवैवर्यवैस्वर्यपूराणविषमज्वराम् ॥ १५४ ॥

जिरोऽक्षिपांडुहृद्रोगकामलाग्रहणीगदाम् ।

मशोपजोफाटीसारमेदमोहवमिक्रिमोश्च ॥ १५५ ॥

श्वामकासप्रसेकाण'स्त्रीहानाहगरौदरम् ।

दिवंधं श्रोतसां गुल्ममूर्खस्तंभमरोचकम् ॥ १५६ ॥

१ रोमकं पांसूत्थं लवणम् । २ यवशूकजः 'जवाक्षार' । ३ विलवणा लवणरहिता-पञ्चरमा ।



हरीतकी जयेद्व्याधीस्तांस्तांश्च कफघातजाम् ।

आमलक गुणाः—

तद्वदामलकं शीतमम्लं पित्तकफापहम् ॥ १५७ ॥

विभीतक गुणाः—

कटु पाके हिमं केश्य<sup>१</sup> मसमोषच्च तद्गुणम् ।

त्रिफला गुणाः—

इयं रसायनवरा त्रिफलाऽश्यामयापहा ॥ १५८ ॥

रोपणी त्वग्गदक्लेदनेदोमेहकफाक्षजित् ।

त्रिचतुर्जात गुणाः—

‘सकेसरं चतुर्जातं, त्वक्पत्रं त्रिजातकम् ॥ १५९ ॥

पित्तप्रकोपि तीक्ष्णोष्णं क्लृप्तं दीपनरोचनम् ।

मरिचगुणाः—

रसे पाके च कटुकं कफघ्नं मरिचं लघु ॥ १६० ॥

श्लेष्मसा स्वादुशीताद्रीं गुर्वी स्निग्धा च पिप्पली ।

‘सा शुष्का विपरीताऽतः स्निग्धा कृप्या रसे कटुः ॥ १६१ ॥

स्वादुपाकाऽनिलश्लेष्मश्वासकासापहा शरा ।

न<sup>२</sup>तामस्युपयुञ्जीत रसायनविधिं विना ॥ १६२ ॥

‘नागर गुणाः—

‘नागरं दीपनं बृष्यं ग्राहि हृद्यं विबंघनुत ।

कृष्यं लघु स्वादुपाकं स्निग्धोष्णं कफघातजिह् ॥ १६३ ॥

त्रिकटुक गुणाः—

‘तद्वदार्द्रकमेतच्च त्रयं त्रिकटुकं धयेत् ।

स्पीत्याग्निषदनश्वासकासश्लोषदपीनसाम् ॥ १६४ ॥

१ घसं—‘बहेरा’ । २ केसरं ‘नाग केसर’ । ३ सा पिप्पली । ४ ताम्—  
पिप्पलीम् । ५ नागरं—‘सोंठ’ हि० । ६ तद्वत् नागरस्तुत्यगुणम् । आर्द्रकं ‘घदरक’  
हि० । आर्द्रकं नागरबाटीयमेव । एतत्त्रयं—मरिचपिप्पली नागराणि ।

पञ्चकोल गुणाः—

१ चविका पिप्पलीमूलं मरिचात्यांतरं गुणैः ।

चित्रकोज्जितमः पाके शोफार्तःकुमिकुष्ठहा ॥ १६५ ॥

२ पंचकोलकमेतच्च मरिचेन विना स्मृतम् ।

गुल्मप्लोहोदरानाहशूलघ्नं दीपनं परम् ॥ १६६ ॥

बृहत्पञ्चमूल गुणाः—

१ बिल्वकाशमर्यतर्कारीपाटलाट्टुङ्कर्महत् ।

जयेत्कपायतिश्चोष्णं पंचमूलं कफानिलौ ॥ १६७ ॥

ह्रस्वपंचमूल गुणाः—

१ ह्रस्वं बृहत्पञ्चमूलोदयगोक्षुरकैः स्मृतम् ।

स्वादुपाकरसं नातिशीतोष्णं भवदोषजिन् ॥ १६८ ॥

मध्यमपंचमूल गुणाः—

१ बलापुनर्नवैरंडमूर्पपर्णीद्वयेन तु ।

मध्यमं कफवानघ्नं नाडतिवित्तकरं गरम् ॥ १६९ ॥

जीवनास्थ्यपंचमूल गुणाः—

१ शमीरुवीराजीवतीजीवकर्पभकैः स्मृतम् ।

जीवनास्थ्यं च बधुप्यं धूप्यं पित्तानिलापहम् ॥ १७० ॥

तृणपंचमूल गुणाः—

१ तृणास्थं पित्तजिह्वर्मकामेधुशरशालिभिः ।

१ चविका 'चान' हि० । २ पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रक नागरैः पञ्चकोलम् ।  
३ काशमर्यं 'खंभार' हि० । तर्कारी अग्निमन्यः 'अग्नेशु' हि० । पाटला 'पाठर'  
हि० । टुङ्गकः स्योनाकः 'सोनापाडा' हि० । महत् पञ्चमूलम् । ४ बृहत्तोडमम्  
'भटवट्या', 'वनभाटा' हि० । अंशुमती द्वयं—शालपर्णी 'मरिचन', पिठवन हि० ।  
ह्रस्वं—तट्टपञ्चमूलम् । ५ मूर्पपर्णीद्वयं—मापपर्णी, मुद्गपर्णी । ६ शमीरुः शतावरी ।  
वीरा क्षीरकाकोली । ७ दर्भः कुशः । दोषाः प्रसिद्धाः ।

## अध्यायानुक्रमशिका—

सूक्तशिबीपदाभ्रमांसनाकफलोपपत्तेः ॥ १७१ ॥  
 वयितेरग्रलेखोऽयमुक्तो नित्योपयोगिकः ।”

## सप्तमोऽध्यायः ।

अगदःस्वस्थयुत्तविषयश्च—

अथातोऽन्नरसाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

राजसमीपेवैद्यस्थितिः—

“राजा राजगृहासन्ने प्राणाचार्यं<sup>१</sup> निवेशयेत् ।  
 सर्वदा मे<sup>२</sup> भवत्येवं सर्वत्र प्रतिनाशुविः ॥ १ ॥

वैद्येन राजा रक्ष्यः—

अन्नपानं विषादयेद्विशेषेण महीपतेः ।  
 योगक्षेमी<sup>३</sup> तदायत्ती यमाद्या यन्निबन्धनाः ॥ २ ॥

विषजुष्टौदन लक्षणम्—

भोदनो विषवाम् सांद्रो मात्वविस्तार्यतामिव ।  
 क्षिरेण पच्यते, पक्वो भवेत्पुष्पितोपमः ॥ ३ ॥  
 मयूरकंठुल्योऽप्या मोहमूर्छाप्रसेकवृत् ।  
 हीयते वर्णगंधाद्यैः क्लिद्यते चंद्रकावितः ॥ ४ ॥

व्यञ्जनानां परीक्षा—

“व्यञ्जनान्याशु मृष्यन्ति<sup>४</sup> ध्यामन्वायानि तत्र च ।

१ प्राणाचार्यं वैद्यम् । २ स प्राणाचार्यः । ३ अप्राप्तस्यप्राप्तियोगः, प्राप्तस्य-  
 रक्षणं क्षेमः । तदायत्ती राजाधीनी । यन्निबन्धनाः योगक्षेमकारणकाः ।  
 ४ व्यञ्जनानि—पूपादीनि, दधितक्राम्बर्गसंस्कृतानि च खाद्यानि । ५ ध्यामोमसिनः ।

होनातिरिक्ता विकृता छाया दृश्यते नैव १ वा ॥ ५ ॥  
फेनोर्ध्वराजोसीमन्तं तंतुवुद्बुदसंभवः ।

विषदूषितरसादि वर्णः—

विच्छिन्नविरसा रंगाः सांढवाः शाकगामिणम् ॥ ६ ॥  
नीला राजी रसे, साम्रा क्षीरे, दधनि दृश्यते ।  
श्यावा, पांताऽसिता तम्बे, घृते पानीयसंश्रिता ॥ ७ ॥  
कालो मद्यांभसोः, क्षौद्रे हरिसैलेऽरुणोपमा ।  
पाकः फलानामाभानां, पक्वानां परिकीर्णम् ॥ ८ ॥  
द्रव्याणामाद्रंशुष्काणां श्यावा स्नानिविवर्णते ।  
मृदूनां कठिनानां च भवेत्स्पर्शविपर्ययः ॥ ९ ॥  
मास्यस्य स्फुटिताप्रत्यं स्नानिर्गन्धात्तरोद्भवः ।  
ध्याममण्डलता वस्त्रे शदर्नं तंतुपद्मणाम् ॥ १० ॥  
धातुभौक्तिककाष्ठाश्मरस्नादिषु मलाक्तता ।  
लोहस्पर्शप्रभाहानिः सप्रभत्वं तु मृन्मये ॥ ११ ॥

विषदातुश्चिह्नम्—

विषदः श्यावशुष्कास्यो विनक्षो<sup>१</sup> वीक्षते दिशः ।  
स्वेदवेपथुमांस्त्रस्तो भीतः स्मरति जु<sup>२</sup> भवे ॥ १२ ॥

बहौ सविपस्यान्नस्यपरीक्षा—

प्राप्यान्नं सविपं त्वत्तिरेकावर्तः स्फुटत्यति ।  
शिलिकंठमधूमाचिरनचिर्वोश्ममध्वाम् ॥ १३ ॥

भृगुपक्षिद्वारापरीक्षा—

त्रियते मक्षिकाः प्राण्य, काकः क्षामस्वरो भवेत् ।

१ नैव या दृश्यते छाया । मानवजातेः, तत्र व्यञ्जनकार्ये । २ सीमन्तो  
रेखा । ३ ध्याममण्डलता "धब्बा" हिन्दी । ४ विसर्गः—लजितः ।  
दिशः समन्तात् ।

१ उत्क्रोशन्ति च दृष्ट्वेतच्छुद्धात्पूहसारिकाः ॥ १४ ॥  
 हंसः प्रस्मलति, ग्लानिर्जीविंजीवस्य जायते ।  
 चकोरस्याऽक्षिर्वारम्यं, त्रैचस्य स्यान्मदोदयः ॥ १५ ॥  
 कपोतपरभृद्दाचक्रवाका जहत्यसूम् ।  
 उद्रेगं याति मार्जारः, शङ्खमुचति वानरः ॥ १६ ॥  
 हृष्येन्मयूरस्तदृष्ट्वा मन्दतेजो भवेद्विषम् ।  
 इत्यग्रं विषयज्ज्ञात्वा त्यजेदेवं प्रयत्नतः ॥ १७ ॥  
 यथा तेन विषघोरमपि न शुद्रजंतवः ।

### सविषाणस्पर्शदोषाः—

स्मृष्टे सु बंडुदाहोपाग्नरातिस्कोटमुषयः ॥ १८ ॥  
 नलरोमभ्रुतिः घोफः, सेकाद्या विषयाशनाः ।  
 घस्तास्तत्र<sup>१</sup> प्रलेपाश्च<sup>२</sup> सेव्य<sup>३</sup> र्चदनपत्रकैः ॥ १९ ॥  
 ससोमवल्कतालीमपत्रपुष्ठाभुतानतैः ।

### सविषेऽन्नेमुखप्राप्ते दोषाः—

सालाबिह्वौष्ठयोर्जाड्यमूपा<sup>४</sup> चिमिचिमायनम् ॥ २० ॥  
 दंतहर्षो रसाभासं हनुस्तांश्च वक्त्रगे ।  
 सेव्याद्यं<sup>५</sup> स्तत्र गंडूपाः सर्वं च विषजिद्वितम् ॥ २१ ॥

### आमाशयगतेदोषाः—

आमामाशयगते स्वेदमूर्च्छाध्यानमदभ्रमाः ।  
 रोमहर्षो वमिदहिश्चभुर्हृदयरोवनम् ॥ २२ ॥  
 बिंदुभिश्चाचर्योऽशानां, पकाशयगते पुनः ।  
 मनेकवर्णं वमति भूत्रयत्यतिगार्यते ॥ २३ ॥  
 तंद्रा कृशत्वं पांडुत्वगुदरं बलसंक्षयः ।

१ उत्क्रोशन्ति—उच्चैः शब्दं कुर्वन्ति । सारिका 'मैना' हि० । परभृत्—

कोकिलः । २ तत्र विषस्पर्शज्जातेषु कण्डूवादिरोगेषु । ३ सेव्य 'खरा' हि० । पत्रकं

'पद्माक्ष' हि० । सोमवल्कः कट्फलमिति हेमाद्रिः । नतं तगरम् । ५ ऊचा दाहः ।

### भुक्त विषस्यौषधम्—

‘तयोर्वातविरक्तस्य हरिदे कटभीं गुडम् ॥ २४ ॥

सिंदुवारितनिष्पावबाष्पिकाशतपविकाः ।

तंदुलीयकमूलानि कुम्कुटांडमबल्लुजम् ॥ २५ ॥

नावनांजनपानेषु योजयेद्विषशातये ।

विषभृक्ताय दद्याच्च शुद्धायोर्ध्वमयस्तथा ॥ २६ ॥

सूक्ष्मं ताम्ररजः काले सक्षौद्रं हृद्विशोधनम् ।

### हेमपाने विषयाघाभावः—

शुद्धे हृदि ततः शाणं हेमधूर्णस्य दापयेत् ॥ २७ ॥

न सज्जेत हेमपात्रे पद्मपत्रेऽनुबद्धिपम् ।

जायते विपुलं चायुर्गरेऽप्येव विधिः स्मृतः ॥ २८ ॥

### विरुद्धाहारस्य गरतुल्यता—

विरुद्धमपि आहारं विद्याद्विषमरोपमम् ।

### विरुद्धाहारकथनम्—

भ्रान्तूपमामिषं मापत्तीद्रक्षीरविरुद्धकः<sup>१</sup> ॥ २९ ॥

विरुध्यते सह विसंभूतकेन गुडेन वा ।

विशेषात्पयसा मत्स्या मत्स्येऽप्यपि चित्सीचिमः ॥ ३० ॥

### दुग्धेनाम्लद्रव्यविरोधः—

विरुद्धमम्लं पयसा सह सर्वं फलं तथा ।

‘तद्वत्कुलत्पयवरकम्’गुवल्लमकुष्ठकाः ॥ ३१ ॥

भक्षयित्वा हरितकं<sup>२</sup> मूलकादि पयस्स्यजेत् ।

वाराहं आविधा नाद्याद्घ्ना पृषतकुक्कुटी ॥ ३२ ॥

१ तयोरोरामनकाशयगतयोर्विषयोः । कटभी—मालकागुनी<sup>३</sup> पिरिकणिकावा ।  
सिंदुवारितोनिर्गुण्डा । बाष्पिक—हिंशुपत्र । शतपविका वषा । २ विरुद्धक-  
मङ्कुरितंभान्यम् । ३ तद्वत्-फलवत्पयसा सह विरुद्धा इत्यर्थः । कुलत्पः ‘कुरपो’  
वरकः । ‘वरं’ कंठुः ‘कुक्कुनी’ बल्लोनिष्पावः । -मकुष्ठकः मोठ, ‘योपी’ हि० ।  
४ हरितकं मूलकं न पुनर्भूलकशाकम् ।

१ भ्रामभांसानि पित्तेन, मापसूनेन मूलकम् ।

अविं कुसुमशाकेन, विरीः गृह विरुद्धकम् ॥ ३३ ॥

मापसूपगुडक्षीरदध्याज्वलकुचं फलम् ।

फणं नदल्यास्तत्रेण दध्ना तालफलेन वा ॥ ३४ ॥

१ कणोपणाम्नां मधुना काकमाचो गुडेन वा ।

सिद्धां वा मत्स्यपचने, पचने नागरस्य वा ॥ ३५ ॥

सिद्धामन्यत्र वा पात्रे कामात्तामुपितां निशाम् ।

१ मत्स्यमिस्तत्तनस्नेहसाधिताः पिप्पलीस्त्रयजेत् ॥ ३६ ॥

कांस्त्ये दशाहमुपितं मपिरुणं स्वरुकरे ।

भातो विरुध्यते दून्यः कपिञ्जस्तप्रसाधितः ॥ ३७ ॥

ऐक्यं पापममुराकृशराः परिवर्जयेत् ।

तुल्यप्रमाणमध्वादेर्मिथोविरोधः—

मधुमपिर्वसातैलपानीयानि द्विशस्त्रिणः ॥ ३८ ॥

१ एकत्र वा समांशानि विरुध्यते परस्परम् ।

भिन्नांशे अपि गज्जाज्ये दिव्यवायंनुपानतः ॥ ३९ ॥

मधुपुष्करवोर्जं च, १ मधुमैरेषशार्करम् ।

मंथानुपानः क्षीरेयो, हारिद्रः कटुतैलवाग् ॥ ४० ॥

उपोदकातिसाराय तिलकल्केन साधिता ।

बलाका वारुणीषुता कुल्माषश्च विरुध्यते ॥ ४१ ॥

भृष्टा वराहवसया तीव्रं सद्यो निहत्यसूत्रम् ।

१ तद्वत्तितिरिपत्राद्वगोषानावकपिजलाः ॥ ४२ ॥

१ भ्राममपकम् । २ कणा—पिप्पली, तपणं भरिचम्, काकमाचो—‘मकोय’ हि० । मत्स्याः पच्यन्ते यस्मिन् पात्रे तस्मिन् मत्स्यपचने । ३ मत्स्या निस्तत्यन्ते भृज्यन्ते येन स्नेहेन । ४ अरुणकरं ‘मितावा’ हि० । ५ एकत्र वा सर्वाणि । ६ मधु-पुट्टीका वृत्तं, मैरेयं सज्जुरामबः, शार्करं शर्कराप्रधानं मद्ये कृशरीतं विरुध्यते । क्षीरेयो दुग्धकृतः पदार्थः । हारिद्रः पीतवर्णसर्पन्धत्रानुकारी शाकविशेषः । ७ सा-बलाका । कुल्माषः ‘धुधुरी’ हिन्दी । ८ तद्वत्—बलाकावत्सद्यो मारयति ।

१ ऐरडेनाश्रिना सिद्धास्तरीतेन विमूर्द्धिताः ।

हारीतमासं हारिद्वल्लङ्घकप्रोतपानितम् ॥ ४३ ॥

हारिद्वल्लङ्घिना सद्यो व्यापादयति जीवितम् ।

भस्मपांशुपरिध्वस्तं तदेव च समाश्रितम् ॥ ४४ ॥

संक्षेपेण विरुद्धलक्षणं तच्चिकित्सा च—

यत्किंचिदोषमुत्प्लेष्य न हरेत्तत्प्रमाणतः ।

विरुद्धं, शुद्धिरन्नेष्टा शमो वा तद्विरोधिभिः ॥ ४५ ॥

द्रव्यैस्तरेषु वा पूर्वं शरीरस्याऽभिसंस्तुतिः ।

व्यायामादिहेतोर्विरुद्धमपांशुकरम्—

व्यायामस्तिग्मदोषाश्रयः स्थूलशक्तिनाम् ॥ ४६ ॥

विरोध्यपि न पोषार्थं सात्त्विकमस्यं च भोजनम् ।

पथ्यापथ्यसेवनत्यागप्रकारः—

पादेनापथ्यमभ्यस्तं पादपादेन वा त्यजेत् ॥ ४७ ॥

हितसेवनम्—

नियेवेत हितं तद्वदेकद्विभ्यन्तरीकृतम् ।

अपथ्यमपि हि त्यक्तं शीलितं पथ्यमेव वा ॥ ४८ ॥

सात्त्विकमात्मविकाराय जायते सहमाऽन्यथा ।

१ पत्राद्योषमयूरः । तर्तलेन एरण्डतर्तलेन । २ तदेव—हारीतमांसम् । ३

तद्विरोधिभिः—विरुद्धद्रव्यकुपितदोषाणां विरोधिभिरीषधेः शमः । पादपादेन—  
पोषणार्थेन । तद्वत्—पादेन पादपादेन वा एकत्र द्वौच त्रयश्च तैरन्तरीकृतमेक-  
द्वित्रिभिरक्षकालैर्व्ययमानं कृत्वा । यथा—अभ्यस्तस्य कस्यचिदपथ्यस्यैकपादं त्यक्त्वाऽ  
नभ्यस्तस्य हितस्य पादं सेवेत । एवमपथ्यं त्यक्तं पथ्यं च निषेवितं भवति । एवमेक-  
नाश्रकालेनापथ्यपादोऽन्तरीकृतः । ततो द्वितीयेऽश्रकाले सर्वमपथ्यं सेव्यं । तृतीये  
अपथ्यस्य पादद्वयं परित्यज्य पथ्यस्य पादद्वयं सेव्यम् । चतुर्थेऽश्रमे च सर्वमपथ्यं  
सेव्यम् । एवं पादद्वयमश्रकालद्वयेनान्तरीकृतम् । ततः षष्ठेऽश्रकालेऽपथ्यस्य पादं  
पथ्यस्य च पादत्रयं सेव्यम् । सप्तमाश्रमवमकालेषु सर्वमपथ्यमुपयोग्यमेवम  
मन्नकालत्रयेणान्तरीकृतम् पथ्यम् । ततो दशमकालादभ्य सर्वमपथ्यमेव सेवनीयम् ।  
एवमेव पादपादेनापि अथमेव क्रमः । ४ अन्यथा—सहमा—पादपादादिक्रममविचिन्त्य,  
अन्यथा—विधिप्रतिकूलम् ।



क्रमादपथ्यत्यागपथ्यस्वीकाराभ्यां गुणाः—

क्रमेणापचिता दोषाः क्रमेणोपचिता गुणाः ॥ ४९ ॥

नाप्नुवंति पुनर्भावमप्रकंप्या भवन्ति च ।

अहिताहारत्यागः—

आत्यंतसन्निधानां दोषाणां दूषणात्मनाम् ॥ ५० ॥

अहितैर्दूषणं भूयो न विद्वान् कर्तुमर्हति ।

आहारादिभिः शरीरधारणम्—

आहारशयनाब्रह्मचर्यैर्व्युक्त्वा प्रयोजितः ॥ ५१ ॥

शरीरं धार्यते नित्यमागारमिव धारणः ।

आहारो वर्णितस्तत्र तत्र तत्र च वक्ष्यते ॥ ५२ ॥

निद्रा गुणाः—

निद्रायत्तं सुखं दुःखं पुष्टिः कार्श्यं बलाबलम् ।

वृषता बलीबता ज्ञानमज्ञानं जीवितं न च ॥ ५३ ॥

दुष्टनिद्रानिर्देशः—

अकालेऽतिप्रसंगाच्च, न च निद्रा निषेविता ।

सुखाद्युपी पराकुर्यात्कालरात्रिरिवाऽपरा ॥ ५४ ॥

जागरणगुणाः—

रात्रौ जागरणं रक्षा, स्निग्धं प्रस्वपनं दिवा ।

अरुशमनमिष्यंदि त्वासीन<sup>१</sup>प्रचलायितम् ॥ ५५ ॥

दिनशयन कथनम्—

श्रीप्ते वायुचमादानरौदयरात्र्यत्यभायतः ।

दिवास्वाप्नो हितोऽयस्मिन्वफपित्तकरो हि<sup>२</sup> ॥ ५६ ॥

१ वृषता—वृत्तम् । न च जीवितम् । २ आग्नीनस्य उदविष्टस्य प्रपन्नायितं वर्णनम् अनुगवेषा प्रस्वपनम् । ३ स दिवास्वप्नः, अन्वस्मिन् प्रोभात्रिरित्यत्राले ।

‘मुक्त्वा तु माप्ययानाध्वमद्यस्त्रीभारकर्मभिः ।  
 क्रोधशोकभयैः वज्रांताम् श्वासहिष्मातिसारिणः ॥ ५७ ॥  
 वृद्धवाचावलशीलुषततृद्भूलपीडिताम् ।  
 अजीर्णाभिहतोन्मत्ताम् दिवास्वप्नोचितानपि ॥ ५८ ॥  
 धातुसाम्यं तथा<sup>१</sup> ह्येषां श्लेष्मा चाऽजानि पुष्यति ।  
 बहुमेदःकफाः स्वप्युः स्नेहनित्याश्च नाऽहनि ॥ ५९ ॥  
 दिवार्तः कंठरोगो च नैव<sup>२</sup> जातु निशास्वपि ।

**अकालशयनान्मोहादयः—**

अकालशयनान्मोहज्वरस्तैमित्यपीनसाः ॥ ६० ॥  
 शिरोरुक्णोफहृत्सासन्नोत्तरोषाष्ठिर्गदता ।

**तत्रचिकित्सा—**

तत्रोपयासवमनस्वेदनावनमोपधम् ॥ ६१ ॥

**अतिनिद्राचिकित्सा—**

योजयेदतिनिद्रामां तीक्ष्णं प्रच्छर्दनाजनम् ।  
 नाशनं संभनं चिंतो व्यवायं शोकभीक्रुधः ॥ ६२ ॥  
 एभिरेव च निद्राया नाशः श्लेष्मातिसंक्षयात् ।

**निद्रानाशजन्यरोगाः—**

निद्रानाशादगमर्दशिरोगौरवजुंभिकाः ॥ ६३ ॥  
 जाड्यं ग्लानिभ्रमा<sup>३</sup>पक्तिर्द्वारोगाश्च वातजाः ।  
 यथाकालमतो निद्रा रात्रौ सेवेत<sup>४</sup> सात्म्यतः ॥ ६४ ॥  
 ‘असात्म्याज्जागरादर्थं प्रातः स्वप्यादभुक्तवाम् ।

**मन्दनिद्रायाश्चिकित्सा—**

शीलयेन्मन्दनिद्रस्तु क्षीरमधरसाम् दधि ॥ ६५ ॥

१ मुक्त्वा वर्जयित्वा । दिवास्वप्नोचितानभ्यस्तदिवास्वप्नाम् । २ एषां  
 प्रोष्पभिन्नसमयेऽपि दिवास्वप्नो हित एवेत्यर्थः । तथा दिवास्वप्नेन । ३ निशा-  
 स्वपि जातुकदाचिदपि नैव शयीत । ४ अपक्तिरज्ञादेरपाकः । ५ सात्म्यतः  
 प्रहरद्वयं त्रयं वा । ५ असात्म्यात् निद्रासेवनोचितकालात् ।

## निद्राकरप्रयोगाः—

- ग्राम्यगोशतनस्नानमूर्ध्निष्ठांशितर्पणम् ।  
 'कांताबाहुनताश्लेषो, 'निर्वृतिः, कृतकृत्यता ॥ ६६ ॥  
 मनोनुकूला विषयाः कामं निद्रासुखप्रदाः ।  
 ग्रहचर्मरतेर्ग्राम्यसुखनिस्पृहचेतसः ॥ ६७ ॥  
 निद्रा संतोषतृप्तस्य स्वं कालं नातिवर्तते ।

## मैथुनविधिः—

- ग्राम्यघर्मे स्वजेट्ठारीमनु'त्तानां रजस्वलाम् ॥ ६८ ॥  
 ग्रप्रियामप्रियाचारां दुष्टसंकीर्णमेहनाम् ।  
 अतिस्पृष्टदृग्णां सूतां गमिणीमन्ययोपितम् ॥ ६९ ॥  
 'वणिनीमन्ययोनि च गुरुदेवनृपालयम् ।  
 चेत्यशमशानाऽयतनचत्वरान्बुचनुष्ययम् ॥ ७० ॥  
 'पर्वाण्यननं दिवसं शिरोहृदयताडनम् ।  
 अत्पाशितोऽभ्रुतिः क्षुद्राम् दुःस्थवोगः पिपासितः ॥ ७१ ॥  
 बालो वृद्धोऽप्यवेगार्तस्त्यजेद्रोगी च मैथुनम् ।  
 सेवेत नामतः कामं तृप्तो बाञ्जोदृता' हिमे ॥ ७२ ॥  
 ग्र्यहाद्वर्मतशरदो, पसाद्वर्षानिदाषयोः ।  
 अमवलमोरुदीर्घत्यबलघातिबद्रियस्तयः ॥ ७३ ॥  
 अपर्वमरणं च स्यादन्यथा' गच्छतः स्त्रियम् ।

१ आश्लेष आलिङ्गनम् ननु मैथुनम् । २ निर्वृतिः शान्तचित्तता । ग्राम्यसुखे मैथुने निस्पृहं चेतोमस्य तस्य । ३ अनुत्तानांत्यजेदुत्ताना तु भवेत् । दुष्टं रोगमलादिभिः, संकीर्णं संकोचमुक्तं च मेहनं योनिर्यत्स्यास्त्वाम् । ४ वणिनी ब्रह्मचारिणीम् । अन्ययोनिमवाधामहिष्यादियोनिम् । आयतनं दुष्टनिग्रहस्थानम् । ५ पर्वाणि संक्रान्त्यादिपर्वदिनम् । अनङ्गं—अङ्गं योनिस्तद्भिन्नमङ्गं यथा रुद्रमुखादीनि । ६ राजकीदृशं राजकीयदृशैस्सदृशम् । ७ अन्यथा उत्तरविधेरन्येन प्रकारेण । अपर्वमरणमवतलमरणम् ।

### स्त्रीसंयमिनोगुणाः—

स्मृतिमेषामुरारोग्यपुष्टीद्रियमशोबलैः ।

अधिका मन्दजरतो भवति स्त्रीषु संयताः ॥ ७४ ॥

### रतान्तेसेव्यानि—

स्नानानुलेपनहिमानिलसङ्खाद्य-

शीतोबुद्बुधरमयूपमुराप्रसन्नाः ।

सेवेत चानुशयन विरतो रतस्य

तस्मैवमाशु वपुषः पुनरेति धाम ॥ ७५ ॥

### राक्षा स्वदेहरक्षा वैद्यार्थानां कार्या—

श्रुतचरितसमुद्धे कर्मक्षे दयालो

मिपति अनिरनुबन्धं देहरक्षा निवेश्य ।

भवति विपुलतेजः स्यात्स्वकीतिप्रभावः

स्वकुशलफलभोगी भूमिपानश्चिरायुः ॥ ७६ ॥

## अष्टमोऽध्यायः ।

### स्वस्थवृत्तम् —

अथानो मात्राशितोयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

### परिमितभक्षणम्

“मात्राशो सर्वकालं, स्यान्मात्रा ह्यग्नेः प्रवर्तिका ।

मात्रां द्रव्याण्यपेक्षति गुरुण्यपि लघून्यपि ॥ १ ॥

१ स्मृत्यादिभिरधिकाः । २ रतान्ते स्नानादीषु यथोचितं सेवेत । खण्ड-  
खाद्यम् मिताद्यमदद्यात् । तस्य-स्नानादिसेविनः पुरुषस्य । धाम तेजो बल  
मितियाधत् । ३ निरनुबन्धं निःसंशयम् । स्वकुशलफलभोगी आत्मीयश्रेष्ठ-  
फलभोगवान् ।

## गुरुलघुमात्रा कथनम्—

गुरुणामर्धसौहित्यं<sup>१</sup> तथूनां नातिवृष्टता ।

मात्रा प्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद्विजीर्यति ॥ २ ॥

## अल्पभोजन निषेधः—

भोजनं हीनमात्रं तु न बलोपचयीजमे ।

सर्वेषां वातरोगाणां हेतुतां च प्रपठते ॥ ३ ॥

## अतिभोजनदोषाः—

अतिमात्रं पुनः सर्वानाशु दोषान् प्रकोपयेत् ।

प्रीड्यमाना हि वाताद्या दुग्धपत्तेन कोपिताः ॥ ३ ॥

## दोषप्रकोपेष्विपूचिकाद्युत्पत्तिः—

आमेनाग्नेनेन दुष्टेन तदे<sup>२</sup>वाविष्य कुर्वते ।

विष्टं भयतोऽलसकं, व्यावयंतो विपूचिकाम् ॥ ५ ॥

अधरोत्तरमार्गान्मया सहस्रवाजितारमनः ।

## अलसक निर्वचनम्—

प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न च पच्यते ॥ ६ ॥

भामाक्षयेऽलसीभूतस्तेन सोऽलमकः स्मृतः ।

## विपूचिकनिर्वचनम्—

विविधैर्द्वेनोद्भेदैर्वाध्वादिभुक्षकोपतः ॥ ७ ॥

मूत्रोभिरिव गात्राणि विष्यतीति विपूचिका ।

तत्र शूल<sup>३</sup>अमाऽनाहृक्पस्तंभादयोऽनिलात् ॥ ८ ॥

पित्ताग्ज्वरातिसारांतर्दाहदृष्टप्रलयादयः ।

कफाच्चर्चगगुरुतावाक्संग्घीवनादयः ॥ ९ ॥

१ सौहित्यं तृप्तिः । २ पोड्यमानाविबद्ध्यमानाः । तेन दुष्टेनापक्वाहारेण ।  
 ३ तदेव दुष्टमन्नम् । विष्टमभयन्तः स्रोतःसुरक्षानाः । व्यावयन्तः पातयन्तः ।  
 ४ अमादय इत्यत्रादिशब्देनाङ्गोद्वेष्टनमुखशोषादिग्रहः । प्रलयोमूच्छां अत्रादि-  
 शब्देन मदादिग्रहणम् । छीवनादय इत्यत्रादिना क्षवध्वादानां ग्रहणम् ।

**अलसकलक्षणम्—**

विदोषाददुर्बलस्याऽल्यवह्नौर्बेगविधारिणः ।  
 पीडितं मास्तेनाग्रं श्लेष्मणा रुद्धमंतरा ॥ १० ॥  
 अलसं क्षोभितं दोषैः गत्यस्वेनैव संश्रितम् ।  
 मूलादीन्कुस्ते तीव्रांश्चर्चतीसारवज्रिताम् ॥ ११ ॥

**दण्डालसकलक्षणम्—**

सोऽलसः, अत्ययदुष्टाद्दु दोषा दुष्टाम<sup>१</sup>बद्धाः ।  
 यातस्तिर्यक्तनुं सर्वा दंडवस्तंभयंति चेत् ॥ १२ ॥  
 दंडकाससकं नाम तं त्यजेदशुकारिणम् ।

**ग्रामविपनिर्देशः—**

विहृद्वाष्पशनाजीर्णशोचिनो निपलदाणम् ॥ १३ ॥  
 ग्रामदोषं महाधोरं वजयेद्विपसंज्ञकम् ।  
 विपक्षपादाकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वतः ॥ १४ ॥

**अलसकोपक्रमनिर्देशः—**

अथाऽऽमलमीभूतं साध्यं स्वरितगु<sup>१</sup>ल्लिखेत् ।  
 पीत्वा सोप्रापदुर्गलं वार्युर्गुणं, योजयेत्ततः ॥ १५ ॥  
 स्वेदनं, फलवर्ति य म<sup>१</sup>वातानुलोमनीम् ।  
 नाम्यमानानि चागानि भृशं स्विन्नानि वेष्टयेत् ॥ १६ ॥

**विपूच्या उपचारः—**

विमूच्यामनिवृद्धाया पाष्प्योर्दोह<sup>१</sup> प्रणस्पने ।  
 तदहश्चोपवास्येनं विरिक्तमदुपाचरेत् ॥ १७ ॥

१ दुष्टेन—ग्रामेन यद्वा नि खानि सोतामि यैर्दोषैस्ते । २ विपेक्षीतोपक्रम  
 ग्रामेचोपणोपक्रम इति विरुद्धोपक्रमता । ३ उल्लिखेत् वयेत् । उग्रा-वचा ।  
 पदुर्गलम् । फलं 'मैनफर' इति हिन्दी । ४ फलवर्ति तत्प्रयोगो यथा—विपाच्य  
 भूनाम्भमधूनिदन्तीपिण्डीतकृष्णा विडब्रूमकुष्ठैः । वर्तिकशंगुष्ठनिभां घृताक्ता गुदे  
 रजानाहरो विदध्यात् ।

## गुरुलघुमात्रा कथनम्—

गुरुणामर्षसौहित्यं<sup>१</sup> तथूनां नातिनृसता ।

मात्रा प्रमाणं निर्दिष्टं सुखं यावद्विजोर्यति ॥ २ ॥

## अल्पभोजन निषेधः—

भोजनं हीनमात्रं तु न बलोनचयोजनं ।

सर्वेषां वातरोगाणां हेतुतां च प्रपद्यते ॥ ३ ॥

## अतिभोजनदोषाः—

अतिमात्रं पुनः सर्वानाशु दोषान् प्रकोपयेत् ।

पौड्यमाना हि वाताद्या युगपत्तेन कोपिताः ॥ ३ ॥

## दोषप्रकोपेविपूचिकाशुत्पत्तिः—

आमेनाग्रनेत्र दुष्टेन तदेवाविश्य कुर्वते ।

विष्टंभयतोऽलसकं, व्यावयतो विपूचिकाम् ॥ ५ ॥

अधरोत्तरमार्गान्या सहस्रवाजितारमनः ।

## अलसक निर्वचनम्—

प्रयाति नोर्ध्वं नाधस्तादाहारो न च पच्यते ॥ ६ ॥

आमाशयेऽलसामृतस्तेन सोऽलमकः स्मृतः ।

## विपूचिकानिर्वचनम्—

विविधैर्वेदनोद्भेदैर्वाय्वादिभृक्षकोपतः ॥ ७ ॥

मूचीभिरिव गात्राणि विष्पतीति विपूचिका ।

तत्र शूल<sup>२</sup>अमाज्जाहकपस्तंभादयोऽनिलात् ॥ ८ ॥

पित्ताज्ज्वरातिसारांतर्दह्निहृत्प्रलयादयः ।

कफाज्ज्वरगुस्तावाक्संग्घीवनादयः ॥ ९ ॥

१ सौहित्यं तृप्तिः । २ पौड्यमानाविबद्धयमानाः । तेन दुष्टेनापकाहारेण ।

३ तदेव दुष्टमन्नम् । विष्टमभयन्तः स्रोतःसुरुम्भानाः । व्यावयन्तः पातयन्तः ।

४ अमादय इत्यत्रादिशब्देनाज्ज्वरेष्टेनमुसणोपादिग्रहः । प्रलयोमूच्छां अत्रादि-  
शब्देन मदादिग्रहणम् । घ्नीवनादय इत्यत्रादिना क्षवध्यादानां ग्रहणम् ।

### अलसकलक्षणम्—

विशेषाद्दुर्बलस्याऽऽलवत्त्वेवैगविधारिणः ।  
पीडितं मास्तेनाग्रं श्लेष्मणा रुद्धमंतरा ॥ १० ॥  
अलमं क्षोभितं दोषैः शल्यत्वेनैव संस्थितम् ।  
शूलादीन्कुस्ते तीव्राश्चर्चतीमारवर्जिताम् ॥ ११ ॥

### दण्डालसकलक्षणम्—

सोऽलसः, अत्यर्धदुष्टासु दोषा दुष्टाम<sup>१</sup>बद्धत्वाः ।  
यातस्तिर्यक्तनुं सर्वा दंडवस्तंभयति चेत् ॥ १२ ॥  
दंडकालमकं नाम तं त्यजेशशुकारिणम् ।

### ग्रामविपनिर्देशः—

विरुद्धाप्यशनाजीर्णशीलिनो निपलक्षणम् ॥ १३ ॥  
ग्रामदोषं महाघोरं यजयेद्विपरंजनम् ।  
विपरूपानकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वतः ॥ १४ ॥

### 'अलस'ोपक्रमनिर्देशः—

अथाऽऽममलमीभूतं गाध्यं स्वर्गितमुल्लिखेत् ।  
पीत्वा सोप्रापदुफलं वार्युष्णं, योजयेत्ततः ॥ १५ ॥  
स्वेदनं, फलवर्ति च मन्वातानुलोमनीम् ।  
नाम्यमानानि चानानि भूतं स्वप्नानि वेष्टयेत् ॥ १६ ॥

### विपूच्या उपचारः—

विमूच्यामनिवृद्धाया पाण्योर्द्विह. प्रशस्यते ।  
तदहश्चोपवास्येनं विरितवदुपाचरेत् ॥ १७ ॥

१ दुष्टेन—ग्रामेन बद्धानि खानि सोतासि यदीपंस्ते । २ विपेसीतोपक्रम  
ग्रामेचोप्योपक्रम इति विरुद्धोपक्रमता । ३ उल्लिखेत् वसेत् । उग्रा-वचा ।  
पदुर्तवणम् । फलं 'मैनफर' इति हिन्दी । ४ फलवर्ति तत्प्रयोगो यथा—विपाच्य  
मूत्रांश्लमधूनिदन्तीपिण्डीतकृष्णा विडधूमकुष्ठैः । वतिकरागुग्गुनिर्मा धृताक्तां गुदे  
रजानाहहरी विदध्यात् ।



**अजीर्णोपधनिषेधः—**

तीव्रातिरपि नाजीर्णं पिवेच्छूलघ्नशोषयम् ।

ग्रामसत्तोऽनलो नालं पक्नुं दोषोपवाहनम् ॥ १८ ॥

निह्न्यादपि चैतेषां बिभ्रमः सहमास्तुरम् ।

अजीर्णकदोषघ्नं युञ्जीत—

जीर्णशिने तु भैषज्यं युंज्यात् स्तब्धगुरुदरे ॥ १९ ॥

दोषशेषस्य पाकार्धमग्नेः संधूक्षणाद्य च ।

**अमविकाराणांशान्तिः--**

शांतिरामविकाराणां भवति त्वपतर्पणात् ॥ २० ॥

त्रिविधं त्रिविधे दोषे 'तस्ममीक्ष्य प्रयोक्ष्येत् ।

तत्राङ्गुले लघनं पथ्यं, मध्ये लघनपाचनम् ॥ २१ ॥

प्रभते शोधनं तद्धि मूलाद्वन्मूलयेन्मलात् ।

**अन्यव्याधिचिकित्सा—**

एवमन्यानपि व्याधीन् स्वनिदानविपर्ययात् ॥ २२ ॥

चिकित्सेदनु<sup>१</sup>र्धये तु सति हेतुविपर्ययम् ।

स्यक्त्वा, यथायथं वैद्यो युञ्ज्याद्भ्यादिविपर्ययम् ॥ २३ ॥

‘सदर्थकारि वा, पद्मो दोषे स्थिते च पावके ।

हितमर्म्मजनस्नेहपानवस्त्रादियुक्तिः ॥ २४ ॥

### आमाजीएल्लक्षणम्--

अनीर्णं च कफा<sup>१</sup>दामं तत्र शोफोऽक्षिगण्डयोः ।

१ प्राप्तमन्त्र आमेनमन्दीभूतः । २ एतेषा—दोषोपधारणानाम् । विभ्रमो विकारः । ३ सदनतरणमुपवासः । ४ अनुवन्धे व्याधावशान्ते, हेतुविपर्ययं त्यक्त्वा व्याधिविपर्ययं—यथा प्रमेहे हृदि, कृत्ते सदिरमित्यादिष्वं युष्मदादित्यर्थः ।

५ तान्त्रां-निदानं भविष्यि पर्यायाद्यामोषयाभ्यामज्ञानमभ्यस्य-रोषशान्तिस्त्वं कर्तुमीलं ।  
 ६ यस्य तत् तदर्थकारि-यथा वमने वमनम् । ६ कफात्-धामधामास्थमजीराम् ।

सद्यो भुक्त इवोद्गारः प्रसेकोत्पन्नेनगौरयम् ॥ २५ ॥

विष्टब्धजीर्णलक्षणम्—  
विष्टब्धमनिलान्मूलविषयाध्मानसादृशम् ।

विष्टब्धजीर्णलक्षणम्—  
पित्ताद्विषयं कृमोहभ्रमाम्लोद्गारदाहवृत् ॥ २६ ॥

अजीर्णं विकृतिरसा—  
नपनं कार्यमाये, तु विष्टब्धे स्वेदनं भुशम् ।  
विदग्धे यमनं, यदा यथावस्थं हितं भजेत् ॥ २७ ॥

विलम्बिकालक्षणम्—  
गरीयसो भवेत्क्षोनादामादेव क्लिप्तिका ।  
कफवातानुबद्धाऽऽमलिगा तस्मसाधना ॥ २८ ॥

रसजीर्णलक्षणम्—  
अथवा हृद्यथा शब्देऽप्युद्गारे रससेपनः ।  
शयोक्तं विचिदेवाथ सर्वध्यानशितो दिवा ॥ २९ ॥  
स्वप्नादजीर्णं, गंजातयुग्मभ्रोऽद्याग्नितं यधु ।

सामान्याजीर्णं लक्षणम्—  
विषंभोऽतिप्रवृत्तिर्वा ग्लानिर्माहृतमूढता ॥ ३० ॥  
अजीर्णलिङ्गं नामान्यं विष्टंभो गौरवं भ्रमः ।

अजीर्णं कारणानि—  
न चातिमात्रमेवाग्रमामदोषाय केवलम् ॥ ३१ ॥  
द्विष्टविष्टंविदग्धमयुष्कहिमाद्युचि ।  
विदाहि शुष्कमत्यबुभुतं घान्नं न जीर्यति ॥ ३२ ॥  
उपतप्तेन भुक्तं च शीकृकोषशुभादिभिः ।

समशनादीनां लक्षणानि—  
मिश्रं पच्यमपच्यं च भुक्तं समशनं मतम् ॥ ३३ ॥

१—विदग्धं किञ्चिद्विषयम् । २ तस्मसाधनाग्रामतुल्यविकृतिरसा । ३ अथ रसजीर्णं । नर्वः नर्वविषाजीर्णं । ४ मारुतमूढता वायोः प्रतिनोमता ।

विद्यादध्ययनं भूयो भुक्तस्योपरि भोजनम् ।  
अकाले बहु चात्सवं वा भुक्तं तु विषमाशनम् ॥ ३४ ॥  
श्रीएष्येतानि मृत्युं वा धीराप्सु व्याधीप्सु सृजति वा ।

### भोजनविधिः—

काले सात्सवं शुचि हितं स्निग्धोष्णं तप्तु तन्मनाः ॥ ३५ ॥  
पङ्क्तं मधुरप्रायं नातिद्रुतविलंबितम् ।  
स्नातः क्षुद्राम् विविक्तस्यो धौतपादकराननः ॥ ३६ ॥  
तर्पयित्वा पितृन् देवानतिथीम् बालकान्गुरुन् ।  
प्रत्यवेक्ष्य तिरश्चोऽरिं प्रतिपन्नरिप्रह्मन् ॥ ३७ ॥  
समीक्ष्य सम्प्रसारमानमग्निदन्त्रुवम् ब्रवम् ।  
इष्टमिष्टैः सह्यास्नीयाञ्छुचि भक्तजनाहृतम् ॥ ३८ ॥

### भोजनेत्याज्यानि—

भोजनं तृणकेशादिजुष्टमुष्णोर्तुं पुनः ।  
शाकावरान्नभूमिग्रमस्युष्णलवणं रयजेत् ॥ ३९ ॥  
क्रिस्तादधिकूर्पोकाक्षारशुक्ताममूलकम् ।  
कुशशुष्कयराहाविगोमत्स्यमट्टिपामिषम् ॥ ४० ॥  
मापनिष्पावशालूकविमनिष्टविरुद्धकम् ।  
शुष्कजावानि यवकान् फाणितं च न शोलेयेत् ॥ ४१ ॥

### भोजनेप्राह्याणि—

शीतयेच्छातिगोधूमयनपट्टिकजागतम् ।  
मुनिपण्णकजीवतीबालमूलरवास्तुक् ॥ ४२ ॥  
पट्यामलकमृदोषापटोलीमुद्गशर्कराः ।  
घृतदिब्बोदकसौरसोदशडिमसोधवम् ॥ ४३ ॥

१ विविक्तस्य एकान्तस्थितः । २ प्रत्यवेक्ष्य तेषामाहारस्वार्थं विधाय ।  
तिरश्चो शृङ्खलान्तरुपसिद्धः । प्रतिपन्नपरिग्रहान्—प्राप्त्यन्तेन वृत्तस्वीकारात् ।  
३ मवरान्नं ब्रह्मम् ।

## त्रिफलासेवननेत्रहितम्—

त्रिफला मधुमर्षिर्म्वा निशि नेत्रवनाय च ।  
 स्वास्थ्यानुवृत्तिरुच्यच्च रोगोच्छेदकरं च यत् ॥ ४४ ॥  
 बिभेःशुभोचचोचाग्रमोदकोत्तारिकादिकम् ।  
 प्रताद्व्यं गुरु स्निग्धं स्वादु मंदं तिपरे पुरः ॥ ४५ ॥  
 विपरीतमतश्चांते मध्येऽस्तत्तावतांस्तत् ॥

## उद्वरपूरणम्—

अन्नेन कुशेर्दार्द्री पानेनैकं प्रपूरयेत् ॥ ४६ ॥  
 प्राश्रयं पचनादीनां चतुर्थमवशेषयेत् ।

## अनुपानकथनम्—

अनुपानं हिमं घारि मधगोघूमयोहितम् ॥ ४७ ॥  
 चन्नि मधे विषे क्षीरे, कोज्जं पिष्टमवेषु तु ।  
 शाकमुद्गादिविचुली मस्तुतत्रस्तनाजिकम् ॥ ४८ ॥  
 सुरा कृशानां पुष्ट्यर्थं, स्थूतानां तु मधूदकम् ।  
 शोथे मासरसो, मद्यं भासे स्यात्वे च पावके ॥ ४९ ॥  
 व्याघ्रयीषघाघ्यभाष्यः नीलं यनातपत्तमभिः ।  
 क्षीणे, घृष्टे च बाले च ययः<sup>२</sup> ययं यथाऽगुतम् ॥ ५० ॥

## अनुपान सङ्क्षेपः—

विपरीतं मदघ्नस्य गुणैः स्यादविरोधि च ।  
 अनुपानं समासेन सर्वदा तत्प्रशस्यते ॥ ५१ ॥

## अनुपानगुणाः—

अनुपानं करोत्यूर्जं<sup>१</sup> तृप्तिं व्याप्तिं हृदामर्ता ।  
 अन्तर्मपातशीघ्रित्वनिमित्तमरुणानि च ॥ ५२ ॥

१ विपरीतं मधुगोघूमयोहितम् । २ ययः कुतश्च । ३ ऊजमिनसः  
 प्रहर्षः । व्याप्तिः शरीरे भोजनस्य व्याप्तिः । विस्त्रितिरन्नविषयेत्यर्थः ।

## अनुपाननिषेधः—

नोर्ध्वजश्रुगदश्वासकासोरः क्षतपीनसे ।

गीतभाष्यप्रसंगे च स्वरभेदे च 'तद्धितम् ॥ ५३ ॥

प्रकिलन्नेदेहेमहासिगलरोगप्रणातुरः ।

पानं त्यजेयुः, 'सर्वश्व भाष्याश्वशयनं त्यजेत् ॥

पीत्वा भुक्त्वाऽऽतपं वर्हि यानं प्लवनवाहनम् ॥ ५४ ॥

## भोजनकालः

प्रसृष्टे विष्मूत्रे, हृदि सुविमले, दांषे स्वपयगे

विशुद्धे घादगारे, धुदुपगमने, चातेऽनुसरति ।

तथाऽप्राबुद्धिते 'विशदकरणे देहे च मूलपी

प्रयुर्जोताहारं 'विधिनिषमितः बालः स हि मतः ॥ ५५ ॥

## नवमोऽध्यायः ।

## द्रव्यगुणशास्त्रम्—

अथातो द्रव्यादिविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

## रसादीनां द्रव्यश्रेष्ठम्—

द्रव्यमेव रसादीनां श्रेष्ठं ते' हि तदाश्रयाः ।

## द्रव्यस्यपञ्चभूतात्मकत्वम्—

पञ्चभूतात्मकं 'तत्तु क्षमामधिष्ठाय जायते ॥ १ ॥

१ तदनुपानम् । २ सर्वः पुरुषः । प्लवर्नजलतरणम् । ३ विशदकरणे विशदानि  
पट्टानि स्वविषयग्रहणमर्थानौन्द्रियाणि यस्मिन्देहे तस्मिन् । ४ विधिना 'काले-  
सात्प्यादिना पूर्वोक्तेन नियमितः । ५ ते रसादयः । तदाश्रयाद्रव्याश्रयाः ।  
६ तद्द्रव्यम् ।

अंबुयोन्यस्त्रिपवननभसां समवायतः ।

१ तन्निवृत्तिविशेषश्च, व्यपदेशस्तु भुवसा ॥ २ ॥

तस्मान्नैकरसं द्रव्यं भूतसंघातसंभवात् ।

नैकदोषास्ततो रोगास्तत्र व्यक्तो रसः स्मृतः ॥ ३ ॥

अव्यक्तोनुरसः किंपिदने व्यक्तोऽपि वेद्यते ।

द्रव्यगुणनिवासः—

गुर्वादयो गुणा द्रव्ये पृथिव्यादी रसाश्रये ॥ ४ ॥

रसेषु व्यपदिश्यते साहचर्योपचारतः<sup>१</sup> ।

पार्थिवद्रव्य लक्षणम्—

तत्र द्रव्यं गुरु स्थूल स्थिरर्यंगुणोत्त्वणम् ॥ ५ ॥

पार्थिवं, गौरवस्थैर्यसंघातोपचयावहम् ।

जलीयद्रव्यलक्षणम्—

द्रवशीतगुरुस्निग्धमंदसाद्गमोत्त्वणम् ॥ ६ ॥

आर्प्य स्नेहनविष्यदकलेदप्रह्लादवधृत् ।

आग्नेयद्रव्यलक्षणम्—

रुक्षतीक्ष्णोष्णविशदसूक्ष्मरूपागुणोत्त्वणम् ॥ ७ ॥

आग्नेयं दाहभावार्णप्रकाशपचनात्मकम् ।

वायव्यद्रव्यलक्षणम्—

वायव्यं रुदाविशदं लघुस्पन्दगुणोत्त्वणम् ॥ ८ ॥

रौद्रयन्माधववैशद्यविचारग्लानिकारकम् ।

१ तन्निवृत्तिर्द्रव्योत्पत्तिः । विशेषः—इदमन्यदिदमन्यद्द्रव्यमित्येवंरूपः ।

व्यपदेशोव्यवहारः, यत्रद्रव्ये यद्भूतमधिकतेनैवभूतेन तस्मद्रव्यस्य व्यवहारः ।

यथा पार्थिवं सैजममित्यादि । २ गुर्वादयो गुणा वस्तुतो रसाश्रये पृथिव्यादी द्रव्ये

समाश्रिता न तु रसे, किन्तु साहचर्येण उपचारः क्रियते रसे यथा गुरुद्रव्ये मधुरो-

रमस्तद्गुरुगुणोऽपि सहैवास्ते ततो रसगुणयोरेकस्मिन् द्रव्ये सहावस्थानात्

मधुरोगुरुरिति व्यपदिश्यते ।

## दशमोऽध्यायः ।

द्रव्यगुणशास्त्रम्—

अथाऽतो रसभेदीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

षड्रसोत्पत्तिः—

“क्षमांभोऽग्निर्कपाऽबुतेजःखवाग्वाग्न्यनिलगोऽनिलैः ।

स्रयोल्बणैः क्रमादमूर्तैर्मधुरादिरसोद्भवः ॥ १ ॥

मधुरादिरससप्तक्षणम्—

तेषां विद्याद्वयं स्वादुं यो वक्रमनुलिपति ।

आस्वाद्यमानो देहस्य ह्लादनोऽक्षप्रसादनः ॥ २ ॥

प्रियः पिपीलिकादोनाम्, अम्लः शालयते मुखम् ।

हर्षणो रोमदंतानामक्षिभ्रुवनिकोचनः ॥ ३ ॥

स्रवणः स्यंदयत्यास्यं कपोलगलदाहृत् ।

तिक्तो विषदयत्यास्यं रसनं प्रतिहंति च ॥ ४ ॥

उद्वेजयति जिह्वाम् कुर्वन्निविचिमां कटुः ।

सावयत्यक्षिनासास्यं कपोली दहतीव च ॥ ५ ॥

कपायो जडवेजिह्वा कंठस्रांतोविषंधृत् ।

रसानामिति रूपाणि, कर्माणि मधुरो रसः ॥ ६ ॥

मधुरादिरस कर्माणि—

भ्राजन्मसात्स्यात्कुरुते चातूनां प्रबलं बलम् ।

बाजवृद्धशतक्षीणवर्णकेशैर्द्विपीनमाम् ॥ ७ ॥

आयुष्यो जीवनः स्निग्धः पित्तानिलवियाऽपहः ॥ ८ ॥

कुरुतेऽत्युपयोगेन समेदःकफजायु गदायु ।

स्योत्पादितसादयन्त्यासमेहमंदावुदादिकाम् ॥ ९ ॥

अग्नौऽग्निदीप्तिरुत्तिग्धो हृद्यः पाचनरोचनः ।  
 उष्णदीर्घो हिमस्पर्शः शोणनो भेदनो लघुः ॥ १० ॥  
 करोति कफपित्तासं मूत्रवातानुलोमनम् ।  
 सोऽत्यम्यस्तस्तनोः कुर्यान्ध्वंशित्वं तिमिरं भ्रमम् ॥ ११ ॥  
 कंडुवांडुत्यक्षीतर्पणोफविस्फोटतृड्ज्वराम् ।  
 लवणः स्तंभनघातघंघविध्मापनोऽग्निवृत् ॥ १२ ॥  
 स्नेहनः स्वेदनस्तीक्ष्णो रोचनश्चेदभेदवृत् ।  
 सोऽतिपुक्तोऽम्नपवनं खलति पतितं बलिम् ॥ १३ ॥  
 तृट्कुष्ठविपचीसर्पांश्च जनयेत्क्षपयेत्तुलम् ।  
 सिक्तः स्वयमरोचिष्णुररचिं कृमिर्तृट्विषम् ॥ १४ ॥  
 कूटमूर्च्छाज्वरोत्त्वनेशदाहपित्तकफाम् जयेत् ।  
 क्लेदमेदोवसामजघ्नमूत्रोपशोषणः ॥ १५ ॥  
 लघुर्मध्यो हिमो रुक्षःस्तन्यकंठविशोषनः ।  
 धानुक्षवाऽनिलभ्याधीनतियोगात्करोति सः ॥ १६ ॥  
 कटुर्यक्षामयोर्ध्वकष्टासकशोफजित् ।  
 प्रणावमादनःस्नेहमेद्रक्लेदोपशोषणः ॥ १७ ॥  
 दीपनः पाचनो रुच्यः शोषनोऽग्नस्य शोषणः ।  
 द्विनत्ति घंघाम्, लोतासि विदुरोति कफापहः ॥ १८ ॥  
 कुरते सोऽतियोगेन तृष्णा शुरुक्लक्षयम् ।  
 मूर्च्छाभाकुंभनं कंषं कटिपृष्ठादिषु व्ययाम् ॥ १९ ॥  
 कपायः पित्तकफहा गुरुरस्त्रविशोषनः ।  
 पीडनो रोषणः शीतः क्लेदमेदोविशोषणः ॥ २० ॥  
 आमसंस्तंभनो ग्राही रुदोऽतित्वक्प्रसादनः ।  
 करोति शीलितः सोऽति विष्टंभान्मानहृद्भुजः ॥ २१ ॥  
 तृट्कार्श्यपोरुपभ्रंशस्तोरोपमलग्रहाम् ।

भधुरद्रव्याणि—

घृतहेमगुडाक्षोढमोचचोचरूपकम् ॥ २२ ॥

अभीक्ष्णोरापनसराजान्नवन्नामयम् ।

मेदे चतस्रः पण्डित्यो जीवन्ती जीवकर्मणी ॥ २३ ॥



मधुकं मधुकं विबिं विदारी धावणीमुमम् ।

क्षीरशुक्ला तुगाक्षीरी क्षीरिण्यौ काश्मरी सहे<sup>१</sup> ॥२४॥

क्षीरेधुगोधुरक्षीद्रद्रासादिर्मधुरो गणः ।

अम्लद्रव्याणि—

अम्लो घात्रीफवाम्लो कामातुलुभांम्लवेतसम् ॥२५॥

दाहिमं रजतं तक्रं पुक्रं पालेवतं दधि ।

भ्रात्रमाभ्रातकं<sup>२</sup> मव्यं कपित्थं करमर्हकम् ॥२६॥

लवणद्रव्याणि—

वरं सौवर्चलं पृथ्णं बिडं सामुद्रमोदनिदम् ।

रोमकं पांसुजं शीतं क्षारश्च लवणो गणः ॥२७॥

तिक्तद्रव्याणि—

तिक्तः पटोली त्रायतो बालकोशीरचंदनम् ।

भुनिबनिबकटुकतागरागुखस्तकम् ॥२८॥

नक्तमालद्विरजनीमुस्तमूर्वाटिरूपकम् ।

पाठापामार्गकास्यायोगुह्वीपन्वयासकम् ॥२९॥

पंचमूलं महद् व्याघ्र्यौ विषालाऽतिविषा वचा ।

कटु द्रव्याणि—

कटुको<sup>३</sup> हिगुमरिचकृमिजित्पंचकोलकम् ॥३०॥

कुठेराद्या हरितकाः पित्तं मूत्रमक्षरम् ।

कषायद्रव्याणि—

वर्मः कषायः पथ्याशं शिरीषः खदिरो मधु ॥३१॥

कदंबोदुंबरं मुक्ताप्रवालाजनार्णिकम् ।

बालं कपित्थं क्षर्जूरं विसपद्योत्पत्तादि च ॥३२॥

१ सहे-मापमुदगपण्यौ । २ भ्रात्रमाभ्रातकः-भ्रामडा, मव्यं-कमरख । ३ क्रिमि-जित् विडङ्गम् ।

मधुरस्यकफकारकत्वस्यापवादः—

मधुरं श्लेष्मलं प्रायो, जोर्णान्ध्रानियंवाहते ।

मुद्रादगोष्ठमनः क्षौद्रात्सिताया जांलामिपात् ॥३३॥

अग्नस्यपित्तजननत्वस्यापवादः—

प्रायोऽम्लं पित्तजननं, दाहिमामनकाहते ।

लवणस्यतेत्रापथ्यत्वस्यापवादः—

अपथ्यं लवणं प्रायश्चक्षुषोऽप्यन संयपात् ॥३४॥

तिक्तकटुरसयोर्वातकोपनत्वयोरपवादः—

तिक्तं कटु च भुयिष्ठमकृष्यं वातकोपनम् ।

श्लेष्मेऽमुष्णपटोलीभ्यां शुठ्ठीकृष्णारसनोतः ॥३५॥

कषायस्यापवादः—

कषायं प्रायतः शीतं स्तंभनं चाऽभयामुते ।

कट्वादीनामुत्तरांसरमुष्णवीर्यवा—

रसाः कटुवम्ललवणा बोधेणोष्णा यथोत्तरम् ॥३६॥

सिक्कादीनांशीतवीर्यता—

तिक्तः कषायो मधुरस्तद्वैव च शीतताः

रसानांरूक्षादिगुणाः—

तिक्तः कटुः कषायश्च हस्ता मूढमलास्तपा<sup>१</sup> ॥३७॥

पटुम्लमधुराः स्निग्धाः सृष्टविएमूत्रमास्ताः ।

पटोः कषायस्तस्मान्च<sup>२</sup> मधुरः परमो गुरुः ॥३८॥

लघुरम्लः कटुस्तस्मात्तस्मादपि<sup>३</sup> च तिक्तकः ।

रसानां संयोगकल्पना—

संयोगाः सप्तपंचाशत्कलानां तु त्रिपट्टिवा ॥३९॥

१ तद्वदेव-यथोत्तरम् । २ तथा-यथोत्तरम् । ३ अत्रापि यथोत्तरमिति-  
व्यप्यते । ४ तस्मात् कषायात् । ५ तस्मात्-मम्लात् । ६ तस्मात्कटोः ।

रमाना <sup>१</sup>योगिकत्वेन यथास्थूलं विभज्यते ।

रससंयोगानां विवरणम्—

<sup>२</sup>एकैकहीनास्तान्पञ्च पञ्च याति रसा द्विके ॥४०॥

<sup>३</sup>त्रिके स्वादुशाम्लः पटुः त्रीन्यद्रुस्तिक्त एककम् ।

<sup>४</sup>चतुष्केषु दश स्वादुश्चतुरोऽम्लः पटुः सङ्कट ॥४१॥

<sup>५</sup>पञ्चकेऽप्येकमेवाम्लो मधुरः पञ्च सेवते ।

<sup>६</sup>द्रव्यमेकं पडास्वादमसंयुक्ताश्च पङ्कसाः ॥४२॥

संयुक्तरसभेदसंख्या—

<sup>७</sup>पटुपञ्चकाः, पटु च पूषारसाः स्यु-

श्चतुर्द्विकौ पञ्चदशप्रकारौ ।

भेदास्त्रिका विंशतिरेकमेव

द्रव्यं पडास्वादमिति त्रिषष्टिः ॥४३॥

संयुक्तरसोपयोगः—

ते रसानुरसतो रसभेदास्तारतम्यपरिकल्पनया च ।

संभवति गणना समतीता दोषमेजयवशादुपयोग्याः ॥

१ योगिकत्वेन-शरीरोपयोग्यत्वेन । २ द्विके-रससंयोगे, पञ्चरसाः—मधु-  
राम्लसवणुतिक्तकटुकाः । एकैकहीनाभूतान्पञ्च-अम्लसवणुतिक्तकटुकपायान् याति  
मिलन्ति । येनैकेनयुक्तास्तद्रहिताभिरत्यर्थः । मधुरस्याम्लादिभिः पञ्चभिः संयोगे  
पञ्चभेदाः, अम्लस्य सवणादिभिश्चतुर्भिः संयोगे चत्वारो भेदाः । सवणस्य कट्वादि-  
भिस्त्रिभिः संयोगे त्रयोभेदाः । कटोः स्तिक्तकपायाम्नां संयोगे द्वे भेदौ । तिक्तस्य  
कपायेण सह एकोभेदः । एवं पञ्चदशभेदाः । ३ त्रिके-रसत्रयसंयोगे भेदास्तु-  
विंशतिः । ४ चतुष्के चतुरससंयोगे भेदास्तु पञ्चदश । ५ पञ्चके पञ्चरससंयोगे ।  
अम्लएकमेव भेदः, मधुरस्तु पञ्चभेदान् याति, एवं रसपञ्चकसंयोगे पङ्कभेदाः ।  
६ एकं द्रव्यं पडास्वादपङ्कससंयुक्तम् यथा—कृष्णहरिणमांसम् । असंयुक्ता  
भिन्नाः पङ्कसाः । ७ पञ्चकाः पञ्चकरससंयोगाः पटुसंख्याः । चतुः-रसचतुष्टयसं-  
योगाः । द्विकोरसद्वयसंयोगाः । ८ मधुरोमधुरतरुमधुरतम इति तारतम्यकल्पना ।  
गणनांसमतीता असंख्या भवन्तीत्यर्थः ।

## एकादशोऽध्यायः ।

रोगविज्ञानविषयकः ।

अथाऽत्रो दोषादिविज्ञानोपमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

देहमूलानि दोषादीनि—

“दोषघातुमला मूलं सदा देहस्य तं<sup>१</sup> चलः ।

उत्साहोच्छ्वासनिश्वातचेष्टावेगप्रवर्तनैः ॥१॥

सम्यग्गत्या च घातूनामज्ञाणां पाटवेन च ।

अनुद्गृह्यात्वविकृतः, पित्तां पित्तप्लवमदर्शनैः ॥२॥

कुतूहलचिप्रभाभेधोशौर्यतनुमार्दवैः ।

श्लेष्मा स्थिरत्वस्निग्धत्वसंधिर्बधक्षमादिभिः ॥३॥

रसादिघातुमलानां श्रेष्ठकर्माणि—

‘प्रोणनं जीवनं लेपः स्नेहो धारणपूरणं ।

गर्भोत्पादञ्च घातूनां श्रेष्ठं कर्म क्रमात्स्मृतम् ॥४॥

प्रवष्टम्भः पुरीषस्य, मूत्रस्य नभेदबाहनम् ।

स्वेदस्य बलेदविघृतिः,

वृद्धवायोः कर्माणि—

वृद्धस्तु कुस्तेऽनिलः ॥५॥

कार्श्याकाप्यर्थोष्णकामित्वकपाऽनाहणवृद्धग्रहात् ।

बलनिर्द्वेदियभ्रंशप्रलापभ्रमदीनताः ॥६॥

वृद्धपित्तकर्माणि—

पीतविष्णुत्रनेत्रत्वक्कुतूहलाहाजलनिद्रताः ।

पित्तम्,

१ चलोवायुः । २ श्लेष्मास्थिरत्वादिभिरनुद्गृह्णाति । ३ प्रोणनमिन्द्रियप्री-  
तिकरम् । लेपोऽस्थानिलेपकरम् । शरीरस्थोर्ध्वधारणमस्थिः कर्म, पूरणं  
स्नेहेनास्थिमज्जः कर्म । ४ अंशशब्दोबलादिभिः प्रत्येकं सम्बध्यते । ५ पीतशब्दो  
विट्वादित्वगन्तैः प्रत्येकं सम्बध्यते ।

### वृद्धकफकर्माणि—

श्लेष्माऽग्निसदनप्रसेकालस्यगौरवम् ॥७॥

श्वेत्यशैत्यश्लथांगत्वं श्वासकासातिनिद्रताः ।

### वृद्धरसरक्तयोः कर्माणि—

रसोऽपि श्लेष्मवद्रक्तं विसर्पन्तोहविद्रधोम् ॥८॥

कुष्ठवाताक्षपित्तास्रगुल्मोपकुशकामसाः ।

व्यङ्गाग्निनाशसंमोहरक्तत्वङ्नेत्रमूत्रताः ॥९॥

### वृद्धमांसकर्माणि—

मांसं गंशानुदंशान्गण्डोद्धरवृद्धताः ।

कंठादिष्वधिमांसं च,

### वृद्धमेदसः कर्माणि—

तद्वन्मेदस्तथा श्रमम् ॥१०॥

मत्पेऽपि चेष्टिते श्वासं स्फिकस्तनोदरलंबनम् ।

### वृद्धास्थनः कर्माणि—

अस्थपथ्यस्यधिदंताश्च

### वृद्धमज्ज्ञः कर्माणि—

मज्जा नेत्रांगगौरवम् ॥११॥

पर्वसु स्मूलमूलानि कुर्यात्कुच्छ्रात्यैर्हपि च ।

### वृद्धशुक्रकर्माणि—

भतिस्त्रीकामता वृद्धं शुक्रं शुक्राश्मरीमपि ॥१२॥

### वृद्धपुरीष कर्माणि—

कुशावाध्मानमाटोपं गौरवं वेदनां शठम् ।

### वृद्धमूत्र कर्माणि—

मूत्रं तु नस्तिनिस्तोदं कृतेऽप्यवृत्तसंज्ञताम् ॥१३॥

१ रक्तशब्दो त्वगादिभिः प्रत्येकं बुध्यते । २ तद्वत्-मांसवत् गण्डदीदीम् कुरुते । ३ मूत्रे कृतेऽपि अवृत्तमिव, ससर्वं मूत्रवेगः स्यात् ।

मेत्रादिमलानां क्षयलिङ्गम्—

मलानामतिसूक्ष्माणं दुर्लभं नक्षयेत् क्षयम् ।

स्वमलायनसंशोपतोदशून्यत्वमाश्रयः ॥२३॥

दोषादीनां संक्षेपतोदृष्टिक्षयलिङ्गम्—

दोषादीनां यथास्वं च विद्यादृष्टिक्षयो भिषक् ।

क्षयेण विपरीतानां गुणानां वर्धनेन च ॥२४॥

वृद्धि मलानां संवाच्य, क्षयं चाऽतिविसर्गतः ।

वृद्धिक्षययोस्तारतम्यम्—

मलोचितत्वाद्देहस्य दायो वृद्धेस्तु पीडनः ॥२५॥

दोषादीनामाश्रयाश्रयिभावः—

तत्राऽस्थनि स्थितो वायुः पित्तं तु स्वेदरक्तयोः ।

श्लेष्मा श्लेपेषु, तेनैषामाश्रयाश्रयिणां मिथः ॥२६॥

वृद्धिक्षयप्रतीकारः—

अश्लेष्मस्य तदन्यस्य वर्धनक्षपणोपपद्यम् ।

अस्थिमास्तयोर्नैवं, प्राप्नो वृद्धिर्हि तर्पणात् ॥२७॥

श्लेष्मणाऽनुगता, तस्मात् संक्षयस्तद्विपर्ययात् ।

वायुनाऽनुगतः, अस्माच्च वृद्धिक्षयसमुद्भवत् ॥२८॥

विकाराम् साधयेच्छीघ्रं क्रमात्संघनवृंहणैः ।

वायोऽन्यत्र, तज्जास्तु तरेवोत्क्रमयोजितैः ॥२९॥

१ दोषादीनां विपरीतानां गुणानां क्षयेण वर्धनेन च क्रमाद्वृद्धिक्षयो जानीयात् । यथा घातस्य विपरीता गुणाः स्निग्धगुरुष्णालयस्तेषां देहे क्षये वायुवृद्धिः, तेषामेव च वृद्ध्या वायोः क्षयः । एवमेव घातानां मलानाञ्च वृद्धिक्षयो । सङ्गाच्च मलानां वृद्धिमतिविसर्गतश्चक्षुर्य व्यवस्येत् । २ यदौषधमेकस्थाश्रयस्य यथा-स्वेद रक्तात्मकस्य वृद्धिक्षयकरं तदेवाश्रयिणः पित्तस्यापि वृद्धिक्षयावहम् । परमस्थि- मास्तयोरेवमाश्रयाश्रयिभावेन न वृद्धिक्षयकरत्वम् । तद्विपर्ययादपतर्पणात् संघनादि- त्यर्थः अपतर्पणश्च वायुसम्बद्धम् । ३ तज्जगत् वातजाप्रोगात् संघनवृंहणै रूत्क्रमयोजितैर्विपरीतयोजितैः, यथा घातवृद्धिजाम् वृंहणैः वातक्षयोत्पन्नाश्च तद्वि- नैरिति भावः ।

### रक्तादिघातुवृद्धिजातरोगप्रतीकारः—

विदोषाद्वृद्धयुं त्याग्यं रक्तस्य तिविरेचनैः ।  
 मांसवृद्धिमवाप्तुं रोगाम् शस्त्रशाराधिकर्मभिः ॥३०॥  
 स्थौल्यकार्ष्णोपचारेण मेदोजानघस्त्यसं—  
 क्षयात्, क्षांताम् क्षौरघृतंस्तिक्तसंयुक्तंस्तिमित्तया ॥३१॥  
 विट्पृष्टद्विजानतीसारक्रियया, विट्क्षयोद्भवाम् ।  
 मेवाजमध्यकुल्मापयवमापंदयादिभिः ॥३२॥  
 मूत्रघृद्धिदयोत्पांश्च मेहं कृच्छ्रचिकित्सया ।  
 व्यायामाज्यंजनस्वेदमर्चैः स्वेदक्षयोद्भवाम् ॥३३॥

### धातुवृद्धिज्ञयप्रकारः—

स्वस्मानस्यस्य कायाग्नैरंशा धातुषु संश्रिताः ।  
 तेषां सादातिदीप्तिभ्यां धातुवृद्धिदयोद्भवः ॥३४॥  
 पुनो धातुः परं कुर्मद्विद्धः क्षीणश्च तद्विषम् ।  
 दुष्टदोषाणां धातुदूषणत्वम्—  
 दोषा दुष्टा रसैर्घातुम् दूषयंत्युभये मलाम् ॥३५॥  
 प्रभो द्वे सप्त शिरसि खानि, स्वेदवहानि च ।  
 मला मलायनानि स्फुर्यथात्वं तेष्वतो यदाः ॥३६॥

### ओजोनिरूपणम्—

ओजस्तु तेजोपातूनां शुक्रंजतानां परं स्मृतम् ।  
 हृदयस्यमणि व्यापि देहस्थितिनिर्बधनम् ॥३७॥  
 स्निग्धं सोमात्मकं शुद्धमिषत्लोहितपीतकम् ।  
 भ्रम्राशो नियतं नाशो यस्मिंस्तिष्ठति विप्रति ॥३८॥  
 निष्पद्यते यतो भावा विविधा देहसंयथाः ।

१ मदोजा-स्थौल्योपचारेण, अस्ति सप्तमुत्पन्नाश्च कार्ष्णोपचारेण । २ मापद्वयं  
 घृह्णन्नुदभेदेन । ३ मेहचिकित्सया मूत्रवृद्धिजान्, कृत्स्नचिकित्सयाच मूत्रक्षयोत्थाम् ।  
 ४ तद्विषं वृद्धं क्षीणं च । ५ रसैर्मघ्रादिभिः । उभये दोषाघातवच्च ।  
 ६ यन्नाशो-यस्योजसोनाशे । ७ यतओजसः ।

# रसभेदाः ६३

सं०	भेद०	रसाः	सं०	भेद०	रसाः
१	१	मधुरः	३३	१२	अ० ल० ति०
२	२	अम्लः	३४	१३	अ० ल० कपा०
३	३	लवणः	३५	१४	अ० कटु० कपा०
४	४	कटुः	३६	१५	अ० कटु० ति०
५	५	तिक्तः	३७	१६	अ० ति० कपा०
६	६	कपायः	३८	१७	ल० कटु० ति०
		(२)	३९	१८	ल० कटु० कपा०
७	११	मधुराम्लम्	४०	१९	ल० ति० कपा०
८	२	मधुर लवणम्	४१	२०	कटु० ति० कपा०
९	३	मधुर कटुकम्			(३)
१०	४	मधुर तिक्तम्	४२	१	म० अ० ल० कटु०
११	५	मधुर कपायम्	४३	२	म० अ० ल० ति०
१२	६	अम्ल लवणम्	४४	३	म० अ० ल० कपा०
१३	७	अम्ल कटुकम्	४५	४	म० अ० कटु० ति०
१४	८	अम्ल तिक्तम्	४६	५	म० अ० कटु० कपा०
१५	९	अम्ल कपायम्	४७	६	म० अ० ति० कपा०
१६	१०	लवण कटुकम्	४८	७	म० ल० कटु० ति०
१७	११	लवण तिक्तम्	४९	८	म० ल० ति० कपा०
१८	१२	लवण कपायम्	५०	९	म० ल० कटु० कपा०
१९	१३	कटु तिक्तम्	५१	१०	म० कटु० ति० कपा०
२०	१४	कटु कपायम्	५२	११	अ० ल० कटु० ति०
२१	१५	तिक्त कपायम्	५३	१२	अ० ल० कटु० कपा०
		(३)	५४	१३	अ० ल० ति० कपा०
२२	१	म० अ० ल०	५५	१४	अ० कटु० तिक्त० कपा०
२३	२	म० अ० कटु०	५६	१५	ल० कटु० ति० कपा०
२४	३	म० अ० ति०	५७	१६	(५)
२५	४	म० अ० कपा०	५८	१७	म० ल० ल० कटु० ति०
२६	५	म० ल० कटु०	५९	१८	म० अ० ल० कटु० कपा०
२७	६	म० ल० ति०	६०	१९	म० अ० ल० ति० कपा०
२८	७	म० ल० कपा०	६१	२०	म० अ० कटु० ति० कपा०
२९	८	म० कटु० ति०	६२	२१	म० ल० कटु० ति० कपा०
३०	९	म० कटु० कपा०			(६)
३१	१०	म० ति० कपा०	६३	१	म० अ० ल० कटु० ति० कपा०
३२	११	म० ल० कटु०			



भोजः क्षीयेत कोपक्षुब्धधानशोकप्रमादिभिः ॥३६॥

विभेति दुर्बलोऽभीष्टं ध्यायति व्यथितेन्द्रियः ।

विन्ध्यस्यो दुर्मनो रूक्षो भवेत्क्षामश्च तत्साधे<sup>१</sup> ॥४०॥

जीवनीयोपषक्षीररसाद्यास्तत्र<sup>२</sup> भेषजम् ।

भोजोविबुद्धो देहस्य तुष्टिपुष्टिवनोदयः ॥४१॥

संक्षेपेणवृद्धिर्ज्ञेयचिकित्सा--

यदन्नं द्वेष्टि यदपि प्रापयेताविरोधि तु ।

तत्तत्पूजम् समश्नन् तौ तौ बुद्धिगमौ जयेत् ॥४२॥

दोषाणां वृद्धिर्ज्ञेयसाम्यलक्षणानि--

यथावत् यथास्वं च दोषा वृद्धा वितन्वते ।

रूपाणि, जहति क्षीणाः, समाः स्वं कर्म कुर्वते ॥४४॥

दोषरक्षणम्--

य एव देहस्य समा विबुद्धर्ष

त एव दोषा विपमा वषाय ।

यस्मादतस्ते हितचर्ययव

<sup>३</sup>क्षयाद्विबुद्धेरिव रक्षणीयाः<sup>४</sup> ॥४५॥

## द्वादशोऽध्यायः ।

रोगविज्ञानम् ।

भयाज्जो दोषभेदोपाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

देहे वायोः स्थाननिर्देशः--

"पकाशयकटीमन्त्रिष्वोत्राऽस्थिस्पर्शनेन्द्रियम् ।

१ तत्साधे तस्योजसः साधे । २ तत्तत्-द्विष्टं त्यजम्, प्रापितं समश्नम् ।

३ वृद्धादोषादोषविपरोते, क्षीणाश्च समाने । यथावृद्धो नातो विपरोते स्निग्धादौ,

क्षीणश्च समाने रूक्षादौ । ४ यथा विबुद्धे रक्षणीयास्तथा क्षयादपि ।

स्थानं वातस्य सत्रापि पक्वाणानं विशेषतः ॥१॥

पित्तस्थानम्—

नाभिरामाशयः स्वेदो लसीका<sup>१</sup> हृषिरं रसः ।

हृन् हृषानं च पित्तस्य नाभिरत्र विशेषतः ॥२॥

कफस्थानम्—

उरः कंठशिरः क्लोमपर्वाण्यामाशयो रसः ।

मेदो घ्राणं च जिह्वा च कफस्य सुतरामुरः ॥३॥

वायोः पञ्चविधस्यम्—

प्राणादिभेदात्पंचात्मा वायुः, प्राणोऽत्र मूर्धनः ।

उरः कंठवरो बुद्धिहृदयोद्विचिचित्तधृक् ॥४॥

छीवनक्षयधूटारनिःश्वासाद्यप्रवेष्टकृत् ।

उरःस्थानमुदानस्य नासागामिगताञ्चरेत् ॥५॥

वायव्यवृत्तिप्रयत्नोर्जाविसवर्णस्मृतिक्रियः ।

व्यानो हृदि स्थितः कृत्स्नदेहचारी<sup>२</sup> महाजवः ॥६॥

गत्यपक्षे<sup>३</sup> पणोत्सेवनिमेपोम्मेपणादिकाः ।

प्रायः सर्वाः क्रियास्तस्मिन् प्रतिबद्धाः शरीरिणाम् ॥७॥

समानोऽग्निसमोपत्यः कोष्ठे चरति सर्वतः ।

अन्नं गृह्णाति पचति विवेचयति भुंजति ॥८॥

अमानोऽपानगः धोषिबस्तिमेदोहृगोचरः<sup>४</sup> ।

शुक्रार्तवशकृन्मूत्रगर्भनिष्क्रमणक्रियः ॥९॥

पित्तस्य पंचभेदाः—

पित्तं पंचात्मकं, तत्र पक्वामाशयमध्यगम् ।

पंचभूतात्मकत्वेऽपि पतञ्जलपुण्ड्रिकात् ॥१०॥

१ लसीका-त्वङ्मार्मासयोर्मध्येस्थितमुदकम् । २ अन्नपञ्चसु । ३ कृत्स्नं सम्पूर्णम् ।

४ अपक्षेपणमङ्गानामधोनयनम् । ५ तस्मिन् व्याने । ६ विवेचयति सारकित्वा  
पृथक् करोति । ७ मेदुं लिङ्गम् ।

त्यक्तद्रवत्वं पाकादिकर्मणाऽनलशब्दितम् ।  
 पचत्यग्निं विभजते सारकिट्टी पृथक् तथा ॥११॥  
 तत्रस्थमेव<sup>१</sup> पित्तानां शेषाणामप्यनुग्रहम् ।  
 करोति बलदानेनपाचकं नाम तत्स्मृतम् ॥१२॥  
 आभाशयाश्रयं पित्तं रंजकं रसरंजनात् ।  
 बुद्धिमेधाऽभिमानाद्यैरभिप्रेतार्थसाधनात् ॥१३॥  
 साधकं<sup>२</sup> हृद्गतं पित्तं,

रूपालोचनतः स्मृतम् ।

हृत्स्थमानोचकं,  
 त्वक्स्थं भ्राजकं भ्राजनात्त्वचः ॥१४॥

कफस्यपञ्चविधत्वम्—

श्लेष्मा तु पंचपा,  
 उत्स्थः स त्रिकस्य<sup>३</sup> स्ववीर्यतः ।  
 हृदयस्याग्नवीर्याच्च तत्स्थ<sup>४</sup> एवावुक्तमृणा ॥१५॥  
 कफाग्न्या च शेषाणां यत्करोत्यवलंबनम् ।  
 प्रतोऽवलंबकः श्लेष्मा, यस्त्वामाशयसंस्थितः ॥१६॥  
 क्लेदकः सोऽग्निसंघातक्लेदनात्, रसबोधनात् ।  
 बोधको रसनास्यामी, गिरःसंस्थोक्षतर्पणात् ॥१७॥  
 सर्पकः, संधिसंश्लेषाच्छेत्पृथक् संधिषु स्थितः ।

दोषोपसंहरणम्—

इति प्रायेण दोषाणां स्थानान्यविकृतात्मनाम् ॥१८॥  
 व्यापिनामपि जानीयात्कर्माणि च पृथक्पृथक् ।

दोषाणां चयकोयशमहेतवः—

उष्णेन गुक्ता स्थाया वायोः कुर्वति संचयम् ॥१९॥  
 शीतेन<sup>५</sup> कोपमुष्णेन शमं स्निग्धादयो गुणाः ।

१ तत्र पक्वामाशयमध्यस्थमेव । २ साधकं बुद्ध्यादीनाम् । ३ त्रिकमनोप-  
 रिस्थम् । ४ तस्य उत्स्थः । ५ शीतेन युक्तास्थायाः ।

शीतेन युक्तास्तीक्ष्णावाअपं पित्तस्य कुर्वते ॥२०॥

उष्णेन<sup>१</sup> कोषं, मंदाद्याः शमं शीतोपसंहिताः ।

शीतेन युक्ताः स्निग्धाद्याः कुर्वते श्लेष्मणश्चयम् ॥२१॥

उष्णेन कोषं, तेनैव<sup>२</sup> गुणा रूक्षादयः शमम् ।

चयादीनां लक्षणानि—

चयो वृद्धिः स्वघाम्भ्येव प्रद्वेषो वृद्धिहेतुषु ॥२२॥

विपरीतगुणेष्वपि च, कोपस्तून्मार्गनामिता<sup>३</sup> ।

लिंगानां दर्शनं स्वेषामस्वास्थ्यं रोगसंभवः ॥२३॥

स्वस्थानस्थस्य समता विकारासंभवः शमः ।

ऋतुपुष्पादीनां चयादयः—

चयप्रकोपप्रशमा वायोर्ग्रीष्मादिषु<sup>४</sup>, शिषु ॥२४॥

वर्षादिषु तु पित्तस्य, श्लेष्मणः शिशिरादिषु ।

वीर्ये लघुरूक्षाभिरोषधीभिः समीरणः ॥२५॥

ताद्विघस्तद्विघे<sup>५</sup> देहे, कालस्योपयासं कुप्यति ।

अदिभरम्लविपाकाभिरोषधीभिश्च तादृशम्<sup>६</sup> ॥२६॥

पित्तं याति चयं, कोषं न तु कालस्य दैत्यतः ।

वीर्ये स्निग्धशीताभिरुदकोषधिभिः कफः ॥२७॥

तुल्येऽपि काले देहे<sup>७</sup> च, स्कन्धत्वात् प्रकुप्यति ।

इति कालस्वभावोऽयं, आहारादिवशात्पुनः ॥२८॥

चयादीन् याति सद्योऽपि दोषाः कालेऽपि वा न<sup>८</sup> तु ।

दोषाणां व्याप्तिनिवृत्तिर्धैरिन्द्रियम्—

व्याप्नोति सहसा देहमापादतलमस्तकम् ॥२९॥

निवर्तते तु कुपितो मलोऽप्यार्यं जलोधवत् ।

१ उष्णेन युक्तास्तीक्ष्णावाः । २ तेनैव-उष्णेनैव । ३ उन्मार्गेतिस्वस्थानम्-  
स्वस्थान्यन्यमार्गशृङ्खलम् । ४ यथा-शोष्णे वायोश्चयो, वर्षायां कोपः शरदि च  
शमः । ५ तद्विघोलघुरूक्षाः, तद्विघे लघुरूक्षे देहे । ६ तादृशमम्लविपाकम् । ७ देहे  
स्निग्धशीते । ८ न तु चयादौ याति ।

कुपितदोषजविकारहेत्वादिकम्—

नानारूपैरसंख्येयैर्विकारैः, कुपिता मलाः ॥३०॥  
 चापयंतितनुं तस्मात्तद्वेत्वाकृतिसाधनम्<sup>१</sup> ।  
 शक्यं नैकैकशो वक्तुमतः सामान्यमुच्यते ॥३१॥

दोषाणां सर्वरोगकारणत्वम्—

दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेककारणम् ।  
 यथा पक्षी परिपतम् सर्वतः सर्वमप्यहः ॥३२॥  
 छायामस्येति नात्मीयां यथा वा कृस्नमप्यदः ।  
 विकारजातं<sup>२</sup> विविधं त्रीम् गुणाध्नाऽतिवर्तते ॥३३॥  
 तथा स्वधातुर्वैषम्यनिमित्तमपि सर्वदा ।  
 विकारजातं त्रीन्दोषां,

दोषाणां कोपे कारणम्—

तेषां<sup>३</sup> कोपे तु कारणम् ॥३४॥  
 अद्यैरसात्म्यं<sup>४</sup> संयोगः, कालः, कर्म च दुष्कृतम् ।  
 हीनातिमिथ्यायोगेन भिद्यते तत्पुनस्त्रिधा ॥३५॥

असात्म्येन्द्रियार्थं संयोगः—

हीनोऽर्धेन्द्रियस्यात्यः संयोगः स्वेन नैव वा ।  
 प्रतियोगोऽतिसंसर्गः, मूढमभासुरभैरवम्<sup>५</sup> ॥३६॥  
 अस्यासन्नाऽतिदूरस्था विप्रियं विकृतादि च ।  
 यदक्षणा बोद्धवते रूपं मिथ्यायोगः स दारुणः ॥३७॥  
 एवमत्युच्चपूत्यादीनिन्द्रियाधीन् मथावयम् ।  
 विद्यात्, कालस्तु शीतोप्युष्णवर्षभेदात्त्रिधा मतः ॥३८॥

कालः —

स<sup>६</sup> हीनो हीनशीतादिरतियोगोऽतिलक्षणः ।

१ तेषां विकाराणां हेत्वादीनि । २ विकारजातं विकारसमूहः सांसारिकः  
 सर्वः पदार्थः स्थावरजङ्गमात्मकः । ३ गुणां सत्वरजस्तमांसि । ४ तेषां  
 दोषाणाम् । ५ अद्यैरिन्द्रियाणां विषयः । असात्म्यैरहितः । ६ भासुरमुज्ज्वलम् ।  
 ७ स कालः ।

मिथ्यायोगस्तु निदिष्टो विपरीतस्वसंशयः ॥३६॥

त्रिविधं कर्म

कायवाक्पित्तभेदेन कर्माग्नि विमत्रेतिषा ।

कायादिर्कर्मणा हीना प्रवृत्तिर्हीनगमिका ॥३७॥

भक्तयोगोऽतिवृत्तिस्तु, वेगोदोरण्यारण्यम् ।

विषमो गत्रियारंभः पतनस्थलनादिकम् ॥३८॥

भाषणं सामिभृतस्त्रय, रागद्वेषमयादि च ।

कर्म प्राणातिपातादि दशया यच्च निदिष्टम् ॥३९॥

मिथ्यायोगः समस्तोऽग्राविह चाभुन वा कृतम् ।

निदानमेतदोपाया, कृपितास्तेन नैक्या ॥४०॥

कुर्यति विविद्याम् व्याधौ च शालाकोठास्थिर्नधिषु ।

बाह्यरोगस्थानम्—

शालारत्नादयस्त्रयश्च बाह्यरोगायनं हि तत् ॥४१॥

तदाश्रया भयस्यनगंढालम्बुदादयः ।

बहिर्नागाश्च दुर्नामगुल्मयोऽदादयो गदाः ॥४२॥

आन्तरोरोगमार्गः—

घृतःकोष्ठो महासीत आमपक्वशयाश्रयः ।

तस्त्वानाश्रयतीसारकासश्चासोदरज्वराः ॥४३॥

अंतर्मार्गश्च शोफशौगुन्मवीतर्पविश्रमि ।

मध्यमरोगमार्गः—

शिरोहृदयवस्त्यादिमर्माण्यस्थी च संघयः ॥४४॥

तन्निवद्धाः शिरास्नायुकंदराद्याश्च मध्यमाः ।

१ विपरीतेति यथा ग्रीष्मे शीतः शीत उष्णता । २ सामिभृतस्यार्षभृतस्य ।  
३ वेगोदोरण्यादारभ्य पतनान्तं कायमिथ्या योगः । भाषणं सामिभृतस्येति  
वाङ्मिथ्यायोगः । रागेति मानसो मिथ्यायोगः । ४ दशधा-दिनचर्यायां "हिंसा-  
स्तेयादिना" उक्तं यथायर्थं कायवाङ्मिथ्यायोगः । तेन निदानेन । ५ तदा-  
श्रयाः शालारत्नादयस्त्रयः १, ६, मद्गुच्छोत्त आमपक्वशयाश्रयोऽन्तर्मार्गः । ७ तन्नि-  
वद्धाः-शिरोहृदयाद्याश्रयाः ।

रोगमार्गाः, स्थितास्तत्र यक्ष्मपक्षवधादिताः ॥४८॥  
मूर्धादिरोगाः संध्यस्थित्रिकनूलग्रहादयः ।

### कुपितवायुकर्माणि

संस्रंभ्यासव्यघस्वापसादरुक्तोदमेदनम् ॥४९॥  
संगांगभंगसंकोचवर्तहर्षणतर्पणम् ।  
कपवास्त्यसोपियंशोपस्पर्दनवेष्टनम् ॥५०॥  
स्तंभः कपायरसता वर्णः श्यावोऽरुणोऽपि वा ।  
कर्माणि वायोः,

### कुपितपित्तकर्माणि—

पित्तस्य दाहरागोष्मपाकिताः ॥५१॥  
स्वेदः क्लेदः क्षुतिः कोयः सदनं मूर्च्छनं भदः ।  
कटुकाम्लौ रसौ वर्णः पाटुरारुणवर्जितः ॥५२॥

### कुपितफफकर्माणि—

श्लेष्मणः स्नेहकाठिन्यकण्डूशोतस्वषीरवम् ।  
बधोपलेपस्तमित्यशोकापवत्यतिनिद्रताः ॥५३॥  
वर्णः श्वेतो रसो स्वादुलवणो चिरकारिता ।

### पुनःपुनरार्तदर्शनम्—

इत्यपेयामयव्यापि यदुक्तं दोषलक्षणम् ॥५४॥  
दर्शनाधीरबहितस्तत्सम्यगुपनञ्जयेत् ।  
व्याध्यवस्थाविभागज्ञः पश्यन्नातान् प्रतिक्षणम् ॥५५॥  
अभ्यासारप्राप्यते दृष्टिः कर्मसिद्धिप्रकाशिनो ।  
रत्नादिसदसज्ज्ञानं न शास्त्रादेव जायते ॥५६॥

### क्याधेस्त्रैविध्यम्—

दृष्टाचारजः कश्चित्कश्चित्पराधनः ।

१ संस्रंभः सन्धिभ्रंशः । व्यास आशेषः । संगःपुरीषवामादीनाम् । वर्तः पुरीषादीनांपिण्डोत्तरणम् ।

तत्संकराद्भवत्यन्यो व्याधिरेवं त्रिधा स्मृतः ॥५७॥

त्रिविधव्याधिलक्षणानि—

यथानिदानं दोषोत्पत्तिः, कर्मजो हेतुभिर्विना ।

महारंभोऽल्पके हेतोर्वातंको दोषकर्मजः ॥५८॥

तच्चिकित्सा—

विपदाशीलनादूर्ध्वः, कर्मजः कर्मसंज्ञयात् ।

गच्छत्युभयजन्मा तु दोषकर्मक्षयात्सप्तमम् ॥५९॥

रोगद्वैविध्यम्—

द्विधा स्वपरतन्त्रत्वाद्याधयः,

अन्त्यस्यद्वैविध्यम्—

भक्त्याः पुनर्द्विधा ।

पूर्वजाः पूर्वल्पास्त्रिधा, जाताः पञ्चाशुपद्मवाः ॥६०॥

स्वतन्त्रलक्षणम्—

यथास्वजन्मोपश्रयाः स्वतन्त्राः स्पष्टलक्षणाः ।

परतन्त्रकथनम्—

१ विपरीतास्ततोऽन्ये तु विद्यादेवं<sup>२</sup> मलानपि ॥६१॥

मलानां स्वतन्त्रपरतन्त्रते—

ताम् लक्षयेद्वद्विहो विकृर्वाणाम् प्रविज्वरम् ।

तच्चिकित्सा—

१ तेषां प्रधानप्रशमे प्रथमोऽश्चाम्यतस्तथा ॥६२॥

पञ्चान्विक्रितेक्षुर्ण<sup>२</sup> पा बलबन्तमुपद्रवम् ।

व्याधिनिलशरीरस्य पीडाकरतरो हि सः<sup>३</sup> ॥६३॥

१ त तः स्वतन्त्रलक्षणैर्म्यो विपरीता अन्ये परतन्त्राः । २ एवं स्वतन्त्राश्च ।  
ताम् यातादीम् । ३ तेषां परतन्त्राणाम् । ४ स उपद्रवः ।



## अशोषरोगाणां न नामतः स्थितिः—

विकारनामाकुशलो न जिह्नीयात्कदाचन ।  
नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः ॥६४॥  
स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः ।  
स्थानांतराणि च प्राप्य विकाराम् कुक्षते बहूम् ॥६५॥

## चिकित्साविधिः—

तस्माद्विकारप्रवृत्तीरधिष्ठानांतराणि<sup>१</sup> च ।  
बुद्ध्वा हेतुविशेषांश्च शीघ्रं कुर्मदुपक्रमम् ॥६६॥  
दृष्यं देशं बलं कालमनलं प्रवृत्तिं वयः ।  
सत्त्वं सारम्यं तथाऽहारमवस्थाश्च पृथग्विधाः ॥६७॥  
सूक्ष्मसूक्ष्माः समीक्ष्यंषा दोषोपधनिरूपणे ।  
यो वर्तते चिकित्सायां न स स्वलति जातुचित् ॥६८॥

## चिकित्सायां सावधानता—

गुर्वल्पव्याधिसंस्थानं सत्त्वदेहबलाबलात् ।  
दृश्यतेऽप्यन्यथाकारं तस्मिन्नवहितो भवेत् ॥६९॥

## अल्पक्षयैरानिन्दा—

गुरुं लघुमिति व्याधिं इत्ययंस्तु निषण्णवः<sup>१</sup> ।  
अल्पदोषाकलनमा पश्ये विप्रतिपद्यते<sup>२</sup> ॥७०॥  
ततोऽल्पमलावीर्यं वा गुरुव्याधी प्रयोजितम् ।  
उदीरयेत्तरां रोमाम् मंशोपधनमयोगतः ॥७१॥  
शीघ्रं त्वान्तयोगेन विपरोतं<sup>३</sup> निपयंते ।  
शिखुयान्न मलानेव केवलं वपुरस्यति ॥७२॥

१ विकारप्रवृत्ती रोगकारणानि । २ निषण्णवःकुत्सितवंचः । ३ पश्ये चिकित्सते । विप्रतिपद्यते ज्ञान रहितो भवति । ४ निपयंते लघुव्याधी, विपरोत-  
मुपवीर्यमतिमात्रं च ।

अतोऽभिपुक्तः<sup>१</sup> गततं सर्वमानोप्य सर्वथा ।  
तथा युञ्जीत भयम्भमारोग्याय यथा ध्रुवम् ॥७२॥

### दोषभेदाः—

वदयति तत्र परं दोषा वृद्धिस्तयविभेदतः ।  
पृथक् श्रीम्<sup>२</sup> विंदि, संगर्गस्त्रिषा, 'तत्र ॥ तान्नव ॥७३॥  
त्रिनेष समथा वृद्ध्या, पठेत्स्वाऽनिशायने ।  
त्रयोदश<sup>३</sup> समस्तेषु  
षट्स्थेवातिशयेन तु ॥७४॥  
एकं तुत्याधिकैः,  
पट् च तारतम्यविवरणात् ।  
पञ्चविंशतिमित्येवं वृद्धेः,  
क्षीणंश्च तावतः<sup>४</sup> ॥७५॥  
एकैकवृद्धिसमताक्षर्यः पट् ते,  
पुनश्च पट् ।  
एकस्यावृद्धवृद्ध्या<sup>५</sup> सविपर्यययापि ते ।  
भेदा द्विपटिनिर्दिष्टाः  
त्रिपटः स्वास्थ्यकारणम् ॥७७॥

### दोषभेदानामानन्त्यम्—

संसर्गादिसरुधिरादिभिस्तथैषां<sup>६</sup> ।  
दोषास्तु क्षयसमताविबुद्धिभेदैः ।

१ अभिपुक्तः सर्वदायुर्वेदपाठावबोधानुष्ठानतत्परः । २ श्रीम् १ वातः, २ पित्तं,  
३ कफः । ३ तत्र-संसर्गे तान् भेदान् । नवेत्यस्य विवरणं त्रीनेवेत्यादिना ।  
४ समस्तेषु-सन्निपातेषु । द्वयोरतिशयेनाधिकेन त्रयोभेदाः, एकस्यापिशयेन च  
त्रयोभेदाः, एवं सङ्कलनया पट् । तारतम्येति-वृद्धोवृद्धतरोवृद्धतम इति ।  
५ तावतः पञ्चविंशतिः । ६ एकस्य वृद्धिरेकस्य समता एकस्य च क्षयः ।  
७ सविपर्यया-द्वन्द्वस्य एकवृद्धिरित्यर्थः । ८ एषां दोषभेदानाम् ।

आनृत्यं तरतमयोगतश्च याताम्  
जानीयादवहितमानसो यथास्वम् ॥७८॥

## त्रयोदशोऽध्यायः ।

### रोगविज्ञानम् ।

अथाऽतो दोषोपक्रमणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

#### वातचिकित्सा—

वातस्योपक्रमः स्नेहः स्वेदः संशोधनं मृदु ।  
स्वाद्वस्नलघणोष्णानि भोज्यान्वर्गमर्दनम् ॥१॥  
वेष्टनं त्रासनं<sup>१</sup> सेको मष्टं पंष्टिकगौष्टिकम् ।  
स्निग्धोष्णा वस्तयो वस्तिनियमः सुखशीलता<sup>२</sup> ॥२॥  
दीपनैः पाचनैः सिद्धाः स्नेहाश्चानेकयोनेयः ।  
विशेषान्मेघपिशितरसर्तलानुवासनम् ॥३॥

#### पित्तचिकित्सा—

पित्तस्य सपिपः पानं स्वादुशीतैर्विरेचनम् ।  
स्वादुतिक्तकषामाणि भोजनान्यौषधानि च ॥४॥  
सुगन्धशीतद्वृक्षानां गंधानामुपसेवनम् ।  
कठै<sup>३</sup> गुणानां हाराणां मलीनामुरमा घृतिः ॥५॥  
कर्पूरचन्दनोशीरैरगुलेपः क्षणे क्षणे ।  
प्रदोषश्चंद्रमाः<sup>४</sup> सौधं हारि रीतं हिमोऽनिलः ॥६॥  
अमंत्रणमुष्णं मित्रं पुत्रं<sup>५</sup> संदिग्धमुष्णवाक् ।  
छेदानुवर्तिनो दाराः प्रियाः शूलविभूषिताः ॥७॥

१ त्रासनं मनमिजद्वेगकरणम् । २ सुखशीलता सोऽस्ववृत्तित्वम् । ३ कठेऽगुण-  
संज्ञानां हाराणाम् ॥ मुधाभिश्चूणैः कृतं सौधं धवसगृहम् । ४ संदिग्धाऽवक्ता  
मुग्धाऽप्रोढा च वाक्यस्य एवंविधः पुत्रः ।

शीतांबुधारागर्भाणि गृहाण्युद्यानदीधिकाः<sup>१</sup> ।  
 सुतीर्थविपुलस्वच्छमलिनाशयमंकते ॥८॥  
 सांभोजजलतीरांते कायमाने<sup>२</sup> द्रुमाकुले ।  
 सौम्या भावाः पयःमपि विरेकश्च विशेषतः ॥९॥

ः कफं चिकित्सा—

अनेष्मणो विधिना युक्तं तीक्ष्णं वमनरेचनम् ।  
 अन्नं स्थाऽल्पतौक्ष्ण्यं कटुतिक्तकषायकम् ॥१०॥  
 दीर्घकालस्थितं मद्यं रतिप्रोतिप्रजागरः ।  
 अनेकरूपो व्ययामश्रिता रुक्षं विमर्दनम् ॥११॥  
 घूमोपयासगंहपा निःसुखत्वं सुखाय च ॥१२॥

संसर्गचिकित्सा —

उपक्रमः पृथग्दोषाश्च योऽयमुद्दिश्य कीर्तितः ।  
 संसर्गवन्निपातेषु तं यथास्वं विकलायेत् ॥१३॥  
 ग्रैष्मः प्रायो महस्वित्ते, वासंतः कफमाहते ।  
 महतो योगवाहित्वात्कफपित्ते तु शारदः ॥१४॥

चिकित्साकालः—

अथ एव जघेहोषं कुपितं त्वविरोधयम् ।  
 सर्वकोपे बलीयांसं शेषदोषाविरोधतः ॥१५॥  
 प्रयोगः शमयेच्छाधि योऽन्यमन्यमुदीरयेत् ।  
 नाऽऽप्तो<sup>३</sup> विशुद्धः, शुद्धस्तु शमयेद्यो न कोपेत् ॥१६॥

दोषाणांकोष्ठाच्छाखादिगमनम्—

व्यायामादूष्मणस्तृष्णादहिताचरणादपि ।  
 कोष्ठाच्छाखास्थिमर्माणि द्रुतत्वान्मास्तस्य च ॥१७॥  
 दोषा यांति, तथा तेभ्यः<sup>४</sup> स्रोतोमुखविशोधनात् ।

शास्त्रादिभ्यःकोष्ठगमनम्—

वृद्ध्याभिप्यदनात्पाकात्कोष्ठं वायोश्च निग्हात् ॥१८॥

१ दीर्घिका वापी । २ कायमाने वेणवादिरचितम् । ३ असौ प्रयोगः ।  
 ४ तेभ्यः शाखादिभ्यः ।

तत्रस्याश्च<sup>१</sup> विलंबेरम् मूषो हेतुप्रतीक्षिणः ।

ते कालादिवर्त्तं लब्ध्वा कुप्यन्त्यन्याश्रयेष्वपि ॥१९॥

**परस्थानगतदोषाणां चिकित्साविधिः—**

<sup>१</sup>तत्राऽन्यस्थानसंस्थेषु तदीयामबलेषु तु ।

कुर्याच्चिकित्सा स्वामेव बलेनान्याभिभाविषु ॥२०॥

भार्गवंतुं शमयेद्दोषं स्थानिनं प्रतिकृत्य वा ।

प्रायस्तिर्यग्गता दोषाः क्षेप्यन्त्यातुरांश्चिरम् ॥२१॥

**तिर्यग्गतदोषचिकित्सा—**

कुर्यान्न तेषु स्वरया देहान्मिबलवित्क्रियाम् ।

शमयेत्ताम् प्रयोगेण मुखं वा कोष्ठमानयेत् ॥२२॥

ज्ञात्वा कोष्ठप्रपन्नाश्च यथासन्नं<sup>१</sup> विनिर्हरेत् ।

**साममल लक्षणानि—**

स्रोतोरोषबलभ्रंशगौरवानिलमूढताः ॥२३॥

भ्रालस्यापक्तिमिष्टीधमलसंगाहचिबलमाः ।

लिंगं मलानां सामानां, निरामाणा विपर्ययः ॥२४॥

**आमस्वरूपम्—**

<sup>१</sup>ऊर्मणोऽल्पबलत्वेन धातुमाद्यमपाधितम् ।

तुष्टमामाशयगतं रममार्मं प्रवक्षते ॥२५॥

<sup>२</sup>अन्ये दोषेभ्य एवातिदुष्टेभ्योन्योन्यमूर्ध्यतात् ।

कोद्रवेभ्यो विपत्येव वर्दत्पामस्य संभवम् ॥२६॥

**अत्र प्रक्षिप्तौ—**

विष्मूत्रनखदंतत्वक्चक्षुषां पीतता भवेत् ।

- १ तत्रस्थाः कोष्ठस्थाः । २ तत्रतेपुवातादिषु । तदीया तस्यान्यस्थानदोष  
स्पर्शं तदीयाता न स्वकीयाम् । अन्यमन्यस्थानदोषमभिभवितुं शीलं येषां तेषु ।  
अन्यदोषस्थानगतोऽन्यो दोषोऽबलश्चेत् । स्थानस्थितदोषस्यैवोपक्रमणं कार्यं, गतो  
दोषः प्रबलश्चेत् गतदोषस्यैव चिकित्सा कार्येत्यर्थः । ३ यथासन्नं यथासमीपम् ।  
४ ऊर्मणो जाठराग्नेः । ५ अन्य आचार्याः ।

रक्तत्वमतिरूप्यत्वं पृष्ठास्मिकटिमधिहृत् ॥  
 शिरोरक्तं जायते तीव्रा निद्रा विरमना मुग्धे ।  
 क्वचिच्च श्वपुगुनि ज्वरोऽतीमारहर्षणम् ॥

### सामरोगाः—

ग्रामेन तेन संपृक्ता दोषा दूष्याश्च दूषिताः ।  
 मामा इत्युपदिश्यते ये च रोगास्तदुद्भवान् ॥२७॥

### सामक्षोपचिकित्साविधिः—

सर्वदेहप्रविस्तृताम् मामाम् दोषान् निहरेत् ।  
 लीनाम् पातुष्वनुत्थिताम् कणादामाद्रसानिव ॥२८॥  
 ग्राम्यस्य हि नाशाय ते<sup>१</sup> स्युर्दुर्निर्हरत्नतः ।  
 पाचनैर्दोषनैः स्नेहैस्ताम्<sup>२</sup> स्वेदंश्च परिप्लुताम् ॥२९॥  
 शोधयेच्छोषनैः काले यथामर्लं यथाबलम् ।  
 हंस्यान् युक्तं वक्त्रेण द्रव्यमामाशयाग्निसाम् ॥३०॥  
 घ्राणेन चोर्ध्वजग्रूत्याम्, पक्वाधानाद्गुदेन<sup>३</sup> च ।  
 उत्थितामथ ऊर्ध्वं वा न चामान्वहतः स्वयम् ॥३१॥  
 धारयेदोषधैर्दोषान्, विधृतास्ते<sup>४</sup> हि रोगदाः ।  
 प्रवृत्ताम् प्रागतो दोषानुपेक्षेत हिताशिनः ॥३२॥  
 विबद्धाम् पाचनैर्स्तृप्तिः पाचयेन्निहरेत् वा ।

### शोधनकालः—

श्रावणे कान्तिके चैत्रे मामि साधारणे क्रमात् ॥३३॥  
 ग्रीष्मवर्षाहिमचिताम् वाय्वादीनाम् निहरेत् ।  
 अत्युष्णवर्षशीता हि ग्रीष्मवर्षाहिभागमाः ॥३४॥  
 संघो साधारणे तेषां दुष्टान् दोषान् विशोधयेत् ।  
 स्वस्थवृत्तमभिप्रेत्य, व्याधौ व्याधिवदेन तु ॥३५॥

१ तदुद्भवान् ग्रामोत्पन्नाः । २ ते सामादोषाः । ३ ताम् सामदोषान् ।  
 ४ घ्राणेन नाशया युक्तं शिरोविरेचनमोषधम् । ५ गुदेन युक्तं बस्तिरित्यर्थः ।  
 ६ ते दोषाः ।

कृत्वा शीतोष्णवृष्टीनां प्रतीकारं यथायथम् ।  
प्रयोजयेत्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥३६॥

औषधभक्षणकालाः—

‘१५ऽज्यादनघ्नमघ्ना’दो, ‘मध्यं’ते कवलांतरे’ ।  
घ्राते’ घ्रासे, मुहुः’ मात्रं’ ‘सामुद्रं, निशि’ ‘चोपघम् ॥३७॥  
कफोद्रेके गदेऽनन्नं’ बलिनो रोगरोगिणोः ।  
‘मन्नादौ विपुणेऽज्ञाने समाने’ मध्यं दृष्यते ॥३८॥  
व्यानं’ते ‘प्रातराशस्य, ‘सायमाशस्य सूक्ष्मे’ ।  
‘प्रासमासांतयोः’ प्राणे प्रदुष्टे मातरिश्चनि ॥३९॥  
‘मुहुर्मुहुर्विपन्नादिहिम्मातृदृष्टासकातिषु ।  
योज्यं सभोज्यं भेषज्यं भोज्यंश्चिन्नैररोचके’ ॥४०॥  
‘कंपाक्षेपकहिम्नामु’ सामुद्रं लघुभोजिनाम् ।  
ऊर्ध्वजन्तुविकारेषु ‘स्वप्नकाले प्रशस्यते ॥४१॥

## चतुर्दशोऽध्यायः ।

रोगविज्ञानम् ।

अथाऽतो द्विविधोपक्रमणायमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

द्विविधउपक्रमः—

“उपक्रम्यस्य हि द्वित्वाद्विधैवोपक्रमो मतः ।  
एकः संतर्पणस्तत्र द्वितीयश्चापसर्पणः ॥१॥  
वृंहणं यद्वृहत्त्वाय, लंघनं लाघवाय यत् ॥२॥

१ उत्तरे—उदानवायोविमुखे सायमाशस्यान्ते । २ आसश्चप्रासान्तश्चतयोः ।  
प्रासोप्रासगुक्नभोपघम् । प्रासान्तोप्रासमध्ये च । ३ सामुद्रं-भोजनं स्यादावन्ते च ।

देहस्य,

भवतः प्रायो भोमापमितरञ्च<sup>१</sup> ते ।

चतुर्णां द्वयोरेवान्तर्भावः ।

स्नेहं रुक्ताणं कर्म स्वेदनं स्तंभनं च यत् ॥३॥

भूतानां तदपि हृद्यादितयं नाप्रतिवर्तते ।

लोघनस्य द्वैविध्यम्—

शोषनं शमनं चेति द्विधा तत्राऽपि लघनम् ॥४॥

शोधनलक्षणं तद्भेदाश्च—

यदीत्येद्वहिर्दोषान्पंचषा शोषनं च तत् ।

निरुहो वमनं कायशिरोरेकोऽत्र विस्फुतिः<sup>२</sup> ॥५॥

शमनस्य लक्षणं भेदाश्च—

न शोषयति यद्दोषाम् समान् नोदीरयत्यपि ।

समीकरोति विषमाम् शमनं तच्च सप्तधा ॥६॥

पाचनं दीपनं क्षुत्तृड्भ्यामामातषण्णास्ताः<sup>३</sup> ।

वाते पित्ते च बृंहणं शमनमेव—

बृंहणं शमनं स्वेन वायोः पित्तानिलस्य च ॥७॥

बृंहणार्हाः—

धृष्टेभ्याधिभेषज्यमद्यस्त्रीशीकृकशिताम् ।

भारतृप्त्रोत्क्षतशीणरूसादुर्बलवातज्ञाम् ॥८॥

गर्भिणीमूतिकाशालवृद्धान् श्रोष्मेऽपरानपि<sup>४</sup> ।

बृंहणोपायाः—

मांसक्षीरसितासर्पिर्मधुरस्निग्धवस्तिभिः ॥९॥

ते सन्तर्पणापतर्पणे । सन्तर्पणं पृथिवीजलप्रायम् । इतरत् भोमापा-  
दन्यत्—अग्निवाग्वाकाशात्मकमपतर्पणम् । २ कायरेकोविरेचनम् । ३ क्षुदिति—  
‘शान्’ण रीति रोकः । ४ अपरान्—एभ्योऽनुक्तान् स्वस्थानित्यर्थः ।



स्वप्नशय्यासुखार्म्यगस्तानिर्वृतिहर्षणः<sup>१</sup> ।

लंघनार्ही : -

मेहामदोपातिस्निग्धज्वरोरुस्तंभकुष्ठिनः ॥१०॥

विसर्पविद्वधिष्णीहृशिर.कंठाऽक्षिरोगिणः ।

स्पृष्टांश्च लंघयेन्नित्यं शिशिरे त्वपरानपि<sup>२</sup> ॥११॥

संशोधन विषय कथनम् --

तत्र संशोधनः स्थूलबलपित्तकफाऽधिकान् ।

ग्रामदोषज्वररुद्धिरतीसारहृदामयः ॥१२॥

विबधगौरवोद्गारहृल्लासादिभिरातुरान् ।

मध्यस्थोल्यादिकान् प्रायः पूर्वं पाचनदीपनैः ॥१३॥

<sup>३</sup>एभिरेवा,ऽमयैरातान् होनस्थोल्पबन्नादिकान् ।

धुत्तुप्पानिग्रहैर्दोषैस्त्वातन्मध्यबलहंढान् ॥१४॥

समीरणातपाऽऽयासं. किमुताञ्जनवल्लनैरान् ।

न घृह्येत्लंघनीयान्,

वृष्ट्यास्तु मृदु लंघयेत् ॥१५॥

घृह्णलंघनयोः संशयेक विन्यता—

युक्त्या वा देशकालादिवलतस्तानुपाशरेत्<sup>४</sup> ।

वृंहितस्य लक्षणम्—

वृंहिते स्याद्रसं पुष्टिस्तत्साध्यामयसंक्षयः<sup>५</sup> ॥१६॥

विमलेंद्रियता सर्गो मलानां, लाघवं रुचिः ।

लंघितस्य लक्षणम्--

शुत्तुट्सहोदयः शुद्धहृदयोद्गारकंठता ॥१७॥

१ निर्वृतिः—मनमोऽव्याकुलत्वम् । २ अपरान् व्याधितान् । ३ एभिराम-  
दोपादिभिः । ४ ताव-वृष्ट्याम् । ५ तत्साध्येति तेनवृंहणेनसाध्य ग्रामयः ।

व्याधिमार्वमुत्साहस्तं दानाशश्च लंघिते ।

अतिवृंहितलंघितयोर्लक्षणम्—

अनपेक्षितमात्रादिसेविते कुस्तसु ते ॥ १८॥

प्रतिस्पोल्याऽतिकाश्यादीन् वक्ष्यंते ते च सौषधाः ।

रूपं तैरेव<sup>१</sup> च भेषमतिवृंहितलंघिते ॥ १९॥

प्रतिस्पोल्यापघ्नीमेहज्वरोदरमगंदरान् ।

शससंन्यासकृच्छ्रामकुट्टादीनतिदारुणान् ॥ २०॥

अतिस्पोल्य चिकित्सा—

\*तत्र मैदोऽनिलश्लेष्मनाशनं सर्वनिष्पद्यते ।

कुलरथचूर्णश्यामाकन्यबभ्रुदग्मब्रूदकम् ॥ २१॥

मस्तुदंढाहतारिष्टचिताशोघनजागरम् ।

मधुना त्रिफला लिङ्गादगुह्वर्चमभयां धनम् ॥ २२॥

रसांजनस्य महतः पंचमूलस्य मुग्गुलोः ।

शिलाजतुप्रयोगश्च माग्निमं परसौ हितः ॥ २३॥

विडंगं नागरं क्षारः काललोहरजो मधु ।

यवामलनचूर्णं च योगोऽतिस्पोल्यदोषजित् ॥ २४॥

\*व्योपकट्वीवराशिप्रुविडंगाऽतिविपास्तिराः ।

हिगुमीवर्चलाजाजीयबानीधान्यचित्रकाः ॥ २५॥

\*निशे वृहत्पौ हपुषा पाठा मूलं च कंबुकात् ।

एषा चूर्णं मधु घृतं तैलं च सदृशांशकम् ॥ २६॥

सक्तुभिः षोडशगुणैर्युक्तं पीतं निहति सत् ।

अतिस्पोल्यादिकाम् सर्वान् रोगानन्यांश्च तद्विधाम् ॥ २७॥

१५ तैरति स्पोल्यादिभिरतिकाश्यादिभिश्च । २ तत्र तेषु प्रतिस्पोल्यादिषु ।

३ दण्डाहतं तत्रम् । ३ व्योपः कटुत्रयम् । कट्वी 'कुटकी' हि० वरा त्रिफला ।

शिशुः 'महिजन' हि० । अतिविपा 'अतोस' हि० । स्तिरा क्षालपर्णी । ४ निशे

'हरिद्रा, दासहरिद्रा च । वृहत्पौ 'भटकटैया, बनमोटा' हि० । हपुषा

'हाउवेर' हि० ।

हृद्रोगकामलाश्विश्रश्चासकासगलग्रहाभू ।

बुद्धिमेधास्मृतिकरं संग्रस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ८॥

### अतिलंघितोत्पन्नरोगाः—

अतिकाश्यं\* भ्रमः कासस्तृष्णाधिष्यमरोचकः ।

स्नेहाऽग्निद्राहृक्क्षेत्रशुक्रौजःश्रुत्स्वरक्षयः ॥२६॥

वस्तिहृन्मूर्धजंघोरुत्रिकपार्श्वरुजा ज्वरः ।

प्रलापोऽध्वो निलग्लानिच्छदिपर्वस्थिभेदनम् १ ॥३०॥

विष्णुप्रादिग्रहाद्याश्च जायतेऽतिविलम्बनात् ।

स्थौल्यापेक्षयाकार्यंवरम्—

काश्यमेव वरं स्वयंभ्यात्,

नहि स्थूलस्य मेपजम् ॥३१॥

वृंहणं लघनं नालमतिमेदोऽग्निवातजित् ।

मधुरस्निग्धसौहित्यैर्यत्सोक्त्येन विनश्यति ॥३२॥

‘क्रत्विमा, स्थविमाऽत्यंतविपरीतनिषेवणैः ।

कृशेभैषज्यम्—

योजयेद्ब्रह्मं तत्र सर्वं पानात्रभेषजम् ॥३३॥

अचित्तया हर्षणेन ध्रुवं संतर्पणेन च ।

स्वप्नप्रसंगाच्च कृशो वराह इव पूज्यति ॥३४॥

नहि मांससमं किञ्चिदन्यद्देहवृद्धत्वकृत् ।

मासादमासं<sup>१</sup> मासेन संभृतत्वाद्विशेषतः ॥३५॥

स्थूलकृशयोः समासेनचिकित्सितम्--

गुरु चाऽवर्पणं स्थले, विपरीतं हितं कृशे ।

यवगोधूमप्रभयोस्तद्योग्याहितकल्पनम् ॥३६॥

१ ऊर्ध्वानिल ऊर्ध्वातः । २ कृशस्यभावः क्रशमा । स्थूलस्यभावः स्थविमा ।  
३ मांसमस्ति भक्षयतीति मासादोमांसभक्षी । संभृतत्वात्पुष्टत्वात् । ४ तयोः  
स्थूलवृद्धार्थेभ्योऽङ्गोचिता, ग्राहिता कृता . कल्पना संयोगसंस्कारादिनोपयोग  
उपायो यस्मिन् यत्रैव योषमे च ।

अन्योपक्रमस्यद्वयोरेवान्तर्भावः—

दोषगत्याऽतिरिच्यते<sup>१</sup> ग्राहिभेदादिभेदतः ।

उपक्रमा न ते द्वित्वादिभन्ता अपि गदा इव” ॥३७॥

## पञ्चदशोऽध्ययः ।

द्रव्यगुणशास्त्रम् ।

अथाऽतः शोधनादिगुणसंग्रहमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

वसनकराणि—

‘मदनमधुकलंबानिर्विबिंबीविशाला

प्रपुस्तकुटजमूर्वादिषडालीकृमिघ्नम् ।

विदुलदहनचित्राः कोशवत्पी करंजः

फलवणवचैलासर्पपाश्छरंनानि ॥१॥

विरेचन कराणि—

‘निकुम्भकुम्भनिफलागवाक्षी-

स्तुक्शलिनीनीलिनितित्वकानि ।

शम्पाककंपित्तकहेमदुग्धा

दुग्धं च मूत्रं च विरेचनानि ॥२॥

१ ग्राही च भेदी च ग्राहिभेदिनी-मादी येषामुपक्रमाणां तेषांभेदस्तस्मात् ।  
अतिरिच्यन्ते, अधिका भवन्ति । द्वित्वात्संग्रहणोपतर्पणरूपात् । २ लंबा ‘कटुवी’  
‘तूंबी’, बिम्बी-‘कुंदुरु’ । विशाला ‘इन्द्रायण’ । प्रपुम् ‘कडवाक्षीरा’ । देवदाली  
‘वन्नाल’ । कृमिघ्नं ‘बामविडग’ । विदुलः ‘जलवे’ । दहनं ‘चोत’ । चित्रा मूपापर्णी  
कोशवत्पी-‘कडवा नेनुवा, तरोई’ । फलः ‘पीपर’ । इति हिन्दी भाषायाम् ।  
३ निकुम्भः ‘जमाल गोटा’ । कुम्भः ‘निसोष’ । गवाक्षी ‘इन्द्रायण’ । स्तुक्  
‘सेहड’ । शालिनी ‘मवतिका’ । नीलिनी ‘नील’ । शम्पाकः ‘अमलतास’ ।  
कम्पित्तकः ‘कवीला’ । इति हिन्दी ।

## निरुहणसाधनानि—

मदनकुटजकुण्डदेवदाली-

मधुकवचादशमूलदारुस्तनाः ।

१ यवमिसिक्तवेधनं कुलत्थो

मधुलवणं त्रिवृता निरुहणानि ॥३॥

## शिरोविरेचनानि—

वेल्ताऽपामार्गव्योपदाधीसुराला<sup>१</sup>

बीजं शैरीपं बार्हतं शंभवं च ।

सारो माधूकः सैधवं तार्क्ष्यशीलं

त्रुट्यौ पृथ्वीका शोधयंत्युत्तमागम् ॥४॥

## वातहराणि—

भद्रदारु<sup>२</sup> नतं कुण्डं दशमूलं बलाद्वयम् ।

वायुं वीरतरादिश्च विदार्यादिश्च नाशयेत् ॥५॥

## पित्ताहराणि—

दूर्वाऽमंता<sup>३</sup> भिबवासाऽऽत्मगुता

गुद्राऽभीरुः शीतपाकी त्रिमगुः ।

भ्यमोधादिः पत्रकादिः स्थिरे द्वे

पथंवन्यं सारिवादिश्च पित्तम् ॥६॥

## कफहराणि—

भारगवधादिरकीर्दिर्मुष्ककाद्योऽस्तनादिकः<sup>४</sup> ।

१ मिमिः 'सैफ' । वृत्तवेधनः कड़वा नेनुवा<sup>१</sup> इति हिन्दी । २ वेल्तः 'वायविहङ्ग' । दाली 'दारुहरदी' । सुराला 'राल' । शैरीपंबीजं 'सिरसाबीज' । बार्हतंबी० 'वनभांटा का बीज' । शंभवं 'सहिजन बीज' । सारो माधूकः—महुवा सार' । तार्क्ष्यशीलं 'रमवत' । त्रुट्यौ 'छोटी बड़ो इलायची' । पृथ्वीका 'मंगरल' । इति हिन्दी । ३ भद्रदारु—'देवदार' । नतं 'तगर' बलाद्वयं 'वरियरा' ककही । ४ घनन्ता 'जवासा' वासा=रुसा । आत्मगुप्ता=कैवाच । गुद्रा= 'गोदनी' । अभीरुः=शतावर । शीतपाकी-गुञ्जाभेदः स्थिरे=मरिचन, पिठवन । वन्यम्=शुद्रमुस्ता । ५ बलासजित् कफजित् ।

गुरमादिः ममुस्तादिर्यस्मकादिर्यतामजिव् ॥७॥

जीवनीयगणः—

जीवन्तो१ काकोली मेदे द्वे मुद्रमापयणौ च ।

ऋषभकजीवकमधुकं चेति गणो जीवनीयगणः ॥८॥

विदार्यादिगणः—

विदारिपंचांगुत्तपृश्चिकाली१

पृश्चिपदेवाह्वयदूर्पण्यः ।

कंदूकरी जीवनहृस्वमंजे

द्वे पंचके गोपमुता त्रिपादौ ॥९॥

विदार्यादिर्य हृद्यो वृहणो वातपित्तहा ।

शोपगुल्माऽगमदौर्घ्वश्वासकासहरो गणः ॥१०॥

दाहादिनाशकानि—

सारिषोशोरकाश्मर्यमधूकशिशिरद्वयम्१ ।

यष्टी परूपकं हंति दाहपित्तालतृड्ज्वराम् ॥११॥

स्तन्यादिकरोगणः—

पचकमुंडो वृद्धितुगर्धः

शृंग्यमृता दशजीवनसंज्ञाः ।

स्तन्यकरा धन्तीरणपित्तं

१ काकोली, क्षीरकाकोली । मेदा, महामेदा । २ विदारी = विदारीकंद । पश्चाज्जलः = रेंड । वृश्चिकाली = मेपशृङ्गी । वृश्चिवः = पयरो । देवाह्वयः = देवदार । दूर्पण्यौ = मापपण्यौ ( वनउर्द ) मुद्रपण्यौ वनमूंग । कंदूकरी = केंवाच । हृस्वजीवनम् (१) शतावर (२) क्षीर काकोली (३) जीवन्तो (४) जीवक (५) ऋषभक । शालपण्यौ पृष्ठपण्यौ वृहतीद्वयमोक्षुरारूपम् । गोपमुता = सारिवा । त्रिपादौ = हंसपादौ हंसराज । ३ शिशिरद्वयम् = श्वेतरक्तभेदेन चन्दनद्वयम् । परूपकं = फालसा । ४ पचकं = हेमपचम् । पुण्ड्रः = सफेद कमल । वृद्धिः = मुण्डो । तुगा = वंशलोचन । शृङ्गो = काकड़ासिमी ।

प्रीणनजीवनवृंहणवृष्याः ॥१२॥

तृष्णादिनाशकोगणः—

१ परूपकं वरा द्राक्षा कट्फलं कतकात्फलम् ।

रात्राह्वं दाडिमं शाकं तृणमूत्रामयवातजित् ॥१३॥

विषादिनाशकोगणः—

१ भ्रंजनं फलिनो मांसी पयोत्पलरसाजंनम् ।

सैलामधुकनागाह्वं विषांतर्दाहपित्तनुत् ॥१४॥

कफादिनाशकोगणः—

१ पटोलकटुरोहिणीचंदनं

मधुस्रवयुहचिपाठान्वितम् ।

निहंति कफपित्तकुष्ठज्वराद्य

विषं वमिमरोचकं कामलाम् ॥१५॥

गुडूच्यादिपञ्चकम्—

१ गुडूचीपञ्चकारिष्टधानका रक्तचंदनम् ।

पित्तश्लेष्मज्वरच्छदिदाहतृष्णाश्लमग्निशुत् ॥१६॥

आरग्वधादिगणः—

१ आरग्वधैद्रवयपाटलिकाकतित्ता

निवाऽमृतामधुरसालुववृक्षपाठाः ।

भूनिंबसैर्यकपटोलकरंजयुर्म

१ वरा = त्रिफला । कतकं = निर्मली । राजाह्वं = खिन्नी । शाकं =

शाकवृक्षः । २ भ्रंजनं = सफेद काला सुर्मा । फलिनो = प्रियङ्गु । मांसी =

जटामांसी । नागाह्वं = नागकेसर । ३ कटुकरोहिणी = कुटकी । मधुस्रवा = मूषा

४ पञ्चकं = पदमाल । भरिष्ट = नीम । ५ आरग्वधः = अमलतास । पाटलिः =

पाँदुर । काकतित्ता = काकजंघा । मधुरसा = मूषा । स्रववृक्षः = भटकटैया ।

भूनिम्बः = चिरायता । सैर्यकः = कटसरैयालालफूलको सप्तज्यदः = क्षितउन ।

अग्निश्चित्रकः । सुपवी = कालाजीरा । फलं = भैरवर । बाणः = कटसरैयापीले

फूल की । घोष्ठा = बदरी ।

### वीरतरादिर्गणः—

१ वेल्लंतरार. ऐकवृक वृषाऽश्मभेद-  
गोकंटकेत्कटसहाचरबाणकाशाः ।  
वृक्षादनीनलकुशद्वयगुठगुद्रा-  
भल्लूकमोरटकुरंटकरंमपार्थाः ॥२४॥  
वर्गो वीरतराद्योऽयं हन्ति वातकृत्वाग् गदाम् ।  
अश्मरोशकंरामुनकृच्छ्राऽऽपातसत्त्वाहरः ॥२५॥

### रोध्रादिर्गणः—

१ रोध्रणावरकरोध्रपलागा  
जिंगिण्योसरलकटफलमुक्ताः ।  
कुरिसतांबकदम्भीगतशोकाः  
सैलवालुपरिपेलवमोचाः ॥२६॥  
एपरोध्रादिको नाम भेदःकफहरो गणः ।  
योनिदोषहरः स्तंभी वर्यो विपविनाशनः ॥२७॥

### अर्कोदिर्गणः—

अर्काली<sup>१</sup> नामदंती विशल्या

१ वेल्लन्तरः = लक्ष । धराणिकोऽग्निमन्यः । वृक = शिव लिङ्गी । वृषः =  
मृदूसा । अश्मभेदः = पालानभेद । गोकण्टकः = गोखुण्ड । इत्कटः = इक्षुरिति-  
हेमाद्रिः । सहाचरः = कटसरैया । वृक्षादनी = वादा । नलः = 'नरकट' । कुशद्वयं  
स्थूल सूक्ष्म भेदेन । गुणः = तृणविशेषः । भल्लूकः = सोनापादा । मोरटः = मूर्वा ।  
कुरण्टः = पीले फूल की कटसरैया । करम्भः = उत्तमारणी । पार्थाः = भादित्य-  
भक्ता, २ जिंगिण्यो = कृष्णशात्मन्तो । सरल = देवदार । मुक्ता = रास्ना ।  
कुत्सिताम्बः = कदम्बः । गतशोकः = अशोकः । एलवालुलेयम् । परिपेलवं =  
धुद्रमुक्ता । मोचा = शात्मन्तो । अलर्कः = श्वेत पुष्पोमन्दारः । अर्कोत्तपुष्पो  
मन्दारः । नागदन्ती = पर्वपुष्पो । विशल्या = करियारी ।



१भार्गो रास्ना वृश्चिकालो प्रकीर्या ।  
 प्रत्यक्पुष्पी पीततैलोदकीर्या  
 श्वेतायुग्मं तापसानां च वृक्षः ॥२८॥  
 अयमर्कादिको वर्गः कफभेदोविपापहः ।  
 हृमिकुष्ठप्रशमनो विशेषाद्द्रवणशोधनः ॥२९॥

### सुरसादिर्गणः—

सुरसयुगफणिजं<sup>१</sup> कालमाला विष्टं  
 खरबुसवृक्पर्णोक्तफलं काममर्दः ।  
 क्षवकसरभिभार्गो कामुका काकमाषो  
 कुलहलविषमुष्टी भूस्तृणो भूतकेशो ॥३०॥  
 सुरसादिगणः श्लेष्मभेदकृमिनिपूदनः ।  
 प्रतिश्यामाऽरुचिश्वासकासघ्नो द्रवणशोधनः ॥३१॥

### मुष्ककादिर्गणः—

१मुष्ककस्नुम्बराद्वीपपलाशपवशिशपा ।  
 गुहनमेहाश्मरोपांडुभेदाऽर्शःकफक्षुद्रजित् ॥३२॥

### वत्सकादिर्गणः

वत्सकमूर्वाभार्गो<sup>२</sup>  
 कटुकामरिचघुणप्रिया च गंदीरम् ।

१ वृश्चिकालो = उद्धूधूमकः । प्रकीर्या = करंज । प्रत्यक्पुष्पी = अषामार्गः ।  
 पीततैला = ज्योतिष्मती । उदकीर्या = करंज । श्वेतायुग्मं = विष्णुकान्ता ।  
 तापसवृक्षः = इंगुदी 'हिंगोट, इंगुवा' हिन्दी । २ सुरसयुगं = तुलसी गोरक्ष  
 भेदेन । फणिजं = मरुवकः । कालमाला = वृष्णार्जकः । खरबुसः = खरपत्रकः ।  
 तृक्पर्णो = मूषकपर्णो । काममर्दः = 'कसौदी' हिन्दी । क्षवकः = नकछिकनी ।  
 सरसी-कपित्थपत्रा, कामुका = रत्नउर्मजरी काकमाषो = मकोय । कुलहलः = मुंडो ।  
 विषमुष्टिः = कुचिला, बकाइन । भूस्तृणम् = सुगन्धतृण । भूतकेशो = निगुरेडो ।  
 ३ मुष्ककः = मोखा । द्वीपी = चीत । ४ घुणप्रिया = अतोस । गंदीरम् = सेंदुड़ ।

१ एतापाठाजाजी .

कट्वडुगफलाजमोदसिद्धार्थवचाः ॥३३॥

जीरकहिंमुविडंगं पशुगंधा पंचकोलकं हंति ।

चलकफमेदःपीनसगुल्मज्वरशूलदुर्गन्धिः ॥३४॥

वचादिर्गणः—

१ यचाजसददेवाह्वनामराऽतिविषाऽभयाः ।

हरिद्रादिर्गणः—

१ हरिद्राद्वयपट्याह्वकलशीकुटजोद्भवः ॥३५॥

वचाहरिद्रादिगणावामातीसारनाशनी ।

मेदःकफाक्षयवनतन्यदोषनिबर्हणो ॥३६॥

प्रियङ्गुवादिर्गणः—

प्रियंगुपुष्पाजनयुग्मपद्या-

१ पद्याद्रजोमोजनवल्लीमता ।

मानद्रुमो भोचरसः सर्मागा

पुष्पागशीतं मदनीयहेतुः ॥३७॥

श्रृंगारिर्गणः—

श्रृंगारि मधुकं नमस्करी

१ नन्दीवृक्षपलाशकञ्जुराः ।

रोधं घातकिबिल्वपेशिके

कटंग्वः कमलोद्भवं रजः ॥३८॥

गणौ प्रियंग्वबष्ठादी पक्षातीमारनाशनी ।

१ पाठा = पादी अजाजी = जीरा । कट्वङ्गफलं = सोनापाढा फल ।  
 मिद्धार्थकः = सफेद सरसो । पशुगन्धा = ममरी । २ जलदोषुस्ता । देवाह्वं =  
 देवदार । नागरं = सोठ । कलशी = पृथ्विपर्णी । कुटजोद्भव इन्द्रयवः ।  
 ३ पुष्पाञ्जनम् = सफेद काला गुर्मा । पद्या = भाङ्गी । योजनवल्ली = मजीठ ।  
 अनन्ता = जवासा । मानद्रुमः = शाल्मली । सर्मागा = लजाधुर । पुंनागः =  
 रक्तवैशरः । शीतं = चन्दनम् । मदनीयहेतुः = धवः । ४ श्रृंगारि = पादी ।  
 नमस्करी = लजाधुर । नन्दीवृक्षः = जयवृक्षः । कञ्जुरा = भन्वयासकः ।

संधानीयो हितो पित्ते शृणानामपि रोपणो ॥३९॥

मुस्तादिर्गणः—

‘मुस्तावचाऽन्निद्विनिशाद्वित्वता-  
मत्तातपाठत्रिफलाविपाख्याः ।  
कुष्ठं त्रुटी हैमवती च योनि-  
स्तन्यामयघ्ना मलपाचनाश्च ॥४०॥

न्यग्रोधादिर्गणः—

‘न्यग्रोषपिप्पलसदाफलरोध्रयुग्मं  
जंबूद्वयाऽर्जुनरूपीतनसोमवल्काः ।  
लक्षाऽन्नबंजुलपिपासपलासनदी-  
कोलीकदंबविरलामधुकं मधुकम् ॥४१॥  
न्यग्रोधादिर्गणो श्रेयः संप्राही भग्नसाधनः ।  
मेदःपित्ताक्षतृदाहयोनिरोगनिबर्हणः ॥४२॥

एलादिर्गणः—

‘एलायुग्मतुर्यक्कुष्ठकलिनीमासीजलध्यामकं  
स्पृक्षाचीरकचोषपत्रतगरस्थोण्यजातीरसाः ।

१ भग्निश्रवकः । द्वित्वता = कटुककाकत्वित्वाच्च । विपा = प्रतोस ।  
कुष्ठं = शूट । त्रुटी = एला । हैमवती = वचा । २ न्यग्रोषः = वटवृक्षः ।  
सदाफलः = उदुम्बरः गूलर । जम्बूद्वयं वृहदल्पभेदेन । कपीतनः =  
पारिमपिप्पलः । सोमवल्कः = खदिरः । लक्षाः = पाकर । बंजुलः = वेतसः ।  
प्रियाल = चिरीजी । कोली = बैर । विरला = तेंदुवावृक्ष । ३ तुष्टकः =  
लोहवान । जलं = सुगंधवाला । ध्यामकं = सुगंधतृण । स्पृक्षा = देवीलता ।  
चीरकः = ग्रंथिपर्णः चोचं = दालचीनी । पत्रं = तैजपात । स्थोण्यं = “कुक्-  
रौषा” । जातीरगः = बोन ।

शुभितव्याघ्रनखोऽमराह्वमगुरुः श्रीवासकं कुंकुमं  
चंडागुग्गुलुदेवघूपखंपुराः पुभागनागाह्वयम् ॥४३॥ .  
एलादिको वातकफो विषं च विनियच्छति ।  
वर्णप्रसादनः कंठपिटिकाकोठनाशनः ॥४४॥

श्यामादिर्गणः—

श्यामा दंती द्रवंतीक्रमुककुटरणी  
शक्लिनी चर्मसाह्या  
स्वर्णक्षीरी गवाक्षी शिखरिरजनक-  
चिन्नरोहाकरंजाः ।  
वस्तांश्री व्याधिघातो बहलबहुरस-  
स्तीक्ष्णवृक्षा कृष्णाणि  
श्यामाघो हंति गुल्मं विषमरुचिकफो  
हृद्रुजं भूतकृच्छ्रम् ॥४५॥

वर्गाणां प्रयोग व्यवस्था—

अयस्त्रिंशदिति प्रोक्ता वर्गास्तेषु त्वलाभर्तः ।  
गुंज्यास्तद्विधमन्यच्च द्रव्यं जह्यादयोगिकम् ॥४६॥  
एते वर्गा दोषद्व्याघपेक्ष्य  
कल्ककायस्नेहले दियुक्ताः ।  
पाने नस्येऽन्वामर्नेऽस्तर्बहिर्वा  
लेपान्मर्गैर्ध्नन्ति रोमान् सुकृच्छ्रान्” ॥४७॥

१ अमराह्वं = देवदार । श्रीवासकं = गंधा विरोजा । चंडा = चोरपुष्पी ।  
देवधूवः = राल । खपुरः = कुंदुखवागोद । नामाह्वयं = नागकेसरम् । २ श्यामा =  
नैमोथ । क्रमुकः पठानीलोष । कुटरणी = सकेद नियोष । चर्मसाह्या = सातला ।  
गवाक्षी = इन्द्रायण । शिखरी = अनामार्गः । रजनकः = कम्पिलकः । चिन्नरोहा-  
ह्वी । वस्तांश्री = विधारा । व्याधिघातः = अमलतास । बहलबहुरसः = ऊज ।  
क्षीणवृक्षः पालु ।

## षोडशोऽध्यायः ।

इतः १६ अध्यायनः २४ अ० पर्यन्तं

कायचिकित्साविषयः

मषाऽतः स्नेहविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

स्नेहनत्रिरूपणयोः स्वरूपम्—

“गुरुशीतसत्तरस्निग्धमदमूदममुद्रवम् ।

प्रोषणं नेहनं प्रायो, विपरोक्षं विरक्षणम् ॥१॥

स्नेहाः—

मर्षिमज्जा वसा तैलं स्नेहेषु प्रवरं मतम् ।

तत्राऽपि चोत्तमं सपिः संस्कारस्याऽनुवर्तनात्<sup>१</sup> ॥२॥

पित्तघ्नास्ते यथापूर्वमितरघ्ना<sup>२</sup> यथोत्तरम् ।

घृतात्तैलं गुरु वसा तैलान्मज्जा ततोऽपि च ॥३॥

यमकाद् स्नेहनिरूपणम्—

द्वान्म्यां निमिञ्चतुमिस्तिर्यमकस्त्रिवृत्तो<sup>३</sup> महान् ।

स्नेहाः—

स्वेद्यसंज्ञोष्णमद्यस्त्रीव्यायामासवतर्चितका<sup>४</sup> ॥५॥

वृद्धबालाऽबलकृन्ना रुक्षाः क्षीणास्त्रेतसः ।

वातातर्त्तस्पन्दतिमिरदाहणप्रतिबोधिनः<sup>५</sup> ॥६॥

स्नेहा

१ संस्कारस्य—द्रव्यस्य अनुसहवर्तनात् । यदि घृतमन्यद्रव्यरूपेण वार्यैः सह संस्क्रियते चेत् तदगुणान्स्वस्तिन्नाघत्ते न च स्ववीर्यं जहाति । तैलादीषु एवं न विद्यते । यथा-भन्दनाद्यतैलम् । २ यथापूर्वं यथा घृतमुत्तमं पित्तघ्नमन्ये स्नेहाः क्रमशो हीनाः । इतरघ्नावात कफघ्नाः । ततस्तैलात् । ४ द्वान्म्यां यथा-सपिस्तिर्लान्म्यां, सपिर्व्यनाम्या, सपिर्मज्जाम्याम् यमकः । एवमन्येष्वपियोज्यम् । ५ मासवतशब्दो मद्यादिभिः सर्वैर्युज्यते । ६ दाहणप्रतिबोधिनः कृच्छ्रोन्मीलिनः ।

स्नेहनायोग्याः—

न त्वतिमंदाऽग्नितीक्ष्णग्निस्थूलदुर्बलाः ।  
 कृस्तंभाऽतिसाराऽमगलरोगमरोदरे ॥६॥  
 मून्डार्ज्ज्वलंश्चिश्लेष्मत्पुष्णामद्यैश्च पीडिताः ।  
 'अपप्रसूता, युवते च नस्ये वस्ती विरेचने ॥७॥

घृत विषयः—

'तत्र घीस्मृतिमेघाऽग्निकांक्षिणां शस्यते घृतम् ।

तैल विषयः—

ग्रंथिनाडोष्मिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिषु ॥८॥  
 तैलं लाघवदाढ्याधिक्कूरकोष्ठेषु देहिषु ।

वसामञ्जविषयः—

वाताऽतपाऽऽज्ज्वलरस्त्रोष्णायामक्षीणघातुषु ॥९॥  
 रुक्षवत्तेशसमाऽश्वग्निवातावृतपथेषु च ।

'शेषी,

वसाया अन्य विषयः—

वसा तु संध्यस्त्रिमर्मकोष्ठरुजासु च ॥१०॥  
 तथा दग्धाऽहृतभ्रष्टयोनिर्कर्णशिरोरुजि ।

स्वस्थस्य स्नेहसेवनकालः—

तैलं प्राकृषि, वपीति सर्पिरन्वी' तु माघवे ॥११॥

शोधनात्पूर्वस्नेहसेवनकालः—

ऋती साभारणे स्नेहः शस्तोऽह्नि विमले रवी ।

तैलं खराया शीतेऽपि,

घर्मेपि च घृतं निशि ॥१२॥

निश्येव पित्ते पवने संसर्गे पित्तवत्यपि ।

निश्यन्यथा' वातकफादोगाः स्युः पित्ततो दिवा ॥१३॥

१ अपप्रसूता पतितगर्भा । २ तत्र स्नेहवतुष्टयेषु । ३ शेषी-वसामञ्जानी ।  
 ४ अन्यो वसामञ्जानी । माघवे-वैशाखे । घर्मे ग्रीष्मे । ५ अन्यथा उक्तविधि-  
 तोऽन्यविधिना-यथा शीतकाले निशि घृतसेवया वातकफजारोगास्त्रयाग्रीष्मे दिवा  
 तैलसेवया पित्तरोगाः स्युः ।

## स्नेहसेवनयुक्तिः—

युक्त्याऽवचारयेत्स्नेहं भक्ष्याद्यन्नेन वस्तिभिः ।

नस्याम्यंजनगन्धपमूर्धकण्डिक्षितपर्णैः ॥४॥

## स्नेहप्रयोगकल्पना—

१ रसभेदेककत्वाम्यां चतुःषष्टिविचारणाः ।

स्नेहस्याऽन्याभिभूतत्वादल्पत्वाच्च क्रमात्स्मृताः ॥१५॥

२ यथोक्तहेत्वभावाच्च नाच्यपेयो विचारणा ।

स्नेहस्य कल्पः स<sup>१</sup> श्रेष्ठः स्नेहकर्माशुसाधनात् ॥१६॥

## स्नेहस्यति स्त्रोमात्राः—

द्वाम्यां चतुर्भिरष्टाभिर्यामिर्जीर्याति याः क्रमात् ।

ह्रस्वमध्योत्तमा मात्रास्तास्ताम्यश्च<sup>५</sup> हृषीयसीम् ॥१७॥

कल्पयेद्वीक्ष्य दोषादीम्, प्रागेव तु हृषीयसीम् ।

## त्रिविधस्नेहस्य कालमात्रालक्षणम्—

हृस्तने जीर्ण एवाग्रे स्नेहोऽच्छः शुद्धये बहुः ॥१८॥

शमनः शुद्धतोऽनघो मध्यमागश्च शस्यते ।

बृंहणो रसमद्यालैः समक्तोऽल्पः,

हितः स<sup>१</sup> च ॥१९॥

बालवृद्धविपासार्तस्नेहद्विभ्रमचक्षोतिषु ।

स्त्रीस्नेहनित्यर्मदान्निमुक्षितबलेनशभाह्वु ॥२०॥

मृदुकोष्ठाऽल्पदोषेषु बाले षोडशे कृशेषु च ।

१ रसानां भेदः—एकैकत्वं च ताम्याम्, रमाना भेदास्त्रिषष्टिः । एकैकत्वं केवलस्नेहः । विचारणा स्नेहप्रयोगकल्पना । भक्ष्याद्यन्नेन तथा रसभेदेन मूर्धादितर्पणेन च याः कल्पनाः क्रमाभिर्दिष्टास्ताः स्नेहस्य अन्नेन भक्ष्यादिना अभिभूतत्वात्तत्पात्त्वादल्पयोगित्वात् विचारणाः स्मृता इत्यर्थः । २ यथोक्तस्य विचारणायां निर्दिष्टस्य रसभेदेत्यादिस्वस्य हेतोरभावाच्च्यपेयः केवल स्नेहो न विचारणा । ३ स अच्यपेयः । ४ ताम्यस्त्रिभ्यो ह्रस्वादिमात्राम्यः । ५ हृषीयसीमतिशयेनात्याम् । ६ शुद्धये शुद्धपर्यम् । ६ स बृंहणोऽल्पः स्नेहः ।

भोजनस्यादिमध्यावसानेषु पीतस्यस्नेहस्य फलम्—

प्राङ्मध्योत्तरभक्तोऽसावधोमध्योर्ध्वदेहजाम् ॥२१॥

व्याधौ च जयेद्वलं कुर्यादङ्गानां च यथाक्रमम् ।

स्नेहेऽनुपान व्यवस्था—

वार्युष्णमच्छेऽनुपिवेत् स्नेहे १ तत्सुखपक्तये ॥२२॥

पास्योपलेपशुद्धं च, तीव्रारुणकरे न २ तु ।

जीर्णाजीर्णविशङ्कायां पुनरुष्णोदकं पिबेत् ॥२३॥

तेनोद्गारविशुद्धिः स्यात्ततश्च लघुता हचिः ।

स्नेह पानेऽन्नविधिः—

भोज्योऽन्नं मात्रया पास्यन् श्वः पिबन् पीतवानपि ॥२४॥

द्रवोष्णमनभिष्यंदि नाऽतिस्निग्धमसंकरम् ।

स्नेहपाने पथ्यापथ्यनिरुपणम्—

उष्णोदकोपचारी स्याद्ब्रह्मचारी १ क्षपाशयः ॥२५॥

न वेनरोधो व्यायामकोपशोकहिमातपान् ।

प्रवातयानयानाश्वभाष्यस्यासनमस्मितिः ॥२६॥

१ नोचात्युच्चोपधानाह. स्वप्नधूमरजाति च ।

माग्यहानि पिबेत्तानि तावन्त्यन्यान्पि त्यजेत् ॥२७॥

सर्वकर्मस्वयं प्रायो व्याधिभीषेणु च क्रमः ।

स्नेहप्रयोगोविरिक्तवदुपचारः—

उपचारस्तु शमने कार्यं स्नेहे विरिक्तवत् ॥२८॥

स्नेहपानेदिनपरिमाणम्—

अहमच्छे मृदो कोष्ठे, क्रूरे सप्तदिनं पिबेत् ।

१ तस्य स्नेहस्य सुखपक्तये सुखेन पाकाय । २ तीवरे तुवरर्तने, मारुणकरे चोष्णं वारिनानुपिवेत्, तयोरुष्णवीर्यत्वाद्विरोधः । तुवरं 'चालमोगरा' मरुणकर 'मिलावा' इति हिन्दी । ३ क्षपाशयः-दिवास्वप्नं न कुर्यात्, रात्रावेव शयीत । ४ उपधानं 'तकिमा' हिन्दी । ५ अच्छे केवलं स्नेहम् ।



सस्नेह्य शोषयेदेवं स्नेहव्यापन्न जायते ॥३८॥

भलं यत्नानीरयितुं स्नेहश्चासाह्मतां गतः ।

बालादिषु रुद्यः स्नेहकरणम्—

बालपृष्ठादिषु स्नेहपरिहारासहिष्णुषु ॥३९॥

योगानियाननुदेयाद् मद्यः स्नेहाद् प्रयोजयेत् ।

प्राज्यमांमरसास्तेषु<sup>१</sup> पेया वा स्नेहभजिता ॥४०॥

तिलधूलिश्च सस्नेहफणितः कृशरा तथा ।

धीरपेया घृताब्धोष्णा दध्नी वा सगुडः मरः ॥४१॥

पेया च पंचप्रसृता स्नेहैस्तंहलपंचमैः ।

मर्तते स्नेहनाः सद्यः स्नेहाश्च लवणोत्बणाः ॥४२॥

एतद्वधभिष्यंघृक्षं च मूत्रमुष्णं व्यवायि च ।

कुष्ठादिषु स्नेहननिषेधः—

गुडानूपाऽमिपत्तीरतिलमापनुरादधि ॥४३॥

कुष्ठशोफप्रमेहेषु स्नेहार्पं न प्रकुरयेत् ।

तेषां स्नेहनप्रकारः—

त्रिफलापिप्पलोपध्यागुग्मुल्वादिविपाचिताम् ॥४४॥

स्नेहान्वयास्वमेतेषां<sup>१</sup> योजयेदविकारिणः ।

व्याधित्वाणानां स्नेहन प्रकारः

क्षीणादीं त्वामयैरग्निदेहसधुक्षणक्षमाम् ॥४५॥

स्नेहसेवनफलम्—

दीर्घातराग्निः परिशुद्धकोष्ठः

<sup>१</sup>प्रत्यग्रयातुर्बलवर्णयुतः ।

हर्द्रेद्रियो मंदजरः शतायुः

स्नेहोपसेवी पुष्पः प्रदिष्टः ॥४६॥

१ तेषु—बालादिषु । २ तत्—लवणम् । ३ एतेषां कुष्ठादीनाम् । भग्निसंधुक्षण-  
क्षमां स्नेहान् । ४ प्रत्यग्रो नूतनः ।

## सप्तदशोऽध्यायः ।

स्वेदस्य चातुर्विध्यम्—

अथाऽतः स्वेदविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।  
 "स्वेदस्तापोपनाहोष्मद्रवभेदाञ्चतुर्विधः ।  
 तापोऽग्निगतपसनफालहस्ततलादिभिः" ॥१॥  
 उपनाहो वचाकिण्वशताह्लादेवदारुभिः ।  
 घान्यैः समस्तैर्गन्धैश्च रास्नैर्दण्डजटामिषैः ॥२॥  
 उद्विक्तलवणैः स्नेहचुक्रतक्रपयः क्षृतैः ।  
 केवले पवने, श्लेष्मसंस्पृष्टे सुरसादिभिः ॥३॥  
 पित्तेन पद्मकाष्ठैस्तु सात्वणार्णवैः पुनः पुनः ।

बन्धनद्रव्याणि—

स्निग्धोष्णवीर्यमृदुभिश्चर्मपट्टैरपूतिभिः ॥४॥  
 भलाभे वातजित्पत्रकौशेयाऽनिकशाटकैः ।  
 रात्रौ बद्धं दिवा मुचेन्मुचेद्रात्रौ दिवाकृतम् ॥५॥  
 ऊष्मा 'तूत्कारिकालोष्टकपालोपलपोमुभिः ।  
 'पत्रभञ्जेन घान्येन करीपसिकतातुपैः ॥६॥  
 अनेकीपामसंतर्तैः प्रयोज्यो देशकालतः ।

द्रवस्वेदः—

'शिग्रुवीरणकैरदकारंजसुरसार्जकात् ॥७॥  
 क्षिरीपवासावंशार्कमालतीदीर्घवृत्ततः ।  
 पत्रभर्गवर्वाचार्चश्च मासैश्चाज्जूपवारिजैः ॥८॥  
 दशमूलेन च पृथक् सहितैर्वी ययामलम् ।  
 स्नेहवद्भिः मुराशुवतवारिखीरादिसाधितैः ॥९॥

१ फाली लोहमयंहलाग्रम् । किण्वं मुरावीजम् । २ उपनाहस्वेदस्यापरं  
 नाम मालवण इति । ३ उत्कारिका 'लपसी' हि० लोष्टः मृत्पिण्डः । कपालं  
 'क्षपरा' हि० । ४ पत्रभञ्जेन-पत्रसमूहेन । करीपो गोमयचूर्णम् । तुपः 'भूत्सी'  
 हि० । ५ दीर्घवृत्तः स्योनाकः ।

‘कुंभोर्गलंतीर्नाडीर्वा पूरयित्वा रुजादितम् ।  
वाससाऽऽच्छादितं गात्रं क्षिप्त्वा सिचेद्यपामुसम् ॥१०॥

अवगाह स्वेदः—

‘तरेव वा द्रवैः पूर्णं कुण्डं सर्वांगयेऽनले ।  
अवगाह्याऽऽतुरस्तिष्ठेदर्शः कृच्छ्रादिभ्यु च ॥११॥

स्वेद विधिः—

निवातैस्तर्बहिः स्निग्धो जीर्णान्नः स्वेदमाचरेत् ।  
व्याधिभ्याधितदेशर्नुबशान्मध्यवरावरम् ॥१२॥

दोषविशेषे स्वेदः—

कफार्तो रुक्षतां रुक्षो, रुक्षक्षिप्त्वा कफानिले ।  
ग्रामाशयगते वायो, कफे पक्काशयस्थिते ॥१३॥  
रुक्षपूर्वं तथा स्नेहपूर्वं स्थानानुरोधतः ।

षड्क्षणादावरूपस्वेदः—

अल्पं वंदाणयोः, स्वल्पं दृढमुष्कहुदये, न वा ॥१४॥

सम्यक्स्विन्न लक्षणम्—

शीतभूलक्षये स्विन्नो जातेशाना च मार्दवे ।  
स्याच्छर्मादृष्टः स्नातस्ततः स्नेहविधि भजेत् ॥१५॥

आतस्वेदाचिह्नानि—

पित्ताऽस्तकोपतृणमूर्च्छास्वरागसदनममाः ।  
मंघिपीडाज्वरश्यावरक्तमहलक्षणम् ॥१६॥  
वेदाऽतियोगाच्छदिभ्र, तत्र स्तम्भनभोषणम् ।  
विपक्षाराऽन्यतीमारच्छदिमोहातुरेषु च ॥१७॥

गुर्वादि द्रव्यं स्वेदकरम्

स्वेदनं गुरु तीदणोष्ण प्रायः, स्तम्भनमन्यथा ।  
द्रवस्थिरसरस्निग्धरूक्षासूक्ष्मं च भेषजम् ॥१८॥

१ कुम्भी ‘वटलोही’ हि० । गलन्ती ‘गगरी’ हि० । तैः पूर्वोक्तद्रवैः ।  
३ मध्येत्यादि स्वेदस्य विशेषणम् । ॥ तत्र-स्वेदातियोगजन्धरोमेषु । विपाद्यातु-  
रेषु च स्तम्भनभेषोपधम् ।

निवार्त गृहमायासो गुरुप्रावरणं भयम् ॥२८॥

उपनाहोऽऽहवक्रोद्यभूरिपानं<sup>१</sup> क्षुधातपः ।

---:स्वेदगुणाः—

स्नेहविलग्नाः कोष्ठमा घातुणा वा

स्रोतोलीना ये च शाखाऽस्थिसंस्थाः ।

दोषाः स्वेदेस्ते द्रवीकृत्य कोष्ठं

नीताः<sup>२</sup> सम्यक्शुद्धिभिर्निर्हिष्यन्ते ॥२९॥

## अष्टादशोऽध्यायः ।

प्रयाऽतो वमनविरेचनविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः

‘‘कफे विदध्याद्वमनं संयोगे वा कफोन्वये ।

‘तद्विरेचनं पित्ते,

वमनयोग्यरोगिणः—

विशेषेण तु वामयेत् ॥१॥

नवज्वरातिसाराधः पित्तासृग्वाक्पश्मणः ।

कुष्ठमेहोऽपक्षीग्रन्थिश्क्षीपदोन्मादकासिनः ॥२॥

श्वासहृल्लासवीसर्पस्तम्बदोषोर्ध्वरोगिणः ।

वमननिषेधः—

प्रवम्या गर्भिणी रुक्षः क्षुधितो नित्यदुःखितः ॥३॥

बालवृद्धकृशस्फुल्लहृद्रोगिक्षतदुर्बलाः ।

‘प्रसक्तवमघुष्णीहतिमिराक्रमिकोष्ठिनः ॥४॥

ऊर्ध्वप्रवृत्तशाम्बसदत्तवस्तिहृतस्वराः ।

भूनाघात्युदरो गुल्मी दुर्बमोऽप्यग्निरर्षासः ॥५॥

उदावर्तभ्रमाऽष्ठीलापाश्वर्यावातरोगिणः ।

१ भूरिपानं बहुमद्यपानम् । २ शुद्धिभिर्वमनविरेचनः । ३ तद्व-पित्ते पित्तो-  
न्वये संयोगे वा । ४ प्रसक्तवमश्च रतिशयवमनरोगी ।

कोष्ठं विभज्य भैषज्यमात्रां मंत्राभिर्मन्त्रिताम् ॥१५॥

मन्त्राः—

ब्रह्मदत्ताश्विरुद्रेन्द्रभूवन्दार्काऽग्निस्ताऽनलाः ।

ऋषयः सोषधिग्राया भूतसघाश्च पातु वः ॥१६॥

रसायनमिवर्योणाममराणामिवाऽमृतम् ।

सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते ॥१७॥

ॐ नमो भगवते भैषज्यगुरवे बह्वर्षप्रभराजाय

तथा गतायाऽहंते सम्यक्मंबुद्धाय । तद्यथा—

ॐ भैषज्ये भैषज्ये महार्भैषज्ये समुद्गते स्वाहा ॥

प्राङ्मुखं पादयेत् पीतं मुहूर्तमनुपालयेत् ।

तन्मनाः<sup>१</sup> जातहृत्लासप्रसैकश्चर्येत्ततः ॥१८॥

अंगुलिभ्यामना<sup>२</sup>ग्रस्तो नालेन मुदुनाऽप्यवा ।

गलनाल्वह्मजम्बेगानप्रवृत्ताम् प्रवर्तयन् ॥१९॥

प्रवर्तयेत् प्रवृत्तांश्च जानुतुल्यासने स्थितः ।

उभे पात्रे ललाटं च वमनश्चाऽस्य धारयेत् ॥ २० ॥

प्रपीडयेत्तथा नाभिं पृष्ठं च प्रतिजोमतः ।

रसैषमर्जनम्—

कफे तीक्ष्णोष्णकटुकैः पित्ते स्वादुहिमैरिति ॥ २१ ॥

वमेत् सिग्धाम्ललवणैः संस्पृष्टे मृता कफे ।

पित्तस्य दर्शनं यावच्छेदो वा श्लेष्मणो भवेत् ॥२२॥

हीनवेगः कणाधात्रीसिद्धार्धलवणोदकैः ।

वमेत्पुनः पुनः,

वमनस्यायोग लक्षणम्—

तत्रवेगानामप्रवर्तनम् ॥ २३ ॥

प्रवृत्तिः सविबन्धा या केवलस्योपपत्त्य या ।

अयोगस्तेन निष्ठीवकंहृजोऽज्वरादयः ॥ २४ ॥

१ तन्मनाः—वमिषवचित्तः । २ अनायस्तोऽनायासेन । नालेनैरण्डादि-  
नालेन ।

सम्यग्योगलक्षणम्—

निर्विबंधं प्रवर्तते केषूपित्तार्जुनलाः क्रमात् ।

सम्यग्योगे,

वमनातियोग लक्षणम्—

अतियोगे तु फेनचर्द्वकरक्तवत् ॥ २५ ॥

वमितं क्षामता दाहः कंठशोषस्तमो भ्रमः ।

घोरा वाय्वामया मृत्पुर्वोवक्षोणितनिर्घणात् ॥ २६ ॥

सम्यग्बमिते धूमपानादि—

सम्यग्योगेन वमितं क्षणमात्रास्य पाययेत् ।

धूमन्यस्यान्यतम स्नेहाचारमयाऽऽदिशेत् ॥ २७ ॥

सतः सायं प्रभाते वा शुद्धात् स्रावः सुखाकुना ।

भुञ्जानी रक्तशाल्यध्रं भजेत्पेयादिकं क्रमम् ॥ २८ ॥

पेयादिक्रमः—

पेया विलेपीमद्वृतं कृतं च

यूपं रसं त्रीनुभयं तथैकम् ।

क्रमेण सेवेत नरोऽन्नकालात्

प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥ २९ ॥

पेयादिक्रमस्य फलम्—

यथाऽग्नुरग्निस्तृणगोमयादीः

१ धूमन्यस्य स्निग्धमध्यतीक्ष्णाख्यस्य । स्नेहाचारमुद्योदकोपचारीत्यादिकम् । २ प्रधानशुद्धिशुद्धस्त्रीषु भोजनकालात् पेयादिकं सेवेत । मध्यशुद्धिशुद्धो द्विभोजनकाली, हीनशुद्धिशुद्ध एकं भोजनकालं पेयादिकं सेवेत । कृतं शुण्ठी बवणादिसंस्कृतमकृतं तद्विपरीतम् । यथा—प्रधानशुद्धिशुद्धः प्रथमदिने प्रातः सायं पेयां, द्वितीयदिनेऽपि प्रातः पेयामेवंतस्मिन्नेव दिने सायं विलेपी; तृतीयदिने द्विकाली विलेपीमेव । चतुर्थे कालद्वयमद्वृतं कृतं यूपं, पञ्चमे पूर्वाह्ने यूपेव, सायं मांसरसम्, षष्ठदिने कालद्वयं मांसरसम् । भस्मदिनात्प्रवृत्तिभोजनं कृत्वा १ । एवं मध्यशुद्धी कालद्वयं, हीनशुद्धावेककालं पेयादिकं भजेत् ।

रंघुदयमाणो भवति क्रमेण ।  
महाम् स्थिरः सर्वपचस्तथैव ॥  
शुद्धस्य पेयादिभिरंतराग्निः ॥ ३० ॥

वमनावरेकभावेण संख्या—

१ जघन्यमध्यप्रवरे तु वेगा-  
भ्रतार इष्टा वमने पष्टौ ।  
दशैव ते द्वित्रिगुणा विरेके  
प्रत्यस्तथा स्वाद्विचतुर्गुणश्च ॥ ३१ ॥

पित्ताद्यन्तं वमनादि—  
पित्तावसान वमन विरेका-  
१ दधं कर्कातं च विरेकमाहुः  
द्वित्रां सविट्कानपनीय वेगात्  
मेयं विरेके वमने तु पीतम् ॥ ३२ ॥

कृतवमनस्य पुनर्विरेकः—

अर्धेन वामितं भूयः स्नेहस्वेदीपशदितम् ।  
श्लेष्मकाले गते ज्ञात्वा कोष्ठ सम्पत्तिरेवयेत् ॥ ३३ ॥  
बहुपित्तो मृदुः कोष्ठः क्षीरेणापि विरेच्यते ।  
प्रसूतमादतः क्रूरः कृच्छ्राच्छ्रयामाशिकरपि ॥ ३४ ॥

दोषाधिक्ये रसतो विरेकः—

कषाममधुरैः पित्तं, विरेकः कटुकैः कफे ।  
स्निग्धोष्णलवणैर्त्रापी,

विरेकप्रवृत्तौ कर्तव्यम्—

अप्रवृत्तौ तु पाययेत् ॥ ३५ ॥

१ वमने हीनशुद्धोचत्वारो, मध्ये षट् प्रवरेष्टी वेगाः । जघन्यं हीनम् ।  
एवं विरेचने हीनशुद्धोदश, मध्ये द्विगुणादश-विंशतिः, प्रवरे त्रिगुणा दश-  
त्रिगुणवेगा इष्टाः । मानतो—हीने प्रस्थो, मध्ये प्रस्थद्वयं, प्रवरे प्रस्थत्रयम् ।  
२ पित्तान्तं विरेकादधं वमनं, कफान्तं च विरेकम् । सविट्कान् पुरोपसहिताम् ।

उष्णानु, स्वेदयेदस्य पाणितपेन चोदरम् ।

१ उत्थानेऽप्ये दिने तस्मिन्मुक्ताऽप्येषु पुनः पिवेत् ॥३६॥

अदृढस्नेहकांष्टस्य विरेचनविधिः—

अदृढस्नेहकोष्ठस्तु पिवेद्दूर्ध्वं दशाहृतः ।

भूयोऽप्युपस्थिततनुः स्वेदस्नेहे विरेचनम् ॥३७॥

योगिकं सम्यगालोच्य स्मरन्पूर्वमतिक्रमम् ।

विरेकायोगलक्षणम्—

हृत्कुक्ष्यशुद्धिररचिरुत्प्लेशः श्लेष्मपित्तयोः ॥३८॥

कङ्कविदाहः पिटिका पीनसो वातविह्वलः ।

अयोगलक्षणम्,

योगलक्षणम्—

योगो वंपरीत्ये यथोदितात् ॥३९॥

अतिविरिक्तस्य लक्षणम्—

विट्पित्तकफवातेषु निःस्तेषु कृपास्त्रवेत् ।

निःश्लेष्मपित्तमुश्नं श्वेतं वृष्णं सलोहितम् ॥४०॥

मांसघावनतुल्यं वा मेदःखंडाभमेव वा ।

गुदनिःसरणं वृष्णा भ्रमो नेत्रप्रवेशनम् ॥ ४१ ॥

भयं त्यतिविरिक्तस्य श्वाऽतिवमनामयाः ।

सम्यग्विरिकः कर्म—

सम्यग्विरिक्तमेवं च वमनोक्तं येन योगयेत् ॥ ४२ ॥

धूमवज्ज्वलं विधिना,

ततो वमितवानिव ।

क्रमेणानि भुञ्जानो भजेत्प्रकृतिमोक्षनम् ॥ ४३ ॥

पीतभेषजस्य लङ्घनम्

अदृष्टजीर्णं च संवयेत्पीतभेषजम् ॥ ४४ ॥

१-उत्थानेऽप्ये अल्पप्रवृत्ती । २-योगिकं विरेचनं, पूर्वमनुक्रमं मन्त्राभिमन्त्रितं, भेषजमात्रोष्णाम्बुपानादिकम् । ३-यथोदितात् हृत्कुक्ष्यशुद्धिरित्यादितः ।



सोह्रस्वेदोपघोल्लेखसंगैरिति न भाष्यते ।

अग्निमान्धात् पेयादिक्रमः—

संशोधनाऽस्तविस्त्रावस्नेहयोजनत्वंधनैः ॥ ४५ ॥

। यात्यग्निमदतां तस्मात्क्रमं पेयादिमाचरेत् ।

स्रुताल्पपित्तादौ पेयानिपेधः—

स्रुताल्पपित्तास्तेष्माणं मद्यं वातपैधिकम् ॥ ४६ ॥

पेया न पाययेत्तेषां तर्पणादिक्रमो हितः ।

वमनस्यपाकाप्रतीक्षायां हेतुः—

अपक्वं वमनं दोषाम्, पच्यमानं विरेचनम् ॥ ४७ ॥

निहरेद्वमनस्याऽथः पाकं न प्रतिपालयेत् ।

भेदनीयभोज्यम्

दुर्बलो बहुदोषश्च दोषपाकेन यः स्वयम् ॥ ४८ ॥

विरिच्यते भेदनीयभोज्येस्तमुपपादयेत् ।

मृद्वल्पोपधप्रयोगः—

दुर्बलः शोधितः १ पूर्वमल्पदोषः कृशो नरः ॥ ४९ ॥

अपरिज्ञातकोष्ठश्च पिबेन्मृद्वल्पमोपधम् ।

अरं तद२सहृषीतमन्वथा संगमावहम् ॥ ५० ॥

हरेद्बहुश्रलान्दोषानल्पाऽनल्पाश्च पुनः पुनः ।

दुर्बलस्य मृ३दुद्रव्यं, रत्याम् संशमयेत्तु ताम् ॥ ५१ ॥

य शयति चिरं ते हि हृष्युर्वैनमनिर्हृताः ।

मन्दान्न्यादेः शोधनम्—

मदान्निं क्रूरकोष्ठं च सक्षारलवणैर्घृतैः ॥ ५२ ॥

संशुक्षितानि विजितकफवार्त च शोधयेत् ।

१—पूर्वशोधितः २—सहृषीतमोपधम् । असहृष्युनः पुनः । अन्वथा—बहु-  
मात्रेतीदृशं चोपधम् । ३—मृदुद्रव्यं—निहरेत् । अल्पाश्च तान्दोषाश्च सम्यक् शमयेत् ।  
ते दोषाः ।

## :रुक्षादीनामौषधपरिणामादि—

रुक्षबहुनिलक्रूर कोष्ठव्यायामशीलिनाम् ॥ ५३ ॥

॥ दीप्ताग्नीनां च भेषज्यमविरेक्यैव जीर्यति ।

तेभ्यो बस्ति पुरा दद्यात्ततः स्निग्धं विरेचनम् ॥ ५४ ॥

शकृन्निर्हृत्य वा किञ्चित्तोदणाभिः फलवर्तिभिः ।

प्रवृत्तं हि मल स्निग्धो विरेको निहरेत्सुखम् ॥ ५५ ॥

## विपाचार्येषु विरेचनम्—

विषाभिघातपिटिकादुष्णशोकविसर्पिणः ।

कामलापाङ्गुमेहार्ताभ्रातिस्निग्धाम् विरेचयेत् ॥ ५६ ॥

१सर्वांस्नेहविरेकंश्च रुक्षंस्तु स्नेहमाविताम् ।

## घमनादीनामथ्येस्नेहस्वेद प्रयोगः—

कर्मणां घमनादीनां पुनरप्यन्तरंस्तरे ॥ ५७ ॥

स्नेहस्वेदौ प्रयुञ्जीत स्नेहमन्ते बन्धाय च ।

मलो हि देहादुत्त्वलेश्व ह्रियते वाससो यथा ॥ ५८ ॥

स्नेहस्वेदस्तपोत्त्वलेश्व ह्रियते शोधनैर्मलः ।

स्नेहस्वेदावनम्यस्य कुर्यात्संशोधनं तु यः ॥ ५९ ॥

दारु शुष्कमिवानामे शरीरं तस्य दीर्यते ।

## संशोधनफलम्—

बुद्धिप्रमादं बलमिन्द्रियाणां

धातुस्थिरत्वं ज्वलनस्य दीप्तिम् ।

चिराञ्च पाकं वयसः करोति

संशोधनं - सम्यगुरास्यमावम् ॥ ६० ॥

## एकोनविंशोऽध्यायः

मवाऽतो वस्तिविधिनध्यायं व्याख्यास्यामः ।

वातोत्वणेषुवस्तिः—

"वातोत्वणेषु दोषेषु वाते वा वस्तिरित्यते ।

उपक्रमाणां सर्वेषां माऽप्रणोल्लिखिष्व सः ॥१॥

निरुहोऽन्वामनो वस्तिरुत्तरः

वस्तिसाध्या गदाः—

तेन साधयेत् ।

गुल्माऽनाहृषु'डध्लोहशुद्धाऽजोधारशूतिनः ॥२॥

जीर्णज्वरप्रतिश्रम्यशुक्राऽनिसप्तप्रदाष्ट ।

वध्वोऽश्वमरीरजोनाशाम् दाहणांश्चाऽनिलाभयाम् ॥३॥

निरुहायोग्य कथनम्—

अनास्थाप्यास्त्वनिस्त्रिगुणः क्षतोस्को भूषां कृष्टः ।

ग्रामातिसारी वमिमाष्ट संशुद्धो दत्तनाभनः ॥४॥

कासप्रासप्रमेहार्शोहिष्माऽऽष्मानास्पवक्षसः ।

घ्ननपायुः कृताहारो बद्धच्छिद्रो दकोदरी ॥५॥

कुष्ठो च मधुमेहो च मासाद् सप्त च वमिणी ।

अनुवासन योग्याः—

"मास्याप्या एव चान्वास्या विशेषादतिबहुयः ॥६॥

रूपाः केवलवाताताः,

अनुवासना योग्याः—

माऽनुवास्यास्त एव च ।

येऽनास्थाप्यास्तथा पांडुकामलामेहपीनसः ॥७॥

१ स वस्तिः । २ तेन निरुह वस्तिना । ३ शुद्धं—वातरक्तम् । शुद्धातिसारो-  
निरामातिसार इति हेमाद्रिः । ४ आस्थाप्या निरुहणयोग्याः ।

निरन्मलोहविड्भेदिगुरुकोष्ठकफोदराः ।

अभिर्ध्वदिगृशस्यूलकृमिकोष्ठाढ्यमास्ताः ॥८॥

पीते विपे गटेऽभ्यां श्लोपदी मलगन्धवाम् ।

निरुहान्वासनयोर्यन्त्रस्वरूपम्—

१ तपोस्तु नेत्रं हेमादिषातुदार्यस्थिवेणुजम् ॥९॥

गोपुञ्जाकारनच्छिद्रं श्लक्ष्णञ्च गुलिकामुखम् ।

नेत्रप्रमाणम्—

१ ऊनेऽन्दे पञ्च, पूर्णेऽस्मिन्नासप्तभ्योऽंगुलानि यद् ॥१०॥

सप्तमे सप्त, तान्यष्टौ द्वादशे, षोडशे नव ।

द्वादशैव परं विधातु,

धीक्ष्य वर्षावरेषु च ॥११॥

वयोवत्तशरीराणि प्रमाणमभिवर्धयेत् ।

नेत्रप्रमाणम्—

१ स्वांगुष्ठेन मर्म मूले स्थीर्येनाज्ये कनिष्ठया ॥१२॥

पूर्णेऽन्देऽंगुलमादाय तदर्धोऽर्धप्रवर्धितम् ।

१ तपोनिरुहानुवासयोः । २ ऊनेऽूर्णे पञ्चांगुलानि दीर्घ्येण रोगिणोऽंगुलमानेनेत्यर्थः । आसप्तभ्यः सप्तवर्षाणि मर्यादोक्त्य तेन, षड्वर्षे षडंगुलानि । तानि षंगुलानि । विधातुपरं द्वादशांगुलानि एव । प्रमाणं नेत्रस्यांगुलमानेन । ३ नेत्रस्यस्थूल्यं, मूले रोगिणा षंगुष्ठेनसप्तमश्रे तु कनिष्ठया सप्तम् । पूर्णं वर्षं नेत्रमूले यत्र दस्तियोजनाभवति, षंगुलमात्रं छिद्रं षड्वर्षपर्यन्तं, सप्तमवर्षात्प्रभृति एकादशपर्यन्तं सपादर्मगुलं, द्वादशवर्षात्षोडशवर्षपर्यन्तं सार्धमंगुलं, षोडशवर्षे पादोनमंगुलं, सप्तदशेऽङ्गुलद्वयमष्टादशे सपादर्मगुलद्वयमेकोनविंशतिवर्षे सार्धमंगुलद्वयं, विंशतिवर्षे पादोनमंगुलत्रयमेकविंशति वर्षे त्र्यंगुलं छिद्रम् । अर्धस्याधर्मार्धं तस्यांगुलस्यार्धार्धं तदर्धार्धं तेन प्रवर्धितम् । अग्रे नेत्राग्रे योहिभागो गुदे प्रवेश्यते वर्षात्षड्वर्षं पर्यन्तं मुद्गवाहि, सप्तवर्षादिकादशपर्यन्तं माषवाहि द्वादशवर्षेकलायवाहि, षोडशवर्षे लिङ्गकलायवाहि, एकविंशति वर्षेकर्कशुवाहि छिद्रम् ।

अङ्गुलिं परमं छिद्रं मूलेऽप्येव हते तु यत् ॥१३॥  
 मुद्रं भायं कलायं च विलनं कर्कन्धुकं क्रमात् ।  
 मूलच्छिद्रप्रमाणेन प्राप्ते घटितकणिकम् ॥१४॥  
 वर्त्याऽप्ये निहितं मूले यथास्वं दङ्गुलातरम्<sup>१</sup> ।  
 कणिकाद्विषयं नेत्रं कुर्यात्,

नेत्रेष्वस्ति योजना—

<sup>१</sup>तत्र च योजयेत् ॥१५॥

भजाविमहिषादीनां वस्ति सुमुदितं दृढम् ।  
 कषायरक्तं निश्छिद्रं येषिषं वसिरं तनुम् ॥१६॥  
 प्रस्थितं साधु सूत्रेण सुखसंस्थाप्य भेषजम् ।  
 बस्यभावंऽकषादं<sup>२</sup> वा न्यसेद्वा सोऽप्यवा घनम् ॥१७॥

निरुहणमात्रा—

निरुहमात्रा प्रथमे प्रकुचो, वत्सरात्परम् ।  
 प्रकुचवृद्धिः प्रत्यक्षं यावत्पदप्रसृतास्त्वतः ॥१८॥  
 प्रसृतं वर्षयेदूर्ध्वं द्वादशाऽष्टादशस्य च ।  
 माससत्तेरिदं मानं दशैव प्रसृताः परम् ॥ १९॥

अनुवासनमात्रा—

यथायथं निरुहस्य पादो मात्राऽनुवासने ।

निरुहात्पूर्वमनुवासनम्—

मास्याप्यं संहितं स्थिरं शुद्धं लब्धबलं पुनः ॥२०॥

१—कणिका छत्राकारा गुहाधिकान्तः प्रवेशरोधिनी । मूले यथास्वमूल  
 वर्षादिरस्याङ्गुलप्रमाणेन कणिकाद्वयं कुर्याद्वस्ति पटवन्धनार्थम् । २—तत्र कणिका  
 ये । ३—अक्षुपादं ऊरुचर्म, चासो वस्त्रम् । ४—प्रथमेवपि प्रकुचः पलमात्रम् ।  
 पटप्रसृता द्वादशपलानि द्वादशवर्षस्यैव ततस्त्रयोऽष्टादिषु पलद्वयवृद्धिः प्रतिवर्षमेव  
 षष्ठादशवर्षस्य द्वादशप्रसृताः मासतिवर्षपर्यन्तमिदं मानं ततः परं दशैव प्रसृताः ।

शीते वसति च दिवा रात्रौ केचित्ततोऽन्यथा ॥११॥

**निरुहणविधिः—**

अभ्यक्तस्नातमुचितात्पादहीनं हितं तद्यु ।

अस्निग्धस्नानमशितं मानुषानं द्रवादि च ॥ २२ ॥

कृतचक्रमणं मुक्तविष्णुर्षं शयने सुखे ।

नान्युच्छ्रिते न चोच्छ्रोषे संविष्टं वामपाश्वरतः ॥२३॥

संकोच्य दक्षिणं मक्षिणं प्रसाय च ततोऽपरम् ।

अथाऽप्य नेत्रं प्रणयेत्स्निग्धे स्निग्धमुखं गुदे ॥२४॥

उच्छ्रवास्य वस्तेर्षदने बद्धे हस्तमकंपयम् ।

पृष्ठवंशं प्रति ततो नाऽतिद्रुतविसंबितम् ॥२५॥

नाऽतिवैरं न वा मंदं मकुदेव प्रपीडयेत् ।

सावशेषं च कुर्वीत वायुः शोषे हि तिष्ठति ॥२६॥

**निरुहादनन्तरं कर्तव्यविधिः—**

दत्ते तूतानदेहस्य पाणिना ताडयेत्स्फुरी ।

तत्पाणिम्यां तथा शय्यां पादतश्च त्रिहस्तिपेद् ॥ २७ ॥

ततः प्रसारितांगस्य सोपथानस्य पाणिनके ।

आहम्यामृष्टिनांगं च स्नेहेनाभ्यगम्य मर्दयेत् ॥२८॥

वेदनार्तमिति स्नेहो नहि शीघ्रं निवर्तते ।

योग्यः शीघ्रं निवृत्तेऽभ्यः स्नेहोऽतिष्ठन्नकार्यकृत् ॥२९॥

**तद्युभोजनम्—**

दीप्तानि त्वागतस्नेहं सायाह्ने भोजयेत्तद्यु ।

**अहोरात्रमुपेक्षा—**

निवृत्तिकालः परमस्त्रयो यामास्ततः परम् ॥३०॥

१ ततोऽन्यथा शीतवसन्तातिरिक्तकाले, उचितादभ्यस्तात् पादहीने चतुर्थभाग-  
हीने । नान्युच्छ्रिते-नान्युन्नते । उच्छ्रोषेत्यन्तोच्छ्रोषे । वामसवध्न उपरिदक्षिणं  
सकियमंकोच्य, ततो दक्षिणसवध्नोऽपरं वामंसविध । २ स्नेहं सावशेषं कुर्वीत ।  
३ पाणिनेमुष्टिना हन्यादंगं च स्नेहेनाभ्यगम्यमर्दयेत् । अनामच्छ्रु स्नेह इति शेषः ।

महोरात्रमुपेक्षत परतः फलवर्तिभिः ।

तीक्ष्णैर्वा बस्तिभिः कुर्याद्वलं स्नेहनिवृत्तये ॥३१॥

॥ १ ॥ घतिरोक्ष्यादनायच्छन्नं चेज्जाड्यादिदोषघ्नम् ।

उपमेतैव हि ततोऽप्युपितश्च निशां पिबेत् ॥३२॥

प्रातर्नागरधान्यागः कोष्ठां केवलमेव वा ।

सृतीयादीदिनेऽन्वासनम्—

अन्वासयेत्तृतीयेऽह्नि पंचमे वा पुनश्च तम् ॥३३॥

यथा वा स्नेहपवितः स्याच्चतोऽत्युत्थणमास्ताम् ।

ध्यायामनित्याम् दीप्ताम्भीम् रुक्षांश्च प्रतिवासरम् ॥३४॥

निरूहशोधनप्रकारः—

इति स्नेहैस्त्रिचतुरः स्निग्धे स्रोतोविशुद्धये ।

निरूहं शोधनं भुञ्ज्यादस्निग्धे<sup>१</sup> स्नेहनं तनोः ॥३५॥

पंचमेऽथ सृतीये वा दिवसे साधके शुभे ।

मध्याह्ने किञ्चिदावृत्ते प्रभुवते बलिमंगले ॥३६॥

अभ्यक्तस्वेदितात्मृष्टमलं नाऽतिबुभुक्षितम् ।

अवेक्ष्य पुरुषं दोषभेषजादीनि चादरात् ॥३७॥

वस्ति प्रकल्पयेत्वंद्यस्तद्विद्यैर्बहुभिः सह ।

निरूहकल्पनाप्रकारः—

क्वाथ<sup>१</sup>योऽतिशतिपलं द्रव्यस्याऽष्टौ फलानि च ॥ ३८ ॥

ततः क्वाथान्चतुर्धाशं स्नेहं वाते प्रकल्पयेत् ।

पित्ते स्वस्थे च पष्टाशमष्टमांशं कफाधिके ॥ ३९ ॥

<sup>१</sup>सर्वत्र चाऽष्टमं भागं बल्लादभवति वा यथा ।

नाऽप्यच्छमादता वस्तेः

पलमात्रं गुडस्य च ॥ ४० ॥

१—अस्निग्धेतति तनोः शरीरस्य स्नेहनं कुर्यात् । २—द्रव्यस्य वस्तिकल्पो-  
वतस्य द्रव्यस्य । फलानि सद्वफलानि षष्टौफलानि । ३—सर्वत्र वातेपित्ते कफे च  
कल्पाऽष्टमं भागं, वा यथा अत्यच्छमानादता वस्तेर्न भवेत्तावापृक्तलोदेयः ।

मधुपट्वादिरोषं च युक्त्या

सर्वं तदेकतः ।

उष्णानुक्तुंभीवाप्येण तप्तं यजसमाहृतम् ॥ ४१ ॥

औषधस्यगुदे प्रणयनम्—

प्रक्षिप्य वस्तो प्रणयेत्पायो नात्युष्णोत्तलम् ।

नाऽर्तिमन्थं नवा स्नं नाऽतितःक्षणं नवा मृदु ॥ ४२ ॥

नात्यच्छमाद्रं गो<sup>१</sup> नाऽतिमात्रं नाऽऽदु नाऽति च ।

सवणं तद्दम्भं च

अन्यमतम्—

पठेत्पन्थे तु तद्विदः ॥ ४३ ॥

मात्रां त्रिपलिकां कुर्यात्स्नेहमाक्षिकयोः पृथक् ।

यथा<sup>२</sup> माणिमंथस्य स्वस्थे कल्कपसद्वयम् ॥ ४४ ॥

सर्वद्रवाणां शेषाणां पलानि दद्यात् क्लृयेत् ।

निरुहणसंयोजनविधिः—

माक्षिकं सवणं स्नेहं कल्कं क्रापयितुं क्रमात् ॥ ४५ ॥

प्रावपेत निरुहाणामेव संयोजने विधिः ।

दत्तो<sup>३</sup> निरुहे विधिः—

उत्ताने दत्तमात्रे तु निरुहे तन्मना भवेत् ॥ ४६ ॥

हृत्तोपमानः संजातवेगओत्कटकः सृजेत् ।

निरुहानागतावन्यवस्थितः—

<sup>४</sup>भ्रागती परमःकालो मुहूर्तो मृत्पवेऽररम् ॥ ४७ ॥

<sup>५</sup>तत्राऽनुलोमिकं सहेक्षारमूत्राऽन्तर्कल्पितम् ।

स्वरितं क्षिप्तमतीक्ष्णोष्णं वस्तिमन्थं प्रपीडयेत् ॥ ४८ ॥

१—न ऊनम् । तद्दम्भं नात्यन्तमित्यर्थः । २—माणिमंथस्य सवणस्य ।

३—दत्तनिरुहप्रत्यागमने कालो मुहूर्तो घटिकाद्वयात्मकः ४८ मिनट । ४—तत्र

भ्रागते निरुहे ।



विदध्यात्फलवर्तिं वा स्वेदनोऽत्रासनादि च ।

स्वयमेव निवृत्ते तु द्वितीयो बस्तिरिष्यते ॥ ४९ ॥

तृतीयोऽपि चतुर्थोऽपि यावद्वा मुनिरुदता ।

सम्यङ्निरुद्ध लिङ्गम्—

विरिक्तवच्च योगादोन्विद्यात्

भोजनादि—

योगे तु भोजयेत् ॥ ५० ॥

कोष्णेन वारिणा स्नातं तनुषन्वरसौदनम् ।

विकारा ये निरुहस्य भवन्ति प्रचलैर्मसैः ॥ ५१ ॥

ते सुबोष्णांबुसिवतस्य यांति भुक्त्वतः शमम् ।

वातादितस्यानुवासनम्

अथ वातादितं भूयः सद्य एवाऽनुवासयेत् ॥ ५२ ॥

सम्यग्धीनाऽतियोगाच्च तस्य स्युः न हर्षीययत् ।

अनुवासनस्यान्यत्सम्यग्योग लक्षणम्—

किञ्चित्काल स्थितो यश्च सपुरोधो निवर्तते ॥ ५३ ॥

साजुलोमानिलः संहस्तस्तिष्ठमनुवाननम् ।

कफादिरोगेस्नेहं चस्तिमानम्—

एकं त्रीम् वा घृत्तासे तु संहबस्तीम् प्रकल्पयेत् ॥ ५४ ॥

पथ वा सप्त वा पित्तो, नवैकादश वाऽग्निसे ।

पुनस्ततोऽप्यगुग्मांस्तु पुनरास्थापनं ततः ॥ ५५ ॥

यूषादिभोजनम्—

कफपित्ताग्निनेष्वध्रं यूषक्षीररसैः क्रमात् ।

वातेवस्तिप्रकारः—

वातघ्नोपघनि.क्वाथस्त्रिगृतासैध्वैर्युतः ॥ ५६ ॥

वस्तिरेकोऽग्निसे सिग्मः स्वादम्लोष्णरमान्वितः ।

पित्तवृत्तिः—

न्यग्रोषादिगणवत्रायो पत्रकादिसितायुतो ॥५७॥

पित्तं स्वादुहिमो साग्यक्षीरेक्षुरसभाक्षिको ।

कफवृत्तिः—

घारश्चवाविनिःशवायवत्सकादियुतास्त्रयः ॥५८॥

रुक्षाः सक्षोद्रगोमूत्रास्तीक्ष्णोष्णकटुकाः कफे ।

संनिपाते वृत्तित्रयम्—

अथश्च संनिपातेऽपि दोषान्घ्नन्ति यतः क्रमात् ॥५९॥

त्रिभ्यः परं वृत्तिमतो नेच्छर्यस्ये चिन्तितकाः ।

नहि दोषश्चतुर्योऽस्ति पुनर्दोषेत य प्रति ॥६०॥

अन्यमतम्—

उत्प्लेक्षनं क्षुद्धिकरं दोषाणां शमनं क्रमात् ।

त्रिष्वेवं कल्पयेद्वृत्तिमित्यन्येऽपि प्रचक्षते ॥६१॥

दोषोपधादिवसतः सर्वमेतत्प्रमाणयेत् ।

सम्यङ्निरूढाणि तु नाऽसंभाव्यं निवर्तयेत् ॥६२॥

कर्मकालयोगारब्धवृत्तिः—

प्राक् सहे एकः पञ्चाते द्वादशाऽऽस्थापनानि च ।

सान्वासनानि कर्मैवं वस्तयस्त्रिंशदीरिताः ॥६३॥

कालः पञ्चदशकोऽत्र प्राक् सहेति त्रयस्तथा ।

पट् पञ्च वस्तयन्तीरिताः

योगोऽष्टी वस्तयोऽत्र ॥६४॥

त्रयो निरूढाः सहे ॥ अत्र सहेवाच्यतयोऽहो ।

१—एतत्-उत्प्लेक्षनादिवम् । २—अन्ते निरूढान्ते । द्वादशाऽऽस्थापनानि

निरूढवस्तयः सान्वासनानि त्रयैकनिरूढणस्यानन्तरमनुष्ठाननकार्यम् ।

३—अन्ते निरूढणसमाप्ती त्रीणि अनुवासनानि । पट् स्नेहः । पञ्चभिर्वृत्ति-

भिन्तरन्तीरिताः । ४—स्नेहाश्चतयः ।

### बस्तिकर्मत्रिदोषजित्—

स्नेहवस्ति निरुहं वा नैकमेवाऽतिशीलयेत् ॥६५॥  
 उत्त्वलेनाग्निवधौ स्नेहाग्निरुहान्मरुतो भयम् ।  
 तस्माग्निरुहः स्नेहाः स्यादग्निरुहश्चाजुवासितः ॥६६॥  
 स्नेहशोधनयुक्त्येवं बस्तिकर्म त्रिदोषजित् ।

### मात्रावस्तिः—

ह्रस्वया स्नेहपानस्य मात्रया योजितः समः ॥६७॥  
 मात्रावस्तिः स्मृतः स्नेहः  
 शीतनीयः सदा च सः :  
 बालवृद्धाश्वभारत्नोष्णायामासक्तचित्तकैः ॥६८॥  
 वातभग्नबलाज्ज्वाग्निरुपेश्वरमुखात्मनिः ।  
 दोषघ्नो निघ्नरीहारो बल्यः सृष्टमलः सुखः ॥६९॥

### उत्तरवस्तिः—

यस्तौ रोगेषु नारीणां योनिगर्भाशयेषु च ।  
 १द्वित्रास्यापनक्षुद्धेभ्यो विदध्याद्बस्तिमुत्तरम् ॥७०॥

### नेत्रस्यपरिमाणम्—

मातुरांगुलमानेन तक्षेत्रं द्वादशांगुलम् ।  
 वृत्तं गोपुच्छत्रमूलमध्ययोः कृतकण्टिकम् ॥७१॥  
 सिद्धार्धकप्रवेशाग्न श्लक्ष्णं हेमादिसंभवम् ।  
 २शुद्धाश्वमारमुग्नःपुष्पवृत्तीपमं दृढम् ॥७२॥  
 तस्य बस्तिर्मृदुलघुर्मात्रा शुनितविकल्प्य वा ।

### उत्तरवस्तिदानप्रकारः—

अथ स्नाताशितस्यास्य स्नेहवस्तिविधानतः ॥७३॥  
 ऋजोः गुह्योपविष्टस्य पीठे जानुममे मृदौ ।

१—निरुहः कृतनिरुहणवस्तिः स्नेहाः स्नेहनयोग्यः । निरुहो निरुहण-  
 योग्यः । द्वेवा त्र्येणिवेतिद्वित्राणि । तन्नेत्रमुत्तरवस्तिनेत्रम् । कृतकण्टिकमिति मूल  
 मन्त्रादोरित्यत्र सम्बन्धते । २—अश्वमारः 'कतेर' । मुग्धनाः 'चमेतो' हि० ।

हृष्टे मेढ्रे स्थिते चर्मा शनैः स्रोतोविमुद्धये ॥७४॥

सूक्ष्मां शलाकां प्रणयेत्<sup>१</sup>या शुद्धेऽनुसेवनीम् ।

ग्रामहनात् नेत्रं च निष्कर्षं गुदवत्तलः ॥७५॥

पीडितैर्तेजोऽगते स्नेहे स्नेहवस्तिक्रमो हितः ।

त्रिचतुरा वस्तयः

वस्तीननेन विधिना दद्यात्स्रोश्रुतुर<sup>२</sup>ऽपिवा ॥७६॥

मनुवासनवच्छेपं सर्वभिराऽस्य चितयेत् ।

स्त्रीणां वस्तिदान विधिः—

स्त्रीणामार्तवकाले तु योनिर्गुह्यतात्प्रावृत्तेः<sup>३</sup> ॥७७॥

विदमोत तदा तस्मादनुतावपि चागम्ये ।

योनिविभ्रशशूलेषु योनिव्यापदसुन्दरे ॥७८॥

नेत्र दशागुलं मुदगप्रवेशं चतुरंगुलम् ।

अपत्यमार्गे योज्यं स्याद, छंगुलं भूतवर्त्मनि ॥७९॥

भूतकृच्छ्रविकारेषु बालानां त्वेभमंगुलम् ।

प्रकुचो मध्यमा मात्रा, बालानां शुक्तिरेव तु ॥८०॥

उत्तानायाः शयानायाः सम्यक् संकोच्य सविधनी ।

ऊर्ध्वजान्धास्त्रिचतुरानहोरात्रेण योजयेत् ॥८१॥

वस्तीस्त्रिरात्रमेवं च स्नेहमात्रां विवर्धयेत् ।

अथहमेव च विध्यम्य प्रणिदध्यात् पुनरुत्थयहम् ॥८२॥

शुद्धेवमितेविरेकादि—

<sup>४</sup>पक्षाद्विरेको वर्धते ततः पक्षाभिरुहणम् ।

- १—तया शलाकया । २—दोषं सर्व-विधिपरिहारादिसम्यग्योगादिलक्षणादि च । ३—प्रपातृतेरावरणराहित्यात् । तदा ऋतुकाले । अत्यये विनाशकरे योनि-विभ्रंशादौ भर्तृती ऋतुभिन्नकालेऽपि दद्यादुत्तरवस्तिम् । बालानां वन्यकानाम् । ४—पक्षादिति सम्यग्योगयुक्तवसनानन्तरं सप्ताह पेयादिजर्मस्ततो सप्ताहमनु-वासनदानमित्यनया परिपाठ्या पक्षादनन्तरमेव विरेचनम् । ततो विरेकादनन्तरं तथैव परिपाठ्या पक्षादनन्तरं निरुहणं कार्यम् । कृत्स्निरुहः सद्यएवानुवासनयोग्यः । कृतविरेचनः सप्ताहादूर्ध्वमनुवासनयोग्योपतः सप्ताहप्रकृतिभोजनापादनम् ।

तथो निरुद्धश्चाज्वास्यः सप्तरात्रादपि रेचितः ॥८३॥

घस्तेर्मलनिर्हरणे हृष्टान्तः—

यथा कुसुमादियुतात्तोषाद्रागं हरेत्सद्यः  
तथा द्रवोवृत्ताद्देहादवस्तिनिर्हरते मलाम् ॥८४॥

रोगोत्पत्तीवायुर्हेतुः—

द्याक्षागताः कोष्ठगताश्च रोगा  
ममोर्ध्वसंययिष्यवांगजाश्च ।  
ये सति तेषां नेतुं कश्चिदन्यो  
धामोः परं जन्मनि हेतुरस्ति ॥८५॥

वायोः शमायवस्तिरेवभेषजम्—

विट्श्लेष्मपित्तदिमलाचयानां  
विक्षेपसंहारकरः स यस्मात् ।  
तस्मादतिवृद्धस्य शमाय नान्य-  
दस्तेविना भेषजमस्ति किञ्चित् ॥८६॥

घस्तेः श्रेष्ठता—

तस्मान्चिकित्सार्थ इति प्रदिष्टः  
कृत्स्ना चिकित्साऽपि च यस्तिरेकः ।  
तथा निजामंतुविकारकारि-  
रक्तोपधत्वेन तिराव्यधोऽपि ॥८७॥

१ तस्य धामोः । शोषजामन्तुब्ररोगोत्पादकं यद्रक्तं तस्योपधत्वेन तिराव्यधोऽ-  
पि चिकित्सार्थः सर्वापि चिकित्सेत्यर्थः ।

पदंगुलद्विमुखया नाड्या भेषजमर्मया ॥ = ॥

स हि भ्रूतिररं दोषं चूर्णत्वादपकर्षति ।

मर्शस्नेहस्यपरिमाणादि—

प्रदेशिन्यंगुलीपर्वद्वयान्मग्नसमुद्धृतात् ॥९॥

यावत्पतत्पसौ बिदुर्दशाष्टौ पदं क्रमेण ते<sup>१</sup> ।

मर्शस्योत्कृष्टमध्योनां मात्रास्ता एव च क्रमात् ॥१०॥

बिदुद्वयोनाः कल्कादेः

नस्येऽयोग्याः

योजयेन्म तु नावनम् ।

शोथमद्यगरस्नेहपीतानां पातुमिच्छताम् ॥११॥

भुक्तमजतशिरः स्नातुकामस्रुतासृजाम् ।

नवपीनसवेगातंमूतिकाश्रासकासिबाम् ॥१२॥

शुद्धाना दत्तवम्तीनां तथाऽनार्तबहुदिने ।

अन्यत्राऽऽत्ययिकाग्राधेः

नस्येकालदीपौ—

अथ नस्यं प्रयोजयेत् ॥१३॥

प्रातः श्लेष्मणि, धव्याह्ने पित्ते, सायंनिशोश्त्रले<sup>१</sup> ।

स्वस्यवृत्ते तु पूर्वाह्ण्ये शरत्कालवसंतयोः ॥१४॥

शीते मध्यादने, ग्रीष्मे साय, वर्षासु सातपे ।

वातामिश्रते शिरसि हिष्मायामपतानके ॥१५॥

मन्यास्तम्नि स्वरध्रंशे सायंप्रातदिने दिने

एकाहान्तरम<sup>२</sup> अन्यत्र सप्ताहे च उदाचरेत् ॥१६॥

१—ते बिन्दवः । ता मात्रा बिन्दुद्वयेनोनान्यूनाः कल्कादेः । २—चले वाते शीते शीतकाले मध्यादिने मध्याह्ने नस्यं दद्यात् । ३—अन्यत्रवातामिश्रतमूर्ध्नि-दिम्योऽन्यस्मिन् रोगे एकाहान्तरं सप्तदिनपर्यन्तं नस्यमाचरेत् वातामिश्रनादिपित्तु नैकाहान्तरितम् ।

## नस्यदानप्रकारः—

स्निग्धस्विन्नोत्तमांगस्य प्राक्कृता<sup>१</sup>दृश्यकस्य च ।  
 निवातशयनस्यस्य जत्रू<sup>२</sup> स्वेदयेत् पुनः ॥१७॥  
 अथोत्तानजुं देहस्य पाणिपादे प्रसारिते ।  
 किञ्चिदुन्नतपादस्य किञ्चिन्मूर्धनि नामिते ॥१८॥  
 नासापुटं पिपायकं पययिण निपेचयेत् ।  
 उद्वणो<sup>३</sup>बुतप्तं भेषज्यं प्र<sup>४</sup>नाम्न्या पिचुनाज्यवा ॥१९॥

## नस्यानन्तरं कर्तव्यविधिः—

दत्ते पादतलस्पर्शहस्तकर्णो<sup>५</sup>दि मर्दयेत् ।  
 शनैरेण्ड्रद्य निष्ठीभेत्पाश्व<sup>६</sup>योदभयोस्ततः ॥२०॥  
 भ्राभेपजक्षयादेवं द्विस्त्रिर्वा नस्यमाचरेत् ।  
 मून्ध्यायां शीततोयेन सिचेत्परिहरम् शिरः ॥२१॥  
 स्नेहं विरेच<sup>७</sup>नस्याते दद्याद्दोषापचपेक्षया ।  
 नस्याते यानश्च<sup>८</sup> शिष्टेदुत्तानः

धारयेत्ततः ॥२२॥

धूमं पीत्वा कवो<sup>९</sup>द्वणो<sup>१०</sup>बुकवलात् कंठशुद्धये ।  
 नस्यस्य सम्यक्-हानातिथोग लक्षणानि  
 सम्यक्स्निग्धे सुखोच्छ्वासस्वप्नबोधाक्षपाटवम् ॥२३॥  
 रुद्धो<sup>११</sup>क्षिस्तम्भता, शोषो नामास्ये, मूर्धन्यता ।  
 स्निग्धे<sup>१२</sup>स्तिकङ्गु<sup>१३</sup>त्वाप्रसेकाह्विपोनवाः ॥२४॥  
 सुधारित्ते<sup>१४</sup>क्षलपुनास्वरवक्त्रविघ्नद्वयः ।  
 दुर्विरिक्त गदोद्वेकः, क्षामतातिविरेचिते ॥२५॥

## प्रतिमर्शविषयः—

प्रतिमर्शः क्षतक्षामशालवृद्धमुखात्मसु ।  
 प्रयोज्यो<sup>१५</sup>क्षालवर्षे<sup>१६</sup>ऽपि

१ प्राक्पूर्वं कृतमावश्यकं मूत्रपुरीषोत्सर्गादिकथनेन तस्य । २ प्रनाडो 'नली'  
 पिचुः 'फाहा' इति हिन्दी । ततोमर्दनानन्तरम् । ३ विरेचनस्य नस्यस्यान्ते स्नेहं  
 नस्यं दद्यात् । ४ ततो वाक्शतानवस्थानादनन्तरं कवोद्वणाम्बु कवताम् धारयेत् ।

प्रतिमर्शनिषेधः—

न त्विष्टो दुष्टपीनसे ॥२६॥

मद्यपीतेऽवलधोत्रे कृमिदूषितमूर्धनि ।

१ उल्कुष्टोत्तिलष्टदोषे च

हीनमात्रतया हि १सः ॥२७॥

प्रतिमर्शस्य प्रयोगेरालाः—

निशाहभुंक्तवांताहःस्वप्नाच्चमरेतमाम् ।

शिरोऽभ्यञ्जनगं्धूपप्रस्रवाजनवर्चसाम् ॥२८॥

दंतकाष्ठस्य हासस्य योज्योऽस्तेऽपी १द्विविदुः ।

१पंचमु स्रोतसां शुद्धिः, बलमनाशस्त्रिषु क्रमात् ॥२९॥

हृत्बलं पंचमु ततो दंतदाढ्यं मरुच्छमः ।

नस्यादीनां षयोविशेषेनिषेधः—

न नस्यभूनसप्तम्ये नाऽपीताऽशीतिवत्सरे ॥३०॥

न चोनाऽष्टादशे धूमः, कवलो नोनपंचमे ।

न शुद्धिहूनदशमे न चाऽतिक्रातसप्तमी ॥३१॥

प्रतिमर्शः सदाहितकरः—

प्राजन्ममरणं शस्तः प्रतिमर्शस्तु वस्तिवत् ।

मर्शवच्च गुणान् कुर्यात्स हि नित्योपसेवनात् ॥३२॥

न चाऽत्र र्वत्रणा नाऽपि व्यापद्मघो मर्शवद्भयम् ।

शिरसः श्लेष्मघामत्वात्स्नेहाः स्वस्थस्य नेतरे १ ।

मर्शप्रतिमर्शभेदादि—

आशुनुज्वरकारित्वं गुणोत्कर्षापकृष्टता १ ॥३४॥

१—उल्कुष्टो वृद्धः । उत्तिलष्टप्रश्नः । २—सः प्रतिमर्शः, हीनमात्रतया दीयत यतो दोषोल्लेखएवभवति । ३—असौ प्रतिमर्शः । ४—पञ्चमु-निशाह-भुंक्तवान्ताहःस्वप्नान्तेषु । त्रिषु-अध्वमरेतसामन्तेषु, पंचमु शिरोऽभ्यञ्जनादी नामन्तेषु । ततोदन्तकाष्ठहासयोरन्ते । ५—इतरेस्नेहा इत्यन्वयः । ६—मर्श-आशुकारिता गुणोत्कर्षता, प्रतिमर्शं च चिरकारित्वं गुणपकृष्टता च ।



मर्शं च प्रतिमर्शं च विशेषो न भवेद्यदि ।

को मर्शं सपरीहारं संपदं च भवेत्ततः ॥३५॥

‘अच्छ्यानविकारास्त्री कुटोवाताप्तपस्थिती ।

अन्वागमात्रावस्ती च तदवदेव च निदिशेत् ॥३६॥

### अणुतैलनिर्देशः—

‘जोवन्तीजलदेवदारुजलदरुकुसेव्यगोहिमम्

दार्वोत्वङ्मधुरूपलवागुरुवरापुंद्वाह्वबिल्वोदालम् ।

घावभ्यौ सुरभिः स्थिरे कृमिहरं पत्रं त्रुटि रेणुकम्

किजल्कं कमलाह्वयं जतगुखे दिव्येऽममि यवाथयेत् ॥३७॥

तैलाद्रसं दशगुणं परिशेष्य तेन<sup>१</sup>

तैलं पचेच्च सलिलेन दर्शय वारान् ।

पाके लिपेच्च दशमे सममाजदुग्धं

मस्यं महागुणमुशोष्युतैलमेतत् ॥३८॥

### नस्यशीलिनःफलम्—

घनोन्नतप्रसन्नस्वक्स्वर्गपीवाऽस्त्यवक्षसः ।

हृदं द्विभास्त्वपसिता भवेयुर्नस्यशीलिनः’ ॥३९॥

१—स्नेहानन्दिविधं केवलस्नेहो विचागुणामहितश्च । रसायनं द्विविधं कुटो-  
प्रावेशिकं वातातपिकं च । अनुवासनं मात्रावस्तिश्च वस्तिद्वयम् । तद्वत्प्रमर्शवत्  
शीघ्रकारित्वादिनानिदिशेत् । २—जलं ‘सुगन्धशान्ता’ हिन्दो । जलदोमुस्तकम् ।  
त्वक् ‘दालचीनी’ हि० । सेव्यमुशोरम् । गोपीसारिवा । हिमचन्दनम् । प्लवः  
‘केवटीमोषा’ हि० । वरात्रिफला । पुंद्वाह्वं शिताम्भोजम् । घावभ्यौ कंटकारोद्वयम् ।  
स्थिरे-शालपर्णीपृष्ठपर्णी च । कृमिहरं विडम्गम् । त्रुटिरेला । दिव्यमाकाशोयंजलम् ।  
३—तेन कायेन । अणुषु स्रोतः सु प्रविश्य रोगहरणादणुतैलम् ।

## एकविंशतितमोऽध्यायः ।

अथाऽतो धूमपानविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

“अग्नूर्ध्वं कफवातोत्पत्तिकाराणामजन्मने ।

उच्छ्वेशय च जातानां पिवेद्धूमं सदात्मवाक् ॥१॥

त्रिविधोधूमः—

स्तिम्बो मध्यः <sup>१</sup>स तीक्ष्णश्च वाते वायकके कठे ।

योग्यः

धूमनिषेधः—

न रक्तपित्तातिविरक्तोदरमेहिषु ॥२॥

तिमिरोर्ध्वाग्निनाऽऽम्भानरोहिणीदत्तवस्तिषु ।

मत्स्यगच्छदपिशोरभोरस्नेहविषाशिषु ॥ ३ ॥

शिरस्यभिहते पांडुरोगे जागरिते निशि ।

अविधिपीतोधूमोरक्तादिकृत्—

रक्तपित्ताध्यत्राधिपंतृप्नुर्ध्वाग्निदमोऽहृत् ॥ ४ ॥

धूमोऽकारोऽतिपीतो वा

तत्र <sup>२</sup>शीतो विधिहितः ।

त्रयाणां धूमानां पृथक्कालः

क्षुतजृम्भितविलसूत्रस्त्रीसेवाशस्त्रकर्मणाम् ॥ ५ ॥

हासस्य दंतकाष्ठस्य धूममते पिवेन्मृदुम् ।

कालेष्वेष्टु निशाऽऽहारनावनाते च मध्यमाम् ॥ ६ ॥

निद्रानस्याजनस्नानच्छर्दितांते विरेचनम् ।

धूमनेत्रस्वलपम्—

<sup>३</sup>वस्तिनेत्रसमद्रव्यं त्रिकोशं कारयेद्वह्नु ॥ ७ ॥

१ सधूमः । २ तत्र अकालपीतधूमजन्यविकारे । ३ वस्ति इति—  
यैर्द्रव्यैर्धात्वादिभिर्वस्तेर्नेत्रं त्रियते तरेबद्धधूमं मपानार्थमपितेन विधेयम् ।  
त्रिकोशं पर्वण्ययुक्तम् । मूलेऽङ्गुष्ठप्रवेशमग्रे च कोलास्तिप्रवेशम् ।

मूलाग्रं जुंक्षकोलास्थिप्रवेशं धूमनेत्रकम् ।

१ तीक्ष्णस्नेहनमध्वेषु श्रीणि चत्वारि पंच च ॥ ८ ॥

अंगुलानां ब्रह्मात्पातुः प्रमाणेनाष्टकानि तत् ।

१० धूमपान विधिः—

अजुपविष्टस्त्वच्चेता निवृत्तास्पृष्टिपर्ययम् ॥ ९ ॥

पिपायं च्छिद्रमेकैकं धूमं नासिकया पिबेत् ।

प्राक् पिबेन्नासयोत्तिलष्टे दोषे घ्राणशिरोगते ॥ १० ॥

उत्प्लेशनार्थं वक्त्रेण विपरीतं तु कंठ्ये ।

मुखेनैव घमेद्धूमं नासया हृन्विधातकुत् ॥ ११ ॥

आक्षेपमोक्षं पातन्यो धूमस्तु त्रिखिभिर्त्रिभिः ।

स्निग्धादि धूमपानम्—

मज्जः पिबेत्सकृत् स्निग्धं, द्विर्घ्यं, शोधनं परम् ॥ १२ ॥

त्रिधनुर्वा

मृदुधूमद्रव्याणि—

मृदो तत्र द्रव्याण्यगुरु गुग्गुलुः ।

मुस्तस्त्वोष्णोपश्लेषनलदोशीरवालकम् ॥ १३ ॥

वराङ्गकीतीमधुकवित्वमज्जैलवालुकम् ।

श्रीवेष्टकं सर्जरसो ध्यामकं मदनं प्लवम् ॥ १४ ॥

१ पातुः—धूमपातुरङ्गुलानां श्रीणि अष्टकानि चतुर्विंशत्यङ्गुलानि दैर्घ्येण-  
सीदणधूमे । स्नेहने चत्वार्यष्टकानिद्वात्रिदङ्गुलानि । स्नेहने पञ्चाष्टकानिचत्वा-  
रिदङ्गुलानि । नेत्रप्रमाणं । २ तच्चेता धूमपानलग्नमानसः । ३ अनुत्तिलष्टे दोषे  
उत्प्लेशनार्थं प्राक् वक्त्रेण पञ्चान्नासया पिबेत् । कण्ठोदोषे विपरीतं प्राङ्नासया  
पश्चाद्वक्त्रेण पिबेत् । ४ नासयापीतोष्णमोहविधातवृद्धमवति । ५ त्रिखिवारम् ।  
६ स्वोष्णः 'शुनेर' हि० । वराङ्गं 'दालचीनी' हि० । कीन्तोरेणुका । श्रीवेष्टकं  
'विरोजा' हि० । ध्यामकं सुगन्धतृणम् । फलानामक्षौट्णालिकेरादीनां तथा  
साराणासदिरासनादीनाञ्चस्नेहः ।

शल्लकी कुंकुमं माषा यवाः कुंदुरकं तिलाः ।

स्नेहः फलानां साराणां मेदोमज्जावमाधृतम् ॥ १५ ॥

शमनधूम द्रव्याणि—

‘शमने शल्लकी लाक्षा पृथ्वीका कमलोत्पलम् ।

न्यग्रोधोदुंबराश्वत्थपक्षरोध्रत्रयः तिला ॥ १६ ॥

यष्टोमधुः सुवर्णत्वक् पदमर्क रक्तमण्डिका ।

गंधाश्चाकुष्ठतगराः

तीक्ष्णधूमद्रव्याणि—

‘तीक्ष्णे ज्योतिष्मती निशा ॥ १७ ॥

दशमूलमनोह्वाल लाक्षाश्वेताफलप्रयम् ।

गंधद्रव्याणि तीक्ष्णानि गणो मूर्धविरेचनः ॥ १८ ॥

धूमवर्तिविधानम्—

जले स्निग्धामहोरानमिषो<sup>१</sup>कां दादशांगुलाम् ।

पिष्टैर्धूमौषधैरेवं पचकृत्वः प्रलेपयेत् ॥ १९ ॥

वतिरंगुष्ठवत्स्थूला यवमध्या यथा भवेत् ।

छायाशुष्का विग<sup>२</sup>भां तां स्नेहाभ्यक्ता यथायथम् ॥ २० ॥

धूमनेत्रापिता पातुमग्निप्लुष्टा प्रयोजयेत् ।

कासघ्नधूम विधिः

शरावसंवृत्तच्छिद्रं नाडी न्यस्य दशांगुलाम् ॥ २१ ॥

अष्टांगुलां वा वक्त्रेण वासवाम् धूममापिवेत् ।

१ पृथ्वीका ‘मगरैल’ हि० । सुवर्णत्वक् नागकेशरम् भारग्वध इति हेमाद्रिः । रक्तमण्डिका मंजिष्ठा । अकुष्ठगन्धा इति कुष्ठतगररहितानि गन्धद्रव्याणि ।  
२ ज्योतिष्मती ‘मालकांगुली’ हि० । निशा हरिद्रा । मनोह्वाल—मैनसिल हि० । भालं हरितालम् । श्वेता कटभी ।

तीक्ष्णानि गंधद्रव्याणि कुष्ठतगरादीनि ।

• गणः शोथनादिगणोक्तो वेल्लायामार्मत्यादिकः ॥

३—इषोका ‘मीक’ हि० । ४ विगर्भमिषोकारहितम् ।

घूपपान फलम्—

कासः श्वासः पीनसो विस्वरत्नं  
पूतिगंधः पांडूता केशदोषः ।  
कर्णोऽस्य, क्षिप्तावकं ह्वति जाड्यं  
तं द्राहिमा भूमर्षं न स्पृमति” ॥२२॥

## द्वाविंशतितमोऽध्यायः ।

अथाऽतो गंहूपादिवधिमध्यायं अस्यास्यामः ।

चतुर्विधांगणद्वयः—

“चतुष्टयकारो गंहूषः” स्निग्धः क्षमनशीलनी ।  
रोपणञ्च

तेषां योजना—

‘अथस्तत्र त्रिषु योज्याभ्रलादिषु ॥१॥

‘अन्त्यो वणञ्चः

गणद्वयद्रव्याणि—

स्निग्धोऽत्र स्वादुर्गन्धुमाधितः ।

स्नेहः,

संशमनस्तिक्त्वायमधुरीपधः ॥२॥

शोधनस्तिक्त्वायमधुरीपधः,

रोपणः पुनः ।

कषायतिक्त्वायमधुरीपधः,

‘गणद्वये स्नेहादि प्रयोगः—

तत्र स्नेहः क्षीरं मधूदकम् ॥३॥

भुक्तं गर्धं रसो मूत्रं धान्याम्लं च यथायथम् ।

कलर्युक्तं विषवत् वा यथास्पृशं प्रयोजयेत् ॥४॥

१—गंहूषः ‘कुत्ला’ हि० । २—अत्र गंहूषेण । अथ स्निग्धक्षमनशीलनी ।

अभ्रलादिषु वातादिषु । ३—अन्त्यो रोपणः । ४—अदुर्लभम् ।

दन्तदर्पादौ तिलकल्कोदकं हितम्—

। दंतहर्षे दंतचाले मुखरोगे च वातिके ।  
सुखोष्णमथवा शीतं तिलकल्कोदकं हितम् ॥१॥

तैलादीनांगण्डूपः—

गण्डूपधारणे नित्यं तैलं मांसरसोऽथवा ।

घृतादीनांगण्डूपः—

१ ऊषादाहान्विते पाके दाते वाऽऽजान्तुर्मवे ॥६॥  
विषक्षाराऽग्निदग्ने च सर्पिर्गार्यं योऽथवा ।  
वैशद्यं जनयस्यास्ये संदधाति मुखद्रयाश्च ॥७॥  
दाहक्षुण्णप्रशमनं मधुगण्डूपधारणम् ।  
२ धान्याभ्लमास्यवैरस्य ५ लदोगं ध्यनाशनम् ॥८॥  
सवेपाऽलवणं शीतं मुखशोषहर परम् ।  
मागं क्षारांशुगण्डूपां भिनत्ति श्लेष्मणश्चयम् ॥९॥  
सुखोष्णोदकगण्डूपैर्जायते यवमलाचयम् ।

गण्डूपधारण प्रकारः—

निवाते सातपे स्विन्नमृदितस्कंधकंधरः १ ॥१०॥  
गण्डूपमपिबन् किंचिदुष्णतास्यो विधारयेत् ।  
कफतूणीत्यतः गावास्त्रवद्घ्राणाक्षताऽथवा ॥

गण्डूपकवलयोर्भेदः—

भसंवार्यो मुखे पूर्ये गण्डूयः कवलोज्यथा ॥११॥

कवलमह साध्यरोगाः—

मन्याशिरः कर्णमुखाग्निरोगाः  
प्रसेकपंठाभयवनवशोभाः ।  
हृत्लासतंद्राक्षिपीनसाश्च  
साध्या विप्रोपात्कवलप्रहेण ॥१२॥

प्रतिसारणम्—

कल्को रसक्रिया चूर्णत्रिविधं<sup>१</sup> प्रतिसारणम् ।

युज्यात्तत् वफरोमेषु गङ्गपविह्वीषयैः ॥१३॥

मुखलेपः—

मुखालेपस्त्रिधा दीपविषहा वर्णदृक्च साः ।

उष्णो वातकफे शस्तः श्लेपेष्वत्यर्थशोतलः ॥१४॥

लेपस्य त्रैविध्यम्—

निमग्नस्रुत्तुर्भगिभिर्भाषापाङ्गुलोन्नतिः ।

लेपस्य स्थित्यादि—

घण्टुकस्य स्थितिस्तस्य शुष्को द्रूपयति च्छविम् ॥१५॥

तमाद्र्विपाश्वनयेत्तदंतेऽभ्यङ्गमाचरेत् ।

लेपेपध्यम्—

विषजयेद्द्विधास्वप्नमाध्याश्व्याशपशुकृषुः ॥१६॥

लेपनिषेधः—

न योग्यः पीनसंजीर्णं दन्तवस्ये हनुग्रहे ।

मरोपके जागरिते,

लेपगुणाः—

स च हन्ति सुयोजितः ॥१७॥

अकालपलितव्यङ्गवलीतिमिरमौलिकाः ।

अतुविशेषेणमुखालेपाः—

कोलमज्जा कृषाम्भूल शारवरे गौरसर्पपाः ॥१८॥

सिंहोमूलं तिस्राः कृष्णा दार्बीत्वद् निस्तुपा यवाः ।

दर्भमूतहिमोक्षोरणिरोपमिशितङ्गुलाः ॥१९॥

कुमुदोत्पलकङ्कलारद्रूर्वामधुकचंदनम् ।

कालीयकतिबोक्षोरमांसोत्तमरफद्मकम् ॥२०॥

१—प्रतिसारणम् 'मजन' हि० । दाहः । २—श्लेपेषु पित्ते, वात पित्ते विषे च ।

तालोसगुंदापुंद्गाक्षयष्टीकाशनतामुरुः ।

इत्यर्धाधौदिता जेता हेमंतादिषु षट् स्मृताः ॥२१॥

**मुखालेप प्रयोजनम्—**

मुखातेपनशोतानां दृढं भवति दर्शनम् ।

वदनं चाऽपरिम्लानं श्लक्ष्णं तामरसोपमम् ॥२२॥

**मूर्धतैलस्य चातुर्विध्यम्—**

अभ्यंगसेकपिचवो बन्तिश्रेति षतुर्विधम् ।

मूर्धतैलम्,

बहुगुणं तद्विद्यादुत्तरोत्तरम् ॥२३॥

**अभ्यङ्ग विषयः—**

तत्राऽभ्यंगः प्रयोक्तव्यो रीक्ष्यकङ्कमलादिषु ।

**परिपेक विषयः—**

अर्द्धपिकाशिरस्तोददाहपाक्वणेषु तु ॥२४॥

**परिपेकः**

**पिचु विषयः—**

पिचु. केशशातस्फुटनधूपने ।

नेत्रस्तभे च

**बस्तिविषयः—**

बस्तिस्तु प्रसुप्तपदितजागरे ॥२५॥

नासाऽस्यशोथे तिमिरे शिरोरोगे च दाहणे ।

**शिरोबस्ति विधानम्—**

विधित्तस्य निषण्णस्य पीठे जानुसमे भुदौ ॥२६॥

शुद्धावतस्विन्नदेहस्य दिनांते गव्यमाहिषम् ।

दादशांगुलविस्तीर्णं चर्मपट्टं शिरःभसम् ॥२७॥

भाकर्णवंधनस्थानं लताटे वस्त्रवेष्टिते ।

चैलवेष्टिकश बद्ध्वा भाषकस्तेन लेपयेत् ॥२८॥

ततो मयाव्याधि शृतं स्नेहं कोष्णं निषेचयेत् ।



ऊर्ध्वं केशमुबो यावद् व्यङ्गुलम्,

धारयेच्च तम्<sup>१</sup> ॥२९॥

भाववत्रनासिकोत्पलेदात्,

<sup>२</sup>दशाङ्गुली षट् चलादिषु ।

मात्रासहस्राणि,

<sup>३</sup>ग्रहजे स्वेकम्,

स्कंधादि मर्दयेत् ॥३०॥

मुक्तस्रोहस्य

परमं सप्ताहं तस्य<sup>४</sup> सेवनम् ।

कर्णतैलविधिः—

धारयेत्सूरणं कर्णं कर्णमूलं विमर्दयन् ॥ ३१ ॥

रुजः स्यान्मार्दवं यावन्मात्राशतमवेदने ।

मात्राप्रमाणम्—

यावत्पर्येति हस्ताग्रं दक्षिणं जानुमंडलम् ॥ ३२ ॥

निमेषोन्मेषकालेन समं मात्रा तु सा स्मृता ।

मूर्धेतैल फलम्—

<sup>५</sup>कचसदनमितत्त्वपिजरत्वं

परिफुटनं शिरसः समोररोगान् ।

जयति जनयतीन्द्रियप्रसादं

स्वरहनुमूर्धमूलं च मूर्धेतैलम् ॥ ३३ ॥

॥ ३३ ॥

१—तंस्नेहम् । २—चले वाते दशमात्रासहस्राणि, पित्तोऽप्योमात्रासहस्राणि कफे च षट्मात्रासहस्राणि । ३—ग्रहजे स्वस्म्यवृत्ते एकं मात्रासहस्रम् । ४—तस्य स्नेह वस्तेः । ५—कचानां सदनानिभिः सम्बन्धः । कचाः केशास्तेषां मदनपातः । पिजरत्वं पिङ्गसवर्णता ।

## त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथाऽत आश्च्योतनां जनविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

नेत्ररोगाणां परिपेक्षोहितः—

“सर्वेषामक्षिरोगाणामादावाश्च्योतनं हितम् ।

रक्तोदकं हृषपर्शुदाहरो गनिबर्हणम् ॥ १ ॥

उष्णं वाते, कफे कोष्णं, तच्छीतं रक्तपित्तयोः ।

आश्च्योतनविधिः—

निवातस्थस्य वामेन पाणिनोन्मील्य रोदनम्

शुबल्या प्रलबध्याऽन्येन<sup>१</sup> पिबुवत्या कनीनिके ।

दश द्वादश वा बिन्दून् द्रव्यगुलादवसेषयेत् ॥ ३ ॥

ततः प्रमृज्य मृदुना चलेन कफवातयोः ।

<sup>२</sup>अन्येन कोष्णपानीयप्लुतेन स्वेदयेन्मृदु ॥ ४ ॥

अत्युष्णाद्याश्च्योतनाद्रोगादि—

अत्युष्णतीक्ष्णं क्षामदृष्टनाशायामाक्षिसेचनम् ।

अतिशीतं तु कुष्ठे निस्तोदस्तभवेदनाः ॥ ५ ॥

कषामवर्त्मता यपं, कुच्छ्रादुन्मेषणं बहु<sup>३</sup> ।

विकारवृद्धिमत्यल्पं संरंभमपरिक्षुतम् ॥ ६ ॥

गत्वा सचिशिरोध्वाणमुक्ष्मोर्तासि भेषजम् ।

ऊर्ध्वगाक्षमने न्यस्तमपवर्तयते मलाम् ॥ ७ ॥

अक्षुनप्रयोगः—

अथाक्षुनं शुद्धतनोनें वभायाधये मले ।

पक्षाग्नेऽल्पशोफातिकं हनैच्छित्यक्षजिते ॥ ८ ॥

१—अन्येन दक्षिणहस्तेन । २—अन्येन कोष्णपानीयप्लुतेन चलेन वस्त्र  
खण्डेन । ३—बहु अतिमात्रमाश्च्योतनम् । अत्यल्पमक्षिसेचनम् । अपरिक्षुतमक्षि-  
सेचनम् ।

मंदषर्पाश्रुतोरोगेऽपि प्रयोज्यं पनदूपिके<sup>१</sup> ।

मातुं पित्तकफासृग्निमरितेन विशेषतः ॥ ९ ॥

॥ अंजनस्य त्रैविध्यम्—

लेखनं रोपणं दृष्टिप्रसादनमिति त्रिधा ।

॥ १० ॥

अंजनम्,

लेखनं तत्र कपायाम्स्तपहृपणः ॥ १० ॥

रोपणं तित्तकंदर्भ्यः

स्वादुशीतैः प्रसादनम् ।

अंजनशलाका प्रकारः—

दशांगुला, तनुर्मध्ये, शलाका मुकुनानना ॥ ११ ॥

प्रशस्ता लेखने ताम्रो, रोपणे काललोहजा ।

अंगुली च, मुवणौत्या कथजा च प्रसादने ॥ १२ ॥

त्रिविधांजनकल्पना—

पिंडो रसक्रिया चूर्णस्त्रिषेत्राजनकल्पना ।

गुरो, मध्ये, लघौ, दोषे ताः<sup>२</sup> क्रमेण प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥

हरेणुमात्रं पिंडस्य, वेल्लमात्रा रसक्रिया ।

तीक्ष्णस्य द्विगुणं<sup>३</sup> तस्य मुदुनः,

धूर्णितस्य च ॥ १४ ॥

द्वे शलाके तु तीक्ष्णस्य तिस्रः स्युरितरस्य<sup>४</sup> च ।

निशादाषज्जनानपेधप्रकारः—

निशि स्वप्ने न मध्याह्ने भ्यानेनोप्युपभस्तिभिः ॥ १५ ॥

भक्षिरोगाय दोषाः स्युर्विबितोत्पीडित<sup>५</sup>द्रुताः

प्रातःशायं च तच्छांत्यं व्यभ्रेर्विडतोऽत्रयेत्तदा ॥ १६ ॥

१ दूपिका नेत्रयामौलम् । रोपणेऽङ्गुली च यस्ता । २ ता अज्जन कल्पनाः ।

३ हरेणुर्वर्तुलकलायः । वेल्लोविदङ्गः । ४ तस्य पिण्डस्य मृदुद्रव्यवृत्तरस्य द्विगुणं द्विहरेणुमात्रम् । ५ इतरस्य मृदुचूर्णाञ्जनस्य । ६ विबिता--वृद्धिनीताः-

उत्पीडिता भन्वस्थानगताः । द्रुता विलय गताः ।

**अन्धाचार्यमतम्—**

चदंत्यन्ये तु न दिवा प्रयोज्यं तीक्ष्णमंजनम् ।  
विरेकदुर्बलं चक्षुरादित्यं प्राप्य सीदति ॥१७॥  
स्वप्नेन रात्रौ कालस्य सोम्यत्वेन च तपिता ।  
शोतसात्म्या दृग्गन्धेयो स्थिरतां लभते पुनः ॥१८॥

**सन्मतद्वयम्—**

वायुदिवते बलासे तु लेखनीयेऽथवा गदे ।  
काममह्यपि नात्युष्णो तीक्ष्णमक्षिण प्रयोजयेत् ॥१९॥  
भ्रमनो जन्म तोहस्य तप्त एव च तीक्ष्णता ।  
उपघातोऽपि तेनैव तथा नेत्रस्य तेजसः ॥२०॥

**रान्नावञ्जननिषेधः—**

न रान्नावपि शोतेति नेत्रे तीक्ष्णांजनं हितम् ।  
दोषमस्त्रायमस्तंभकं हृज्जाड्यादिकारि तत् ॥२१॥

**भीतादीनामञ्जननिषेधः—**

नाजयेद्भीतव्रमितविरिक्ताऽशीतयेगिते ।  
क्रुद्धज्वरितता<sup>१</sup>ताक्षिशिरोरुक्शोकजागरे ॥२२॥  
अदृष्टेर्जं शिरःस्नाते पीतयोधूर्ममद्ययोः ।  
अजीर्णेऽप्यर्कमंतते दिवा सुप्ते पिपासिते ॥२३॥

**अतितीक्ष्णाश्चञ्जननिषेधः—**

अतितीक्ष्णमुदुस्तोकबहुक्षयनककंशम् ।  
अल्पमशोतसं वसमंजनं नावधारयेत् ॥२४॥

**नेत्रेऽञ्जितेकतेव्यम्—**

अपानुन्मीलयन् दृष्टिभन्तः संचारयेच्चक्षुः ।  
शंजिते वर्त्मनी किञ्चिच्चातपेच्च<sup>१</sup>वर्मजनम् ॥२५॥  
तीक्ष्णं व्याप्नोति, सहना न चोन्मेषनिमेषणम् ।

१ तदंजनम् । २ तान्ताक्षिम्लानादि । ३ एवं वर्त्मनालनेन तक्षणीमंजनं नेत्रं व्याप्नोति ।

निष्पीडनं च वर्त्म्यां क्षालनं वा समाचरेत् ॥२६॥

नेत्रक्षालनप्रकारः—

अपेतोपव<sup>१</sup>सरभं निवृ<sup>२</sup>त्तं नयनं यदा ।

व्याधिमोपतुंयोग्याभिरद्भिः प्रक्षालयेत्तदा ॥२७॥

दक्षिणांगुष्ठकेनाऽक्षि ततो वामं सवाससा ।

ऊर्ध्वं वत्मनि संगृह्य शोर्ध्वं वामेन चेतरे<sup>३</sup>त् ॥२८॥

वर्त्मप्राप्ताजनाद्दोषो रोगान्कुर्यादतोऽ<sup>४</sup>न्यथा ।

कङ्कजाढ्ये<sup>५</sup>ज्जनं तीक्ष्णं घूर्मं वा योजयेत् पुनः ।

तोदणांजनाऽभितप्तं तु पूर्यं प्रत्यंजनं हितम् ॥२९॥

## चतुर्विंशतितमोऽध्यायः ।

अथाऽतस्तर्पणपुटपाकविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

तर्पणयोजनम्—

“नयने<sup>१</sup> ताम्यति स्तब्धे क्षुके स्फोऽभिधातिते ।

वातपित्तान्तुरे जिह्वे क्षीर्णपक्ष्माविलेखाणे ॥१॥

कृच्छ्रोन्मीलशिराहर्षशिरोत्पाततमोऽर्जुनैः ।

स्पर्शमयान्यतोवातवातपर्यायशुक्लैः ॥२॥

आतुरे शांतरागाद्युक्षूलसंरंभवृषिके ।

निवाते तर्पणं योज्यं शुद्धयोर्भूर्धकाययोः ॥३॥

तर्पणप्रकारः—

काले साधारणे प्रातः सायं चोत्तानशायिनः ।

यवमापमयो पाली नेत्रकोशाद्वहिः समाम् ॥४॥

१ अपगतांजनीपक्षोभम् । वामनेत्रम् । २ इतरत् दक्षिणं नेत्रं वामेनाङ्गुष्ठ  
केन शोचनम् । ३ नेत्राशोचनेन । ४ ताम्यति स्वायति । ५ साधारणे काले  
वसन्ते शरदि च ।

व्यंगुलोच्चां दृढां कृत्वा यथास्वं सिद्धमावपेत् ।  
सर्पिनिमीलिते नेत्रे तप्तांबु<sup>१</sup>प्रविलापितम् ॥५॥

नक्तान्ध्यादिपुवसाप्रक्षेपः—

नक्तोध्यवाततिमिरकृच्छ्रोपादिके वसाम् ।

भाष्यमाश्रित्,

अनन्तरंमात्राविगणनादि—

अथोग्मेपं शनकंस्तस्य कुर्वतः ॥६॥

मात्रा<sup>१</sup> विपणयेत्तत्र वर्त्मसंधिसितासिते ।

दृष्टौ च कृमयो व्याधौ यत श्रीणि च पंच च ॥७॥

शतानि सप्त चाऽष्टौ च, दश मध्ये दशानिले ।

पित्ते षट् स्वस्थवृत्ते च, बलासे पंच वारयेत् ॥८॥

अपाङ्गदेशे द्वारकरणादि—

कृत्वाऽ<sup>१</sup>पागे ततो द्वार स्नेहं पात्रे तु गालयेत् ।

पिबेच्च भूमं, नेक्षेत व्योम क्षपं च वास्वरम् ॥९॥

क्षत्वं प्रतिदिनं वायो, पित्ते स्वेकातरं, कफे ।

स्वस्थे च व्यंतरं दद्यादाकृतेरिति योजयेत् ॥१०॥

तृप्तादिलक्षणम्—

प्रकाशक्षमता स्वास्थ्यं विशदं लघु तोचनम् ।

तृप्ते, विपर्ययोऽतृप्तेऽतितृप्ते श्लेष्मजा रजः ॥११॥

स्नेहपीता तनुतिव बलात्ता दृष्टिर्हि सीदति ।

पुटपाकप्रयोगः—

तर्पणानंतरं तस्माद्दुग्धलाघानकारिणम् ॥१२॥

पुटपाकं प्रयुञ्जीत पूर्वोक्तप्येव<sup>१</sup> यक्ष्मसु ।

वातादीस्नेहादिः पुटपाकः—

<sup>१</sup>स वाते स्नेहनः, श्लेष्मसहिते नेत्रयो हितः ।

१ वर्त्मरोगे मात्राशतं, सन्धौ श्रीणि शतानि, सिते पंचशतानि, भ्रमिते सप्तशतानि, दृष्टावष्टौशतानि । २-अपाङ्गो नेत्रयोरन्तः । ३ पूर्वोक्तेषु तर्पणाद्युक्तेषु । ४ स पुटपाकः ।

हृदोर्बल्येऽग्निसे तिष्ठे रगते म्यस्ये प्रसादनः ।

स्नेहनपुटपाककरूपना—

भृगवप्रसहानूरुमेदोमग्जावगामिपैः ॥१४॥

स्नेहर्न पयसा पिष्टैर्ज्वनीयंश्च कृत्वात् ।

क्षेयनपुटपाककरूपना—

मृगवक्षिण्यहृन्मांसमुक्तायस्ताभ्रगैषवैः ॥१५॥

रौतोजरं सकेना<sup>१</sup> नैलेष्वन मस्तुरुन्तैः ।

प्रसादनपुटपाक करूपना—

भृगवक्षिण्यहृन्मज्जावगाऽनहृदयामिपैः ॥१६॥

मधुरैः मधृतैः स्तन्यद्वारपिष्टैः प्रसादनम् ।

पुटपाककरणप्रकारः—

चित्त्वमात्रं पृथक्विडं मांसभेदजहृन्मयो. ॥१७॥

<sup>२</sup>उरूकवटीऽभोजनार्थः स्नेहादिषु क्रमात् ।

वेष्टयित्वा भृशं लिप्तं घवधन्वनमोमयैः ॥१८॥

पक्षेप्रदोर्हरेण्याम पक्षं निष्पीठ्य तद्रमम् ।

नेत्रे तर्पणवष्टुज्यात्

मात्राधारणादि—

शतं द्वे त्रीणि पारयेत् ॥१९॥

लेसनस्नेहनात्प्रेषु<sup>३</sup>

पूर्वो कोष्णो हिमोऽपरः ।

धूम्रौऽन्ते त<sup>४</sup>योरेव

योगास्तत्र च तृतिथत् ॥२०॥

तर्पणनिषेधः—

तर्पणं पुटपाकं च नस्यानहं न योजयेत् ।

१—मालहृदितालम् । २—उरूक एरण्डः । ३—लेपने शतं, स्नेहने द्वेष्टते, अन्त्ये प्रसादने त्रीणिशतानि । पूर्वो स्नेहनलेखनो । अपरः प्रसादनः ।

४—तयोः स्नेहनलेखनयोः ५—तत्र पुटपाकेषु ।

मुक्तं मुक्तानि यंत्राणां कुर्यात्तत्संज्ञकानि च ।

स्वस्तिक यन्त्रनिर्देशः—

अष्टादशंगुलायामन्यापसानि च गूरुतः ॥५॥

मसूराकारपर्यंतैः कंठे वृद्धानि कीलकैः ।

विद्यात्स्वस्तिकयंत्राणि मूलतः कृशतानि च ॥६॥

१ तैर्हृदयस्थिसंलग्नशलाहरणमिष्यते ।

संदंशयन्त्रनिर्देशः—

कीलवद्धविमुक्ताग्रो संदंशौ षोडशांगुली ॥७॥

एवक्षिरास्नायुपिशितलग्नशस्यापकर्षणी ।

अन्यसंदंशः—

षडंगुलोऽग्नौ हरणे सूक्ष्मशल्पोपपद्मणाम् ॥८॥

मुचुंढीयन्त्रम्—

मुचुंढो सूक्ष्मदंतसुंभूने श्वकभूषणा ।

गंभीरव्रणमामानामर्षणः शेषितस्य च ॥९॥

वृत्तालयन्त्रे—

द्वे द्वादशांगुले मत्स्यतालवद् व्येकतालके ।

तालयन्त्रे स्मृते कर्णनाडी शल्यानहारिणो ॥१०॥

नाडीयन्त्राणि—

नाडीयंत्राणि क्षुभिराग्नेकानेकमुक्तानि च ।

स्रोतोमतानां शल्यानामामयानां च दर्शने ॥११॥

२ क्रियाणां मृकरत्वाय कुर्यादाचुषणाय च ।

नद्विस्तारपरोणाहर्द्ध्यं स्रोतोनुरोधतः ॥१२॥

दशांगुलार्धभातः कंठशल्यावलोत्तने ।

१ तैः कर्ममुक्तादिभिः । २ क्रियाणामग्निशस्त्रादिक्रियाणाम् । ३ अर्धनाहा पञ्चांगुलनाहा ।



नाडी

१ पञ्चमुखच्छिद्रा चतुष्कर्णस्य संग्रहे ॥१३॥

वारंगस्य द्विकर्णस्य त्रिच्छिद्रा तत्प्रमाणतः ।

वारंगकर्णसंस्थानानाहर्द्व्यानिरोधतः ॥१४॥

नाडीरेवंविधाभ्याख्या द्रष्टुं शक्यानि कारयेत् ।

पञ्चकर्णिकया सूचितं गृह्यते द्वादशांगुला ॥१५॥

१ चतुर्धनुषिना नाडी ज्ञाननिर्वातिनो मया ।

अर्शोयन्त्रनिर्देशः—

भक्तं तो गोस्तनाकारं यंपकं चतुरंगुलम् ॥१६॥

नाहे पंचांगुलं पुंसां, प्रमदनां षडंगुलम् ।

द्विच्छिद्रं दर्शने व्याधेरेकच्छिद्रं तु कर्मणि ॥१७॥

मध्येऽस्य अंगुलं धिक्कर्मगुणोदरविस्तृतम् ।

शमीयन्त्रम्—

१ अर्धगुलोच्छिन्नोद्धृतकर्णिकं तु तदूर्ध्वतः ॥१८॥

शक्याख्यं १ तादृगच्छिद्रं यंत्रमर्मप्रपीडनम् ।

भगन्दरयन्त्रम्—

सर्वथाऽनयेदोष्टं छिद्रादूर्ध्वं भगन्दरे ॥१९॥

एकच्छिद्रानाडी—

प्राणायुर्दार्श्यामेकच्छिद्रा नाड्यंगुलद्वया ।

प्रदेशिनीपरीणाद्वा स्यादभगन्दरयंत्रवत् ॥२०॥

अंगुलिप्राणकम्—

अंगुलिप्राणकं दातुं १ वार्धं वा चतुरंगुलम् ।

द्विच्छिद्रं गोस्तनाकारं तदनन्तविवृती सुखम् ॥२१॥

१ चतुष्कर्णस्य संग्रहे पञ्चमुखच्छिद्रा, चतुष्कर्णस्यवारङ्गस्यसंग्रहे त्रिच्छिद्रा तत्प्रमाणतोवारङ्ग प्रमाणतः । वारङ्गः शस्त्रादेर्ग्रहण स्थानम् । २, चतुर्धनुषिना-गुलिच्छिद्रा । ३ तदूर्ध्वतः अर्धगुलाच्छिद्रा उद्धृताकर्णिकयस्मत्तत् । ४ तादृक्-गोस्तनादि लक्षण युक्तम् । ५ दातुं दन्तद्वतं, वार्धं काष्ठकृतम् ।

## योनित्रयेक्षणयन्त्रम्—

योनित्रयेक्षणं मध्ये सुषिरं पोडशांगुलम् ।  
मुदाबद्धं चतुर्भित्तमं भोजमुकुलाननम् ॥२२॥  
चतुःशलाकमाक्रांतं मूले, तद्विकसेन्मुखे ।

## द्वेपङ्क्तुलेयन्त्रे—

यन्त्रे नाड्योप्रणाभ्यंगदालनाय पङ्क्तुले ॥२३॥  
वस्तिर्यन्त्राकृती मूले मुखेऽङ्गुष्ठकलायसे ।  
अग्रतोऽर्कणिके मूले निबद्धमृदुचर्मणी ॥२४॥

## १. १. १. उदकोदरेनलिका—

द्विद्वारा गलिका पिच्छनलिका योश्कोदरे ।

## धूमादियन्त्राणि—

धूमवस्त्र्यादियन्त्राणि निर्दिष्टानि यथायथम् ॥२५॥

## शृङ्गाख्ययन्त्रम्—

शृङ्गलास्यं भवेच्छृङ्गं चूपण्येऽष्टादशांगुलम् ।  
अग्रे सिद्धार्यकञ्चिद्ग्रे सुनद्धं चूषुकाकृति ॥२६॥

## अलानुयन्त्रम्—

स्याद्द्वादशांगुलोऽलाबुवहि त्वष्टादशांगुलः ।  
चतुर्ध्वगुलवृत्ताख्यो दोर्मोऽतः शृङ्गेरत्कह्वत् ॥२७॥

## घटीयन्त्रम्—

तद्वद् घटी हिता गुल्मविलयोन्नमने च सा ।

## शलाकायन्त्राणि—

शलाकाख्यानि यन्त्राणि नानाकर्माकृतानि च ॥२८॥

यथायोगप्रमाणानि

तेषामेषणकर्मणी ।

- 
- १ त्वत्वारोमिताः पत्राणिपस्यत् । २ मूले चतसृभिः शलाकामिर्युवतम् ।  
३ मूलेऽङ्गुष्ठञ्चिद्ग्रे मुखे च कलायञ्चिद्ग्रे । ४ तद्वत् अलाबुवत् दैर्घ्यानाह युवता ।  
५ तेषां शलाकायन्त्राणां मध्ये ।

उभे गङ्गदमुषे; स्रोतोम्यः शल्यहारिणौ ॥२६॥

मसूरदलववत्रे द्वे स्यातामष्टनवांगुले ।

पट्शङ्कुवः—

शङ्कुवः पट्.

उभौ तेपां षोडशद्वादशांगुली ॥३०॥

व्यूहनेऽहिफणाववत्री,

द्वौ दशद्वादशांगुली ॥३०॥

चालने शरपुंसास्यौ,

प्राहार्ये बडिशान्कृती ॥३१॥

गर्भशङ्कु—

नतोऽग्रे शङ्कुना तुल्यो गर्भशङ्कुरिति स्मृतः ।

अष्टांगुलायतस्तेन<sup>३</sup> मूढगर्भं हरेत् स्त्रियाः ॥३१॥

सर्पफणाख्ययन्त्रम्—

अश्वमर्माहरणे सर्पफणावद्वक्रपणतः ।

शरपुञ्जयन्त्रम्—

शरपुंजमुत्तं दंतपातनं चतुरंगुलम् ॥३१॥

शलाका—

कार्पासविहितोऽणीपाः शलाकाः पट् प्रमाज्जने ।

पायावासन्नद्वारार्थे द्वे दशद्वादशांगुले ॥३४॥

द्वे पट्सप्तांगुले घ्राणे, द्वे कर्णोऽष्टनवांगुले ।

कर्णशोधनाख्ययन्त्रम्—

कर्णशोधनमश्वत्थपत्रप्राप्तं खूवाननम् ॥३५॥

शलाकादीनामुपयोगाः—

शलाका जान्वोष्ठानां दारेऽस्मी च पृथक् त्रयम् ।

१ तेपां शङ्कुनामध्ये । २ व्यूहने ऊर्ध्वोरुररणे । ३ तेन-  
गर्भशङ्कुना । ४ शलाकाश्च जान्वोष्ठानि चतेपां, स्थूलाणुदीर्घाणां तत्र, शलाका-  
तिस्रस्तिस्रोऽस्मीसारे चैवं पट्, एवमेव जान्वोष्ठान्यस्मीसारे च पृथक् तिस्रस्तिस्र  
एवं द्वादश शलाकायन्त्राणि ।

युञ्जात् सूताणुदीर्घाणाम् ।

शलाकामंत्रवर्धनि ॥३६॥

मध्योऽर्ध्ववृत्तदंढां च भूमे चार्धेदुर्गनिभाम् ।

कोलास्थिदनतुच्यास्या नासाशौबुददाहृत् ॥३७॥

अष्टांगुला निम्नमुत्तास्तिस्रः क्षारोपचक्रमे ।

कनीनोमध्यमानामिन्यमानममेर्मुसोः ॥३७॥

स्वंस्वमुक्तानि यत्राणि मेढ्रशूद्रयजनादिषु ।

अनुच्यन्त्राण्येकानविंशतिः—

धनुर्वप्राण्यस्कातरग्जुरस्त्राश्चमुदगराः ॥३९॥

वघ्रात्रजिह्वावासाश्च शाखानसमुन्नदिजाः ।

कालः पाकः करः पादो भयं हृषश्च तत्क्रियाः ।

उपायवित्प्रविभजेदालोच्य निपुण धिवा ॥४०॥

अन्त्रकर्मणि—

निर्घातनोन्मथनपूरणमार्गशुद्धि-

संव्यूहनाहरणबन्धनपोहनानि ।

भाचूपणोन्नमननामनपातभग-

व्यावर्तनर्जुकरणानि च यत्रकर्म ॥४१॥

कंकमुखस्यप्राधान्यम्—

निवर्तते साध्ववगाहते च

गाह्यं गृहीत्वोद्धरते च यस्मात् ।

यत्रैष्वतः कंकमुखं प्रधानं

स्थानेषु सर्वेष्वविवक्षारि यच्च ॥४२॥

१ मध्यादूर्ध्वं वृत्तो दंडोयस्यास्ताम् । २ कनीन्यादोन्नामंगुलीनांनखानां मानेन  
समेस्तुल्यं मुर्तैरुपलक्षितः । ३ मयस्कान्ताशुम्बकलीहः । वघ्र-वेणिका द्विजोदन्तः ।  
तत्क्रिया, निर्घातनादिकाः । ४ निर्घातनम् इतश्चेतश्चविचात्यपातनम् । उन्मथनं-  
प्रनष्टगत्वस्य भागैश्शलाकादिभिरालोहनम् । पूरणं वस्तिनेयादिभिस्तेलादिना ।  
संव्यूहनमुत्तुण्डितशत्यस्योद्धरणार्थं कृत्वा ऊर्ध्वोत्तरणम् । व्यावर्तनं यन्त्रधमणम् ।

## षड्विंशोऽध्यायः ।

अथाष्ट शस्त्रविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

शस्त्राणि—

'षड्विंशतिः' सुकुमारैर्वदितानि यथाविधि ।  
 शस्त्राणि रोमवाहीनि बाहुस्येनागुनानि षट् ॥१॥  
 मुष्पाणि मुधाराणि मुग्रहाणि च कारयेत् ।  
 अकरालानि मुष्मासुतोदणावर्तितेऽप्यसि ॥२॥  
 मगाहितपुलाघ्राणि नीलामोक्तक्षत्रीनि च ।  
 नामानुगतह्वाणि मदा सप्रहितानि च ॥३॥  
 स्वोन्मानार्धचतुर्थासफलान्येकैकशोऽपि च ।  
 प्रायो द्विधाणि युजीत तानि स्थानविशेषतः ॥४॥  
 मंढजाग्रं कले तेषां तर्जन्यवर्तनसाकृति ।  
 लेखने छेदने योज्यं पौष्पकीशुण्डिकादिषु ॥५॥  
 घृद्धिपत्रं धुराकारं छेदभेदनपादने ।  
 ऋज्वग्रमुल्लङ्घे शोके, र्गभीरे च तदनन्यथा ॥६॥  
 नताग्रं पृष्ठतो,  
 दोर्ध्वहस्त्वववर्तं यथाशयम् ।  
 उत्पलाभ्यर्धधाशख्ये छेदने भेदने,  
 तथा ॥७॥

१ कुमारैः कर्मकुशलीनैः । रोमवाहीनि लोमशातनमर्थानि । मुखेन  
 गृह्यन्व इति मुग्रहाणि । अकरालानि मुवर्धनानि । मुष्पुष्पातं मुतोदणमावर्तितं  
 च मदमस्तस्मिन् । स्वे च तदुन्मानं शल्पमानं तस्मादर्थं तस्य चतुर्थाशोऽङ्गुलपट्क-  
 मानस्य शल्पस्याष्टमो भागस्त्वप्रमाणफलं येषां तानि । द्वेवा नीलाणि वेति द्विधाणि ।  
 २ तेषां शस्त्राणां मध्ये । तर्जन्यं अन्तर्जन्यस्तस्येवाकृतिर्यस्य । ३ तद्घृद्धिपत्रम् ।  
 धन्यया—गृह्यते गृह्यते न तमग्रं यस्य तत् । उत्पलाभारमध्यर्धधा च ।

सर्पास्यं घ्राणकर्णाशंस्येदनेऽर्धागुलं फले ।

गतेरन्वेपणे श्लक्ष्णा गन्धपदमुस्तैपिण्णी ॥८॥

भेदनार्थेऽनरा सूचीमुष्ठा मूलनिविष्टा १ ।

वेतसं व्यधने,

स्त्राब्धे शरार्यास्यं त्रिकूर्चके ॥९॥

कुशाटा वदने स्त्राब्धे व्यधुलं स्यात्तयोः फलम् ।

तद्वदंतर्मुखं तस्य फलमव्यधर्मगुलम् ॥१०॥

अर्धचंद्राननं चैतत्तथा २

अव्यधर्मागुलं फले ।

प्रीहिष्वत्रं प्रयोज्यं च तच्छिरोदरयोर्व्यधे ॥११॥

पृष्ठः कुठारी गोदंतसदृशाधर्मागुलानना ।

तयोर्ध्वदंडया विध्येदुपर्यस्त्ना स्थितां शिराम् ॥१२॥

ताम्रो शलाका द्विमुखी मुखे कुर्वकाकृतिः ।

लिंगनाथं तथा विध्येत्

कुर्यादंगुलिशस्त्रकम् ॥१३॥

मृदिकानिर्गतमूर्खं फले त्वर्धागुलायतम् ।

योगतो वृद्धिपत्रेण मंडलाग्रेण वा समम् ॥१४॥

१ तत्प्रदेशिगणपर्वप्रमाणार्पणमुद्रिकम् ।

मूत्रबद्धं गलस्रोत्रोरोगञ्चेदनभेदने ॥१५॥

ग्रहणे शुद्धिकामदिर्बहिर्दिशं मुनवाननम् ।

छेदेऽस्त्नां करपत्रं तु खरघारं दशागुलम् ॥१६॥

विस्तारे व्यधुलं मूत्रमर्दतं सुस्तस्वयनम् ।

स्नायुमूत्रकचन्द्रे कर्तरी कर्तरीनिभा ॥१७॥

वक्रजुघारं द्विमुखं नक्षशस्त्रं नवांगुलम् ।

१ मूले निविष्टं विहितं स्त्री छिद्रे यस्याः । २ त्रिकूर्चके स्त्राब्धे । ३ तयोः शरारिकुशाटयोः । तद्वत्कुशाटा तुल्यम् । ४ तथा कुशाटा सदृशम् । कुर्वकाकृतिः-  
रक्तमहचरपुष्पमुकुलाकारा । ५ तस्य वंशस्य प्रदेशिन्यास्तर्जन्या अग्रपर्वण  
प्रमाणं तेनार्पणीमुद्रिका यस्मिंस्तत् । ६ त्वरःशस्त्रमुद्रिः ।

सूक्ष्मशल्पोद्धृतिच्छेदभेदप्रचक्षलेखने ॥१८॥  
 एकधारं चतुष्कोणं प्रबद्धाकृति चकतः ।  
 दंतलेखनकं तेन शोचयद्दंतशर्कराम् ॥१९॥  
 वृत्तागृहद्वयाः पात्रे तिस्रः सूच्योऽत्र सीवने ।  
 गांसलानां प्रदेशानां <sup>१</sup>अप्ला अंगुलमायता ॥२०॥  
 शल्पमासाऽस्त्रिसंधिस्यन्नणानां चर्धंगुलायता ।  
 श्रीहृदयत्रा यनुर्वक्रा पक्वाभाणयमर्मसु ॥२१॥  
 सा सार्धं अंगुला, सर्ववृत्तास्ताभ्रतुरंगुलाः ।  
 कूर्चो वृत्तकपीठस्थाः सप्ताऽष्टौ वा सर्वधनाः ॥२२॥  
 संयोग्यो नोलिकाभ्यंगकेशशातनृष्टने ।  
 भर्गुलैर्मुखैर्वृत्तैरष्टाभिः कंठकः खजः ॥२३॥  
 पाणिभ्यां मध्यमानेन घ्राणात्तेन हरेदसृक् ।  
 अधने कर्णपालीनां यूधिका मुकुलानना ॥२४॥  
 आराऽर्धगुलवृत्तास्या तत्प्रवेशो तथोर्ध्वतः ।  
 वतुरला तथा विध्येच्छोफं पक्वामसंश्रये ॥२५॥  
 कर्णपाली च बहुलाम, बहुलायाश्च शस्यते ।  
 सूचा जिभागमुपिरा अंगुला कर्णवेधनी ॥२६॥

### अनुशास्त्राणि—

<sup>१</sup>जलीक.भारदहनकाकोपरावलादयः ।  
 बलीहान्यनुष्ठापि तान्येव च विकल्पयेत् ॥२७॥  
 अपराएयपि यत्रादीन्पुपयोगं च योगिकम् ।

### शस्त्रकर्माणि—

<sup>१</sup>उत्पाट्यपाट्यनीव्यव्यलेख्यप्रच्छन्नकुट्टनम् ॥२८॥

१ अप्ला त्रिकोणा । २ तत्प्रवेशार्धगुत्तप्रवेशा । ३ जलीका । "जोंक" हि० ।  
 दहनमग्निः । ४ उत्पाट्यमूर्ध्वनयनम् । भावे यत्प्रत्ययः । तत्र नखशस्त्रं योग्यम् ।  
 पाट्यं पाटनंस्फीटनं तत्र वृद्धिपत्रादि । सीव्ये सीवने सूचयः । लेख्ये लेखने मण्ड-  
 लाग्रम् । प्रच्छन्ने कुट्टने कूर्चः ।

१देवं भेषं व्यथो मथो ग्रहो दाहश्च तत्क्रियाः ।

शस्त्रदोषाः—

१कुठलं हतनुस्थूलहृस्वदीर्घत्ववप्रताः ॥२६॥

मस्त्राणां खरधारत्वमष्टौ दोषाः प्रकीर्तिताः ।

शस्त्रग्रहणविधिः—

छेदभेदन स्वार्यं शस्त्रं घृतफलान्तरे<sup>३</sup> ॥३०॥

तर्जनीमध्यमागुष्ठंशुद्धिणीयात्सुममाहितः ।

विस्त्रावणानि घृताग्रं तर्जन्यंगुष्ठकेन च ॥३१॥

तलप्रच्छन्नघृताग्रं ग्राह्यं प्राहिमुखं मुधे ।

मूलेष्वाहरणार्थं तु क्रियासौकर्यतोऽपरम् ॥३२॥

शस्त्रस्थापनार्थं शस्त्रकोपः—

स्यान्नवांगुलविस्तारः सुषनी द्वादशांगुलः ।

शोमपक्षोर्णकोमेयदुकूलमुदुचर्मजः ॥३३॥

विन्यस्तपाशः सुभूतः सांतरोर्णास्थशस्त्रकः<sup>४</sup> ।

शनाकापिहितास्यश्च शस्त्रकोशः सुसंचयः ॥३४॥

जलौकसां योजनम्—

जलौकसस्तु मुखिना रक्तसावाय योजयेत् ॥३५॥

सविपजलौकोनिर्देशः—

दुष्टाबुमत्स्यभेकाहिषवकोषमलोद्भवाः ।

रक्ताः श्वेता भृशं कृष्णाश्चपलाः स्थूलपिच्छिलाः ॥३६॥

ईक्षायुषाविचित्रोर्ध्वराजयो रोमशाश्च ताः<sup>५</sup> ।

सविषा वर्जयेत्,

१ताभिः कंदूपाकञ्जरभ्रमाः ॥३७॥

१ छेदने मंधीकरणे करपत्रम् । भेषे भेदने सूचीमुखो एषणी । व्यधे वेतसादि मपनेलजः । ग्रहे संदंशः । दाहेशलाका । तत्क्रिया तेषापङ्क्तिशस्त्राणां क्रियाः कर्माणि । २ कुठलं स्थूलधारम् । वप्रता-कुटिलता खरधारत्वं कर्कशधारत्वम् । ३ घृतं शस्त्रमूलम् । ४ मान्तराणि सव्यवधानानि उर्णास्थानिधस्त्राणि यस्मिन् । सुश्रुते शस्त्रकोशो न पठ्यते । ५ ता जलौकसः । ६ ताभिः सविषामिर्जलौकोभिः ।



विषपित्तास्तुत्कार्यं तत्र

निर्विषजलोकोनिर्देशः—

शुद्धावुजाः पुनः ।

निर्विषाः शैवलश्यावा वृत्ता नीलोर्ध्वराजयः ॥३८॥

कषायपृष्ठास्तन्वंग्यः किन्तितीतोदराश्च याः ।

रक्तमत्तजलोकोनिर्देशः—

१ता मध्यमम्यग्मनात्प्रततं च निपातनात् ॥३९॥

सीदन्तोः सलिलं प्राप्य रक्तमत्ता इति त्यजेत् ।

जलौकोयोजनाविधिः—

अथेत २रा निशाकल्कपुक्तेऽभमि परिष्णु ताः ॥४०॥

३अवन्तिमोमं सक्ते वा पुनश्चाऽऽश्रयिता जले ।

लागयेद्भूतमृत्मागणस्त्ररक्तनिपातनं ॥४१॥

पिप्वतीरुषतस्फभाश्छादयेन्मुकुवाससा ।

जलौकसादुष्टरक्तस्यैवग्रहणदृष्टान्तः—

संपृक्ताद्दुष्टशुद्धास्त्राजलोका दुष्टप्रोणितम् ॥४२॥

आदत्ते प्रथमं हनः क्षोरं क्षोरोदकादिव ।

जलौकसामोक्षरक्तनिःसारणे—

दंशस्य लोदे कंडूवा वा मोक्षयेद्दामयेच्च ताम् ॥४३॥

गुल्माशोविद्रधीकुष्ठवातरक्तगलामयाम् ।

नेत्ररुग्निषवीतर्पाम् शमयन्ति जलौकसः ॥४४॥

पटुर्जलाक्तवदना रजक्षणकं डनरुक्षिताम् ।

पुनःसप्ताहंतासांयोजनाभावः—

रक्तम् रक्तमदादग्नयः सप्ताहं ता न पातयेत् ॥४५॥

१—ता निर्विषाः । २—इतरा रक्तमत्तातिरिक्ताः । ३—अवन्तिमोमे कांजिके । प्रशस्तामृन्मृत्ना । ४—कण्डनं तण्डुलातां धूलिः 'कन्ना' इतितोके ।

## सासारक्तनिःसारणयोगादयः—

पूर्ववत् पटुतादाढ्यं सम्यग्वाते जलोकसाम् ।

क्लमोऽतियोगान्मृत्युर्वा,

दुवति स्तम्बता मदः ॥४६॥

जलौकः स्थापनविधिः—

अन्यत्राज्यत्र वाः स्याप्या षटे मृत्तांबुगमिणि ।

सालादिकोऽथनाशार्थं सविषाः स्युस्तदन्दवयात् ॥४७॥

दंशस्त्रावादि—

अणुद्वौ स्यावयेद्दंशम् हरिद्रागुडमासिकैः ।

शतघौताज्यपिचवस्ततो लेपाश्च शीतलाः ॥४८॥

दुष्टरक्तापगमनात्सघोरागरूजां शमः ।

अणुद्वौ रक्तस्यपुनःस्त्रावः—

अणुद्वौ चलितं स्यानास्पितं रक्तं ब्रणायये ॥४९॥

अम्लीभवेत्पयुर्पितं तस्मात्तस्त्रावयेत्पुनः ।

अलामुघटिकाविषयः—

मुंज्यामालाबुघटिका रक्ते पिप्पेन दूषिते ॥५०॥

१ तासामनलसंयोगात्

मुंज्याच्च कफवायुवा ।

शृंग विषयः—

कफेन दुष्टं स्थिरं न शृंगेण विनिर्हरेत् ॥५१॥

स्कन्धत्वादं

वातपित्ताभ्यां दुष्टं शृंगेण निहरेत् ।

प्रच्छदानविधिः—

गात्रं बद्ध्वापरिहृदं रज्ज्वा पट्टेन वा समम् ॥५२॥

स्नायुसंघ्वस्त्रिमर्माणि त्यजम् प्रच्छदानमाचरेत् ।

१ तदन्वनास्त्रादिनयोगात् । २ तासामलामुघटिकानाम् । ३ प्रच्छदानं शस्त्रवत्  
चिह्नम् "पद्मना" इति श्लोके ।

अधोदेशप्रविस्तृतः पदैस्परिमाणमिः ॥५३॥

न गाढघनतिर्यग्मिर्न पदे पदमाचरेत् ।

प्रच्छानादि विषयः—

प्रच्छानेनैकदेशस्य, श्लिष्टं असजन्मभिः ॥५४॥

हरेच्छृंगादिभिः सुममसुख्यापि शिराभ्यधः ।

प्रच्छानं पिडिते वा स्यात्,

अवगाढे जलौकसः ॥५५॥

त्वक्स्थेऽलाघुपटोभृंगम्

शिरंव व्यापकेऽसृजि ।

वातादिभ्याम वा भृंगजलौकोलाघुभिः क्रमात् ॥५६॥

क्षुतरक्तस्य सपिपा संकः

सुतासृजः प्रदेहाद्यैः शीतैः स्याद्वायुकोपतः ।

मतोदकहृशोक्तं सपिपोऽप्येन सेवयेत् ॥५७॥

## सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथाजः सिराभ्यधविधिमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

शुद्धरक्त-लक्षणम्—

“मधुरं सवणं किञ्चिदशीतोष्णमसंहतम् ।

‘पद्म’द्रगोपहेमाविशशलोहितलाहितम् ॥१॥

लोहितं प्रवेदन्बुद्धं तनोस्तेनैव च स्थितिः ।

रक्तदोषस्तज्जारोगाश्च—

‘तत्पित्तश्लेष्मसैः प्रायो दूष्यते कुप्यते ततः ॥२॥

विसर्पविद्रधिप्लीहगुल्माग्निमसदनज्वराश्च ।

मुसनेत्रशिरोरोगमश्तृङ्गलवणास्मताः ॥३॥

१ इन्द्रगोपः ‘वीरवट्टी’ इति लोके । अविमेषः, अविशशलोहितं रक्तमिव लोहितं रक्तवर्णम् । लोहितं रक्तमाधुम् । तेन, शुद्धरक्तम् । २ तद्रक्तम् ।

कुष्ठवाताऽस्रनितासः स्रष्ट्वम्लोद्गोरणभ्रमान् ।  
 शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्येकक्राताश्च ये गदाः ॥४॥  
 सम्यक् साध्या न सिध्यन्ति ते च रक्तप्रकोपजाः ।

रक्तस्रावार्थसिराव्यधः—

तेषु सावयितुं रक्तमुद्रिन्तं व्यधयेत्सिराम् ॥५॥

सिराव्यधनिषेधः—

न तूनपोडशाज्जीतसप्तत्यन्तरसूतासृजाम् ।  
 अस्तिष्मास्वेदितात्पर्यस्वेदितानिलरोमिणाम् ॥६॥  
 गर्भिणीमूतिकाजोणित्तास्रश्वासकासिनाम् ।  
 श्मतीसारोदरज्वरदिपाडुसर्वांश्च शक्तिनाम् ॥७॥  
 स्नेहपीते प्रयुक्तेषु तथा पचन् कर्मसू ।  
 नायन्नितां सिरा विध्येन्न तिर्यङ्नाप्यनुत्थिताम् ॥८॥  
 नातिशयोक्त्यवाताभ्रंज्वलनाऽप्ययिकादग्दात् ।

रोगविशेषेषु सिराविशेषव्यधः—

शिरोनेत्राङ्गविकारेषु <sup>१</sup>ललाट्यां मोक्षयेत्सिराम् ॥९॥

अर्पाभ्यामुपनात्वा वा,

कर्णरोगेषु कर्णजाम् ।

नासारोगेषु नासाग्रे स्थिताम्,

<sup>२</sup>नामाललाटयोः ॥१०॥

पीनसे मुखरोगेषु जिह्वोऽह्नुतालुगाः ।,  
 जन्तुर्ध्वं ग्रन्थिषु ग्रीवाकर्णशंसशिरःप्रिताः ॥११॥  
 उरोऽनामललाटस्या उन्मादे, ऽपस्मृतौ पुनः ।  
 हनुसंघौ समस्ते वा सिरां भ्रूमध्यगामिनीम् ॥१२॥  
 विद्रव्यौ पार्श्वशूले च पार्श्वकक्षास्तनांतरे ।

१—तेषु विसर्पादिरोगेषु । २—ललाट्यां ललाटस्थिताम् । ३—पीनसे ललाटयोः स्थितां मृतां विधेत् । ४—समस्ते सकलहनुप्रदेशे । अपस्मृतौ-भ्रूमध्यस्थितां वा सिरां विधेत् ।

तृतीयकैऽमयोर्मध्ये,

स्वयस्याधश्चतुर्थके ॥१३॥

प्रवाहिकायां दूलिन्वा 'भोशितो वृंगुले स्थिताम् ।

शुक्रमेढ्रमये मेढ्रे,

ऊर्णां गल्लगन्ध्याः ॥१४॥

गृध्रस्यां जानुनोपस्थादूर्ध्वं वा चतुरंगुले ।

द्वन्द्वस्तेरयोऽपचयां वृंगुले,

चतुरंगुले ॥१५॥

ऊर्ध्वं गुल्फस्य सूक्ष्मयती

'तथा क्रोष्टुकशीर्षके ।

पाददाहे म्रुडे हर्षे त्वपाद्यां धातकंटके ॥१६॥

चिप्पे च वृंगुले विध्येदुपरि क्षिप्रमर्मणः ।

गृध्रस्यामिव त्रिश्चाच्याम्

यथोक्तसिराऽदर्शने व्यथप्रकारः—

ययोक्तानामदर्शने ॥१७॥

मर्महीने यथासन्न देहेऽप्य। ०. धयेत् सिराम् ।

अथ स्निग्धतनुः सञ्जसर्वोपकरणो बली ॥१८॥

हृत्स्वस्त्यधनः स्निग्धरमाप्तप्रतिभोजितः ।

अग्नितापास्तपस्विप्रो जानून्वासनसस्थितः ॥१९॥

मृदुपट्टात्तकेषातो जानुस्थापितकूपरः ।

मुष्टिभ्या बल्लगर्भभ्या मध्ये गाढं निषीश्येत् ॥२०॥

दतप्रपीडनोत्कासगदाऽऽध्मानानि चाऽवरेत् ।

सिरायन्त्रणविधिः—

पृष्ठतो यत्रयेच्वनं बल्लमावेष्टयन्नरः ॥२१॥

कधरायां परिलिप्य न्यस्यातर्वामतर्जनीम् ।

एयोस्तर्मुखवर्जानां सिराणा यत्रणे विधिः ॥२२॥

१—शोशितः कट्याः । २—तथा क्रोष्टुकशीर्षके गुल्फस्योर्ध्वं चतुरङ्गुले विध्येदित्यर्थः । पाददाहादौ क्षिप्रमर्मण उपरि द्वयङ्गुले विध्येत् ।

## सिराताडनविधिः—

तथा मध्यमयाङ्गुल्या वैद्योऽणुष्ठविमुक्तया ।

ताडयेत्

## सिरामोक्षणम्—

उत्थिता ज्ञात्वा स्पर्शगुणप्रवीढनैः ॥ २३ ॥

कुठार्या लक्षयेन्मध्ये वामहस्तगृहीतया ।

फलोद्देशं मुनिर्कूर्पं सिरां तद्वच्च मोक्षयेत् ॥ २४ ॥

ताडयन् पीडयेच्चैनां विध्येद्ग्रीहिमुत्थेन ॥

“अगुष्टेनोन्मय्याञ्च नासिकामुपनासिकाम्” ॥ २५ ॥

“अगुन्ततविदष्टाग्रजिह्वस्याघर्षं तदाश्रयाम् ।”

“यंत्रयेस्तनयोद्ध्वं ग्रीवाश्रितसिराव्यधे ॥ २६ ॥

पापाण्यगमहस्तस्य जानुस्थे प्रसृते भुजे ।

कुक्षोरारम्भं मृदिते विष्येद्द्विदोर्ध्वपट्टके ॥ २७ ॥

“विष्येद्धस्तसिरां बाहावनाकुञ्जितकूर्परे ।

बद्ध्वा सुखोपविष्टस्य मुष्टिमगुष्ठमभिलीम् ॥ २८ ॥

ऊर्ध्वं वेधप्रदेशाच्च पट्टिका चतुरगुणे ।”

“विष्येदात्तबन्धमानस्य बाहुभ्यापार्श्वयोः सिराम् ॥ २९ ॥

प्रहृष्टे मेहने, जंवासिरा जामुम्यकुञ्चिते ।

पादे तु मुत्थितेऽपस्ताञ्जानुमंथेनिपोडिते ॥ ३० ॥

गाढं कराम्यामामुल्कं शरणे तस्य बीपरि ।

द्वितीये कुञ्चिते किञ्चिदाकृढे हस्तवत्ततः ॥ ३१ ॥

बद्ध्वा विष्येत्सिराम्

अनुक्तेष्वपि कल्पनाप्रकारः—

इत्थमनुवतेष्वपि कल्पयेत् ।

१—यथैव लक्षयेत्तथैव मोक्षयेत् । ग्रीहिमुत्थेन पुनस्ताडयन् विध्येत्तथाङ्गुष्ठा  
दिना पीडयेत् । एनां कुठारिका विषयज्ञांसिराम् । २ तदाश्रयां जिह्वाघःश्रिताम् ।  
३ यंत्रयेदित्यतः पट्टके-इत्यन्तं ग्रीवाधितसिराव्यधिविधिः । मृदितं ग्रीवापर्यन्तम् ।  
बद्ध ऊर्ध्वं पट्टिकां चतुरस्रशङ्खः यस्मिन् । ४ भालमध्यं वस्तु भुजाभ्यामामजतः ।

तेषु तेषु प्रदेशेषु तत्तच्च नमुषायवित् ॥ ३२ ॥

भांसलदेशोप्रकारः—

भांसले निक्षिपेद्देशे श्रोत्रात्म्यं श्रोहिमात्रकम् ।

यवार्धमस्थानामुपरि सिरी विध्यम् कुठारिकाम् ॥ ३३ ॥

सम्यक् विद्धादौघावादि—

सम्यग्विद्धे सवेद्वारां यत्रे मुक्ते तु न सधेत् ।

अल्पकालं बहत्पल्पं<sup>१</sup>, दुविद्धा तैलवूर्णनः ॥ ३४ ॥

सशब्दमतिविद्धा तु सवेदुःखेन धार्यते ।

रक्तस्यास्त्रावहेतवः—

श्रीमूर्च्छायां यत्र शैथिल्यकुठारात्तत्तृप्तयः ॥ ३५ ॥

क्षामत्ववेगितास्येदा रक्तस्याश्रुतिहेतवः ।

असम्यग्स्त्रावेसिरालेपः

असम्यगस्त्रे स्रवति वेद्वभ्योपनिशानतैः ॥ ३६ ॥

सागारधूमलवणतैर्लक्ष्याच्छिरामुखम् ।

सम्यक्प्रवृत्तेतैलादिलेपः—

सम्यक्प्रवृत्ते कोप्येन तैलेन लवणेन च ॥ ३७ ॥

अग्रे स्रवति दुष्टास्त्रं कुसुमादिव पीतिका ।

शुद्धस्यनस्त्रावः—

सम्यक्स्त्राय स्वयं तिष्ठेच्छुद्धं तदिति<sup>२</sup> नाहरेत् ॥ ३८ ॥

मूर्च्छायां यन्त्रविमोचनानि—

यत्र विमुच्य<sup>३</sup> मूर्च्छाया बीजिते व्यजनेः पुनः ।

स्त्रावयेन्मूर्च्छति पुनस्त्वपरेद्युःस्त्र्यहेऽपि वा ॥ ३९ ॥

वातादिदुष्टरक्त लक्षणम्—

वातान्द्रपावाकणं स्थ वेगस्याव्यच्छेकेनिलम् ।

१ मल्पं विद्धात्पकालं बहति । २ मज्जितृप्तिरविमोजनम् । क्षामत्वं निर्बलता । ३ नाहरेन्नस्त्रावयेत् । ४ मूर्च्छायां सत्रां यन्त्रं विमुच्य व्यजनेः पवने कृते मूर्च्छापगमेस्त्रावयेत् पुनर्मूर्च्छिते तद्दिने न स्त्रावयेदित्यर्थः ।

११ पिप्पलासीतासित विलमस्कंक्षांश्यात्सचंद्रकम् ॥४०॥

कफात् स्निग्धमसृक्पाद् तंतुमल्पिच्छिलं घनम् ।

संसृष्टलिङ्गं संसर्गात्

त्रिदोषं मलिनाविलम् ॥४१॥

रक्तस्यातिसूतिविषयः—

अगदौ बलिनोऽप्यस्त्रं न प्रस्यात्त्रावदेशारम् ।

अतिसूतो हि मृत्यु स्याद्वास्त्रा वा चक्षुःश्रवणयोः ॥४२॥

तत्रैवाऽर्ज्यगरमक्षोररक्तपानानि भेषजम् ।

रक्तेऽसूते बन्धनादि—

सूते रक्ते शनैर्यजमपनीय, हिमायुना ॥४३॥

प्रक्षाल्य, तैलप्लोतावत् यथनीयं सिरामुखम् ।

अशुद्धेरक्ते पुनः स्त्रावः—

अशुद्धं स्त्रावयेद्भूयः सायमश्नपारेरि वा ॥४४॥

स्नेहोपस्कृतेऽहस्य पक्षाद्वा भुशङ्कयितम् ।

किञ्चिद्दुष्टरक्तशोषेनसूतिः—

किञ्चिदि शोषे दुष्टालो नैव रोगोऽतिवर्तते ॥४५॥

सशोषमप्यतो धार्यं न नातिमृतिमाचरेत् ।

हरेच्छुङ्गादिभिः शीरम्,

प्रमादमपवा नयेत् ॥४६॥

घोतोपचारः पित्तासत्रियाशुद्धिबिगोपणं ।

दुष्टं रक्तमनुदिवनमेवमेव प्रमादयेत् ॥४७॥

रक्तस्य स्नम्भनोक्त्यानिर्देशः—

रक्ते रवतिष्ठति शिघ्रं स्नम्भनोपाधरेत्क्रियाम् ।

रोधप्रियंगुपराङ्मापयपट्प्रातुर्गैरिकः ॥४८॥



\*भृत्कपालांजेनशौममपीक्षीरित्वगंकुरः ।  
 विचूणयेद्ग्रणमुखं पद्मकादिहिर्म पिबेत् ॥४६॥  
 तामेव वा सिरां विध्येद्द्व्यघातस्मादनंतरम् ।  
 सिरामुखं न स्वरितं दहेत्ततश्लाकया ॥४७॥  
 हिताहारविहारकथनम्—  
 सन्मार्गगा यंत्रनिपीडनेन  
 स्वस्यायमायानि पुनर्न यावत् ।  
 दोषाः प्रदुष्टा रुधिरं प्रपन्ना-  
 स्तावद्धिताहारविहारभावस्यात् ॥४८॥  
 नात्युत्पुण्णीतं लघु दीपनीयं  
 रक्तेऽपनीते हितमप्रपातम् ।  
 तदा शरीरं ह्यनवस्थिताक्ष-  
 मग्निर्विशेषादिति रक्षणायः ॥४९॥  
 विशुद्ध रक्तपुरुषलक्षणम्—  
 प्रमत्तवर्णैर्द्रियमिन्द्रियाया-  
 निच्छन्नमम्पाहतप \*क्तवेगम् ।  
 मूत्रान्वितं पृष्टिबलोपपन्नं  
 विशुद्धरक्तं पुरुषं वदति ॥५०॥

## अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथाजः शल्याहरणविधिमाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

शल्यानां पंचधागतिः—

“वज्रजुतिर्यगूध्वधिः शल्यानां पंचधा गतिः ।

अन्तःस्थितशल्यस्य हानोपायः—

\*ध्यामं शोकं रुजावंतं सर्वतं सोलितं मुहुः ॥१॥

१. शंजमं रसावनम् । शौक्यपक्षे कौशेयवक्ष्यपक्षे । शौक्यता वृज्जाणाम्-वटादीनां त्वग्भिरद्भूतैश्च । २. पक्का जाठराग्निः । ३. ध्यामंश्शामवर्णम् । अम्युदगतमुन्नतम् ।

अम्बुदमतं बुद्बुदवत्पटिकोपचितं घणम् ।  
मृदुमांसं विजानीयादतः शल्यं समासतः ॥२॥

त्वगादिस्थशल्यस्य लक्षणम्—

विशेषात्त्रमाते शल्ये विवरणं कठिनायतः ।  
शोफो भवति मांसस्थे शोपः शोफो विवर्धते ॥३॥  
पीडनाक्षमता पाकः शल्यमार्गो न रोहति ।  
पेश्यं न रगते मांसप्राप्तवच्छ्रयं विना ॥४॥  
“आक्षेपः स्नायुजासस्य सरंभस्तंभवेदनाः ।  
स्नायुगे दुर्हरं च तत्

सिराध्मानं सिराश्रिते ॥५॥

स्वकर्मगुणहानिः स्यात्स्रोतसां स्रोतसि स्थिते ।  
“धर्मनिस्थेऽनिलो रक्तं केन युक्तमुदीरयेत् ॥६॥  
निर्याति शब्दधाम् स्याच्च हृत्तासः सांगवेदनः ।”  
“संघर्षो बलवानस्थिसंधिप्राप्तेऽस्थिपूर्णा” ॥७॥  
नैकरूपा रजोऽस्थिस्थे शोफः,  
तद्वच्च संधिगे ।

वेष्टानिवृत्तिश्च भवेत्,

आटोपः कोष्ठसंश्रिते ॥८॥

आनाहोऽन्नमृन्मूत्रदर्शनं च द्रव्यान्ने ।  
“विद्यान्मर्मगतं शल्यं मर्मविद्धोपलक्षणैः” ॥९॥

त्वगादिस्थस्य लक्षणम्—

यथास्यं च परिखावंस्त्वगादिषु विभावयेत् ।

शल्यस्य रोहादि—

रुह्यते शुद्धदेहानामनुलोमस्थितं तु तत् ॥

१ आक्षेप आकर्षणम् । सरंभः क्षोभः । २ तद्वदस्थिमन्धिवत्लक्षणम् । इदं  
लक्षणमनुक्तसन्धेः पूर्वं स्वस्थिसन्धिवत्लक्षणम् । कोष्ठमुदरम् । ३ रुह्यते रुद्धाभासो  
नतु सम्यक्पूढोपतो दोषकोपादिभिः पुनर्वाधते ।

दोषकोपाऽभिघातादिसोभादभूयोऽपि बाधते ॥१०॥

त्वगादिनष्टे शल्ये स्थानपरीक्षा—

“त्वङ्मृष्टे यत्र तत्र स्फुरन्मृगस्वेदमर्दनैः ।

रागकृदाहसरंभा यत्र चाज्यं विस्तीमते ॥११॥

भ्राशु क्षुप्यति सेषो वा तस्मिन् शल्यवद्वदेत् ॥”

मांसप्रनष्टं संशुद्ध्या कर्मानाञ्छूनयतां गतम् ॥१२॥

सोभाद्रागादिभिः शल्यं लभयेत्, तद्देव<sup>१</sup> च ।

पेश्यस्थिसंधिकोष्ठेषु नष्टम्, अस्थिषु लक्षयेत् ॥१३॥

अस्थ्यामभ्यञ्जनस्वेदवधपोडनमर्दनैः ।

प्रसारणाकुंचनतः, संधिनष्टं तथाऽस्थिवत् ॥१४॥

नष्टे स्नायुशिगस्रोतोधमनिध्वंसने पथि ।

अभ्युक्तं रथं खड्गचक्रमारोप्य रोगिणम् ॥१५॥

शीघ्रं नयेत्ततस्तस्य<sup>२</sup> संरभाच्छल्यमादिशेत् ।

मर्मनष्टं पृषङ्गोक्तं<sup>३</sup> तेषां मामादिसंभ्रमात् ॥१६॥

नष्टशल्यस्यसामान्यं लक्षणम्—

सामान्येन सशल्यं तु क्षात्रिण्या क्रियया मरुक् ।

शल्यसंस्थानं ज्ञानम्—

वृत्तं पृष्ठं चतुष्कोणं त्रिपुटं<sup>४</sup> च समासतः ॥१७॥

महश्च शल्यसंस्थानं वृणाकुल्या विभावयेत् ।

शल्यमाहरणोपायकथनम्—

तेषामाहरणोपायौ प्रतिलोमानुलोमकौ ॥१८॥

<sup>१</sup>भर्वाचीनपराचीने निर्हरेत्तद्विपर्ययात् ।

१ तद्वन्मांसप्रनष्टवत् । २ संरभात्सोभात् । ३ तेषां मर्मणाम् । ४ त्रिपुट-  
त्रिकोणम् । ५ तेषां घट्यानाम् । प्रतिलोमः—प्रवेशमार्गेणोवाहरणम्, अनुलो-  
मस्तद्विपरीतः । ६ तयोः प्रतिलोमानुलोमयोविपर्ययस्तस्मात् । भर्वाचीनं नातिदूर-  
प्रविष्टं शरीरस्पर्शभागस्मितं शल्यं प्रतिलोमं प्रवेशमार्गेणोवाहरेत् । पराचीनं-  
दूरप्रविष्टं कायस्य परार्धनिर्गतं शल्यमनुलोमप्रेतनदेशेनानयेत् । तिर्यग्गतं शल्यं  
यतोमस्माच्छरीरप्रदेशाच्चिन्वा मुक्ताहार्यं ततस्तस्माच्छरीरप्रदेशात्स्वमासादि  
छित्वाहरेत् । निर्पात्यमितस्तेतस्को विचाल्याहार्यम् ।

॥ सुखाहार्यं यतश्चित्त्वा ततस्तिर्यग्गतं हरेत् ॥१९॥

शल्यं न निर्घाल्यपुनः कक्षादंशणुपाश्वर्यम् ।

प्रतिलोममनुत्तुङ्गं ह्येयं पृष्ठमुखं च यत् ॥२०॥

॥ शल्यविशेषस्याहरणनिषेधः—

॥ नैवाहरेद्विशल्यघ्नं नष्टं वा निरुद्धवम् ।

आहरणं प्रकारः—

॥ ॥ अपाऽहरेत्करप्राप्यं करेणैव<sup>१</sup>

इतरत्पुनः ॥२१॥

॥ दृश्यं सिंहाहिमकरवर्माकर्कटकाननैः ।

अदृश्यं व्रणसंस्थानादप्रीतुं शक्यते यतः ॥२२॥

॥ कंकभृंगाह्वकुररशराशोबायसाननं ।

संदंशाम्पां त्वगादिस्थम्

॥ तानाम्पां शुपिरं हरेत् ॥२३॥

शुपिरस्थं तु नलकैः<sup>२</sup>

क्षेपं क्षेप्यंथाययम् ।

शस्त्रेण वा विशस्रनादि—

॥ शस्त्रेण वा विशस्याऽशौ, ततो निर्मोहितं व्रणम् ॥२४॥

हृत्वा घृतेन संस्वेद्य वद्ध्वाऽपारिक्रमादिशेत् ।

सिरास्नायुविलम्बं तु चालयित्वा शलाकया ॥२५॥

हृदये संस्थितं शल्यं त्रासितस्य हिमावुना ।

ततः स्थानातरं प्रातमाहरेत्तद्यथाययम् ॥२६॥

यथा मार्गं दुरावर्यमन्यतोऽप्येवमाहरेत् ।

अस्थिगतशल्योहरणोपायः—

अस्थिशट्पटे नरं पद्म्यां पीडयित्वा विनिहरेत् ॥२७॥

१ इतरत्पुनःप्राप्यम् । २ नलकैः नाडीघनैः । क्षेप्यंश्वः क्षेपं शल्यं

यथायोगमाहरेत् विशस्य धित्वा ।

इत्यशक्ये सुबलिभिः सुगृहीतस्य क्रिकरैः ।  
 तथाऽप्यशक्ये 'वारम्' वक्त्रीकृत्य घनुर्ज्या ॥२८॥  
 सुबद्धं चवनचटके बध्नीयात्पुगमाहितः ।  
 सुसंयतस्य पंचांग्या बाजिनः कशयाऽयं तम् ॥२९॥  
 ताडयेदिति मूर्धनं वेगेन न्नमय ॥ यथा ।  
 उद्धरेच्छल्यम्, एवं वा शास्त्रायाः कलयेत्तरोः ॥३०॥  
 बद्ध्या दुर्घलवारंगं कुशानिः शल्यमाहरेत् ।  
 श्वयथुमस्तवारंगं शोफनुत्पीड्य युक्तितः ॥३१॥

अक्षुण्डितानुत्तुङ्गितशल्याहरणम्—  
 मुद्गराहतया नाड्या निघात्योत्तुङ्गितं हरेत् ।  
 तैरेव नाऽन्येन्मार्गममार्गोत्तुङ्गितं तु यत् ॥३२॥

अकर्णनिष्कर्णशल्याहरणम्—  
 मृदित्वा कर्णनां कर्णं नाड्यास्येन निपुण्य वा ।  
 मयस्कातेन निष्कर्णं विवृतास्यमृजुन्धितम् ॥३३॥

पक्षाशयगतशल्याहरणम्—  
 पक्षाशयगतं शल्यं विरेकेण विनिहरेत् ।

दुष्टवातादिशल्यनिर्द्धारणम्—  
 दुष्टवातविषस्तग्न्यरक्तातोषादि जूपणैः ॥३४॥

कंठगतशल्याहरणम्—  
 कंठस्रोतोऽगते शल्ये सूत्रं कठिं प्रवेशयेत् ।  
 विसेनात्ते ततः शल्ये विभक्तं सूत्रं मम हरेत् ॥३५॥  
 नाड्याऽग्नितापितां शिष्ट्या शलाकामप्सिरोरुताम् ।  
 भानयेज्जातुषं कंठात्,

जलुदिश्वामजातुषम् ॥३६॥  
 केशोदुकेन पीतेन द्रवैः कंठकमाक्षिपेत् ।

१ वारङ्गः शल्यस्य ग्रहणस्थानम् 'मुठिया' । कटकं "रागाय" इतिभाषा ।  
 कशा "कोड़ा" इतिभाषा । तैर्मुद्गरादिभिः । २ विभक्तं कमलतन्तुः ।

सुखाहार्यं यतश्चित्वा ततस्तिर्यग्भर्तुं हरेत् ॥१९॥  
 स्रव्यं न निर्घातियुतः कक्षादंशेणान्ध्रगम् ।  
 प्रतिलोममनुत्तुङ्गं छेद्यं पृथुमुखं च यत् ॥२०॥

शल्यविशेषस्याहरणनिषेधः—

नैवाहरेद्विशदघ्नं नष्टं वा निहरद्वयम् ।

आहरण प्रकारः—

यथाऽहरेत्करप्राप्यं करेणैव<sup>१</sup>

इतरत्पुनः ॥२१॥

हर्यं गिहाहिमकरवामिकर्कटकामनः ।

अहर्यं कणसंस्थानादप्रीतुं शक्यते यतः ॥२२॥

कंकभृंगाह्वकुररशरीरायसाननं ।

संदंशाम्बा त्वगादिस्थम्

तानाम्बा शुपिरं हरेत् ॥२३॥

शुपिरस्थं तु नलकैः<sup>२</sup>

शेषं शोषैर्यथायमम् ।

शस्त्रेण वा विशासनादि—

शस्त्रेण वा विशासनाऽदौ, ततो निर्बोहितं ब्रणम् ॥२४॥

पूरदा घृतेन सस्वेद्यं वद्व्याऽपचारिकमादिशेत् ।

सिरास्तापुविलम्बनं तु चालयित्वा शलाकया ॥२५॥

हृदये सस्थितं शल्यं त्रासितस्य हिमावुता ।

ततः स्थानातरे प्राप्तमाहरेत्तद्यथायमम् ॥२६॥

यथापामं दुराकर्षमन्यतोऽप्येवमाहरेत् ।

अस्थिगतशल्यहरणोपायः—

अस्थिदृष्टे नरं पद्म्यां पीडयित्वा विनिहरेत् ॥२७॥

१ करप्राप्यं प्राप्यम् । २ नलकैः नाडीयन्त्रैः । शोषैर्यन्त्रैः शेषं  
 यथायोगमाहरेत् विशस्य क्षित्वा ।

इत्यश्वये सुचक्षिभिः सुगृहीतस्य किकरं ।

तथाऽप्यश्वये वारणं वक्रोक्तस्य धनुर्व्यापा ॥२८॥

१. सुवद्धं वक्त्रवटके बध्नीयात्सुममाहितः ।

मुसंयतस्य पंचाग्या बाजिनः कशयाऽयं तम् ॥२९॥

ताडयेदिति मूर्धानं वेगेन न्ममयत् यथा ।

उद्धरेच्छल्यम्, एवं वा शाखाया वलयेत्तरोः ॥३०॥

बद्ध्वा दुर्बलवारंगं कुशाभिः शल्यमाहरेत् ।

श्वथुमस्त्रवारंगं शोफनुरपोह्य मुक्तिः ॥३१॥

अक्षुंडितानुक्षुंडितशल्याहरणम्—

मुद्गराहतया नाड्या निघात्प्योत्तुङ्गितं हरेत् ।

तैरेव चाऽन्येन्मार्गममार्गोत्तुङ्गितं तु यत् ॥३२॥

मकर्णनिष्कर्णशल्याहरणम्—

मृदित्वा कणिना कर्णं नाड्यास्वेन निगृह्य वा ।

मयस्कातेन निष्कर्णं विवृताभ्यमुज्जुस्थितम् ॥३३॥

पकाशयगतशल्याहरणम्—

पकाशयगतं शल्यं विरेकेण विनिर्हरेत् ।

दुष्टवातादिशल्यनिर्हणम्—

दुष्टवातविपस्तम्परक्ततोमादि चूपणैः ॥३४॥

कंठगतशल्याहरणम्—

कंठस्रोतोगते शल्ये मूत्रं कंठे प्रवेशयेत् ।

विसेनात्ते तत्र शल्ये विसृष्टं मम हरेत् ॥३५॥

नाड्याऽग्नितापिता क्षिप्त्वा शलाकामप्स्थिरोद्धृताम् ।

भानयेज्जातुपं कंठात्,

जतुदिग्धामजातुपम् ॥३६॥

केशोद्धुकेन पीनेन द्रवैः कंटकमाक्षिपेत् ।

१ वारङ्गः शल्यस्य ग्रहणस्थानम् 'मुठिया' । कटकं "लगाप" इतिभाषा ।  
कशा "कोड़ा" इतिभाषा । तंमुद्गरादिभिः । २ विसं कम्पलतन्तुः ।

सहसा सूत्रबद्धेन यमतः, तेन चेतस्त् ॥३७॥

अशक्यं मुसनासाम्यामाहर्तुं परतो नुदेत् ।

अप्यानस्कवधाताभ्यां ग्रासशल्यं प्रवेशयेत् ॥३८॥

**अक्षिप्रणगतशल्याहरणम्—**

मूढमाक्षिप्रणशल्यानि क्षीमनातजलेर्हरेत् ।

जलमग्नस्योदरस्थजलाहरणोपायः—

अपां पूर्णं विधुनुयादवाविशरसमायतम् ॥३९॥

वामयेद्वाऽऽपुर्णं भस्मराशौ वा निखनेन्नरम् ।

**कर्णगतजलाहरणम्—**

कर्णेऽपुर्णं हस्तेन मथित्वा तलवारिणो ॥४०॥

क्षिपेदधोमुखं कर्णं हन्याद्वा चूपयेत् वा ।

**कर्णगतकीटाहरणम्—**

कीटे क्षीतो गते कर्णं पूरयेत्तावणायुना ॥४१॥

शुक्तेन वा सुखोप्योन, मृते, बलेददरो विधिः ।

**शल्यानां देहोऽभ्याविलयः—**

जातुर्षं हेमरूप्यादिधातुर्षं च चिःस्थितम् ॥ ४२ ॥

ऊष्मणा प्रायणः शल्यं देहजेन विलीयते ।

**मृद्वेष्टधादीनि विलयः—**

मृद्वेष्टुदारुशृङ्गात्स्थिदंतवालोपलानि च ॥ ४३ ॥

शल्यानि न विधोयन्ते शरीरे मृत्प्रयानि वा ।

**विषाणादिशल्यस्य विलयाभावादि—**

विषाणवेष्टव्यमस्तालदारुशल्यं चिरादपि ॥ ४४ ॥

प्रायो निर्मुन्यते तदि पचत्याशु पलासबी ।

**मांसावगाढशल्यहरणप्रकारः—**

शल्ये मांसावगाढे च स देशो न विदह्यते ॥ ४५ ॥



ततस्तं मर्दनस्वेदशद्विकर्षणवृहणः ।

तोदण्डोपनाहपानान्नघनशस्त्रपदाकर्नः ॥ ४६ ॥

पाचयित्वा हरेच्छल्यं पाटनैपणभेदनैः ।

संक्षेपेणशल्यहरण प्रकारः—

शल्यप्रदेशयंत्राणामवेक्ष्य बहुरूताम् ।

संस्तरुपायैर्यतिमाधु शल्यं विद्यात्तथा हरेत् ॥ ४७ ॥

## एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः शस्त्रकर्मविधिमध्यायं अशाक्यास्यामः ।

श्वपथूपक्रमादि—

"क्षणः संजायते प्रायः पाकाच्छ्वयधुपूर्वकात् ।

तमेवोपचरेत्तस्माद्रश्मिपाकं प्रयत्नतः ॥ १ ॥

सुशीनलेपसेकाश्रमोक्षसंशोधनादिभिः ।

आमशोथ लक्षणम्—

शोकोऽरोऽप्योष्णरूक्पावः भवणं कठिनः स्थिरः ॥ २ ॥

पञ्चदशानशाथलक्षणम्—

पञ्चमानां विवर्णस्तु रागो वक्षितरिवाततः ।

स्फुटतीव्र सनिस्तोदः सागमर्दविजृम्भिकः ॥ ३ ॥

संरमावृविदाहोपानृद्धस्वरानिद्रतान्धितः ।

स्त्वानं विप्यदयत्याज्य क्षणवत्पर्यनासहः ॥ ४ ॥

पक्षशोथलक्षणम्—

पक्वेऽन्वेगता म्यानिः पांडुता वलिर्ममवः ।

नामोऽनेपून्निर्मध्ये कंदूलोष्णादिमार्दवम् ॥ ५ ॥

स्पृष्टे पूयस्य संचारो भवेद्भस्ताविवांभसः ।

शोथपाककालेसर्वदोषकोपः—

शूलं नर्तेर्जनितादाहः पित्ताच्छोफः कफोदयात् ॥ ६ ॥

रागो रक्ताच्च पाकः स्यादतो दापेः सञ्शोणितः ।

अधिकपक्वशोथलक्षणम्—

पाकेऽतिवृत्ते मुखरस्तनुत्वग्दोषमक्षितः ॥ ७ ॥

बलीभिराचितः श्यावः शौर्यमाणतनूरुहः ।

। रक्तपाव लक्षणम्—

कफजेषु तु शोफेषु गंभीरं पाकमेत्यसृक् ॥ ८ ॥

पक्वसिर्गं ततोऽस्पष्टं यत्र स्याच्छीतशोफता ।

रक्तसादृश्यं कञ्जोऽरत्वं यत्र स्पर्शरक्तमववत् ॥ ९ ॥

रक्तपाकमिति नूयात्त प्राज्ञो मुक्तसंशयः ।

श्वथोदारणादि—

मलसत्त्वेऽवृत्ते बाले पाके चाऽऽत्यर्थमुद्धतं ॥ १० ॥

१ दारुणं मर्मसंघ्यादिस्थिते, चाऽ यत्र पाटनम् ।

आमशाथच्छेदेरोगाः—

आमच्छेदे सिरास्नायुभ्यापदोऽसृगतिस्त्रुतिः ॥ ११ ॥

रजोऽतिवृद्धिर्दरुण विमर्षो वा क्षतोद्भवः ।

पक्षशोथाच्छेदेरोगाः—

तिष्ठन्तः पुनः पूयः सिरास्नायुसृगामिषम् ॥ १२ ॥

विवृद्धो दहति क्षिप्रं तृणोऽनुषं नृणामिवानलः ।

आमच्छेदकादेनिन्दा—

यस्मिन्नस्याममज्ञानाद्यञ्च पक्षमुपेक्षते ॥ १३ ॥

श्वपचाविव विज्ञेयो तावनिश्चितकारिणो ।

शस्त्रकर्मणः पूर्वभोजनव्यवस्था—

प्राक् शस्त्रकर्मणश्चेष्टं भोजयेदन्नमातुरम् ॥ १४ ॥

पानपं पाययेन्मद्य तीक्ष्णं, यो वेदनाक्षमः ।

१ दारुणं भेदनं दारुणद्रव्यं । पाटनं दारुणं शस्त्रेण । अन्यत्र यद्विधेयं  
दारुणं तदितरद्रव्ये, इत्यर्थः । २ तृणोऽनुषं नृणामिव

न मूर्धन्यग्रसंयोगान्मत्तः शस्त्रं न बुध्यते ॥१५॥

अन्यत्र मूढगर्भादिभिरासुरोदरातुरात् ।

शस्त्रनिक्षेपप्रकारादि—

अथाऽहजोपकरणं वंशः प्राङ्मुखमातुरम् ॥१६॥

संमुखो यंत्रमित्वाऽशु न्यस्येन्मर्मादि वर्जयम् ।

अनुलोमं मुनिश्चितं शस्त्रमायुधदर्शनात् ॥१७॥

सकृदेवाऽऽहरेत्तच्च<sup>१</sup>, पाके तु मुमहत्त्वपि

पाटयेद् द्व्यङ्गुलं सम्यग्द्वयं गुणश्र्यङ्गुलातरम् । ॥१८॥

एपित्वा सम्यगेपिण्या परितः मुनिरूपितम् ।

अङ्गुलीनालबालैर्वा यथादेश यथाशयम् ॥१९॥

यतो गतो गतिं विद्यादुन्मगो यत्र यत्र च ।

तत्र तत्र अणं कुर्यात्सुविभक्तं निराशयम् ॥२०॥

आयतं च विशालं च यथा दोषो न तिष्ठति ।

शस्त्रकर्मणि वैद्यगुणाः—

शीर्षमाशुक्रिया तीक्ष्णं शस्त्रमम्बेदवेपथुः ॥२१॥

मसंभोदश्च वैद्यस्य शस्त्रकर्मणि शायते ।

ललाटादांतिर्यक्छेदः—

तिर्यक्छिद्याल्लनाटभ्रूदंतवेष्टकजग्रणि ॥२२॥

कुभिकक्षाक्षिभूटोष्ठरूपोलगलवक्षणे ।

अन्यत्र छेदनातिर्यक् सिरास्नायुधिपाटनम् ॥२३॥

शस्त्रेऽवचारिते कर्तव्यविधिः—

शस्त्रेऽवचारिते वार्त्तिमः शोताभोमिश्र रोमिणम् ।

१—मूढगर्भादिभिरासुरेषु मद्यनानभिष्टमीजनं च निषिद्धमित्यर्थः ।

२—प्रायुधदर्शनपर्यन्तमाहरेत् तत्र अणुं स्यात्पञ्चमम् । सकृदेव शस्त्रं न्यस्येत्पा-  
तयेन बहून् वारान् । द्व्यङ्गुलमङ्गुलद्वयप्रमाणं यत्र कुर्यान्नाधिकम् । अन्यस्मिन्  
यस्य करणोपे द्व्यङ्गुलं श्र्यङ्गुलं वान्तरीकृत्यान् यत्र कुर्यात्तसमीपम् । २—एपित्वा-  
ङ्गुली बालबालैर्वा परितः मुनिरूपितं पर्यालोचितम् ।

- आश्वास्य, परितोऽगुत्या परिपीड्य ग्रन्थं, ततः ॥२४॥  
 क्षालयित्वा कपायेण, प्लोतेनांभोऽनीय च ।  
 गुग्गुल्वगुहसिद्धार्थं हिंगुसर्जरसान्वितः ॥२५॥  
 धूपयेत्पटुपट्टग्रंथानि बन्धनं धूतपुनः ।  
 तिलकल्काज्यमधुभिर्ययास्वं भेषजेन च ॥२६॥  
 दिग्मां वर्नि ततो दद्यात्तरे वाऽष्टादयेन च ताम् ।  
 घृतावर्तैः सक्तुमिधोर्ध्वम् घनां कवलिकां ततः ॥२७॥  
 निषाय युक्त्या, बन्धीयात्पट्टेन सुःमाहितम् ।  
 पार्श्वे सध्येऽनसध्ये वा, नाऽवस्तान्धं चोपरि ॥२८॥

### हितपट्टादिकथनम्—

धुबिमूक्षमहदाः पट्टाः कवल्यः सत्रिकेशिकाः ।  
 धूपिता मृदवः श्लक्ष्णा निर्वलीका ग्रन्थे हिताः ॥२९॥

### अणिनोरक्षाकरणम्—

- कुर्वीताजंतरं तस्य रक्षां रक्षोनिषिद्धये ।  
 बलिं चोपहरेत्तेभ्यः, सश मूर्जानि चारयेत् ॥३०॥  
 तक्ष्मी गुह्यामनिगुह्यां जटिला ब्रह्मचारिणीम् ।  
 वचां छत्रामतिच्छत्रां दूर्वा सिद्धार्थकानपि ॥३१॥

१—प्लोतेन कार्पासादिजवस्त्रखण्डेन । गुग्गुल्वदिनिम्बपत्रान्तर्धूतप्लुतं धूपयेच्च । वतिवस्त्रमयो तिलादिमिलिता यद्दोषजो ग्रन्थः स्यात्तदोषघ्नं च लिताम् । यातग्रन्थे तिलकल्कलितां पित्तजे घृतेन कफजे च मधुना । एवम्भूतां पति ग्रन्थान्तः प्रवेशयेत् । तां वर्तितः तिलकल्कादिभिराष्टादयेन च । ऊर्ध्वं घृतयुक्तैः सक्तुमिधोर्ध्वं च दद्यात् । कवलिका-वस्त्रपट्टिका विकेशिका-ग्रन्थान्तः प्रवेश्या वतिः । ३—तस्य अणिनः । ४—तेभ्यो रक्षोभ्यः । ५—तक्ष्मी-शमी, हरिद्रा, स्थल-पद्मिनी, विष्णुक्रान्ता, लक्ष्मणा । गुह्या-शास्त्रपणीं अतिगुह्या-पृथिव्यपणीं । जटिला-मासी । ब्रह्मचारिणी-ब्राह्मण्यष्टिना सृष्टिदतिकेत्तपरे । छत्रातिच्छत्रे-द्रोणपृष्ठीद्वय मितिदल्लहः । छत्रा-शतपुष्पा अतिच्छत्रा-विषाणिकेत्तपरेदत्तः । सिद्धार्थको गोरमपर्वः ।

### अग्निःपथ्यापथ्यनिरूपणम्—

ततः स्नेहदिने<sup>१</sup> होक्तं तस्याऽज्वरं ममादिशेत् ।  
 दिवास्वप्नो व्रणे कङ्करागद्वक्शोफसूयवृत् । ॥३२॥  
 स्त्रीणां तु स्मृतिसंस्पर्शदर्शनंश्चलितेद्युते ।  
 शूक्रे, व्यवायजाप् दोषानस<sup>२</sup>सर्गेऽप्यवाप्नुयात् ॥३३॥

### अग्निभोजन व्यवस्था—

भोजनं तु यथासामर्थ्यं यवगोधूमपट्टकाः ।  
 मसूरमूदगतु<sup>३</sup>रीजीवंतीमुनिपणकाः ॥३४॥  
 बालमूलकवातकितंहुमीयकवास्तु<sup>४</sup>म् ।  
 कारवेल्लकककौटपटोलकटुकाफलम् ॥३५॥  
 सैधवं दाडिमं धात्रां घृतं तप्तहिमं जलम् ।  
 जीर्णशायोदनं स्निग्धमल्पमुष्णं द्रवोत्तरम् ॥३६॥  
 भुजानो जागर्त्तमांसि. शीघ्रं द्रवमपोहति ।

### अग्निोऽर्जाणो दोषाः—

अशितं मादया काले पथ्यं याति जरा मुषम् ॥३७॥  
 अजोर्णे त्वनिलादीना विभ्रमो बलवान् भवेत् ।  
 ततः शोफकजापाकदाहानाहानवाप्नुयात् ॥३८॥

### अग्निोऽस्याज्याः—

नवबाभ्यं तिलान् मापान् मर्च्चं मांसं त्वजगलम् ।  
 दीरेभु वक्रुतीरम्लं लवणं बटुकं त्यजेत् ॥३९॥  
 मरुवाऽप्यदपि विष्टंभि विदाहं गुरुं शोतलम् ।  
 वर्गोऽयं नवधान्यादिर्वाग्निः सर्वदोषवृत् ॥४०॥

### अग्निो मद्यनियेधः—

मद्यं तीक्ष्णोष्णरूक्षाम्नामांशु व्यापादयेद्व्रणम् ।

१ स्नेहदिवस्य स्नेहपानदिवस्येहा चेष्टा तत्रोक्तमाचारम् "उष्णोदकोपचारे  
 स्यात्" इत्यादिकम् । २ स्त्रीणामसम्भोगेऽग्निः । ३ तुवरी 'अरहर' इति भाषा ।

### वालोरशरैर्व्यजनादि—

वालोरशरैश्च <sup>१</sup>वीज्येत न चैनं परिषट्टयेत् ॥४१॥

न तुदेघ्न च कङ्कयेच्चेष्टमानश्च पालयेत् ।

स्निग्धवृद्धद्विजातीना कथाः शृण्वन्मनःप्रियाः ॥४२॥

प्राशावान् व्याधिमोक्षाय क्षिप्रं ग्रणपोहति ।

### तृतीयदिनेपुनः क्षालनादि—

तृतीयेऽह्नि पुनः कुर्यान्नृणकर्म च पूर्ववत् <sup>२</sup> ॥४३॥

### द्वितीयदिने प्रक्षालनादिनिषेधः—

प्रक्षालनादि दिवसे द्वितीये नाचरेत्

<sup>३</sup>तथा ।

तीक्ष्णयो विप्रयितश्चिरात्संरोहति श्रणः ॥४४॥

### ग्रणान्तदीर्यमान धर्तिका विषयः—

स्निग्धा रुक्षा रजया गाढा दुर्गन्धस्तथा च विकेशिकाम् ।

ग्रणे न दद्यात्कल्कं च

स्नेहात्वलेदो विवर्धते ॥४५॥

मांसच्छेदोऽतिरुग्णोऽप्याद्दरुणं घोरितागमः ।

श्लपातिगाढदुर्गन्धसिर्गणवत्सर्ववर्षणम् ॥४६॥

### विकेशिकादानफलम्—

संप्रतिमांसं सौत्सर्गं मगतिं पूयणभिरुभ ।

ग्रणं विशोधयेच्छ्रेष्ठं स्थिता ह्यंतद्विकेशिका ॥४७॥

### पाचनयोग्यत्रणः—

<sup>४</sup>व्यम्लं तु पाचितं शोफं पाचनैः समुपाचरेत् ।

शोचनैश्च नाहैश्च नातिग्रणविरोधिभिः ॥४८॥

१ वीज्येत पवनं कुर्यात् । एनं ग्रणम् । २ पूर्वेषु, ग्रणकर्मणा तुल्यं प्रक्षालनादि । ३ तथा द्वितीये दिने प्रक्षालनादिकर्मणा कृतेन । विप्रयितो बहुभिर्ग्रामिभिर्गुतः । ४ व्यम्लं विदग्धवत् ।

### सीव्यव्रणाः—

सद्यः सद्योव्रणान् सीव्येद्वितृतानभिघातजाम् ।  
मदोनाम् लिखिताम् ग्रणीन् ह्रस्वाः पालोच्च कर्णयोः ॥४९॥  
शिरोस्त्रिकूटं त्रिषाष्टगडङ्गुलौहवाहृषु ।  
ग्रीवात्स्र्वाटमुक्त्रस्त्रिङ्गुलौहपायूदरादिषु ॥५०॥  
गंभीरेषु प्रदेशेषु मासलेष्वचलेषु च ।

### सीयननिषेधः—

न तु बलनकक्षादावल्पमागचले व्रणाम् ॥५१॥  
वायुनिर्वाहिणः शत्यग्रमन्धारविपाग्निजाम् ।  
सीवनात्पूर्वं रणप्रकारः—  
सीव्येष्वलास्थिशुष्कास्तृणरोमापनीय तु ॥५२॥  
प्रलम्बि मांसं विच्छिन्नं निवेश्य स्थनिवेशने ।  
संश्लिष्टवस्थिते रवने स्नात्वा मूत्रेण वल्कली ॥५३॥  
सीव्येन दूरे नाऽमग्रे शृङ्गग्रात् न वा बहु ।

### आतसान्त्वनपूर्वकबंधादि—

मांस्त्वयित्वा ततश्चार्तं व्रणे मधुघृतद्रवैः ॥५४॥  
अजनशोमज<sup>१</sup>मपीकलिनीमज्जकीफलैः ।  
सरोध्रमधुकैदिग्ये युञ्ज्याद्वन्वादि पूर्ववत् ॥५५॥

### व्रणविशेषेसीयनप्रकारः—

। व्रणो निःशोणितोद्यो यः किञ्चिदेवावलिख्य तम् ।  
मज्जातरुपरि<sup>२</sup> सी येतसधानं ह्यस्य<sup>३</sup> शोणितम् ॥५६॥

### देशादीन्वीक्ष्यवर्धनयोगः—

बंधनानि तु देशादीन् वीक्ष्य युञ्जोत तेषु च ।  
<sup>१</sup>भाविक्काजिनकौजेयमुष्णं शोमं तु क्षीतलम् ॥५७॥  
शीतोष्णं तूतसंज्ञानवापिमस्नायुवल्जम् ।

१ शोमजमपी-दग्धकोशेयवस्त्रभस्म । २ अथ व्रणस्य । ३ भाविकमूर्ण-  
मयम् । भजिनं चर्म । तूतसंज्ञानः कर्पासप्रात्मजमूत्रनिमित्तम् । त्रपुवल्जम् ।

ताम्रायस्त्रुसोसानि ग्रणे भेदः कफाधिके ॥५८॥  
मणे च मुंज्यास्फलक चर्मयत्ककुशादि च ।

### पञ्चदशबन्धाः—

स्वनामानुगताकारा बंधास्तु दश पंच च ॥५९॥  
कोशस्वस्तिकमुत्तोलोचनदामानुवेत्तितम् ।  
लट्वाविबन्धस्यगिकावितानोत्सगगोफणाः ॥६०॥  
यमकं मंडलाख्यं च पचागो चैति योजयेत् ।  
यो यत्र सुनिविष्टः स्यात् तेषां तत्र बुद्धिमां ॥६१॥  
बन्धनानां गाढशिथिलत्वादि—  
बन्धीयाद्गाढमूर स्फक्कक्षावक्षणमूर्धसु ।  
‘शास्त्रावदनकर्णोर, पृष्ठपार्श्वगतोदरे ॥६२॥  
सर्प मेहनमुष्के च

नेत्रे संधिषु च श्लथम् ।

### बन्धेष्विशेषता—

बन्धीयाच्छिथिलस्थाने वातश्लेष्मोद्भवे समम् ॥६३॥  
गाढमेव समस्थाने, भृशं गाढं तदा श्रये ।

### शीताक्षौ मोक्षण प्रकारः—

शीते वसंते च तथा मोक्षणीयो व्यहात्श्महात् ॥६४॥  
पित्तरक्तोत्पयोर्वर्षो गाढस्थाने समो मतः ।  
समस्थाने श्लथा, नैव शिथिलस्याशये तथा ॥६५॥  
सार्यप्रातस्तयोर्मोक्षो ग्रीष्मे शरदि ज्ञेयते ।

### अथ द्वादशबन्धोपाः—

अवद्धो दंशमशकशीतवातादिपीडितः ॥६६॥  
मुष्टीभवेच्चिरं पाड्यं न तिष्ठेत्स्नेहभेषजम् ।

१ ऊर्वादिपुगाढं शाखादिषु सर्प नेत्रादिषुच श्लथं शिथिलं बन्धीयात् ।  
२ तदाश्रयेगाढाश्रये । ३ शिथिलस्याशये नैव बन्धीयात् । तयोः पित्तरक्तो-  
त्पयोः । ४ अत्र बन्धवहितेद्रयो ।



पृच्छेण शुद्धिं रुद्धिं वा याति हृदो विवर्णताम् ॥६७॥

वद्वज्रणगुणाः—

वद्वस्तु चूणितो भग्नो विश्लिष्टः पाटितोऽपि वा ।

छिन्नस्नायुसिरोऽग्राशु सुखं मंरोहति व्रणः ॥६८॥

उत्थानशयनाद्यासु सर्वेहासु न पीडयेन् ।

उद्धृतोष्ठः समुत्पन्नो विपमः कठिनोऽतिरक् ॥६९॥

ममो मृदुररक् शोथं व्रणः शुष्यति रोहति ।

स्थिर व्रणादोनामौषधादौ विशेषः—

स्थिराणामल्पमसाना रोक्यादनुपरोहताम् ॥७०॥

प्रच्छाद्यमोपमं पदैर्यथादोषं यद्यनु च ।

मजीर्णतृणाऽच्छिद्रैः समताम्बुनिवेशितैः ॥७१॥

घौतैरर्ककणैः क्षीरभूर्जाजुनकदम्बजैः ।

अथन्याव्रणाः—

शुष्किनामग्निदग्धाना पिटिका मधुमेहिनाम् ॥७२॥

कणिकाज्ज्वोरुविषे क्षारदग्धा विपाम्विताः ।

न माम्पाके च बघ्नीयात्तुदपाके च दाहणे ॥७३॥

पीर्यमाणाः सरुदाहाः क्षीकावस्थाविसर्पिणः ।

सकृपीणां व्रणानां चिकित्सा—

अरक्षया व्रणे यस्मिन् मदिका निसिपेत्कुमोम् ॥७४॥

ते भक्षयंतः कुर्वन्ति रुक्ताशोकास्त्रयंश्वाम् ।

गुरसादि प्रयुजीत तत्र धावनपूरणे ॥७५॥

सप्तार्णकरजार्जनिवराजादनत्वचः ।

गोमूत्रकल्पितो लेपः मेरुः क्षारावुना हितः ॥७६॥

प्रच्छाद्य मासपेशा वा व्रणं ता<sup>१</sup>नाद् निर्हरेद् ।

ब्रणस्य त्वरया नोपरोहणम्—

न चैनं<sup>१</sup> त्वरमाणोऽनःसदोपमुपरोहयेत् ॥७७॥

सोऽप्येनाप्यपचारेण भूयो विकुरुते यतः ।

रूढेऽप्यजीर्णादि विवर्जनम्—

रूढेऽप्यजीर्णव्यायामगन्वायादीन् विवर्जयेत् ॥७८॥

हृषं क्रोधं भयं वापि यावदास्थिर्यसंभवात् ।

आदरेणानुवर्त्योऽयं मासान्पट् सप्त वा विधिः ॥७९॥

ब्रणेऽन्यरोगोत्पत्तौ चिकित्सोपदेशः—

उत्पद्यमानामु च साधु तासु

<sup>२</sup>वार्तासु दोषादिवलानुसारी ।

तैस्तैरुपायैः प्रयतश्चिकित्स-

दालोचयम् विस्तरमुत्तरोक्तम् ॥८०॥

## त्रिंशोऽध्यायः :

क्षयाश्लः क्षाराग्निजर्मन्निभिर्मध्यायं व्याख्यास्यामः ।

क्षारस्य श्रेष्ठता—

"मयंशस्त्रानुशस्त्राणा क्षारः श्रेष्ठो,

महनि यत् ।

देहमेघादिकृर्माणि कुरुते विषमेश्वरि ॥१॥

दुःखावचार्यजग्नेषु ते<sup>३</sup>न तिद्धिमवाप्नु च ।

अतिचन्द्रेषु रोगेषु, यच्च पानेज्जि गृज्यते ॥२॥

## पेयक्षारस्योपयोगः—

सपेयोऽर्शोऽग्निपादाश्मगुल्मोदरगरादिषु ।

## मषादिपुक्षारयोजना—

योज्यः साधान्मपश्चित्रवाह्याशःकुष्ठमुतिषु ॥३॥

भण्डेरावुर्दण्धिदुष्टनाडोन्नरादिषु ।

## क्षारवर्जनम्—

न तूभयोऽपि योवतव्यः पित्तं रक्ते बलेऽवले ॥४॥

ज्वरेऽतिमारे हृन्मूर्धरोगे पाह्वामयेऽह्वी ।

तिमिरे वृत्तसंमुखौ श्वयथौ सर्वगात्रगे ॥५॥

भीरुमभिष्युत्तुमतीप्रोद्धत्तफलयोनिषु ।

अजीर्णोऽग्ने शिशी वृद्धे घमनोऽधिभर्मसु ॥६॥

तरणास्थिसिरास्नायुसेवनीगलनाभिषु ।

दोऽल्पमासे धूपणमेदृक्षांतोनखांतरे ॥७॥

वर्त्मरोगाहनेऽण्णोश्च शीतवर्षोऽण्णिदिने ।

## क्षारनिर्माण प्रकारः—

१कालमुष्णकशम्याककदलीपारिमदकाम् ॥८॥

अध्वनःसुमहावृक्षपलाशास्फोटवृक्षकाम् ।

हृद्वृक्षार्कपूतीकनक्तमालाश्चमारकाम् ॥९॥

काकज्वामपामार्गमग्निर्मथाग्निमित्त्वकाम् ।

साद्राम् समूलशाखादीम् खंडशः परिकल्पितान् ॥१०॥

कोशातकीश्चतस्रश्च शूकालं यवस्य च ।

निवाते निचयीकृत्य पृथगतानि शिलातले ॥११॥

१ उभयोपानलेपनभेदेन द्विविधः । २ प्रकण्ठोमेदवृत्तं फलं रजोहवं यस्या योनेःसाचागौ प्रोदवृत्तफलयोनिः । ३ कालमुष्णकः-मोक्षः "मोक्षा वृक्ष" आस्फोटः कोषिदारः । हृद्वृक्षाऽऽहुतः कोशातकी "तोरई" । पृथक्कालमुष्णकादीम् तथा कोशातकीप्रभृतीषु :

प्रक्षिप्य मुष्ककजये सुषा<sup>१</sup>श्यानि च दीपयेत् ।  
 ततस्तितानां कुंतालैर्दग्ध्वाऽग्नौ विगते पृथक् ॥ १२ ॥  
 कृत्वा सुषाशमनां भस्म द्रोणं त्वितरमस्मनः ।  
 मुष्ककोत्तरमादाय प्रत्येकं जलमूत्रयोः ॥ १३ ॥  
 मालयेदर्धभारेण महता वासमा च तत् ।  
 यावत्पिच्छिनरक्ताच्छ्मस्तीक्ष्णो जातस्तदा च तम् ॥ १४ ॥  
 गृहीत्वा क्षारनिर्त्यर्दं पकेल्लोह्यां विघट्टयम् ।  
 पच्यमाने ततस्तस्मिन्स्ताः सुषाभस्मशर्कराः ॥ १५ ॥  
 क्षुब्धितक्षारपंकशङ्खगामोश्वाऽयनमाजने ।<sup>२</sup>  
 कुर्यान्निषण्णान् बहुशः क्षारोऽयेकृदग्नौग्मिते ॥ १६ ॥  
 निर्वाप्य पिष्ट्वा तेनैव<sup>३</sup> प्रतीचापं चिनिक्षिपेत् ।  
 श्लक्ष्णं शङ्खभण्डिलिगुम्भककपोतजम् ॥ १७ ॥  
 चतुष्पात्यग्निपित्तानमनोह्वालवय्यानि च ।  
 परितः मृतरां चाऽजो दध्यां तमवघट्टयेत् ॥ १८ ॥  
 सवाप्यैश्च यदातिष्ठेद्दुर्दुर्लभहवदनः ।  
 भवतार्यं ततः शीतं यवराशावयोमये ॥ १९ ॥  
 स्थाप्योऽयं मध्यमः क्षारो,  
 निर्वाप्यापनयेत् न तु<sup>४</sup> पिष्ट्वा क्षिपेन्मृदौ ।  
 तीक्ष्णे पूर्ववत् प्रतिवापनम् ॥ २० ॥  
 तथा लांगलिकादतिचित्रकातिविपादवाः ।  
 स्वर्जिकाकनकसोरिहिगुपूतीक<sup>५</sup> पल्लवाः ॥ २१ ॥

१ सुषाश्यानि सुषाशर्कराः । सुषा "जूना" कुन्तालैः काण्डैः । द्रोणमि-  
 तरमस्मनः शम्पाकादिद्वयमस्मनोऽधिकमुष्ककं द्रोणुररिमालम् । मुष्कक-  
 भस्मन उत्तरमपादतां नीतं तेनशम्पाकादीनां चत्वार घ्रादका मुष्ककस्यैक घ्रादक  
 इति हेमाद्रिः । क्षारोत्ये पाच्यक्षारालुडवमितं पृथग्भाजने संस्थाप्यं तस्मिन् ।  
 २ क्षारपङ्क्तुः "सेतस्रदो" इतिमाषा । ३ तेन—क्षारेण । प्रतीचापं प्रक्षेपम् ।  
 ४ मृदोक्षारे सुषादीनि पिष्ट्वा न प्रक्षिपेत् । ५ तीक्ष्णे पूर्ववत्-मध्यमक्षारमदृशम् ।  
 ६ पूतीकः करंजस्तस्यपल्लवाः कोमलत्राणि ।

१ तानपत्री विहं चेति सप्तरात्रात्परं तु ॥ २१ ॥

नीक्षणीऽनिलश्लेष्ममेदोजेष्णवृंदादिषु ॥ २२ ॥

१ मध्येष्वेव च मध्यः

अन्यः पित्तास्रगुदजन्मसु ।

क्षारेबलाधानार्थं क्षाराम्बुप्रक्षेपः—

यत्पार्थ क्षीणजानीये क्षारानु पुनरावहेत् ॥ २३ ॥

क्षारस्यदशगुणाः—

नातिक्षीणो मृदुः श्लक्ष्णः पिच्छिलः शीघ्रगः सितः ।

१ शिखरी मुखनिर्वाप्यो न विप्यंदी न वातिकृक् ॥ २४ ॥

रोगप्रयुक्तक्षारगुणाः—

क्षारो दशगुणः शस्त्रतेजमोरपि १ कर्मकृत् ।

आचूषाद्विधं संरंभाद्वात्रमापीडयति ॥ २५ ॥

सर्वतोऽनुसरत् दोषान्मूलवति मूलतः ।

कर्मकृत्वा गतरजः स्वयमेरोपशम्यति ॥ २६ ॥

क्षारप्रयोगः—

क्षारसाध्ये गदेऽस्त्रिन्नेऽलितेऽग्रावितेऽपवा ।

क्षारं शलाकया दत्त्वा १ प्लोतप्रावृत्तदेहया ॥ २७ ॥

मात्राशतमुपेक्षेत्

अर्शःसुक्षारनिक्षेपादि—

सत्रार्शः स्वावृत्ताननम् ।

हस्तेन यंत्रं कुर्वीत

१ तानपत्री मुमली स-क्षारः । २ मध्येषु अनिलश्लेष्मादिषु एव । ३ शिखरी  
विरस्पितस्पद्रव्यस्योपरिष्ठात्पिटिकोन्मूलं तद्वापु शिखरं "पपड़ी" इति लोके ।  
४ विप्यन्दी स्रुतिमापु । ५ अस्त्रस्य कर्म छेदनादि, तेजसोऽग्नेर्यत्कर्मतत्कृत् ।  
६ प्लोतो वल्लखण्डः ।

सिरादिदाहस्तरेव ।

क्षारवारितानां नाग्निदाहः—

न दहेत्क्षारवारिताम् ।

अतःशल्यासृजां भिन्नकोष्ठां भूरिब्रणानुरान् ॥४४॥

सुदग्धे लेपनादि—

सुदग्धं घृतमध्वयतं स्निग्धशीतैः प्रदेहयेत् ।

सुदग्धलिङ्गम्—

तस्य लिङ्गं स्थिते रक्ते शङ्खवल्गुलसिकान्वितम् ॥४५॥

पञ्चवतालकपोताभं सुरोर्हं नातिवेदनम् ।

दुर्दग्धादेर्लिङ्गम्—

प्रमाददग्धवरमर्दं दुर्दग्धात्यर्थदग्धयोः ॥४६॥

प्रमाददग्धंचतुर्विधम्—

चतुर्धा तत्तुत्येन सह

तुत्यदग्धलक्षणम्—

तुत्यस्य लक्षणम् ।

त्वग्निवर्णोऽप्यतेऽत्यर्थं न च स्फोटसमुद्भवः ॥४७॥

मस्फोटदाहतोत्रोप दुर्दग्धम्

अतिदग्धलक्षणम्—

अतिदाहतः ।

मासलंबनसंकीचदाहघूपनवेदनाः ॥४८॥

सिरादिनाशस्तृष्णूर्ध्वब्रणानां नीर्यमृत्यवः ।

चिकित्सितम्—

तुत्यस्याऽग्निप्रतपनं कार्यमुष्णं च भेषजम् ॥४९॥

# शारीरस्थानम् ।

## प्रथमोऽध्यायः ।

प्रसूतितन्त्रम्—

अथाऽतो गर्भावकातिशारीरं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुराग्नेयस्यो महर्षयः ।

गर्भोत्पत्तिः—

"शुद्धे शुक्रासवे सत्वः स्वकर्मबलेनचोदितः ।

गर्मः संपद्यते युतिवशादग्निरिवारणो ॥१॥

कुक्षौगर्भवृद्धिप्रकारः—

बीजात्मकमंहाभूतः<sup>१</sup> मूर्ध्नि सत्वानुगैश्च नः ।

मातुश्चाहाररसजैः क्रमात्कुक्षौ विवर्धते ॥२॥

सत्वस्यगर्भप्रवेशानुपलब्धावभिस्थितौदृष्टान्तः—

तेजो यथार्कश्मीना स्फटिकेन तिरस्कृतम् ।

नेधनं दृश्यते गच्छत्सत्वो गर्भाशयं तथा ॥३॥

सत्वस्यनरादिरूपत्वे हेतुः—

<sup>१</sup>कारणानुविधायित्वात्कार्याणां तत्त्वभावता ।

१ सत्वो जीवः । स्वकर्माणि पूर्वजन्म कृतानि शुभाशुभानि । बलेशाः—प्रविद्याऽ-  
स्मिता रागद्वेषाभिमिवेशास्तैश्चोदितः प्रेरितः । २ बीजात्मकगर्भजनकबीजस्वरूपः  
शुक्रासवरूपतः परिणतः । सत्वानुगैर्मनोऽनुसारिभिः । ३ स्फटिकेन सूर्यकान्त-  
मणिना, तिरस्कृतं व्यवहितम् । स्फटिकस्याधः स्थितमिन्धनं गच्छतेजो न दृश्यते  
तद्वत् । ४ कारणानुविधायित्वात् कारणस्वभावत्वात् । तत्त्वभावताकारण-  
तुल्यता । सत्वो महाभूतानुग एकस्य एव अनेकरूपशुपक्षियोन्याकारात् घटो ।  
द्रुतलोहवत्—यथालोहनुवर्णरूप्यपित्तलादिवह्निर्मयोगेन द्रवरूपमेकरूपमेव मृत्ति-  
कादिरचिते मनुष्यतुरगपक्षिव्याघ्राद्याकारे सञ्चके ( नाँचा ) निषिक्तां तां तां  
मनुष्याद्याहृतिवत्ते तद्वज्जीवोऽपि ।

रोग्यत्वायुरधन्यो वा गर्भो भवति नैव वा ॥९॥

शुक्रार्तश्चोपनिर्देशः—

वातादिकुणानघ्नविजृम्भणमलाह्वयन् ।

बीजामपर्यं रेताञ्जम्,

स्वसिगर्दोपजं वदेत् ॥१०॥

रक्तेन कुणप, श्लेष्मवाताभ्यां ग्रंथिसन्निभम् ।

पूयाभं रक्त्रपित्ताभ्यां, क्षीणं मास्त्रपित्ततः ॥११॥

कृच्छ्राण्येतान्यसाध्यं तु त्रिदापं मूत्रविट्प्रभम् ।

चिकित्सा—

कुर्वाद्वातादिभिर्दुष्टे स्त्रोपधम्,

कुणपे पुनः ॥१२॥

घातकीपुष्पसदिरदाडिमारुनसाधितम् ।

पाययेत्सचिरयथा विषकश्मसनादिभिः ॥१३॥

पलाशमस्माश्मभिदा ग्रंथ्याभे,

पश्यकवटादिभ्याम्, पूयरेतसि ।

क्षीणे शुक्रकरी क्रिया ॥१४॥

स्निग्धं वातं विरिक्तं च निरुद्धमनुवासितम् ।

योजयेच्छुक्रदोषार्तं मम्यगुत्तरवस्तिभिः ॥१५॥

संशुद्धो विट्प्रभे सनिहिंशुसेव्यादिसाधितम् ।

पिबेत्,

ग्रंथ्यार्तवे पाठाभ्योपवृष्टकृजं जलग् ॥१६॥

पेवं कुणपपूयास्त चदनं वक्ष्यते तु यत् ।

गुह्यरोगे च सत्पार्वं नगर्यं सोत्तरवस्तिकम् ॥१७॥

शुद्धशुक्रलक्षणम्—

दुर्गं शुवर्तं गुरु स्निग्धं मधुरं बहुलं बहु ।

धृतमाक्षितेजाभं सद्गर्भाय,



## शुद्धार्तवलक्षणम्—

आर्तवं पुनः ॥१८॥

लासारसशशास्त्रार्थं धीर्तं यच्च विरज्यते ।  
शुद्धशुक्रार्तवं स्वस्थं संरक्षतं मिथुनं मिथः ॥१९॥

## गर्भसम्भवात्पूर्वमिति कर्तव्यता—

स्नेहः पुंसवर्गः स्निग्धं शुद्धं शीलितवस्तिकम् ।  
नरं विशेषात्क्षीराज्यं गर्भुरोपघसंस्मृतः ॥२०॥  
नारो तैलेन मापेच्च पित्तलेः समुपाचरेत् ।

## श्रुतमतीक्ष्णिलक्षणम्—

शामप्रसन्नवदनां स्फुरच्छ्रोणिपयोधराम् ॥२१॥  
अस्ताक्षिकुक्षिं पुंस्कामा विद्याहनुमती स्त्रियम् ।

## अनृतौगर्भस्यामहणम्—

पथं संकोचमायाति दिनेऽतीते यथा तथा ॥२२॥  
श्रुतावतीते योनिः सा शुभ्रं नातः प्रतीच्छति ।

## आतेवप्रवृत्तौवायोर्हेतुस्त्वम्—

मासेनोपचितं रक्तं धमनीभ्यामृती पुनः ॥२३॥  
ईशत्पुण्यं विगर्धं च वायुर्गोनिप्रुखानुदेत् ।  
रजस्वलाया आहार विहार कथनम्—  
ततः पुष्पेक्षणादेव कल्याणध्यायिनी भ्यहम् ॥२४॥  
भृजालंकाररहिता दर्भसंस्तरशायिनी ।  
क्षीरेण यावकं स्तोकं कोष्ठशोधनकर्षणम् ॥२५॥  
पण्यं शरावे हस्ते वा भुञ्जीत ब्रह्मचारिणी ।

## श्रुतमत्याश्रुतार्थदिनकृत्यम्—

चतुर्थेऽङ्गि ततः स्नात्वा शुक्लमाल्यांबरा शुचिः ॥२६॥

१ संरक्षतमन्योन्यमनुरागयुक्तम् । मिथुनं खोपुदपयुगलम् । २ प्रतीच्छति-  
गृह्णाति । ३ मुजा शुचिः ।

इच्छन्ती भर्तृसदृशं पुत्रं पश्येत्पुरः पतिम् ।

१. ३. ऋतुकालनिर्देशः—

ऋतुस्तु द्वादश निशाः पूर्वास्तिस्रश्च निन्दिताः ॥२७॥

१. ४. एकादशी च, पुष्पासु स्यात्पुत्रोऽज्यासु कन्यका ।

२. पुत्रार्थयज्ञकरणम्—

१. उपाध्यायोऽथ पुत्रीर्यं कुर्वीत विधिवद्विधिम् ॥२८॥

नमस्कारपरायास्तु शूद्राया मग्नवर्जितम् ।

अथैष्य एवं संयोगः स्यादपत्यं च कामतः ॥२९॥

संतोऽप्याहुरपत्यार्यं दंपत्योः संगतं रहः<sup>१</sup> ।

२. दुरपत्यं कुलागारो गोत्रे जातं महरपि ॥३०॥

३. इच्छानुरूपपुत्रप्राप्तिसाधनम्—

इच्छेत्तु यादृशं पुत्रं तद्रूपचरितांश्च तौ ।

४. धितयेत्तु जनपदास्तदावारपरिच्छदो<sup>१</sup> ॥३१॥

५. कर्मणि च पुमान्तापिः क्षीरशाल्योऽनाशितः ।

दम्पत्योः शय्याभ्यादि—

६. प्राग्दक्षिणेन पादेन शय्या मोहूर्तिकाशया ॥३२॥

भारोहेत् त्वां तु वामेन तस्य दक्षिणपार्श्वतः ।

तैलमापोत्तराहारा तत्र मग्नं प्रयोजयेत् ॥

७. तत्रमन्त्रपाठः—

अहिरक्षि आयुरक्षि सर्वतः प्रतिष्ठासि धाता ।

८. त्वां दधातु विधाता त्वां दधातु ब्रह्मवर्चसा भवति ।

ब्रह्माबृहत्स्पतिर्विष्णुः सोमः सूर्यस्तथाश्विनौ ।

भगोऽथ मित्रावरुणौ वीरं ददतु म सुतम् ।

१ रहः एकान्ते । २ तद्रूपचरिताम् तस्याभिलषितपुत्रस्यरूपचरिते येषां तान्  
जनपदाम् देशान् । परिच्छदोवेतमूपादिः । ३ कर्मन्ति पुत्रीययजान्ते ।  
४ मोहूर्तिको ज्योतिर्वित् ।

### अन्योन्यं सान्त्वनापूर्वकं संवेशः—

सात्वयित्वा ततोऽन्योन्यं संविशेतां मुदान्विता ।  
उत्ताना तन्मना योषित्तिष्ठेदंयैः सुसंस्थितैः ॥३४॥  
तथा हि बीजं गृह्णाति दोषैः स्वस्थानमास्थितैः ।

### सद्योग्यृहीतगर्भाया लक्षणम्—

स्निग्धं तु सद्योगर्भाया योन्यां बीजस्य संग्रहः ॥३५॥  
सृतिर्गुह्यत्वं स्फुरणं <sup>१</sup>शुक्रास्नाननुबन्धनम् ।  
हृदयस्पन्दनं तंद्रा सृष्ट्वा नानिसौमहर्षणम् ॥३६॥

### प्रथममासेर्गर्भावस्था—

धर्म्यक्तः प्रथमे मासि सप्ताहात्कललो <sup>२</sup> भवेत् ।

### पुंसवनस्यसार्थकता—

गर्भः, पुंसवनाभ्यन्तरे पूर्वं व्यक्ते प्रयोज्यते ॥३७॥  
बती पुरुषकारो हि दंभमध्यतिष्ठते ।

### पुंसवनप्रयोगः—

पुण्ये <sup>१</sup>पुरुषकं हेमं राक्षतं वायवायसम् ॥३८॥  
हृत्वाऽग्निवर्णं निर्वर्तिष्य क्षीरे तस्याजलिं पिबेत् ।  
<sup>२</sup>गौरदंढमपामार्गं बीजकर्ममैर्यकात् ॥३९॥  
पिबेत्पुण्ये जले पिष्टानेकद्वित्रिसप्तशः ।  
क्षौद्रेण श्वेतगृहीतीमूलं कासापुटे स्वयम् ॥४०॥  
पुनार्थं दक्षिणे सिन्धुनामे दृढितृवाधया ।  
पयसा लक्ष्मणामूलं पुत्रोत्पादस्थितिप्रदम् ॥४१॥  
नासयाऽत्येन वा शोले षट्शृङ्गाष्टकं तथा ।

### गर्भधारणसहायभूतानि—

शोषधीर्जीवनीयाश्च वाह्यातरुपयोजयेत् ॥४२॥

१ शुक्रास्यातवस्य च अननुबन्धनं योन्याबहिरनिःसरणम् । २ कललः  
श्लेष्मणितुल्यः । ३ पुरुषश्च पुरुषकस्त्वं पुरुषाकारं पुत्तलकम् । ४ गौरदण्डम् गौर-  
सर्पणं । एनांगभिणोम् ।

उपचारः प्रियद्विर्भर्त्रा भृत्यैश्च गर्भधृक् ।  
तवनीतघृतक्षीरैः सदा धैनामुपाचरेत् ॥ ४३ ॥

### गर्भिन्यास्त्याज्याः—

अतिव्यवायमायासं भारं प्रावरणं गुरु ।  
अकालजम्बरस्वप्नकठिनोत्कटकासनम् ॥ ४४ ॥  
शोकक्रोधमयोद्वेगवेगधृदाविषाणम् ।  
उपवासाप्यतीक्ष्णोष्णं गुरुविष्टमिभोजनम् ॥ ४५ ॥  
रक्तं निवसनं श्वन्नकूपेक्षा मद्यमामिषम् ।  
उत्तानशयनं यच्च स्त्रियो<sup>१</sup> नेच्छति तत्पजेत् ॥ ४६ ॥  
तथा रक्तस्रुतिं रुद्धिं वस्तिमामासताऽष्टमाद् ।  
एभिर्गर्भः सवेदामः कुक्षौ शूष्येन्निषयेत वा ॥ ४७ ॥

### धातला घाहारैः कुब्जाद्युत्पत्तिः—

धातलैश्च भवेद्गर्भः कुब्जाधज्जवामनः ।  
पित्तलैः खलतिः<sup>२</sup> पिगः, शित्री पाङ्कः कफात्मभिः ॥ ४८ ॥

### सृद्धाद्यीपधैर्याधिजयः—

व्याधौष्मास्या मृदुसुखैरतीक्ष्णैरोपधर्जयेत् ।

### द्वितीयमासे गर्भावस्था—

द्वितीये मासि कललाद्धतः पेश्ययवाऽबु<sup>३</sup>दम् ॥ ४९ ॥  
पुंश्चोबलीवाः क्रमात्तेभ्यः<sup>४</sup>,

### व्यक्तगर्भस्य लक्षणम्—

तत्र व्यक्तस्य लक्षणम् ।

क्षामता गरिमा कुक्षौ मूर्ध्नि छादिररोचकः ॥ ५० ॥  
जम्भा प्रसेकः सदर्शनं रोमराज्याः प्रकाशनम् ।

१—निवसनं वस्त्रम् । स्वप्नोर्गतः । २—स्त्रियोनेच्छन्ति—यथा नदीपारं  
न यायादित्यादि ३ खलतिः खत्वाटः । ४ तेभ्यः पेश्यादिभ्यः । पेशी दीर्घाकारा ।  
अबु<sup>३</sup>दं वर्तुलफलस्यार्धभागः ।

अप्तेष्टता स्तनी पीनी मस्तन्यो कृष्णचूचुको ॥ ५१ ॥  
पादशोको विदाहोऽप्येष्ट अद्वाश्च विविधात्मिकाः ।

गभिएया दौहद कथनम्—

• मातृजं ह्यस्य हृदयं मातृश्च हृदयेन तत् ॥ ५२ ॥  
मंवेदं, तेन गभिएया नेष्टं अद्वाचमानवम् ।  
• देयमप्यहितं तस्य हितोपहितमल्पकम् ॥ ५३ ॥  
अद्वाविधाताद्गर्भस्य विकृतिश्च्युतिरेव वा ।

तृतीयेमासि गर्भावस्था—

व्यक्तीभवति मासेऽस्य तृतीये गात्रपंचकम् ॥ ५४ ॥  
मूर्धा, द्वे सविषर्ता<sup>१</sup> यादृ सर्वमूदमायजम् च ।  
सममेव हि मूर्धाघेर्ज्ञानं च सुखदुःखयोः ॥ ५५ ॥

गर्भवर्धन प्रकारः—

गर्भस्य नाभौ मातृश्च हृदि नाडी निबध्यते ।  
• यया स पुष्टिमाप्नोति केदार इव कुल्यया ॥ ५६ ॥

चतुर्थीदिमासेषु गर्भावस्था—

चतुर्थे व्यवततांगाना, चेतनायाश्च पंचमे ।  
पष्टे स्नायुसिगारोमबलर्णनखस्वषाम् ॥ ५७ ॥  
सर्धः सर्वाणसंपूर्णो भावः पुप्यति सप्तमे ।

किंकिंसोत्पत्तिः—

गर्भलोत्पीडिता दोषास्तस्मिन् हृदयमाभिताः ।  
मंद्ं विदाहं कुर्वन्ति गभिएयाः किंकिनानि<sup>१</sup> च ॥ ५८ ॥

• अन्ये-आच र्या देहे विदाहो ।

१ सविष-कुरुप्रदेशादारभ्यपादपर्यन्तमङ्गुलम् । २ यया नाड्या । स गर्भः ।  
केदारः दोत्रम् । कुल्या जलबद्धन्ती लघ्वी नाडी, अथवा कुल्यात्याकृत्रिमा सरित्”  
इत्यमरोक्तेः “नहर” इति लोके । ३ किंकिंसम् बद्धयनेन रेखाकारस्त्वग्भेदः ‘वेखमा’  
इति लोके । तत्र तेषु कण्डूवादिषु । कीनादिभिः सिद्धं नवनोतम् । अलोत्पादि  
भोजनविशेषणम् ।

नवनीतं हितं तत्र कोलांबुमधुरोपधः ।  
 सिद्धमल्पदुस्नेहं लघु स्वादु च भोजनम् ॥ ५९ ॥  
 चंदनोशीरकल्केन लिपेद्दस्तनोदरम् ।  
 श्रेष्ठया चैलहरिणशशांगिनयुक्तया ॥ ६० ॥  
 अश्वत्थप्रसिद्धेन तैलेनाभ्यज्य मर्दयेत् ।  
 पटोलनिबर्माण्जिष्ठा सुरसैः सेचयेत्पुनः ॥ ६१ ॥  
 दावीमधुकनोयेन मृजां च परिश लयेत् ।

### अष्टममासे गर्भावस्था—

श्रोजोऽष्टमेसंचरति मातापुत्रौ मुहुः क्रमात् ॥ ६२ ॥  
 तेन तौ स्नानमुदितौ तत्र जातो न जीवति ।  
 जिशुरोऽजोऽजवस्थानाभारो संशयिता भवेत् ॥ ६३ ॥  
 क्षीरपेयं च पेयाऽत्र सप्ततन्वासनं हितम् ।  
 मधुरैः साधितं शुद्धं पुराणशकृतस्थया ॥ ६४ ॥  
 शुष्कमूलककोलाम्लकपायेण प्रशस्यते ।  
 शताह्लाकत्किञ्चो बस्तिः सतैलघृतसैधवः ॥ ६५ ॥

### प्रसूतिकालः—

उत्सिस्त्वेकाहयातेऽपि कालः सूतेरतः परम् ।  
 वर्षाद्विकारकारी स्यात्कुभ्रो वातेन धारितः ॥ ६६ ॥

### नवममासे कर्तव्यम्—

शस्तञ्च नवमे मामि स्निग्धो मांसरसोदनः ।  
 बहुस्नेहा यवागूर्वा पूर्वोक्तं चानुवासनम् ॥ ६७ ॥  
 तत एव पिच्छं चाऽस्या योनौ नित्यं निष्पापयेत् ।  
 वातघ्नपत्रभंगांभः शीत स्नानेऽन्वहं हितम् ॥ ६८ ॥  
 निस्नेहागौ न नवमान्मासात्प्रभृति वासयेत् ।

१ श्रेष्ठा त्रिकणा । अश्वत्थः 'वनैल' इति हिन्दी । श्रेष्ठया इत्यस्य लिप्पे  
 त्रिययान्वयः । दाव्यादिना मृजा शुद्धिस्नानादिकाम् । २ तेन श्रोजःसंचरणेन ।  
 तौ मातापुत्रौ । ३ पत्रभंगः पत्रसमूहः ।

पुत्रगर्भविज्ञानम्—

प्राग्दक्षिणस्तनस्तन्या पूर्वं <sup>१</sup>तत्पार्श्वचेष्टिनी ॥ ६९ ॥

पुष्पामदोर्हृदप्रसरता पुंस्त्वप्रदक्षिणी ।

उभ्रते दक्षिणे कुक्षौ गर्भे च परिर्महते ॥ ७० ॥

कन्यागर्भविज्ञानम्—

पुत्रं मूलेऽप्यथा कन्या या चेच्छति नृसंगतिम् ।

मृत्यवादित्रणांघ्र्यगंधमात्यप्रिया च या ॥ ७१ ॥

फूर्लाघं <sup>२</sup>तत्संकरे तत्र मध्यं कुक्षेः समुन्नतम् ।

गर्भद्वयविज्ञानम्—

यमौ पार्श्वद्वयोन्नामात्कुक्षौ <sup>३</sup>द्रोण्यामिव स्थिते ॥ ७२ ॥

सूतिकागृहकरणम्—

प्राक् चैव नवमान्मासारसूतिकागृहमाश्रयेत् ।

देशे प्रशस्ते संभारैः संपन्न साधकेऽर्हति ॥ ७३ ॥

तत्रोदीक्षेत सा सूतिं <sup>४</sup>सूतिकापरिवारिता ।

आसन्नप्रसवाया लक्षणम्—

मधोगुरुत्वमरुचि. प्रसेकी बहुपूत्रता ।

अश्वः प्रसवे श्रानिः कुक्ष्यक्षिप्रलयता क्लमः ॥ ७४ ॥

वेदनोरुदरकटीपृष्ठदृष्टिर्वक्षणे ॥ ७५ ॥

योनिभेदरुजातोदस्फुरणलवणानि च ।

गर्भोत्पत्ति प्रकरणम्—

धात्रीनामनुजन्मातस्ततो गर्भोदकसूतिः ॥ ७६ ॥

१ तेन दक्षिणेनपार्श्वेन चेष्टितं गमनस्वप्नादिकं मस्याः सा । २ तत्संकरे तयोः पुत्रकन्याप्रसूतिलक्षणयोः संकरे सम्भवेन । ३ द्रोणी मध्यनिम्नानीका । ४ सूतिवा परिवारिता—बहुवारप्रगवानुभूततत्कालोचितव्यवहारकुशलाभिः स्त्रीभिः परिवारिता ।

अथोपस्थितगर्भां तां कृतकी<sup>१</sup>तुक्कर्मगताम् ।

हस्तस्वपुन्नामफलां स्वम्यक्नोष्णानुसेचिताम् ॥ ७७ ॥

पाययेत्सघृतां पेयां

तनी भूगवने स्थिताम् ।

आभुग्नसन्निवृत्तानामम्यक्तांगी पुनःपुनः ॥ ७८ ॥

अधोनाभेविमुदनीयात्कारयेज्जु<sup>२</sup>भर्चक्रमम् ।

गर्भः प्रयात्यवागेवं तल्लिगं हृदिमोक्षतः ॥ ७९ ॥

आविश्य जठरं गर्भो बस्तेरुपरि तिष्ठति ।

आभ्यो हि त्वरयत्येनां खट्वामारोपयेत्ततः ॥ ८० ॥

अथ संपीडिते गर्भे योनिमस्याः प्रसारयेत् ।

मृदु पूर्वं प्रवाहेत् बाढमाप्रसवाच्च सा ॥ ८१ ॥

हृष्येत्तो मुहुः पुत्रजन्मशब्दजनानिलैः ।

प्रत्यायाति तथा प्राणाः सूतिश्चेशावसादिताः ॥ ८२ ॥

गर्भसंगे कृत्यम्—

धूपयेद्गर्भसंगे तु योनिं वृष्ट्याहिकषुकैः ।

हिरण्यपुष्पीमूलं च पाणिपादेन धारयेत् ॥ ८३ ॥

सुवर्चलां विशल्यां वा जराश्चपतनेऽपि च ।

कार्यमेतत्तथोत्तिष्ठ्य बाहोरेनां विकल्पयेत् ॥ ८४ ॥

कटीमा<sup>३</sup>कोटयेत्पाण्यां स्फिगी गाढं निपीडयेत् ।

तानुर्कण्डस्पृशेद्देव्या भूमिं दद्यात्सुहोपयः ॥ ८५ ॥

भूर्जलांगलिकीतुषीतर्पस्वक्वृणर्पयैः ।

पृथग्द्राग्यां समस्तैर्वा योनिलेपनघूपनम् ॥ ८६ ॥

१ अत्रकीतुकं बाहो बन्धनीयोरस्त्राबन्धः । २ तनी मृदुनि । आभुगने संकुचिते सन्निवृत्ती मस्याः । जुम्भो गत्रप्रसारणम् । ३-अवाक्-घषः । तल्लिगम् तस्याधो-  
गमनलिङ्गम् । ४ प्रवाहेत् कुन्ययेत् । कुन्यर्णं “कौसना” इति हिन्दी । ५ बाढ  
मत्यन्तम् । ६-हिरण्यपुष्पी “कलिहारी” हिन्दी । सुवर्चला-सूर्यभक्ता । विशल्या-  
पाटला । आकोटयेत्-पीडयेत् ।



कृष्टतालोत्कृष्टं वा मुरामंडेन पाययेत् ।

यूपेण वा कुलस्थाना बिल्वजेनाऽसवेन वा ॥ ८७ ॥

शताह्वासरपपाजाती शिग्रुतोदणकचित्रकैः ।

सहिगुक्कुष्ठमदनैर्मूत्रे द्यौरे च सार्धपम् ॥ ८८ ॥

स्रवं सिद्धं हितं पायी योन्या च व्यनुवासनम् ।

शतपुष्पावचाकुष्ठशृङ्गासर्पकल्कितः ॥ ८९ ॥

निरुहः पातयस्याशु सस्नेहलवणोऽपराम् ।

तत्संभे ह्यनिसो हेतुः सा निर्यात्याशु तज्जयात् ॥ ९० ॥

कुशला पाणिनाऽक्तेन हरेत्क्लृप्तनसेन वा ।

मृगतगभांपरा योनिं संलेनाग च मर्दयेत् ॥ ९१ ॥

मकल्लशूले चिकित्सितम्—

मकल्लास्ये शिरोवस्तिकोष्ठशूले तु पाययेत् ।

मुपूष्णितं यमक्षार घृतेनोष्णजलेन वा ॥ ९२ ॥

घन्यांशु वा गुडव्योपत्रिजातकरजोन्वितम् ।

वालोपचारः—

अथ वालोपचारेण बालं योपिदुपाचरेत् ॥ ९३ ॥

सूतिकोपचारः—

सूतिका धुदती तैनाद्भुताद्वा महतीं पिवेत् ।

पंचकोलकिनी माग्रामनु चोष्णं गुडोदकम् ॥ ९४ ॥

वातघ्नोपमत्तोयं वा तथा वायुर्न कृष्यति ।

विशुध्यति च दुष्टार्सं द्वित्रिरात्रमयं क्रमः ॥ ९५ ॥

स्नेहायोग्या तु निःस्नेहममुमेव विधिं भजेत् ।

पीतवत्याश्च जठरं यमकान्तं विवेष्टयेत् ॥ ९६ ॥

१—तत्संगे अपरासंगे । तज्जयाद्वायुजयात् । क्लृप्तनसेन घ्नितं नसेन ।

२—अमुंविधिपूर्वोक्तं पंचकोलमुक्तगुडोदकं वातघ्नोपमत्तोयादिकम् । ३—स्नेहयोग्यायाः स्नेहं पीतवत्याः । ४ स्नेहायोग्यायास्तु गुडोदकं वातघ्नोपमत्तोयं वा पीतवत्याः । यमको घृततैले ।

गुडं किरणं मलवणं तथातः पूरयेन्मुहुः ।

घृतेन कल्कीकृतया शात्मल्यतसिपिच्छया ॥ २५ ॥

अन्तर्गृतगर्भार्कषणादि—

मन्त्रैर्गोर्गर्जरायुर्कर्तुं मूढगर्भो न चेत्पतेत् ।

अथापृच्छयेत् श्वरं घृष्टो मत्नेनाशु तमाहरेत् ॥ २६ ॥

हस्तमभ्यग्य योनिं च साय्यशात्मलिपिच्छया ।

हस्तेन शक्यं तेनैव गार्भं च निपनं स्थितम् ॥ २७ ॥

मांछनोत्पीडनसंपोडविश्लेषोत्क्षेपणादिभिः ।

अनुलोम्य समार्कयेद्योनिं प्रत्यार्जवामतम् ॥ २८ ॥

शस्त्रोपायसाध्या मूढगर्भश्चकिरवा—

हस्तापादशिरोभिर्यो योनिं भ्रुगः प्रपद्यते ।

पादेन योनिमेकेन भ्रुगोऽन्येन गुडं च यः ॥ २९ ॥

विष्कम्भो नाम तौ मूढौ शस्त्रदारणमर्हतः ।

मंडपागुलिशस्त्राभ्या तत्र कर्म प्रशस्यते ॥ ३० ॥

वृद्धिपत्रं हि लोङ्गणमं न योनाववधारयेत् ।

पूर्वं गिरःकपालानि दारयित्वा विनोदयेत् ॥ ३१ ॥

कक्षोरस्तालुचिबुके प्रदेक्षेऽन्यतमे ततः ।

समालभ्य दृढ कर्पेत्कुशलो गर्भशंकुना ॥ ३२ ॥

अभिघ्नशिरसं त्वक्षिकूटयोर्गठयोरपि ।

बाहुं छित्त्वाऽनमवतस्य वाताग्मानोदरस्य तु ॥ ३३ ॥

विदार्य कोष्ठमंत्राणि बहिर्वा संनिरस्य च ।

कटीसक्त्रस्य तद्वच्च तत्कपालानि दारयेत् ॥ ३४ ॥

१ ईश्वरं राजानम् । तेन हस्तेन । २ माछनं दीर्घतया स्थापनम् । उत्पीडन-  
मूर्ध्वपीडनम् । संपोडनं समन्तात्पीडनम् । ३ हस्तेति हस्तादीनामेकेनागेन भ्रुगः  
कुटिलो यो गर्भो योनिप्रपद्यते इत्येको विष्कम्भः । एकेन पादेन योनिमन्येन  
पादेन च गभिरया गुदं प्रतिपद्यते स द्वितो यो विष्कम्भः । ततः कक्षाद्यङ्गैः अन्यतमे  
प्रदेगे समालभ्य कर्पेत् । ४ तत्कपालानि तस्याः कट्याः कपालानि ।

उपविष्टवमाहृतं वर्धते तेन नोदरम् ।

नागोदरगर्भलक्षणम्—

शोकोपवासरूपाद्यैरयवा योन्यतिस्रवाद ॥ १२ ॥

वाते क्रुद्धे कृशः क्षुब्धगर्भो नागोदरं तु तत् ।

उदरं वृद्धमध्यत्र ह्रीयते स्फुरणं चिरात् ॥ १६ ॥

सयोश्चिकित्सा—

सयोमृंहणवातघ्नमधुरद्वयसंस्कृतैः ।

घृतक्षीररसैस्तृतिरामगर्भांश्च खादयेत् ॥ १७ ॥

तैरेव च सतृतायाः क्षोभणं यानवाहनैः ।

लीनगर्भचिकित्सा—

लीनास्थे निष्कुरे श्येनगोमत्स्योत्क्रोशबहिजाः ॥ १८ ॥

रमा बहूधृता देवा मापमूलकजा अपि ।

बालवित्त्वं तिलाभ्यापांसकनूँश्च पयसा पिबेत् ॥ १९ ॥

समेष्टमार्तं मधु वा कट्वभ्यं च शीतयेत् ।

हर्षयेत्गततं र्धनामेवं गर्भः प्रवर्धते ॥ २० ॥

पुष्टोऽन्यथा वर्धगणैः कुञ्जद्राजायेत नैव वा ।

गर्भिण्या उदावर्ते क्रमः—

उदावर्तं तु गर्भिण्याः स्नेहेरागुतरां जयेत् ॥ २१ ॥

योम्यश्रवस्तिग्रिहंन्यात्सगर्भा सं हि गर्भिणीम् ।

अन्तर्मृतगर्भलक्षणम्—

गर्भेऽतिदोषोपचयादपथ्यदैवतोऽपि वा ॥ २२ ॥

मूर्तेऽतरदरं शीतं स्तब्धं घ्मातं भृशव्ययम् ।

गर्भास्पंदो भ्रमस्तृष्णा कृच्छ्रादुच्छ्वसनं बलम् ॥ २३ ॥

भारतिः अस्तनेत्रत्वमावीनागसमुद्भवः ।

तत्रउपचारः

तस्याः कोष्णावुसित्तयाः पिष्ट्वा योनिं प्रलेपयेत् ॥ २४ ॥

पयो वातहरः सिद्ध दशाह भोजने हितम् ।

रसो दशाहं च पर लघुपध्यात्मभोजना ॥ ४५ ॥

स्वेदाम्यगपरां स्नेहान् बलातंलादिकाश्च भजेत् ।

चर्चं चतुर्गो मासेभ्यः सा क्रमेण सुखानि च ॥ ४६ ॥

### मृतातैलनिरूपणम्—

बलामूलकपायस्य भागाः षट् पयसस्तथा ।

यवकोलकुलत्पाना दशमूलस्य चैकतः ॥ ४७ ॥

निष्कायभागा भागश्च तैलस्य च चतुर्दशः ।

द्विमेऽध्वरुर्माजिष्ठानाकोत्तोदयचर्चनः ॥ ४८ ॥

सारिवाकुष्ठतगरजीवकर्यमधैधर्वः ।

कालानुसार्यशैलेयवचामुहपुनर्वचः ॥ ४९ ॥

अध्वर्गधावरीक्षीरशुक्लायटोवरारसैः ।

शताह्लाशूर्पस्यैसास्ववपर्वः शलक्षणकल्कितैः ॥ ५० ॥

पक्वं मृदाभना तैलं सर्ववातविकारमित् ।

सूतिकाबालमर्मास्थिदातक्षीणेषु प्रजितम् ॥ ५१ ॥

अवरमुल्मग्रहोन्मादमूत्राधातान्वृद्धिमित् ।

धन्वत्तरेरभिमतं योनिरोगक्षयापहम् ॥ ५२ ॥

मृतगार्भण्याजोवदूगर्भनिष्कासनादि—

वस्तिद्वारे विपन्नाऽयाः कुक्षिः प्रस्पन्दते यदि ।

जन्मकाले ततः शीघ्रं पाटयित्वोद्धरेन्विशुम् ॥ ५३ ॥

१—सुखानि यथेष्टान्नपानाहारविहारस्वाणि भजेत् । २—पयसस्तथा—तथा पञ्चभागा गोदुग्धस्य । यवकोलकुलत्पाना दशमूलानां मिलितानामेकोभागः कायस्य । तदपया-तैलं प्रस्पमितं चेदमवेदलामूले चतुर्विंशतिपलेयोडशगुणंजलं प्रक्षिप्य चतुर्दशः कायोपग्राह्यः । दुग्धस्य प्रस्पपट्कम् यवादीनां दशमूलस्य चतुर्गुणेषु प्रस्पचतुर्गुणंजलं देत्वा प्रस्पमितो ग्राह्यः कायः । अत्रयवादीनां त्रयोऽष्टादशमूलस्य च दत्तांशाः । वरी-शतावरी । वरा त्रिफला । रसः-जोलः । ३ विपन्नाया मुताया ।

## सामान्यमूढगर्भं चिकित्सा—

यद्यद्यायुवप्तादगं सज्जेतुर्गर्भस्य खंडशः ।  
तत्तच्छिदत्वा हरेत्साम्यश्लोघारो च यत्नतः ॥ ३५ ॥

तत्र वैद्ये नस्त्वमत्ययत्नः कार्यः—

गर्भस्य हि गतिं चित्रां करोति विगुणोऽनितः ॥  
तत्राजल्पमतिस्तस्मादवस्थापेक्षमाचरेत् ॥ ३६ ॥

जीवद्गर्भमच्छेदनिषेधः—

क्षिप्वादर्भं न जीवंतं मातरं स हि मारयेत् ।  
सहात्मना, न चोपेक्ष्यः सण्णमप्यस्तजीवितः ॥ ३७ ॥

मूढगर्भाया असाध्यलक्षणम्—

योनिर्तवरणभ्रंशमनल्लासनीडिताम् ।  
प्लुतुदगरां हिमांगी च मूढगर्भां परित्यजेत् ॥ ३८ ॥  
अथापतंतीमपरां पातयेत्पूर्ववदभिपक्व ।

मूढगर्भायाः कर्तव्यप्रकारः—

एवं निर्हृतशल्या तु भिचेदुष्णं वारिणा ॥ ३९ ॥  
यद्यादभ्यक्षतदेहायै योनी स्नेहपिबु ततः ।

योनिर्मुद्गुर्भवेत्तेन दूतं चास्याः प्रशाम्यति ॥ ४० ॥  
दोष्यकातिविषार स्नाहिग्वेलापक्षकालकाम् ।

क्षूर्णं स्नेहेन कल्कं वा क्वाथं वा पाययेत्ततः ॥ ४१ ॥  
कटुकातिविषापाठागाकल्कग्विगुतेजिनीः<sup>१</sup> ।

तद्वच्च दोषस्वंदार्धं वेदनोपशमाय च ॥ ४२ ॥  
त्रिरात्रमेवं समाहं स्नेहमेव ततः पिबेत् ।

सायं पिबेदरिष्टं वा तथा सुवृत्तमासवम् ॥ ४३ ॥  
शिरीषककुमकायपिचूम् योनीं विनिक्षिपेत् ।

उपद्रवाश्च येऽप्ये स्युस्ताम् यथास्वमुपाचरेत् ॥ ४४ ॥

पयो वातहरः सिद्धदशाह भोजने हितम् ।

रसो दशाहं च पर लघुपथ्यालमोजना ॥ ४५ ॥

स्वेदाम्मगपरा स्नेहाभू बलातंलादिकाभू भजेत् ।

उर्ध्वं चतुर्थ्यो मासेभ्यः सा क्रमेण सुखानि च ॥ ४६ ॥

### धलातैलनिरूपणम्—

बलामूलकषायस्य भागाः षट् पयसस्तथा ।

यवकोलकुलत्पाना दशमूलस्य चंकतः ॥ ४७ ॥

निःकायभागा भागद्वयं तैलस्य च चतुर्दशः ।

द्विभेदादारुमज्जिष्ठावाकोलोद्वयचन्दनः ॥ ४८ ॥

सारिवाकुष्ठतगरजीवकर्यमसैधवं ।

कालानुसार्यशैलेयवचामुरुपुनर्वः ॥ ४९ ॥

भ्रमर्गमावरीक्षीरशक्तायटोवरारसैः ।

शताह्लाक्षूर्पण्यैलास्वक्पत्रं शलकणकुक्किः ॥ ५० ॥

पक्कं मृद्धाम्ना तैलं सर्ववातविकारमित् ।

मूतिकाबालमर्मास्त्रिदातक्षीणेषु पूजितम् ॥ ५१ ॥

उ्वरमुल्मग्रहोन्मादभूत्राधातानवृद्धिजित् ।

धर्मतरेरभिमतं योनिरोगक्षयापहम् ॥ ५२ ॥

मृतगार्भण्याजोवद्गर्भनिष्कासनावि—

वस्तिद्वारे विपन्नायाः कुक्षिः प्रस्पन्दते यदि ।

जन्मकाले ततः शीघ्रं पाटमित्वोद्धरेज्जिह्वम् ॥ ५३ ॥

१—सुखानि यथेष्टाग्रपानाहारविहाररूपाणि भजेत् । २—पयसस्तथा—तथा पद्मभागा गोदुग्धस्य । यवकोलकुलत्पदशमूलानां मिलितानामेहोभागः कापस्य । तदपया-तैलं प्रस्पमितं चेद्भवद्वलामूले चतुर्विंशतिपलेपोडशगुणंजलं प्रक्षिप्य चतुर्दशः कामोद्ग्राह्यः । दुग्धस्य प्रस्पपट्कम् यवादीनां दशमूलस्य चतुर्पुपलेषु प्रस्पवतुष्पजलंदरका प्रस्पमितो ग्राह्यः कायः । अनपयादीनां त्रयोशादशमूलस्य च दशांशाः । वरी-शतावरी । वरा त्रिफला । रसः-बोलः । ३ विपन्नाया मुक्ताया ।

गर्भे स्रवति सप्तसुमासेषु सप्तयोगाः —

१ मधुकं शाकबीजं च पयस्या सुरदारु च ।  
 भस्मंतकः कृष्णतिलास्ताम्रवह्नी शतावरो ॥ ५४ ॥  
 वृषादनी पयस्या च लता चोत्पलसारिवा ।  
 अनंता सारिवा रास्ना पद्मा च मधुयष्टिका ॥ ५५ ॥  
 २ वृहतीद्वयकाश्मर्यः क्षीरिशृङ्गत्वचो घृतम् ।  
 पृश्निपर्णी बला शिपुः श्वदंष्ट्रा मधुपर्णिका ॥ ५६ ॥  
 शृङ्गाटकं विस द्राक्षा कसेरु मधुकं सिता ।  
 सप्तैताम् पयसा योगानर्धश्लोकसमापनाम् ॥ ५७ ॥  
 क्रमात्सप्तसु मासेषु गर्भे स्रवति योजयेत् ।

• ३ अष्टमादिमासेषु कृत्यम्—

कपित्थविस्त्रवृहतीपटोलेऽनुनिदिग्मजैः ॥ ५८ ॥  
 मूलैः श्रुत प्रयुञ्जीत क्षीर मासे तथाऽष्टमे ।  
 नक्षत्रे सारिवाऽनंता पयस्या मधुयष्टिभिः ॥ ५९ ॥  
 योजयेद्दशमे मासि सिद्धं क्षीरं पयस्यया ।  
 अथवा यष्टिमधुकनागरामरदारुभिः ॥ ६० ॥

— गर्भविषये मतिविभ्रमः—

१ भवेत्स्थितं लोहितमंगनाया  
 वातेन गर्भे ब्रूवतेऽनभिज्ञाः ।  
 गर्भकृतित्वात्कटुकोष्णतीक्ष्णैः  
 स्मृते पुनः केवल एव रवते ॥ ६१ ॥

१ पयस्या-क्षीरविदारी । ताम्रवह्नी मंजिष्ठा । लता-गन्धप्रियंगु. गोरसरिवा  
 उत्पलसरिवा कृष्णसारिवा । अनंता-गवाक्षः । पद्मा भारंगी । २ शिपुः 'सहिजन'  
 हि० । मधुपर्णी-गुडुची । विसं पयमूलं 'भसीड़ा' इति लोके । निदिग्मिका-कण्टकारी ।  
 ३-जडा अज्ञाः । तैर्भूतैः । ओजोऽज्ञानत्वं भूतानाम् ।

गर्भं जडा भूतहृतं वदन्ति  
भूतैर्न दृष्टं हरणं यतस्तैः ।  
श्रीजोगनत्वादयवाऽव्ययस्य-  
भूतैस्तेष्वेते न गर्भमावा ॥ ६२ ॥

### तृतीयोऽध्यायः ।

**शल्यतन्त्रम्—**

अथानोङ्गविभागं शारीरं व्याख्यास्यामः ।  
 शितोऽन्तः<sup>१</sup>राधिष्ठो<sup>२</sup> बाहू सक्थिनी च समस्ततः ।  
 पङ्कगमंगं, प्रत्थंगं तस्याक्षिहृदयादिकम् ॥ १ ॥

**पञ्चमहाभूतगुणाः—**

शब्दः स्पर्शश्च स्पर्श रसो गन्धः क्रमादुष्णः ।  
स्नानिलाग्न्यवभृवाम्

<sup>३</sup>एकगुणवृद्धयन्त्रयः परे ॥ २ ॥

१ भन्तराधीयन्ते यथायथं शरीरस्यान्तः स्थाप्यन्ते शिरःप्रभृतयोपश्रुति  
भन्तराधिः शरीरमध्यभाग इत्यर्थः । २ किमाकाशस्पर्शैक एव गुणो वातादी-  
नामुताज्येपि गुणा इत्यतमाह-एकेति-एकेनगुणेनवृद्धिस्तस्यान्वयः सम्बन्धः परे  
वातादौ । यथा-भावाशस्यपरत्वाभावादेको गुणः शब्दः । वायो द्वोगुणो शब्द  
स्पर्शौ । अग्नी त्रयोगुणाः शब्दस्पर्शरूपाणीति । जलेत्वारोगुणाः शब्दस्पर्शरूप-  
रसाः । पृथिव्यां पञ्चगुणाः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धाः ।



## महाभूतेभ्यो देहोत्पत्तिप्रकारः—

तत्र स्वात् खानि देहेऽस्मिन् श्रोत्रं शब्दो विविक्तता ।

वातात् स्पर्शत्वगुच्छ्वासा, वह्ने र्दृश्यपतयः ॥ ३ ॥

आप्या जिह्वा रसबलेदा, घ्राणगंधास्थि पार्थिवम् ।

## मातृपितृजभागाः

मृद्वत्र मातृजं रक्तमांसमज्जगुदादिकम् ॥ ४ ॥

पैतृकं तु स्थिरं शुक्रं धमन्यस्थिकचादिकम् ।

## चेतनभागाः—

चैतनं चित्तमक्षाणि नानायोनिषु जन्मपः ।

## सात्म्यजभागाः—

सात्म्यजं चायुरारोग्यमनासस्य प्रभा बलम् ॥ ५ ॥

रसजं वपुषो जन्म वृत्तिर्बुद्धिरबोलता ॥ ६ ॥

## सत्त्वादिभागाः—

सात्त्विकं शौचमास्तिक्यं शुक्लधर्मश्चर्मतिः ।

राजसं बहुभाषित्वं मानक्रुद्धममस्मराः ॥ ७ ॥

तामसं भयमज्ञानं निद्राऽऽलस्यं विषादिता ।

इति भूतमयो देहः

## रक्तसप्तत्वगुत्पत्तिः—

तत्र सप्त त्वचोऽस्तृजः ॥ ८ ॥

पच्यमानात्प्रजामते क्षीरात्मता निका इव ।

## कलानिरूपणम्—

धात्वाशयांतरमलेदो विपक्वः स्वस्वमूष्मणा ॥ ९ ॥

श्लेष्मस्नायवपराच्छन्नः कलाख्यः काष्ठमारवत् ।

१ विविक्तता—शून्यता छिद्रत्वमितियावत् । पक्तिः पाकः । आप्या जलीयाः ।

२ चैतनमात्मीयम् । अक्षाणीन्द्रियाणि । नानायोनिषु पशुपक्षिस्तरोस्तृपादिषु ।

३ वृत्तिर्जीवनम् । ४—शुक्ल- धर्मो निव्यजिर्वर्णः । मानः सर्वशोक्त्वेणात्मनोत्तानम्

मरमरोऽन्यशुभद्वेषः । दम्भ- कापट्येनेवर्माचरणम् । ५—संतानिका—मादोमलाई,

इतिलोके ।

१ ताः सत, सत चाधारा रक्तस्याद्यः क्रमात्परे ॥ १० ॥

कफामपित्तपक्वानां वायोमूर्धन्यस्य च स्मृताः ।

गर्भाण्योऽष्टमः स्त्रीणां पित्तकाशयान्तरे ॥ ११ ॥

### कोष्ठाङ्गानि—

कोष्ठाङ्गानि स्थितान्येषु हृदयं क्लोमं पृष्णमुतम् ।

यकृत् प्लोहोण्डकं वृक्को नाभिर्हिम्बान्नवस्तयः ॥ १२ ॥

### जीवनस्थानानि—

दश जीवितधामानि शिरोरसनयन्धनम् ।

कण्ठोऽक्षं हृदयं नाभिर्वरितः श्शीजमी गुदम् ॥ १३ ॥

जालानि कण्डराश्चान्यं पृथक् पोडश निर्दिशेत् ।

पट् कूर्वाः षण्ण सेवन्त्यो मेदजिह्वागिरोगताः ॥ १४ ॥

शस्त्रेणैताः परिहरेत् चतस्रो सासरज्जयः ।

चतुर्दश मिथसंघाताः सीमन्ता त्रिगुणा नव ॥ १५ ॥

### अस्थिनिरूपणम्—

अस्थना शतानि पष्टिश्च त्रीणि दंतवर्षाः सह ।

धन्वतरिस्तु बीण्याह, संघीनां च शतद्वयम् ॥ १६ ॥

१ ताः कलाः । आधाराश्चतस्रः । २ कण्ठोऽक्षं-हृदयं क्लोमं पृष्णमुतम् । विभवत्तमलाधारः । पृष्णमुतं, केफड़ा, यकृत् जिगर, वृक्काः गुर्दा, हिन्दी । ३ शिरोरसनयन्धनं, रसनयन्धनच । रसना जिह्वा । ४ पृथक् पोडशजालानि शाङ्ग वण्डरायचेत्यर्थः । ५ मेदे एका जिह्वायामेका गिरसि च पञ्चेतिमल्ल-सोवन्त्यः । ६ त्रिगुणा नव अष्टादश । भीषि-भीषिण्यतानीत्यर्थः । गुल्फजानुवंशण मणिदन्त, कूर्परकलासु एवैकइतिद्वादश, त्रिके एकपञ्चशिरमि, सुश्रुते तु चतुर्दशैवसो-मन्ताः नमिताः ।

विधुरे मातृकाश्राष्टो षोडशेति परित्यजेत् ।  
 हन्धोः षोडश तासां द्वे संधिबंधनकर्माणि ॥ २७ ॥  
 जिह्वायां हनुवत्तासामधो द्वे रसबोधने ।  
 द्वे च वाचः प्रवर्तिन्धो,  
 नासायां चतुस्तय ॥ २८ ॥

विंशतिर्गंधवेदन्य स्तासामेकां च तालुगाम् ।  
 षट्पंचाशन्नयनयोनिमेषोन्मेषकर्मणी ॥ २९ ॥  
 द्वे द्वे मपांगयोर्द्वे च तासां षडिति वर्जयेत् ।  
 नासानेत्राश्रिताः षष्टिर्ललाटे स्यापनीधिताम् ॥ ३० ॥  
 मसैश्च वर्जयेत्तासाम्,

वर्णयोः षोडशाऽत्र तु ॥ ३१ ॥  
 द्वे शब्दबोधने, शंखौ सिरास्ता एव चाश्रिताः ।  
 द्वे शंखसंधिमे तासाम्,  
 मूर्ध्नि द्वादश तत्र तु ॥ ३२ ॥  
 एकैका पृथगुत्क्षेपमीर्मताधिपतिस्थिताम् ।  
 इत्यध्व्यविभागार्थं प्रत्यगं वर्णिताः सिराः ॥ ३३ ॥

### अध्व्यसिरासंख्या—

अध्व्यास्तत्र कात्स्न्येन देहेऽष्टानवतिस्तथा ।  
 संकीर्णा ग्रथिताः क्षुद्रा वक्राः संधिषु चाश्रिताः ॥ ३४ ॥

### सिराणां रक्तादिवहत्वम्—

तासां शतानां समानां पादोऽर्धं बहते पृथक् ।  
 चातपित्तकर्फुर्जुष्टं क्षुद्रं चैवं स्थिता मलाः ॥ ३५ ॥  
 शरीरमनुगृह्णन्ति षोडश्यत्यन्यथा पुनः ।

१—हनुवत् षोडश । जिह्वायां चतस्रः सिरा अध्व्याः । नासायां चतुस्तारा-  
 विंशतिश्चतुर्विंशतिरित्यर्थः । २—ताः कर्णाश्रिता एव ।

## वातवहसिगलक्षणम्—

तत्र श्यावाक्षणा ख्याः पूर्णरिक्ताः क्षणास्त्रिधाः ॥ ३६ ॥

प्रत्येदिन्यत्र वाताखं बहते,

## पित्तकफवहसिगलक्षणम्—

पित्तशोणितम् ।

स्पर्शोष्णः शीघ्रशब्दो नीलपीताः, कर्णं पुनः ॥ ३७ ॥

गौर्यः क्षिप्वा स्वरः शीताः, ससृष्टं सिग्वन्दरे ।

## शोणितवहसिगनिर्देशः—

गूढाः समस्थिताः क्षिप्वा रोहिण्यश्चक्षोणितम् ॥ ३८ ॥

## धमनीवर्णनम्—

धमन्यो नाभिसंबद्धा विक्षतिश्रुतुत्तराः ।

ताभिः परिवृत्तो नाभिप्रक्रान्तिरिवारकः ॥ ३९ ॥

ताभिश्चोर्ध्वमधस्तिर्यग्देशोऽयमनुगृह्यते ।

१—अत्र विरोधः । मंग्रे चोक्तम् । तामा खलु धमनीना मध्यादृश धमन्य ऊर्ध्वं प्रसृताः दशाऽयः प्रसृतास्तिर्यक् चतस्रः । ताभिर्यथास्वमंगवयवा ऊर्ध्वाधस्तिर्यक् समाधिता धार्यत आप्याय्यन्ते च । तासामूर्ध्वगा हृदयमभिप्रपन्नाः प्रत्येकं त्रिधा जायते । एवं चास्त्रिंशत् । ततस्त्रिंशता मध्याद्वे द्वे वातपित्तकफरक्तसाम्बहतः एवं दश । द्वे द्वे शब्दरुनरसगंधान् गृह्णीत । एवमष्टाभिः शब्दरुनरसगंधान् गृह्यते । द्वाभ्यां द्वाभ्यां भावते षोडश करोति स्वपिति प्रतिबुध्यते च एवमष्टौ । द्वे चाधु बहतः । तथैव द्वे स्तनाग्रिते नार्याः स्तन्यं नरस्य शुक्रं बहतः । अधोगमाः पक्षाशयस्था दश त्रिधा जायते । एवं ता अपि त्रिंशत् । तत्राद्याः पूर्ववद्दश द्वे द्वे वातपित्तकफरक्तसाम्बहतः । ॥ बह्नोऽन्नमन्नाश्रयेण द्वे मूत्र द्वे तोय ॥ शुक्रं बहतः । ॥ च मुंचतः । ते एव नारीणामार्तवं बहतः । ॥ वर्चोऽनरसने स्थूलात्र-प्रतिबद्धे । एवं द्वादश । दोषास्त्वष्टौ धमन्यस्तिर्यग्धोनाः श्वेदमभिवर्धयन्ति । तिर्यग्गामिन्यस्तु चतस्रो भिद्यमानाः सुबहुधा भवन्तीति ।

२—चक्रनाभिः धमन्यमध्यमभागः “मूडी” इति लोके । धारकं “आरा” इति लोके । अनुगृह्यते उगृह्यते ।

**स्त्रीपुंसयोर्दृश्यस्रोतोवर्णनम्—**

स्रोतांसि-नासिके कण्ठो नेत्रे पाय्वास्यमेहनम् ॥ ४० ॥  
स्तनो रक्ताग्रश्चेति नारीणामधिकं त्रयम् ।

**अदृश्यस्रोतोवर्णनम्—**

जीवितायतनान्यंतः स्रोतांस्याद्दृश्योदश ॥ ४१ ॥  
प्राणपातुमलाभोऽन्नवाहोनि,

**स्रोतसामागम्यानारोग्यकथनम्—**

महितसंवन्तम् ।  
तानि दुष्प्रानि रोगाय, विषद्वानि मुक्ताय च ॥ ४२ ॥

**स्रोतसालक्षणानि—**

स्वधातुसमवर्णानि वृत्तास्पृमान्यरूनि च ।  
स्रोतानि दीर्घाण्यवाहृन्वा प्रतानसहृणानि च ॥ ४३ ॥

**आहारादीनांस्रोतोदुष्टिकरत्वम्—**

माहारश्च विहारश्च यः स्यादोषगुणैः समः ।  
धातुभिविगुणो यश्च स्रोतसां स प्रदूषकः ॥ ४४ ॥

**स्रोतोदुष्टिलक्षणम्—**

अतिप्रवृत्तिः संगो वा सिराणां ग्रंथयोऽपि वा ।  
विमार्गतो वा गमनं स्रोतसां दुष्टिलक्षणम् ॥ ४५ ॥

**स्रोतसांद्वाराणि—**

विमानामिव मूत्रमाणि दूरं प्रविस्तृतानि च ।  
द्वाराणि स्रोतसां देहे रसो र्धंस्यचोपते ॥ ४६ ॥

**स्रोतोव्यधेरोगाः—**

अधे तु स्रोतसां सोहृक्कंशमानवमिज्वराः ।  
प्रनापनुनविण्मूत्ररोधो मरणमेव वा ॥ ४७ ॥

स्रोतोविद्वमतो वैद्यः प्रत्याख्याय प्रसाधयेत् ।

उद्धृत्य शल्पं यत्नेन सद्यः शतविधानतः ॥ ४८ ॥

पाचकपित्तनिर्देशः—

अग्नस्य पक्ता पित्तं तु पाचकाख्यं पुरेरितम् ।

दोषघातुमलादीनामूष्मेत्याग्नेयशासनम् ॥ ४९ ॥

तदपिष्ठानमग्नस्य ग्रहणाद्ग्रहणी मता ।

सौम्यं पञ्चतन्त्रिते कला पित्तधराह्वया ॥ ५० ॥

आयुरारोग्यवीर्यौजोभूतघातवग्निपुष्टये ।

स्थिता पक्काशयद्वारि भुक्तमार्गाऽग्नितेव सा ॥ ५१ ॥

भुक्तमामाशये रूक्षा सा विपाच्य नयत्यधः ।

बलवत्यबला त्वन्नमाममेव विमुञ्चति ॥ ५२ ॥

अग्निग्रहणयोः परस्परमुपकार्योपकारकभावः—

ग्रहण्या ऋबलमग्निर्हि स चापि ग्रहणीबलः ।

दूषितेजनावतो दुष्टा ग्रहणी रोगकाणी ॥ ५३ ॥

अन्नपाकस्याग्निर्हेतुः—

यदन्नं देहघातोजोबलवर्णादिपोषणम् ।

तत्राऽग्निर्हेतुराहारात्त ह्यपकाद्रसादयः ॥ ५४ ॥

शरीरेऽन्नपाकप्रकारः—

अन्नं कालेऽभ्यवहृतं कोष्ठं प्राणानिलाहृतम् ।

द्वेद्विभिन्नसंघातं नीतं स्नेहेन मार्दवम् ॥ ५५ ॥

संशुक्षितः समानेन पचत्यामाशयस्थितम् ।

श्रोदर्योऽपिप्रिया बाह्या. स्थालीस्थं तोयतंहृतम् ॥ ५६ ॥

\* क्षेपकः । वामपार्श्वीश्रितं नाभेः किञ्चित्सूर्यस्य मंडलम् । तन्मध्ये मंडलं सौम्यं तन्मध्येऽग्निर्ध्वजस्थितः । जरायुमात्रप्रच्यन्नः काचकोशस्थदीपवत् ॥ १ ॥

१—माण्डव—ग्रहणीपय । धर्गला “बेंडा” इति लोके ।

२—स्थाली—“बटलोही” इति लोके ।

धादौ षड्रसमप्यन्नं मधुरीभृतमोरयेत् ।  
 केनोभूतं कफं यातं विदाहादम्लनां ततः ॥ ५७ ॥  
 पित्तमामाशयात्कुर्यान्ज्वरमानं च्युतं पुनः ।  
 अग्निना शोषितं पक्वं पिडितं कटुमास्तम् ॥ ५८ ॥

### भौमाद्यग्नीनां कर्माणि—

भौम, प्याप्तेष्वायव्याः पञ्चोष्माणः सनाभताः ।  
 पंचाहारगुणान्स्वाम् स्वाम् पापिवादीन् पचत्यनु ॥ ५९ ॥  
 यथास्वं ते च पुष्णन्ति पक्त्वा मूतगुणान् पृथक् ।  
 पापिवाः पापिवानेव क्षोपाः शेषांश्च देहयान् ॥ ६० ॥

### अन्नस्य द्विप्रकारः परिणामः—

किट्टं सारश्च तत्पक्वमन्नं सम्भवति द्विधा ।  
 तत्राऽर्ण्यं किट्टमन्नस्य मूत्र, विद्याद्धनं शङ्खत् ॥ ६१ ॥

### सारस्य सप्तभिन्नाभिः पाकः—

सारस्तु सप्तभिर्भूयो यथास्वं पच्यतेऽग्निभिः ।

### शारीरधातुनिरूपणम्—

रमादवतं ततो मासं मायाम्नेदस्ततोऽस्थि च ॥ ६२ ॥  
 मस्त्वो मज्जा ततः शुक्रं शुक्राद्र्र्भं प्रजायते ।

### धातुमलनिरूपणम्—

कफः पित्तं मलाः क्षेपु प्रस्वेदो नक्षरोम च ॥ ६३ ॥  
 स्नेहोऽक्षित्वग्विशामोजो धातूनां क्रमशो मलाः ।

### धातूनां पाकस्य द्वैविध्यम्—

प्रसादकिट्टौ धातूनां पाकादेवं द्विविधतः ॥ ६४ ॥

द्वार्धजली तु स्तन्यस्य चत्वारो रजसः स्त्रियाः ।  
समधात्तोरिदं मानं विद्याद्विदित्यावतः ॥ ८२ ॥

### प्रकृतिनिरूपणम्—

दुष्प्रासृग्भिण्णोभोज्यचेष्टागर्भाशयतुर्गु ।  
यः स्यादोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता ॥ ८३ ॥

### वातप्रकृतिलक्षणम्—

विभ्रुत्वादाशुकारित्वादलित्वादस्यकोपनात् ।  
स्वातन्त्र्याद्बहुरोगत्वादोषाणां प्रबलोऽनिलः  
दोषात्मकाः स्फुटितयूसरकेशगान्नाः ।  
घोतद्विपन्नधृतिस्मृतिबुद्धिचेष्टा-  
सौहार्ददृष्टिगतयोऽति बहुप्रतापाः ॥ ८४ ॥  
अल्पपित्तबलजीविनिद्राः  
मृन्मसक्तचलजर्जरवाचः ।  
नास्तिका बहुभुजः सविलासा  
गीतहासमृगयाकलिलोला ॥ ८५ ॥  
मधुराम्भपट्टयुमात्स्यकाक्षाः  
कुशदीर्घाकृतयः सशब्दयाताः ।  
न हठा न जितेन्द्रिया न चार्या  
न च कातादयिता बहुप्रजा वा ॥ ८६ ॥

१—विभ्रुत्वात् व्यापित्वात् । अन्योपित्तकफौकोप्येते येनतस्मात् । स्वातन्त्र्या-  
धरेकत्वात् । नायमन्येनप्रेर्यते । बहुरोगत्वात् यथा वातजा प्रणीतिरोगाः, पित्त-  
जाश्चत्वारिंशत्कफजास्तुविंशतिः ।

२—चलशब्दोधृतेरारभ्यगत्यन्तैः सर्वैः सम्बध्यते । अत्रा वित्तादयो निद्रान्ता  
मेपाते । सन्नवाक् शिथिलवाक् । सक्तवाक् अद्रुतवाक् । जर्जरवाक् भिन्नकांस्यमदृश-  
वाक् । लोलशब्दोगीतादिभिः प्रत्येकमभिसम्बध्यते । मृगया “शिकार” इति  
भाषा । कलिर्वाक्लिहः । मार्तगमनम् । न चार्या धनन्तः । दयिताः प्रियाः ।



नेशाणि चैषां खरधूसराणि  
 वृत्तान्यचार्षाणि मृतोषमानि ।  
 उन्मीलितानीव भवन्ति, सुप्ते  
 शैलद्रुमांस्ते गगनं च यांति ॥ ८८ ॥  
 भ्रमण्या मत्स्यराध्माताः स्तेनाः श्रोद्धद्विषदिकाः ।  
 स्वशृगालोद्भूद्भुधास्तुकाकानूकाश्च<sup>१</sup> वातिकाः ॥ ८९ ॥

### पित्तप्रकृतिविलक्षणम्—

पित्तं वह्निर्वह्निर्जं वा यदस्मा-  
 त्पित्तोद्विक्तस्तोक्षुण्णतृष्णाबुभुक्षः ।  
 गीरोष्णांगस्तान्नहस्ताऽध्रिवक्त्रः  
 क्षूरो भानी पिंगकेशोज्ज्वरोमा ॥ ९० ॥  
 दमितमास्थविलेपनमण्डनः  
 मुचरितः शुचिराश्रितवस्त्रजः ।  
 विभवसाहसयुद्धिबलान्वितो  
 भवति योपुगतिद्विवतागपि ॥ ९१ ॥  
 मेधावी प्रशिथिलमधिर्बध्मासो  
 नारोणामनभिमतोऽल्पशुक्रकामः ।  
 आवासः पलिततरंगनीलिकाना  
 भुंक्तेन मधुरकषायवित्तशीतम् ॥ ९२ ॥  
 धर्मद्वेषी स्वेदनं पूतिगन्धि-  
 भूयुंश्चारक्रौञ्चपाताशनेर्ष्यः ।  
 सुप्तः पश्येत्कणिकाराम्पलाशाम्  
 दिग्गहोल्काविद्युदकर्निनाम् ॥ ९३ ॥  
 तनूनि पिणानि चत्नानि चैषां  
 तन्वत्यपदमाणि हिमप्रियाणि ।  
 क्रोपेन मद्येन रवेश्च भासा  
 रागं व्रजं त्याशु विलोचनानि ॥ ९४ ॥

१—भनूकः स्वभावः सहजो वा । २—पित्तं वह्निरिति सुभुतमवे ।

मध्यायुषो मध्यवृत्ताः पंडिताः श्लेशभीरवः ।  
व्याघ्रर्क्षकविमार्जारयः । नृकाश्च पैतिकाः ॥ ९१ ॥

कफप्रकृतिलक्षणम्—

श्लेष्मा सोमः श्लेष्मलस्तेन मौम्यो  
गृद्धस्निग्धस्तिष्ठमंघ्यस्थिर्मांसः ।  
क्षुत्तृद्धः श्लेशघर्मे रतसी  
बुद्ध्या युक्तः सात्त्विकः सत्यसंघः ॥ ९६ ॥  
प्रियंगुर्दूर्वागिरकांडशस्त्र-  
गोरोचनापद्मसुवर्णवर्णः ।  
प्रलंबबाहुः पृथुपीनवक्त्रा  
महाललाटो घननीलकेशः ॥ ९७ ॥

मृद्वंशः समसुविभक्तश्चास्त्रवर्ष्म<sup>१</sup>  
बह्वोजोरतिरगदाङ्गपुत्रभृत्यः ।  
घर्माभ्या बहति न निष्कुरं च जातु  
प्रच्छन्नं बहति द्वंदं चिरं च वैरम् ॥ ९८ ॥  
ममदद्विरदं द्रुत्ययातो  
जलदांभोभिर्मृदगसिहर्षादः ।  
स्मृतिमानभियोगवाग्<sup>२</sup> विनीतो  
न च बाल्येऽप्यतिरोदनो न लोलः ॥ ९९ ॥  
तिक्तं कषायं बहुकोष्णक्ष-  
मत्वं स भुक्तं बलशान्तयात्रि ।  
रत्नोत्तमुस्त्रिग्वविशालदीर्घ-  
मुष्णतप्तपलासितपदमलासः ॥ १०० ॥  
घ्नत्याहाराक्रोशपानाणनेर्व्यः  
प्राज्यामुचितो दीर्घदर्शी वदान्यः ।

१—वर्ष्म-शरीरम् । जातु न दाचिन् । प्रच्छन्नं गुमन् । २—प्रभियोगो गौरवम् ।  
। वदान्यो दाता ।

आदो गभीरः ३ स्थूलतन्मयः क्षमावा-  
 नाको निदानुदोर्ध्वमूत्रः कृतज्ञः ॥ १०१ ॥  
 ऋजुर्विपश्चिन्तुभगः सलज्जो  
 भक्तो मुख्या स्थिरसौहृदश्च ।  
 स्वप्ने सपदान्तविहंगमालो-  
 स्तोवाणपाप् पश्यति तोमदाश्च ॥ १०२ ॥  
 ब्रह्मरक्षेत्रवरणताक्ष्यहंसगजाधिपः ।  
 श्लेष्मप्रकृतयस्तुत्यास्तथा मिहाश्वगोवृषः ॥ १०३ ॥

**द्वन्द्वसर्वदोषप्रकृति निर्देशः—**

प्रकृतोद्भूयसर्वोत्था द्वंद्वसर्वगुणोदये ।

सत्त्वादिप्रकृति निर्देशः—

शोचति कथादिभिश्चैव गुणैर्गुणमयीवन्देत् ॥ १०४ ॥

वयोत्रिभागः—

वयस्त्रयापोडशाह्वालं २तत्र धात्विद्विषोऽसाम् ।

वृद्धिरासप्ततेर्मध्यं तत्रावृद्धिः परः क्षयः ॥ १०५ ॥

### शरीर प्रमाणम्—

स्वं स्वं हस्तत्रयं सार्धं वपुः पात्रं मूलायुषोः ।

**अष्टौनिन्दिताः—**

नच यद्युक्तप्रद्विवर्तरष्टाभिनिदितैर्निजैः १०६ ॥

अरोमशासितस्थूलदोषत्वैः सविपर्ययैः ।

श्रेष्ठाङ्गानि—

मुस्तिग्वा ऋजवः सुहृमा नैकमृलाः स्थिराः फल्वाः ॥ १०७ ॥

सल्लटमुन्नतं शिलटुशंसमधैदसनिमम् ।

फर्शो नोचोघ्नतो पश्चान्महातो श्लिष्टमांसतो ॥ १०८ ॥

१ रघुलक्ष्मणो भूरियाता । दीर्घनूतनचरित्रः । मुभयो जनप्रियः । २—तव  
नाल्ये । अत्यन्तमेवार्थवत् । ३ सविपर्ययैः अतिरोगमशः । अतिमिलितः । पतिगुणः ।  
अविहृतः ।

नेत्रे व्यक्तासितसिते सुबद्धे घनपद्मणी ।  
 उन्नताशा महोच्छ्वासा पीनजुर्नासिका समा ॥ १०९ ॥  
 ओष्ठौ रक्तावनुद्धृत्तौ, महत्पी नोल्बण्ये हनू ।  
 महदास्थं, घना दंताः स्निग्धाः श्लक्ष्णाः सिताः समाः ॥  
 जिह्वा रक्ताऽऽमृता तन्वी, भांसलं चिबुकं महत् ।  
 ग्रीवा ह्रस्वा घना वृत्ता, स्कंधाबुधतपीवरी ॥ १११ ॥  
 उदरं दक्षिणावर्तगूढनाभि समुन्नतम् ।  
 तनुरक्तोन्नतनखं स्निग्धमाताम्रमांसलम् ॥ ११२ ॥  
 दीर्घाभिध्वांगुलि महरपाणिपादं प्रतिष्ठितम् ।  
 गूढवंशं बृहत्पृष्ठं, निगूढाः संधयो हृदाः ॥ ११३ ॥  
 धीरः स्वरोऽनुनादी च, वर्णः स्निग्धः स्थिरप्रभः ।  
 स्वभावजं स्थिरं सत्त्वमविकारि विपस्त्वपि ॥ ११४ ॥

### वपुषः शुभत्वम्—

उत्तरोत्तरसुक्षेत्रं वपुर्गर्भादिनीरुजम् ।  
 आयामज्ञानविज्ञानैर्वर्धमानं शनैःशुभम् ॥ ११५ ॥

### इति सर्वगुणोपेते शरीरेवर्षशतमायुः—

इति सर्वगुणोपेते शरीरे शरदां शतम् ।  
 आयुरैश्वर्यमिष्टाश्च सर्वे भावाः प्रतिष्ठिताः ॥ ११६ ॥

### बलप्रमाणज्ञानम्—

त्वग्रक्तादीनि सत्त्वातान्यग्राण्यष्टौ यथोत्तरम् ।  
 बलप्रमाणज्ञानार्थं साराण्युक्तानि देहिनाम् ॥ ११७ ॥  
 साररूपेतः सर्वैः स्यात्परं गौरवसंपुतः ।  
 सर्वारिभ्यु चाशावान्सहिष्णुः गन्मतिः स्थिरः ॥ ११८ ॥

—त्वगित्यादि त्वग्रक्तमांसमेदोऽस्थिमज्जशुक्लसत्वानि । अग्रपाणि श्रेष्ठानि ।

सत्त्वादिप्रकृति लक्षणानि—

‘अनुत्सेकमदैर्घ्यं च सुखं दुःखं च भवेते ।

सत्त्ववांस्तप्यमानस्तु राजसो नैव तामसः ॥ ११९ ॥

वपुषः प्रधानफलदायि लक्षणम्—

दानशौलदयासत्य ब्रह्मचर्यकृतज्ञताः ।

रक्षायनानि मैत्री च पुण्याशुबुद्धिदुःखेणः” ॥ १२० ॥

## चतुर्थोऽध्यायः

शारीरं शल्यतन्त्रं च ।

अथाज्ञो मर्मविभागं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

मर्मसंख्या—

‘‘सप्तोत्तरं मर्मशतम् तेषामेकादशादिशेत् ।

पृथक्सकन्थोस्तथा बाह्योस्त्रीणि कोष्ठे नयोरसि ॥ १

पृष्ठे चतुर्दशोर्ध्वं तु जत्रोस्त्रिसत्तु सप्त च ।

सक्थिषाहुगतमर्मैर्णां नामानि—

मध्ये पादतलम्याहुरभितो मष्मांगुलिम् ॥ २ ॥

तलद्विज्जाम हजया तत्र विद्वस्य पञ्चता ।

जंगुष्ठांगुलिमध्यस्थं क्षिप्रमाक्षेपमारणम् ॥ ३ ॥

तस्योर्ध्वं, व्यङ्गुले कूर्चः पादग्रमणिकण्टकम् ।  
 गुल्फसंधेरपः कूर्चशिरः शोफरुजाकरम् ॥ ४ ॥  
 जंघांचणयोः संघी गुल्फो स्वस्तंभमाद्यकम् ।  
 जंघांतरे द्विद्वयस्तिर्भारमत्यसृजः क्षयात् ॥ ५ ॥  
 जंघावोः संगमे जानु खंजता तत्र जीवतः ।  
 जानुनरुगं गुलादूर्ध्वमाण्यूरुस्तंभशोफकृत् ॥ ६ ॥  
 उर्युर्मध्ये सङ्घोषात्मवियसोषोऽस्तसंक्षयात् ।  
 ऊरुमूले स्लोहिताख्यं हृति पक्षमसुक्षयात् ॥ ७ ॥  
 मुष्कवक्षणयोर्मध्ये विटपं पठताकरम् ।  
 इति सकयोस्तथा ७ बाह्योर्मणिघंधोऽत्र गुल्फवत् ॥ ८ ॥  
 कूर्परं जानुवत्कोर्यं तयोर्विटपवत्पुनः ।  
 कक्षासम्यगे कक्षाधृक् कुणित्वं सत्र जायते ॥ ९ ॥

फोष्ठगतमर्मणां नामानि—

स्थूलांत्रबद्धः सद्योष्णो विद्वातवमनो शुद्धः ।  
 भूनाशयो धनुर्बन्धो बहिरत्प्रासमांसगः ॥ १० ॥  
 एकाधोवदनो मध्ये कट्याः सद्यो निहंत्यमूर्म् ।  
 †ऋतेऽश्मरीव्रणाद्विद्वस्तत्राणुभयतश्च सः  
 भूत्रसाम्येकतो भिन्नो व्रणो रोहेच्च यत्नतः ।  
 देहामपक्वस्यानानां मध्ये सर्वसिराश्रयः ॥ १२ ॥  
 नाभिः सोऽपि हि सद्योष्णो

उरोगतमर्मनामधेयानि—

द्वारमामाश्रयस्य च ।

●तथा एकादश । पादे गुल्फो बाहौ तु तत्स्थाने मणिवन्धः । पादे जानु, बाहौ तत्स्थाने कूर्परम् । पादे विटपं, बाहौ तु कक्षाधृक् । कोर्यं करभङ्गता "लुलापन" इति हिन्दी । तयोर्बाह्वोः । † ऋत इति अश्वमरो व्रणं वर्जयित्वा । स बस्तिरुभय पार्श्वयोर्विद्वस्तत्रापि अश्वमरो व्रणे सद्यो निहान्त । एक पार्श्वतो भिन्ने भूत्रस्रावी व्रणः स्यात् स च यत्नतो रोहेत् ।

मत्वादिषाम हृदयं स्तनोरःकोष्ठमध्यगम् ॥ १३ ॥

१ स्तनरोहितमूलाख्ये र्ज्यगुले स्तनयोर्वदेत् ।

ऊर्ध्वार्धोऽसकृत्पापुर्गोष्ठो नश्येत्तयोः क्रमात् ॥ १४ ॥

अपस्तंभाधुरःपार्श्वे नाख्यावनिजवाहिनी ।

रक्तेन पूर्णकोष्ठोऽत्र श्वासात्क्रमाच्च नश्यति ॥ १५ ॥

पृष्ठवंशोरयोर्मध्ये तयोरेव च पार्श्वयोः ।

अर्धोऽसकृत्तयोर्विद्यादपलापाख्यमर्मणी ॥ १६ ॥

तयोः कोष्ठेऽश्रुजा पूर्णं नश्येद्यातेन पूयताम् ।

**पृष्ठगतमर्मणानामानि—**

पार्श्वयोः पृष्ठवंशस्य श्रोणीकणौ प्रतिष्ठितौ ॥ १७ ॥

वशाश्रिते स्फिजोरूध्वं कटीकतरुणे स्मृते ।

तत्र रक्तक्षयात्पाटुर्होनरुना विनश्यति ॥ १८ ॥

पृष्ठवंश ह्युभयतौ यो संघो कटिपार्श्वयोः ।

जघनस्य बहिर्भागि मर्मणी तौ कुकुंदरौ ॥ १९ ॥

चेष्टाहानिरधःकाये स्पर्शज्ञान च तद्वशात् ।

पार्श्वीतरनिबद्धौ मापुपरि श्रोणिकणयोः ॥ २० ॥

प्राणयच्छादनौ तौ तु नितंबौ तरणास्थिगौ ।

मधःशरीरे शोफोऽत्र दीर्घत्वं मरणं ततः ॥ २१ ॥

पार्श्वीतरनिबद्धौ च मध्ये जघनपार्श्वयोः ।

विर्यगूध्वं च निर्दिष्टौ पार्श्वसंधौ तयोर्व्यथात् ॥ २२ ॥

रक्तपूरितकोष्ठस्य शरीरातरसंभवः ।

स्तनमूलाब्जवे भागे पृष्ठवंशाख्ये मिरे ॥ २३ ॥

वृक्षस्य तत्र विद्धस्य मरणं रक्तसंक्षयात् ।

बाहुमूलाभिसंबद्धे पृष्ठवंशस्य पार्श्वयोः ॥ २४ ॥

अंसयोः फलके बाहुस्वापशोपी तयोर्व्यथात् ।

श्रीवामुभयतः श्लेष्माब्जौ श्रीवावाहुजिरोतरे ॥ २५ ॥

१ स्तनरोहितं स्तनमूलमेति मर्मद्वयम् । एवंचस्तनद्वये चत्वारि, तथा चैवंसंश्रु-  
शोरनि नव मर्माणि । श्लेष्माब्जौ—स्नायुमन्त्रयिनौ ।

स्कंधांसरीठमर्वभावसौ बाहुक्रियाहरो ।

अत्रार्ध्यगतमर्मणानामानि—

बंठनाडोमुभयतः मिरा हनुममाश्रिताः ॥ २६ ॥

चतसस्तासु नीले द्वे मन्ये द्वे मर्मणि स्मृते ।

स्वरप्रणामर्षदृश्यं रसाज्ञानं च तच्छधे ॥ २७ ॥

बंठनाडोमुभयतो जिह्वानामागताः मिराः ।

पृथक् चतसस्ताः सद्यो घनत्यभून्मातृकाह्वयाः ॥ २८ ॥

कृकाटिके शिरोप्रोवासंधौ तत्र वसं शिरः ।

अधस्तात्कर्णयोनिर्नेत्रे विधुरे श्रुतिहारिणी ॥ २९ ॥

फणाबुभयतो घ्राणमार्गं श्रोत्ररथानुगौ ।

मंतर्गलस्थितौ वेधाद्गंधविज्ञानहारिणी ॥ ३० ॥

नेत्रयोर्बाह्वतोऽप्यांगौ भ्रुवोः पुच्छातयोरधः ।

तयोपरि भ्रुवोर्निम्नावाधर्तावाध्यमेपु तु ॥ ३१ ॥

अनुकर्णं ललाटांते शंखौ सद्योविनाशनी ।

केशांते जंखयोः स्पर्शमुत्क्षेपी, स्थपनी पुनः ॥ ३२ ॥

भ्रुवोर्मध्ये, क्लृत्रयेऽप्यत्र शल्ये जीवेदनुद्धते ।

स्वयं वा पतिते पाकात्सद्यो नश्यन्ति नूद्धते ॥ ३३ ॥

जिह्वाक्षिनामिकाधोत्रस्तबतुष्टयमगमे ।

तालुन्याम्यानि चत्वारि स्रोतसा तेषु मर्ममु ॥ ३४ ॥

त्रिद्वः शृंगाटकास्त्र्येषु सद्यस्त्यजति जीवितम् ।

कपाले मधयः पंच सीमंतास्तिर्यग्पूर्वगाः ॥ ३५ ॥

अमोन्मादतमोर्नासिंस्तेषु विद्धेषु नश्यति ।

धातरो मस्तकस्थोर्ध्वं मिरासन्विसमागमः ॥ ३६ ॥

रोमावर्तोऽधिपो नाम मर्म सद्यो हृत्यभूम् ।

सामान्यमर्मलक्षणम्—

विषमं स्पर्दनं यत्र पीडिते रुक् च मर्मं तत् ॥ ३७ ॥

॥ अत्र उत्तपस्थपनोतित्रये । १ स्पर्दनं स्फुरणम् ।



## मांसादिममागमोमम्—

मांसास्थिस्नायुधमनोतिरामविममागमः ।

स्यान्मर्मेति च तेनाऽन भुतरा जीवितं स्थितम् ॥ ३८ ॥

## बाहुल्येन मर्मणां निर्देशः—

बाहुल्येन तु निर्देशः षोडशं मर्मवल्लनम् ।

प्राणायतनमामान्यादैर्यं वा मर्मणां मतम् ॥ ३९ ॥

## मांसजानिदरामर्माणि—

मांसजानि षड्भेदास्तलहस्तानरोहिवाः ।

## अष्टावस्थि मर्माणि—

शंखो यदोक्तरणे नितरावमयो, फले ॥ ४० ॥

अस्थायि,

## रनायुमर्माणि—

रनायुमर्माणि त्रयोविंशतिराण्यः ।

मूर्ध्वमूर्ध्वशिरोऽनागक्षिप्रोत्तेषांमवस्तयः ॥ ४१ ॥

## धमनीस्थमर्माणि

गुदापस्तंभविधुर शृणाटानि नवादिमेव ।

मर्माणि धमनीस्थानि,

## सिरामर्माणि—

सप्तत्रिंशत्सिराधराः ॥ ४२ ॥

१ सुखरामतिशयेन । २ इन्द्रवस्तिः पादयोर्द्ध्वं हस्तयोर्द्ध्वं इति चत्वारि, तलहृन्मर्माण्यपि चत्वारि पादहस्तयोः । स्तनद्वये स्तनरोहिने द्वे, एवं दश । ३ माणयश्चत्वारि, मूर्ध्वस्थानि चत्वारि । मूर्ध्वं शिरः संज्ञानि चत्वारि, मध्याङ्गद्वयम् । त्रिप्राणि चत्वारि । उत्तेषो द्वौ ग्रंथो द्वौ । वस्तिरेकः, एवं त्रयोविंशतिः । ॥ गुदमेकम् । पपस्तम्भाभ्ये द्वे मर्मणौ । विधुरे द्वे । शृङ्गाटकानि चत्वारि एवं धमनीस्थानि नव ।

बृहत्थो मातृका नीले मन्ये कक्षाधरो फणो ।

विटपे हृदयं नाभिः पार्श्वसंधौ स्तनांतरे ॥ ४३ ॥

अपलापो स्थयन्मूर्त्यश्चतमो लोहितानि च ।

### संधिमर्माणि

संधौ विजतिरावती मणिवन्धो कुकुंदरो ॥ ४४ ॥

सीमन्ताः कूर्परौ गुल्फौ कृकाट्यो जानुनी पतिः

### अन्यमसम्—

मांसमर्मं गुदोऽन्येषा स्नान्धौ कक्षाधरो तथा ॥ ४५ ॥

विटपौ विधुरास्थे च श्रुमाटानि सिरासु तु ।

अपस्तंभाकपांगौ च धमनीस्थं न तैः स्मृतम् ॥ ४६ ॥

### मांसादिजमर्मणां विद्वलक्षणानि—

विद्वेज्जलमसृक्स्त्रावो मांसधावनवतनूः ।

पांडुत्वमिद्रियाज्ञानं मरणं वाशु मांसजे ॥ ४७ ॥

मज्जान्वितोऽज्ज्यो विचिद्रश्चाशो रुक्चास्थिमर्मणि ।

आयामासेरकस्तंभा स्नायजेऽभ्रविकं रुक्ता ॥ ४८ ॥

यानस्थानासनाशक्तिर्वैकल्यमथवातकः ।

रक्तं सशब्दकेनोप्यं धमनीस्थे विचेतन ॥ ४९ ॥

सिरामर्मव्यधे साश्रमजस्रं बह्वसृक्प्रवेत् ।

तत्तयात्तुद्भ्रमश्चानमाहहिष्माभिरंतकः ॥ ५० ॥

वस्तु दुर्करिवाकीर्णं रुद्रे च कुण्डसंज्ञता ।

बलवेष्टाशयः शोषः पर्वशोकश्च संधिजे ॥ ५१ ॥

### सद्यःप्राणहरमर्मनिर्देशः—

नाभिःशंखाधिपापानहृद्गुहाटकवस्तयः ।

अष्टौ च मातृकाः तद्यो निघ्नत्येकोनविंशतिः ॥ ५२ ॥

सप्ताहः परमस्तेषां बालः कालस्य कर्षणे ।

१ मातृका अष्टौ । स्वपनो एका । लोहितानि चत्वारि । अत्र सीमन्ताः  
पञ्च । पतिरधिपतिरेकः । २ विचिद्रो न निरुत्तरः ।

### कालान्तर प्राणहरमर्मनिर्देशः—

त्रयस्त्रिंशदपस्तं मतलहृत्पार्श्वसंघयः ॥ ५३ ॥

कटोत्तरुणसीर्मतस्तनमूलेंद्रबस्तयः ।

सिप्रापलापवृहतीनितंबस्तनरोहिताः ॥ ५४ ॥

कालान्तरप्राणहरा मासमाभार्घजोविताः ।

### विशल्यघ्नमर्मनिर्देशः—

उत्सेपो स्वपनी श्रीणि विशल्यघ्नानितत्र हि ॥ ५५ ॥

घायुर्मांसवसामज्जमस्तुभुगानि शोषयन् ।

घाल्यापाये विनिर्गच्छन् श्वासात्कासाच्च हंस्यन् ॥ ५६ ॥

### वैकल्यकरमर्मनिर्देशः—

फणावपांगो विधुरो नीले मन्ये कृकाटिके ।

भ्रंसांसफनकावर्तविटपोर्वीकुकुंदराः ॥ ५७ ॥

मजानुलोहिताख्याऽऽणिकक्षाधृक्कूर्बकूर्पराः ।

वैकल्यमिति चत्वारि चत्वारिश्च कुर्वते ॥ ५८ ॥

हरन्ति तान्मपि प्राणान् कदाचिदभिधाततः ।

### रुजाकरमर्मनिर्देशः—

अष्टौ कूर्जशिरोगुल्फमणिबंधा रुजाकराः ॥ ५९ ॥

### ममणां प्रमाणम्

तेषां विटपकक्षाधृगुर्व्यः कूर्जशिरांसि च ।

द्वादशांगुलमानानि, द्वांगुले मणिबंधने ॥ ६० ॥

गुल्फौ च स्तनमूले च, अंगुली जानुकूर्परो ।

अपानवस्तिहृन्नाभिनीलाः सोर्मतमातृकाः ॥ ६१ ॥

कूर्जर्गृष्टमन्याश्च त्रिशदेकेन<sup>१</sup> वजिताः ।

आत्मपाणितलोन्मानाः, <sup>२</sup>शेषाण्यधंगुलं वदेत् ॥ ६२ ॥

पञ्चाशत्पट् च मर्माणि तिलश्रीहिमन्यपि ।  
इष्टानि मर्माण्यन्येषाम्<sup>१</sup>

मर्माभिधातेमरणप्रकारः—

चतुर्घोक्ताः सिरास्तु याः ॥ ६३ ॥

तर्पयन्ति वपुः कृत्स्नं वा मर्माण्याश्रितास्ततः ।  
तत्क्षताक्षतजात्यर्थप्रवृत्तेर्धतुसंक्षये ॥ ६४ ॥  
बुद्धस्त्रालो रुजस्तीव्राः प्रतनोति ममीरयन् ।  
तेजस्तदुद्धृतं घत्ते तुज्जाशोपमदन्नमाम् ॥ ६५ ॥  
स्विन्नस्रस्तश्लघतनुं हरत्येनं ततोऽन्तकः ।

मर्माभिधातेचिकित्सा—

१ यर्धयेत्संधितो गार्धं मर्मण्यभिहृते द्रुतम् ॥ ६६ ॥  
छेदनात्संधिदेशस्य संकुचंति सिरा ह्यतः ।  
जीवितं प्राणिनां तत्र रक्षते तिष्ठति तिष्ठति ॥ ६७ ॥

अमर्मणिविद्वस्यजीवनादि—

सुविक्षतोऽप्यतो जीवेदमर्मणि न ममणि ।  
प्राणपातिनि जीवेत्तु कश्चिद्द्वययुगेन चैत् ॥ ६८ ॥  
असमग्राभिधाताच्च सोऽपि वैकल्पमश्रुते ।  
तस्मात्क्षारविषाभ्यादीन् यत्नान्मर्ममु वर्जयेत् ॥ ६९ ॥

मर्माभिधातो रक्षः—

मर्माभिधातः स्वल्पोऽपि प्रायशो बाधतेतराम् ।  
रोगा मर्माधितास्तद्वत्प्रक्रांता<sup>२</sup> यत्नतोऽपि च<sup>३</sup> ॥ ७० ॥

१ अन्येषामाचार्याणांमते तिलश्रीहिमन्यपानीष्टानि । २ बद्धयेत् छेदयेत् ।

३ तद्वत् बाधतेतराम् । प्रक्रान्ताश्चिकित्सा ।

## पंचमोऽध्यायः ।

### रोगविज्ञानम्

यथाऽजो विकृतिविज्ञानीयं शारीरं व्याख्यास्यामः ।

रिष्टं मृत्योर्लक्षणम्—

पुण्यं फलस्य धूमोऽग्नेर्वर्षस्य जलदोदयः ।

यथा भविष्यतो लिङ्गं रिष्टं मृत्योस्तथा ध्रुवम् ॥ १ ॥

रिष्टाभावे मरणभावः—

अरिष्टं नास्ति मरणं दृष्टरिष्टं च जीवितम् ।

अरिष्टे रिष्टविज्ञानं न च रिष्टेऽप्यनपुण्यम् ॥ २ ॥

आग्नेयमतेरिष्टमेव निर्देशः—

केचित्तु तद्विद्येत्याहुः स्वाम्यस्याग्निविभेदतः ।

दोषाणामपि बाहुल्याद्विष्टाभासः समुद्भवेत् ॥ ३ ॥

स दोषाणां क्षमे साम्येत्साम्यवश्यं तु मृत्यवे ।

रिष्टलक्षणम्—

स्पर्शेन्द्रियस्वरूपायाप्रतिच्छाद्याऽन्यादिषु ॥ ४ ॥

अन्येष्वपि च भावेषु प्राकृतैष्वनिमित्ततः ।

विकृतिर्मां समासेन रिष्टं तदिति लक्षयेद् ॥ ५ ॥

केशरोमादीरिष्टलक्षणम्—

केशरोम निरम्यगं यस्याऽम्यवतमिवेक्ष्यते ।

नेत्रादौरिष्टलक्षणम्—

यस्यात्वर्थं चक्षु नेत्रे स्तब्धाऽतर्गतनिर्गते ॥ ६ ॥

जिह्वे विस्तृतसंक्षिप्ते मक्षितविनतभ्रुणो ।  
 उद्भ्रांतदर्शने होनदर्शने नकुलोपमे<sup>१</sup> ॥ ७ ॥  
 कपोताभे भ्रालाताभे स्मृते लुण्ठितपद्मणी ।  
 नासिकाऽर्धविवृता संबृता पिष्टिकाचिता ॥ ८ ॥  
 उज्ज्वला स्फुटिता म्लाना

### ओष्ठादौरिष्टलक्षणम्—

यस्योष्ठो यात्यधोऽधरः ।

ऊर्ध्वं द्वितीयः स्यात्ता वा पक्कजंभुनिभावुमौ ॥ ९ ॥  
 दंताः सशर्कराः श्यावास्ताम्राः पुण्डितपर्विताः ।  
 सहस्रैव पतेयुवां, जिह्वा जिह्वा विमर्षिणी<sup>२</sup> ॥ १० ॥  
 श्वेता गुष्का गुह. श्यावा लिप्ता सुप्ता सकटका ।

### शिरश्चादौरिष्टलक्षणम्—

शिरः शिरोधरा बोहुं पृष्ठं वा भारमात्मनः ॥ ११ ॥  
 हनू वा पिडमात्मस्य शक्रुर्वति न यस्य च ।  
 यस्यानिमित्तमगानि गुह्ययतिलघूनि वा ॥ १२ ॥  
 विषदोषाद्रिना यस्य खेभ्यो रवतं प्रवर्तते ।  
 'उत्तिमत्तं मेहनं, यस्य धृपणावतिनि.सूतो ॥ १३ ॥  
 अतो<sup>३</sup>ऽप्यथा वा यस्य स्यात्सर्वे ते कालचोदिताः ।

### ललाटगतोरिष्टलक्षणम्—

यस्याऽग्राः मिरालेला बार्नेद्वावृत्तयोऽपि वा ॥ १४ ॥  
 ललाटे अस्तिशोषे वा पशमासान्नं स जीवति ।  
 पश्चिनीपत्रवत्तोयं शरीरे यस्य देहिनः ॥ १५ ॥

१ नकुलोपमा इति नकुलान्वस्तुदिवाद्यु-मलानिरूप्याणिपश्यति । कपोताभ इति—कपोताभ्वस्तुदिवा कृष्णानि रूपाणि पश्यति । भ्रालातस्तताङ्गारः ।  
 २ विमर्षिणी प्रसृता । ३ उत्तिमत्तमन्तः प्रविष्टम् । ४ अतोऽप्यथेति मेहनमपि नि.सूतं धृपणी चांतः प्रविष्टौ ।

प्लवते <sup>१</sup>प्लवमानस्य पण्मासं तस्य जीवितम् ।

सिरादौरिष्टलक्षणम्—

हरिताभाः सिरा यस्य रोमकूपाश्च सर्वताः ॥ १६ ॥

मोञ्ज्ताभिलापो गुरुषः पित्तान्मरणमभ्युते ।

मूर्धादौरिष्टलक्षणम्—

यस्य गोमयचूर्णमि चूर्णं मूर्ध्नि मुखेपि वा ॥ १७ ॥

मल्लेहं मूर्ध्नि घृषो वा भासांतं तस्य जीवितम् ।

मूर्ध्नि भ्रुवोर्वा कुर्वन्ति <sup>१</sup>सोमंतावर्तका नवाः ॥ १८ ॥

मृत्युं स्वस्यस्य पङ्कजाजिरान्नादात्तुरस्य तु ।

जिह्वा इयामा मुक्तं पूति सभ्यमक्षि निमज्जति ॥ १९ ॥

खगा वा मूर्ध्नि क्षीयन्ते यस्य तं परिवर्जयेत् ।

उरश्चादौरिष्टलक्षणम्—

यस्य स्नातानुलिप्तस्य पूर्वं क्षुब्धपुटो भृगम् ॥ २० ॥

मार्देंदु नर्षमात्रेषु सोऽर्धमास न जीवति ।

गात्रेप्राकृतवर्षकृतवर्णादिरिष्टलक्षणम्—

श्वकस्माद्युगपद्वात्रे वर्णां प्राकृतवैश्वती ॥ २१ ॥

तथैवोपशयग्नानिरोक्ष्यलेहादि मृत्यवे ।

यस्य स्फुटेषुरंगुल्योऽनाकुशं न स जीवति ॥ २२ ॥

श्वकानादिषु तथा यस्याऽङ्गुर्वो ध्वनिभवेत् ।

हृस्वो दीर्घोऽति शोब्धश्वासः पूतिः सुरभिरेव वा ॥ २३ ॥

<sup>१</sup>माप्सुतानाप्युते काये यस्य गंभोऽतिमानुषः ।

मनवस्त्रणादौ वर्षानं तस्य जीवितम् ॥ २४ ॥

यूकामक्षिकादिकृनस्त्रीकार स्यागादि रिष्टचिह्नम्

भजंतेऽयं गसोरस्याद्यं यूकामक्षिकादयः ।

१ प्लवमानस्य—स्नानं कुर्वतः । २ सोमतः रेखा । ३ माप्सुतानाप्युते स्नातास्नाते ।

तद्वद्दधरमम्यशान् मन्यते यो विपर्ययात् ॥ ३५ ॥  
सर्वशो वा न यो यश्च दीपगंधं न जिघ्रति ।  
विधिना यस्य दोषाय स्वास्थ्यायाविधिना रसाः ॥ ३६ ॥  
यः पांसुनेव कीर्णगो योजगघातं न वेत्ति वा ।

तपश्चादिनाविनाऽस्तीन्द्रियविज्ञानम्--

१प्रंतरेण तपस्तीव्रं योगं वा विधिपूर्वकम् ॥ ३७ ॥  
जानात्यतीन्द्रियं यश्च तेषा मरणमादिशेत् ।

स्वरविकृतिः--

हीनो दीनः स्वरोऽप्यक्तो यस्य स्याद्भ्रूद्वोऽपि वा ॥ ३८ ॥  
सहसा यो विमुह्येद्वा धिबभुर्न स जीवति ।  
स्वरस्य दुर्बलीभावं हानिं वा वसवर्णयोः ॥ ३९ ॥  
रोगवृद्धिमयुत्वया च दृष्ट्वा मरणमादिशेत् ।  
२अपस्वरं प्रापमाणं प्राप्तं मरणमात्मनः ॥ ४० ॥  
ओतारं वास्य जलस्य दूरतः परिवर्जयेत् ।

छायाश्रयंरिष्टम्--

मस्थानेन प्रमाणेन बलौन प्रभासापि वा ॥ ४१ ॥  
छाया विवर्तते यम्य स्वप्नेऽपि प्रेत एव स; ।  
मातपादर्शतोमादो या संस्थानप्रमाणतः ॥ ४२ ॥  
छायाऽमासंभवत्युक्ता प्रतिक्रियायेति ना पुनः ।  
वर्णप्रमाश्रया वा तु ना छायेव शरीरगा ॥ ४३ ॥  
भवेद्यस्य प्रतिक्रिया छिन्ना भिन्नाऽधिकाऽऽक्रुता ।  
विशिरा त्रितिरा जिह्वा विकृता यदि वाऽन्यथा ॥ ४४ ॥  
तं ममात्मायुषं विद्यान्न चेह्ल'धनिमित्तञ्च ।

१—प्रंतरेण विना । २—अपस्वरमिति—मरिष्यामि मरिष्यामीति  
श्रुवन्तमिरमर्थः । ३—लक्षयितुं प्रत्यक्षादि । प्रमाणः शक्यं, लक्ष्यं च तन्निमित्तं च  
तस्माज्जाता । दृश्यकारणोत्पत्त्या ।



प्रतिच्छायायामयो यस्य न चादृणीक्येत कन्यका<sup>१</sup> ॥ ४५ ॥

स्नादीनां पंच पंचानां छाया विविधलक्षणाः ।

नाभसो निर्मलाऽनीला मन्त्रेहा मप्रभेव च ॥ ४६ ॥

वाताद्रजोऽरुणा श्यावा भस्मरुशा हृतप्रभा ।

विमुद्धरक्ता त्वाष्ट्रेयो दोस्ताभादर्शनप्रिया ॥ ४७ ॥

शुद्धवैदूर्यविमला मुग्निग्वा तोयजा सुखा ।

स्थिरा शिग्वा घना शुद्धा श्यामा श्वेता च पार्विवी ॥ ४८ ॥

वायवी रोगमरणक्लेषायान्याः मुक्तोदयाः ।

### प्रभायाः सप्तप्रकारस्त्वम्—

प्रभोक्ता तंजसी सर्वा सा तु सप्तविधा स्मृता ॥ ४९ ॥

रक्ता पीतासिता श्यामा हरिता पाहुराऽसिता ।

तासां याः स्फुटिकासिन्धुः क्षिग्वाश्च विमलाश्च याः ॥ ५० ॥

ताः शुभा, मलिना रक्ताः संक्षिप्ताश्चामुक्तोदयाः ।

वर्णमाक्रामति छाया प्रभा वर्णप्रकाशिनो ॥ ५१ ॥

आसन्ने लक्ष्यते छाया विकृष्टे भा प्रकाशते ।

नाऽच्छायो नाऽप्रभः कश्चिद्विशेषाभिह्वयति तु ॥ ५२ ॥

मृणां शुभाशुभोत्पत्तिं काले छायासमाश्रया ।

### गमनेपादन्यासरिष्ट चिह्नम्—

निकपन्निव यः पादो न्युतांसः परितर्पति ॥ ५३ ॥

### भोजनाभयरिष्टम्—

हीयते बलतः शश्वद्योजनमभम् हितं बहु ।

योऽप्याशी बहुविरम्भो बहुलाशी चाल्पमुत्रविट् ॥ ५४ ॥

योऽप्याशी वा कफेनार्तो दीर्घं श्वसिति वेष्टते ।

दीर्घमुच्छ्वस्य यो ह्रस्वं निःश्वस्य परिताम्यति ॥ ५५ ॥

१—कन्यका प्रतिबिम्बकुमारिकान्यस्य पुरुषस्य, आतुरनयनगताएव तारका

वा । २—वैदूर्यं “लहसुनिमा” इतिनोके ।

हृस्वं च यः प्रश्नमिति व्याविर्दं<sup>१</sup> स्पन्दते भृशम् ।  
 शिरोविक्षिपते कृच्छ्राद्योऽवयित्वा प्रपाणिको ॥ ५६ ॥  
 यो ललाटात्सुतस्वेदः श्लयसंधानबंधनः ।  
 उत्थाप्यमानः संमुह्यो बली दुर्बलोपि वा ॥ ५७ ॥  
 उत्तान एव स्वपिति यः पादौ विकरोति च ।  
 शयनासनकुड्यादौ योऽमदेव जिघृक्षति ॥ ५८ ॥  
 महास्यहासी संमुह्यन् यो लेढि दशदण्डौ ।

उत्तरोष्ठ परिलेहनादि मृत्युचिह्नम्—  
 उत्तरोष्ठं परिलेहन् फूत्कारांश्च करोति यः ॥ ५९ ॥  
 यमभिद्ववति च्छाया वृष्ट्या पीताऽस्त्यापि वा ।  
 भिषग्भेषजपानान्नगुरुमित्रद्विषश्च ये ॥ ६० ॥  
 वशगाः सर्व एवैते विज्ञेयः समवतिनः<sup>२</sup> ।

मीवादीनां शीतलादि रिष्ट चिह्नम्—  
 मीवालाटादहृदयं यस्य स्विच्छति शीतलम् ॥ ६१ ॥  
 उज्ज्वलोऽपरः प्रदेशश्च शरणं तस्यदेवता ।

स्तोकदृष्टत्वादि—

‘योऽगुज्योतिरनेकाग्रो दुश्छायो दुर्मनाः सदा ॥ ६२ ॥  
 बलिं बलिभृतो यस्य प्रणीतं नोपभृजते ।  
 निर्निमित्तं च यो मेधा शोभाभुषणं त्रियम् ॥ ६३ ॥  
 प्राप्नोत्यती वा विघ्नं स प्राप्नोति यमक्षयम् ।  
 गुणदोषमयो यस्य स्वस्थस्य व्याधितस्य वा ॥ ६४ ॥  
 मात्यन्यथात्वं प्रकृतिः पण्मासान् न जीवति ।

भक्त्यादिनिवर्तनचिह्नम्—

‘भक्तिः शोभं स्मृतिस्त्यागो बुद्धिर्बलमहेतुकम् ॥ ६५ ॥

१ व्याविर्दं विषमम् । प्रपाणिको मण्डित्वात्कूर्परपर्यन्तो भागः प्रपाणिकः  
 “गट्टा” इति हिन्दी । २ समवतिनोयमस्य । ३ अगुज्योतिर्मन्दादिः । बलि-  
 भृतःकाकादयः । ४ भक्तिरिच्छा ।

पडेतानि निवर्तते षड्भिर्मासैर्मरिष्यतः ।

मत्तवद्गत्यादि चिह्नम्—

मत्तवद्गतिवाक्पमोहा मासान्मरिष्यतः ॥ ६६ ॥

केशलुंचनाऽऽज्ञानादि चिह्नम्—

नश्यत्यजानम् पटहात्केशलुंचनवेदनाम् ।

न याति यस्य चाहारः कंठं कंठाभयाहते ॥ ६७ ॥

१ प्रेष्याः प्रतीपतां यासिप्रैताकृतिरदीर्यते ।

यस्य निद्रा भवेन्नित्यं नैष वा न न जीवति ॥ ६८ ॥

वक्त्रमापूर्यतेऽम्रूणां स्विघ्रतश्चरणी भृशम् ।

चक्षुश्चाकुलतां याति यमराज्यं गमिष्यतः ॥ ६९ ॥

यैः पुरा रमते भावैररतिस्तैर्न जीवति ।

सहसाविकारोत्पत्तिनाशौ—

सहसा जायते यस्य विकारः सर्वलक्षणः ॥ ७० ॥

निवर्तते वा सहसा सहसा न विनश्यति ।

ज्वरेरिष्टचिह्नम्—

ज्वरो निहति बलवाम् गर्भारो दैर्घ्यरात्रिकः ॥ ७१ ॥

सप्रसापन्नमश्नासः क्षीणं घूर्णं हतानलम् ।

अक्षामं मत्तवचनं रक्ताक्षं हृदि शूलितम् ॥ ७२ ॥

संशुष्कवासः पूर्वाह्णे योपराह्णेऽपि वा भवेत् ।

बलमामविहीनस्य श्लेष्मकासममन्वितः ॥ ७३ ॥

रक्तपित्ताविकृतिलक्षणंरिष्टचिह्नम्—

रक्तपित्तां भृशं रक्तं कृष्णमिद्रघनुःप्रभम् ।

साभ्रहारिद्रहरितं रूपं रक्तं प्रदर्शयेत् ॥ ७४ ॥

रोमकूपप्रविसृतं कंठास्यहृदये सजत् ।

वासमी रंजनं पूति वेगवच्चातिभूरि च ॥ ७५ ॥

वृद्धं पांडुज्वरच्छदिकामशोफातिसारिणम् ।  
 कासश्चासौ ज्वरच्छदितृष्णातीसारशोफिनम् ॥ ७६ ॥  
 यक्ष्मा पाण्डुज्वरच्छदिकामशोफातिसारिणम् ।  
 छादिर्वेगवती मूत्रशब्ददमधिः सचदिका ॥ ७७ ॥  
 मासविट्प्रयस्कृतासश्चासवत्यनुपंगिणी ।  
 तृष्णाज्वररोगदापितं बहिर्जिह्वं विचेतनम् ॥ ७८ ॥  
 मदत्ययोऽतिशीतार्तं क्षेण तैलप्रभाननम् ।  
 अशोसि पाण्डुज्वरच्छदिकामशोफातिसारिणम् ॥ ७९ ॥  
 हृत्पाश्चात्तृष्णाच्छदिकामशोफातिसारिणम् ।  
 अतीसारां यक्ष्मिण्डपांसपावनमेचकैः ॥ ८० ॥  
 तुल्यस्तैलधृतक्षीरदधिमज्जवसामर्चः ।  
 मस्तुलुङ्गमयीपूयवेमवारारुमाक्षिकैः ॥ ८१ ॥  
 अतिरक्तासि तस्मिन्प्रयस्कृत्य चनवेदनः ।  
 कर्तुः प्रलवम् धातुम् निम्बुरीपांश्चवातितिद् ॥ ८२ ॥  
 तनुमाप् मक्षिकाक्रांतीं राजीमांश्चंदकैर्युतः ।  
 शीर्षाणामुर्वलि मुक्तनालं पर्वीस्त्रिगुलिनम् ॥ ८३ ॥  
 सस्तपायुं बलशीलमन्नमेवोपवेद्यमेव ।  
 मत्तृष्णासज्वरच्छदिकामशोफातिसारिणम् ॥ ८४ ॥  
 अश्मरी शूनवृणं बद्धमूर्ध्ना हृत्पादितम् ।  
 मेहस्तृष्णाहपिटिकामांसकीपातिसारिणम् ॥ ८५ ॥  
 पिटिका मर्महृत्पृष्ठमनांसगुदमर्धगाः ।  
 पर्वणादकरस्था वा मंदोत्साहं प्रमेहिणम् ॥ ८६ ॥  
 'सर्वं च मांससंकोचदाहृत्पृष्णामदज्वरः ।  
 निशर्पमर्मसरोषहिष्माश्चासभ्रमवलमः ॥ ८७ ॥  
 गुल्मः पृष्ठपरीणाहो धनः कूर्म इवोन्नतः ।  
 तिरानद्धो ज्वरच्छदिकामशोफातिसारिणम् ॥ ८८ ॥  
 शासपीनसहृत्पासश्चासौसारशोफिणम् ।

## उदररोगेरिष्टचिह्नम्—

विरामूत्रसंग्रहभामशोफहिम्माज्वरभ्रमः ॥ ८६ ॥  
 मूर्धाध्वंतिसारथ्यं जठरं हन्ति दुर्बलम् ।  
 घृणाक्षं कुटिसोपस्थमुपविलम्बतनुत्वचम् ॥ ९० ॥  
 विरेचनहृत्तानाहमानाहृतं पुनः पुनः ।  
 पांडुरोगः श्वयथुमान् पोसाक्षिनस्तदर्शनम् ॥ ९१ ॥

## शोफेरिष्टचिह्नम्—

तंक्षादाहारचिच्छिदिमूर्च्छाम्मानातिसारवाम् ।  
 अनेकोपद्रवपुतः पादाम्ब्या प्रसूतो नरम् ॥ ९२ ॥  
 नारी शोफो मुख्यादंति कुलिगुह्यादुभावपि<sup>१</sup> ।  
 राजीचितः सर्वश्लेष्मिज्वरश्चासातिमारिणम् ॥ ९३ ॥

## ज्वरादयामृत्युहेतवः—

ज्वरातिसारी शोफांते श्वयथुर्वा तपोः क्षये ।  
 दुर्बलस्य विशेषेण जायतेऽन्त्याय देहिनः ॥ ९४ ॥

## पादस्थश्वयथुचिह्नम्—

श्वयथुर्यस्य पादस्थः परिसस्ते च पिष्टिके ।  
 सोदतः सविषनी चैकं तं निषण्णं परिवर्जयेद् ॥ ९५ ॥

## मुखादेर्विशेषशोपोमृत्युहेतुः—

भाननं हस्तपादं च विशेषाद्यस्य दृश्यतः ।  
 श्लेष्मेते वा बिना देहात्स मासाद्याति पंचताम् ॥ ९६ ॥  
 विसर्पः कासवैवर्त्यज्वरमूर्च्छाग्रंभवाम् ।  
 अमास्यशोषहृत्तासदेहसादातिसारवाम् ॥ ९७ ॥

## कुष्ठेरिष्टचिह्नम्—

कुष्ठं विशोयमाणां रक्तनेत्रं हतस्वरम् ।  
 मदाति जंतुभिर्जुष्टं हन्ति तृष्णातिसारिणम् ॥ ९८ ॥

वायुः सुप्तत्वं भग्नं कफशोफरुजातुरम् ।  
 वातास्रं मोहमूर्च्छाभिन्दस्वप्नज्वरान्निमित्तम् ॥ ९९ ॥  
 शिरोग्रहाक्षिभ्रामसकोचस्फाटकोपवत् ।  
 शिरोरोगाक्षिभ्राममोहविड्भेदतृड्भ्रमः ॥ १०० ॥  
 ध्नन्ति सर्वाभयाः क्षीणस्वरघानुबलानलम् ।

वातरोगादीनां रिष्टचिह्नम्—

वातभ्याधिरभस्मारी कृद्धो रक्तपुदरो क्षयी ॥ १०१ ॥  
 गुल्मी मेही च ताम् क्षीणाम् विक्षारेऽप्येव वज्रयेत् ।

घलमांसक्षयादिचिह्नम्—

जलमांसक्षयस्तीक्ष्णो रोगवृद्धिररोचकः ॥ १०२ ॥  
 यस्यातुरस्य लक्ष्येते श्रोत्रं पलान्नं च जीवति ।  
 वाताऽऽसीलाऽतिसंयुद्धा निष्ठती दाहणा हृदि ॥ १०३ ॥  
 मृग्याया तु परीतस्य मद्यो मुप्युणाति जीवितम् ।  
 शैबिल्यं शिथिलं चायुनात्स्या नाम्ना च जिह्वाताम् ॥ १०४ ॥  
 क्षीणस्याप्यग्नौ मद्ये वा मद्यो मुप्युणाति जीवितम् ।  
 नाभीगुदातरं गत्वा वंशणी वा ममाधयन् ॥ १०५ ॥  
 गृहीत्वा पायुर्हृदये क्षीणदेहस्य वा बली ।  
 नलान् यस्तिशिरो नाभि विवद्वद्य जनयन् रुजम् ॥ १०६ ॥  
 कुर्यम् वंशणयोः घूल मृग्या भिन्नपुरीषताम् ।  
 श्वासं वा जनयन् वायुर्गृहीत्वा गुदवंशणम् ॥ १०७ ॥  
 १ वितत्य पशुकाप्राणि गृहीत्वोरश्च मासतः ।  
 स्तिमितस्यातताक्षस्य मद्यो मुप्युणाति जीवितम् ॥ १०८ ॥

ज्वरसंतापादीनां रिष्टत्वम्—

सहसा ज्वरसंतापस्तृष्णा मूर्च्छा बलक्षयः ।  
 विश्लेषणं च संघीनां मुमूर्षोरप्यजायते ॥ १०९ ॥

भोसर्गे वदनाद्यस्य स्वेदः प्रच्यवते भृशम् ।  
 लेनज्वरोपतप्तस्य दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥१०॥  
 प्रवालशुलिकाभासा यस्य नात्रे मसूरिकाः ।  
 उत्पद्याशु विनश्यति नचिरात्स विनश्याति ॥११॥  
 मसूरविदलप्रख्यास्तथा विद्रुमसन्निभाः ।  
 श्लेष्मन्त्राः किण्वाभाश्च विस्फोटा देहनाशनाः ॥१२॥  
 कामलाऽऽणोर्मुखं पूर्णं शरीरयोर्भुक्तमागता ।  
 संत्रासश्चोष्णताग्ने च यस्य तं परिवर्जयेत् ॥१३॥  
 अकस्मादनुधावच्च विघृष्टं त्वक्गमाश्रयम् ॥

### अणेरिष्टचिह्नम्—

यो वातजो न शूलाय स्यान्न दाहाय पित्तजः ॥१४॥  
 कफजो न च पूषाय मर्मजश्च रजं न यः ।  
 अमूर्णश्चूर्णकीर्णाभो यत्राऽवस्मान्च दृश्यते ॥१५॥  
 रूपं शक्तिध्वजादीनां सर्वास्तीग्वजयेद्व्यणान् ।  
 विण्मूत्रमास्तवहं कृमिणं च भगन्दरम् ॥१६॥  
 ●क्षेपकः—वदनोर्मीरमदिराकुण्ठपञ्चाक्षरंघमः । शैवाल-  
 पुक्कुटशिलाकुंदघालिमयप्रभा । अंतर्दाहा निरुप्माणः प्राण  
 नाशकरा व्रणाः ॥१॥

### जानुमट्टनादिरिष्टचिह्नम्—

षट्पद्मं जानुना जानु पादाबुधम्य पातयम् ।  
 योऽनास्यति मुहुर्वक्त्रमातुरो न म जीवति ॥१७॥

### आतुरस्यव्यापागविशेषः—

रंतंश्छिदन्नसादाणि तत्र केनास्तृणानि च ।  
 भूमि काप्टेन विनिसम् लोप्यं सोप्टेन वाहयन् ॥१८॥  
 हृत्परोषा गांद्रमूत्रः शुष्कभाभो प्वरो च यः ।

मृदुहंसम् मृदुः दवेडन् शरणा पादेन हति यः ॥११६॥  
मृदुश्छि<sup>१</sup>द्राणि विमृशन्नातुरो न स जीवति ।

तिलकच्यंगादिरिष्टचिन्हम्—

मूरयवे सहमार्तस्य तिलकच्यंगविप्लवः ॥१२०॥  
मुखे दंतनखे पुष्पं जठरे विविधाः सिराः ।

ऊर्ध्वरवासादिरिष्टचिन्हम्—

ऊर्ध्वश्वासं गतोष्माणं झूलोपहृतवंक्षणम् ॥११२॥  
जर्म बाह्रभिगच्छन् बुद्धिमान् परिवर्जयेत् ।

सहसाधिकारिरिष्टचिन्हम्—

विकारा यस्य वर्षते प्रकृतिः परिहोयते ॥१२२॥  
महसा महमा तस्य मृत्युर्हरति जीवितम् ।

अपिपधसम्बन्धिरिष्टम्—

यमुद्दिश्यातुर्न वैद्यः संपादयितुमीपधम् ॥१२३॥  
यतमानो न गवनोति दुर्लभं तस्य जीवितम् ।  
विज्ञातं बहुशः सिद्ध विधिवच्चावच्चारितम् ॥१२४॥  
न मिथ्यायोपधं यस्य नास्ति तस्य चिकित्सितम् ।  
भवेद्यस्योपधेऽने वा कल्प्यमाने विपर्ययः ॥१२५॥  
प्रकल्पाद्वर्णमंथादेः स्वस्थोऽपि न स जीवति ।

अग्न्यादिमूत्रमूत्रान्धिरिष्टम्—

निवाते सैबनं यस्य ज्योति<sup>२</sup>श्चाप्नुपशाभ्यति ॥१२६॥  
आतुरस्य गृहे यस्य भिक्षुने वा पतति वा ।  
अतिमात्रमम<sup>१</sup>त्राणि दुर्लभं तस्य जीवितम् ॥ १२७ ॥  
यं नरं सहसा रोगां दुर्वतं परिमुञ्चति ।  
मंशयं प्राप्तमानेयो जीवितं तस्य मन्त्रते ॥ १२८ ॥  
पृष्टस्यापिचैद्यस्य आतुरमग्नकथन निषेधः—



कथमेतन्निव पृष्ठोऽपि दुःश्रवं मरणं भिषक् ।  
गतासोर्वंषुमित्राणां न चेच्छ्रेतं चिकित्सितुम् ॥ १२६ ॥

मुमुर्षोर्यमदूतादीनामोपघवीर्यं हन्तृत्वम्—  
यमदूतपिशाचादीर्यत्परासुखास्पते ।  
घ्नद्भिरोपघवोर्वाणि तस्मात्तं परिवर्जयेत् ॥ १३० ॥

भिरजोरिष्टज्ञानादरणम्—  
प्रापुर्वेदकन वृद्धस्य यथायुजं प्रतिष्ठितम् ।  
रिष्टज्ञानादृतस्तस्मात्पर्यवदेव भवेद्भिषक् ॥ १३१ ॥

मरणे पुण्यायुःक्षयस्यहेतुत्वम्—  
मरणं प्राणिनां दृष्टमायुःपुण्योभयक्षयात् ।  
तयोरेष्यभयादृष्टं विषभापरिहारिणाम् ॥ १३२ ॥

## पष्ठोऽध्यायः ।

### रोगविज्ञानम्

प्रवाजो दूतादिनिज्ञानीव जागेरं व्याख्यास्यामः ।

पाण्डुहृद्वादिदूतानां शुभाशुभसूचकत्वम्—

पाण्डुहृद्वाश्रमवर्णानां भवर्णाः कर्मसिद्धये ।

त एव विविरीताः स्पृष्ट्वा कर्मविपक्षये ॥ १ ॥

दीनादिदूतानिपिद्धाः—

दीनं भीतं द्रुतं त्रस्तं रुधिरमलवादिनम् ।

जस्त्रिणं दंढिनं खंडं मुडवमश्रुं जटावरम् ॥ २ ॥

१ तयो रायुः पुण्ययोः । २ पाण्डुहृद्वाः कागलिकादयः । पालनाच्चत्रयो  
धर्मान् पाण्डवेन निगद्यते, तं खण्डयन्ति ते यस्मात्पाण्डुहृदाम्नेन हेतुना । आश्रमाः—  
ब्रह्मचारिगृहस्थादयः, वर्णा ब्राह्मणादयः । कर्मचिकित्सा ।

अभंगलाह्वयं क्रूरकर्माणु मलिनं द्विषम् ।  
अनेकध्वानितं व्यथं रक्तमात्मानुलेपनम् ॥ ३ ॥  
तैलपंकान्क्तिं जीर्णविवर्णाद्रिकवामसम् ।  
खरोष्ट्रमहिषारूढं काष्ठलोप्यादिमदिनम् ॥ ४ ॥  
नानुगच्छेद्भिषग्दूतमाह्वयनं च दूरतः ।

कार्यविशेषामस्तेवैशेदूतागमनंमृत्युमृकम्—  
अगस्त्यविस्तारवने, नग्ने ध्वजति भिदति ॥ ५ ॥  
जुह्वाने पादकं, रिडाप् पितृभ्यो निर्वपत्यपि ।  
मग्ने मृत्तश्चेद्भ्यवने ददत्यप्रयते' तथा ॥ ६ ॥  
घेद्ये दूता मनुष्याणामागच्छन्ति ममूर्पताम् ।

देशविशेषात्रागतो दूतोऽशुभः  
विकारमामान्यगुणो देशे कालेऽपवा भिषक् ॥ ७ ॥  
दूतमभ्यागनं दृष्ट्वा नातुरं तमुपाचरेत् ।

अशुभदूतव्यापाराः—

मृशंतो नाभिनामास्यकेशरोमनखद्विधाप् ॥ ८ ॥  
गुह्यपृष्ठस्तनग्रीवाऽठराणापिकागुली ।  
कापसिद्युः३गगोसास्थिरुपालमुशतोपलम् ॥ ९ ॥  
मार्जनीशूर्पचैलातभस्मागारऽशातुपाप् ।  
रज्जुपानतुलापाशमग्न्यद्वा भग्नविच्युतम् ॥ १० ॥  
तत्पूर्वदर्शने दूता व्याहरन्ति मरिष्यताम् ।

कालविशेषआगतो दूतोऽशुभः  
तथाऽर्धरात्रे मध्याह्ने संध्ययोः पर्ववागरे ॥ ११ ॥

१ मप्रयतेऽपवित्रे । २ विकारेण-रोगेण सामान्यस्तुत्यो गुणो यस्य तस्मिन्-यथा कफजे विकारे जलसमीपे देशे, काले प्रातरागतो दूतोऽशुभः ।  
३ युतं "भूसा" । मार्जनी "आहु" चैलान्तम्-वस्त्राञ्जलम् भेंचरा" दशा "त्रिनारा" इति हिन्दी । तत्पूर्वदर्शने तस्य वैद्यस्य अथमदर्शने । ४ पर्ववागरे व्यतीपातादौ । पर्व्य मघा । नैर्ऋत भूलम् ।

पथीचतुर्थीनवमोराहुकेतूदयादिषु ।

भरणीकृत्तिकाऽऽश्लेषापूर्वाऽऽर्द्रापिंश्रुनेश्वरे ॥ १२ ॥

अशुभं दूतवाक्यम्—

यस्मिंश्च दूते ब्रूवति वाक्यमातुरसंश्रयम् ।

पश्येन्निमित्तमशुभं तं च नानुब्रजेद्भिषक् ॥ १३ ॥

अशुभप्रकाराः

तद्यथा विकलः प्रेतः प्रेतालंकार एववा ।

द्विभे दम्बं विनष्टं वा तद्वादीनि वचांसि वा ॥ १४ ॥

रंभो वा कटुकस्तोत्रो गंधो वा कीणरो महान् ।

स्पर्शो वा विपुलः क्रूरो यद्वाप्यदपि तादृशम् ॥ १५ ॥

तत्सर्वमभितो धान्यं वाक्यकालेऽप्यवा पुनः ।

दूतमभ्यागतं दृष्ट्वा नातुरं तमुपाचरेत् ॥ १६ ॥

अन्यदशुभनिमित्तम्—

हाहाक्रदिपुष्टक्रुष्टं रुदितं स्तलनं क्षुत्तम् ।

वखातपत्रपादप्रग्नसर्पं व्यसनीक्षणम् ॥ १७ ॥

चैत्यध्वजानां पानाणां पूर्णानां च निमज्जनम् ।

हतानिष्टप्रवादाश्च दूषणं भस्मयामुभिः ॥ १८ ॥

मार्जारदिभिः पथच्छेदोऽशुभः—

पथच्छेदोऽहिमार्जारगोपासरटवानरैः ।

क्रूराणां मृगपक्षिणां वाचोऽशुभाः—

दीप्तां प्रतिदिशं वाचं क्रूराणां मृगाक्षिणाम् ॥ १९ ॥

१ मातुरसंश्रयं रोगिसम्प्रन्धिवाक्यं ब्रूवति भिषगशुभनिमित्तं पश्येदित्य-  
न्वयः । २ तद्वादीनि द्विन्नादिवाचकानि । ३ हाहाक्रन्दितं रुदितम् । उदृष्टं  
दर्पादितिमात्रं निःशितम् । व्यसर्पं विनाशः । व्यसनिनामोपद्रुतानामोक्षण  
मवलोकनम् । ४ सरटः वृक्लासकः, दीप्तादिशम्-यस्यां दिशि सूर्यः स्थितः सादीप्ता ।  
क्रूराणां मांसभुजां, मृगाणां चूगालादीनां पक्षिणां श्रेयादीनाम् । उदश्चित्तरम् ।  
क्रूरो निष्ठुरवादो । श्वानश्वाणालः ।

येद्यस्यातुरगृहं गच्छतः कृष्णधान्यादीनां दर्शनमशुभम्—

कृष्णधान्यगुडोदधिलवणस्य चर्मणा ॥

सर्पपाणा वसुतैलतृणपत्रैश्च न स्य च ॥२०॥

बलीवक्त्ररश्मपाकानां जालघागुर्योरपि ।

द्यक्षितस्य पुरीषस्य पूतिदुर्दर्शनस्य च ॥२१॥

निःसारस्य व्यधायस्य कार्पासादेररेरपि ।

शयनाभनयानानामुत्तानाना तु दर्शनम् ॥२२॥

मृज्जानामितरेषां च पात्रादीनामशोभनम् ।

मृपपक्षिणां गमनाद्यशुभम्—

पुंसंशाः पक्षिणो वामाः स्त्रोमंशा दक्षिणाः शुभाः ॥२३॥

प्रदक्षिणं खगमुगा यांतो, नवं च जंबुका ।

अयुमाश्च मृगाः शस्ता शस्ता नित्यं च दर्शने ॥२४॥

चापभागभरद्वाजनकुलच्छागवहिणः ।

अशुभं सर्वदीलूकबिडालसरठेक्षणम् ॥२५॥

प्रशस्ताः कीर्तने<sup>१</sup> फोलगीधाहिजशकाहकाः ।

न दर्शने न विरुते, धानरक्षावितो<sup>२</sup>ऽन्यथा ॥२६॥

ऐन्द्रधनुषः शुभाशुभत्वे—

धनुरेद्रं च लालाटमशुभं शुभमन्यतः ।

अग्निपूर्णांदांनिपात्राण्यशुभानि—

अग्निपूर्णांनि पात्राणि भिन्नानि विशिष्टानि<sup>३</sup> च ॥२७॥

आतुरगृहे दध्यदिदर्शनमशुभम्—

दध्यक्षतादि निर्गच्छम् वक्ष्यमाणं च मंगलम् ।

वद्यो मरिष्यता वेशम प्रविशन्नेव पश्यति ॥२८॥

१ पागुरा-मृगबन्धनी । मृज्जोऽपोमुखः । २ कात्यायनः कीर्तनेशस्ताः, दर्शने विरुते च न शस्ताः । धानरक्षौतु अतोऽन्यथा—दर्शने विरुते च शस्तो कीर्तनेतु न शस्तो । ३ विशिष्टानि भन्तः नून्यानि खण्डितानि वा ।

दूतावमानु हृष्टं न त्यजेदार्तमथोऽप्यथा ।  
कल्याणशुद्धसंतानो यत्नतः समुपाचरेत् ॥२९॥

दध्यादिशुभनिर्देशः—

दध्यशतेधुनिष्ठावप्रियंगुमधुसन्निपाम् ।  
‘यावकांजनभृगारघंटादीपसरोरुहाम् ॥३०॥  
दूवाद्रमत्स्यमांसानां साजानां फलभक्षयोः ।  
रत्नेभ्रपूर्णकुंभानां कन्यायाः स्यंदनस्य च ॥३१॥  
गरस्य वर्धमा<sup>१</sup>नस्य देवतानां नृरस्य च ।  
शुभमानां सुमनोवालयामरावरवाजिनान् ॥३२॥  
शंखसाधुद्रिजोष्णोपतोरण<sup>२</sup>स्वास्तिकस्य च ।  
भूमेः समुद्रदूतायाश्च बह्वेः प्रजवलितस्य च ॥३३॥  
मनोज्ञस्यान्नपानस्य पूर्णस्य शकटस्य<sup>३</sup>च ।  
नृभिः, धैव्याः सवत्साया बह्वायाः, स्त्रिया अपि ॥३४॥  
जीवंजोषकसारंगसारसप्रियवादिनाम्<sup>४</sup> ।  
रुचकादर्शसिद्धार्थरोचनानां च दर्शनम् ॥३५॥  
शंभुः सुसुरभिर्वर्णः गुणुन्नतो मधुरो रसः ।  
गोपतेरनुकूलस्य स्वरस्तद्वद्गवामपि ॥३६॥  
मृगपक्षिनराणां च शोभिना शोभना गिरः ।  
छन्नध्वजपताकानां<sup>५</sup>मुत्क्षेपणमभिप्लुतिः ॥३७॥  
भेरीमुदगर्शस्त्रानां शब्दाः पुण्याहनिःस्वनाः ।

१ भृङ्गारः “भारी” यावकमलवतकः “महावर” इति इतितीके ।  
२ वर्धमानस्य निरस्य नत्येवमभ्युदयभुवतस्येनरस्य । सुमनः पुष्पम् । ३ तोरणम्  
“तोरन” इति हिन्दी । स्वास्तिकम् भङ्गलद्रव्यम् । ४ नृभिः पूर्णस्य शकटस्ये-  
त्यन्वयः । ५ प्रियवादी चातकः । रुचकः कङ्कणम् । सिद्धार्थः सर्वपः । रोचना  
“रवतक्लहारे गोपितवरयोपितो” इति कोपः । ६ उत्क्षेपणमुपरिस्थापनम् ।  
अभिप्लुतिः=जयजयेत्यादि शब्दपूर्वा अभिमुखमुच्चारितास्तुतिः । पुण्याह  
निःस्वनाः—प्रशस्तशब्दाः ।

वेदाध्ययनशब्दाश्च मृत्नो वायुः प्रदक्षिणः ॥३८॥  
पथि वेश्मप्रवेशे च विद्यादारोग्यलक्षणम् ।

अशुभस्वप्नकथनम्—

इत्युक्तं दूतशकुनं स्वप्नानूर्ध्वं प्रचक्षते ॥३९॥  
स्वप्ने मद्यं महं प्रेत्ययः पिवन् वृष्यते शुना ।  
म मर्यां मृत्युना शीघ्रं ज्वररूपेण नोपते ॥४०॥  
रक्तमात्मकपुर्वस्त्रो यो हसन् ह्रियते स्त्रिया ।  
मोऽप्यपिस्तेन,

महिषध्वराहोष्ट्रगर्भं ॥४१॥

यः पयाति दिशं याम्यां मरुगुं तस्य यक्षमया ।  
नता मन्दनिली यंशस्तालो वा हृदि जायते ॥४२॥  
अस्य तस्याशु गुल्मेन, यस्य बह्विमनविषम् ।  
कुङ्कुमो घृतसित्तस्य नग्नस्मोरगि जायते ॥४३॥  
यस्य स नश्येत्कुष्ठेन, चंडालैः सह यः पिवत् ।  
स्नेहं बहुविधं स्वप्ने स प्रमेहेण नश्यति ॥४४॥  
उन्मादेन जले मज्जेद्यो नृत्यन् राशसैः सह ।  
अपस्मारेण वा मर्यां नृत्यन् प्रेत्येन नीयते ॥४५॥  
यानं खरोष्ट्रमार्जारकपिशार्ङ्गलघूकरैः ।  
यस्य प्रेतैः शृगालैर्वा स मृत्योर्वर्तते पुच्छे ॥४६॥  
मृगपशङ्कुलीर्जम्बा विशुद्धस्तद्विधं वमम् ।  
नर्जीवति, अक्षिरोगाय मूर्खेदुग्रहणेशरम् ॥४७॥  
मूर्खान्द्रमसः पातदर्शनं दृग्विनाशनम् ।  
मूर्ध्नि यंशवतादीना संभवो वयसा तथा ॥४८॥  
नितयो मुंडता काकगृध्राक्षैः परिवारणम् ।  
तथा प्रेतपिशाचस्त्रीद्विविडाघनवाशनैः ॥४९॥  
संगो वेत्रलतावंशतृणकंटकसंघटे ।

१ ययमा पशिरागो मूर्ध्ननिलय उपवेशनम् । श्वाशनी मोमोयभशकः ।

अम्रश्मशानशयनं पतनं पांसुभस्मनोः ॥५०॥  
 मञ्जनं जलपंकादौ शोघ्रेण भक्षोत्सा हृतिः ।  
 नृत्यवादित्रगीतानि रक्तस्रग्मस्त्रधारणम् ॥५१॥  
 वयोऽङ्गवृद्धिरम्यं धो विवाहः शमयकर्म च ।  
 पक्वान्स्नेहमद्याद्यः प्रच्छर्दनविरेचने ॥५२॥  
 हिरण्यलोहयोर्लाभः कलिर्बधपराजयो ।  
 उपानद्युगनाशश्च प्रपातः पादचर्मणोः ॥५३॥  
 हर्षो भृशं प्रकुपितैः पितृभिश्चावमर्त्सनम् ।  
 प्रदीपग्रहनक्षत्रदंतदैचतचक्षुषाम् ॥५४॥  
 पतनं वा विनाशो वा भेदनं पर्वतस्य च ।  
 कानने रवउकुसुमे पापकर्मनिषेधने ॥५५॥  
 चित्तोपकारसंवाये जनन्यां च प्रवेशनम् ।  
 पातः प्राप्तादग्रीवादेर्मस्येन ग्रसनं तथा ॥५६॥  
 कापायिणाममौम्याना नमना दंष्ट्रवारिणाम् ।  
 रक्ताक्षणा च कृष्णाना दर्शनं जातु नेष्यते ॥५७॥  
 कृष्णा पापाननाचारा दोषकेशनस्रस्तनो ।  
 विरागमात्यवसना स्वप्नकालनिशा मता ॥५८॥

स्वप्नोद्भवकारणम्—

मनोवहाना पूर्णत्वात्स्रोतसां प्रबलेर्मलैः ।  
 दृश्यते दारणाः स्वप्ना रोमो यैर्मति पंचताम् ॥५९॥  
 अरोगः संशयं प्राप्य कश्चिदेव त्रिमुच्यते ।

सप्तविधःस्वप्नः—

'दृष्टः श्रुतोऽनुभूतश्च प्रापितः कलितस्तथा ॥६०॥  
 भाविको दोषजश्चेति स्वप्नः सप्तविधो मतः ।

स्वप्न नां सफलाफलत्वविचारः—

तेष्वप्या निष्फलाः पंच यथास्वप्रकृतिदिवा ॥६१॥

१ स्रोतमानन्दया । २ अनुभूतः—चक्षुर्गन्धेन्द्रियादितरेन्द्रियज्ञातो विषयः ।

कलिनो मनसाचिन्तितः दृष्टश्रुताद्यमम्यदः ।

विस्मृतो दीर्घह्रस्वोऽति, . . .  
पूर्वरात्रे चिरात्फलम् ॥६२॥

दृष्टः करोति पुच्छं,  
१ गीसर्गे तदहर्महत् ॥६३॥  
निद्रया चानुपहतः प्रतीपर्वचनेस्तथा ।

अशुभस्वप्नशान्तिः—

याति पापोऽनफलतां दानहोमजपादिभिः ॥६४॥  
दुःस्वप्ना न्तरं सुप्तप्रदर्शनं शुभम्—

अकल्याणमपि स्वप्नं दृष्ट्वा तत्रैव वा पुनः ।  
पश्येत्सोम्यं शुभं तस्य शुभमेव फलं भवेत् ॥६५॥

शुभस्वप्ननिर्देशः—

देवाम् द्विजाम् गोवृषभाम् जीवतः सुहृदो नृपाम् ।  
साधून् यगस्त्विनो वह्निमिन्द्रं स्वच्छाम् जलाशयान् ॥६६॥  
कन्या कुमारकान् गोरात्रं शुक्लवस्त्राग्नतेजसः ।  
१ नराशनं दासतनुं ममंताद्भिराश्रित ॥६७॥  
यः पश्येत्सोमते यो वा छत्रादर्शविपामिषम् ,  
शुक्लाः शुभनसो वस्त्रममेघ्यालेपनं फलम् ॥६८॥  
शैलप्रागादमफलवृक्षमिह नरद्विषाम् ।  
मारोहेद्गोऽश्वमानं च तरे-नदहृदोऽधीम् ॥६९॥  
पूर्वोत्तरेण गमनमगम्यागमनं मृतम् ।  
संवाधाग्नि-सृतिर्देवैः पितृभिश्चामिनंदनम् ॥७०॥  
रोदनं पतितारुषानं द्विपता चावमर्दनम् ।  
यस्य स्मादायुरारोग्यं विरा बह्वं च मोऽप्नुते ॥७१॥

१ भाविकः भाविशुभाशुभमूचकः । दीपज उत्पन्न वातादिदीपजनितः ।  
यथास्वप्रकृतिः वातादिप्रकृत्यनुरूपतः स्वप्नः । शुभः स्वप्नः, १ गीसर्गे-प्रातः । तथा  
प्रतीपवचनेः प्रतिकूल वचनं रनुपहतः, तदहर्महस्पर्शनं करोति । पापोऽशुभः स्वप्नः ।  
२ नराशनं राक्षसम् । गोवाघनि-सृतिः सङ्कटनिस्तरणम् ।



## आरोग्यलक्षणम्—

मंगलाचारमपन्नः परिवारस्तथानुरः ।

अद्विष्टोऽनुकूलश्च प्रभूतद्रव्यसंपन्नः ॥७२॥

१ सत्वसदाणुसंयोगो भक्तिर्वैद्यविज्ञातिषु ।

२ चिकित्सायामनिर्वेदस्तदारोग्यस्य लक्षणम् ॥७३॥

## शारीरस्थानानिरुक्तिः—

इत्यत्र जन्ममरणं यतः सम्पुदाहृतम् ।

शरीरस्य ततः स्थानं शरीरमिदमुच्यते ॥७४॥

इति श्रीवैद्यपतिसिद्धान्तमूलोर्वाग्भटस्य कृतायष्टांगहृदय

संहितायां शारीरस्थानं समाप्तमध्यायश्च पठः ॥६॥

—:०:—

---

१ सत्वस्मगुणस्य लक्षणं. संयोगः । २ अनिवेद. सीत्माहता ।

इति वैद्यवर श्रीपूर्णदत्तशर्मसूनु-भाषुर्वेदाचार्य श्री हरिनारायण-  
शर्मनिर्मितायामष्टाङ्गहृदयटिप्पण्यां प्रभाष्यायां  
शारीर स्थानं समाप्तम् ।

# निदानस्थानम्

## प्रथमोऽध्यायः

सर्वस्थानं रोगविज्ञानम् ।

अथास्तः सर्वरोगनिदानं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुराश्रेयादयो महर्षयः ।

रोगपर्यायाः—

“रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिविकारो दुःखमामयः ।

यद्यमासंकगदाबाधशब्दाः पर्यायवाचिनः ॥ १ ॥

रागविज्ञानम्—

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।

संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चवा स्तुतम् ॥ २ ॥

निदानलक्षणम्—

निमित्तहेतवायतनप्रत्ययोत्थानकारणं ।

निदानमाहुः पर्यायैः

पूर्वरूपलक्षणम्—

प्राक्त्यं येन लक्ष्यते ॥ ३ ॥

उत्पित्तुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः ।

लिङ्गमव्यक्तमल्पत्याग्वाधीना तत्तथायथम् ॥ ४ ॥

रूपक्षणम्—

तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ।

संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमावृत्तिः ॥ ५ ॥

## उपशयानुपशयलक्षणम्—

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ।

धोपघाप्रविहारानामुपयोगं सुखावहम् ॥ ६ ॥

विद्यादुपशयः ;

व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः ।

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्स्याभिसंज्ञितः ॥ ७ ॥

## सम्प्राप्तिलक्षणम्—

यथादृष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता ।

निवृत्तिरामयस्यागौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ ८ ॥

## सम्प्राप्तिभेदाः—

संख्याविकल्पाप्राधान्यबलकालविशेषतः ॥

सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यतिऽष्टौ ज्वरा इति ॥ ९ ॥

दोषाणां मम वेदानां विकल्पोऽज्ञांशकल्पना ।

स्वातंत्र्यपारतस्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १० ॥

हेत्वादिकास्त्वानिवर्त्यस्तांश्च विशेषणम् ।

तत्तद्दिनतुंभुक्तार्थव्याधिकालो यथामलम् ॥ ११ ॥

इति प्रोक्तो निदानार्थः त व्यासेनोपदेक्ष्यते ।

## सर्वरोगाणांकुपितामला निदानम्—

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥ १२ ॥

तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ।

अहितं त्रिविधो योगस्त्रयाणां प्रागुदाहृतः ॥ १३ ॥

## वातकोपकारणानि—

तिक्तोपणकपायात्पित्तप्रमितमोजर्नः ।

धारणोदीरणनिज्ञाजागरात्युच्चभाषणैः ॥ १४ ॥

१ समवेदानां परस्परं सम्मिलितानाम् । २ त्रिविधो योगः—हीनमिध्याति

मानात्मकः ।

१ क्रियातियोगभोशोकचिताव्यायाममष्टुनः ।

ग्रोष्माहोरात्रिभुक्ताते प्रकुप्यति सर्मारणः ॥ १५ ॥

### पित्तकोपकारणानि—

पित्तं कट्वम्लतोदणोष्णपटुक्रोषविदाहिभिः ।

जरन्मध्याह्नरात्र्यर्धविदाहममयेषु च ॥ १६ ॥

### कफकोप कारणानि—

स्वादुम्ललवणस्निग्धगुर्वभिष्यंदिशीतलैः ।

१ आस्यास्वप्नसुखाजोर्णदिवास्वप्नातिवृहणैः ॥ १७ ॥

प्रच्छर्दनाद्ययोगेन भुक्तमात्रवमंतयोः ।

पूर्वाहणे पूर्वरात्रे च श्लेष्मा दृढ तु संकरात् ॥ १८ ॥

### सन्निपात प्रकोपकारणानि—

मिन्म्रीमाधारसमस्ताना सन्निपातस्तथा पुनः ।

संकीर्णाजीर्णविषमविच्छाद्यश्ननादिभिः ॥ १९ ॥

व्यापन्नमद्यपानोयशुष्कजाकाममूलकैः ।

पित्त्याकमृद्यत्रमुरातूनिशुष्ककृष्णामिषैः ॥ २० ॥

दोषत्रयकरंस्तीर्तस्तथान्नपरिवर्ततः १ ।

घातोदुष्टात्पुरोवाताद् ग्रहावेशाद्विपादगरात् ॥ २१ ॥

दुष्टाग्नात्पर्वताश्लेपाद्ग्रहैर्जन्मक्षपीकृतात् ।

मिथ्यायोगाच्च विविधात्पापाना च निषेवणात् ॥ २२ ॥

स्त्रीणां प्रगवर्षपम्यास्तथा मिथ्योपचारतः ।

### दोषाणां देहे विकारकारित्वम्—

प्रतिरोगमिति क्रुद्धा रोगाधिष्ठानगामिनीः ॥ २३ ॥

रमायनीः प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते १ ।

१ क्रियातियोगः यमनादीनामतिमेवमम् । २ विदाहममयोऽन्नपरिपाककालः ।

३ आस्या-आसनम् । ४ अन्नपरिवर्ततः-अभ्यस्तान्नपरिवर्तनैः ।

## द्वितीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो ज्वरनिदानं व्याख्यास्यामः ।

ज्वरनिर्देशः—

“ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युरोजोऽशनोऽतकः ।

क्रोधो दक्षाज्वरध्वंसो रुद्रोऽर्जनयनोद्भवः ॥१॥

जग्मांतयोर्मोहमयः संतापात्माप्रचारजः ।

विविधैर्नाभिभिः क्रूरो नाशनायोनिषु वर्तते ॥२॥

ज्वरस्यानेकविधत्वम्—

स जायतेऽष्टधा बोधैः पृथग्भिधैः समागतैः ।

ज्वर सम्प्राप्तिः—

आगंतुश्च, मलास्तत्र स्वैः स्वंदुष्टाः प्रदूषणैः ॥३॥

आमाशय प्रविश्याममनुगम्य शिषाय च ।

स्रोतांसि पक्तिस्थानाञ्च निरस्य ज्वलनं बहिः ॥४॥

सह तेनाभिसर्पतस्तर्पतः सकलं वपुः ।

कुर्वतो गात्रमत्युष्णं ज्वरं निर्वर्तयति ते ॥५॥

स्रोतोविषंघात्प्रायेण ततः स्वेदो न जायते ।

ज्वरपूर्वरूपम्—

तस्य प्राग्ग्रूपमालस्यमरतिर्गतिगौरवम् ॥६॥

आस्ययोरस्यमरुचिर्जुंघा सांसाकुलाक्षता ।

शंगभर्दोऽविपाकोऽल्पप्राणता बहुनिद्रता ॥७॥

१ नानायोनिषु-हृत्स्थश्वगोपट्यादिषु-तद्यथा-पाकतः मतुनागानाम्, अभितापस्त  
वाजिनाम् । गवां गोकर्णं रुश्वैव, पक्षणावस्तुपक्षिणाम् । वान्तादानामलर्कः  
स्वान्मत्स्येष्विन्द्रमदो मतः । घोषवीषु तथा ज्योतिश्चूर्णको घान्यजातिषु । जले  
वीतिका, भूमौ सूषो नृणां ज्वरो मतः । २ सांसाकुलाक्षता-अभूपूर्णनेत्रत्वम् ।

रोमहर्षो विनश्मनं पिडिकोद्वेष्टनं क्लमः ।  
 हितोपदेशेष्वक्षातिः प्रोतिरम्बपटूपणौ ॥८॥  
 द्वेषः स्वादुषु भक्ष्येषु तथा बालेषु, तृड् भृशम् ।  
 शब्दाग्निशोतवातां बुच्छामोष्णोष्णनिमित्ततः ॥९॥  
 इच्छा द्वेषश्च तदनु ज्वरस्य व्यवसृता भवेत् ।

### वासज्वर लक्षणम्—

आगमापगमक्षोभमुदुतावेदनात्मणाम् ॥१०॥  
 शैपम्यं तत्र तत्राने तास्तथा. स्युर्वेदनाश्रयाः ।  
 पादयोः सुप्तता स्तंभः पिडिकोद्वेष्टनं श्रमः ॥११॥  
 विषलेप इव मधोनां साद ऊर्ध्वोः कटीग्रहः ।  
 पृष्ठं शोदमिवाप्नोति निष्पीड्यत इवोदरम् ॥१२॥  
 क्षिप्तं इव चास्थीनि पार्श्वगानि विक्षेपतः ।  
 हृदयस्य ग्रहस्तोद १ प्राजनेनेव वक्षसः ॥१३॥  
 स्कंधयोर्मथन बाह्वोर्भेदः पीडनमसयोः ।  
 अशक्तभक्षणे हृषोर्जृम्भणं कर्णयोः स्वनः ॥१४॥  
 निस्तोदः शंखयोर्मूर्ध्नि वेदना विरसास्पता ।  
 कपायास्यत्वमधश्च मलानामप्रवर्तनम् ॥१५॥  
 रुक्षाण्यत्वगास्याग्निनक्षत्रपुत्रपुरीषता ।  
 प्रवेकारोचकावद्धाविपाकास्वेदजागराः ॥१६॥  
 कठीष्ठशोपस्तृट् शुष्की छदिकामी विपादिता ।  
 हर्षो रोमांगदंतेषु वेपथुः क्षयधोर्ग्रहः ॥१७॥  
 श्रम प्रलापो घर्मेच्छा विनामश्चानिलज्वरे ।

### पित्तज्वरलक्षणम्—

युगपच्छात्रिरंगानां प्रलापः वटुववदता ॥१८॥  
 नामास्यपाकः शीतेच्छा भ्रमो मूर्च्छा मदोऽरतिः ।  
 विट्स्वंगः पित्तवमनं रक्तच्छीवनमम्लकः ॥१९॥

शोते जातेऽग्नौ मूर्च्छा भदस्तृष्णा च जायते ।

दाहादौ पुनरंते. स्तुस्तं द्राष्टोवर्षिकसमा : ॥ ३७ ॥

आगन्तुज्वरस्य चातुर्विध्यम्

१ आगन्तुरभिघाताग्निपंगणापाभिचारतः ।

अभिघातज्ज्वरस्य लक्षणम्

चतुर्णां, अत्र दत्तच्येददाहाद्यैरभिघातजः ॥ ३८ ॥

अमाच्च, तस्मिन्पवनः प्रायो रक्तं प्रदूषयम् ।

सध्यसागोर्कयवस्यं मरुज्ज्ज्वरं ज्वरम् ॥ ३९ ॥

अभिपंगज्वर लक्षणम्

ग्रहावेशोपधिचिपकोयभीशोककामजः ।

अभिपंगत्, ग्रहेणाऽस्मिन्नकस्माद्ग्रामरोक्षे ॥ ४० ॥

ओपधीगंधजे मूर्च्छां निरोक्ष्वेष्टु शवः ।

विषाग्मूर्च्छातिसारास्वश्यावतादाहहृदगदाः ॥ ४१ ॥

क्रोधात्कंपः शिरोष्क् च, प्रसातो भयशोकजे ।

कामाद्भ्रमोऽरुचिर्दाहो हानिद्राधीषृतिशयः ॥ ४२ ॥

आगन्तुज्वरे दोषकोपकथनम्

१ श्वादी मन्निपातस्य, भयादौ मरुतस्ये

८ कोपकोपेऽपि पित्तस्य

शापाभिचारयोरसह्यतमत्वम्

यो तु शापाभिचारयोः ॥ ४३ ॥

सन्निपातज्वरो घोरो तावत्सह्यतमो मतो ।

१ मन्त्रोत्पन्नज्वरलक्षणम्

तत्राभिचारिकर्मैर्हृयमानस्य तप्यते ॥ ४४ ॥

१ अभिचारः — मारणमोहनोच्चाटनादिकम्—यथा—विपरीतमन्त्रैर्लोहस्तु वा  
गर्षपादिना होमः । २ ग्रहादीशये—ग्रहावेशोपधिचिपजे । भयादीशये भीशोककामजे ।

पूर्वं चेतस्ततो देहस्ततो विस्फोटतृद्भ्रमैः ।  
सदाहमूच्छैर्ग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्धते ज्वरः ॥ ४५ ॥  
इति ज्वरोऽष्टधा दृष्टः,

### संचेषाज्ज्वर द्वैविध्यम्

समासाद्वैविध्यस्तु सः ।

आग्रेरो मानसः, सौम्यस्तोदण्डोऽतर्बहिराश्रयः ॥ ४६ ॥  
प्राकृतो वैकृतः, साध्योऽसाध्यः, सामो निरामकः ।  
पूर्वं शरीरे शारीरे तापो, मनसि मानसे ॥ ४७ ॥  
पवने योगवाहित्वाञ्जीवं श्लेष्मयुते भवेत् ।  
दाहःपित्तयुते, मिश्रं मिश्रे,  
अंतःसंश्रये पुनः ॥ ४८ ॥

ज्वरेधिकविकाराः स्युरंतः क्षोभो मलयहः ।  
बहिरेव बहिर्व्येगे तापोऽपि च सुसाध्यता ॥ ४९ ॥

### प्राकृतवैकृतयोर्लक्षणम्—

वर्षाशरद्वसंतेषु वातार्धः प्राकृतः कृमात् ।  
वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्रायश्च प्राकृतोऽर्जितात् ॥ ५० ॥  
वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितो ज्वरम् ।  
कुर्यात्,

पित्तं च शरदि तस्य चानुबलं कफः ॥ ५१ ॥  
तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनादभयम् ।  
कफो यसंते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥ ५२ ॥

### साध्यासाध्ययोर्निर्देशः—

बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः ।  
सर्वथा विवृतिज्ञाने प्रागसाध्य उदाहृतः ॥ ५३ ॥

### - सामज्वरलक्षणम्—

ज्वरोपद्रवतीदण्डत्वमग्लानिर्बहुमूत्रता ।





अल्पोऽपि दोषो दूष्यादित्थञ्चान्यतमतो बलम् ॥६४॥

१सविपक्षो ज्वरं कुर्याद्विषमं क्षयवृद्धिभाक् ।

दोषस्यप्रवृत्तिनिवृत्ती—

दोषः प्रवर्तते तेषां स्वे काले ज्वरयम् वली ॥६५॥

निवर्तते पुनश्चैवप्रत्यनीकबलाबलः ।

ज्वरस्यरसादिधातुपुलोनासा—

क्षीणे दोषे ज्वरः सूक्ष्मो रसादिष्वेव लीयते ॥६६॥

लीनत्वात्कार्श्यवैधर्त्यजाड्यादीनादधाति मः ।

भ्रासघ्नविवृतास्यस्वात्क्षोतसां रमवाहिनाम् ॥६७॥

प्राशु सर्वस्य वपुषो व्याप्तिर्दोषेण जायते ।

संततः १सनतस्तेन

१विपरीतो विपर्ययात् ॥ ६८ ॥

विषमो विषामारंभक्रियाकालानुपगवान् ।

दोषो रक्ताश्रयः प्रायः करोति सततं ज्वरम् ॥ ६९ ॥

ग्रहोराशस्य सङ्घः स्यात्, सकृदःयेद्युराश्रितः ।

तस्मिन्मांसवहा नाडीः मेदोनाडोस्तृतीयके ॥ ७० ॥

ग्राहो पित्तानिलान्मूर्ध्नस्त्रिकस्य कफपित्ततः ।

मृष्टस्यानिलकफात्स चैकाहातरं स्मृतः ॥ ७१ ॥

चतुर्थको मले मेदोमज्जास्थान्यतपस्थिते ।

मज्जस्य एवेत्यरे प्रमाद म तु दर्शयेत् ॥ ७२ ॥

द्विधा, कफेन जंघाभ्यां न पूर्वं शिरसोऽनिलात् ।

अस्यमज्जोभयमते चतुर्थकविपर्ययः ॥ ७३ ॥

१ सविपक्षः प्रत्यनीकदूष्याद्यन्यतमसहितः । २ संततो निरन्तरः । ३ विपरीतः मन्ततविपरीतः सततादिज्वरो निरन्जरो न भवति, विपर्ययात् ग्रामन्तेत्यादेशत्वात्संततज्वरे विपरीतात्—मन्ततादौ रक्तादि वाहोनि सोत्तामिदूषणगणि मूधमतराणि च संदोषश्चिरेण तथा भ्रसन्मूर्णतयाशरीरं व्याप्नुवन् विच्छिन्नकालं ज्वरं करोति ।

त्रिया, द्रुमहं ज्वरयति दिनमेकं तु मुञ्चति ।

दोषाणां वलात्रलेन ज्वरः—

बलावलेन दोषाणामग्रेष्टादिजन्मना ॥ ७४ ॥

ज्वरः स्यान्मनसस्तद्वत्कर्मणश्च तदा तदा ।

दोषदूष्यत्वं होरात्रप्रभृतीनां बलाज्वरः ॥ ७५ ॥

मनसो विषयाणां च कालं तं तं प्रपद्यते ।

ज्वरमोक्षकाललक्षणम्

यातूनू प्रक्षोभयन् दोषो मोक्षकाले विलीयते ॥ ७६ ॥

ततो नरः श्वसन् स्थित्वा कूजनं वमति चेष्टते ।

वेपथे प्रलपत्युप्युः शोर्तुर्गर्हतप्रमः ॥ ७७ ॥

चित्तं ज्ञो ज्वरवेपार्तः सक्कोध हव वीक्षते ।

सदोपशब्दं च दृक्दृश्वं सृजति वेगवत् ॥ ७८ ॥

विगतज्वरलक्षणम्

देहो लघुर्भ्यर्पगतः क्लममोहतापः

पाको मुखे करणतीक्ष्णमभ्यस्यत्सम् ।

स्वेदः क्षयः प्रकृतियोगि मनोऽन्मलिप्या

कङ्क्षु मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ ७९ ॥

## तृतीयोऽध्यायः ।

अथाज्ञो रक्तपित्तकामनिदानं व्याख्यास्यामः ।

रक्तपित्तस्य निदानपूर्वकसम्प्राप्तिः

“भृशोऽप्यतीक्ष्णकट्यम्लज्वणादिविदाहिभिः ।

कोद्रवोद्दालकं श्रैस्तदुक्तैरतिसेवितैः ॥ १ ॥

कुपितं पित्तलैः पित्तं द्रवं रक्तं च मूर्च्छिते ।  
 ते मिषस्तुल्यस्नानत्वमागम्य व्याप्नुतस्तनुम् ॥ २ ॥  
 पित्तं रक्तस्य विकृतेः संसर्गाद्दूषणादपि !  
 गंधवर्णानुकृतिश्च रक्तेन व्यपदिश्यते ॥ ३ ॥  
 प्रभवत्यसृजः स्थानात्प्लोहतो यकृतश्च तत् ॥ ४ ॥

### रक्तपित्तस्य पूर्वरूपम्

शिरोगुरस्वमर्चिः जीतेष्ट्या घूमकोऽभ्रकः ॥ ४ ॥  
 हृदिस्पन्दितवैभक्त्यं कामः स्वामो भ्रमः क्लमः ।  
 लोहलोहितमत्स्यामर्गघास्यत्वं स्वरक्षयः ॥ ५ ॥  
 रक्तहारिद्रहरितवर्णता नयनादिषु ।  
 नीललोहितपीनानां वर्णानामविवेचनम् ॥ ६ ॥  
 स्वप्ने तद्वर्णदर्शित्वं भवत्यस्मिन्भविष्यति ।

### रक्तपित्तस्य श्रद्धिभ्यम्—

ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णात्स्यैर्मंद्रयोनिगुदेरधः ॥ ७ ॥  
 कुपितं रोमकूपंश्च समस्तेस्तत्प्रवर्तते ।

### ऊर्ध्वगरक्तपित्तस्य साध्यता—

ऊर्ध्वं साध्यं कफाद्यस्मात्तद्विरेचनसाधनम् ॥ ८ ॥  
 बह्वीपधं च पित्तस्य विरेको हि वरोपधम् ।  
 अनुवर्धो कफो यश्च तत्र तस्यापि शुद्धिश्च ॥ ९ ॥  
 कपायाः स्वादवोऽप्यस्य विद्युद्धस्तेष्मणो हिताः ।  
 किमु तित्ताः कपाया वा ये निसर्गात्कफापहाः ॥ १० ॥

### अधोगरक्तपित्तस्य साध्यता—

मणो साध्यं चलाद्यस्मात्तत्प्रचर्दनसाधनम् ।  
 मलोपधं च पित्तस्य वमनं न वरोपधम् ॥ ११ ॥  
 अनुवर्धो चलो यश्च शांतयेऽपि न तस्य तत् ।  
 कपायाश्च हितास्तस्य मधुरा एव केवलम् ॥ १२ ॥

## उभयगरक्तपित्तस्यासाध्यता—

कफमास्तसंसृष्टमसाध्यमुभयामनम् ।

१ अशक्यप्रातिलोम्यत्वादभावादीषस्य च ॥१३॥

नहि संशोधनं किञ्चिदस्त्यस्य प्रतिलोमगम् ।

२ शोधनं प्रतिलोमं च रक्तपित्ते भिषग्भिरम् ॥१४॥

एवमेवोपशमनं सर्वशो नास्य विद्यते ।

संसृष्टेषु हि दोषेषु सर्वजिच्छमनं हितम् ॥१५॥

## रक्तपित्तेदोषसम्बन्धज्ञानम्—

तत्र दोषानुगमनं मिराल इव लभ्येत ।

उपद्रवांश्च विवृतिज्ञानतः<sup>१</sup>,

## कामस्याशुकारित्वम्—

तेषु चाधिकम् ॥१६॥

आशुकारी यतः वासस्तमेवाऽयः प्रवक्ष्यति ।

## कासानांपञ्चविधत्वम्—

पंच कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ॥१७॥

क्षयायोषेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् ।

## कासपूर्वस्वरूपम्—

तेषां भविष्यतां रूपं कठि कंठूररोचकः ॥१८॥

ग्लूकपूर्णाभकंठरवम् तत्राधो विहतोऽनिलः ।

”

## काससम्प्राप्तिः—

ऊर्ध्वं प्रवृत्तः प्राप्योरस्तस्मिन् कठि च नसजम् ॥१९॥

शिरःक्षोठांसि संपूर्य ततोऽगान्मुत्क्षिपन्निव ।

क्षिपन्निवाक्षिणी पृष्ठमुरः पार्श्वे च पीडयन् ॥२०॥

१ अशक्यप्रातिलोम्यस्य रक्तपित्तस्य तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात् । २ प्रतिलोमं शोधनं—ऊर्ध्वमेव विरेचनमधो गे तु वमनम् । ३ विवृतिविज्ञानीयोऽध्यायः आरीरोक्तस्तस्मात् सच्च “रक्त पित्तं भृशरक्तमित्यादि । ४ तेषु—उपद्रवेषु । कामः ( कामी ) हि० ।

प्रवर्तते म वक्त्रेण भिन्नकांस्योपमच्चनिः ।

हेतुभेदात्प्रतीयातभेदो वायोः सरंहसः ॥२१॥

यद्रुजाशब्दवैषम्यं कासोनां जायते ततः ।

वातजकासलक्षणम्—

कुपितो वातसर्वातः शुष्कोरः कंठवक्त्रताम् ॥२२॥

हृत्पार्श्वोरःशिरःशूलं मोहक्षोभस्वरक्षयाम् ।

करोति शुष्कं कासं च महावेगरुजास्वनम् ॥२३॥

सौंज्ञहर्षो कफ श्लेष्मं कृच्छ्रान्मुक्त्वाऽल्पनां व्रजेत् ।

पित्तजकासलक्षणम्—

पित्तात्पीताक्षिकफता तित्तास्यत्वं ज्वरोऽभ्रमः ॥२४॥

पित्तासृग्मममं नृप्युः पित्तस्वर्यं घूमको मदः ।

प्रतप्तं कासवेगेन ज्योतिषामिव दर्शनम् ॥२५॥

कफजकासलक्षणम्—

कफादुरोऽल्परुद्धमूर्ध्नि हृदयं स्तिमितं गुरु -

बंठोपलेपं मदं पीनसच्छर्दरोचकाः ॥ २६ ॥

रोमहर्षो घनरिन्मश्वेतश्लेष्मप्रवर्तनम् ।

क्षतजकासलक्षणम्

युद्धार्थः साहसंमन्तैः सेवितैरयथाबलम् ॥ २७ ॥

उरस्यंतश्चने धायुः पित्तं नानुगतो बली ।

कुपितः क्रुशते कासः कफं तेन सशोगितम् ॥ २८ ॥

पीतं श्यामं च शुष्कं च श्रयितं क्रुयितं बहु ।

छीवेत्कंठेन रुजता विभिन्नेनेव चोरसा ॥ २९ ॥

गूधोभिरिव सीदणाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ।

पर्वभेदज्वरश्चासत्पृष्णावैस्वर्यं वैपद्याम् ॥ ३० ॥

पारावत इनाकूजनम् पार्श्वदूरी ततोऽस्य च ।

क्रमाद्वीर्यं खिचि पक्तिर्वलं यणुंश्च हीयते ॥ ३१ ॥

क्षीणस्य सासृङ्मूत्रत्वं स्याच्च पृथुकटीग्रहः ।

### क्षयकासलक्षणम्

वायुप्रधानाः कुपिता घातवो राजयक्ष्मिणः ॥ ३२ ॥

कुर्वन्ति यस्माद्यतनैः कासं छीवेत्कर्णं ततः ।

पूतिप्रयोगम पीतं विस्त्रं हरितलोहितम् ॥ ३३ ॥

तु च्येते इव पार्श्वे च हृदयं पततीव च ।

यन्स्मादुष्णशीतेच्छा बह्वाशित्वं बलशयः ॥ ३४ ॥

स्निग्धप्रसन्नवक्त्रत्वं श्रीमद्दशननेत्रता ।

ततोऽस्य क्षयरूपाणि सर्वाण्यादिर्भवन्ति च ॥ ३५ ॥

### क्षयकासोदेहनाशनः—

इत्येष क्षयजःकासःक्षोणानां देहनाशनः ।

याप्यो वा बलिनां तद्वत् क्षतजोऽभिनवो तु<sup>१</sup> तो ॥ ३६ ॥

सिद्ध्येतामपि सानाध्या<sup>२</sup>त्

### कासानांसाध्यत्वादि—

साध्या दोषैः पृथक् त्रयः ।

मिश्रा याप्या दृमात्सर्वे जरसा स्यविरस्य च ॥ ३७ ॥

### कासजये कारणम्

कासाच्छ्वातक्षयच्छादिस्वरसादादयो गदाः ।

भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तं त्वरया जयेत्<sup>३</sup> ॥ ३८ ॥

## चतुर्थोऽध्यायः ।

अथाप्तः श्वाभहिष्मानिदानं व्याख्यास्यामः ।

### श्वासनिदानादिलक्षणम्

“कासवृद्ध्या भवेच्छ्वासः पूर्वैर्वा दोषकोपनैः ।

१ यस्माद्यतनैः यक्ष्मनिदानोक्तैः साहमादिभिः । २ तो क्षयजक्षतजो कामो ।

३ सानाध्यात् मिथगादिनतुष्पात्सम्पत्तेः । ४ सर्वनिदानोक्तैः दोषकोपनैः

भ्रामातिसारवमश्रुविषपाङ्गुज्वरैरपि ॥१॥

रजोभ्रमानिलैर्मर्मघातादतिहिमाङ्कुता ।

श्वासस्यपञ्चत्रिधत्वम्

धुदवस्तमकश्छिन्नो महानूर्ध्वश्च पञ्चमः ॥ २ ॥

श्वाससम्प्राप्तिः—

कफोपरुद्धगमनः पवनो विष्वगास्थितः ।

प्राणोदकाश्रवाहीनि दुष्टः क्षोतासि द्वायम् ॥ ३ ॥

उरःस्थः कुरुते श्वासमामाशयसमुद्भवम् ।

श्वासपूर्णरूपम्

प्राणपूर्णं तस्मै हृत्वाश्वत्थं प्राणविलोमता ॥ ४ ॥

श्रानाहः दक्षिणेदश्च, तत्रायासातिभोजनैः ।

क्षुद्रश्वासक्षत्तणम्

प्रेरितः प्रेरयेत् क्षुद्रं स्वयं संशमनं मरु ॥ ५ ॥

तमकश्वासक्षत्तणम्

प्रतिलोभं सिरा गच्छनुदोर्यं पवनः कफम् ।

परिगृह्य शिरोघ्नीवमुरः पार्श्वे च पीडयम् ॥ ६ ॥

कासं धुर्धुरकं मोहमर्शचि पीनतां तृणम् ।

करोति तीव्रवेगं च श्वासं प्राणोपतापिनं ॥७॥

प्रताम्येत्तस्य वेगेन निष्ठपूताते क्षणं सुखं ।

वृन्त्राच्छयानः श्वसिति निषण्णः रवारस्यमृच्छति ॥७॥

उञ्जिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमतिमात् ।

विशुष्कास्यः मुहुः श्वासी काशत्युष्ट्यं सवेष्टुः ॥९॥

मेघाबुशीतप्राभ्यातैः श्लेष्मलंश्च विवर्धते ।

म याप्यस्तमकः, साध्यो नवो वा बलिनो भवेत् ॥१०॥

प्रतमकक्षत्तणम्—

ज्वरमूर्च्छामृतः क्षीतैः शाम्येत्प्रतमवस्तु मः ।



## द्विजशवासलक्षणम्—

द्विधाच्छ्वसिति विच्छिन्नं मर्मच्छेदस्वादितः ॥११॥  
 सस्वेदमूर्च्छः शानाहो वस्तिदाहनिरोधवाप् ।  
 मयोद्विग्लुताशश्च शुष्मन् रक्तं रक्तोचनः ॥१२॥  
 शुष्कास्यः प्रत्यपन् दीनो नष्टध्यायो विचेतनः ।

## महाशवासस्यलक्षणम्—

महता महता दीनो नादेन श्वसिति प्रयम् ॥१३॥  
 उद्धूयमानः संख्यं मत्तर्पम इति निशम् ।  
 प्रणष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रान्तनयनाननः ॥१४॥  
 बलः समाक्षिपन् बद्धमूत्रवर्चा विप्रोर्णवाक् ।  
 शुष्ककंठो मुहूर्धुस्तन् कर्णघञ्जशिरोऽतिरक् ॥१५॥

## ऊर्ध्वशवासस्यलक्षणम्—

दीर्घमूर्ध्वं श्वमित्पूर्ध्वं च प्रस्थाहृत्यधः ।  
 श्लेष्मावृतमुखश्रोताः क्रुद्धगधप्रहादितः ॥१६॥  
 ऊर्ध्वदृग्दीक्षने भ्रातमक्षिणी परितः क्षिपन् ।  
 मर्मसु मिष्ट्यमानेषु परिदेवो निरुद्धवाक् ॥१७॥

## शवासस्य साध्यत्वादि—

एते सिद्धयेयुरव्यक्ता, व्यक्ताः प्राणहरा ध्रुवम् ।

## हिष्मास्वरूपम्—

आसकहेतुप्राप्तपसंख्याप्रकृतिसंख्याः ॥१८॥  
 हिष्मा भवतोद्मका क्षुदा यमला महतीति च ।  
 गंभीरा च,

१ विच्छिन्नं सविच्छेदं ननिरन्तरमित्यर्थः । २ दाहानिरोधश्च दाहनिरोधो  
 बस्तीदाह निरोधीयस्यास्ति वस्तिदाहनिरोधवाप् । ३ महताश्वासेन । महता-  
 नादेनेत्यन्वयः । दीनोऽप्रसन्नचित्तः, अनायमात्मानं मन्यमानो वा । क्रयन् शब्दं  
 कुर्वन् । उद्धूयमानः ऊर्ध्वं नीयमानो वातोवस्य उत्कम्पायमान इत्यर्थः । संख्यः  
 मंशोममुक्तः । ४ परिदेवोऽदुःखितः । ५ हिष्मा ( हिचकी ) हि०

**अञ्जलिहिमालक्षणम्—**

मस्तत्र लरयाऽप्युचितसेवितः ॥१९॥

स्थतीक्ष्णस्ररासात्स्मरन्पानैः प्रपीडितः ।

करोति हिमामरुजां मंदशब्दा क्षवानुगाम् ॥२०॥

शमं सात्स्यान्पानेन या प्रयाति च साऽञ्जलि ।

**क्षुद्राहिमालक्षणम्—**

आयासात्पवनः क्षुद्रः क्षुद्रां हिमाम् प्रवर्तयेत् ॥२१॥

जधूमूलप्रविस्तृतमल्पवेगां मृदु च सा ।

वृद्धिमायास्यतो याति भुक्तमात्रे च मार्दवम् ॥२२॥

**यमलाहिमालक्षणम्—**

चिरेण यमलैर्वैराहारे या प्रवर्तते ।

परिणामोन्मुखे वृद्धि परिणामे च गच्छति ॥२३॥

कंपयती शिरोम्रीवमाष्मातस्यातिवृष्णतः ।

प्रलापच्छर्त्ततासारनेत्रविप्लुतजूभिणः ॥२४॥

यमला वेगिनी हिमाम् परिणामवती च सा ।

**महाहिमालक्षणम्—**

स्तब्धभ्रूक्षलपुष्पस्य सातविप्लुतक्षुपः ॥२५॥

स्तम्भयती तनुं वाचं स्मृति संज्ञां च मुष्णती ।

वधती मार्गमग्नस्य कुर्वती मर्मवट्टनम् ॥२६॥

पृष्ठतो नमनं शोषं महाहिमाम् प्रवर्तते ।

महाभूला महाशब्दा महावेगा महाबला ॥२७॥

**गम्भीराहिमालक्षणम्—**

पक्षाशमादा नाभेर्वा पूर्ववशा प्रवर्तते ।

तद्रूपा सा मुहुः कुर्याज्जृम्भामर्गप्रसारणम् ॥२८॥

गम्भीरेणानुनादेन गम्भीरा क्षामु साधयेत् ।

तासां साध्यासाध्यत्वम्—

‘आद्ये द्वे, वर्जयेदंत्ये सर्वलिङ्गां च वेगिनीम् ॥२६॥

सर्वाश्च संनितामस्य स्पष्टिरस्य व्यवायिनः ।

व्याधिभिः क्षीणदेहस्य भक्तच्छेददातस्य वा ॥३०॥

हिष्माध्यासयोः शीघ्रकारित्वम्—

सर्घेऽपि रोगा नाशाय नस्वेवं शीघ्रकारिणः ।

हिष्माध्यासो यथा सौ हि मृत्युकाशे कृतानयो” ॥३१॥

## पञ्चमोऽध्यायः ।

अथाऽतो राजयक्ष्मादिनिदानं व्याख्यास्यामः ।

राजयक्ष्मसंज्ञा—

“अनेकरोगानुगती बहुरोगपुरोगमः ।

राजयक्ष्मा क्षयः शोषा रोगराजिति च स्मृतः ॥१॥

नक्षत्राणां द्विजानां च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा ।

‘यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः ॥२॥

देहीपक्षयवृत्तेः क्षयस्तत्संभवाच्च सः ।

रसादिशोषणाक्छोपो रोगराट् तेषु राजनात् ॥३॥

राजयक्ष्मणो हेतवः—

साहसं वेगसंरोधः श्क्रोजःस्नेहसंक्षयः ।

अन्नपानविधित्यागश्चत्वारस्तस्य हेतवः ॥४॥

१—आद्येद्वे-भक्तोद्भववाधुदे । अन्त्येमहागम्भीरे । वेगिनीयमलाम् । २ राजा-  
चासौ यक्ष्मा च राजयक्ष्मेति कर्मधारयसमासेन ।

### राजयक्ष्मणिपवनस्यहेतुत्वम्—

तैस्दीर्घोऽनिलः पित्तं कफं चोदीर्य सर्वतः ।  
शरीरसंधीनाविश्य 'ताम् सिराश्च प्रपीडयम् ॥५॥  
मुखानि स्त्रोतसां रुद्ध्वा तथैवातिविदृत्य च ।  
सर्पन्पूर्वमधस्तिर्यग्यथ, स्वं जनयेद्गदान् ॥६॥

### राजयक्ष्मणःपूर्वरूपम्—

रूपं भविष्यतस्तस्य प्रतिशयायो भृशं सवः ।  
प्रसेको मुखमाधुर्यं सदनं, बह्निदेहयोः ॥ ७ ॥  
स्थोत्यमत्राग्नपानादो शुचावप्यशुचोक्षणम् ।  
मक्षिकामृणकेयादिपातः प्रायोऽग्नपानयोः ॥ ८ ॥  
हृक्षासशृङ्गदिरक्षिरभतोऽपि बलक्षयः ।  
पाण्योरवेक्षा पादास्यशोफोऽणोरतिशुक्लता ॥ ९ ॥  
बाह्वोः प्रमाणजिज्ञासा काये बभन्त्यदर्शनम् ।  
स्त्रीमद्यमांसप्रियता घृणिष्वं भूर्धगुठनम् ॥ १० ॥  
नक्षकेशातिवृद्धिश्च स्वप्ने चाभिमवो भवेत् ।  
'पतंगवृकलासाहिकपिश्चापदपक्षिभिः ॥ ११ ॥  
केशास्थितुषमस्मादिराशो समधिरोहणम् ।  
शून्यानां ग्रामदेशानां दर्शनं क्षुब्धतोऽभसः ॥ १२ ॥  
उयोतिगिरीणां पततां ज्वलतां च महीरुहाम् ।

### राजयक्ष्मण्येकादशरूपाणि—

पीनसन्धासकासांसमूर्धस्वरुजोऽरुचिः ॥ १३ ॥  
ऊर्ध्वं विट्भ्रंशसंशोपायमश्रुदिश्च कोष्ठगे ।  
तिर्यक्स्थे पार्श्वरुदोये संधिगे भवति ज्वरः ॥ १४ ॥  
रूपाण्येकादशेनानि जायन्ते राजयक्ष्मणः ।

— १—ताम् शरीरसंधीम् । २ मूर्ध्नो मस्तकस्य गुठनं यक्षादिना संधादनम् ।

३ पतंगः पक्षी । वृकलासः "गिरगिट" इति लोके ।

## पीनसादीनामुपद्रवाः—

तेषामुपद्रवाम् विद्या 'त्कंठोद्भवंमुरोरुन्नम् ॥१५॥  
 ज्व'भांगमर्दनिष्ठीववह्नितादास्यवृत्तिताः ।  
 तत्र वाताच्छिरःनाश्व'शूलमंसांगमर्दनम् ॥१६॥  
 कंठोद्भवंसः स्वरभ्रंशः, पित्तात्पादासपाणिषु ।  
 दाहोऽतिसारोसृक्छर्दिर्मुखगंधो ज्वरो मदः ॥१७॥  
 कफादरोचकश्छर्दिः कासो मूषागंगीरवम् ।  
 प्रसेकः पीनसः श्वासः स्वरसादोलवह्निताः ॥१८॥

## यदिमणोधातुपुष्ट्यभावे युक्तिः—

दोषैर्मंदानलत्वेन सोपलेपः कफोत्सर्गः ।  
 स्रोतोमुखेषु रुद्धेषु धातुप्मस्वल्लकेषु च ॥१९॥  
 विदह्यमानः स्वस्थाने रमस्तांस्तानुपद्रवान् ।  
 कुपादिगज्जन्मासादीनसृक् चोद्भवं प्रधावति ॥२०॥  
 पच्यते कोष्ठ एवान्नमन्नपक्वैव चाऽप्य यत् ।  
 प्रायोस्मान्मलतां यातं नैवातं धातुपुष्टये ॥२१॥  
 रसोऽप्यस्य न रक्ताय मासाय कुत एव सु ।

## यदिमणोजीवने हेतुः—

'उपस्तब्धः स शङ्कता केवलं वर्तते क्षमी ॥२२॥

## यदिमणोसाध्यासाध्यत्वम्—

ल्लिगेष्वल्पेष्वपि क्षीणं व्याध्योपधवलक्षमम् ।  
 वर्जयेत्, साधयेदेव सर्वेष्वपि ततोऽन्यथा ॥२३॥

## स्वरभेदनिर्देशः—

दोषैर्व्यस्तीः समस्तीश्च क्षयात् पृष्ठश्च मेदसा ।  
 स्वरभेदो भवेत् तत्र क्षामो रुक्शश्चलः स्वरः ॥२४॥

१—कंठोद्भवंस उत्पत्तिका । २—उपस्तब्धः शृताश्चष्टम्भः शङ्कता, ३—  
 ततोऽन्यथा-अतोर्णव्याध्योपधवलक्षमम् । ४—व्यस्तीः पृथक्स्थितः ।

शुकपूर्णाभकंठत्वं, स्निग्धोष्णोपशयोऽनिलात् ।  
 पित्तात्तालुगले दाहः शोष उक्तावसूयनम् ॥२५॥  
 लिपन्निव कफात्कंठं मंदः खुरखुरायते ।  
 स्वरो विबद्धः, सर्वेस्तु सर्वलिङ्गः, क्षयात्कपेत् ॥२६॥  
 भूमायतीव चात्ययम्, मेदसा श्लेष्मलक्षणः ।  
 कृच्छ्रलक्ष्याशरश्च, घ्नन् सर्वेत्वं च वर्जयेत् ॥२७॥

**अरोचकनिर्देशः—**

अरोचको भवेदापि जिह्वाहृदयसंशयः ।  
 सन्निपातेन मनसः संतापेन च पंचमः ॥ २८ ॥  
 कषायतित्तमधुरं वातादिषु मुख क्रमात् ।  
 सर्वोत्थे चिरसंशोकऋषादिषु यथामलम् ॥ २९ ॥

**छर्दिनिर्देशः—**

छर्दिदीपैः पृथक्त्वैर्द्विष्टं र्षेश्च पंचमी ।

**छर्दिसम्प्राप्तिः—**

उदानो विवृतो दोषात् गर्वादिपूष्वमस्पति ॥ ३० ॥

**छर्दिपूर्वरूपम्—**

तान्मूलैर्नास्यतावश्यप्रसंकारचयोऽग्राः ।

**वातजच्छर्दिलिङ्गम्—**

नाभिपृष्ठं रुजम् वायुः पार्श्वं बाह्यरमुत्क्षिपेत् ॥ ३१ ॥  
 ततो निच्छिन्नमत्प्रात्य कषायं फेनिल वमेत् ।  
 शब्दोद्गारयुतं कृष्णमज्जं वृच्छ्रेण वेगवत् ॥ ३२ ॥  
 पित्तात्सारोदकनिभं पूछन् हरितपीतकम् ॥३३॥  
 मासुगम्लं कटूप्यं च तृणपूच्छात्पापदाहवत् ।  
 कफात् स्निग्धं घनं शीतं श्लेष्मतंतुगवाशितम् ॥३४॥  
 मधुर लवणं मूरि प्रमकां लीमहर्षणम् ।  
 मुखस्त्वग्प्रुमाधुर्यतद्राहृत्तामकाशवत् ॥३५॥

सर्वोक्तिगा मलैः सर्वैरिष्टो<sup>१</sup>क्ता या न तां त्यजेत् ।

द्विष्टार्थयोगजालक्षणम्—

पूत्यमेध्याशुचिद्विष्टदर्शनभ्रमणादिभिः ॥३६॥

तप्ते चित्ते हृदि विलष्टे छद्दिद्विष्टार्थयोगजा ।

क्रिम्यादिजह्नुदिविमर्शः—

यातादीनेव विदृगंटाकृतितृष्णामदांहदे ॥३७॥

शूलवेपथुदुस्सार्मेविशेषात् कृमिजां वदेत् ।

कृमिहृद्रोगलिगंश्च, स्मृताः पथ तु हृद्गदा ॥३८॥

हृद्रागनिर्देशः—

तेषां गुल्मनिदानोक्तैः समुत्पन्नान्ध्रमभवः ।

धातेन शूल्यतेऽत्यर्थं तुद्यते स्फुटतीव च ॥३९॥

भिद्यते दाह्यति स्तब्धं हृदयं शून्यता इवः ।

भवस्माद्दीनता शोषो भयं शत्रुसहिष्णुता ॥४०॥

वेपथुर्वेष्टनं माहः खासरोषोऽस्त्रानिद्रता ।

पित्तातृष्णा भ्रमो मूर्च्छा दाहः स्वेदोऽग्निकः बलमः ॥४१॥

छर्दनं चाम्बपित्तस्य धूमकः पीतता उवरः ।

इलेष्मस्या हृदयं स्तब्धं भा रकं साशममर्भवत् ॥४२॥

कासाग्निसादनिष्टोवनिद्रालस्याश्चिज्वरा ।

सर्वोक्तिगास्त्रभिर्दोषैः

किमिजहृद्रोगलिङ्गम्—

कृमिभिः श्यावनेत्रता ॥४३॥

१ तमःप्रवेशो हृत्लासः शोषः कङ्कः कफश्रुतिः ।

हृदयं प्रतप्तं चात्र क्र<sup>२</sup>कचेनेव दार्यते ॥४४॥

चिकित्सेदामयं धोरं तं शीघ्रं शीघ्रकारिणम् ।

१—रिष्टोक्ता विवृतिविज्ञानीयेशारीरे “छदिवैभवती” इत्यादिना सावि  
सर्वमलैः । २—ककचः “मारा” शस्त्रम् ।

तृष्णानिर्देशः—

वातातितात्कफतृष्णा सन्निपाताद्रसशयात् ॥४५॥

पृष्ठी स्यादुपसर्गाच्च,

वातपित्ते तु कारणम् ।

॥ सर्वाणि, तत्प्रकोपो हि सौम्यषातुप्रशोषणात् ॥४६॥

तृष्णासमुत्पत्तिः—

सर्वदेहभ्रमोत्कर्षापतृड्दाहमोहहृत् ।

जिह्वामूलगलबलोमतालुनोयबहाः शिराः ॥४७॥

संशोष्य तृष्णा जायते

तृष्णासामान्य लक्षणम्—

ताना मामागमसंशयान् ।

मुल्लसोषो जलातृतिरुनद्वेषः स्वरक्षया ॥४८॥

कंठौष्ठजिह्वाकार्कश्यं जिह्वानिष्क्रमणं क्लमः ।

प्रलापश्चित्तविभ्रणस्तृड्प्रहोक्तास्तथाऽभयाः ॥४९॥

वातः तृष्णालिङ्गम्—

मास्तात् क्षामता रोग्यं शंसतोदः शिरोभ्रमः ।

गंधाज्ञानास्यवरस्यश्रुतिनिद्राबलक्षयाः ॥५०॥

शीतांबुपानादृद्धिश्च

पित्तजतृष्णालिङ्गम्—

पित्तान्मूच्छस्मितिकतता ।

रक्तक्षणात्वं प्रतप्तं शोषो दाहोऽतिधूमकः ॥५१॥

कफजतृष्णालिङ्गम्—

कफो रुणद्धि कुपितस्तोयवाहिपु मास्तम् ।

स्रोतःसु सकंफस्तेन संकवच्छोष्यते ततः ॥५२॥

दूर्वातिवाचितः कठो निद्रा मधुरवक्त्रता ।

भाष्मानं शिरगो ज्वाह्यं स्तमित्यच्छर्वा रोचकाः ॥५३॥



आलस्यमविपाकश्च, सर्वैः स्यात्सर्वसदृशा ।

आमोद्भवा च भक्तस्य संरोषाद्वातपित्तजा ॥१४॥

स्नेहजतृष्णा पित्तजा—:

उष्णकृतांतस्य सहसा शीतान्नो भजतस्तृपम् ।

ऊष्मा रुद्धो गतः कोष्ठं ॥ कुर्यात्पित्तजैव सा ॥१५॥

या च पानातिपानोत्था तीक्ष्णाग्नेः स्नेहजा च या ।

अन्नजतृष्णाकफजा—

स्निग्धगुर्वम्ललवणभोजनेन कफोद्भवा ॥१६॥

क्षयात्मिकतृष्णा

तृष्णा रसक्षयोक्तेन लक्षणेन क्षयात्मिका ।

उपसर्गात्मिकतृष्णा—

शोषमोहज्वराद्यन्यदीर्घरोगोपमर्गतः ।

या तृष्णा जायते तीव्रा सोपसर्गात्मिका स्मृता ॥१७॥

## षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽती मदात्म्यमनिदानं व्याख्यास्यामः ।

मशगुणाः—

“तीक्ष्णोष्णरूक्षसूक्ष्माम्लं व्यव्याशुकरं सधु ।

विकाशि विशदं मद्यमोजसोऽस्मादिपर्ययः ॥१॥

मद्येन चेतोविकारस्यप्रकारः—

तीक्ष्णादयो विप्रेऽप्युक्ताश्चित्तोपज्ञाविनो गुणाः ।

१—मोजसोऽस्माद् मद्यगुणादिपर्ययो विपरोनगुणः ।

जीवितांताय जायते विपे तूत्कर्णवृत्तितः ॥२॥  
तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्मद्यं मंदादीनोजसो गुणाम् ।  
दक्षभिर्दक्ष संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् ॥३॥

### द्वितीयमदलक्षणम्—

आद्ये मदे, द्वितीये स प्रमादायमने स्थितः ।  
‘दुर्विकल्पहतो मूढः सुखमित्यधिगुच्यते ॥४॥

### द्वितीयतृतीयमदसन्ध्यवस्था

मध्यमोत्तमयोः संधि प्राप्य राजसतामसम् ।  
निरंकुश इव व्यासो न किंचिन्नाचरेज्जह ॥५॥  
इयं भूमिरवधानां दीप्त्येत्येवमास्पदम् ।  
एकोऽयं बहुभागव्या दुर्गतेर्देशिकः परम् ॥६॥

### तृतीयमदावस्था—

निश्चेष्टः शववच्छेते तृतीये तु मदे स्थितः ।  
मरणादपि पापारमा गतः पापतरां दशाम् ॥७॥  
धर्माधर्मं सुखं दुःखमर्थनिर्णयं हिताहितम् ।  
यदासक्तो न जानाति कथं तच्छीलयेद्युषः ॥८॥

### मद्योपीते मोहादयः—

मद्ये मोहो भयं शोकः क्रोधो मृत्युश्च संश्रिताः ।  
सोन्मादमदमूर्छायाः मापस्मारापतानकाः ॥९॥  
यथैकः स्मृतिविभ्रंशस्तत्र सर्वमसाधु यत् ।

### युक्तिहीनमद्यं व्याधिकरम्—

अयुक्तियुक्तमन्नं हि व्याधये मरणाय वा ॥१०॥

१ द्वितीये मदे प्रमादानां साहसानामुभयलोकेऽनुभवेतुनामायतनेस्थाने स्थितः,  
दुर्विकल्पः स्वार्थदुष्टं स्तंभं हतं पुण्यापार्थिवनष्टः, मूढः कार्यक्रियानभिज्ञः सुखमितिज्ञाने  
न प्रयमदोत्पन्नेनाधिगुच्यतेत्यज्यत इत्यर्थः । २ देशिक आचार्यः ।

मद्यं १ विवर्गघोर्घर्षलज्जादेरपि नाशनम् ।

अतिमदामावेहेतुः—

नातिमाद्यंति बलिनः कृताहारा महाशनाः ॥ ११ ॥

स्निग्धाः सत्ववयोयुक्ता मद्यनित्यास्तदन्वयाः १ ।

कासास्थशोषहृन्मूर्धस्वरपोडाबलमान्वितः ।

भेदः कफाविका मंदवातपित्ता रुद्राग्नयः ॥ १२ ॥

३ विपर्ययेऽतिमाद्यंति विप्रग्न्याः कुनिताश्च ये ।

मद्येन चाम्लरुक्षेण माजीर्णे बहु नाति च ॥ १३ ॥

वातादिभ्यश्चत्वारो मदात्ययाः—

वातात्पित्तात्कफात्सर्वे चत्वारः स्मृर्मदात्ययाः ।

सर्वेऽपि सर्वैर्जायते व्यपदेशस्तु भूयसा ॥ १४ ॥

मदात्ययसामान्यलक्षणम्—

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रमोहो हृदयव्यथा ।

विद्वभेदः प्रतप्तं तृष्णा शोम्याग्नेयो ज्वरोऽरुचिः ॥ १५ ॥

शिरःपार्श्वोऽस्थिहृत्कपो मर्मभेदलिकप्रहः ।

उरोविबंभस्तिभिर कासः श्वासः प्रजापरः ॥ १६ ॥

स्वेदोऽतिमात्रं विष्टंभः श्मश्रुश्चित्तविभ्रमः ।

प्रलापश्छदित्वनेशो अमो दुःस्वप्नदर्शनम् ॥ १७ ॥

वातजमदात्ययः—

विशेषाज्जागरश्वासकं वमूर्ध्वक्षोऽनिलात् ।

स्वप्ने भ्रमत्युत्पतति प्रेतश्च सहमापते ॥ १८ ॥

पित्तजमदात्ययः—

पित्ताद्वाहज्वरस्वेदमोहातीसारतृद्भ्रमाः ।

देहो हरितहारिद्रो रक्तनेत्रकपोसता ॥ १९ ॥

१—विवर्गः—धर्मार्थकामाः । २ तदन्वयाः—मद्यपकुलप्रसूताः । ३ विपर्यये पूर्वोक्त “स्निग्धाः सत्ववयोयुक्ताः” इत्यादिनिपरीते ।

श्रेष्ठमणश्चदिहलामनिद्रोददोग्नीरवम् ।  
 सर्वज्ञे सर्वलिङ्गत्वम्  
 अतिपानकर्तुर्ध्वंसकविक्षयौ व्याधौ—

‘मुक्त्वा मद्यं पिवेत्तु यः ॥  
 सहमाऽनुचितं चान्यत्तस्य ध्वंसकविक्षयौ ।  
 भवेतां मास्तात्कष्टौ दुर्बलस्य विशेषतः ॥ २१ ॥

ध्वंसकलक्षणम्—

ध्वंसके श्लेष्मनिष्ठोऽवः कठशोषोऽतिनिद्रिता ।  
 शब्दासहत्वं तद्रा च,

विक्षयलक्षणम्—

विक्षयैर्गशिरोतिष्क् ॥ २२ ॥  
 हृत्कंठरोगः ममाहः कामस्तृष्णा क्षमिर्बलरः ।

मद्यपानरहितस्यगुणाः—

निवृत्तो यस्तु मद्येभ्यो जितारमा बुद्धिपूर्वकः ॥ २३ ॥  
 विकारैः स्पृश्यते जातु न म शारीरमानसैः ।

रजःप्रधानादेस्त्रययोगदाः—

रजोमोहाहिताहाग्नपरस्य सुखप्रो गदाः ॥ २४ ॥  
 रसासृक्चेतनावाहिस्रोतोरोषसमुद्भवः ।  
 मदमूर्च्छयिसंन्यागा यथोत्तरबलोत्तराः ॥ २५ ॥

‘मद्यः सप्तधा—

‘मदोऽत्र दोषैः सर्वैश्च रक्तमद्यविपरि ।  
 सत्तानल्पद्रुतामापश्चनैः स्रजितचेष्टितः ॥ २६ ॥  
 रुक्षस्यावारुणतनुमंदे चातोद्भवे भवेत् ।  
 पित्तेन क्रोधनो रक्तप्रीतामः क्लृप्तप्रियः ॥ २७ ॥

स्वत्पासबद्धवाक्नाहुः कफाद्विपातपरोऽलतः ।  
 सर्वात्मा सन्निपातेन, रक्तात्स्तब्धांगदृष्टिता ॥ २८ ॥  
 पित्तमिदं च<sup>१</sup> मद्येन विवृतेहास्वरांगता ।  
 विषे कपोऽतिनिद्रा च तर्वेभ्योऽभ्यधिकस्तु सः ॥ २९ ॥

शोणितान्द्युत्थेषु मद्देषु वातादिज्ञानम्—

जलयेल्लक्षणोत्कर्षाद्वासादीन् शोणितान्द्युत्थेषु ।

वातमूर्च्छायलक्षणम्—

अरण्यं वृक्षगुनीलं वा रथं पश्यन्प्रविशेत्तमः ॥ ३० ॥  
 शीघ्रं च प्रतियुध्येत हृत्पीडा वेपथुधर्मः ।  
 काश्यं श्यावास्त्रा छाया मूथयि मास्तारमके ॥ ३१ ॥

पित्तमूर्च्छायलक्षणम्—

पित्तो रक्तं पीत वा नमः पश्यन् विक्षेप्तमः ।  
 विबुध्येत च सस्वेदो दाहत्तृतापपोदितः ॥ ३२ ॥  
 भिन्नविणीलपीताम्भो रक्तपीताकुलेक्षणः ।

कफमूर्च्छायलक्षणम्—

कफेन मेघसंकारं पश्यन्नाकाशमाविशेत् ॥ ३३ ॥  
 तमश्चिरान्ध्रं बुध्येत सहूल्लामः प्रमेकवाक् ।  
 गुरुभिः स्तिमितैरंगैराद्रं वर्माविनद्धवत् ॥ ३४ ॥

सन्निपातमूर्च्छायलक्षणम्—

सर्वाकृतिस्त्रिभिर्दोषैरपस्मार इवाऽपरः ।  
 पातयत्पाशु निश्चेष्टं विना बीभत्सचेष्टितः ॥ ३५ ॥

संन्यासलक्षणम्—

दोषेषु मदमूर्च्छायाः कृतवेगेषु देहिनाम् ।  
 स्वयमेरोपशाम्यन्ति संन्यासो नोपधेविना ॥ ३६ ॥

वाग्देहमनसः। चेष्टामाक्षिप्यातिबलाः, मलाः ।

संन्यास सन्निपतिताः प्राणामृतनसंश्रयाः ॥३७॥

कुर्वन्ति तेन पुरुषः काष्ठमूतो मृतोपमः ।

अप्येत शीघ्रं, शीघ्रं चेन्निक्किंस्ता न प्रयुज्यते ॥३८॥

शीघ्रं चिकित्सनाञ्जीवनम्—

अगाधे ग्राहबहुले सन्निपौष इवातटे ।

संन्यासे विनिमज्जन्त नरमाशु निवर्तयेत् ॥३९॥

मद्ये नैयमद्यस्योपसंहारः—

मदमानरोपतोप-प्रभृतिभिररिभिर्निजैः परिष्वङ्गः ।

युक्तायुषतं च नमं श्रुतिविद्युषतेन मद्येन ॥४०॥

मद्यपानेयुक्तिः—

बलकालदेशासात्म्य-प्रकृतिसहायामयवर्मासि !

प्रविभज्य तदनुकूपं यदि पिबति ततः पिबत्यमुतम्” ॥४१॥

## सप्तमोऽध्यायः ।

अथाऽर्शाणां निदान व्याख्यास्यामः ।

अर्शोर्निरुक्तिः—

“अरिवश्राणिनो मांसकीलका विशन्ति यत् ।

अर्शासि तस्मादुच्यन्ते गुदमार्गनिरोधतः ॥१॥

अर्शः सम्प्राप्तिः—

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसि संदृष्य विविधाकृतीम् ।

मांसाकुरानपानादी कुर्वन्त्यर्शाणि तान् जगुः ॥२॥

१—येद्यदिशीघ्रं चिकित्सा न प्रयुज्यते तर्हि शीघ्रं अप्येत ।

## अर्शसोद्वेधिध्यम्—

सहजन्मोत्तरोत्थानभेदाद्भेदा समानतः ।

शूलकृत्स्नविभेदाच्च, गुदःस्यूतान्नगन्धयः ॥३॥

## गुदवलीस्वरूपम्—

‘अर्धपंथांशुतस्तस्मिन्नित्योऽप्यर्धगुलाः’ स्थिताः ।

वस्यः प्रवाहिणो तासामंतर्मध्ये विसर्जनी ॥४॥

बाह्या त्वरणी तस्या गुदीष्टो बहिरंगुले ।

यथाध्यर्धप्रमाणेन रोमाभ्यन्त ततः परम् ॥५॥

## सहजार्शसोद्हेतुः—

रात्र हेतुः सहोत्थानां वतीशीजोऽपतमता ।

अर्शतां बीजतस्मिन्नु मातापित्रपचारतः ॥६॥

देवाच्च<sup>१</sup> ताम्बा कोपो हि सन्निपातस्य साम्यतः ।

असाध्याभ्येयमाख्याताः सर्वे रोगाः कुलोद्भवाः ॥७॥

सहजानि विरोपेण क्वादुर्दशनानि च ।

अंतर्गुणानि पाद्वानि दादणोपद्रवाणि च ॥८॥

## अन्यार्शसः पट्प्रकारत्वम्—

बोधान्यानि पृथग्दोषसंसर्गानि च<sup>२</sup> मासतः ॥९॥

शुष्काणि वातश्लेष्मण्यामाद्राणि त्वसपित्ततः ॥१०॥

## अर्शोऽजननप्रकारः—

बोपप्रकोपहेतुस्तु प्रागुपउस्तेन सादिते ।

१—अर्धपञ्चमभङ्गुलसंस्मृतत्वं, साधैवतुरङ्गुलप्रमाणं गुदमित्यर्थः च तत्रोत्तरितनंबलिद्वयं साधैराङ्गुलं प्रत्येकमन्तिमाबलिञ्च एकङ्गुलप्रमाणा । गुदीष्टोपवाभ्यर्धोऽर्धङ्गुलमित्त्वित्यर्थः । २ बलिबीजोपतमता-भवति शुक्रेचातवे- सर्वेषां स्थूलसूक्ष्माणामङ्गावयवानामुत्पादकंबोजं तथा च गुदवत्सारम्भकस्य बीजस्योपतमता, अर्शरोगोत्सादनसंस्पर्शजादिभिः दुष्टिः । ३ ताम्बा-मातानि पचार देवाम् । ४—निययः मन्त्रिणः । अर्शः “बवात्तोर” हिन्दी ।—

अग्नी मलेऽतिनिचिते पुनश्चातिव्यवायतः ॥१०॥  
यानसंक्षोभविषमकठिनोत्कटकामनात् ।  
चस्तिनेत्राश्मलोष्ठोर्ध्वतलचैलादिघट्टनात् ॥११॥  
भृशं शीतांबुसंस्पर्शात्प्रततातिप्रवाहणान् ।  
वातमूत्रशब्दद्वेगधारणात्तदुदोरणात् ॥१२॥  
उत्तरगुल्मातिसारामग्रहणीशीफणांहुभिः ।  
कर्शनाद्विषमाम्यञ्च चेष्टाम्यो, यापिता पुनः ॥१३॥  
क्षामगर्भप्रपतनादगर्भवृद्धिप्रपोडनात् ।  
ईदृशांश्चापरैर्वायुरपानः कुपितो मलम् ॥१४॥  
पायोर्वलीपु सधत्ते तास्वभिष्यणमूर्तिपु ।

**अर्शसांपूर्वरूपम्—**

जायतेऽर्शासि, तत्पूर्वतस्तथं मंदवह्निना ॥१५॥  
विष्टंभः सविषद्वग विडिभोद्वेष्टनं भ्रमः ।  
साधोजे नेत्रयोः शोकः षष्टद्वभेदोऽपवा ग्रहः ॥१६॥  
मासतः प्रचुरो मूढः प्रायो नाभेरधश्चरम् ।  
तएव सपरिकर्षञ्च कृच्छ्रान्निर्णच्छति स्वनम् ॥१७॥  
अत्रकूजनमाटोपः क्षामतोदगारभूरिता ।  
प्रभूतं मूत्रमल्पा बिद् अढा वैधूमकोऽस्तकः ॥१८॥  
शिरःपृष्ठोरया शूलमासत्यं भिन्नवर्णता ।  
तथैद्रियाणां दीर्घत्यं क्राधो दुःखोपचारता ॥१९॥  
भाशंका ग्रहणीवोपपाङ्गुल्मोदरेषु च ।

**अर्शस उत्पत्तां ग्रहण्यादयः—**

एताभ्येव विवर्धते जातेषु हतनामसु ॥२०॥

**अर्शसःसम्भवनप्रकारादि—**

निवर्तमानोऽपानो हि तंरघोमार्गरोधतः ।

१ गर्भस्यवृद्ध्या प्रपीडनंतस्मात् । २ अभिष्यण्णा अभिष्यंद्युन्नताःपिचित्रताः  
मूर्तयोयासां तासु । ३ मूढः क्रियारहितः । ४ हतनाम अर्शः ।



क्षोभयन्ननिलानन्यान् सवेन्द्रियशरीरमान् ॥२१॥  
 तथा मूत्रशकृत्पित्तकफान् धातून् च साशयान् ।  
 मृदनात्यग्निं ततः सर्वो भवति प्रायशोऽर्जसः ॥२२॥  
 कृशो भृशं हतोत्साहो दोनः क्षामोऽतिनिम्ब्रमः ।  
 असारो विग्रतच्छायो जंतुजुष्ट इव द्रुमः ॥२३॥  
 कृःस्नेहद्रवैर्द्रस्तो ययोक्तंर्मर्मपोडनैः ।  
 तथा कासपिपासास्यवैरस्यश्वासपीनमैः ॥२४॥  
 बलमांगभंगवमधुस्रवपुश्वययुज्वरैः ।  
 बलैर्म्यवाधिर्यतैर्मिर्यशर्कराश्मरिणोदितः ॥२५॥  
 क्षामभिन्नस्वरो ध्यायन्मुहुः श्लोबन्नरोचकी ।  
 सर्वं नर्वास्थिहृन्नामिपापुषंस्रणशूलवान् ॥२६॥  
 गुदेन स्रवता पिच्छो पुलाकोदकसन्निभाम् ।  
 विबद्धमुक्तं शुष्काद्रं पकामं चांतरांतरा ॥२७॥  
 पाण्डु पीतं हृदितं पिच्छिलं चोपवेश्यते ।

### वातजार्शसोलक्षणम्—

गुदाङ्कुरा बल्लनिलाः शुष्काध्निगन्धिगन्विताः ॥ २८ ॥  
 म्लानाप्ययावारुणाः स्तब्धा विपमाः परुषाः खराः ।  
 मिथोविसृष्टा वक्रास्तीक्ष्णा त्रिस्फुटिताननाः ॥ २९ ॥  
 विबीर्कर्कं धुस्रजूरकापामोफलसन्निभाः ।  
 केविरुदवपुष्पमाः केवितिमिदार्थकोनमाः ॥ ३० ॥  
 शिरःपाश्वोत्तकटयुखंस्रणाम्यधिकम्बधाः ।  
 दावपूद्गाराविष्टं बहुदग्रहारोषकप्रदाः ॥ ३१ ॥  
 वासश्चापाधिर्ययम्यकर्णनादघ्नमावहाः ।  
 तैरातो ग्रापतं स्तेरु सशब्दं सप्रवाहिकम् ॥ ३२ ॥  
 रक्तेन पिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते ।  
 वृष्णत्वङ्मूर्खविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्च जायते ॥ ३३ ॥  
 युग्मज्जीह्वोदराष्टीलासंभवरत एव च ।

### पित्तजार्शसोलक्षणम्—

पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तग्रीवासितप्रभाः ॥ ३४ ॥  
 तन्वस्रस्त्राविणो विस्त्रास्तनयो मृदवः श्लथाः ।  
 शुक्रजिह्वाण्वृत्तं डजलीकावक्त्रसन्निभाः ॥ ३५ ॥  
 दाहपाकज्वरस्वेदनृणमूर्च्छाश्चिमीहदाः ।  
 सोष्माणो ह्रवनीतोष्णपोतरक्तमवर्चसः ॥ ३६ ॥  
 यवमध्या हरित्पीतहारिद्रस्वङ्गनक्षायः ।

### कफजार्शसोलक्षणम्—

श्लेष्मोत्थणा महामूला घना मंदरजः सिताः ॥ ३७ ॥  
 उच्छूनोपचिताः स्निग्धाः स्तब्धगृत्तगुरुस्थिराः  
 पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लघ्नाः कंद्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः ॥ ३८ ॥  
 करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ।  
 धंसणानाहिनः पायुर्वास्तिनाभिविकसिनः ॥ ३९ ॥  
 मवासम्भ्रामहृत्लासप्रसेकाश्चिपीनसाः ।  
 मेहवृक्षुक्षिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः ॥ ४० ॥  
 कलध्याप्तिमाद्रं वज्रदिरामप्रायविकारदाः ।  
 वमाभाः सफकप्राग्यपुरीषाः सप्रवाहिकाः ॥ ४१ ॥  
 न स्रवति न भिद्यति पादुस्निग्धत्वगादयः ।  
 संमृष्टलिगाः संसर्गात् निचयात्सर्वलक्षणाः ॥ ४२ ॥

### रक्तजार्शसोलक्षणम्—

रक्तोत्थणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ।  
 षट्प्ररोहसदृशा मुंजाविद्रुमसन्निभाः ॥ ४३ ॥  
 तेऽल्पं दुष्टमुष्णं च गाढविट्प्रतिपीडिताः ।  
 मयंनि महमा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः ॥ ४४ ॥  
 भेदामोषोऽप्यने दुर्घ्नः शोणितधायसंभवः ।  
 हीनरसवतोत्गाहो हजोजाः क्लृपोद्वयः ॥ ४५ ॥

## अशंस्युदावर्तः—

मुद्गकांश्च 'ज्वर्णाहिकरीरचणकादिभिः ।  
 रुधैः संप्रादिभिर्वापुः स्वस्थाने कुनितो बलो ॥ ४६ ॥  
 मधोवहानि स्रोतांसि संरुध्याधः प्रक्षोपयन् ।  
 पुरीषं वातविण्मूत्रसंघं कुर्वीत दारणम् ॥ ४७ ॥  
 तेन तत्रा रुजा कोष्ठपृष्ठहृत्पार्श्वगा भवेत् ।  
 आध्मानमुदरावेष्टो हस्तासः परिकर्तनम् ॥ ४८ ॥  
 वरती च सुतरा घूर्लं गठः श्वयष्टुसंभवः ।  
 पवनस्याध्वगामित्वं तत्तस्यैवैवर्तज्वराः ॥ ४९ ॥  
 हृद्रोगग्रहणोदोपमुत्रसगप्रवाहकाः ।  
 याधिर्मतिमिरश्वासश्चिराद्वक्त्रासपीनसाः ॥ ५० ॥  
 मनोविकारस्तृष्णाक्षान्पक्षगुल्मोदरादयः ।  
 ते ते च वातजा रागा जायन्ते भृशदाहणरः ॥ ५१ ॥  
 दुर्नाम्नामत्युदावर्तः परमाऽवमुपद्रवः ।  
 वाताभिभूतकाष्ठानां तैर्विनाऽपि च जायते ॥ ५२ ॥

## अशंसांसाध्यासाध्यतन्म—

सहजानि त्रिदोषाणि यानि चाभ्यन्तरे बली ।  
 स्थितानि तान्यसाध्यानि याप्यतेऽश्वबलादिभिः ॥ ५३ ॥  
 दृढजानि द्वितीयाया बली मान्वाधितानि च ।  
 कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहूः परिमवत्सराणि च ॥ ५४ ॥  
 बाह्यादां तु बली जातान्येकदोषोत्पन्नानि च ।  
 अर्शोऽपि मुखसाध्यानि न चिरोन्वतितानि च ॥ ५५ ॥

## मेढ्रादिगताशंसानिर्देशः—

मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यते यथास्वं, नाभिजानि तु ।  
 गन्धपदास्यस्याणि पिच्छिन्नानि मृदूनि च ॥ ५६ ॥

**चर्मकीलोत्पत्तिः—**

व्यानो मुहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः ।  
कीलोपमं स्थिरतरं चर्मकीलं तु तं विदुः ॥ ५७ ॥  
यातेन तोदः पारुष्यं पिप्तादसितरक्तता ।  
श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य द्रवितत्वं सवर्णता ॥ ५८ ॥

**अर्शसांप्रशमे हेतुः—**

अर्शसो प्रशमे यत्नमाशु कुर्वीत बुद्धिमाशु ।  
सान्वाशु हि गुदं बद्ध्वा नुर्युर्वदगुदीदरम् ॥ ५९ ॥

**अष्टमोऽध्यायः ।**

मथातोऽनीसारपद्धतीरागयोनिदानं व्याख्यास्यामः ।

**अनीसारः पङ्क्तिः—**

“क्षोषैर्भ्यस्तीः समस्तीश्च भयाच्छांकाच्च पङ्क्तिः ।  
अनीसारद्वयनिदानसम्प्राप्ती—  
अनीसारः स सुतरा जायतेऽप्यनुपानतः ॥ १ ॥  
कुशराज्जामिपासात्म्यतिलपिष्टविरूढकैः ।  
मद्यक्त्यातिमात्रान्नैरर्णोभिः स्नेहविभ्रमात् ॥ २ ॥  
कृमिभ्यो वेगरोधाच्च तद्विधैः कुपितोऽनिलः ।  
विघ्नसमत्यधोऽध्यानुं हत्वा तेनीयं चानलम् ॥ ३ ॥  
व्यापद्यानुशत्रुकोष्ठं पुरीषं द्रवता नयम् ।

**अनीसारपूर्वरूपम्**

प्रकल्पतेऽतिसारय, लक्षणं तस्य भाविनः ॥ ४ ॥  
तोदो हृद्गुदकोष्ठेषु गानगादो मन्मथः ।

१ अनीसारः—“पतया पस्त” । विरूढकर्मकुरितपाप्यम् ।

२ स्नेहविभ्रमात्स्नेहपानविधिभंशात् ।

## वातजातीसारलक्षणम्—

आध्मानमविपाक्यनतत्र, वातेन विहजलम् ॥ ५ ॥  
 अल्पात्पं शब्दशूलात्वा विवद्वमुपवेश्यते ।  
 रुद्धं मफेनमच्छं च ग्रथितं वा मुहुर्मुहुः ॥ ६ ॥  
 तथा दग्धगुडामासं सपिच्छापरिकर्तिकम् ।  
 दृष्कास्थो भट्टपायुश्च हृष्टरोमा विनिष्टनम् ॥ ७ ॥

## पित्तातिसारलक्षणम्—

पित्तेन पांसर्मक्षितं हारितं शाद्वलप्रभम् ।  
 सरक्तमंतितुर्गंधं कृष्णमूर्च्छास्वेददाहयाम् ॥ ८ ॥  
 सक्षलपायुमंतापं पाकवाम्, श्लेष्मणा घनम् ।

## कफातिसारलक्षणम्—

पिच्छितं संतुमज्ज्वेतं स्निग्धमामं कफान्वितम् ॥ ९ ॥  
 अभीक्ष्णं गुरु दुर्गंधं विवद्वमनुबद्धरुक् ।  
 निद्रालुरलसोऽग्नद्विहृत्पात्वं मप्रवाहिकम् ॥ १० ॥  
 मरोमहर्षः मोक्षलेप्तो गुरुवस्तिगुदोदरः ।  
 हृत्तेऽप्यहृतमंशश्च, सर्वात्मा नर्बलक्षणः ॥ ११ ॥

## भयातिसारलक्षणम्—

भयेनक्षोभिते चित्ते मवित्तो द्रावयेच्छङ्खन् ।  
 यामुस्तर्वाऽतिसारमेतं क्षिप्रमुष्णं द्रवं श्लवम् ॥ १२ ॥  
 वातपित्तममं लिङ्गैराहृस्तद्वच्च शाकतः ।

## अतिसारस्यद्वैविध्यम्—

अतोसारः समामेन द्विधा सामो निरामकः ॥ १३ ॥

## आमनिरामपुरीषलक्षणम्—

मासृट्निरस्तः तत्राऽथे गौरवाद्यन्तु मज्जति ।  
 अहृद्दुर्गंधमाटोपविष्टं भातिप्रसेकिनः ॥ १४ ॥  
 विपरीतो निरामस्तु कफात्पक्वोऽपि मज्जति ।

### ग्रहणी रोगलक्षणम्—

अतोसारेषु यो नातिरक्तवाग् ग्रहणीरुदः ॥ १५ ॥  
तस्म स्यादग्निविध्वंसकरं रस्यर्थसेवितः ।

### अतिसारग्रहणीरोगयोर्भेदः—

नामं शङ्खनिरामं वा जीर्णं येनातिसार्यते ॥ १६ ॥  
सोऽतिसारोऽतिसरणाशुकारी स्वभावाद्यः ।  
मामं नाग्रमजीर्णं ज्ञे जीर्णं पक्वं तु नैव वा ॥ १७ ॥  
प्रकस्माद्वा मुह्यं दमकस्मान्छिन्नं मुहुः ।  
चिरकृद्ग्रहणीदोषः संवयाच्चोपवेशयेत् ॥ १८ ॥

### ग्रहणी रोगस्य चातुर्विध्यम्—

स चातुर्धा पृथग्भापैः सन्निपाताच्च जायते ।

### ग्रहणीरोगस्य पूर्वरूपम्—

प्रापूषं यस्य मदनं चिरात्तत्र नमलक ॥ १९ ॥  
प्रसेको यक्थ्वैरस्य मरुचिरतृद् बलपां भगः ।  
मानढोदरता छिदि. कर्गुद्वेडोऽप्रकूजनम् ॥ २० ॥

### ग्रहणीरोगस्य सामान्यलक्षणम्—

मामान्यं लक्षणं कार्श्यं धूमकस्तमको ज्वरः ।  
मूर्च्छा शिरोरुग्विष्टं भ्रमश्च करपादयोः ॥ २१ ॥

### घातजग्रहणीलक्षणम्—

तत्राग्निमान्नालुभोपस्तिमिरं कर्णयोः स्वनः ।  
पार्श्वोत्थं क्षण्योवास्त्राग्नीक्ष्णं विनूचिका ॥ २२ ॥  
रसेषु शृङ्गिः सर्वेषु द्युत्तृणा परिकर्तिका ।  
जीर्णं जीर्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यं नमभ्रुते ॥ २३ ॥  
घातहृद्रोगगुह्मार्ग. प्लोहगुह्वज्ज्वरः ।

चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तन्वाम् शब्दकेनवत् ॥ २४ ॥  
पुनः पुनः सृजेद्वर्चः पायुरवधासकामवाम् :

**पित्तजग्रहणीलक्षणम्—**

पित्तेन नीलं पीताभं पीताभः सृजति द्रवम् ॥ २५ ॥  
पूरयन्लोद्गारहृत्कंठदाहारचितुर्द्विदितः ।

**कफजग्रहणी लक्षणम्—**

श्लेष्मत्या पच्यते दुःखमग्नश्चिदिररोचकः ॥ २६ ॥  
घ्रास्योपदेहनिष्ठोवकासहृत्लासपीनसाः ।  
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरु ॥ २७ ॥  
उद्गारो दुष्टमधुरः सदनं स्तोष्वहर्षणम् ।  
भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टमुदवर्चःप्रवर्तनम् ॥ २८ ॥  
अकृशस्यापि दीर्घत्वम्, सर्वजे सर्वसंकरः ।

**विषमाग्निरग्रहणीरोगः—**

विमार्गेऽग्नस्य ये चोक्ता विषमाद्यास्त्रयोऽग्नयः ॥ २९ ॥  
तेऽपि स्युर्ग्रहणोदोषाः, समस्तु स्वास्थ्यकारणम् ।

**अष्टौ महारोगाः—**

वातध्याध्यश्मरोकुष्ठमेहोदरभगंदराः ।  
अग्नीमि ग्रहणोत्पद्यते महारोगाः सुदुस्तराः ॥ ३० ॥

**नवमोऽध्यायः**

अथाज्ञो मूत्रापातनिदानं व्याख्यास्यामः

**अस्त्यादय एकसम्यन्धनाः—**

“वस्तिबस्तिगिरोमेद्वदोवृषणपापकः ।

एकमन्धनः प्रोक्ता गुदास्थिविवररक्षणः ॥ ३१ ॥

### मूत्राघातोत्पत्तौ कारणम्—

अधोमुखोऽपि वस्तिहि मूत्रवाहिसिरामुखैः ।  
 पार्श्वेभ्यः पूर्यते मूदमः स्वंशमानेरनारतम् ॥२॥  
 यैस्तेरेव प्रविश्यैनं दोषाः कुर्वन्ति विश्रुतिम् ।  
 मूत्राघातात् प्रमेहाश्च कृच्छ्रान्मर्मसमाश्रयात् ॥३॥  
 यस्त्विबंशणमेद्वातिपुक्तोऽन्यात्वं मुहुर्मुहुः ।  
 मूत्रयेद्वातजे कृच्छ्रे, पैत्ते पित्त सदाहृत् ॥४॥  
 रक्तं वा, कफजे यस्तिमेद्वा गन्धनाकशम् ।  
 सपिच्छं सविबंघं च, सर्वैः सर्वात्मकं मलैः ॥५॥

### अश्मरीलक्षणम्—

यदा यामुमुखं वस्तेरावृत्य परिणोपयेत् ।  
 मूत्रं मपित्तं मकफं सशुक्रं वा तदा कणात् ॥६॥  
 मजायतेऽश्मरी धोरा पित्ताद्गौरिव रोचना ।  
 श्लेष्माश्रया च सर्वा स्यात्, अथाऽस्याः पूर्वलक्षणम् ॥७॥

### अश्मर्याः पूर्वरूपम्—

वस्त्याष्मानं तदानन्वदेशेषु परितोऽतिरुक् ।  
 मूत्रे च यस्तनगमत्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽवचिः ॥८॥

### अश्मर्याः सामान्यलक्षणम्

सामान्यलिङ्गं रुड् नाभिसेवनीवस्तिमूर्धनु ।  
 विशोर्णधारं मूर्धं स्यात्तमा मार्गनिरोधने ॥९॥  
 तब्ध्यापायात्मुक्तं मेहेदृच्छं गोमेदकोपमम् ।  
 तत्संस्थाभात् क्षते सासमायासान्चातिरम्भवेत् ॥१०॥

### वाताश्मरीलक्षणम्—

तत्र वाताश्मृशात्यंतो दंताम् मारदति वेपते ।  
 मृदनाति मेहनं नाभि गोडयत्यनिद्य कणम् ॥११॥



सानिलं मुंचति शकृन्मुहुर्महति विदुशः ।

श्यावा रुग्णाऽश्मरी चास्य स्याच्चिता कटकैरिव ॥१२॥

पित्ताश्मर्यालक्षणम्—

पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्मवान् ।

भस्मातकास्त्रिसंस्थाना रक्तापीताऽमिताऽश्मरी ॥१३॥

कफाश्मर्यालक्षणम्

वस्तिनिस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शोततो मुहुः ।

अश्मरी गहतो श्लेष्मणा मधुपर्णाऽपवा तिता ॥१४॥

अश्मरीत्रयाणां बालेऽत्रेवोत्पत्तिः—

एता भवति बालानां तेषामेव च भ्रूयसा ।

प्राग्भयोपचयात्पत्वाद्यहणाहरणे मुखः ॥१५॥

शुक्राश्मरी लक्षणम्

शुक्राश्मरी तु गहतां जानते शुक्रपारणात् ।

स्यानाच्युतममुत्र हि मुष्कयोरन्तरेऽनिलः ॥१७॥

शोषयत्युपसंश्लेष शुक्रं तच्छुष्कमश्मरी ।

वस्तिरक्षुब्धमूत्रत्वमुष्णघृणकारिणी ॥१७॥

तस्यामुत्पन्नमात्राया शुक्रमेति विलोयते ।

पिडिते त्वमकारोऽस्मिन्, अश्मर्येव च शर्करा ॥१८॥

शर्करानिर्देशः—

अशुशो थायुना भिन्ना सा त्वस्मिन्ननुलोमये ।

निरेति मह मूत्रेण प्रतिलोमे विबध्यते ॥१९॥

१ आश्वयभाषारो वस्तिरित्यर्थः, उच्योऽश्मर्याः स्योर्त्वं तयोरन्तत्वात् ग्रहणे बहिषादिना, आहरणे शस्त्रादिनाचमुक्ताः मुखोपाया इत्यर्थः । २ तस्या-  
मश्मर्यामुत्पन्नमात्रायां न चिरकालोत्पन्नायामस्मिन्नवकारे शुक्राश्मरीत्यने  
पिडिते शुक्रमेतिवर्ततयागच्छतिवा ।

### वातवस्तिलक्षणम्

मूत्रसंधारिणः कुर्याद्रुद्ध्वा वस्तेर्मुखं भस्त् ।  
 मूत्रसंगं रुजं कंठं कदाचिच्च स्वधामतः ॥२०॥  
 प्रच्यान्य वस्तिमुद्धृत्ते गर्भार्मं म्यूलविल्लुनम् ।  
 करोति तत्र रुद्धाहस्यंदनोद्धेष्टानि च ॥२१॥  
 विबुधाश्च प्रवर्तन्ते मूत्रं वस्ती तु प्रोद्धिते ।  
 धारया द्विविधोऽप्येष वातवस्तिरिति स्मृतः ॥ २२ ॥  
 दुस्तरः दुस्तरतरो, द्वितीयः प्रबलानिलः ।

### वाताघ्नीलक्षणम्—

शङ्खमार्गस्य वस्तेश्च वायुरंतरमाश्रितः ॥ २३ ॥  
 अक्षोलाभं घनं ग्रथिं करोत्यधनमुन्नतम्  
 वाताघ्नीलेति नाऽऽध्मानविसृष्टानिलसंगद्वत् ॥२४॥

### वातकुंडलिका लक्षणम्—

विगुणः कुंडलीभूतो वस्ती तीव्रव्यथोऽनिलः ।  
 घातिश्च मूत्रं भ्रमति सस्तंगोद्धेष्टगौरवः ॥२५॥  
 मूत्रमत्यात्ममथवा विमुंचति शङ्खमृजम् ।

### मूत्रातीत लक्षणम्—

वातकुंडलिनेत्येषा, मूत्रं तु विमूर्तं विरम् ॥२६॥  
 न निरेति विवदं वा मूत्रातीतं तदल्पम् ।

### मूत्रजठर लक्षणम्—

विधारणात्प्रतिहृतं वातोदावर्तितं यदा ॥२७॥  
 नाभेरधस्तादुदरं मूत्रमापूरयेतदा ।  
 कुर्यात्सीग्रहमाध्मानमपनिउपलमग्रहम् ॥२८॥

## मूत्रोत्संगलक्षणम्—

तन्मूत्रजठरम्, श्लिष्टवर्णगुण्येनानिसेन वा ।  
 भासितमल्पं मूत्रं तु वस्ती नालेऽयना मणौ<sup>१</sup> ॥२६॥  
 स्थित्वा स्रवेच्छनैः पश्चात्परुजं वाऽयवाऽरुजम् ।  
 मूत्रोत्संगः स विच्छिन्नतच्छेषगुणशोफनः ॥२७॥

## मूत्रप्रंथिलक्षणम्—

प्रतर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः महमा भवेत् ।  
 अश्मरीतुल्यस्क्वपि मूत्रप्रंथिः स उच्यते ॥२८॥

## मूत्रशुक्लक्षणम्—

मूत्रितस्य त्रिधं यातो बाधुना शुक्लमुदतम् ।  
 स्थानाच्चयुतं मूत्रपतः प्राक् पश्चाद्वा प्रवर्तते ॥२९॥  
 भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्लं तदुच्यते ।

## विट्विषातलक्षणम्—

रुक्षदुर्बलयोर्वातादुदावृत्<sup>२</sup> कृच्छ्रदा ॥ ३० ॥  
 मूत्रलोतोऽनुपमेनि संसृष्टं घट्टता सदा ।  
 मूत्रं विटतुल्यगंधस्याद्विषातं तमादिशेत् ॥ ३१ ॥

## उष्णवातलक्षणम्—

पित्तं व्यापामतीक्ष्णोष्णभोजनाध्वातपादिभिः ।  
 प्रवृद्धं बाधुना क्षितं वस्त्युपस्थातिदाहवद ॥ ३२ ॥  
 मूत्रं प्रवर्तयेत्पौत सरक्तं रक्तमेव वा ।  
 उष्णं पुनः पुनः कृच्छ्रा<sup>३</sup> दुष्पणत्राव वदन्ति तम् ॥ ३३ ॥

## मूत्रदायलक्षणम्—

रक्तस्य कलांतदेहस्य वस्तिस्थो पित्तमाश्रितो ।  
 मूत्रदायं सरग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥ ३४ ॥

१ नान्निशिनदण्डे, मणौ मिशनाग्रे । २ उष्णवात एव प्राचीनम्  
 (मुञ्जाक) इति हि० ।

—मूत्रसादलक्षणम्—

पित्तं कफो द्रावपि वा संहन्येऽनिलेन चेत् ।  
 कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं धनं सृजेत् ॥ ३८ ॥  
 सदाहं रोचनासंलघूणवर्णं भवेच्च तत् ।  
 शुष्कं गमस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥ ३९ ॥

मूत्रातिप्रवृत्तिजरोगलक्षणं ममे—

इति विस्तरतः प्रोक्ता रोगा मूत्राऽप्रवृत्तिजाः ।  
 निदानलक्षणैर्हर्ष्यं वदयंतेऽतिप्रवृत्तिजाः ॥ ४० ॥

दशमोऽध्यायः

अथाऽतः प्रमेहनिदानं व्याख्यास्यामः ।

विंशतिः प्रमेहाः—

"प्रमेहा विंशतिस्तत्र श्लेष्मतो दश, पित्ततः :  
 पट्, चत्वारोऽनिलात्, तेषां मेदोमूत्रकफावहम् ॥१॥

प्रमेहाणामुत्पादकादि—

अन्नपानत्रिषाणात् यत्प्राम<sup>१</sup> तत्प्रवर्तकम् ।  
 स्वाद्भस्मलवणस्निग्धगुरुपिचिलशीतलम् ॥२॥  
 नवधान्यसुरानूपमासेक्षुगुडगोरसम् ।  
 एकस्थानाग्नगतिः क्षयनं विधिवज्जितम् ॥३॥

कफजप्रमेहसम्प्राप्तिः—

अन्तिमाश्रित्य कुक्षे प्रमेहाम् दूषितः कफः ।  
 दूषयित्वा यपुः क्लेशस्येदमेदोरसामिषम् ॥४॥

१ तेषांप्रमेहाणां । मेदोमूत्रकफकरं यदन्नपानत्रिषाणात् तदन्नादि तत्प्रवर्तकम्  
 प्रमेहोत्पादकम् । त्रिषा विहारः ।

## पित्तजप्रमेहसम्प्राप्तिः—

पित्तं रक्तमपि क्षीणे कफादौ मूत्रमंथयम् ।

## वातजप्रमेहसम्प्राप्तिः—

घातून् बस्तिमुपानीय तत्क्षयेऽपि च मारुतः ॥५॥

## साध्यासाध्यविभागः—

माध्ययाप्यपरित्याज्या मेहास्तेनैव तद्भवाः ।

समाममक्रियतया महात्ययतयाऽपि च ॥६॥

## प्रमेहस्य सामान्यलक्षणम्—

सामान्यं लक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता ।

## प्रमेहाऽनेकत्वेहेतुः—

दोषदूष्यावितोपेऽपि तत्सर्वयोगविशेषतः ॥७॥

मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ।

## कफजादशमेहाः—

अर्धं बहु सितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् ॥८॥

मेहस्युदकमेहेन विचिञ्चवाविलपिच्छिमम् ।

इतो रसमिवात्यर्थं मधुरं चेतुमेहतः ॥९॥

सांक्षीघनेत्यमुणितं सांद्रमेही प्रमेहति ।

सुरामेही सुरातुल्यमुपमं च्यवन्यो घनम् ॥१०॥

संहृष्टरोमा पिष्टेन विष्टवद्गुलं मितम् ।

१ नमक्रियया कफमेहसाध्यः । अगम ( विषम ) क्रियया पित्तमेहोपाध्यः, वातमेहो महात्ययतया मोघप्रतिनाशतया परित्याज्यः । तत्रकफमेहे कल्प्य तथा दूष्यस्य शरीरवेदादेशवापनर्पणस्यागमाक्रिया । पित्तमेहे पित्तस्य शीतमधुरादि क्वातूष्यस्य विन्दुत्वादगमा विषमत्वार्थः । वातमेहे श्वेतोक्षणादिकं दूष्यक्रिया वातस्य च स्निग्धमधुरादिकं गन्तर्पणस्याक्रिया तदेवं विदुःक्रियत्वाद्वातमेहा

शुक्राभं शुक्रमिभं वा शुक्रमेही प्रमेहति ॥ ११ ॥

मूत्राणू सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ।

शीतमेही मुत्रदूषा मधुरं भृशशीतलम् ॥ १२ ॥

शनः शनः शनैर्मही मदं मद्य प्रमेहति ।

लालातंतुयुतं मूत्र लालामेहेन पिच्छिलम् ॥ १३ ॥

**पित्तजाः षट् प्रमेहाः—**

संघर्णरसस्पर्शः क्षारेण क्षारतायकम् ।

नीलमेहेन मालाभं, कालमेही मनीमम् ॥ १४ ॥

हारिद्रमेही बदक हरिद्रासन्निभं दहत् ।

विन्नं मांजिष्टमेहेन मजिष्ठासलिलोपमम् ॥ १५ ॥

विरामुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तगोहृतम् ।

**क्षत्वारोवातजप्रमेहाः—**

घसामेही घसामिश्रं वसा वा मूत्रवेन्मुहुः ॥ १६ ॥

मज्जानं मज्जामिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः ।

हस्ती मल इवाजल मूत्र वेगविवर्जितम् ॥ १७ ॥

मलसौकं विषदं हस्तिमेही प्रमेहति ।

**मधुमेहस्यद्वैविध्यम्—**

मधुमेहां मधुसमम् जायते स किल द्विधा ॥ १८ ॥

क्षुदे धानुक्षयाशायो दोषानृतपथेऽप्यवा ।

प्रायृतो दोषतिगानि सौमिनिमित्तं प्रदर्शयेत् ॥ १९ ॥

क्षीण क्षणात्क्षणाद् पूर्णो भजते शृङ्खलाध्यताम् ।

**उपेक्षया सर्वेषामधुमेहत्वम्—**

वातेनोपेक्षिताः सर्वे यच्चाति मधुमेहताम् ॥ २० ॥

मधुरं यच्च सर्वेषु प्रायो मध्विवमेहति ।

सर्वेऽपि मधुमेहाद्या मायुर्याज्ज तनोरतः ॥ २१ ॥

**प्रमेहोपद्रवाः—**

मविपाकोऽचिच्छन्निद्रा कासः सपीनसः ।

उपद्रवाः प्रजायन्ते महानां कफजन्मनाम् ॥२२॥  
 वस्तिमेहर्नयोस्तोदो मुष्कावदरंणं ज्वरः ।  
 दाहस्तृष्णास्तको मूर्छा विद्भेदः पित्तजन्मनाम् ॥२३॥  
 वातिकानामुदावर्तकं ठहृद्ग्रहलोभताः ।  
 मूतमुनिद्रता शोषः कासः श्यामश्च जायते ॥२४॥

### प्रमेहिण्यां दश पिटिकाः—

शराविका कच्छपिका जालिनी विनता ज्ञात्री ।  
 मसूरिका सर्पपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥२५॥  
 विद्रधिश्चेति पिटिकाः प्रमेहोपेक्षया दश ।  
 मंघिमर्मसु जायन्ते मांसनेपु च घामसु ॥२६॥  
 अतोक्षता मध्यनिम्ना श्यावा बलेदरजान्विता ।  
 शरावमानसंस्थाना पिटिका श्याच्छराविका ॥२७॥  
 अर्क्वादातिनिस्तोश महावास्तुपरिग्रहा ।  
 श्लक्ष्णा कच्छपपृष्ठाभा पिटिका कच्छपी मता ॥२८॥  
 स्तब्धा मिराजालवती स्निग्धस्त्रावा महाश्यावा ।  
 रुजानिस्तोदबहुला मूक्षमच्छिद्रा च जालिनी ॥२९॥  
 अर्क्वादरुजाबलेदा पृष्ठे वा जठरेऽपि वा ।  
 महती पिटिका नीला विनता स्मृता ॥ ३० ॥  
 दहति स्वचमुत्पाने भुक्षं कष्टा विसर्पिणी ।  
 रक्तकृष्णातिवृट्स्फोटदाहमोहज्वराज्ज्वली ॥३१॥  
 मानसंस्थानयोस्तुल्या मसूरेण मसूरिका ।  
 सर्पपामानसंस्थाना विप्रपाका महारुजा ॥३२॥  
 सर्पपा सर्पपातुल्यपिटिकापरिवारिता ।  
 पुत्रिणी महती भूरिमुसूदमपिटिकावृता ॥३३॥  
 विदारिकंदवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ।

### पिटिकानां साध्यत्वादि—

विद्रधिर्विष्यतेऽन्यत्र, तत्राद्यं पिटिकात्रयम् ॥३४॥

पुत्रिणी च विदारो च दुःसहा बहुमेदसः ।

मह्याः पित्तोत्पत्त्यास्त्वन्याः संभवत्यल्पमेदसः ॥३५॥

**तामुमेहवशाद्दोषोद्रेकः—**

‘तामु मेहवशाच्च स्याद्दोषोद्रेको यथावयम् ।

प्रमेहेण विनाप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः ।

तावच्च मोपलक्ष्यते भावद्वास्तुपरिग्रहः ॥३६॥

**रक्तपित्तप्रमं हयोर्भेदः—**

हारिद्रवणं रक्तं वा मेहप्राप्तपूर्वजितम् ।

यो मूत्रेणेन स मेहं रक्तपित्तं तु तद्विदुः ॥३७॥

**प्रमेहाणां पूर्वरूपम्—**

स्वेदोऽगर्घः निधिनत्वमग्रे

शब्द्यासनस्वप्नसुप्ताभिर्यगः ।

हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो

पनांगता केशनक्षातिवृद्धिः ॥३८॥

शीतप्रियत्वं गलतामुशोषो

माधुर्यमास्ये करपाददाहः ।

भविष्यतो मेहगणस्य रूपं

मूत्रैर्भिधावति पिपीलिकाश्च ॥३९॥

**प्रमेहेद्विविधो विचारः—**

दृष्ट्वा प्रमेहं मधुरं सपिच्छं

मधूपर्मं स्याद् द्विविधो विचारः ।

संतर्पणाद्वा कफमभवः स्यात्

क्षीणेषु दोषेष्वनिलात्मको वा ॥४०॥

१ तामुपिष्कामु । यो मेहो यद्दोषजस्तत्पिष्कामि तद्दोषजा । २ यद्यपि निदानानंतरं पूर्वरूपं वक्तव्यं तथापि निदानलक्षणानंतरमत्र निदानलक्षणयोरिव कित्मान्-  
गत्वमनिपादनार्थं त्यक्तयोः पूर्वमभिधानम् । अथवा । अवश्यं च वपुःस्थानां  
शामयारमभिधानम् । एवमन्यत्रापि व्यतिप्रमे द्रष्टव्यम् । इति मधुकोशभाष्ये ।



मेदसोनातिदुष्टत्वे प्रमेहाणांसाध्यत्वम्—

“सपूर्वस्थाः कफपित्तमेहाः  
 क्रमेण ये नातकृताश्च मेहाः ।  
 साध्या न ते, पित्तकृतास्तु याप्याः  
 माध्यास्तु मेदो यदि नातिदुष्टम्” ॥४१॥

## एकादशोऽध्यायः ।

अथाऽतो विद्रधिदृदिगुल्मनिदानं वगह्यस्यामः ।

विद्रधेःपट्विधत्वम्—

“श्रुतैः पर्युपितात्युष्णरूक्षशुण्ठविदाहिभिः ।  
 जिह्वाशय्याविवेष्टाभिस्तैस्तैश्चासूत्रप्रदूषणैः ॥१॥  
 दुष्टत्वङ्मांसमेदोस्निग्धावासकः शराश्रयः ।  
 यः शोफो बहिरवर्त्ता गहामूलो गहास्त्रजः ॥ २ ॥  
 वृत्तः स्मादायतो यो वा स्मृतः पोढा स विद्रधिः १ ।  
 दोषैः पृथक्प्रमुदितैः शोणितेन सतेन च ॥ ३॥

पण्णांपुनर्द्वैविध्यम्—

बाह्योऽत्र तत्रतत्राग्रे दाह्यो ग्रथितोन्नतः ।  
 मातरो दाह्यतरो गंभीरो गुल्मवद्धनः ॥ ४ ॥  
 चत्सीकवत्प्रमुञ्छायो शोघघात्यग्निशस्त्रवत् ।

उत्पत्तिस्थानम्—

नामिबस्तिरुत्पत्तीहृक्लोमहृक्कुक्षिवंक्षणे ॥ ५ ॥  
 स्याद्गुणयोरपाने च, वातात्तत्राऽतितीव्रहृक् ।

वातजलक्षणम्—

श्यावास्त्रिस्तोत्रानपाको विषमसंस्थितिः ॥ ६ ॥  
व्यघ्रच्छेदप्रमानाहस्यंदसर्पणशब्दवान् ।

पित्तजलक्षणम्—

रक्तताम्रानितः पितातुल्योहज्वरदाहवात् ॥ ७ ॥  
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्च पांडुः कट्युतः कफात् ।

कफजलक्षणम्—

सोत्कृशेशशीतवस्तंभजं भारोचकगौरवः ॥ ८ ॥  
चिरोत्थानवदाहश्च, संकीर्णसन्निपाततः ।  
१ सामर्प्याच्चक्ष्ण विभजेद्वाह्यास्यंवरलक्षणम् ॥ ९ ॥

रक्तजलक्षणम्—

कृष्णस्फोटावृतः श्यावस्तीक्ष्णदाहज्वरः ।  
पित्तनिगोऽसृजा बाह्यः क्षीणामेव तथावरः ॥ १० ॥

क्षतविद्रधिजलक्षणम्—

शस्त्राद्यैरभिपातेन क्षते वाऽऽप्यकारिणः ।  
क्षतोष्मा बाधुविक्षिप्तः सरक्त पित्तमोरयन् ॥ ११ ॥  
पित्तासृग्लक्षणं कुर्याद्विद्रधि भृगुपद्रवम् ।

विद्रधिपुउपद्रवविशेषः—

त्रेपुपद्रवभेदश्च स्मृतोऽधिष्ठानभेदतः ॥ १२ ॥

आभ्यन्तरविद्रधावधिष्ठानभेदेन विशेषलक्षणम्—

नाभ्यां हिष्मा, भवेद्ब्रह्मतौ मूत्रं कृच्छ्रेण पूति च ।  
आगो यकृति, रोषस्तु १ जीह्वधुच्छ्वासस्य, वृद्ध पुनः ॥ १३ ॥  
गलग्रहश्च क्षोभिन्, स्यात्तर्वांगप्रपहो हृदि ।

१ सामर्प्यादि-शक्तेः पूर्वोक्ताद्वारणत्वरत्वादितलक्षणादित्यर्थः । २ जीह्व  
उच्छ्वासस्यरोधः ।

प्रमोहस्तमकः कासो हृदये घट्टनं व्यथा ॥१४॥  
 कुक्षिपार्श्वतिरांसातिः कुक्ष्यावाटोपजम्भ च ।  
 सक्थनोर्ग्रहो वंक्षण्यायो, वृक्षयोः कटिपृष्ठयोः ॥१५॥  
 पार्श्वयोश्च व्यथा, पायौ पवनस्य निरोधनम् ।

तेषामामत्वादि—

भ्रामपकविदम्भत्वं तेषां शोफवदादिशेत् ॥१६॥

तेषांस्त्रावः—

नाभेरुर्ध्वं मुखात्पक्षाः, प्रस्रवत्यधरे गुदात् ।  
 उमाभ्यां नाभिजो विद्याहोषं क्लेदाच्च विदधौ ॥१७॥

दोषज्ञानम्—

यथात्वं ब्रणवत्, तत्र विवर्ज्यः यन्निपातयः ।

साध्यासाध्यविभागः—

पक्षो हृन्नाभिवस्तिस्थो भिन्नोऽन्यैर्हिरेव वा ॥१८॥  
 पक्षवातः स्रवन्वक्त्रात्, क्षीणस्थोपद्रवान्वितः ।

स्त्रीणांस्तनविद्रधिः—

एवमेव स्तनतिरा विवृताः प्राप्य योपिताम् ॥१९॥  
 सूतानां गर्भिणीनां वा संभवेच्छ्वयमुप्यनः ।  
 स्तने सदुग्वेऽदुग्वे वा बाह्यविद्रचितक्षणाः ॥२०॥  
 नाडीनां मूढमयवन्नत्वात्कन्यानां तु न जायते ।

वृद्धिनिर्देशः—

मूढो रुद्धगतिर्वायुः शोफमूलकरश्चरम् ॥२१॥  
 मुष्कौ वंक्षणातः प्राप्य फलकोशाभिवाहिनीः ।  
 प्रपीड्य घमनोवृद्धिं करोति फलकोशयोः ॥२२॥  
 दोषासमेदोभूतान्नैः स वृद्धिः सप्तधा यदः ।

२ वृद्धिः, भ्रष्टवृद्धिरोगः ।

मूत्रांत्रजावप्यनितादेनुभेदस्तु केवलम् ॥२३॥  
 वातपूर्णंहतिस्पर्शो घृक्षो वातादहेतुर्युक् ।  
 पक्कोदुर्बलसंवाशः पित्तादाहोष्मपाकवान् ॥२४॥  
 कफाच्छीतो गुरुः स्निग्धः कंठमान् कठिनोऽल्पवृक् ।  
 शृङ्गुस्फोटान्वृतः पित्तवृद्धिलिगश्च रक्तस्तः ॥२५॥  
 कफवन्मेदसा वृद्धिर्गुदुस्तानफोपमः ।  
 मूत्रधारणशोलस्यं मूत्रजं स तु गच्छतः ॥२६॥  
 शंभोभिः पूर्णंहतिवत्सोभं याति सरुद्रमृदुः ।  
 मूत्रगुच्छ्रमघस्ताच्च<sup>१</sup> बलस्यं कलकोशयोः ॥२७॥

अन-वृद्धिः—

वातफोपिभिराहारैः शीततोषावगाहनैः ।  
 धारणेरणभाराध्वविषमागप्रवर्तनं ॥२८॥  
 शोभणैः क्षुभितोऽर्ग्यैश्च क्षुद्रावावपवं यदा ।  
 पपनो विगुणीकृत्य स्वनिवेशादघो नयेत् ।  
 कुर्याद्वक्ष्येणसंधिस्थो द्रव्याभ श्रययु<sup>२</sup> तदा ॥२९॥

उपेक्ष्यमाणस्य च मुष्कवृद्धि-

'माध्मानस्कृम्तंभवती म वायुः ।

प्रपीडितोऽसः स्वनवान् प्रयाति

प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मुक्तः ॥३०॥

मंत्रवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिममाकृतिः ।

'गुल्मलक्षणम्—

रुक्षाकृष्णारुणतिरातंतुजासगवाशितः ॥३१॥

गुल्मोऽष्टधा पृथग्दोषैः संसृष्टनिचयं गतेः ।

आतंवस्य च दोषेण नारीणां जायतेऽष्टमः ॥३२॥

१ मूत्रगुच्छ्रस्यात्कलकोपयोरधस्ताच्च बलस्यकंटकस्यात् । २ उपेक्ष्यमाणस्मा-  
 चित्तिस्वमानस्यवायुराध्मानादिमतीं मुष्कवृद्धिकुर्यात् । ३ गुल्मः ( वायव्यलोला )  
 हि० ।

## गुल्मनिदानम्—

ज्वरच्छर्त्तिसाराद्यैर्वमशर्त्तश्च कर्मभिः ।  
 कशितो वातजान्यसि शीतं वायुं धुमुक्षितः ॥३३॥  
 यः पित्रत्यनु चान्नानि लघनं पचनादिषम् ।  
 सेवते देहसंदोभिरद्यदि वा नमुक्षयेत् ॥३४॥  
 मनुदीर्णामुदीर्णांश्च वातादीन् विमुञ्चते ।  
 स्नेहस्वेदायनम्यस्य शीतं वा निषेवते ॥३५॥  
 शुद्धो वाऽऽसुविदाहोनि भजते स्पन्दनानि वा ।  
 वातोत्प्लवणस्तस्य मलाः पृथक् क्रुद्धा दिशोऽप्यवा ॥३६॥  
 मर्षे वा रक्तयुक्ता वा महालातोऽनुगायिनः ।  
 ऊर्ध्वोमार्गमापृण्य कुर्वते दूतपूर्वकम् ॥३७॥  
 स्पर्शोपलभ्यं गुल्माख्यमुत्प्लुतं प्रभिरुपिणम् ।  
 कर्मानात्कफविट्पित्तमार्गस्यावरणेन वा ॥३८॥  
 वायुः कृताशयः कोष्ठे रौक्ष्यात्काठिन्यमागतः ।  
 स्वतंत्रः स्वाश्रये दुष्टः परतंत्रः पराश्रये ॥३९॥  
 पिडितत्वादमूर्तोऽपि मूर्तत्वमिव संश्रितः ।  
 गुल्म इत्युच्यते अस्तिनाभिहृत्पार्श्वसंश्रयः ॥ ४० ॥

## वातगुल्मलक्षणम्—

वाताग्मग्यागिरः दूर्ल ज्वरप्लीहांत्रकूजनम्  
 व्यथः मूष्येय विट्संगः कृच्छ्रादुच्छ्वसनं मुहुः ॥४१॥  
 स्तंभो गात्रे मुखे शोषः काश्यं विषमवह्निता ।  
 हसकृप्यत्वगादित्वं चसत्त्वादनिचस्य च ॥४२॥  
 अनिरूपितसंस्थानस्यानवद्विषयव्यथः ।  
 पिपीनिकाव्याप्त इव गुल्मः स्फुरति तुद्यते ॥४३॥

## पित्तगुल्मलक्षणम्—

पित्तादाहोऽम्लको मूर्ध्नि विद्भेदस्वेदतृड्ज्वराः  
 हास्ति त्वं त्वगाक्षेषु गुल्मश्च स्पर्शनासहः ॥४४॥

दूयते दीप्यते सोष्मा स्वस्थानं दहतीव च । ...

**कफगुल्मलक्षणम्—**

कफात्तरुमिस्थमरुचिः गदनं शिथिरज्वरः ॥४५॥  
पीनसालस्यहृन्नासकासशुक्लत्वगादिताः ।  
गुल्मोवगाढः काठिनो गुरुः गुप्तः स्थिरोऽल्पस्कृ ॥४६॥  
स्वदोषस्थानपामानः स्वे स्वे काले च रुक्तराः ।  
प्रायः, धयस्तु द्रुद्धोत्था गुल्माः ससृष्टलक्षणाः ॥४७॥  
सर्वजस्तीव्ररुदाहः शीघ्रपाकी धनोन्नतः ।

**रक्तगुल्मलक्षणम्—**

सोऽसाध्यो, रक्तगुल्मस्तु स्त्रियाण्य प्रजायते ॥४८॥  
ऋती वा नवमृता वा यदि वा योनिरोमिणी ।  
सेवते वातलानि स्त्री क्रुद्धस्तस्या समीरणः ॥४९॥  
निरुणद्धघातैर्ब योन्यां प्रतिभासमवस्थितम् ।  
कुक्षिं करोति तद्गर्भलिङ्गमाविष्करोति च ॥५०॥  
हृन्नासदौहृदभ्यन्तदर्शनं क्षामतादिकम् ।  
क्रमेण वामुसंसर्गात्पित्तयोनितया च तत् ॥५१॥  
शोणितं कृण्वते तस्या वातपित्तोत्थगुल्मजात् ।  
रक्तस्तम्भदाहातीसारतृड्ज्वरादीनुपद्रवात् ॥५२॥  
गर्भाशये च सुतरा शूलं दुष्टात्युगाश्रये ।  
योग्याश्च साधदीर्घम्यतोदस्येदनवेदनाः ॥५३॥  
न चार्गर्भवद्गुल्मः स्फुरत्यपि तु शूलवान् ।  
पिंडीभूतः न एवास्याः कदाचिस्पर्दते चिरात् ॥५४॥  
न चास्या धर्धते कुक्षिर्गुल्म एव ॥ धर्धते ।

**गुल्मविद्रध्योर्लक्षणभेदः—**

स्वदोषसंघयो गुल्मः गर्वो भवति तेन सः ॥५५॥  
पाकं चिरेण भजते नैव वा, विद्रधिः पुनः ।  
पच्यते शीघ्रमत्यर्थं दुष्टरत्ताश्रयत्वतः ॥५६॥

अतः शीघ्रविदाहित्वाद्दिधिः सोऽभिधीयते ।  
 गुल्मेऽत्रराशये बस्तिकुक्षिहृत्स्नीहृवेदनाः ॥५७॥  
 अग्निवर्णबलभ्रंशो वेगानां चाप्रवर्तनम् ।  
 अतो विपर्ययो बाह्यो कोष्ठांगेषु तु नातिरक् ॥५८॥  
 वैवर्ण्यमवकाशस्य बहिरन्ततताऽधिकम् ।

आनाह ( अफरा ) लक्षणम्—

साटोपमात्पुष्पजमाध्मानमुदरे भृशम् ॥५९॥  
 ऊर्ध्वाधो वातरोधेन तमानाहं प्रचक्षते ।

प्रत्यष्टीलालक्षणम्—

घनोऽष्टीलोपमा ग्रधिरष्टीलांघ्र्यं सधुग्गतः ॥६०॥  
 आनाहलिंगस्त्रिषन्धु प्रत्यष्टोसा तवाकृतिः ।

तूनीप्रतून्योर्लक्षणम्—

पकाशयादगुदोपस्थं वायुस्तीक्ष्णः प्रयात् ।  
 तूनी, प्रतूनी तु भवेत् एवातो विपर्यये ॥६१॥

गुल्मपूर्वरूपम्—

उद्गारबाहुल्यपुरीषवधनृप्यक्षमत्वाच्चविकूजनानि ।  
 साटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिमासन्नगुल्मस्य वदति चिह्नम् ॥६२॥

—

## द्वादशोऽध्यायः ।

अथाऽन उदरनिदानं व्याख्यास्यामः ।

उदरस्योपसम्प्राप्तिः—

“रोगाः सर्वेऽपि मदेऽतो गुनरामुदराणि तु ।  
 घनीशान्ममिर्नआग्नीर्जायते मनसंचयान् ॥१॥

ऊर्वाघो घातवो रुद्ध्वा वाहिनोरंबुवाहिनीः ।  
प्राणान्यपानाम् संदूष्य कुर्युस्त्वद्मांससंघिगाः ॥२॥

उदरस्याष्टौभेदाः—

धाध्माप्य कुक्षिमुदरम्, अष्टधा तच्च भिद्यते ।  
पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लोहवृद्धक्षतोदकैः ॥३॥

उदरपीडितानां लक्षणम्—

तेनातः द्युक्तात्वोष्ठाः क्षूनपादकरोदराः ।  
नष्टवेष्टावलाहाराः कृशाः प्रघ्नातकुशयः ॥४॥

उदररोगपूर्वरूपम्—

स्युः प्रेतस्थाः पुरुषा, भाविनस्तस्य लक्षणम् ।  
क्षुन्नाशोऽन्नं चिरात्सर्वं सविदाहं च पच्यते ॥५॥  
जीर्णजीर्णं न जानाति, सोहित्यं सहते न च ।  
क्षीयते बलतः शब्दच्छ्वसित्यल्पेऽपि वेष्टिते ॥६॥  
वृद्धिभिर्गोऽप्रवृत्तिश्च किञ्चिच्छोकश्च पादयोः ।  
हवस्ति संधी, ततया लघ्वल्पाभोजनैरपि ॥७॥

सामान्यलक्षणम्—

राजोजन्म बलीनाशो जठरे जठरेषु तु ।  
सर्वेषु तद्वा सदनं, मलसंशोऽल्पवह्निवा ॥८॥  
दाहः श्वयपुराध्मानमति सलिलसंभवः ।

असौयमुदरम्—

सर्वं त्वतोयमरुणमक्षोफं नातिआरिक्म् ॥९॥  
गवाक्षितं सिराजालैः सदा गुदगुडायते ।  
नाभिर्मन्त्रं च विष्टम् वेगं कृत्वा प्रणश्यति ॥१०॥  
मारुतो हृत्कटीनाभिपायुर्वंशेषवेदनः ।  
सशन्दोऽनिश्चरेद्वायुर्विद्बन्धो मूत्रमलवक्म् ॥११॥  
नातिर्मदोजलो सौत्यं न च स्याद्विरसं मुग्धम् ।



## वातोदरलक्षणम्—

तत्र वातोदरे शोफः पाणिपान्मुष्णकुक्षिपु ॥ १२ ॥  
 कुक्षिपाश्वोदरकटीपृष्ठस्कृ पर्वभेदनम् ।  
 शुष्ककासोऽगमर्दोऽद्योगुस्ता मलसंग्रहः ॥ १३ ॥  
 श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिहासयत् ।  
 सतोदभेदमुदरं तनुकुण्ठसिराततम् । १४ ॥  
 आध्मातद्वसिबल्लभाहृतं प्रकरोति च ।  
 वायुश्चात्र सरुक्शब्दो विचरेत्यर्षतांगतिः ॥ १५ ॥

## पित्तोदरलक्षणम्—

पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहस्तुट् कटुकास्यता ।  
 अमोऽतिसारः पीतत्वं त्वगादाबुदरं हरित् ॥ १६ ॥  
 पीतताम्रसिनिहं सस्वेदं मोघं दह्यते ।  
 शूमायति मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते ॥ १७ ॥

## कफोदरलक्षणम्—

श्लेष्मोदरेऽगसदनं स्वापश्चयगुरवम् ।  
 निश्रोतुवलेशोऽहचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता ॥ १८ ॥  
 उदरं स्तिमितं श्लक्ष्णं शुक्लराजीततं महत् ।  
 चिराभिवृद्धि कठिनं शीतस्पर्शं गुरु स्थिरम् ॥ १९ ॥

## सन्निपातोदरलक्षणम्—

निदोषकोपनैस्तैस्तैः खोदतैश्च रजोमलैः ।  
 गरद्रूपोविपातैश्च सरक्ताः सन्निता मलाः ॥ २० ॥  
 फोहं प्राप्य विमुर्वाणाः शोषमूर्च्छाध्मान्वितम् ।  
 कुर्युर्धनिगमुदरं शीघ्रपाकं सुदारुणम् ॥ २१ ॥  
 बाधते, तच्च सुतरां शीतवाताम्रदर्शने ।

## प्लोहोदर (वरवट-तिक्ष्णो) लक्षणम्—

अत्याणितस्य संतोषात्वावयानाद्विशिष्टः ॥ २२ ॥  
 अतिव्यवायकमोघवमनग्याधिकर्शनैः ।

यामपार्श्वधितः प्लीहा च्युतः स्यात्ताद्विवर्धते ॥ २३ ॥

शोणितं वा रमादिभ्यो विवृद्धं त विवर्धयेत् ।

सोऽष्टोत्तेषातिकठिनः प्राक्कतः कूर्मपृष्ठवत् ॥ २४ ॥

क्रमेण वर्धमानश्च कुदाबुदरमावहेत् ।

श्रासकासपिपामास्यधैरस्याभ्यानरुग्ज्वरेः ॥ २५ ॥

पीडुत्पञ्चदिमूर्च्छातिदाहमोहश्च संयतम् ।

अरुणान्नं विवर्णं वा नीलहारिद्रराजिमत् ॥ २६ ॥

### प्लीहोदरेवातादिलिङ्गम्—

उदावर्तस्यानाहै, मोहृदृदहनज्वरैः ।

गौरवारुचिकाठिभ्यंविद्यात्तत्र मलासु क्रमात् ॥ २७ ॥

### यकृदुदर ( जिगर ) लक्षणम्—

प्लीहवद्वक्षिणात्पार्श्वे कुर्याच्चक्षुःपि च्युतम् ।

### यक्ष्मोदरलक्षणम्—

पक्ष्मबालैः महाघ्नेन भुक्तैर्वद्धामने गुदे ॥ २८ ॥

दुर्नामभिरुदावर्तैरन्यैर्वात्रोपलेपिभिः ।

वर्धःपित्तफफासु दृढ्ना करोति कृपितोऽनिलः ॥ २९ ॥

अपानो अठरं तेन स्युर्दाहिज्वरतृट्क्षवाः ।

कासश्चासोरुसदनं शिरोहृन्नाभिप्रायुक् ॥ ३० ॥

मलसंगाऽऽविश्रुर्दिरदरं मूढमासुतम् ।

स्मिदं नीलासुणभिराराजिवद्धेमराजि वा ॥ ३१ ॥

नाभिरुपरि च प्रायो गोपुच्छाद्वति जायते ।

### क्षिद्रोदरलक्षणम्—

अस्य्यादिसर्पः भास्त्रेभेदभुवर्तैरत्यशनेन वा ॥ ३२ ॥

मिथ्ये पच्यते वाञ्छं तन्निद्रंश्च सन्ग्वहिः ।

ग्राम एव गुदादेति ततोऽन्त्यात्पं मं विद्वसः ॥ ३३ ॥

तुल्यः कुण्ठपगवेन पिच्छाः पीततोहिउः ।

- ॥ दोषश्रापूर्यं जठरं जठरं घोरमावहेत् ॥ ३४ ॥  
 वर्धते तदधो नाभिराशु चेति जलात्मताम् ।  
 उद्विक्तदोषकर्म च व्यासं च श्वासतृदधर्मः ॥ ३५ ॥  
 छिद्रादरमिदं प्राहुः परिस्रावीति चापरे ।  
 प्रवृत्तानेहपानादेः सहसाऽऽमावृषाधिनः ॥ ३६ ॥

### जलोदरलक्षणम्

अत्यंबुपानान्मदाग्नेः दौर्गुण्यातिवृषस्य वा ।  
 हृदयाऽबुमार्गनिनिलः कफश्च जलमूर्च्छितः ॥ ३७ ॥  
 वर्धयेता तदेवांबु तत्स्यानादुदराधितौ ।  
 ततः स्यादुदरं तृप्यागुदस्रुतिरजायुतम् ॥ ३८ ॥  
 कासश्वासाद्विपुलं नानावर्णसिराततम् ।  
 तोषपूर्णं हृतिस्पर्शश्चन्द्रप्रक्षोभवेपथु ॥ ३९ ॥  
 दकोदरं महस्निग्धं स्थिरमावृत्तनाभि तत् ।

### सर्वोदरान्ते जलसम्भवः—

उपेक्षया च सर्वेषु दोषाः स्वस्थानतश्च्युताः ॥ ४० ॥  
 पाकाद्द्वया द्रवीकुरुः संघिस्रोतोमुखान्मपि ।  
 स्वेदश्च बाह्यस्रोतःसु विहृतस्तिर्यगास्थितः ॥ ४१ ॥  
 तदेवोदकमाग्राप्य पिप्पला कुर्यात्तिदा भवेत् ।  
 गुल्मरं स्थिरं वृत्तमाहृतं च न शब्दयत् ॥ ४२ ॥  
 मृदु व्यपेतराजीर्णं नाभ्यां स्पृष्टं च सर्पति ।  
 तदनूदकजन्मास्मिन्कुशिवृद्धिस्ततोऽधिकम् ॥ ४३ ॥  
 सिराततर्धानमुदकजठरोक्तं च लक्षणम् ।

### उदररोगाणां साध्यासाध्यविभागः—

वातपित्तकफज्जीहसंनिपातोदकोदरम् ॥ ४४ ॥  
 कृच्छ्रं यथोत्तरम्, पक्षात्परं प्रायोऽपरे हतः ।

सर्वं च जातमलिनं रिष्टोक्तोपद्रवान्तिम् ॥ ४५ ॥

जन्मनैवोदरस्य कृच्छ्रत्वलक्षणम्

जन्मनैवोदरं गर्वं प्रायः कृच्छ्रममं मतम् ।

मलिनस्तदजाताधु यत्नसाध्यं नवोत्थितम् ॥ ४६ ॥

## त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथाऽतः पाण्डुरोगशोफविसर्पनिदानं व्याख्यास्यामः ।

पाण्डुरोगस्य सम्प्राप्तिः—

"पित्तप्रधानाः कुपिता यद्योक्तैः कोपनैर्मसाः ।

तत्रानिवेन मलिना क्षितं पित्तं हृदि स्थितम् ॥ १ ॥

घमनोर्दशं संप्राप्य व्याप्नुवन्पक्षां तनुम्

श्लेष्मत्वक्वतमांसानि प्रदूष्यांतरमाश्रितम् ॥ २ ॥

त्वङ्मांसयोस्तत्कुर्वते त्वचि वर्णान् पृथग्विधात् ।

पाण्डुहारिद्रहरिताम् पाण्डुत्वं तेषु चाधिकम् ॥ ३ ॥

यतोऽतः पाण्डुरित्युक्तः स रोगः, तेन गौरवम् ।

पाण्डुरोगस्य सामान्य लक्षणम्

पातूनां स्यान्न शैविल्यशोभसञ्च गुणक्षयः ॥ ४ ॥

ततोऽत्यरक्तमेदस्को निःसारः स्याच्छूल्येन्द्रियः ।

मृद्यमानैरिवागैर्ना द्रवता हृदयेन च ॥ ५ ॥

शून्यादिकूटः सद्यः कोपनः शोयनोऽप्यवाक् ।

अग्नद्विद् शिशिरद्वयो शोणरोमा हृत्पानतः ॥ ६ ॥

मग्नसन्धो ज्वरी श्वासी कर्णद्वेदी ध्रमो ध्रमी ।

पाण्डुरोगस्यपञ्चविधत्वम्—

स पञ्चषा पृथग्दोषैः समस्त्वैर्भुक्तिकादनात् ॥७॥

पाण्डुरोगस्यपूर्वरूपम्—

प्राग्रूपमस्य हृदयस्पर्दनं रज्जता रश्मि ।

अरुचिः पीतमूत्ररश्मिं स्वेदाभावोऽप्यवह्लिता ॥८॥

वातजपाण्डुरोगलक्षणम्—

सादः श्रमः, धनिलास्तत्र यात्रस्तोदकंपनम् ।

कृष्णरुक्षारुणसिरानखविण्मूत्रनेत्रतां ॥९॥

शोफानाहास्यवैरस्यविट्घोषाः पार्श्वमूर्धरुक् ।

पित्तजपाण्डुरोगलक्षणम्—

पित्ताद्धरितपीताभमिरादित्वं ज्वरस्तमः ॥१०॥

तृट्स्वेदमूर्च्छाशीतेष्वा दोर्ध्वं वटुवरनता ।

कफजपाण्डुरोगलक्षणम्—

वर्षाभेदोऽप्लको दाहः, कफाच्युक्तमिरादिता ॥११॥

संज्ञा क्षयरुक्वत्रत्वं रोमहर्षः स्वरक्षयः ।

सन्निपातजपाण्डुरोगलक्षणम्—

कामश्चक्षिश्च निचयान्मिथलिगोष्ठिदुःसहः ॥१२॥

भृत्तिकाजपाण्डुरोगलक्षणम्—

मृत्कपायाग्निर्ल पित्तमूपरा मधुरा कफम् ।

दूषयित्वा रसादोश्च रोदयादभुवत्तं विस्त्व च ॥१३॥

स्रोतास्यपक्ववातूर्यं कुमाद्रिद्ध्वा च पूयन् ।

पाण्डुरोगं ततः दूननाभिरादास्यमेहनः ॥१४॥

पुरीषं कृमिमग्न्युचेद्मिल्लं मासृक्कफं नरः ।

कामला ( कवल-पीलिया )—

यः पाण्डुरोगी सेवेत पित्तलं तस्य कामलाम् ॥१५॥

कोष्ठशास्त्राभयं नित्तं दग्ध्वासृङ्मांसमावहेत् ।  
हारिद्रनेत्रमूत्रत्वहनस्रवन्नशकृत्तया ॥१६॥  
दाहाधिप, कतृष्णावाः भेदाभी दुर्बलेंद्रियः ।

पाण्डुरोगं विनापि कामलोत्पत्तिः—

भवेत्पित्तोत्पत्त्याऽप्यो पाण्डुरोगाद्वैतं च ॥१७॥

कुम्भकामलक्षणम्—

उपेक्षया च शोफाद्या सा कृच्छ्रा 'कुम्भकामला ।

हलोमकलक्षणम्—

हरितश्यावपीतत्वं पाण्डुरोगे यदा भवेत् ॥१८॥  
वातपित्तादध्मरनृणा स्त्रीष्वहर्षो मृदुर्ध्वरः ।  
तंश्च बलानलभ्रंशो लोढरं तं हलोमकम् ॥१९॥

शोफ ( सूजन ) सम्प्राप्तिः—

अक्षसं चेति ज्ञंसति, तेषा पूर्वमुदवाः ।  
शोफप्रधानाः कथिताः स एवातो निगद्यते ॥२०॥  
पित्तरक्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टाश्च बहिः शिराः ।  
नीत्वा कठगविस्तीर्हि कुर्यात्स्वङ्मांससंययम् ॥२१॥  
उरसेधं रंहतं शोफं तमाहुर्निचयादतः ।

शोफस्य नवविधत्वम्—

सर्वं, हेतुविशेषस्तु ह्यभेदाप्रवात्मकम् ॥२२॥  
दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघातादिषादपि ।  
द्विधा वा निजमागतु सर्वणिंकागजं च तम् ॥२३॥  
पृथ्वातप्रथितताविशेषैश्च त्रिधा बिंदुः ।  
सामान्यहेतुः शोफानां दोषजानां विशेषतः ॥२४॥

शोफस्य विशेषकारणानि—

व्याधिकर्मोपवासादिशीणस्य भजतो द्रुतम् ।

अतिमात्रमयान्यस्य गुर्वम्लस्निग्धगीतलम् ॥ २५ ॥  
 लवणक्षारतीक्ष्णोष्णं शाकांषु स्वप्नजागरम् ।  
 मृद्वाम्यमांसवल्लूरमजीर्णश्रममंथुनम् ॥ २६ ॥  
 पदातेर्मांसगमनं यानेन क्षोभितार्जव वा । ...  
 श्वासकासात्तिसाराशोऽजठरप्रदरज्वराः ॥ २७ ॥  
 विपूच्यलसकच्यदिगर्भवासर्पपाटुताः ।  
 अन्ये च मिथ्योपक्रातास्तर्दोषा वधसि स्थिताः ॥ २८ ॥  
 ऊर्ध्वं शोफमयोवस्ती मध्ये कुर्वन्ति मध्यगाः ।  
 सर्वांगगाः सर्वगतं प्रत्यंगेषु तदाधयाः ॥ २९ ॥

### शोफस्यपूर्वरूपम्—

तत्पूर्वरूपं द्रव्युः, मिरायामोऽमोरोवम् ।

### वातजशोफलक्षणम्—

वाताच्छोफश्चलो हृक्षः सररोमाहृणामितः ॥ ३० ॥  
 मकोचस्पर्शहर्षात्ततोद्भेदप्रभुतिमाप् ।  
 सिप्रोत्थानशमः क्षीघ्रमुन्नमेत्पीडितस्तनुः ॥ ३१ ॥  
 स्निग्धोष्णमर्दनैः शाम्येद्रात्रावत्यो दिवा महाप् ।  
 त्वक् च सर्पनिसेव तस्मिन्निमिचिमापते ॥ ३२ ॥

### पित्तजशोफलक्षणम्—

पीतरक्तासिताभमः पित्तादातामरोमकृत् ।  
 क्षीघ्रानुमारप्रशमो मध्ये प्राग्ग्रामते तनुः ॥ ३३ ॥  
 सतृड्दाहज्वरस्वेदद्रवक्लेदमदध्रमः ।  
 शीताभिलाषो विड्भेदो गंधी स्पृशतिहो मृदुः ॥ ३४ ॥

### कफजशोफलक्षणम्—

कंठुमाम् पांडुरोमत्वक्ठिनः शीतलो गुरुः ।  
 त्रिगुणः श्लक्ष्णः स्थिरः स्त्यानो निद्राच्छर्माभिनादकृत् ॥ ३५ ॥

१ व्याघ्यातिशीणस्य गुवादिक्लृप्तभजतस्तथा अन्यस्य-स्वस्थादेरपि अति-  
 मात्रगुवादिभजतः ।

१ आक्रांतो नोन्नमेत्तुच्छमजम्भा निशाबलः ।

स्रवेन्नासक्चिरात्तिच्छा कुशस्र्वादिविक्षातः ॥ ३६ ॥

स्पर्शोष्णकांक्षी च कफात्, यथास्वं द्रवजास्त्रयः ।

संकराद्धेतुलिङ्गानाम्, निचयान्निचयात्मकः ॥ ३७ ॥

**अभिघातजशोफलक्षणम्—**

अभिघातेन शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः ।

हिमानिलोद्वर्गनर्लभंल्लातकपिकच्छुर्जः ॥ ३८ ॥

रसैः सूक्ष्मं संस्पर्शान्छ्वययुः स्याद्विमर्षवाम् ।

भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायसः पित्तलक्षणः ॥ ३९ ॥

**विपजशोफलक्षणम्—**

विपजः सविपप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् ।

दंष्ट्रादतनलापातादविपप्राणिनामपि ॥ ४० ॥

विण्मूत्रशुक्रोपहतमलनद्वयमकरात् ।

विपवृक्षानिलस्पृशद्गिरयोनावधूर्णनात् ॥ ४१ ॥

मृदुध्वलोऽवलंबी च शीघ्रो दाहव्याकरः ।

**शोफस्यसाध्यासाध्यत्वम्—**

नवोऽनुपद्रवः शोफः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ॥ ४२ ॥

**विसर्प निर्देशः—**

स्याद्विमर्षोऽभिघातात्तर्शेर्विदूर्व्यश्च शोफवत् ।

न्यधिष्ठानं च तं प्राहुर्बाह्यातरुभयाश्रयात् ॥ ४३ ॥

**विसर्पे दोषाणां विसर्पणम्—**

यथोत्तरं च दुसाध्याः तत्र दोषा यथाययम् ।

प्रकोपनैः प्रकुपिता विदोषेण विदाहिभिः ॥ ४४ ॥

देहे शोध्यं विसर्पंति तैस्तैरस्तःस्थिता, बहिः ।

बहिःस्था, द्वितये द्विस्थाः विद्यात्तत्रातराश्रयम् ॥ ४५ ॥



अन्तर्गहिराश्रयविसर्पस्यवेदनाप्रकारादि—

मर्मोपत्तात्संयोगादयनानां विषट्टनात् ।  
तृष्णातियोमाद्वेगानां विषमं च प्रवर्तनात् ॥४६॥  
आनु चाग्निबलभ्रंशादतो बाह्यं विपर्ययात् ।

वातजादिविसर्पलक्षणम्—

तत्र वातात्परोक्षर्षो वातज्वरसमन्वयः ॥४७॥  
शोफस्फुरणनिस्तोदभेदायामातिहर्षबाध् ।  
पित्ताद्द्रुतगतिः पित्तज्वरानिगोऽतिलोहितः ॥४८॥  
कफात्केह्युतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ।

उपेक्षायां विसर्पस्य स्फोटयुतस्त्वम्—

स्वदोषनिर्गन्धोयते मर्मे स्फोटैरुपेक्षिताः ॥४९॥  
ते पक्वभिन्नाः स्वं स्वं च विभ्रति घ्नन्लक्षणम् ।

अग्निविसर्पलक्षणम्—

वातपित्ताज्ज्वरच्छदिमूढतीसारसृङ्मर्मैः ॥५०॥  
अस्थिभेदाग्निमदनतमकारोचकैर्गुनः ।  
करोति सर्वभगं च दीप्तागारावकीर्णवत् ॥५१॥  
यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत्स सः ।  
शांतागारासितो नीला रक्तो वाऽऽणु च बीयते ॥५२॥  
अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्द्रुतं च सः ।  
मर्मानुसारी बीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः ॥५३॥  
अप्येतांगं हरेत्संज्ञां निद्रा च श्वासमोरयेत् ।  
हिष्मां च, स गतोऽवस्थामोदृशीं लभते न ना ॥५४॥  
अचिच्छर्मारतिप्रस्तो भूमिगम्यासनादिषु ।  
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहश्रमोद्भवाम् ॥५५॥  
दुष्प्रमोघोऽप्नुते निद्रा संप्रश्नितोमर्षं उच्यते ।

प्रथिविविसर्पलक्षणम्—

वचेन रुद्धः पवनो मित्वा र्थं बहूषा वफम् ॥५६॥

रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्कुसिरास्नावमांसगम् ।  
 दूषयित्वा च दीर्घाणुवृत्तस्थूलसरात्मनाम् ॥५७॥  
 ग्रंथोनां कुप्ये माला रक्तानां तीव्रलज्जरात् ।  
 श्वसकासातिसारास्यशोषहिष्मावमिधर्मः ॥५८॥  
 मोहवैवर्ण्यमूर्च्छागर्भगाग्निसदनैर्युताम् ।  
 इत्ययं ग्रंथिवीसर्पः कफमादृतकोपजः ॥५९॥

कर्मविषसर्पलक्षणम्—

कफपित्ताग्ज्वरःस्संभो निद्रातंशशिरोवज्रः ।  
 अंगावसादविशेषप्रलापारोचकभ्रमाः ॥६०॥  
 मूर्च्छाग्निहानिर्भेदाऽप्या पिपासैर्द्विगौरवम् ।  
 भ्रामोपवेशनं लेपः स्त्रोतसा स च सर्पति ॥६१॥  
 श्वयेणाभाकथे गृह्णन्नेफज्जैर्न कफज्जैर्न ।  
 पित्तकैरवकीर्णोऽति पीतलोहितपादुरैः ॥६२॥  
 मेचकाभोऽमितस्निग्धो मलिनः शोफवान् गुहः ।  
 गंभीरपाकः प्राज्योऽप्या स्पृष्टः विसन्नोऽवदीर्यते ॥६३॥  
 पक्वच्छीर्णमामश्च स्पष्टस्नागुसिरागणः ।  
 शवगं पिश्रु धीसर्पः कर्मस्यमुदाति तम् ॥६४॥

सर्वजविषसर्पलक्षणम्—

सर्वजो लक्षणेः सर्वैः समधात्वतिसर्पणः ।

क्षतजविषसर्प लक्षणम्

बाह्यहेनोः शतात्क्रुद्धः सरक्तं पित्तमीरयन् ॥ ६१ ॥  
 विसर्पं मास्तः कुर्यात् कुलत्पसद्वर्जितम् ।  
 स्फोटैः शोफज्वररुजादाहाद्यं श्वावलोहितम् ॥ ६६ ॥

विसर्पाणां साध्यासाध्यविभागः—

पृथग्दोषैस्त्रयः साध्या द्वंद्वजाभ्यानुपद्रवाः ।

धृष्टाश्रद्धो क्षतमर्थोऽथो गर्धे चात्रातमर्मणाः ॥ ६७ ॥  
 शीर्णस्नायुगिरामाताः प्रवितन्नाः शवर्गंययः ।”

## चतुर्दशोऽध्यायः !

अथास्तः कुष्ठश्चित्र ( सफेदयोऽप्यत्र ) शृमिनिदानं व्याख्यातः ।

### कुष्ठनिदानम्

“मिच्छाहारविहारेण विरोधेण विरोधिना ।  
 माधुनिदायघान्मस्वहरणार्थं च संवितः ॥ १ ॥  
 पाप्मभिः कर्मभिः सद्यःप्राप्तनैः प्रेरिता मत्ताः ।  
 तिराः प्रपद्य तिर्यग्मास्त्वग्लसीका सुगामियम् ॥ २ ॥  
 दूषयति श्लयोदृश्य निश्चरतस्ततो बहिः ।  
 त्वचः कुर्वन्ति भवत्ये दुष्टाः<sup>१</sup> कुष्ठमुपशति तत् ॥ ३ ॥

### कुष्ठसंज्ञायाहितुः—

कामेनोपेक्षितं यस्मात्सर्वं कृत्वाति तद्वपुः ।  
 प्रपद्य मातृभ्याम्यातः सर्वान् गन्तव्यं, चावहेत् ॥ ४ ॥  
 सस्वेदबन्धेदसंकोषाम् शृमीन्मूढमान्मृदारुणाम् ।  
 रोमत्वक्स्नायुघमनीतरुणास्थानि येः कमात् ॥ ५ ॥  
 भलाये, ज्विद्वयमस्माच्च कुष्ठवाह्यमुदाहृतम् ।

### कुष्ठस्य सप्तविधत्वम्

कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथङ्मिथैः समागतैः ॥ ६ ॥

त्रिदोषेष्वपि पृथक् दोषजत्वं लक्षणम्

कुष्ठानामष्टादशप्रकाराः—

सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकस्त्वतः ।

वातेन कुष्ठं कापालं, पितादोदुंबरं, कफात् ॥ ७ ॥  
 मंडलाख्यं विवर्ची च, श्लेष्माख्यं वातपित्तजम् ।  
 चर्मककुष्ठं किटिभसिष्मालसविपादिकाः ॥ ८ ॥  
 वातश्लेष्मोद्भवाः, श्लेष्मसिक्ताद्दृशनाख्यौ ।  
 पुंडरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा, ॥ ९ ॥  
 सर्वैः स्यात्काकर्णं, पूर्वत्रिजं दद्रु सकाकर्णम् ।  
 पुंडरीकशोभिह्वे च महानृष्ठानि मम तु ॥ १० ॥

### कुष्ठस्य पूर्वरूपम्

अतिदलक्षणस्तरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णताः ।  
 दाहः फंडस्तपचि स्यापस्तोदः कोठोभ्रतिः श्रमः ॥ ११ ॥  
 नृणामभिर्कं दूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ।  
 रुढानामपि रुक्षत्वं निमित्तोऽस्येऽपि कोपनम् ॥ १२ ॥  
 रोमहर्षोऽस्तृज कार्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम् ।

### कापालकुष्ठलक्षणम्

कृष्णाख्यकापालार्भं स्यात् मुमं रवरं तनु ॥ १३ ॥  
 विस्तृतागमपयत दूषितलोभाभिश्चितम् ।  
 लोदाढ्यमल्पकंदूकं कापालं शीघ्रमपि च ॥ १४ ॥

### उदुम्बरकुष्ठलक्षणम्

पकोदुंबरताम्रस्वग्रोमगोरतिराचितम् ।  
 बहलं बहुलकलेदं रक्तं दाहरजाधिकम् ॥ १५ ॥  
 भागूरुपानावदरखर्जम विद्यादुदुम्बरम् ।

### मण्डलकुष्ठलक्षणम्

स्तिपरं स्त्वानं गुरु स्निग्धं श्रेतरक्तमनाशुगम् ॥ १६ ॥  
 धन्योन्यसन्नमुत्तन्नं बहुकंदूलुनिक्रिमि ।  
 श्लक्ष्णोत्ताभर्मतं मंडलं परिमंडलम् ॥ १७ ॥

## विचरिषिकाकुष्ठलक्षणम्

सर्वहृषिटिका श्यावा जयोष्णोष्ण विचरिषा ।

## अट्टाजिह्वकुष्ठलक्षणम्

पर्यं तनुरत्नाभ्रमन्त श्यावं समुन्नतम् ॥ १८ ॥

सतोददाहरक्वलेदं कर्कशः पिटिकंश्चितम् ।

श्लक्ष्णजिह्वाश्रुति प्रोक्षतमृदाजिह्वं बहुक्रिमि ॥ १९ ॥

हस्तिचर्मस्तरस्पर्शं चर्म, एकारुण्यं महाश्रयम्<sup>१</sup> ।

अश्वेदं मत्स्यसक्तलसनिमम्, किटिभं पुनः ॥ २० ॥

रुक्षं<sup>२</sup> किण्णस्तरस्पर्शं कङ्कमत्सरयामितम् ।

## सिध्म ( सेहुषी ) कुष्ठलक्षणम्

निध्मं हृदं बहिः श्लिष्यमन्तर्गृष्टं रजः किरित् ॥ २१ ॥

अनक्ष्णस्पर्शं तनु श्वेतताम्रं<sup>३</sup> दोम्बिपुष्पवत् ।

प्रायेण चोर्ध्वकाये स्यात्, गण्डः कङ्कयुतैश्चितम् ॥ २२ ॥

## विपादिका कुष्ठलक्षणम्

रक्तैरलसकम्, पाणिपाददार्थो विपादिकाः

सीमात्यो मन्दकङ्कश्च सरागपिटिकाचिताः ॥ २३ ॥

## दद्रुकुष्ठलक्षणम्

दीर्घप्रतानदूर्वानिदतसीकुमुदच्छविः ।

उत्तममङ्गला दद्रुः कङ्कमत्यनुपगिणी ॥ २४ ॥

## शतारुः कुष्ठलक्षणम्

स्यूलमूर्लं मदाहाति रक्तश्यावं बहुव्रणम् ।

शतारुः क्लेदजंत्वाढ्यं प्रावशः<sup>४</sup> पर्वजन्म च ॥ २५ ॥

१ महाश्रयम्—विस्तोणश्रयम् । २ किण्णः व्रणस्थानम् “षट्ठा” इतिसांके ।  
३ दोम्बिपुष्पवत्—अलावु ( लोकी ) कुसुमाम् ।

पुण्डरीककुण्डलक्षणम् .

रक्तांतर्भतरा पांडु कंठुदाहृजान्वितम् ।

सोस्तेषमवितं रक्तेः पद्मपत्रमिवांशुभिः ॥ २६ ॥

धनभूरिल्लीकासुवप्रायमाशु विभेदि च ।

पुंडरीकम्, तनुत्वग्भिन्नवर्तं स्फोटैः सिताक्षयः ॥ २७ ॥

विस्फोटम्, पिटिकाः पामा कंठुक्लेदरुजाधिकाः ।

मूढमाः श्यावास्त्रा बह्व्यः प्रायः स्फिक्पाणिक्पूर्वैः ॥ २८ ॥

सस्फोटमस्पर्शमह कंठुनातोददाहवत् ।

रक्तं दलचर्मदलम्, काकणं तीव्रठाहृक् ॥ २९ ॥

पूर्वं रक्तं च कृष्णं च काकणं तीक्ष्णोपमम् ।

कुण्डलिर्गैर्गुत सर्वेनैकवर्णं ततो भवेत् ॥ ३० ॥

कुण्डेषु दोषाधिक्यम्—

दोषभेदीयविहितं राक्षिते ह्यिगकर्मणि ।

कुण्डेषु दोषोत्पत्तयाम्, सर्वदोषोत्पत्तयं त्यजेत् ॥ ३१ ॥

कुण्डस्यासाध्यादि विभागः

रिटोक्तं यच्चाऽस्थि भज्जगज्जगमाधयम्, ।

याप्यं मेदोगतम्, कृच्छ्रं पित्तं ठास्यमासगम्, ॥ ३२ ॥

अकृच्छ्रं कफवाताद्य त्वक्स्थमेकमलं च यत् ।

३३गादिस्थितकुण्डलक्षणम्—

तत्र त्वच्चि स्थिते कुण्डे सोदयैवत्यर्थस्थिताः, ॥ ३३ ॥

स्वेदस्वापश्चयवः शोणिते, पिशिते पुनः ।

पाणिपादाग्रिताः स्फोटाः क्लेदः सधिप् चाधिकम् ॥ ३४ ॥

फीत्यं सतिशयांजाना दलनं स्यान्न मेदसि ।

नालार्भगोऽस्थिमज्जस्थे नेत्ररागः स्वरक्षयः ॥ ३५ ॥

दात्रे च क्रमयः, शुक्ले स्वदारापत्यवाचनम् ।

‘यथापूर्वं’ च सर्वाणि स्थुर्निगन्धसुगादिषु ॥ ३६ ॥

१ यस्यादिषु स्वेदादीनि यानि लिङ्गान्युच्यन्तानि तान्यपि यथापूर्वं शूद्रस्ये कुण्डे भवन्तीत्यर्थः ।

पुरीपोत्थाः क्रिमयः—

शृङ्गा बहुविद्धान्पर्युशाको लकादिभिः ॥ ४६ ॥

कफजाः क्रिमयः—

कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पति मवन्तः ।

पृष्ठशून्यनिभाः केचित्केचिदगंक्षादोपमाः ॥ ४७ ॥

स्वयाम्याकुराकारास्तनुदीर्घास्तथाऽणवः ।

श्लेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः ससथा तु ते ॥ ४८ ॥

अन्त्रादा उदराविष्टा हृदयादा महागुहाः ।

कुरवो दर्भकुन्माः सुगंधास्ते च कुर्वन्ते ॥ ४९ ॥

हृत्प्रासमास्पन्नवणमविपापकमरोचकम् ।

मूर्च्छाच्छिदिगरानाहकर्मणश्चक्षुपीनसाम् ॥ ५० ॥

रक्तजाः क्रिमयः—

रक्तवाहिशिरोत्थाना रक्तजा जंतवोऽणवः ।

अपादा वृत्तताम्राश्च सौम्यास्केचिददर्शनाः ॥ ५१ ॥

केशादा लोमचिर्जसा लोमद्वीपा उबुंकराः ।

पट् ते कृष्ठककर्मणिः सहस्रीरसमातरः ॥ ५२ ॥

विद्भेदादिजनका क्रिमयः—

पक्वाशये पुरीपोत्था जायतेऽधोविसर्पिणः ।

वृद्धास्ते स्फुर्भवेयुश्च ते यदाऽऽमाशयोन्मुक्ताः ॥ ५३ ॥

तदास्योदगारनिःश्वासा विद्भगधानुनिष्प्रायिनः ।

पृष्ठवृत्ततनुस्पृत्वाः श्माशपीतसितासिताः ॥ ५४ ॥

ते पच नाम्ना कृमयः ककेरुक्रमकेशकाः ।

सोमुरादाः सख्नाख्या सेलिहा जनयति च ॥ ५५ ॥

विद्भेदशूलविष्टमकार्श्यपारध्यपाहुताः ।

रोमहर्षाग्निमदनमुदवह्निरनिर्गमात् ॥ ५६ ॥

## पंचदशोऽध्यायः

अथाऽतो वातव्याधिनिदानं व्याख्यास्यामः ।

अर्थानर्थकरणेपवनोद्देतुः—

१ "सर्वानर्थकरणे विश्वस्यास्पृककारणम् ।

अदुष्टदुष्टः पवनः क्षरोरस्य विशेषतः ॥ १ ॥

तत्रकारणम्—

स विश्वकर्मा विश्वात्मा<sup>१</sup> विश्वरूपः प्रजापतिः ।

स्रष्टा पाता विभुर्विष्णुः संहर्ता मृत्युरंतकः ॥ २ ॥

तददुष्टौ प्रयत्नेन मयितव्यमतः सदा ।

तस्योक्तं दोषविज्ञाने कर्म प्राकृतवैकृतम् ॥ ३ ॥

समासाद्व्यासतो दोषभेदीये नाम घाम च ।

प्रत्येकं पंचषा<sup>२</sup> चारो व्यापारश्चे ह वैकृतम् ॥ ४ ॥

तस्योच्यते विभागेन सनिदानं मलक्षणम् ।

वायोःशोषद्वयम्—

धातुक्षयकरं वायुः क्षुप्यत्यतिनिषेवितैः ॥ ५ ॥

चरम् स्रोतःसु रिक्तेषु श्रुय<sup>३</sup> तान्येव पूरयद् ।

<sup>४</sup>तेभ्योऽन्यदोषपूर्णेभ्यः प्राप्य वाऽऽवरणं बली ॥ ६ ॥

पम्बाशयेक्रुद्धस्यवायोःकर्म—

तत्र पक्षाशये क्रुद्धः शूलानाहात्रकूजनम् ।

१ सवार्थस्पर्शमस्य करणोऽदुष्टपवनः । सर्वानर्थकरणे दुष्टपवनो हेतुः  
२ विश्वानिसर्वाणि—शरीररक्षणनाशार्थादनर्थ । करणानि कर्माणि यस्य  
विश्वेषां शुभानामात्माहेतुः । विश्वंसमस्तं बाह्याभ्यात्मिकं रूपं यस्य । प्रजापतिः-  
रक्षकः । ३ चारीगतिः । ४ तानि स्रोतांसि । ५ तेभ्यः स्रोतोभ्यः ।



मलरोषाश्ववर्ष्मांश्चिकृष्टकटोग्रहम् ॥ ७ ॥  
करोत्यधरकायेषु तांस्तान्कृच्छ्रानुपद्रवान् ।

आमाशयेकुट्टस्यकर्म—

आमाशये तृड्वभशुश्वासकामविमूचिकाः ॥ ८ ॥  
कंठोपरोधमुद्गाराण् व्याघोर्नृध्वं च नाशितः ।

त्वगादिगतवायोःकर्म—

श्रोत्रादिद्विद्रियवर्धं, त्वचि स्फुटनरुक्षणे, ॥ ९ ॥  
रक्तं तीव्रा रजः स्थापं ताप रोग विपर्युताम् ।  
मलं पित्तस्य विष्टं भ्रमरुचि कृशता भ्रमम् ॥ १० ॥  
मांसमेदोगतो ग्रंथोस्तोदाढ्याम् कर्कशात् भ्रमम् ।  
गुर्वंशं चातिरूपस्तब्धमुष्टिदडहतोपमम् ॥ ११ ॥  
अस्थिस्थः रुन्धिषसंघ्यस्त्रिधूर्तं तीव्रं वसक्षयम् ।  
मज्जस्थोऽस्त्रिषु सोपिर्ममस्वप्नं स्तब्धता रजम् ॥ १२ ॥  
शुक्लस्य शीघ्रमुत्तमं सगं विकृतिमेव वा ।  
१ सद्गर्भस्य शुक्रस्थः, सिरास्वाध्मानरिक्तवे ॥ १३ ॥  
२ तस्थः, स्नावस्थितः कुम्दिष्टभस्पापामकुञ्जताः ।  
वातपूर्णद्विस्पर्शं दोषं संधिगतोऽनिलः ॥ १४ ॥  
प्रसारणाऽऽकुचनयोः प्रवृत्ति च तवेदनाम् ।

सर्वाङ्गकुपितवायुलक्षणम्—

सर्वाङ्गसंश्रयस्तोदभेदस्फुरणभ्रमम् ॥ १५ ॥  
स्तम्भमाक्षेपणं स्वापं सध्याकुचनकंपनम् ।

धमनीगतवायुलक्षणम्—

यदा तु धमनीः सर्वाः क्रुद्धोऽप्येति मुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥  
तदाङ्गमाक्षिपत्येव व्याधिराक्षेपकः स्मृतः ।

अपतन्त्रकलक्षणम्—

अपः प्रतिहता वायुर्जलतृध्वं हृदाश्रयाः ॥ १७ ॥

हनुस्तंसलक्षणम्—

जिह्वातिलेखनात् शुष्कमश्रुणादभिधाततः ।  
कुपितो हनुमूलस्थः संसृष्टत्वाऽनिचो हनू ॥२१॥  
करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् ।  
हनुस्तंसः स तेन स्वात्कृच्छ्राच्चर्वणमापणम् ॥२०॥

जिह्वास्तम्भलक्षणम्—

वाग्राहिनीगिरासंस्थो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिनः ।  
जिह्वास्तंभः स तेनाग्रपानवाग्भ्येऽवनीशता ॥२१॥

अर्धित (लकत्रा ) लक्षणम्—

शिरसा भारहरणादतिहास्यप्रमापणात् ।  
‘उत्प्रासवक्त्रक्षवपुक्षरकार्मुककर्षणात् ॥२२॥  
विषमादुपधानान्च कठिनानां च चर्वणात् ।  
वायुविवृद्धसैर्तैश्च वातलक्ष्णैर्भास्यतः ॥२३॥  
वक्त्रीकरोति वक्त्रार्धमुक्तं हसितमीक्षितम् ।  
ततोऽस्य कंठे मूर्ध्ना दावसंग, स्तब्धनेमता ॥२४॥  
दंतचालः स्वरभ्रंशः श्रुतिहानिः क्षवग्रहः ।  
गंधाज्ञानं स्मृतेर्मोहत्वासः ‘मुसस्य जायते ॥२५॥  
निष्ठोवः पाश्वर्तो वायादेकस्याकणो निमीलनम् ।  
जत्रोरुर्ध्वं रुद्रा तोत्रा क्षरीरार्धेऽपरेऽपि वा ॥ २६ ॥  
तमाहुरर्धितं केचिदेकायामनधापरे ।

सिराग्रहः—

रक्तमाश्रित्य पवनः कुर्यान्मूर्ध्वधराः सिराः ॥ २७ ॥  
रुधाः सवेदनाः कृष्णाः सोऽसाध्यः स्यात्सिराग्रहः ।

## एकाङ्गरोगः ( फालिज )—

गृहीत्वार्धं तनोर्वायुः मिराः स्नायुर्विशोष्य च ॥ ३८ ॥  
 पदामन्यतरं हति मधिवंशान् विप्रोक्षयम् ।  
 वृत्स्नोऽर्धकायस्तस्य स्यादकर्मण्यो विचेतनः ॥ ३९ ॥  
 एकाग्ररोगं तं केचिदन्ये पदावच विदुः ।

## सर्वाङ्गरोगः—

मर्दान् रोगं तद्वच्च सर्वकायाश्रितेऽनिले । ४० ॥  
 शुद्धवातहतः पक्षः कृच्छ्रमाध्यतमो मत्तः ।  
 कृच्छ्रस्त्वन्येन ससृष्टो विषर्ग्यः शयहेतुकः ॥ ४१ ॥

## दण्डकायामः—

ग्रामबद्धायनः कुर्यात्मस्तभ्यां कफान्वितः ।  
 असाध्यं हतसर्पेहं दंडवद्दण्डक मरुत् ॥ ४२ ॥

## अथ नाहुकलक्षणम्—

अंसमूलस्थितो वायुः मिराः संकोच्य तत्रगाः ।  
 बाहुप्रर्पदितहरं जनयत्यववाहकम् ॥ ४३ ॥

## विश्वाची—

तलं प्रत्यंगुलीनां या कंडरा बाहुपृष्ठतः ।  
 बाहुचेष्टापहरणी विश्वाची नाम मा स्मृता ॥ ४४ ॥

## खञ्जपङ्कलक्षणम्—

वायुः कट्यां स्थितः सक्थः कंडरामाक्षिपेक्षदा ।  
 तदा खंजो भवेत्खंतुः पंगुः सक्थ्योर्द्वयोरपि ॥ ४५ ॥

## कलायत्खञ्जः—

पंपते गमनारंभे खंजतिव च याति यः ।  
 कलायत्खंजं तं विद्यान्मुत्तर्तधिप्रवंधनम् ॥ ४६ ॥

## ऊरुस्तम्भलक्षणम्—

शीतोष्णद्रवमशुष्कगुहस्निग्धनिपेवितः ।

जोर्णजीर्णे तथाऽऽयासमंशोमस्त्रजःशरैः ॥ ४७ ॥

सश्लेष्ममेदः पवनः साममत्स्यर्षसंचितम् ।

मनिभूयेतरं दोषमूढं चेत्प्रतिपद्यते ॥ ४८ ॥

सकथ्यास्योनि प्रपूर्वोतः श्लेष्मणोः स्विमितेन तत् ।

तदा स्क्मनाति तेनोक्तं स्तब्धो शीतावचेतनौ ॥ ४९ ॥

परकीयाविव गुणस्यातामसिभूषण्यथो ।

ध्यानागममर्दस्तौमध्यतद्राच्छ्रयं विचिञ्चरैः ॥ ५० ॥

संयुतो पादसदनरुच्छ्रिद्धरणमुक्तिमिः ।

तमूहस्तभमित्वाहुराह्वयत्तमयापरे ॥ ५१ ॥

क्रोष्टुकशीर्षलक्षणम्—

वातशोणितजः शोषो जानुमध्ये महारुजः ।

शेयः क्रोष्टुकशीर्षश्च स्थूलः क्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ ५२ ॥

घातकण्टकलक्षणम्—

एकपादे विषमन्मन्ने श्महाद्या जायते यदा ।

घातेन गुल्फमाश्रित्य तमाह्वानकण्टकम् ॥ ५३ ॥

गृध्रसी लक्षणम्—

पाप्वि प्रस्यगुलानां या कंडरः मारुताग्निः ।

सकथ्युदोष निगृह्णाति गृध्रमो ता प्रचक्षते ॥ ५४ ॥

खल्लीनिर्देशः—

विधाद्यो गृध्रमो चोक्ता खल्ली तीव्ररुजान्विता ।

पादहर्षः

हृष्येते घटणो मस्य भवेतो च प्रसुप्तवत् ॥ ५५ ॥

पादहर्षः स विज्ञेयः कफमारुतकोपजः ।

पाददाहः—

पादयोः कुप्ले दाहं पितायुषगह्विबोनिताः ॥ ५६ ॥

विशेषतश्चंप्रमिते पाददाहं तमादिजेत् ॥

१ इतरंदोष— पित्तम् । २ स्क्मनाति-स्तम्भनाति ।

## षोडशोऽध्यायः ।

प्रयाऽनो वातशोणितनिदानं व्याख्यास्यामः ।

वातशोणितनिदानम्—

“विदाह्यत्र” विरुद्धं च तत्तच्चासुब्रह्मपणम् ।  
भजता विधिहीनं च स्वप्नजागरमपुनम् ॥१॥  
प्रायेण मुकुमाराणामर्चक्रमण्योनिनाम् ।  
अभिधातादन्तरेण नृणामसृजि दूषिते ॥२॥  
वातलः पीतलैर्वापुर्बुधः क्रुद्धो विमार्गः ।  
तादृशेनासृजा रडः प्राक्तदेव प्रदूषयेत् ॥३॥  
आद्यरोगं सुष्ठं वातबलासं वातशोणितम् ।  
तदाहुर्नामिस्तच्च पूर्वं पादौ प्रभावति ॥४॥  
विशेषाद्यानयानाद्यैः प्रसवी, तस्य तक्षणम् ।

पूर्वरूपम्—

अविध्यतः कुण्डलम तथा सादः श्लेषांगता ॥५॥  
जानुजपोरवत्यसहस्तपादांगसधिषु ।  
कङ्कटपूरणनिस्तोदभेदगोरवसुतताः ॥६॥  
भूत्वा भूत्वा प्रणश्यति मृदुराविर्भवति च ।

वातशोणितस्यसर्वाङ्गसंचारित्वम्—

पादयोर्मूर्तमात्स्वाय वदाचिद्धस्तयोरपि ॥७॥  
आसोरिव विषं क्रुद्धं कृत्स्नं देहं विधावति ।

वातशोणितद्वैविध्यम्—

त्वङ्मांसाद्यप्युत्तानं तरुर्वं जायते ततः ॥८॥  
कालांतरेण गंभीरं सर्वान् धातून्भिद्रवत् ।

सत्तानवातशोणितनिर्देशः—

कण्ड्वादिसंयुतोत्ताने त्वक्ताग्रश्यावलोहिता ॥९॥

गम्भीरवातशोणितनिर्देशः—

सायामा भृशदाहोपा, गम्भीरेऽधिकपूर्वरुक् ।  
श्वयद्युर्ध्वचितः पाकी वायुः संध्यस्थिमज्जम् ॥१०॥  
छिदन्निव चरत्यर्धतर्धक्रोक्त्वं च वेगवाद् ।  
करोति खञ्जं पंगुं वा शरीरे सर्जतम्वरम् ॥११॥

घाताद्यधिकवातशोणितनिर्देशः—

वातेऽधिकेऽधिकं तत्र द्यूतस्फुरणतीदनम् ।  
शोफस्य रौक्ष्यकृत्पणत्वश्यावतावृद्धिहानयः ॥१२॥  
धमभ्यगुलिसंधीना रुकोषोऽग्न्यहोऽतिरुक् ।  
शीतद्वेषानुपशयो स्तम्भवेपथुमुत्पन्नम् ॥१३॥  
रक्ते कोफोऽतिरुक् तोदस्ताश्विचमिचिमामते ।  
स्निग्धरुक्षैः घाम नैति कण्ड्वलेदममन्वितः ॥१४॥  
पित्ते विदाहः संभोहः स्वेदो मूर्ध्नि मयः सतृट् ।  
स्पशक्षिमत्वं रूपागः शोफपाको भृशोष्मता ॥१५॥  
कफे स्तम्भित्यगुरुतामुत्तिस्निग्धत्वशीघ्रताः ।  
कर्मदा च रुग्, दृढसर्वनिर्ग च संकरे ॥१६॥

घातशोणितस्यसाध्यादिविभागः—

एकदोषानुगं साध्यं नव, याप्यं त्रिदोषजम् ।  
त्रिदोषजं त्यजेत्त्वा वि स्तब्धमर्बुदकारि च ॥१७॥

वायुनारक्तमार्गद्वयनिर्देशः—

रक्तमार्गं निहत्याशु शास्त्राभिपि माहृतः ।  
निविश्यान्त्योन्यमाचार्यं वेदनाभिर्हरत्यमूम् ॥१८॥

## वायुपञ्चककोपलक्षणानि—

वायो पचात्मके प्राणो रोदयव्यायामलघनेः ।  
 अत्याहारमिषाताब्बवेगोदीरणधारणः ॥१९॥  
 कुपितश्चक्षुरादीनामुपघातं प्रवर्तयेत् ।  
 पीनसादितवृट्कासश्वासादीश्चामयान्वहूः ॥२०॥  
 उदानः क्षवयुद्धारच्छादिनिद्रावधारणः ।  
 मृहभारातिरुदितहास्यार्थं विकृतो गदाम् ॥२१॥  
 कंठरोधमनोभ्रमच्छर्दरोचकपीनसाम् ।  
 कुर्याच्च गलगण्डादीस्तांस्तान् जन्तूर्ध्वसंघयाम् ॥२२॥  
 व्यानोऽतिगमनध्यानक्रीडाविषमचेष्टितैः ।  
 विरोधिल्लभोहर्षविषादार्थं दूषितः ॥२३॥  
 पुंस्रवोत्साहबलभ्रंशोऽशोचिस्तोत्प्लवज्वराम् ।  
 सर्पागरोमनिस्तोदरोमहर्षागसुप्तताः ॥२४॥  
 गुष्ठं विसर्पमन्याश्च कुर्यात्सर्पागताम् गदाम् ।  
 समानो विषमाजीर्णशीतसंकीर्णभोजनैः ॥२५॥  
 करोत्पकालशयनजागरार्थं दूषितः ।  
 दूषलगुल्मग्रहप्यादांश्च पक्वमाशयजाम् गदाम् ॥२६॥  
 अपानो रूक्षगृर्वलवेगघातातिवाहनैः ।  
 यानयानासनस्थानचक्रमश्चातिसेवितैः ॥२७॥  
 दूषितः कुष्ठे रोमाश्च कृच्छ्राम् पक्वमाशयजाम् ।  
 मूत्रशुक्रप्रदोषार्णोगुदभ्रंशादिकान्वहूः ॥२८॥

## सामनिरामवायुलक्षणम्—

सर्वं च मासवं सामं तंद्रास्तेमित्यगोरवैः ।  
 क्षिप्तत्वारोपकालस्मर्त्यशोकाम्निहानिभिः ॥२९॥  
 कटुरूक्षामिलापेण तद्विषां पश्येन च ।  
 युक्तं विद्यान्निरामं तु तंद्रादीनां विषयं वा ॥३०॥

## वातावरणभेदाः—

वायोरावरणं चातो बहुभेदं प्रवक्ष्यते ।

लिङ्गं पिप्पावृते दाहस्तृष्णा शूलं भ्रमस्तमः ॥ ३१ ॥  
 वटुक्रीष्णाम्ललवणविदाहः शीतकामता ।,  
 शैत्यगोरवशूलानि कट्वाद्युपशयोऽधिकम् ॥ ३२ ॥  
 लंघनायामरुदोष्णकामता च कफावृते ।,  
 रक्तावृते सदाहातिस्त्वङ्मागोतरजा भुक्षम् ॥ ३३ ॥  
 भवेद्य रागी श्वययुजयिते भडलानि च ।,  
 मांथेन कठिनः शोफो विवर्णः पिटिकास्त्वया ॥ ३४ ॥  
 हर्षः पिपीलिकानरं च संचार इव जायते ।,  
 चलः स्निग्धो मृदुः शीतः शोफो गात्रेष्वरोचकः ॥ ३५ ॥  
 आढ्यवात इति श्लेष् स कृच्छ्रो मेदसाऽऽवृते ।,  
 स्पर्शमस्यावृतेऽत्युष्णं पीडनं चाभिनदति ॥ ३६ ॥  
 सूक्ष्मेव तुष्यतेऽत्यधमंग तीव्रति क्षुल्यते ।,  
 मज्जावृते विनमनं नृमण परिवेष्टनम् ॥ ३७ ॥  
 शूलं च पीड्यमानेन पाणिभ्या लभते मुखम् ।,  
 शुक्रावृतेऽतिवेगो वा न वा निष्फलताऽपि वा ॥ ३८ ॥  
 भुक्ते कुक्षी रज्जा जीर्णे शाम्यत्यक्षावृतेऽनिले ।  
 मूत्राप्रवृत्तिराग्मान इस्ती मूत्रावृते भवेत् ॥ ३९ ॥  
 विहायते विष्वोऽधः स्वस्थाने पङ्कितति ।  
 व्रजत्याद्यु जरा स्नेहो भुक्ते चानह्यते नरः ॥ ४० ॥  
 शकृत्पीडितमग्नेन दुःखं दुष्कं चिरात्सुजेत् ।,  
 सर्वपात्रावृते वायौ श्रोणीविक्षणपृष्ठम् ॥ ४१ ॥  
 विलोमो मास्रोऽस्वस्थं हृदयं पीड्यतेऽपि च ।

प्राणादिपञ्चवायोःपित्तेनावरणम्—

अमोमूर्छा रुजा दाहः पित्तेन प्राण जायते ॥ ४२ ॥



विदग्धेऽग्ने च यमनम्,

उदानेऽपि भ्रमादयः ।

दाहोऽतश्चर्जाभ्रंशश्च,

दाहो व्याने च सर्वगः ॥ ४३ ॥

क्लमोऽगचेष्टासगश्च नमंतापः सवेदनः ।

समान ऊर्मोपहनिरतिस्वेदोऽरतिः सतृट् ॥ ४४ ॥

दाहश्च स्यादपाने तु मले ह्यरिद्वर्णता ।

रजोऽतिबृद्धिस्तापश्च योनिमेहनपायुषु ॥ ४५ ॥

प्राणादिपञ्चवायोः कफेनावरणम्—

श्लेष्मया त्वावृतं प्राण्ये मादस्तंद्रावचिर्वमिः ।

ह्रीवनक्षव्यूद्गारनिःश्वासोच्छ्वासमसंगहः ॥ ४६ ॥

यत्तत्पर्यं गुह्यान्त्वमरुचिर्मात्रस्वरग्रहः ।

बलवर्णप्रणाशश्च,

व्याने पर्वास्त्रिवाग्रग्रहः ॥ ४७ ॥

गुल्फांशेषु मर्षेषु स्वलितं च गतौ भुगम् ।

समानेऽतिहिमागत्वमस्वेदो मंदवह्निता ॥ ४८ ॥

अपाने मरुफं मूत्रघट्टतः स्यात्प्रवर्तनम् ।

इति द्वाविंशतिविधं वायोरावरणं विदुः ॥ ४९ ॥

प्राणादीनां परस्परमावरणम्—

प्राणादयस्तथाऽन्योन्यमावृण्वन्ति यथाक्रमम् ।

सर्वेऽपि विंशतिविधं विद्यादावरणं च तत् ॥ ५० ॥

निःश्वासोच्छ्वागमरोधः प्रतिश्यायः शिरोग्रहः ।

हृशोगो मुग्धशोषश्च प्राण्येनोदान आवृते ॥ ५१ ॥

उदानेनाऽऽवृते प्राण्ये वर्षोऽबलसंशयः ।

दिशाऽनवा च विमज्जैः सर्वमावरणं श्लिषक् ॥ ५२ ॥

स्थानान्यवेदय यातानां वृद्धि दानि च कर्मणाम् ।

### आवृतेरसंख्येयत्वम्—

प्राणादीनां च पञ्चानां मिश्रमावरणं मिथः ॥ ५३ ॥

पित्तादिभिर्द्वादशभिर्मिश्राणां मिश्रितैश्च तैः ॥

### आवरणप्रकारः—

मिश्रैः पित्तादिभिस्तद्वन्मिश्रणाभिरनेकधा ॥ ५४ ॥

क्षारतम्यविकल्पाश्च <sup>१</sup>यास्यावृत्तिरसंख्यताम् ।

तां लक्षयेदवहितो यथास्व लक्षणोदयात् ॥ ५५ ॥

शनैः शनैश्चोपशयाद्गूळामपि मुहुर्बुद्बुदः ।

### प्राण।देर्जी।वितत्त्वादि—

विशेषाजीवितं प्राण उदानो बलमुच्यते ॥ ५६ ॥

स्यात्तयो पीकनाद्वागिराशुपश्च बलस्य च ।

### आवृतानांकृच्छ्रस।ध्यता—

आवृता वायवोऽज्ञाता ज्ञाता वा वत्सरं स्थिताः ॥ ५७ ॥

प्रयत्नेनापि दुःमाध्या भवेद्युर्वानुपक्रमाः ।

### आवृतानामुपेक्षणाद्रोगोत्पत्तिः—

विद्रधिर्जी।हृद्दोगुल्माग्निमदनादयः ।

भवंत्युपद्रवास्तेषामावृतानामुपेक्षणात् ॥ ५८ ॥

इति श्रीसिंहगुप्तमूनुवाग्भटविरचितायामष्टाव-

हृदयसंहितायां तृतीयं निदानस्थानं समाप्तम् ॥

अ० ॥ १६ ॥ श्लो० ॥ ७८४ ॥

समाप्तमिदं निदानस्थानम् ।

१ आवृत्तिरावरणम् ।

इति वैद्यवर श्री पूर्णदत्तशर्मसुनु आयुर्वेदाचार्यं श्री हरिनारायण शर्म  
वैद्य निर्मितायामष्टाहृदयटिप्पण्यां प्रभाषण्यां निदानस्थानं समाप्तम् ।

---

---

मुद्रक—शिवनारायण उपाध्याय,  
नया संसार प्रेस, भदौनी, वाराणसी-१

---

---

श्रीगणेशाय नमः

# अष्टाङ्ग हृदयम् ।

द्वितीय खण्डात्मकम्

चिकित्सितं स्थानम्—

प्रथमोऽध्यायः

कायचिकित्सा १२ अध्यायान्तम् ।

अथाऽथो ज्वरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेणोदयो महर्षयः ।

ज्वरादीलंघनम्—

“आमाशयस्थो हृत्वाग्निं सामो १ मार्गान् पिपाय यत् ।

त्रिदधाति ज्वरं दोषस्तस्यात्कृर्वीत लंघनम् ॥ १ ॥

प्राग्गुप्तेषु ज्वरादौ वा बलं यत्नेन पालयन् ।

बलाभिधानमारोग्यमारोग्यार्थः क्रियाक्रमः ॥ २ ॥

लंघनफलम्—

लंघनः क्षयिते दोषे दीप्तं अग्नीं लापये सति ।

स्वास्थ्यं क्षुतुद् हृषिः पक्तिर्बलमोजस्रं जायते ॥ ३ ॥

ज्वररेखमननिर्देशः—

तत्रोत्प्लुष्टे समुत्थिलप्लुष्टे कण्ठगाये चले मले ।

सहस्रासप्ततेकासद्वेपकामविपूचिके ॥ ४ ॥

सद्योमुक्तस्य संजाते ज्वरे भामे विशेषतः ।

यमनं वमनार्हस्य दस्तं कुर्यात्तदन्यथा ॥ ५ ॥

श्वासातिसारसंमोहहृद्रोगविषमज्वरान् ।

वमनद्रव्याणि—

पिप्पलीभिर्युतान् गालान् कलिगैर्मधुकेन वा ॥ ६ ॥

उष्णाभसा समधुना पित्तसलवणेन वा ।

पटोलनिबककोटवेप्रपत्रोदकेन वा ॥ ७ ॥

सर्पणेन रसेनेशोर्मर्चैः कल्पोदितानि वा ।

वमनानि प्रयुज्यते बलकालविभागवित् ॥ ८ ॥

ज्वरे विशोपणम्—

कृतेऽकृते वा वमने ज्वरी कुर्याद्विशोपणम् ।

दोषाणां समुदीर्णानां पाचनाय शमाय च ॥ ९ ॥

( उपवासः )

आमेन भस्मनेवाग्नी छन्दोऽन्नं न विपच्यते ।

तस्मादादोषपचनाज्ज्वरितानुपवासयेत् ॥ १० ॥

घातकफज्वरउष्णाम्बुपानम्—

तृड्घानल्पाल्पमुष्णांबु पित्तेघातकफज्वरे ।

तत्कफं विलयं नीत्वा तृष्णामाशु निवर्तयेत् ॥ ११ ॥

उदीर्य चाग्निं स्रोतासि मृदूकृत्य विशोषयेत् ।

लीनपित्तानिलस्वेदश्मूत्रानुलोमनम् ॥ १२ ॥

निद्राजाड्यारुचिहरं प्राणानामवलंबनम् ।

विपरीतमतः शीतं दोषसंघातवर्धनम् ॥ १३ ॥

उष्णाम्बुनिषेधः—

उष्णमेवंगुणत्वेऽपि युज्याग्रैकातपित्तले ।

उद्विक्तपित्तं दन्धुदाहमोहातिसारिणि ॥ १४ ॥

विषमद्योत्पित्ते श्रोत्रे घातक्षीणेऽप्यपित्तिनि ।

### शीतजलविधि :—

घनचंदनमुत्थं कुपर्पटोशीरसाधितम् ॥ १५ ॥

शीतं तेम्यो हितं वोयं पाचनं तृद्वज्वरापहम् ।

### ज्वरस्यपित्तसम्बन्धः—

ऊष्मा पित्तादृते नास्ति ज्वरो नास्त्यूष्मणा विना ॥ १६ ॥

तस्मात्पित्तविषादनि त्यजेत् पित्ताधिःकेधिकम् ।

### ज्वरे स्नानादित्यागः—

स्नानाम्यंगप्रदेहांश्च परितोषं च लंपनम् ॥ १७ ॥

### आमज्वरेत्वापधनिपेधः—

अजीर्णं ह्य पाूलज्जं मामे तीव्ररुजि ज्वरे ।

न पिबेदोषं तद्धि भूय एवाममावहेत् ॥ १८ ॥

### क्षीरनिपेधः—

आमाभिभूतकोष्ठस्य क्षीरं विषमहेरिय ।

### ज्वरेऽग्नेर्वाच्यारः—

मोदर्षपीनसश्वासे जंघापर्वास्थिसूलिनि ॥ १९ ॥

वातश्लेष्मात्मके स्वेदः प्रशस्तः मंत्रवर्तयेत् ।

स्वेदमूत्रघृद्धातान् धुर्यादग्नेश्च पाटवम् ॥ २० ॥

सोऽहोक्तमाचारविधिं सर्वशम्भानुपालयेत् ।

### मलानां पाचनानि—

लंपनं स्वेदनं कालो यवागूस्तित्तको रमः ॥ २१ ॥

मलानां पाचनानि स्युर्यथावस्य क्रमेण वा ।

### सङ्घुनापवादः—

शुद्धवातशयानंतुजीर्णज्वरिषु लंपनम् ॥ २२ ॥

नेध्यते,

### तेषु वृद्धाणामनम्—

तेषु हि हितं धामनं यत्र कर्शनम् ।

## लंघितालंघितलक्ष्यम्—

तत्र सामज्वराकृत्या जानीयादविशोषितम् ॥ २३ ॥

द्विविधोपक्रमज्ञानमवेक्षेत च लंघने ।

उत्तरितस्य पेयादिभिरुपचारः—

१ युक्तं लंघितलिङ्गैस्तु तं पेयाभिरुपाचरेत् ॥ २४ ॥

यथास्वोपपत्तिद्विभिर्मण्डपूर्वाभिरादितः ।

तस्याग्निदीप्यते ताभिः समिद्धमिरिव पावकः ॥ २५ ॥

पटहं वा मृदुत्वं वा ज्वरो यावदवाप्नुयात् ।

पेयानिर्देशः—

प्राग्लाजपेया सुजरां सशुंठीधान्यपिप्पलीम् ॥ २६ ॥

ससैषवां तथाभ्यर्क्षी तां पिबेत्सहदाविमाम् ।

सृष्टविद् बहुपित्तो वा मशुंठीमाक्षिकां हिमाम् ॥ २७ ॥

यस्तिपाश्चर्यशिरःशूली व्याघ्रीगोधुरसाधिताम् ।

पृथ्गिपर्णीबलावित्थनागरोत्पलधाम्यर्क्षः ॥ २८ ॥

सिद्धा ज्वरातिसार्यम्ला पेयां दीपनपाचनीम् ।

हृत्वेन पंचमूलेन हिक्कारुक्श्वासकासयान् ॥ २९ ॥

पंचमूलेन महता कफाक्षौ यवसाधिताम् ।

द्वियद्धवर्चाः सयवा पिप्पल्यामलर्क्षः कृताम् ॥ ३० ॥

यवाम् सपिपा भृष्टां मलदोषानुलोमनीम् ।

चविकापिप्पलीमूलद्राक्षामलकनागरैः ॥ ३१ ॥

कोष्ठे विबद्धे सरुजि,

पिबेत्तु परिकर्तन्नि ।

१ कोलवृक्षाम्लकलश्रीचावनीश्रीफलैः कृताम् ॥ ३२ ॥

अस्वेदनिद्रस्तृष्णार्तः सितामलकनागरैः ।

सिताबदरमृद्रीकासारिवायुस्तर्जदनेः ॥ ३३ ॥

१ सम्पद् लंघितलिङ्गैर्युक्ततरम् । २ कलशो-भृथिपर्णी ( पिठवन ) । चावनी

कंठकारो ( मटकटैया ) । श्रीफलं वित्त्वम् ।

तृष्णाच्छर्दिपरो दाहज्वरघ्नी क्षौद्रमंशुताम् ।

पेयौषधैरसादिकरणम्—

कुर्योत्पेयोपधैरेव रसशूषादिकानपि ॥ ३४ ॥

पेयानिषेधः—

मद्योद्भवे मद्यनित्ये पित्तस्थानयते कफे ।

ग्रीष्मे १ तयोर्बाधकयोस्तृट्छर्दिदाहपीडिते ॥ ३५ ॥

ऊर्ध्वं प्रवृत्तं रक्ते च पेया नैच्छन्ति,

तेषु तु ।

ज्वरापहः फस्वरसैरदभिर्वा लाजतर्पणम् ॥ ३६ ॥

पिबेत्तक्षर्कराक्षौद्रं,

ततोजीर्णैस्तर्पणभोजनादि—

ततो जीर्णे च तर्पणे ।

यवाग्यामोदनं क्षुदानश्रीयाद्भृष्टतंडुलम् ॥ ३७ ॥

२ दकलावणिनीयूं ३ रसैर्वा मुदगलावजैः ।

एवं ज्वरस्य पटहोतिवाद्याः—

इत्ययं पटहो नेयो बल दोषं च रसता ॥ ३८ ॥

ततः कपायः (कादा)

ततः पक्वेषु क्षौपेषु लघ्वनाद्यैः प्रथम्यते ।

कपायो क्षौपशेषस्य पाचनः घामनोऽयवा ॥ ३९ ॥

तित्तः पित्ते विशेषेण, प्रयोज्यः कटुकः कफे ।

नवज्वरे कपायनिषेधः—

पित्तश्लेष्महरत्वेऽपि कपायस्तु न दास्यते ॥ ४० ॥

नवज्वरे मलस्तर्भात्कपायो विषमज्वरम् ।

कुष्ठेऽरुचिहृस्मासहिष्माघ्मानादिकानपि ॥ ४१ ॥



### औषधदाने मतभेदः—

सप्ताहादौषधं केचिदाहुरन्ये . दशाहवः ।  
केचित्तुष्वध्वस्तस्य योज्यमामोत्वणो न तु ॥ ४२ ॥

### तत्र कारणम् :—

तीव्रज्वरपरीतस्य दोषवेगोदये यतः ।  
दोषेऽप्यवाऽतिनिचिते तद्वास्तुमित्यकारिणि ॥ ४३ ॥  
अपच्यमानं भैषज्यं भूयो ज्वलयति ज्वरम् ।

### औषधदाने कालः—

मृदुज्वरो लघुर्देहश्चलिताश्च भक्ता यदा ॥ ४४ ॥  
अचिरज्वरितस्यापि भैषजं कारयेत्तदा ।

### औषधम्

मुस्तमा पपेटं युक्तं क्षुत्त्या<sup>१</sup> दुःस्पर्शाऽपि वा ॥ ४५ ॥  
पाक्यं शीतकषायं वा पाठोशीरं सवालकम् ।  
पिवेत्तद्वच्च सूनिबगुह्वचीमुस्तनागरम् ॥ ४६ ॥  
ययायोगभिमे योज्याः कषामा दोषपाचनाः ।  
ज्वरारोचकतृष्णास्यवैरस्यां पक्तिनाशनाः ॥ ४७ ॥

### संततादि ज्वरशमनाः कषायाः :—

कलिङ्गकाः पटोलस्य पर्णं कटुकरोहिणी ॥ ४८ ॥  
पटोलं सारिवा मुस्ता पाठा कटुकरोहिणी ।  
पटोलनिम्बत्रिफलाभृद्वाकामुस्तधत्सकाः ॥ ४९ ॥  
किराततित्कमृता चंदनं विश्वभेषजम् ।  
धानीमुस्वामृताक्षीद्रमर्षश्लोकसमापनाः ॥ ५० ॥  
पंचंते संततादीनां पंचानां घमना मताः ।  
दुरालभाऽमृता मुस्ता नागरं चातजे ज्वरे ॥ ५१ ॥

१ दुःस्पर्शा 'जवासा' । पाक्यं अष्टमांशं घृष्टम् । शीतकषायम् हिमसंशकम् ।

२ कलिङ्गकः इन्द्र जव हि० ।

अथवा पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वभेषजम् ।

कनीयः पंचमूलं च,

पित्ते शक्रयवा घनम् ॥ ५२ ॥

कटुका चेति सक्षौद्रं मुस्ता पर्पटकं तथा ।

सघन्वयासभूनिवं,

वत्सकाद्यो गणः कफे ॥ ५३ ॥

अथवा १ वृषमाणेयीगृगवेरदुरालभाः ।

रत्नचंपानिलश्लेष्मयुक्तो दीपनपाचनम् ॥ ५४ ॥

अथवा पिप्पलीमूलशम्याककटुकापनम् ।

वातपित्त-ज्वरापहः कषायः—

द्राक्षामधूकमधुकं रोधकाश्मर्यसारिवाः ॥ ५५ ॥

मुस्तामलकलीवेरपद्मकेतरपद्मकम् ।

मृणालचंदनोक्षीरनीलोत्पलपद्मकम् ॥ ५६ ॥

फाटो हिमो वा द्राक्षादिर्जातीकुमुदवासितः ।

युक्तो मधुसितालार्ज्ज्वरमत्यनिलपित्तजम् ॥ ५७ ॥

ज्वरं मदात्मयं छर्दि मूर्च्छां दाहं श्रमं भ्रमम् ।

ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं च पिपासा कामलामपि ॥ ५८ ॥

ज्वरदाहजित् रसः—

पाचयेत्कटुकां पिष्ट्वा कर्पूरिभिनवे शुची ।

निष्पीडितो घृतघृतस्तद्रसो ज्वरदाहजित् ॥ ५९ ॥

कफघातज्वरे कषायाः—

कफघाते यवातित्तापाठाऽरस्वघवत्सकाः ।

पिप्पलीधूर्णयुक्तो वा नर्वाथशिलोद्भवोद्भवः ॥ ६० ॥

व्याघ्रीशुल्यमृताश्वायः पिप्पलीधूर्णसंयुतः ।

वातश्लेष्मज्वररवासाकामपीनसशूलजित् ॥ ६१ ॥

पथ्या कुस्तुम्बरोमुस्ताशुठीकटूतृणपर्पटम् ।  
 सक्कफलवचामाङ्गिदिवाह्वं मधुहिगुमत् ॥ ६२ ॥  
 कफवातज्वरेष्वेव कुसिहृत्पाश्ववेदनाः ।  
 कंठामयास्यश्वयथुकासश्वासाग्निपञ्छति ॥ ६३ ॥

### वातपित्तज्वरे कषायद्वयम् :—

आरबषादिः ससौद्रः कफपित्तज्वरं जयेत् ।  
 तथा तिक्तावृषोद्योरत्रायंतीत्रिफलामृताः ॥ ६४ ॥

### सन्निपाते पाचनम् :—

सन्निपातज्वरे व्याघ्री देवदारुनिचापनम् ।  
 पटोलपत्रनिबलक्त्रिफलाकटुकायुतम् ॥ ६५ ॥  
 नागरं पीप्परं मूलं गुह्वरी कंटकारिका ।  
 सकासश्वासापार्श्वती वातरलेष्मोत्तरे ज्वरे ॥ ६६ ॥  
 मधूकपुष्पं मृद्वीका त्रायमाणा परुषकम् ।  
 मोक्षीरतिक्ता त्रिफला काशमयं कल्पयेद्विमम् ॥ ६७ ॥  
 मधूकपुष्पं मृद्वीका त्रायमाणा परुषकम् ।  
 सोक्षीरतिक्ता त्रिफला काशमयं कल्पयेद्विमम् ॥ ६८ ॥  
 कषायं तं पिवन् काले ज्वरान्सर्वाभ्यपोहति ।  
 जात्यामलकमुस्तानि तद्वदन्वयवासकम् ॥ ६९ ॥  
 बद्धषिट् कटुकाष्टाष्टात्रायंतीत्रिफलागुहान् ।

### जीर्णोपशेषेयाद्यन्ने व्यवस्था

जीर्णोपशेषोऽन्नं येयाद्यमाचरेच्छलेष्मवाग्रनु ॥ ७० ॥

१ कुस्तुम्बरी धान्यकम् । देवाह्वं देवदारु । कटूतृणं ( हरिद्वारी गुस्ता )  
 व्याघ्री ( भट कटैया हि० ) छिन्ना अमृता ( गुर्व ) कटफलम् ( पायफर ) उशीरं  
 ( शग ) त्रायंती ( त्रायमाणा ) निचा ( हल्दी ) कटुका ( कुटकी ) नागरं ( मोठ )  
 पीप्परं ( पोहकर मूल ) मधूक ( मधुवा ) काशमयं ( खंभारी ) जाती ( जमेर )  
 की पत्ती ) ।

येया कफं वर्धयति पक्वं पांशुषु वृष्टिवत् ।

तन्त्रकारस्याप्ययं मार्गः—

श्लेष्माभिष्यन्न देहानामतः प्रागपि योजयेन् ॥ ७० ॥

यूपान् कुलत्थञ्जकदाडिमादिकृतान् लघून् ।

हृत्सांस्तित्तरसोपेतान् हृद्यान् रुचिकरान् पद्वन् ॥ ७१ ॥

ज्वरेशाल्यादयः—

रक्ताद्याः शालयो जीर्णाः पण्डिकाश्च ज्वरे हिताः ।

कफज्वरे ( चाली ) यथाः पथ्याः—

श्लेष्मोत्तरे बीततुषास्तथा वाट्यवृत्ता यथाः ॥ ७२ ॥

ज्वरिण ओदन (भात) प्रकाराः

ओदनस्तैः श्रुतो द्वित्रिः प्रयोक्तव्यो यथायथम् ।

दोषदूष्यादिवलतो ज्वरभक्तायसाधितः ॥ ७३ ॥

ज्वरापहा यूपाः ( जूस ) --

मुद्गादीर्लघुभिर्बुधाः कुलत्थैश्च ज्वरापहाः ।

ज्वरेदितारसाः ( शोरवा ) :—

कारवेल्लककर्कोटबालमूलकपर्पटैः ॥ ७४ ॥

घातार्कनिबकुमुमपटोलफलपत्रवैः ।

अत्यंतलघुभिर्मौहैर्जागलैश्च हिता रसाः ॥ ७५ ॥

व्याघ्रीपरुषपर्करीद्रातामलकदाडिमैः ।

संरुताः पिप्पलीशुंठीघान्यजीरकसैधवैः ॥ ७६ ॥

सितामधुम्यां प्रायेण संयुता वा कृताश्रुताः ।

ज्वररुच्यानिन्यञ्जनानि :—

अनम्लतक्रमिद्वानि रुच्यानि व्यञ्जनानि च ॥ ७७ ॥

१ वाटपट्टा शृष्टविदलीकृताः 'दलिया' । २ कृता दाडिमाजाजिदुं स्यादितिः संरुताः । अश्रुता असंरुताः । कुलत्थं ( कुरयी ) । कारवेल्लकं ( करंला ) कर्कोटः ( केकूता ) घातार्कः ( अंटा ) । परुषकः ( फालमा ) पर्करी ( अग्निमंथ ) ।

अन्तान्मनलसंपत्तानि,

ज्वरेऽनुपानम्—

अनुपानेऽपि योजयेत् ।

तानि क्वथितशीतं च चारि मर्द्यं च सात्त्विकम् ॥ ७८ ॥

ज्वरिणो भोजनकालः—

सज्वरं ज्वरमुक्तं वा दिनाति भोजयेत्तु ।

श्लेष्मक्षयविवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ७९ ॥

मधोचितेऽप्यवा काले देहसात्त्वानुरोधतः ।

प्रागल्भ्यवह्निर्भुजानो न ह्यजीर्णेन पीक्ष्यते ॥ ८० ॥

ज्वरेघृतपानकालः—

कषायपानपथ्यार्द्रं दशाहं इति लंघिते ।

सर्पिर्दघातुके मंदे घातपित्तोत्तरे ज्वरे ॥ ८१ ॥

पक्तेषु दोषेष्वमृतं तद्विषोपममग्न्या ।

दशाहे स्यादतीतेऽपि ज्वरोपद्रववृद्धिकृत् ॥ ८२ ॥

लंघनादिक्रमं तत्र कुर्यादाकफसंशयात् ।

जीर्णज्वरानुवृत्तिः—

देहपात्त्वबलत्वाच्च ज्वरो जीर्णोऽनुवर्तते ॥ ८३ ॥

जीर्णज्वरेघृतपानम्—

रुक्षं हि तेजो ज्वरकृत्तेजसा रुक्षितस्य च ।

बभनस्वेदकालाबुक्कषायलघुभोजनैः ॥ ८४ ॥

यः स्यादतिबलो घातुः सहचारी सदागतिः ।

तस्य सशमनं सर्पिर्दोषस्तेषां बुधैश्च ॥ ८५ ॥

पातपित्तजितामर्ष्यं संस्कारमनुरूप्यते ।

मुतरां तद्वधतो दद्याद्यथास्वीपघसाधितम् ॥ ८६ ॥

१ अन्यथा-अपक्वेषु दोषेषु कफप्रधाने सर्पिर्विषोपमम् । अमृतं श्रेष्ठम् ।

२ तस्यपिः ।

१ विपरोतं ज्वरोष्माणं जयेत्पित्तं च शैत्यतः ।

स्नेहादातं घृतं तुल्ययोगसंस्कारतः कफम् ॥ ८७ ॥

पूर्वं कपायाः सघृताः सर्वे योज्या यथामलम् ।

### त्रिफलादिघृतम्—

त्रिफला पिप्पुमन्दत्यङ्गमधुकं बृहतीद्वयम् ।

सममूरदलं कायः सघृतो ज्वरकासहा ॥ ८८ ॥

### पिप्पल्यादिघृतम्—

पिप्पलीद्वयवभावनितित्ता-

१ सारिवामलकतामलकीभिः ।

वित्वमुस्तहिमपालनितेष्ठी-

द्राक्षयातिविषया स्थिरया च ॥ ८९ ॥

घृतमाशु निर्हति साधितं

ज्वरमग्निं विषमं हलीमकम् ।

अरुचि भृशतापममयो-

र्वमधुं पार्श्वशिरोरुजं क्षयम् ॥ ९० ॥

### द्रव्यविशेषैः साधितं घृतं ज्वरजित्—

१ तैलकं पवनजन्मनि ज्वरे,

योजयेन्निघृतया वियोजितम् ।,

तित्तकं घृष्टघृतं च पैत्तिके

मच्च पालनिकया शृतं हविः ॥ ९१ ॥

० तं हृदयोद्वेगादिगुणं ज्वरोष्माणं ज्वरोत्पादकं जाठराग्नं घृतं  
गुणं जयेदित्यर्थः । २ पिप्पुमन्दः ( नीम ) ।

३ कां "भूई अँवरा" इति लोके । हिमं चन्दनम् । पालनी त्रायमाणा  
पत्नीति । स्थिरा-आलस्यार्थः । ४ तैलकं घृतं वातज्याधुक्तं विघृतमा  
तम् । व्योषं ( त्रिकटु ) अग्निः ( चीता ) ।

जीर्णं कफज्वरघ्नं घृतम्—

विडंगसोवर्चलचव्यपाठा-

व्योपापिमिधूदमवयावचूकैः ।

पलाशकैः क्षीरसमं घृतस्य

प्रस्थं पचेज्जीर्णकफज्वरघ्नम् ॥ ६२ ॥

जीर्णज्वरघ्नाः पंचस्नेहाः—

गृह्यया रमकल्काभ्यां त्रिफलायां वृषस्य च ।

मृद्वीकाया बलायाश्च स्नेहाः सिद्धा ज्वरच्छिदः ॥ ६३ ॥

घृतेजीर्णरसारानम्—

जीर्णे घृते च भुञ्जीत मूढु मांसरमोदनम् ।

बलं ह्यलं दोषहरं परं तज्ज्व बलप्रदम् ॥ ६४ ॥

कफपित्तहरारसाः—

कफपित्तहरा मुद्गकारवेह्लादिजा रसाः ।

प्रायेण तस्मान्न हिता जीर्णे वातोत्तरे ज्वरे ॥ ६५ ॥

शूलोदावर्तविष्टभजनना ज्वरवर्धनाः ।

एवं कृते शमनाभावेऽयमनम्—

न शाम्यत्येवमपि चेज्ज्वरः कुर्वीत शोषनम् ॥ ६६ ॥

शोषनार्हस्य वमनं प्रायुक्तं तस्य योजयेत् ।

आमाशयगते दोषे बलिनः पालयन्बलम् ॥ ६७ ॥

पक्वे दोषे विरेचनम्—

पक्वे तु विधिने दोषे ज्वरे वा विषमद्यजे ।

भोदकं त्रिफलाश्यामात्रिवृत्तिष्णलिकेमरैः ॥ ६८ ॥

समितामपुनिर्दद्याद्व्योपाद्यं वा विरेचनम् ।

आरवग्वधं वा पयसा मृद्वीकानां रसेन वा ॥ ६९ ॥

त्रिकलां त्रायमाणा वा पयसा ज्वरितः पिबेत् ।

विरक्तिनां च संसर्गी मंडपूर्वा यथाक्रमम् ॥ १०० ॥

**बहिःपतन्मलस्योपेक्षा—**

ज्वरमानं ज्वरोत्थिलष्टमुपेक्षेत मूलं सदा ।

पक्वोऽपि हि विकुर्वीत दोषः कोष्ठे कृतास्पदः ॥ १०१ ॥

**अतिप्रवर्तमान उपायः—**

अतिप्रवर्तमानं वा पाचयन्संग्रहं नयेत् ।

आमसंग्रहणे दोषा दोषोपक्रम ईरिताः ॥ १०२ ॥

**आमज्वरे दोषनिर्हरणं न कार्यम्—**

पाययेद्दोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः ।

प्रसुप्तं कृष्णसर्पं स कराम्रेण परामृजेत् ॥ १०३ ॥

**ज्वरेणृक्षाणे शोधननिषेधः—**

ज्वरक्षीणस्य न हितं वमनं च विरेचनम् ।

कामं तु पयसा तस्य निरुहैर्वा हरेन्मलान् ॥ १०४ ॥

**ज्वरे क्षीरप्रयोगः—**

क्षीरोचितस्य प्रक्षीणश्लेष्मणो दाहवृद्धतः ।

क्षीरं पित्तानिलार्तस्य पथ्यमप्यतिसारिणः ॥ १०५ ॥

तद्वपुर्लघनोत्तमं प्लुष्टं वनमिवाग्निना ।

दिव्यायु जीवयेत्तस्य ज्वरं चाशु नियच्छति ॥ १०६ ॥

संस्कृतं क्षीतमुष्णं वा तस्माद्धारोष्णमेव वा ।

विभज्य काले युज्यते ज्वरिणं हृत्पयोऽन्यथा ॥ १०७ ॥

पयः सत्तृठीसर्जूरमृद्रीकाशर्कराघृतम् ।

शृतशीतं मधुयुतं तृड्दाहज्वरनाशनम् ॥ १०८ ॥

तद्वद् द्राक्षाबलावष्टीतारिवाकणचंदनैः ।

चतुर्गुणेनाभमा वा पिप्पल्या वा शृतं पिबेत् ॥ १०९ ॥



कामांश्छ्वासाच्छिरः सूलात्पाश्वंशूलान्धिरज्वरात् ।  
 मुच्यते ज्वरितः पीत्वा 'पंचमूलोऽमृतं पयः ॥ ११० ॥  
 शृतमेरुदंभूलेन बालवित्सेन वा ज्वरात् ।  
 पारोष्णं वा पयः पीत्वा विब्रह्मानिलवर्चमः ॥ १११ ॥  
 भरत्कपिच्छातिसृतेः' मत्तृक्ष्णप्रवाहिकात् ।  
 मिद्धं शुष्णवलाभ्याघ्रोमोर्कटकमुद्देः पयः ॥ ११२ ॥  
 शोकमूत्रघृदातविषंमन्वरकासजिव् ।  
 'वृध्रावबित्त्ववर्षामूमापितं ज्वरसोफनुत् ॥ ११३ ॥  
 विधिपाचारसिद्धं वा क्षीरमाशु ज्वरापहम् ।

उज्वरेनिरुहवस्ति ( पनीमा ) प्रयोगः—

निरुहस्तु बलं बह्नि विज्वरत्वं मुदं खिम् ॥ ११४ ॥  
 दोषे युक्तः करोत्याशु पक्वे पक्वाशयं गतं ।  
 पित्तं वा कफपित्तं वा, पक्वाशयगतं हरेत् ॥ ११५ ॥  
 खंसनं त्रीनपि भलान्, वस्तिः पक्वाशयाश्रयान् ।

अनुवासनप्रयोगः—

प्रक्षौण्णकफपित्तस्य त्रिकपृष्ठकटिग्रहे ॥ ११६ ॥  
 दोषाग्नेर्वद्वसृजतः प्रयुजीतानुवासनम् ।

'वक्ष्यमाणवस्ति योज्वरनाशनाः—

'पटोलनिबच्छदनकटुकाचतुरंगुलैः ॥ ११७ ॥

'स्थिराबलागोशुरकमदनोक्षीरवालकैः ।

पयस्पर्षादके क्वाथं क्षीरशेथं विमिश्रितम् ॥ ११८ ॥

१ पंचमूलमत्र बिल्वादिमहत्प्राह्मम् । २ असिसृतेरतिमारात् । ३ वृध्रावः  
 मूत्रमपुनर्नवा । वर्षाभिः स्थूला । कणा ( पीपर ) मोर्कटकं ( गोक्षुह ) । खंसनं  
 विरेचनम् । अनुवासनं स्नेहवस्तिः । ॥ छदनपत्रम् । चतुरंगुलम् ( अमलतास ) ।  
 ५ स्थिरा घालपर्णी ।

कल्कितं मुस्तमदनवृष्णामधुकवत्सकैः ।  
 वस्ति मधुघृतान्या च पीडयेज्ज्वरनाशनम् ॥ ११६ ॥  
 चतस्रः पणिनीर्यष्टीफलोद्योरनूपद्रुमान् ।  
 क्वाथयेत्कल्कयेद्यष्टीशताह्वाफलिनीफलम् ॥ १२० ॥  
 मुस्तं च वस्तिः सगुहसोद्वसपिज्वरापहः ।  
 जीबन्ती मदनं मेदां पिप्पली मधुकं वचाम् ॥ १२१ ॥  
 ऋद्धिं राक्षां बला बित्तं शतपुण्या शतावरीम् ।  
 पिष्ट्वा क्षीरं जलं सपिस्तंलं चैकत्र साधितम् ॥ १२२ ॥  
 ज्वरेऽनुवासनं दद्याद्यथास्नेहं ययामलम् ।  
 ये च तिद्धिपु बध्यते वस्तयो ज्वरनाशनाः ॥ १२३ ॥

जीर्णं ज्वरे नश्यम्—

शिरोरुगौरवश्लेष्महरामिद्रियबोधनम् ।  
 जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्यान्नस्यं विरेचनम् ॥ १२४ ॥  
 स्नैहिकं शून्यधिरसो दाहातौ पित्तनाशनम् ।

यथायोगंधूमादिकल्पना—

धूमगं हूपकवलान् यथादोषं च कल्पयेत् ॥ १२५ ॥  
 प्रतिशयायास्यबैरस्यधिरः कंठामयापहान् ।

अरुचौ प्रतिक्रिया—

अरुचौ मातुलुंगस्य केसरं साज्यसंघबम् ॥ १२६ ॥  
 धात्रीद्राक्षासितानां वा कल्कमास्येन धारयेत् ।

ज्वरे अभ्यङ्गादिप्रयोगः—

यथोपशमसंस्पर्शान् क्षीतोष्णद्रव्यकल्पितान् ॥ १२७ ॥  
 अर्भ्यगालेपसेकादीन् ज्वरे जीर्णं त्वगाश्रिते ।  
 कुर्यादंजनधूमांश्च तथैवागंतुजेषु तान् ॥ १२८ ॥

पद्मः ( अमलतारा ) । २ फलिनी प्रियंगुः । फलमदनफलम् ।

दाहेऽभ्यङ्गविशेषः—

दाहे सहस्रघातेन सपिपाऽभ्यङ्गमाचरेत् ।

दाहज्वरेतैलम्—

सूत्रोक्तञ्च गणैस्तैस्तैर्मधुराम्लकपायकैः ॥ १२६ ॥

दूर्वादिभिर्वा पित्तघ्नीः शोषनादिगणोदितैः ।

शीतवीर्यैर्हिमस्पर्शैः कायकल्कीकृतैः पचेत् ॥ १२७ ॥

तैलं सक्षीरमभ्यङ्गात्सद्यो दाहज्वरापहम् ।

मस्तकलेपः—

धिरो गात्रं च शीतरेव नाप्रतिपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ १२८ ॥

अथगाहादि—

तस्कायेन परीवेक्यकगाहं च योजयेत् ।

तथाऽऽरजालसत्तिलक्षीरधूतधृतादिभिः ॥ १२९ ॥

अङ्गेफेनलेपः—

कपित्थमातुलिगाम्लविदारीरोधदाडिमैः ।

बदरीपल्लवोत्पेनैः केनेनादिष्टजेन वा ॥ १३० ॥

लिप्तेऽङ्गे दाहहृद्मोहहृदिस्तृष्णा च धाम्यति ।

दाहज्वरेपित्तहरप्रयोगः—

यो वणितः पित्तहरो दीपोपक्रमणं क्रमः ॥ १३१ ॥

तं च धीलयतः शीघ्रं सदाहो नश्यति ज्वरः ।

शीतज्वरे सुखोष्णतैलाभ्यङ्गः—

नीर्योष्णैरुष्णसंस्पर्शैस्तगरामुखुङ्कुमैः ॥ १३२ ॥

बुधस्थोणेयशैलियसरलामरदारुभिः ।

नक्षरासामुरजवाचटिलाद्वचोरकैः ॥ १३३ ॥

पृथ्वीकादिषुमुस्ताहिवाध्यामकसर्पपैः ।

दशमूलामृतेरंष्ट्रयपत्तुरोहिपैः ॥ १३७ ॥

तमालपत्रभूनिबशल्लकीधान्यदोष्यकैः ।

मिश्रिमापकुलत्पाग्निप्रकीर्णानुकुलीद्वयैः ॥ १३८ ॥

अन्यैश्च तद्विधैर्द्रव्यैः शीते तैलं ज्वरे पचेत् ।

क्रथितैः कल्कितैर्युतैः मुरासीवीरकादिभिः ॥ १३९ ॥

तेनाभ्यंज्यात्मुखोष्णं,

**पूर्वोक्तैर्लेपनादि—**

तैः सुषिष्टैश्च लेपयेत् ।

कवोष्णैस्तैः परीषेकमवगाहं च कल्पयेत् ॥ १४० ॥

केवलैरपि तद्वच्च क्षुत्तगोमूत्रमस्तुभिः ।

आरावधादिवर्गं च पानाम्यंजनलेपनैः ॥ १४१ ॥

धूपानगरजान्ग्याश्च वदयति विषमज्वरे ।

**रवेदादिशीलनम्—**

अग्न्यनश्निकृतान्स्वेदान् स्वेदिभेषजभोजनम् ॥ १४२ ॥

गर्भभूवेशमशयनं कुथार्कबलरत्नकान् ।

निधूंमदीर्गतरंगारैर्हसन्तीश्च<sup>१</sup> हसन्तिकाः ॥ १४३ ॥

मर्द्यं सङ्ग्रूपणं तर्कं कुलत्थव्रीहिकोद्रवान् ।

संशीलयेद्वैपश्रुमान् यक्ष्वाज्यदपि पित्तलम् ॥ १४४ ॥

दपिताः स्तनशालिन्धः पीना विभ्रमभूषणाः ।

यौवनासवमत्ताश्च तमालिगेयुरंगनाः ॥ १४५ ॥

धीतधीतं च विज्ञाय तास्ततोऽपनयेत्पुनः ।

**सन्निपातज्वर चिकित्सा—**

वर्धनेनैकदोषस्य क्षाण्णेनोन्मिदृतस्य च ॥ १४६ ॥

कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यकशाञ्जयेन्मलान् ।

१ निधूंमदीर्गतरंगारैर्हसन्तीरिव हसन्तिका अपिशकटिकाः “अंगौठी,” हि० ।  
 ॥ अङ्गनाः । ३ कफश्चस्थानञ्चतयोऽनानुपूर्व्या क्रमेण । तुल्यकशाञ्जयेन्मलान् ।  
 पूर्वं जेतव्यस्ततो पित्तं ततोवायुरितिकफानुपूर्व्या । स्थानमत्रामाशयस्तेना  
 यस्यो दोषः प्राक् जेतव्यः पश्चात्पकाशयस्थः । इतिस्थानानुपूर्व्या चिकित्सा ।

### कर्णमूलशोफचिकित्सा—

सन्निपातज्वरस्याते कर्णमूले मुदाहणः ॥ १४७ ॥  
 शोफः संजायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ।  
 रक्तावसेचनैः शीघ्रं सपिपानैश्च तं जयेत् ॥ १४८ ॥  
 प्रदेहेः कफपित्तघ्नैर्नावनः कवत्तग्रहेः ।

### ज्वरे शिरामोक्षः—

घ्नीनोऽग्निसम्बृह्णाद्यैर्ज्वरो यस्य न क्षाम्यति ॥ १४९ ॥  
 दाहानुमारी तस्याद्यु मुचेद्वाह्नोः क्रमाच्छिराम् ।

### विषमज्वरचिकित्सा—

अयमेव विधिः कार्यो विषमेऽपि यथाययम् ॥ १५० ॥  
 ज्वरे विषम्य वातादीन् यश्चानंतरमुच्यते ।  
 पटोलकटुकामुस्ताप्राणदामधुर्कः<sup>१</sup> वृत्ताः ॥ १५१ ॥  
 त्रिचतुर्ष्वधः क्वाथा विषमज्वरनाशनाः ।  
 योजयेत्त्रिकला पथ्या गृह्णी पिप्पली पृषक् ॥ १५२ ॥  
 तैस्तैर्विधानैः सगुडैर्भक्षितकमथाऽपि वा ।  
 लघनं बृहणं चाऽपि ज्वरागमनवासरे ॥ १५३ ॥  
 प्रातः मर्तलं लघुनं प्राग्भक्तं वा तथा घृतम् ।  
 जीर्णं सद्रह्मिषयस्तर्कं सर्पिश्च पट्पलम् ॥ १५४ ॥  
 बल्याणकं पद्मगन्धं तित्ताप्यं ब्रूणमापितम् ।  
 त्रिकलाकीलतर्कारीकाषदत्रा<sup>२</sup> शृतं घृतम् ॥ १५५ ॥  
 तिल्वनरवकृतावापं विषमज्वरजित्परम् ।  
 मुरां तीक्ष्णं च यन्मद्यं शिलितित्तिरिबुकुटान् ॥ १५६ ॥  
 मार्यं मध्योष्णवीर्यं च महाघ्नेन प्रशामतः ।  
 भवित्वा सदहः स्वप्यादयवा पुनरुल्लिखेत् ॥ १५७ ॥

सपिपो महतीं मात्रा पीत्वा तच्छर्दयेत्पुनः ।

नीलिनीमजगंधां च त्रिवृतां कटुरोहिणीम् ॥ १५८ ॥

पिवेज्ज्वरस्यागमने स्नेहस्वेदापपादितः ।

मनोह्रा संधवं कृष्णा तैलेन नयनांजम् ॥ १५९ ॥

योज्यं,

हिगुसमा व्याघ्री वसा तस्यं समैषवम् ।

पुराणमपिः सिंहस्य वसा तद्वत्समैषवा ॥ १६० ॥

पलंकपा निवपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी ।

सर्पपाः मयवाः सर्पिर्धूपो विड् वा बिडालजा ॥ १६१ ॥

पुरष्यामवचामर्जनिबार्कगुरुदारुभिः ।

धूपो ज्वरेषु मर्षेषु प्रयोक्तव्योऽपराजितः ॥ १६२ ॥

धूपनस्माजनप्राप्ता ये चोक्ताश्चित्तवैकृते ।

दैवाश्रयं च मपज्य ज्वरान्मर्षान्मपोहति ॥ १६३ ॥

विशेषाद्विपमां प्रायस्ते ह्यागत्वनुबंधजाः ।

यथास्थ च निरा विध्येदधाती विपमज्वरे ॥ १६४ ॥

केवलानिलबीसर्पविस्फोटाभिहतज्वरे ।

सपिःपानहिमालेपसैकमामरसाशनम् ॥ १६५ ॥

गुर्याद्यथास्वमुक्तं च रक्तमोक्षादिसाधनम् ।

ग्रहोत्थे भूतविशोक्तं बलिमन्त्रादिसाधनम् ॥ १६६ ॥

श्लोषधीगंधजे पित्तशमनं, विपजिद्विषे ।

इष्टैरर्थैर्मनोजैश्च यथादोषशमेन च ॥ १६७ ॥

हिताहितचिवेकंश्च ज्वरं श्लोधादिजं जयेत् ।

श्लोघजो याति कामेन, शातिं क्रोधेन कामजः ॥ १६८ ॥

भयशोकोद्भूतौ श्लोघाभ्यां, भीशोकाम्यां तथेतरौ ।

शापायर्वलमंश्रोत्थे विधिर्देवव्यपाश्रयः ॥ १६९ ॥

१ पलंकपा शुग्गुलुः । २ ताम्बां कामक्रोधाभ्याम् । इतरी कामक्रोघजौ ।

तं ज्वराः केवलाः पूर्वं व्याप्यन्तेऽन्तर मलैः ।

॥ तस्मादोषानुमारेण तेष्वहारादि कल्पयेत् ॥ १७० ॥

नहि ज्वरोऽनुबध्नाति मास्त्वार्चविनाकृतः ।

ज्वरकालं स्मृतिं चास्म्य हारिभिविपर्यर्हरेत् ॥ १७१ ॥

करुणाद्रं मनः शुद्धं सर्वज्वरविनाशनम् ।

**ज्वरे व्यायामादिस्व्यागः—**

त्यजेदाबललाभाच्च व्यायामज्ञानमैषुनम् ॥ १७२ ॥

शुर्वसात्म्यविदाहन्नं यच्चान्यज्ज्वरकारणम् ।

न विज्वरोऽपि सहसा सर्वघ्नीनी भवेत्तथा ।

निवृत्तोऽपि ज्वरः क्षीघ्रं व्यापादयति दुर्बलम् ॥ १७३ ॥

सद्यः प्राणहरो यस्मात्तमात्तस्य विशेषतः ।

तस्या तस्यामवस्थायौ तत्तत्कुर्यादभिपणितम् ॥ १७४ ॥

ओषधयो मणयश्च शुर्मथाः पापुगुहद्विजैवतपूजाः ।

प्रीतिकरा मनसो विषयाश्च ह्यन्यपि विदुःकृतं ज्वरमुग्रम् ॥ १७५ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो रक्तपित्तचिकित्सित व्याख्यास्यामः ।

**ऊर्ध्वगरक्तपित्तोपक्रमः—**

“ऊर्ध्वगं बलिनो वेगमेकदोषानुगं नवम् ।

रक्तपित्तं मुखे काले साधयेन्निरुपद्रवम् ॥ १ ॥

**अधोगस्ययापनम्—**

अधोगं यापयेदक्तं यच्च दोषद्वयानुगम् ।

सातं घातं पुनः कुप्यन्मार्गान्मार्गान्तरं च यत् ॥ २ ॥

१ सर्वाधीनः सर्वाभिप्रेतः । २ बलिनो बलमुक्तस्थरोमिणः ।

अतिप्रवृत्तं मंदाग्नेस्त्रिदोषं द्विपथं स्यजेत् ।

संतर्पणोत्थं बलिनो बहुदोषस्य भावयेत् ॥ ३ ॥

**रक्तपित्तस्य विरेकादिना साधनम् :—**

ऊर्ध्वभागं विरेकेण, वमनेन त्वधोगतम् ।

शमनैर्यृहणैश्चान्यत्संख्यवृंहानवेक्ष्य च ॥ ४ ॥

ऊर्ध्वं प्रथमे शमनी रसौ तिक्तकपायनी ।

उपवासश्च 'निःशु'ठीपङ्गोदकपायिनः ॥ ५ ॥

अधोगे रक्तपित्तं तु वृहणो मधुरा रसः ।

ऊर्ध्वगे तर्पणं योज्यं प्राक्च पेया स्वधोगते ॥ ६ ॥

**अशुद्धरक्तधारणनिपेधादि :—**

अस्ततो बलिनोऽशुद्धं न धार्यं तद्वि रोगवृत् ।

धारयेदभ्यधा सांघ्रमग्निबन्धीधकारि तत् ॥ ७ ॥

**लेहादि :—**

त्रिवृच्छ्यामाकपायेण कल्केन च मद्यर्करम् ।

साधयेद्विधियल्लेहं लिह्यात्पाणितलं ततः ॥ ८ ॥

**मोदक :—**

त्रिवृता त्रिकला श्यामा पिप्पली क्षर्करा मधु ।

मोदकः संनिपातोर्ध्वरक्तक्षोफज्वरापहः ॥ ९ ॥

त्रिवृत्समसिता तद्वत् पिप्पलीपादमंयुता ।

यमनं फलमंयुक्तं तर्पणं ससितामधु ॥ १० ॥

१ द्विपथमुभयमार्गप्रवृत्तम् । २ अन्यदपतर्पणोत्थं रक्तपित्तं, दुर्बलस्या-  
ल्पदोषस्योर्ध्वगं शमनैरधोगं तु वृंहणेः । छद्मचवृहानवेक्ष्यचेति छद्मनादुत्पन्न-  
मग्नेशमपि शमनेः । वृहणादुत्पन्नमूर्ध्वगमपि छद्मनैरुपाचरेदित्यरुणदत्ताभिप्रायः ।  
३ निःशुण्ठीति शुण्ठीरहितं पङ्गोदकम् । ४ श्यामा वृष्णत्रिवृत् (निगोय) ।



मगितं वा ज्येष्ठं क्षीयुक्तं वा मधुर्गोदरम् ।  
क्षीरं वा ग्वादिनाभं,

मधपेयादि—

शुद्धस्वान्तरौ विधिः ॥ ११ ॥

मषास्त्रं ममपेयादिः प्रयोगो ग्राजा बभूव ।  
मधो ज्येष्ठोऽथ क्षीरादिः तिस्रध्वंसं कर्तुं कृताः ॥ १२ ॥  
मधुतर्जुंरमृद्वीरात्पश्यामिनाभगा ।  
मधो वा पंचमारेण मधुर्जुंरमृद्वगत्तुभिः ॥ १३ ॥  
दादिमामलनाम्नो वा मदात्म्यमृदाभिनाभिनाम् ।  
वमलांश्वलविज्रभगुनिनर्णाप्रियंगुराः ॥ १४ ॥  
उद्योर घावरं रोगं शृंगवेरं कुशदलम् ।  
ह्रीवेरं घातकीपुष्पं विन्तमर्ष्यं मुरालभा ॥ १५ ॥  
अर्षाभिर्वह्निना पेया कथ्यन्ति पादगीगिराः ।  
भूनिबभेदपजन्ददा मधुराः पृश्निगण्यवि ॥ १६ ॥  
विदारिण्या मुद्गगाश्च बला मनिहरेणुरा ।  
जोगलानि च मांमानि क्षीतवीर्याणि मापयेत् ॥ १७ ॥  
पृथक्पृथक्जने तेषां यवागूः कल्पयेद्भवे ।  
क्षीताः मयर्कराश्रीद्रास्तद्वर्मांतरमानपि ॥ १८ ॥  
दीपदम्भाननमृगान्वा घृतभृष्टान्मयर्करान् ।

रक्तपित्तेधान्यशाकादि—

शूकविधीभवं घान्यं रक्ते शाकं च दास्यते ॥ १९ ॥  
अन्नस्वरूपविज्ञाने यदुक्तं लघु क्षीतलम् ।

जलम्—

पूर्वोक्तमंबु पानीयं पंचमूलेन वा शृतम् ॥ २० ॥

१ मधुतर्जुनादि पञ्चरूपकेण पञ्चमारेण । २ पूर्वोक्तमम्बुपङ्कजं शूष्णी  
रहितं पानीयं पेयम् ।

लघुना शृतशीतं वा मध्वंभो वा <sup>१</sup>फलांबु वा ।

शशः सवास्तुकः शस्तो विबधे, तित्तिरिः पुनः ॥ २१ ॥

उदुंबरस्य नियूहे साधितो आस्तेऽधिके ।

<sup>१</sup>प्लक्षस्य वह्निस्तद्वन्वयोधस्य च कृक्कुटः ॥ २२ ॥

**निदानवर्जनम्—**

मत्किंचिद्रक्तपित्तस्य निदानं तच्च वर्जयेत् ।

**पानम्—**

वासारसेन कलिनी मृद्रोघ्रांजनमाशिकम् ॥ २३ ॥

पित्तासृक् क्षमयेत्पीतं निर्यासो वाऽऽरूपकात् ।

शर्करामधुमंयुक्तः केबलो वा शृतोऽपि वा ॥ २४ ॥

वृषः सद्यो जयत्यलं स ह्यस्य परमौषधम् ।

**त्रयःक्वाथाः—**

पटोलमालतीनिबर्चदनद्वयपञ्चकम् ॥ २५ ॥

रोध्रो वृषस्तंदुलीयः कृष्णामुन्मदयंतिका ।

शतावरो <sup>१</sup>गोषकन्या काकोत्थो मधुषष्टिका ॥ २६ ॥

रक्तपित्तहराः क्वाथास्त्रयः समधुशर्कराः ।

**पलाशत्वक्क्वाथः—**

पलाशत्वक्कवाथो वा सुशीतः शर्करान्वितः ॥ २७ ॥

पिवेद्वा मधुमपिभ्यां गवाश्वशत्रुतो रसम् ।

**प्रथितेरक्तपित्ते स्नेहः—**

सक्षौद्रं प्रथिते रक्ते लिह्यात्पारावतं शत्रुत् ॥ २८ ॥

**अतिश्रुते रुधिरपानम्—**

अतिनिःसृतरक्तश्च क्षौद्रेण रुधिरं पिबेत् ।

जंगलं भक्षयेद्वाजमामपित्तयुतं यष्टुत् ॥ २९ ॥

१ फलद्रोभादिभिः कृतं फलाम्बु । २ प्लक्षस्यनियूहे वह्निः मयूरस्तद्वन्वास्तेऽधिके । न्यग्रोधस्य च नियूहे कृक्कुटः । ३ गोषकन्या सारिका ।

## रक्तपित्तनाशकाः कषायाः—

चंदनीशोरजलदलाजमुद्गकणायवैः ।  
 बलाजले पर्णुपित्तैः कषायो रक्तपित्तहा ॥ ३० ॥  
 प्रसादश्चंदनांभोजसेव्यं मृदभृष्टलोष्टजः ।  
 सुशोतः ससिताक्षोदः शोणित्वातिप्रवृत्तिजित् ॥ ३१ ॥  
 आपोऽप्य वा नवे कुम्भे प्लावयेद्विभ्रुगंडिकाः ।  
 स्थितं तद्गुणमाकाशे रात्रि प्रातः शृतं जलम् ॥ ३२ ॥  
 गणुगन्धि<sup>१</sup>कसामोजहृतोत्तमं च तद्गुणम् ।

## ज्वरीयकषायाः—

ये च पित्तज्वरे चोक्ताः कषायास्ताश्च योजयेत् ॥ ३३ ॥

## छागपयश्चादेर्योजनाः—

कषायैर्विवर्धयेन्निर्दोषोऽग्नौ विजिते कफे ।  
 रक्तपित्तं न चेच्छाम्येत्तत्र वातोत्बणौ पयः ॥ ३४ ॥  
 शुज्याच्छागं शृतं तद्गुणं पंचगुणैश्चभि ।  
 पंचमूलेन लघुना शृतं वा समितामधु ॥ ३५ ॥  
 जीवकपंचमकद्राक्षाबलागोक्षुरनागरैः ।  
 पृथक्पृथक् शृतं क्षीरं सधृतं सितयाज्यवा ॥ ३६ ॥

## मेढ्रप्रवृत्तारक्तपित्तं चिकित्सा—

<sup>१</sup>गोर्कटकाभीरुशृतं पाणिनीभिस्तथा पयः ।  
 हृत्पाशु रक्तं सद्यं विशेषान्मूत्रमार्गम् ॥ ३७ ॥

## शुद्धमते चिकित्सा—

विष्णामगि विशेषेण हितं मोचरमेन तु ।  
 बटप्ररोहैः शृंगैर्वा चुन्दुदीन्योत्पलैरपि ॥ ३८ ॥

१ प्लावयेज्जले प्रक्षिपेत् । विक्काम्मोजहृतोत्तमं प्रफुल्लकमान्द्रप्रक्षेपयुक्तम् ।  
 २ गोक्षण्टोमोक्षुरः ।

रक्तान्तिसारदुर्नामचिकित्सां चाऽत्र कल्पयेत् ।

**भोजनादि—**

पीत्वा कपायान् पयसा भुञ्जीत पयसैव च ॥ ३६ ॥

कपाययोगैरेभिर्वा विषयत्वं पाययेद्भूतम् ।

**वासाघृतम्—**

समूलमस्तकं शुष्णं वृषमष्टगुणैर्जम्भि ॥ ४० ॥

पक्त्वाष्टाशावदोषेण घृतं तेन विपाचयेत् ।

पुष्पगर्भं च तच्छीतं सक्षीद्रं पित्तशोणितम् ॥ ४१ ॥

पित्तगुल्मज्वरश्चामकामहृद्गोत्रकामलाः ।

तिमिरभ्रमवीसर्पस्वरमादाश्च नाशयेन् ॥ ४२ ॥

**पलाशघृतम्—**

पलाशकुंतस्वरसं तदगर्भं च घृतं पचेत् ।

सक्षीद्रं तच्च रक्तज्जं तथैव त्रायमाणया ॥ ४३ ॥

**क्षारप्रयोगः—**

रक्ते मपिच्छे सकफे ग्रथिते कंठमागते ।

लिह्यान्माक्षिकमपिर्मर्वा क्षारमुत्पलनालजम् ॥ ४४ ॥

**लेहः—**

पृथक्पृथक् तथामोजरेणुश्यामामधूकजम् ।

**वस्तिः—**

गुदागमे विशेषेण शोणिते वस्तिरिष्यते ॥ ४५ ॥

**घ्राणगोरक्तपित्तोचिकित्सा—**

घ्राणगे रुधिरे शुद्धे नायनं चानुपेक्षयेत् ।

कपाययोगाम् पूर्वोक्तान् क्षीरेदवादिरमाप्नुतान् ॥ ४६ ॥

क्षीरादीन्सस्तितांस्तोयं केवलं वा जलं हितम् ।

रसो दाडिमपुष्पाणामाभ्योत्यः द्राङ्बलस्य वा ॥ ४७ ॥

प्रदेहादयः—

कल्पयेच्छीतवर्गं च प्रदेहाम्बुजनादिषु ।

अन्यदौषधम्—

यच्च पित्तज्वरे प्रोक्तं बहिरंतश्च भेषजम् ।

रक्तपित्ते हितं तच्च क्षतशोणे हितं च यत् ॥ ४८ ॥”



## तृतीयोऽध्यायः

अथाऽतः कासचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

कासे ( खांसी ) स्नेहाद्युपचारः—

“केवलानिलजं कासं स्नेहैरादावुपाचरेत् ।

धातुन्नसिद्धैः शिखीश्च पेयाग्रपरसादिभिः ॥ १ ॥

सिंहैर्धूमैस्तयाम्बुगैः स्वेदसेकावगाहनाः ।

वस्तिभिर्वद्विड्वातं सपित्तं त्वोर्ध्वभक्तिकैः ॥ २ ॥

घृतैः क्षीरैश्च सकर्षं जयेत्स्नेहविवेचनैः ।

गुडूच्यादिघृतम्—

गृद्धचीकटकारीभ्यां पृथक्त्रिशत्पलादसे ॥ ३ ॥

प्रस्थः मिदो घृताद्वातकामनुद्धह्निदीपनः ।

क्षारादिसिद्धंघृतम्—

क्षाररास्त्रावचाहिगुपाठयष्टचरह्णान्यकैः ॥ ४ ॥

द्विशार्णैः सर्पिषः प्रस्थं पंचकोलपुतैः पचेत् ।

रसप्रसूतस्य त्रिगुहे वीर्यो मंडलगुणधिनः ॥ ५ ॥

सकान्धामहृत्पार्श्वग्रहणीरोगगुल्मनुत् ।

### घृतविशेषः—

द्रोणेऽपः सायपेद्रास्नादशमूलघृतावरीः ॥ ६ ॥

पलोन्मिता द्विकुडवं कुलत्थं बदरं यवम् ।

तुलाधै चाजमांसस्य तेन साध्यं घृताढकम् ॥ ७ ॥

समक्षीरं पलांशंश्च जीवनीयैः समीक्ष्य सन् ।

प्रयुक्तं वातरोगेषु पाननावनवस्तिभिः ॥ ८ ॥

पंचकासान् घिरःकपं योनिबंधणवेदनाम् ।

सर्वागैकांगरोगांश्च सल्लीहोर्ध्वानिलान् जयेत् ॥ ९ ॥

### विद्यार्यादिघृतम्—

विद्यार्यादिगणकायवल्कसिद्धं च कामजित् ।

### अन्यद्घृतम्—

अशोकबीजक्षवकजंतुघ्नाजलपसकैः ॥ १० ॥

सविडंश्च घृतं सिद्धं तच्चूर्णं वा घृतप्लुतम् ।

लिह्यात्पयश्चानुपिवेदाजं कामाभिषोदितः ॥ ११ ॥

### विडंगादिचूर्णम्—

विडंगं नागर राज्ञा पिप्पली हिगुमंधवम् ।

भार्गी धारश्च तच्चूर्णं पिवेद्रा घृतमायया ॥ १२ ॥

सकफेऽनिलजे कासे श्वासहिम्माहृताग्निषु ।

### घातजेलेहादि—

दुरालभा शृंगवेरं घठी द्राक्षा मितोपलाम् ॥ १३ ॥

लिह्यात्कर्कटशृंगी च कासे तैलेन घातजे ।

दुस्पर्शा पिप्पली मुस्ता भार्गी कर्कटकी घठीम् ॥ १४ ॥

पुराणगुडतैलाभ्यां चूर्णितान्यवलेहयेत् ।

तद्वत्सगृष्णां घृतीं च सभार्गी तद्वदेव च ॥ १५ ॥

पिवेच्च गृष्णा कोष्णेन सलिलेन समेधवाम् ।

मस्तुना समितां घृठीं दध्ना वा कणरेणुकाम् ॥ १६ ॥

पिवेद्दरमञ्जो वा मदिरादधिमस्तुभिः ।

अथवा पिप्पलीकत्वं घृतभृष्टं मसैधवम् ॥ १७ ॥

### धूमपानम्—

कामो मर्षानमो धूमं स्नैहिकं विधिना पिवेत् ।

हिष्माण्वासोत्सुमुमांश्च क्षीरमाण्वासनः ॥ १८ ॥

### भोजनम्—

ग्राम्यान्पौदकैः शालियवगोधूमपष्टिकान् ।

रत्नैर्माषान्मगुप्तानां यूपैर्वा भोजयेद्वितान् ॥ १९ ॥

### पेया—

यवानीपिप्पलीवित्त्वमध्यनागरचित्रकैः ।

राक्षानाजीपृथक्पर्णोपलाद्यराठिषोष्करैः ॥ २० ॥

मिष्टां क्षिण्याम्नलवणां पेयामनिलजे पिवेत् ।

कटिहृत्पार्श्वकोष्ठातिश्वासहिष्माणप्रणाशनीम् ॥ २१ ॥

दशमूलरसे तद्वत् पचकोलगुडान्विताम् ।

पिवेत्पेषां नमतिला क्षीरेयी वा समैधवाम् ॥ २२ ॥

मातस्यकीकतुटवाराहैर्मर्षैर्वा भाज्यमैधवाम् ।

### शाकभक्षणम्—

वास्तुको वायसी धाकं कामधनः मुनिपण्णकः ॥ २३ ॥

कटकार्याः फलं पत्रं बालं शुष्कं च मूलकम् ।

स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेधुरसगीडिकाः ॥ २४ ॥

दधिमस्त्वारजालाम्लफलाद्युमदिराः पिवेत् ।

### पित्तकासचिकित्सा—

पित्तकासे तु सरुके धमनं मपिषा हितम् ॥ २५ ॥

तथा मदनकाशमर्यमधुक्कथितैर्जलैः ।

फलपष्ट्याह्वक्लृब्धा विदारोधुरसाप्नुतः ॥ २६ ॥

पित्तकासे तनुकफे त्रिवृता मधुरैर्युताम् ।  
 पुंज्याद्विरेकाय युता घनरलेप्मणि तित्कर्कः ॥ २७ ॥  
 हृतदोषो हिमं स्वादु स्निग्धं संसर्जनं भजेत् ।  
 घने कफे तु शिशिरं रुक्षं तित्तोपसंहितम् ॥ २८ ॥  
 लेहः पित्ते सिताधात्रीसौद्राक्षाहिमोत्पलैः ।  
 सकफे रसान्वमरिचः, सघृतः सानिले हितः ॥ २९ ॥  
 मूद्रीकार्धशतं त्रिशत्पिप्पलीः शर्करा पलम् ।  
 लेहयेन्मधुना गोर्वा क्षीरपस्य शबृद्धसम् ॥ ३० ॥  
 स्वर्गोलाभ्योपमूद्रीकापिप्पलीमूलपीप्परैः ।  
 लाजमुस्ताशठीरालाधात्रीफलबिभीतकैः ॥ ३१ ॥  
 शर्कराक्षौद्रसर्पिर्बिलेहो हृद्रोगकासहा ।  
 मधुरैर्जागिलरमैर्वयस्यामाककोद्रवाः ॥ ३२ ॥  
 मुद्गमाद्विमूषैः शर्कराश्च तित्कर्कैर्षण्ड्या त्विद्राः ।  
 घनरलेप्मणि लेहाश्च तित्तका मधुसंयुताः ॥ ३३ ॥  
 शालयः स्युस्तनुकफे पट्टिकाश्च रमादिभिः ।  
 शर्कराभोनुपानार्थं द्राक्षोन्म्वरसाः पयः ॥ ३४ ॥  
 काकोलीवृहतीमेदाद्वयं सवृपनागरैः ।  
 पित्तकासे रमक्षीरपेयामूपान् प्रकल्पयेत् ॥ ३५ ॥  
 द्राक्षा कणा पंचमूल तृणार्ष्यं च पचेज्जले ।  
 तेन क्षीरं शृतं क्षीतं पिबेत्समघृष्टशर्करम् ॥ ३६ ॥  
 साधिता तेन पेया वा मुशीता मधुनाऽम्बिताम् ।  
 शठीह्रीवैरवृहतीशर्कराविश्वभेषजम् ॥ ३७ ॥  
 पिष्ट्वा रक्तं पिबेत्पूतं वस्त्रेण घृतमूर्च्छितम् ।  
 शर्करां जीवकं मुद्गमापनर्ष्यां दुरालभाम् ॥ ३८ ॥  
 कल्कोकृत्य पचेत्सर्पिः क्षीरेणाष्टशुणेन तत् ।  
 पानभोजनलेहेषु प्रयुक्तं पित्तकामजित् ॥ ३९ ॥



लिह्याद्वा चूर्णमेतेषां कषायमथवा पिबेत् ।

### कफकासचिकित्सा—

कफकामीं पित्रेदादी मुरकाष्ठात्प्रदीपितात् ॥ ४० ॥  
 स्नेहं परिस्रुतं व्योष्यवधारावधूणितम् ।  
 स्निग्धं विरेचयेद्दूर्ध्वमधो मूर्ध्नि च युक्तितः ॥ ४१ ॥  
 तीक्ष्णो विरेकं बलिनं संमर्गो चास्य योजयेत् ।  
 यवमुद्गकुलत्याम्नैरुष्णहसैः कटूत्कटैः ॥ ४२ ॥  
 काममर्दकवार्ताकषाघ्नीक्षारकणान्वितैः ।  
 धान्मवैलरसैः श्लेहैस्तिलमर्पपनिबजैः ॥ ४३ ॥  
 दद्यान्मूलांबु घर्मांबु मर्चं मध्वंबु वा पिबेत् ।  
 मूलैः पोष्करधाम्याकपटोलैः संक्षिप्य निधाम् ॥ ४४ ॥  
 पित्रेदारि मह्योद्गं कालेष्वन्नस्य वा त्रिषु ।  
 पिप्पली पिप्पलीमूल शृंगवेरं विभीतकम् ॥ ४५ ॥  
 दिविक्षुषकुटपिच्छाना मपी क्षारो यवोद्भवः ।  
 विशाला पिप्पलीमूलं त्रिवृत्ता च मधुद्रवाः ॥ ४६ ॥  
 कफकासहरां लेहास्त्रयः श्लोक्ययोजिताः ।  
 मधुना मरिचं लिह्यान्मधुनैव च शृङ्गवम् ॥ ४७ ॥  
 पृथग्प्रसार्य च मधुना व्याघ्रीवार्ताकभृगजान् ।  
 कामघ्नस्याश्वघृततः मुरसस्यासितस्य च ॥ ४८ ॥  
 देवदारुगुठीरात्राकर्कटास्थानुदुरालभाः ।  
 पिप्पली नागरं मुस्तं पथ्या धात्रीसितोपला ॥ ४९ ॥  
 लाजा मितोपला सर्पिः शृङ्गी धात्रीफलोद्भवा ।  
 मधुतेलयुता लेहास्त्रयो वामानुगे कफे ॥ ५० ॥  
 पले दाडिमादण्टो गुडाद्व्योषात्पलत्रयम् ।  
 रोचनं दीपनं स्वयं पीनमश्वाम्यकासजिन् ॥ ५१ ॥

१ एतेषां चर्कराजीवकादीनाम् । २ मंमर्गपियादिर्ममर्गो । ३ वैलरसा  
 विलेचनरसाः । ४ जोङ्गवम् (अगर) । ५ कासघ्नं काममर्दः वमोदो हि० ।

गुडशारोपणकणादाडिमं श्वासकासजित् ।  
 क्रमात्पलद्वयापशकपाक्षार्धपलोन्मितम् ॥ ५२ ॥  
 पिवेज्ज्वरोक्तं पथ्यादि सशृंगीकं च पाचनम् ।  
 अथवा दीप्यकत्रिवृद्धिदालाघनपौष्करम् ॥ ५३ ॥  
 मक्कणं क्वथित मूत्रे कफकासी जलेऽपि वा ।  
 तैलघ्नष्टं च १ वैदेहीकल्काक्षं ससितोपलम् ॥ ५४ ॥  
 पाययेत्कफकासघ्नं कुलित्यसलिलाप्लुतम् ।

### घृतानि--

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्याशमनैः पचेत् ॥ ५५ ॥  
 पुष्कराह्वयठोचित्वमुरसाभ्योपहिगुभिः ।  
 पेयानुपानं तत्तमपिर्वातश्लेष्मामयापहम् ॥ ५६ ॥  
 निर्गुणोपनिर्वाससाधितं कासजिदघृतम् ।  
 घृतं रसे विडंगानां व्योपगर्भं च साधितम् ॥ ५७ ॥  
 पुनर्नवाशियाटिकासरलकासमर्दामृता-  
 पटोलयूहतीफणिजकरभैः पयःसंपुतैः ।  
 घृतं त्रिकटुना च सिद्धमुपयुज्य मंजायते ।  
 न कामविषमज्वरक्षयगुदांकुरेभ्यो भयम् ॥ ५८ ॥

### कण्टकारीघृतम्--

गमूलफलपत्रायाः कंटकारी रसाढके ।  
 घृतप्रस्थं बलाभ्योपविडंगशठिदाडिमैः ॥ ५९ ॥  
 सौवर्चलयवक्षारमूलामलकपौष्करैः ।  
 चृश्चोववृद्धीपथ्यायवानीचित्रकदिभिः ॥ ६० ॥  
 मृद्वोकाचव्यवर्षाम्भूदुरालंभाम्लवेतसैः ।  
 शृंगीतामलकीभार्गीरास्त्रागोशुरकैः पचेत् ॥ ६१ ॥

१ वैदेहीपिप्पली । २ शिवाटिका वंशपत्री इति शिवदास सेनः ।  
 श्वेतपुनर्नवा, शेफालिकेत्यन्ये, इति सुश्रुते द्रव्यहणः ।

कल्केस्तत्सर्वकासेषु श्नासहिष्मासु चेप्यते ।

ध्याघ्री लेहः—

पथेद्याघ्रीनुलां शुष्णां १ वह्नेऽग्रामाडकस्थिते ॥ ६२ ॥

क्षिपेत् पूते तु संचूर्ण्य व्योपराक्षामृताग्निहान् ।

शृंगभागीधनश्रंथिचन्वयासान् पलार्पकान् ॥ ६३ ॥

सपिपः फोड्यपलं चत्वारिंशत्पलानि च ।

मत्स्यंडिकामाः शुद्धायाः पुनश्च तदधिभवेत् ॥ ६४ ॥

दवीलेपिनि शीते च पृथक् द्विकुडवं क्षिपेत् ।

पिप्पलोना तवदीर्घा माक्षिकस्यानवस्य च ॥ ६५ ॥

लेहोऽयं गुल्महृद्रोगदुर्नामश्वासकासजित् ।

धूमाः—

शमनं च पिबेद्भूमं शोधनं बहुले कफे ॥ ६६ ॥

मनःशिलालमधुकमांसीभृस्तंशूरीत्वचः ।

धूमं कासघ्ननिधिना पीत्वा क्षीरं पिबेदनु ॥ ६७ ॥

निष्ठपूषाते गुडयुतं कोष्णं धूमो गिहति सः ।

वातश्लेष्मोत्तरान् कासानचिरेण चिरंतनान् ॥ ६८ ॥

समकः कफकासे तु स्याच्चेत्पित्तानुबंधनः ।

पित्तकासक्रिया तत्र यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ ६९ ॥

कफानुबंधे पवने कुर्यात्कफहरा क्रियाम् ।

पित्तानुबंधोर्वातकफयोः पित्तनाशनीम् ॥ ७० ॥

वातश्लेष्मात्मके शुष्के लिग्वं, चाद्रे विरुक्षणम् ।

कासे कर्म सपित्ते तु कफजे तित्तसयुतम् ॥ ७१ ॥

उरःक्षयचिकित्सा—

उरस्थंतःक्षते सद्यो लाक्षा दौद्रयुतां पिबेत् ।

क्षीरेण घालीन् जोर्णेऽद्यात्क्षीरेणैव ससर्करान् ॥ ७२ ॥

१ वह्ने चतुर्दशे । २ निष्ठपूषान्ते भूत्करणान्ते अनुपश्चात्कोष्णं क्षीरं  
गुडयुतं पिबेदित्यर्थः ।

पापर्वदस्तिमरूचालपित्ताग्निस्तान् सुरायुतान् ।  
 भिन्नघट्टकः समुस्तातिविपापाठां सवस्त्रकान् ॥ ७३ ॥  
 त्याधां सर्पिर्मधुच्छिष्टं जीवनोयं गणं मितम् ।  
 स्वक्क्षीरोमंमितं क्षीरे पक्त्वा दीप्तानलः पिबेत् ॥ ७४ ॥  
 १ इद्वालिकाविसर्पिपयकेसरचंदनः ।  
 शृतं पयो मधुयुत संधानार्यं क्षती पिबेत् ॥ ७५ ॥  
 मयानां चूर्णमामाना क्षीरे सिद्धं घृतान्वितम् ।  
 ज्वरदाहे सिताक्षीद्रसक्तृन्वा पयसा पिबेत् ॥ ७६ ॥  
 कासघांश्च पिबेत्सर्पिर्मधुरीषमसाधितम् ।  
 गुडोदकं वा कथितं सक्षीद्रमरिचं हिमम् ॥ ७७ ॥  
 चूर्णमाभलकानां वा क्षीरपक्वं घृतान्वितम् ।  
 रमायनविधानेन पिप्पलीर्वा प्रयोजयेत् ॥ ७८ ॥  
 कासी पक्षास्थिशूलौ च लिह्यात्सघृतमाक्षिकान् ।  
 मधूकमधुकद्राक्षास्वक्क्षीरीपिप्पलीबलान् ॥ ७९ ॥

### त्रिजाता ( एला ) दिवटी—

त्रिजाममर्धकषीतं पिताम्यमर्धपलं सिता ।  
 द्राक्षा गंधूयं खजूरं पलाशं श्लेष्मचूर्णितम् ॥ ८० ॥  
 मधुना गुटिका ध्नंति वा वृष्माः पित्तघोणितम् ।  
 कामश्यासाश्चिच्छादिमूच्छीहिष्मावमिभ्रमान् ॥ ८१ ॥  
 क्षतक्षयस्वरभ्रश्लीहशोफाढ्यमाह्वान् ।  
 रक्तनिक्षीबहृत्पार्श्वरुषिपपासाज्वरानपि ॥ ८२ ॥

### अन्य योगाः—

वर्षाभूशर्करारक्तशालितंदुलजं रजः ।  
 रक्तछीवीं पिबेत्सिद्धं द्राक्षारसपयोप्लुतः ॥ ८३ ॥  
 मधूकमधुस्क्षीरमिष्टं वा तंदुलीयवम् ।  
 मयास्वं मार्गविसृजे रक्ते बुयाच्च भेषजम् ॥ ८४ ॥

मूढवातस्त्वजाभेदः सुराभृष्टं ससैधवम् ।  
 शामः क्षीणस्तोरस्कः मंदनिद्रोऽग्निदीप्तिमान् ॥ ८५ ॥  
 शृतक्षीरमरेणाद्यात्सघृतक्षीदशर्करम् ।,  
 शर्करां यवगोधूमं जीवकर्पमकी मधु ॥ ८६ ॥  
 शृतक्षीरानुपानं वा लिह्यात्क्षीणः घृतः कृशः ।  
 १ क्रव्यात्पिशितनिर्व्यूहं घृतभृष्टं पिबेच्च सः ॥ ८७ ॥  
 पिप्पलीक्षीद्रमं युक्तं मांसद्योणितवर्धनम् ।,  
 म्यग्रोषोर्धुं वराश्वत्थप्लक्ष्मशालप्रियंगुभिः ॥ ८८ ॥ :-  
 २ तालमस्तकजंबूत्वक्प्रियालंश्च मपघर्कः ।  
 साश्वकर्णैः शृतात्क्षीरादद्याज्जातेन सर्पिषा ॥ ८९ ॥  
 दात्पयोदनं चतोरस्कः क्षीणशुक्रवर्लेन्द्रियः ।,  
 वातपित्तादित्तेऽभ्यंगो गान्धेदे घृतमर्मतः ॥ ९० ॥  
 तैलंश्चानिलरोगघ्नैः पीडिते मातरिक्षमा ।,  
 इरपार्श्वसिंधु पानं स्याज्जीवनीयस्य सर्पिषः ॥ ९१ ॥  
 कुर्म्याद्वा वातरोगघ्नं पित्तरक्ताविरोधि यत् ।,  
 यष्टपाह्नुनागवलयैः काये क्षीरसमे घृतम् ॥ ९२ ॥  
 पमस्यापिप्पलीवासीकल्कः सिद्धं चते हितम् ।,

अमृतप्राशोऽवलेहः—

जीवनीयो गणः घुंठी वरी १ वीरा पुनर्नवा ॥ ९३ ॥  
 यला भार्गो स्वगुप्ताह्वा घठी तामलकी कणा ।  
 शृंगाटकं पयस्या च पचमूल च यक्षधु ॥ ९४ ॥  
 द्राक्षाक्षौद्रादि च फल मधुरस्निग्धवृंहणम् ।  
 तैः पचेत्सर्पिषः प्रस्थं कर्पाशीः शृङ्गकल्कितैः ॥ ९५ ॥  
 क्षीरघात्रीविदारीशुष्कागमामरसान्वितम् ।  
 प्ररयाद्यै मधुनः शीते शर्करार्धतुल्यारजः ॥ ९६ ॥

१ गुरःमन्तानिका 'मजार्ड' । २ क्रव्यात् मामभक्षकः । ३ तालमस्तकं  
 तालफलम् । ४ वीरा-क्षीरकाफीलो ।

पलाधकं च मरिचं त्वमेलापत्रकेमरम् ।  
 विनीय नूणितं तस्माद्विह्वान्मात्रो यथावलम् ॥ ६७ ॥  
 अमृतप्राशमित्येतन्नराणाममृतं घृतम् ।  
 'मुधामृतम प्राश्यं क्षारमामरमाशिना ॥ ६८ ॥  
 नष्टसुक्ष्मतक्षीणदुर्बलव्याधिकंशितान् ।  
 स्त्रीप्रमत्तान् कृद्यान् वर्णस्वरहीनांश्च घृहयेत् ॥ ६९ ॥  
 कामहिष्माज्वरश्वामदाहमृष्णान्नपित्तनुत् ।  
 पुनरु छदिमूर्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम् ॥ १०० ॥

### घृतविशेषः—

श्वदघ्नोदीरमजिह्वाबलाकाशमर्यकतृणम्<sup>१</sup> ।  
 दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशपृथक् स्त्रियरा ॥ १०१ ॥  
 पालिकानि पचेत्तेषां रमे क्षीरचतुर्भुजे ।  
 कल्कैः स्वगुप्ताजीवन्तीभेदर्पभकजीवकी ॥ १०२ ॥  
 दातावर्याद्विमृद्वाकाशकंरश्मिषणोबिसैः ।  
 प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रोगशूलनुत् ॥ १०३ ॥  
 मूत्रवृक्षप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापह ।  
 धनुस्त्रीमद्यभाराध्वस्त्रिघ्नानां बलमामदः ॥ १०४ ॥

### समसक्तुघृतम्—

मधुकाष्ठपलद्राक्षाप्रस्थकाथे पचेद्घृतम् ।  
 पिप्पल्यष्टपले कल्के प्रस्थं सिद्धे च घृतले ॥ १०५ ॥  
 पृथगष्टपलं क्षौद्रशर्कराम्बा विमिश्रयेत् ।  
 समसक्तु दत्तक्षीणरक्तमुल्मेषु तद्धितम् ॥ १०६ ॥

### यक्ष्मादिहरं घृतम्—

धात्रीफलविदारिक्षुजीवनीभरमाद्घृतात् ।  
 गव्याजयोश्च पयसोः प्रस्थं प्रस्थं विपाचयेत् ॥ १०७ ॥

१ नागानाममरत्वकरी मुधा । देवानाममरत्वमग्नादकममृतम् । २ कतुणं मुग्धवृणम् ।

सिद्धपूते मिताक्षौद्रं द्विप्रस्थं विनयेत्ततः ।

यद्भापस्मारपित्तासृक्काममेहक्षयापहम् ॥ १०८ ॥

वयःस्थापनमागुप्यं मांसशुक्रबलप्रदम् ।

### घृतसेवनेप्रकारः—

घृतं तु पित्तेऽभ्यधिके लिङ्गाद्वाताधिके पिवेत् ॥ १०९ ॥

लीढं निर्वापयेत्पित्तमल्पत्वाद्धंसि नानलम् ।

आक्रामत्यनिल पीतमूत्रमाणं निरुणद्धि च ॥ ११० ॥

क्षामक्षीणकुशागानामेतान्येव घृतानि तु ।

त्वक्क्षोरीपिप्पलीलाजचूर्णेः पानानि योजयेत् ॥ १११ ॥

सर्पिर्गुडान्ममध्वंशाम् कृत्वा दद्यात्पयो गु च ।

रेतो वीर्यं बलं पुष्टिं तैराशुतरमाप्नुयात् ॥ ११२ ॥

### कूप्माण्डावलेहः—

वीर्यत्वगस्थिकूप्माण्डतुलां स्विघ्नां पुनः पचेत् ।

घट्टयन् सर्पिषः प्रस्थे क्षौद्रवर्णेऽत्र च क्षिपेत् ॥ ११३ ॥

मण्डाच्छत कणादुत्थोद्विपलं जीरकादपि ।

त्रिजातधान्यमरिचं पृथग्धूपलाघकम् ॥ ११४ ॥

अवतारितशीते च दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्धकम् ।

सजेनामध्यं च स्थाप्य तन्निर्हृत्युपयोजितम् ॥ ११५ ॥

कामहिष्माज्वरश्वामरक्तपित्तक्षतक्षयान् ।

उरःसंधानजननं मेधास्मृतिबलप्रदम् ॥ ११६ ॥

अश्विन्म्या विहितं ह्येष कूप्माण्डकरसायनम् ।

### नागबलादिप्रयोगः—

पित्रेन्नागबलामूलस्यार्धकर्पाभिर्वाचितम् ॥ ११७ ॥

पलं क्षीरयुतं मासं क्षीरबुत्तिरनघ्नशुक् ।

एष प्रयोगः शुष्टशामुर्वत्तवर्णकरः परम् ॥ ११८ ॥

मण्डूकपर्णः कल्पोऽयं यष्ट्या विश्वोपचम्य च ।

### नागबलाघृतम्—

पादशेषं जलद्रोणे पचेन्नागबलातुलाम् ॥ ११६ ॥  
 तेन क्वाथेन तुल्यांशं घृतं क्षीरेण पाचयेत् ।  
 पलाधिकं श्रातिबलाबलामष्टीपुनर्नवः ॥ १२० ॥  
 प्रपोहरीककाशमर्यात्रियालकपिकञ्जुभिः ।  
 अश्वगंधामिताभीरुमेदायुग्मत्रिकंटकैः ॥ १२१ ॥  
 काकोलीक्षीरकाकोलीक्षीरशुक्लाद्विजीरकैः ।  
 एतन्नागबलासपिः पित्तरक्तशतक्षयान् ॥ १२२ ॥  
 जयेत्तुङ्गमदाहाञ्च बलपुष्टिकरं परम् ।  
 वर्णमायुष्यमौजस्यं बलीपलितनाशनम् ॥ १२३ ॥  
 उपयुज्य च षण्मासान् बृद्धोऽपि तरुणायने ।

### दीप्ताग्नाचेतद्विध्यादि—

दीप्तेऽग्नौ विधिरेष स्यान्मदे दीपनपाचनः ॥ १२४ ॥  
 मन्मोक्तं क्षतिना नस्तौ, ग्राही क्षतृति तु द्वे ।

### अगस्त्यहरीतकी—

दशमूलं स्वयंगुप्ता शंखपुष्पी गठी यलाम् ॥ १२५ ॥  
 हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचिचकान् ।  
 भार्गो पुष्करमूलं च द्विपलाघान् यथाढकम् ॥ १२६ ॥  
 हरीतकीशतं चैकं जले पंचाढके पचेत् ।  
 यवस्विप्ने कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम् ॥ १२७ ॥  
 पचेद्गुडतुला दत्त्वा गुडवं च पृथग्वृतान् ।  
 तैलात्मपिप्पलीचूर्णात्सिद्धधीते च माशिकात् ॥ १२८ ॥  
 सेहं द्वे चाभये निन्यमतः खादेद्रमायनान् ।  
 तद्वलीपलितं हन्याद्रणयिर्बलवर्धनम् ॥ १२९ ॥

१ मण्डूकपर्णो ग्राहो । विश्वोपचं घृष्टी । २ कपिकञ्जुः 'कैवाच' ।



पञ्चकासान् क्षयं स्वामं सहिष्मं विषमज्वरम् ।  
मेहमुन्मप्रहृष्यशोहृद्भोगासुचिपीनसान् ॥ १३० ॥  
अगस्तिविहितं घन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ।

### वसिष्ठोक्तंरसायनम्—

दशमूलं बलां मूर्धा हस्त्रि पिण्णलीद्वयम् ॥ १३१ ॥  
पाठाश्वगंधादामार्गस्वगुप्तातिनिषामृतम् ।  
बालवित्त्वं त्रिवृद्धतोमूलं पत्रं च चित्रकात् ॥ १३२ ॥  
पयस्या कुटजं हिन्ना पुष्प सारं च योजकात् ।  
'बोटस्थविरभल्लातविकंरुतयत्तावरोः ॥ १३३ ॥  
पूर्वाकरंजघाम्याकचंदनैस्त्रासहाचरम् ।  
सीभाजनकनिवत्त्वगिशुरं च पलायकम् ॥ १३४ ॥  
पथ्यासहस्रं मशतं यवाना चाडकद्वयम् ।  
पचेदष्टगुणे ताये यवस्वेदेऽत्रतारयेत् ॥ १३५ ॥  
पूने क्षिपेत्सपथ्ये च तत्र जीर्णगुडात्तूलात् ।  
सैलाज्यघात्रीरमतः प्रस्थं ततः पुनः ॥ १३६ ॥  
अधिश्रयेन्मृदावशौ दर्वलिपेऽवताय च ।  
शीते प्रस्थद्वयं क्षौद्रात्पिप्पलीकुडवं क्षिपेत् ॥ १३७ ॥  
शूर्पांकृतं त्रिजाताञ्च त्रिपलं, निखनेततः ।  
धान्ये पुराणकुंमस्थं मातं, क्षादेच्च पूर्ववत् ॥ १३८ ॥  
रसायनं वसिष्ठोक्तमेतत्पूर्वगुणाधिकम् ।  
स्वस्थानो निगरोहारं मर्षतुं पु च शस्यते ॥ १३९ ॥

### चूर्णम्—

पालिकं मेषवं शुंठी द्वे च सोवर्चलात्तले ।  
कुडवाशानि वृश्मलं दाडिमं पत्रमार्जकम् ॥ १४० ॥

एकैकां भरिवाजाग्न्योर्धान्यकाद् द्वे चतुर्थिने ।  
 शर्करायाः पलान्यत्र दश द्वे च प्रदापयेत् ॥ १४१ ॥  
 कृत्वा चूर्णमतो मात्रामप्रपानेषु दापयेत् ।  
 रुच्यं तद्दोषनं बल्यं पार्श्वोत्थानकामजित् ॥ १४२ ॥

### खाण्डवप्रयोगः—

एको षोडशिकां घान्माद द्वे द्वे चाण्डजाजिदीप्यकात् ।  
 ताम्बां दाडिमवृक्षाम्लोद्भिः सौवर्चलात्पलम् ॥ १४३ ॥  
 शुण्ठ्याः कर्पं दधित्यस्य मध्यात्पंच पलानि च ।  
 तप्तचूर्णं षोडशपर्लः शर्कराया विमिश्रयेत् ॥ १४४ ॥  
 खाण्डवोऽयं प्रदेयः स्मादन्नपानेषु पूर्ववत् ।  
 विधिश्च यदमविहितो मयावस्थं चते हितः ॥ १४५ ॥  
 निवृत्तं दातदोमे तु कके कृद्धे उरः शिरः ।  
 दाभ्यते कामिनो यस्य स धूमानापिवेदिमान् ॥ १४६ ॥

### धूमाः—

द्विमेदाद्विबलामष्टीकल्कैः क्षौमे सुभाषिते ।  
 वर्ति कृत्वा त्रिवेदूर्मं जीवनीयघृतानुपः ॥ १४७ ॥  
 मनःशिलापलाशाजर्णधातृवक्षीरतामरैः ।  
 तद्वदेवाऽनुपानं तु शर्करेक्षुगुडोदकम् ॥ १४८ ॥  
 पिष्ट्वा मनःशिला तुल्यामार्द्रया वटशृंगया ।  
 सप्तपिण्डं त्रिवेदूर्मं तित्तिरिप्रतिभोजनम् ॥ १४९ ॥

### क्षयजकासचिकित्सा—

क्षयजे वृंहणं पूर्वं कुर्यादग्नेश्च वर्धनम् ।  
 बहुदोषाय सस्नेहं शृदु दद्याद्विरेचनम् ॥ १५० ॥

१ चतुर्थिका पलम् । २ षोडशिकाकर्पः । ताम्बां मिलिताम्यामजाजिदीप्य  
 काम्पा दाडिमवृक्षाम्लोद्भिः चतस्रः षोडशिका इत्यर्थस्तेनाष्टौरसं दाडिमस्याष्टौ  
 च वृक्षाम्लस्य ।

‘सम्प्राकेन त्रिवृतया मृद्रीकारमयुक्तया ।  
 सित्वकस्य कपायेण विदारीस्वरसेन च ॥ १५१ ॥  
 सतिः सिद्धं पिवेद्युक्त्या क्षीणदेहो विशोधनम् ।,  
 पित्ते कफे घातुषु च क्षीणेषु क्षयकामवान् ॥ १५२ ॥  
 घृत कर्कटकोक्षीरद्विवलासाधितं पिबेत् ।  
 ‘विदारीभिः बद्धैर्वा तालसस्यैश्च माधितम् ॥ १५३ ॥  
 घृतं पयश्च मूत्रस्य वैवर्धये कृच्छ्रनिर्गमे ।,  
 ‘शूने सवेदने मेढू पायी सश्रोणिबन्धने ॥ १५४ ॥  
 घृतमण्डेन लघुनाजुवास्यो मिथकेन वा ।,

### मांसप्रयोगः—

जागलैः प्रतिभुक्तस्य वर्तकाद्या विलेययाः ॥ १५५ ॥  
 प्रमचः प्रसहास्तद्वत्प्रयोग्याः पिशिताधिनः ।  
 क्षीणस्याप्रमाधिभावाच्च स्रोतोभ्यग्भ्यावयन्ति ते ॥ १५६ ॥  
 कर्क द्वादशैः पुष्टिं कुर्यात्सम्यग् बहन् रमः ।,

### चविकादिघृतम्—

चविकानिफलाभार्गोदशमूलैः सचित्रकैः ॥ १५७ ॥  
 कुलत्थपिप्पलीमूलपाठाकोलयवैर्बलि ।  
 शूर्तर्नागरदुःस्पर्शापिप्पलीघठिषौष्करैः ॥ १५८ ॥  
 पिष्टैः कर्कटशृङ्गा च मर्मैः सपिबिषाचयेत् ।  
 मिद्धैर्जस्मिभूनिती क्षारी द्वौ पंचलवणानि च ॥ १५९ ॥  
 दत्त्वा युक्त्या पिवेन्मात्रा क्षयकासनिषोदितः ।

### शोषादिहरं घृतम्—

कासमर्दामियामुस्तापाठाकट्फलनागटैः ॥ १६० ॥  
 पिप्पल्या कटुरोहिण्या काशमर्याः स्वरसेन च ।  
 अशमार्त्रघृतप्रस्थं क्षीरद्वाराग्राहके ॥ १६१ ॥

पथेच्छोपज्वरप्लीहसर्वकासहरं सिक्कम् ।  
 वृषप्याघ्नोगुह्वचोनां पत्रमूलफलान्कुरान् ॥ १६२ ॥  
 रमकल्कघृतं पक्वं हन्ति कामज्वरास्त्रीः ।

### १ भोजनोपरि घृतपानम्—

द्विगुणो दाडिमरसे सिद्धं वा व्योपसंयुतम् ॥ १६३ ॥  
 पिप्पेदुपरि भुक्तस्य यवक्षारघृतं नरः ।  
 पिप्पलीगुडसिद्धं वा छागक्षीरयुतं घृतम् ॥ १६४ ॥  
 एतान्यग्निविवृद्धघृतं सर्षपीपि क्षयकामिनाम् ।  
 स्युर्दोषत्रयकण्ठोरः श्रोतमा च विशुद्धये ॥ १६५ ॥

### लेहः—

प्रस्थोष्मिते यवववाधे विंशतिविजयाः पचेत् ।  
 स्विन्ना मृदित्वा तास्तस्मिन्पुराणात्पदपल गुडान् ॥ १६६ ॥  
 पिप्पल्या द्विपलं, कर्पं मनोह्वया, रमाजनात् ।  
 दत्त्वापार्श्वे पचेद्भूयः स लेहः श्वापकामनुत् ॥ १६७ ॥

### कासेसाधारण प्रयोगाः—

१ श्वाविषी गूचयो दग्धाः सघृतक्षीदशर्कराः ।  
 श्वासकासहरा, बहिषादौ वा मधुमपिपा ॥ १६८ ॥  
 एरंडपत्रक्षारं वा व्योपतैलगुडान्नितम् ।  
 लेहयेत् क्षारमेवं वा मुरमैरंडपत्रजम् ॥ १६९ ॥  
 लिह्यात् श्लेष्मणचूर्णं वा पुराणगुडमपिपा ।  
 पद्मकं त्रिफला व्योषं विडम् देवदारु च ॥ १७० ॥  
 बला राज्ञा च तच्चूर्णं समस्तं ममशर्करम् ।  
 सादेन्मधुघृताभ्यां च लिह्यात्कामहरं परम् ॥ १७१ ॥  
 तदग्निचूर्णं वा मघृतक्षीदशर्करम् ।

## चतुर्थोऽध्यायः

### श्वासहिष्मयोस्तुल्य चिकित्सितम्

अथाऽतः श्वासहिष्माचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

“श्वासहिष्मा यतस्तुल्यहेत्वाद्याः माधर्न ततः ॥ १ ॥

तुल्यमेव,

श्वासहिष्मयोः पूर्वं स्वेदप्रयोगः—

तदार्तं च पूर्वं स्वेदंरूपाचरेत् ।

ज्जिग्धैर्लवणतलाक्तं तैः क्षेपु प्रथितः कफः ॥ २ ॥

मुलीनोऽपि विलीनोऽस्य कोष्ठं प्रातः मुनिर्हरः ।

स्रोतमा स्यान्मृदुत्वं च मास्तस्यानुलोमता ॥ ३ ॥

भोजनादि—

१ दध्युत्तरेण वा दद्यात्ततोऽस्मै वमनं मृदु ॥ ४ ॥

विरोपात्कामवमयुद्दग्रहस्वरसादिने ।

पिप्पलीसैधवक्षीदयुक्त वाताविरोधि यत् ॥ ५ ॥

फफे निहृते सुखप्राप्त्यादि—

निहृतं मुखमाप्नोति राकफे दुष्टविग्रहे ।

स्रोतःसु च विमुद्धेषु चरत्यविहतोऽनिलः ॥ ६ ॥

हिङ्गुषादियुताग्नादि—

घ्नानोदावर्ततमके भातुलुंगाम्लवेतसैः ।

हिगुपीनुविट्युक्तमन्नं स्यादनुलोमनम् ॥ ७ ॥

समैष्वं कलाम्लं वा कोष्णं दद्याद्विरेचनम् ।

अत्रहेतुः—

‘एते हि कफसंस्दग्निप्राणप्रकोपजाः ॥ ८ ॥

तस्मात्तन्मार्गशुद्धयर्थमूर्ध्वावःशोधनं हितम् ।—

विशोधनकारणम्—

उदीर्यते भृशतरं मार्गरोधाद्बहज्जलम् ॥ ९ ॥

मथाऽनिलस्तथा तस्य मार्गस्तमाद्विशोधयेत् ।

धूमप्रयोगः—

अद्यातो वृत्तसंगुदेषूर्मूर्त्तिनं मलं हरेत् ॥ १० ॥

हरिद्रापत्रमेरुमूलं द्राक्षा मनःशिलाम् ।

मदेवदार्बलं मामो पिष्ट्वा वर्तितं प्रकल्पयेत् ॥ ११ ॥

ता घृताक्ता पिबेद्धूमं यवाग्वा घृतसंगुतान् ।

‘मधूच्छिष्टं सर्जरसं घृतं वा गुरु वाऽगुरु ॥ १२ ॥

श्वदनं वा तथा शृंग बालान्वा श्राववान्गवाम् ।

ऋक्षगोधाकुरंगैश्चर्मशृंगमुराणि वा ॥ १३ ॥

गुग्गुलं वा मनोह्वी वा क्षालनिर्यासमेव वा ।

क्षल्लकी गुग्गुलं लोहं पद्मकं वा घृतप्लुतम् ॥ १४ ॥

‘अवश्यं स्वेदनीयानामस्वेद्यानामपि क्षणम् ।

स्वेदाः—

स्वेदेत्ससिताक्षरीः मुखोष्णस्नेहमेघनीः ॥ १५ ॥

उत्पारिकोपनाहैश्च स्वेदाध्यायोक्तभेषजैः ।

उरः कंठं च धृदुभिः मामे स्वामविधिं चरेत् ॥ १६ ॥

१ एतेष्वामहिकारोगाः । २ मधूच्छिष्टं सर्जरसं घृतमेकोदृत्य धूमं पिबेत् ।  
वा अथवागुरुश्रेष्ठमगुरु कृष्णागुरु धूमं पिबेत् । ३ अस्वेद्यानां स्वेदनाऽनर्हणामपि  
हिक्काश्चामवतामवश्यं स्वेदनीयानां तत्कालं स्वेदनयोग्यानामुर आदिस्वेदयेत् ।

## उद्धनेवातेस्निग्धाहारादि—

अतिप्रागोद्धतं वातं दृष्ट्वा पवननाशनैः ।  
 स्निग्धं रगाद्यैर्ह्युष्णैरभ्यर्गञ्च शर्म नयेत् ॥ १७ ॥  
 अनुस्त्रिलघुक्फास्विप्रदुर्बलानां हि शोभनात् ।  
 वायुर्लब्धास्पदो भर्ममंशोप्याद्यु हरेदमून् ॥ १८ ॥  
 कपायलेहस्नेहाद्यंस्तेषां संशमयेदतः ।

## मधुरादिप्रयोगः—

क्षीणशतानि सारासुक्पित्ताहानुबन्धजान् ॥ १९ ॥  
 मधुरलिग्धशीताद्यैर्हिष्माश्वाभानुपाचरेत् ।  
 कुलपदशमूलानां काये स्युर्जागला रसाः ॥ २० ॥  
 मूपाश्च,

## येया—

शिशूवातां कफामघ्नकृपमूलकैः ।  
 पल्लवैर्निम्बकुलव्यूहतीक्ष्णानुगर्जः ॥ २१ ॥  
 व्याघ्रीदुरालभाभृङ्गीवित्त्वमध्यमिकटकैः ।  
 येया च विनकाजामीभृङ्गीमीर्षर्भं कृता ॥ २२ ॥  
 बधमूलेन वा कागश्वासहिष्माश्वापहा ।

## कपायपानादि—

दशमूलशठीरासाभार्गोविस्त्रिपुण्डरीकैः ॥ २३ ॥  
 कुलीरानुङ्गीचपलातामलक्यमूत्रोपयेः ।  
 पिवेत्कषायं जीर्णोऽस्मिन्नेषां तीरेव साधिताम् ॥ २४ ॥

## भोजनम्—

पालिपष्ठिकलोष्णमयवमुदगबुल्लत्थमुक् ।  
 कागहृद्दृषाश्वातिहिष्माश्वागप्रशांतये ॥ २५ ॥

मकत्तु वाऽनीकुरक्षीरमाचितानां ममाक्षिकान् ।  
 यवानां दशमूलादिभिः कायलुलितान् पिबेत् ॥ २६ ॥  
 अन्ने च योजयेत् क्षारं हिष्माग्यविददाडिमान् ।  
 मपीप्करक्षठोव्योपमातुनुंगाम्लवेतमान् ॥ २७ ॥

### स्वाथादि—

दशमूलस्य वा कायमयवा देवदारुणः ।  
 पिबेद्वा बारणीमहं हिष्माश्वानी पिषामितः ॥ २८ ॥

### सक्रप्रयोगः—

पिप्पलीपिप्पलीमूलपद्माजंतुन्नविमरीः ।  
 कल्कितैलेपिते<sup>१</sup> रुद्धे निःक्षिपेद् घृतभाजने ॥ २९ ॥  
 सक्रं मामन्वित तद्धि दीपनं श्वासकामजित् ।

### पाठादिकपानम्—

पाठां<sup>२</sup> मधुरसा दारु सरलं निधि संस्थितम् ॥ ३० ॥  
 मुरामहेऽल्पलवणं पिबेत्प्रसूतिसंमितम् ।  
 भार्गव<sup>३</sup> ल्यौ मुषांभोभिः क्षारं वा भरिषाम्बितम् ॥ ३१ ॥  
 स्वववायपिष्टां लुलिता<sup>४</sup> वाष्पिकां पाययेत् वा ।

### स्वरस प्रयोगः—

स्वरसः सप्तपर्णस्य पुष्पाणां वा क्षिरोपतः ॥ ३२ ॥  
 हिष्माश्वसे मधुकणायुक्तः पित्तकफानुगे ।

### उत्कारिकादियोजनम्—

उत्कारिका तुगावृष्णामधुलीघृतनागरः ॥ ३३ ॥  
 पित्तानुवधि योक्तव्या पक्वे त्वनुबन्धिनि ।  
 श्वाविच्छद्यामिपकणा घृतश्लेष्मकशोणितैः ॥ ३४ ॥

१ लुलितानालोडितान् । २ रुद्धे जुद्धे पिप्पल्यादिलेपे । ३ मधुरसा मूर्वा  
 द्राक्षा वा । ४ वाष्पिका हिङ्गुपथी “मैगरील” इति लोके ।



चतुर्गुणायुमिदं वा मयः समुडनामरम् ।

मुवर्चसादिसिद्धं वा तयोः शाल्योदनादनु ॥ ३५ ॥

लेहः—

पिप्पलीमूलमधुकुण्डगोश्वशतृद्धमान् ।

हिष्माभिष्यंदकासघ्नान् लिह्यान्मधुघृताश्वितान् ॥ ३६ ॥

अनेके प्रयोगाः—

गोगजाश्ववराहोष्ट्ररमेपाजविहरसम् ।

समध्वेकैकसो लिह्याद्बहुश्वेऽप्यवापिवेत् ॥ ३७ ॥

चतुष्पाच्चर्मरोमास्थितुरभृगोद्भवा मयीम् ।

तथैव वाजिगंधाया लिह्यात् श्वामी कक्षीत्यनः ॥ ३८ ॥

सर्था पुष्करधात्रीर्वा पोष्कन् वा कणाश्वितम् ।

गैरिकाजनकृष्णा वा श्वरसं वा कपित्थजम् ॥ ३९ ॥

रसेन वा कपित्थस्य धात्रीसैधवपिप्पलीः ।

घृतक्षौद्रेण वा पथ्याविडंगोपणपिप्पलीः ॥ ४० ॥

कोललाजामलद्राक्षापिप्पलीनागराणि वा ।

गुडतिलनिशाद्राक्षाफणागस्तोषणानि वा ॥ ४१ ॥

पिवेदमायुमद्याम्नैर्लहोपधरजाभि वा ।

जीवन्त्यादिकं चूर्णम्—

जीवन्तीमुस्तमुरतात्वमेलाद्रयषीष्करम् ॥ ४२ ॥

चंडातामलकीलोहभार्गीनागरयालकम् ।

कर्कटास्या दाढी कृष्णा नागकेसरचौरकम् ॥ ४३ ॥

उपयुक्तं यथाकामं चूर्णं त्रिगुणशर्करम् ।

पार्श्वगज्वरकासघ्नं हिष्माश्वामहरं परम् ॥ ४४ ॥

शठ्यादि चूर्णम्—

शठी तामलकी भार्गी चंडावालकपीष्करम् ।

धर्कराष्टगुणं चूर्णं हिष्माश्वामहरं परम् ॥ ४५ ॥

१ रजाणि चूर्णीनि । सेहोपमानि अगस्त्यादेरौषधानि । २ चण्डा चौरमुष्पी ।

## नस्य प्रयोगाः—

तुल्यं गुडं नागरं च भक्षयेत्सावयेत् वा ।  
 लघुनस्य पलांडोर्वा मूलं गृजनकस्य वा ॥ ४६ ॥  
 चंदनाद्वा रसं दद्यान्नारीक्षोरेण नावनम् ।  
 स्तन्येन मक्षिकाविष्टामलत्तकरसेन वा ॥ ४७ ॥

## घृतम्—

कणामौवर्चलशारवयस्याहिगुधोरकैः ।  
 सकायस्थंघृतं मस्तुदद्यमूलरसे पचेत् ॥ ४८ ॥  
 तत्पिबेज्जीवनीपैषो लिह्यात्समधुसाधितम् ।

## शाखानिलादिहरं घृतम्—

तेजोवर्धयया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी ॥ ४९ ॥  
 भूतिकं पीप्परं मूलं पलाशश्चित्रकः शठी ।  
 गदुद्वयं तामलकौ जीवन्ती बिल्वोदिका ॥ ५० ॥  
 यथा पत्रं च तालीसं कर्पाशस्तैर्विपाचयेत् ।  
 हिगुनादघृतप्रस्थं पीतमाधु निहति तत् ॥ ५१ ॥  
 शाखानिलाधोप्रहणीहिष्माहृत्पाशवंवेदनाः ।

## क्षारेणसर्पिष्पानादि—

अर्षादिन विवेत्सर्पिः क्षारेण पटुनाऽप्यवा ॥ ५२ ॥  
 धान्वतरं वृषघृतं दाधिकं हृषुपादि वा ।

## हिष्माश्वासयोर्दितविहाराः—

शीतानुतेकः गहमा प्रातश्चैषभीशुचः ॥ ५३ ॥  
 हर्षेप्योच्छ्वासमंरोषा हितं कीटैश्च दंशनम् ।

१ कावस्या—हरीतकी । २ तेजोवती “तेजवल” भूतिकंकटफलमयवासवानी ।  
 ३ सह्या कटिति यथा पूर्वशोताशुसेकादिकं न जानीयात् । प्रातश्चित्तोद्वेग-  
 वृत्तम् । विशेषोऽवधूतनम् । कीटैः पिपीलिकादिभिः ।

## सामान्वचिकित्सा--

यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णं वातानुलोमनम् ।

तत्मेघ्यं प्रायशो यच्च सुतरां मास्तापहम् ॥ ५४ ॥

हिष्माश्वासशमकरणे हेतुः--

सर्वेषां बृंहणे ह्यल्पः शक्यश्च प्रायशो भवेत् ।

नात्यर्थं क्षमनेऽप्यायो भृशोऽशक्यश्च कर्षणं ॥ ५५ ॥

क्षमनैर्बृंहणैश्चातो भूयिष्ठं तानुपाचरेत् ।

कासश्वासादीनां परस्परभेदजैरुपचारः--

कामश्वासशयच्छर्दिहिष्माश्चान्योन्यभेदजैः ॥ ५६ ॥

## पञ्चमोऽध्यायः ।

अथाऽतो राजयक्ष्मादिचिकित्सित व्याख्यास्यामः ।

यक्ष्मणः शोधनम्--

"बलिनी बहुदोषस्य लिग्यस्विन्नस्य शोधनम् ।

ऊर्ध्वाधो यक्ष्मणः कुर्यात्सस्नेहं यन्नं कर्षणम् ॥ १ ॥

वमनम्--

पयसा फलपुत्तेन मधुरेण रसेन वा ।

मर्निष्पत्त्या यवाद्या वा वमनद्रव्यसिद्धया ॥ २ ॥

१ सर्वेषां हिक्काश्वासार्तनां बृंहणं त्रियमाणेऽल्पोऽल्पोपायो हिक्कारोगः  
श्वासरोगश्च । किञ्चा बृंहणे त्रियमाणे योयोरोगः स्यादन्यरोगप्रादुर्भावो वा  
स्याद्देवशात्सोत्पः प्रायशो भवेत् तथा चक्षुः मुखमाच्यो भवेत् बृंहणजनितबलत्वात् ।  
क्षमने तु त्रियमाणेऽप्योऽत्यर्थं न, किंति हिक्काश्वासयोः क्षान्तिरेव शनैः शनैः  
स्यात् । कर्षणे त्रियमाणे तु यो रोगो जायेत मभृशो दुःसहोऽसक्त्योऽग्राध्यश्चेत्यर्थः ।

## स्रोतोविशोधनं मद्यम्—

पिवेच्च मुतरां मद्यं जीर्णं स्रोतोविशोधनम् ।  
 पित्तादिषु विशेषेण मघ्वरिष्टाः गवारुणीः ॥ १२ ॥  
 सिद्धं वा पंचमूलेन तामलक्याथवा जलम् ।  
 शर्णिनीभिश्चतसृभिर्घ्नान्यनागरकेण वा ॥ १३ ॥  
 कल्पयेच्चानुकूलोऽस्य तेनान्नं शुचिं यत्नवान् ।

## घृतप्रयोगः—

दशमूलेन पयसा मिद्धं मासरसेन वा ॥ १४ ॥  
 बलागर्भं घृतं योज्यं क्रव्यान्भामरमेन वा ।  
 सक्षौद्रं पयसा मिद्धं गर्पिर्दशगुणेन वा ॥ १५ ॥

## रोगराजहरं घृतम्—

जीवन्ती मधुकं द्राक्षा फलानि कुटजस्य च ।  
 पुष्कराह्नं दाठी वृष्णा व्याघ्री गोधुरक बलाम् ॥ १६ ॥  
 नीलोत्पलं तामलकी त्रायमाणा दुरालभाम् ।  
 कल्कीवृक्षं घृतं पक्कं रोगराजहरं परम् ॥ १७ ॥

## वैस्वर्यादिहरं घृतम्—

घृतं सर्जूरमृद्वीकामधुकैः मधुरूपकैः ।  
 मपिप्पलीकं वैस्वर्यकासश्वामज्वरापहम् ॥ १८ ॥

## पार्श्वशुलादिहरं घृतम्—

दशमूलशृताक्षीरात्मपियंदुदियान्नवम् ।  
 सर्पिप्पलीकं सक्षौद्रं तत्परं स्वरघोधनम् ॥ १९ ॥  
 शिरःपार्श्वमधुलघ्नं कामश्वामज्वरापहम् ।  
 पंचभिः पंचमूलैर्वा शृताद्यदुदियाद् घृतम् ॥ २० ॥

## पीनसादिनाशकं घृतम्—

पंचानां पंचमूलानां रगे क्षीरचतुर्गुणं ।  
 मिद्धं गर्पिर्जयत्येतच्चदिमणः नासकं बलम् ॥ २१ ॥

### स्रोतसांशुद्धिकरं पट्पलं घृतम्—

पंचशोलयवभारपट्पलेन पचेद् घृतम् ।

प्रस्थोन्मितं तुल्यपयः स्रोतसा तद्विघोषनम् ॥ २२ ॥

गुन्मज्वरोदरप्लीहग्रहणीपाण्डुपीनान् ।

द्वयामनासाग्निमदनश्वयभूर्ध्वानिन्दास्रयन् ॥ २३ ॥

### शोपजिद्धृतद्वयम्—

राम्नावलागोशुरकस्थिरावर्षाभ्रवारिणि ।

जीवन्तं पिण्णलंगमं मधोरं शोपजिद्धृतम् ॥ २४ ॥

अश्वगंधाच्छूतात्साराद् घृतं च समितापयः ।

### मांसघृतं वातपित्तामयापहम्—

साधारणामिपतुला तोवक्षोणद्वये पचेद् ॥ २५ ॥

तेनाष्टभागमेवेण जीवनीयैः पलोन्मितैः ।

मांसयेस्मर्पिषः प्रस्थं वातपित्तामयापहम् ॥ २६ ॥

मांसमपिरिदं पीतं युक्तं मासरसेन वा ।

कामश्वासस्वरभ्रंशशोषहृत्पाश्वशूलजिन् ॥ २७ ॥

### घृतयुक्तो लेहः—

एलाजमोदात्रिफलामोराष्ट्रीभ्योपचित्रकान् ।

मारानरिष्टगायत्रीशालबीजकसभवान् ॥ २८ ॥

भस्मातर्कं विडंगं च पृथगष्टपलोन्मितम् ।

सलिले षोडशाशुने षोडशांशस्थिते पचेत् ॥ २९ ॥

पुनस्तेन घृतप्रस्थं मिदं चास्मिन्पलानि षट् ।

तत्रशीर्षाः, क्षिपेन्निगल्मिताया, द्विगुणं मधु ॥ ३० ॥

घृतान्निजात्ताञ्जिपलं ततो लीढं सजाहृतम् ।

पयोनुपानं तत्प्राहस्ये रमायनमयंत्रणम् ॥ ३१ ॥

मेघ्यं चभुप्यमापुप्यं दीपनं हति चाचिरात् ।

मेहगुल्मक्षयव्याधिपादुरोगभगंदरात् ॥ ३२ ॥

क्षयेक्षतसम्बन्धिसर्पिर्गुहाः—

मे च सर्पिर्गुहाः प्रोक्ताः क्षते योज्याः क्षयेऽपि ते ।

त्वगेलादयः स्वर्याः—

त्वगेलापिप्पलीक्षीरीक्षर्कराद्विगुणाः क्रमात् ॥ ३३ ॥

चूर्णिता भक्षिताः क्षीद्रमपिपा चाऽप्यले हिताः ।

स्वयीः कामदायश्वामपार्श्वएककफनाशनाः ॥ ३४ ॥

नस्यधूमादि—

विशेषास्त्वरमादेऽस्य नस्यधूमादि योजयेत् ।

औत्तरभक्तिर्घृतम्—

तत्राऽपि वातजे कोष्णं पिवेदौत्तरभक्तिम् ॥ ३५ ॥

काममर्दकवार्ताक्रोमार्कवम्बरसैर्घृतम् ।

साधितं कासजित्स्वर्यं सिद्धमार्तगलेन वा ॥ ३६ ॥

घदरीपत्रकल्कः—

बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैधवम् ।

नस्यं तैलम्—

सैलं वा मधुकं द्राक्षापिप्पलीकृमिनुत्फलैः ॥ ३७ ॥

हृमपाद्याश्च मूलेन पक्वं नस्तौ निपेचयेत् ।

अनुपानाशनम्—

गुणोदकानुपानं च सप्तपिप्कं गुडीदनम् ॥ ३८ ॥

अशनीयात्पायसं चैवं स्निग्ध स्वेदं नियोजयेत् ।

पित्तोद्भवेसमाक्षिकसर्पिः—

पित्तोद्भवे पिवेत्सर्पिः शृतशीतपयोनुपः ॥ ३९ ॥

क्षौरिवृक्षानुरक्तायनन्कगिद्धं ममाशिकम् ।

अश्वोपान्नं गमयिष्ये मष्टीमिमुकनायनम् ॥ ४० ॥

### सर्पिनंस्यम्—

यत्साविदारिगंचाम्नां विदार्या मधुरेण च ।

मिद्धं गलवर्णं सर्पिनंस्यं स्वर्धमनुत्तमम् ॥ ४१ ॥

प्रवीडरोक्तं मधुकं निपल्लो बृहतो यत्ना ।

माधितं क्षौरमपिश्च तस्त्वेव नायनं परम् ॥ ४२ ॥

लिह्यान्मधुरकाणां च वर्णं मधुपृष्ठाप्लुतम् ।

पिवेत्तदूनि मूत्रेण वफने रुक्षभोजनः ॥ ४३ ॥

कटुकलामलकज्योषं लिह्यात्तलमधुप्लुतम् ।

व्योपश्माराग्निवविकाभार्गोप्य्यामथूनि वा ॥ ४४ ॥

मर्वयंवाग्ं यमके कणापात्रीकृता पिवेत् ।

भुक्त्वाद्यात्पिप्पली क्षुण्ठी क्षौद्रं वा वमनं भजेत् ॥ ४५ ॥

चर्कराक्षौद्रमिश्राणि शृत्तानि मधुरैः सह ।

पिवेत्पयामि यस्योर्ज्वरं वदतोऽभिहतः स्वरः ॥ ४६ ॥

### अरुचौचिकिस्त्रितम्—

त्रिविन्नमन्नमरुचौ हितैरपहितं द्वित्रम् ।

बहिरंतमृजा<sup>१</sup> चित्तनिर्वाणं हृद्यमोषयम् ॥ ४७ ॥

द्रो कालो दंतघवन भक्षयेन्मुखघावनैः ।

कषायैः क्षालयेदास्थं धूमं<sup>२</sup> प्रायोगिकं पिवेत् ॥ ४८ ॥

तालोमचूर्णवटकाः सक्पूर्वमितोयलाः ।

शशांककिरणारुचाश्च मध्या रुचिकरा भृशम् ॥ ४९ ॥

घातादुरोचके तत्र पिवेच्चूर्णं प्रसन्नपा ।

हरेणुवृष्णाकृमिजिह्वा द्राक्षासैधवनागरात् ॥ ५० ॥

१ मृजा कृद्धिः । चित्तनिर्वाणं चित्तशान्तिः । २ प्रायोगिकं स्नेहिकं धूमम् ।

एलाभार्गीयवक्षारहिगुयुक्तघृतेन वा ।

छर्दयेद्वा वचांभोगिः,

पित्ताच्च गुडवारिभिः ॥ ५१ ॥

लिह्याद्वा शर्करासर्पिलंबणोत्तममासिकम् ।

कफादमेनिवजलैर्दीप्यकारम्बधोदकम् ॥ ५२ ॥

पानं ममच्चरिष्टाश्च तीक्ष्णाः समधुमाधवाः ।

पियेचनूर्णं च पूर्वोक्तं हरेण्वाद्युष्णवारिणा ॥ ५३ ॥

**एलादि चूर्णम्—**

एलाखड्गनागकुसुमतीक्ष्णैर्बृण्णामहोपधम् ।

भागवृद्ध क्रमाञ्चूर्णं निहति समशर्करम् ॥ ५४ ॥

प्रसेकारुचिहृत्पार्श्वकासश्वासगलामयाम् ।

**यवान्यादि चूर्णम्—**

यवानीतित्तिडोकाम्लवेतसीपत्रदाडिमम् ॥ ५५ ॥

नृत्वा कालं च कर्पाशं सितायाश्च चतुष्पलम् ।

धान्यमीवर्चलाजाजीवरागं चार्धकापिकम् ॥ ५६ ॥

पिप्पलीना द्युतं चैकं द्वे द्युते मरिचस्य च ।

चूर्णमेतत्परं रुच्यं ग्राहि हृद्यं हितस्ति च ॥ ५७ ॥

विबन्धकासहृत्पार्श्वग्लोहाघोषहृणीगदान् ।

**तालीसादि चूर्णम्—**

तालीमपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली कणा ॥ ५८ ॥

मधोत्तरं भगवृद्धया त्वगेति चार्धभागिके ।

तद्द्वयं दीपनं चूर्णं कणाष्टगुणशर्करम् ॥ ५९ ॥

कासश्वासाखिच्छदिल्लीहहृत्पार्श्वशूलनुत् ।

पांडुज्वरातिमारुघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ ६० ॥



## प्रसेकचिकित्सा—

अकामृताक्षीरजले सार्वरीमुपित्तैर्वहैः ।  
 प्रसेके कस्मिपतान्सक्तून् भद्रमांश्चाद्याद्बली वमेत् ॥ ६१ ॥  
 कटुतिक्तैस्तथा शूल्यं भद्रपेज्जायलं पलम् ।  
 शुष्कांश्च भक्ष्यान् मूलधूश्चणकादिरसानुपः ॥ ६२ ॥  
 श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेन वायुः श्लेष्माणमस्यति ।  
 कफप्रसेकं तं विद्वान्निग्धोष्णैरेव निजयेत् ॥ ६३ ॥  
 पीनसेऽपि क्रममिमं वमयौ च प्रयोजयेत् ।  
 विदोपात्पीनसेऽभ्यगान् स्नेहस्वेदाश्च घोलयेत् ॥ ६४ ॥  
 स्निग्धानुत्कारिकापिष्टैः धिरःपार्श्वगलादिषु ।  
 लवणाम्लकटूष्णाश्च शमान् स्नेहोपसंहितान् ॥ ६५ ॥  
 धिरौमपार्श्वशूलेषु यथादोषविधिं धरेत् ।  
 औदकानूपपिधितैरपनाहाः सुमंस्तृप्ताः ॥ ६६ ॥  
 तत्रैष्टाः सचतुःस्नेहाः,

दोषमर्मगं इष्यते ।

प्रलेपो नतमष्टघाह्वयताह्वाकुष्ठचन्दनैः ॥ ६७ ॥  
 बलारात्राविलैस्ताद्रस्तसर्पिर्मधुकोत्पलैः ।  
 पुनर्नवावृष्णमर्घावलावीराविदारिभिः ॥ ६८ ॥  
 नावन घूमपानानि स्नेहाश्रीतरभक्तिकाः ।  
 तैलाग्न्यभ्यंगयोगौनि शक्तिर्म तथा परम् ॥ ६९ ॥  
 शृंगाद्यैर्वा यथादोषं दुष्टमेषां हृग्दसृक् ।  
 प्रदेहः सघूर्तः श्रेष्ठः पद्मकोशीरचन्दनैः ॥ ७० ॥  
 ह्र्वामधुकर्मजिष्ठाकेमरीर्वा शृतप्नुतैः ।  
 वटादिसिद्धतैलेन शतधीतेन सर्पिषा ॥ ७१ ॥  
 अभ्यंगः पयसा सेकः शस्तश्च मधुकांशुना ।  
 प्रायेणोपहृत्वाग्निस्त्रास्यपिच्छमस्तिस्तर्प्यते ॥ ७२ ॥

तस्यातिसारग्रहणीविहितं हितमौषधम् ।

यक्षिमणः पुरीपरक्षणकार्यम्—

पुरीषं यत्नतो रक्षेच्छुष्यतो राजयक्षिमणः ॥ ७३ ॥

सर्वधातुक्षयार्तस्य बलं तस्य हि विट्बलम् ।

मांसमेवाशनतो युवत्या मार्द्विकं पिवतोऽनु च ॥ ७४ ॥

अविधारितवेगस्य यक्ष्मा न लभतेऽन्तरम् ।

मुरां समंशं मार्द्विकमरिष्टान्सीधुमाधवान् ॥ ७५ ॥

ययार्हमनुपानार्थं पिवेन्मांसानि भक्षयन् ।

स्रोतोविबधमोक्षार्थं बलीजःपुष्टये च तत् ॥ ७६ ॥

स्नेहक्षीरांशुकोष्ठेषु स्वम्यक्तमवगाहयेत् ।

उत्तीर्णं मिश्रकैः स्नेहेभ्योऽभ्यक्तं मुखैः करैः ॥ ७७ ॥

मृदनीयात्सुखमासीनं सुखं चोद्धर्तयेत्परम् ।

उद्धर्तनम्—

जीवन्ती क्षतवीर्या च विकृता सपुनर्नयाम् ॥ ७८ ॥

अश्वगंधामपामार्गं तर्कारी मधुक बलाम् ।

विदारो मर्षपान् कुष्ठं तंडुलानतसीफलम् ॥ ७९ ॥

मायास्तिलांश्च किण्व च सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।

यवचूर्णं त्रिगुणितं दध्ना युक्तं समाक्षिपम् ॥ ८० ॥

एतदुद्धर्तनं कार्यं पुष्टिवर्णबलप्रदम् ।

स्नानादीनि—

गौरमर्षपक्त्वेन स्नानीयोपधिमिश्र सः ॥ ८१ ॥

स्नामादनुमुखैस्तोर्यर्जविनीयोपसाधितैः ।

गंधमाल्यादिकंभूपामलक्ष्मीनाशनो भजेत् ॥ ८२ ॥

गुह्वां दर्शनं गोतवादिश्रोत्रवमश्रुतिः ।

वस्तयः क्षीरसर्षीपि मद्यमांसमुशीलता ॥ ८३ ॥

दैवव्यापात्र्यं तत्तदयवोक्तं च पूजितम् ।”

## षष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽतद्वद्विहृद्रोगवृण्णाचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

छर्दिपुलंघनादि—

“आमाशयोत्प्लेघभवाः प्रायश्छर्द्यो हितं ततः ।  
लंघनं प्रागृते वायोर्वमनं <sup>१</sup>तत्र योजयेत् ॥ १ ॥  
बलिनो बहुदोषस्य वमतः प्रतप्तं बहु ।  
ततो विरेकं क्रमशो ह्यथ मर्द्यैः फलादिभिः ॥ २ ॥  
क्षीरैर्वा सह स<sup>२</sup> ह्यूर्ध्वं गतं दोषं नयत्यथः ।  
शमनं चोपर्य<sup>३</sup> रक्षदुर्बलस्य तदेव<sup>४</sup> तु ॥ ३ ॥

अन्नादि—

परिसृष्टं त्रिषं सात्म्यमर्न्नं लघु च शम्यते ।  
उपवासस्तथा मूषा रसाः <sup>५</sup>काबलिकाः खलाः ॥ ४ ॥  
द्याकानि सेहभोज्यानि रागखाद्वपानकाः ।  
भक्ष्याः दाण्का विचित्राश्च फलानि <sup>६</sup>क्षानघर्षणम् ॥ ५ ॥  
गंधाः मुग्धमो गंधफलपुष्पान्नपानजाः ।  
भुक्तप्रात्रस्य सहसा मृधे दीतावुत्तेजनम् ॥ ६ ॥

वातजहृदिचिकित्सा—

हृदि मास्तत्रां छर्दिं सविः पीतं सनेधवम् ।  
विचिदुष्णं विशेषेण गगनसहृदयद्रवाम् ॥ ७ ॥

१ तत्र छर्दिपुलङ्घने कृतेऽप्यनुपशान्तवेगामु वमनं योजयेदित्यर्थः । २ स विरेकः । ३ तदेव शमनमेव । ४ काबलिको मूलकतिलवल्कान्तरप्रायः । खलः फलैः कृतः । ५ घर्षणमृद्धर्षनादिरूपेण ।

व्योपत्रिलमणाद्यं वा मिद्धं वा दाडिमांनुना ।  
 सशुंठीदधिधान्येन शृतं, नुत्यांबु वा पयः ॥ ८ ॥  
 व्यक्तसैषवसर्पिर्वा फलाम्लो वैष्किरो रसः ।  
 म्लिग्धं च भोजनं शुंठीदधिदाडिमभाधितम् ॥ ९ ॥  
 कोष्णं सलवणं चात्र हितं स्नेहविरेचनम् ।

### पित्तजलद्विचिकित्सा—

पित्तजाया विरेकार्थं द्राक्षेभुस्यरसंस्त्रिवृत् ॥ १० ॥  
 मपिर्वा तैत्त्वकं योज्यं वृद्धं च श्लेष्मणामगम् ।  
 ऊर्ध्वमेव हरेत् पित्तं स्वादुतिर्त्तंविशुद्धिमान् ॥ ११ ॥  
 पिवेन्मधं यवागू वा लाजैः समधुसर्कराम् ।  
 मुद्गजागलजैरद्याद्वयंजनैश्चालिपष्टिकम् ॥ १२ ॥  
 मूदभृष्टलोष्टप्रभवं मुषोत सलिलं पिवेत् ।  
 मुद्गगोक्षीरकणायान्यैः सह वा मंस्थितं निशाम् ॥ १३ ॥  
 द्राक्षारस रमं वेक्षोगुहृष्यधुपपोऽपि वा ।  
 जम्बाअपल्लवोक्षीरवटशृगावरोहजः ॥ १४ ॥  
 काथः क्षौद्रयुतः पीतः क्षीतो वा विनियच्छति ।  
 छर्दिं ज्वरगतीभारं मूर्छां तृष्णां च दुर्जयाम् ॥ १५ ॥  
 पात्रीरसेन वा क्षीतं पिवेन्मुद्गदलानु वा ।  
 नीलमजसितालाजामक्षिकाविट्कणाजनम् ॥ १६ ॥  
 लिङ्गाक्षीद्रेण पश्मा वा द्राक्षा वा वदराणि पा ।

### कफजलद्विचिकित्सा—

कफजाया वभेभ्रिवतृष्णापिडिरमर्पणैः ॥ १७ ॥  
 युतं कोष्णतोयेन दुर्बलं चोपवासयेत् ।  
 आरब्धवादिनिर्गृहं क्षीतं क्षौद्रयुतं पिवेत् ॥ १८ ॥  
 मथान्यवैर्वा बहुशश्छर्त्तव्योपवभाविर्तः ।  
 कफघ्नमन्नं हृद्यं च रागाः सार्जकभूस्तृणाः ॥ १९ ॥

१ सव्योपेति दाडिमेति सशुंठीति च मपिरित्यस्य विशेषणम् । २ पिडिरं  
 मदनफलम् ।

लोढं मनःशिलागृष्णामरिचं बीजपूरकात ।  
 स्वरसेन कपित्वाच्च मक्षौद्रेण वमि जयेत् ॥ २० ॥  
 खादेत्कपित्थं मव्योषं मधुना वा दुरालभाम् ।

आगन्तुछर्दिचिकित्सा—

अनुकूलोपचारेण याति द्विप्रार्धजा शमम् ॥ २१ ॥

कृमिजछर्दिचिकित्सा—

कृमिजा कृमिहृद्रोगगदितैश्च भिषग्जनैः ।  
 यथास्वं परिदोषाश्च तत्पृताश्च तयामयाः ॥ २२ ॥

छर्दिरेङ्गेस्तम्भनकृंहणं—

छर्दिप्रसंगेन हि पातरिष्या  
 पातुक्षयात्कोपमुपैत्यवश्यम् ।  
 कुर्यादितोऽस्मिन् वमनातिशय-  
 प्रोक्तं विधिं स्तम्भनवृंहणीयम् ॥ २३ ॥  
 मपिर्गुहा मामरमा घृतानि  
 कल्याणकश्यापजजीवनानि ।  
 पयासि पथ्योपहितानि लेहा-  
 शर्दिं प्रसक्ता प्रथमं नयन्ति ॥ २४ ॥

हृद्रोगचिकित्सारम्भः ।

वातजहृद्रोगचिकित्सा—

हृद्रोगे वातजे तैलं मस्तुमीवीरतत्रवत् ।  
 भिवेत्मुखोष्णं मविडं गुल्मानाहार्तिजिह्व तन् ॥ २५ ॥  
 तैलं च लवणैः मिदं समूत्राम्लं तयागुणम् ।  
 बिल्वं रास्नां यषान्कोलं देवदारुं पुनर्नवाम् ॥ २६ ॥

कुलत्थान्पंचमूलं च पक्त्वा तस्मिन्पत्रेजने ।  
 तैलं तद्भावेन पाने वस्तौ च विनियोजयेत् ॥ २७ ॥  
 'शु'ठीवयस्थालवणकायस्थाहिगुपीष्करः ।  
 पथ्याया च शृतं पार्श्वहृद्रुजागुल्मजिद् घृतम् ॥ २८ ॥  
 सीवर्चलस्य द्विपले पथ्यापंचानदन्विते ।  
 घृतस्य साधितः प्रस्यो हृद्रोगश्वासगुल्मजित् ॥ २९ ॥  
 पुष्कराह्वणठीखु'ठीबीजपूरजटाभयाः ।  
 पीताः कल्कीशृङ्गाः क्षारघृताम्ललवणैर्युताः ॥ ३० ॥  
 विकर्तिकाशूलहराः कायः कोष्णश्च तदगुणः ।  
 यथानीलवणक्षारवचाजाग्यौषधैः शृतः ॥ ३१ ॥  
 पूर्तीकदाहबीजाह्वविजयाशठिपीष्करः ।  
 पंचकोलशठीपथ्यागुडबीजाह्वपीष्करम् ॥ ३२ ॥  
 दारुणीकान्कित भृष्ट यमके लवणाश्विनम् ।  
 हृत्पार्श्वयोनिमूलेषु सादेद्गुल्मोदरेषु च ॥ ३३ ॥  
 क्षिग्धाभ्रेह हिताः स्वेदाः संसृतानि घृतानि च ।  
 लघुना पचमूलेन शु'ठ्या वा गाभितं जलम् ॥ ३४ ॥  
 दारुणीदधिमंडं वा धान्याम्लं वा पिवेत्तृपि ।  
 सामामस्तंभशूलामे हृदि मारुतदूषिते ॥ ३५ ॥  
 क्रियेया सद्रवामामप्रमोहे तु हिता रसाः ।  
 स्नेहाद्यास्तित्तिरिक्तीचशिलिवर्तकश्चक्षुः ॥ ३६ ॥  
 बटातैलं सहृद्रोगः पिवेद्वा 'मुकुमारकम् ।  
 गण्ड्याह्वशतपाकं वा महास्नेहं तथोत्तमम् ॥ ३७ ॥  
 राक्षजीवकजीवतीबलाव्याघ्रीपुनर्नवः ।  
 मागीस्थिरावचाव्योषैर्महास्नेहं विपानयेत् ॥ ३८ ॥

१ वयस्था ब्राह्मी, आमलकी गुह्वरी वा । कायस्था—आमलकी ।  
 'कायस्था तु हरीतक्यामलवयोश्च प्रतीतिता' इतिरभयः । २ मुकुमारकं घृतं  
 प्रमेहोक्तम् ।

दधिपादं तथाम्लंश्च लाभतः न निपेक्षितः ।  
 तर्पणो बृहणो बल्यो घातहृद्रोगनाशनः ॥ ३८ ॥  
 दीप्तेऽग्नी मद्रवायाभे हृद्रोगे बानिके हितम् ।  
 क्षीरं दधि गुडः सर्पिरीदकानूपमामिषम् ॥ ४० ॥  
 एतान्येव च वर्ज्यानि हृद्रोगेषु चतुर्ष्वपि ।  
 शेषेषु, स्तंभजाड्यामसंयुक्तेष्वपि च बानिके ॥ ४१ ॥  
 फकानुबन्धे तस्मिन्स्तु रशोण्यामाचरेन्त्रियाम् ।

### पित्तजहृद्रोगचिकित्सा—

पैतं द्राक्षेभुनिर्यानिताशोद्वरूपकः ॥ ४२ ॥  
 युक्तो विरेकी हृद्यः स्यात्त्रमः शुद्धे च पित्ता ।  
 क्षतपित्तग्वरोक्तं च बाह्यातःपरिमार्जनम् ॥ ४३ ॥  
 कट्योमधुककत्कं च पिप्पेत्समिनर्मभगा ।  
 श्रेयमीश्वरंराद्राक्षोजीवनर्यभक्तेत्यलैः ॥ ४४ ॥  
 बलालज्वरकाकोलीमेदायुग्मंश्च साधितम् ।  
 मर्क्षान् माहिष सपिः पित्तहृद्रोगनाशनम् ॥ ४५ ॥  
 प्रपीडरीकमधुकविसग्रयिकसेरकाः ।  
 सद्युंठीशंवलास्ताभिः मक्षीरं विपचेद् घृतम् ॥ ४६ ॥  
 क्षीतं ममधु तच्चेष्टं स्वादुवर्गवृतं च यत् ।  
 वर्तितं च दद्यात्सक्षीरं तैलं मधुकमाधितम् ॥ ४७ ॥

### कफजहृद्रोगचिकित्सा—

कफोदमवे वमेत्स्विघ्नः<sup>२</sup> पित्तुमन्दवचाकुना ।  
 कूलत्यवन्वोत्थरमतीक्ष्णमक्षयवाशनः ॥ ४८ ॥  
 पिप्पेच्छूर्णं वचाहिगुलवणद्वयनागरान् ।  
 सैन्धवानीककणायवभारान् सुखांशुना ॥ ४९ ॥

१ शेषेषु घातजहृद्रोगरहितेषु शेषेषु चतुर्ष्वपि । २ पित्तुमन्दो निम्बम् ।

१ फलं धान्याम्लकौलस्यूपमूत्रासर्वस्तथा ।  
 पुष्कराह्नाभयाशुंठीगठीराम्रावचाकणाः ॥ ५० ॥  
 वषाथं तथाऽभयाशुंठीमाद्रीपीतद्रुकट्फलान् ।  
 यथाथे रौहीतकाश्वत्थसदिरोर्दुवराजुने ॥ ५१ ॥  
 सपलाशवटे व्योपत्रिवृच्चूर्णान्विते कृतः ।  
 मुखोदकानुपानस्य लेहः कफविकारहा ॥ ५२ ॥  
 श्लेष्मगुल्मोदिसाग्यानि क्षाराश्च विविधान् पिबेत् ।  
 प्रयोजयेच्छिलाह्वं वा ब्राह्मं चात्र रसायनम् ॥ ५३ ॥  
 तथामलकलेहं वा प्राश्यं वाऽगस्तिनिर्मितम् ।  
 स्थाचूल्म यस्य भुक्तेऽग्रे जीर्यत्यल्पं जरा गते ॥ ५४ ॥  
 धाम्येत्सकुष्ठकृमिजिह्ववण्डयसित्वकैः ।  
 सदेवदार्बतिविषंशूर्णमुष्णाधुना पिबेत् ॥ ५५ ॥  
 यस्य जीर्णोऽधिकं स्नेहैः स विरेच्यः फलैः पुनः ।  
 जीर्यत्यग्ने तथा मूलैस्तीक्ष्णैः शूलैः सदाधिके ॥ ५६ ॥  
 प्रायोऽनिलो रुद्धगतिः कृप्यस्थामाशयं गतः ।  
 तस्यानुलोमनं कार्यं शुद्धिलानपाचनैः ॥ ५७ ॥

### क्रिमिजहृद्रोगचिकित्सा—

कृमिघ्नमीषध सर्वं कृमिजे हृश्यामये ।

### अथतृष्णाचिकित्सितारम्भः—

तृष्णामु वातपित्तघ्नो विधिः प्रायेण युज्यते ॥ ५८ ॥  
 सर्वासु शीतो बाह्यातस्तथा शमनशोथनम् ।  
 दिघ्यांशु शीतं सक्षीद्रं तद्वद्गोमं च तदगुणम् ॥ ५९ ॥

१ फलं मदनफलम् । २ माद्री-अतिविषा । ३ ब्राह्मं रसायनं रसायनाधि-  
 कारोक्तम् । ४ तदगुणमाकाशीयजलममानगुणम् “शुचिपृथक्किते देसे” इत्यादि-  
 लक्षणलक्षितम् ।



## तत्रसामान्योविधिः—

निर्वापित वसलोष्कपालमिवसादिभिः ।  
 सशर्करं वा न्वषितं पंचमूलेन वा जलम् ॥ ६० ॥  
 दर्शपूर्वेण मंत्रञ्च प्रशस्तो लाजराक्तुभिः ।  
 वात्यश्चामयवैः शीतः शर्करामाक्षिकान्वितः ॥ ६१ ॥  
 यवागूः शालिमिस्तद्रन्कोद्रवंश्च चिरंतनैः ।  
 शीतेन शोतवीर्यञ्च द्रव्यैः सिद्धेन गोजनम् ॥ ६२ ॥  
 हिमाशुपरिपित्तस्य पयसा ससितामघुः ।  
 रमेश्चानम्ललवणैर्जपिलैर्दृष्टमर्जितैः ॥ ६३ ॥  
 मुदपादीनां तथा यूपैर्ज्विनां परसांभितैः ।  
 नस्यं क्षीरघृतं सिद्धं शीतैरिक्तोस्तथा रसः ॥ ६४ ॥  
 निर्वाणान् गङ्गायाः मूकस्थानोदिता हिताः ।  
 दाहज्वरोक्ता तेषां निरोहत्वैर् मतोपतिः ॥ ६५ ॥  
 महागरिद्वज्रदादीनां दर्जनस्मरणादि च ।  
 नृणां पवनोत्थायां सगुदं दधि घस्यते ॥ ६६ ॥  
 रसाञ्च धृंह्याः शीता विनार्यादिगणांश्च वा ।

## पित्तजन्तृप्याधिकित्सा—

पित्तजायां सितायुक्तः पक्वोदुंबरजो रसः ॥ ६७ ॥  
 कृत्वाणो वा हिमस्तद्वत्पारिवारिभणानु वा ।  
 तद्विषैश्च गणैः शीतकपायान् समितामघून् ॥ ६८ ॥  
 मधुरं रोषवैस्तद्वत् क्षीरघृत्तञ्च बलिषान् ।  
 क्षीरपूरकमृदीनां बटवेतमगल्लवान् ॥ ६९ ॥  
 मूलानि कुचमाषानां यष्ट्याहं च जने शृतम् ।  
 ज्वरोदिनं वा दाशादिपंचमारानु वा पिबेत् ॥ ७० ॥

१ निर्वाणं श्यामार हीनत्वम् ।

## कफजतृष्णाचिकित्सा—

कफोद्भवाया वमनं निवप्रसववारिणा ।  
 विल्वाढकीपंचकोलदर्भपंचकसाधितम् ॥ ७१ ॥  
 जलं पिवेद्रजण्या वा मिदं सशोदशकरम् ।  
 मुद्गयूषं च सव्योषपटोलीनिबपल्लवम् ॥ ७२ ॥  
 यवान्नं तीक्ष्णकवलनस्यलेहांश्च शीलयेत् ।,  
 सर्वैशामाद्यैः तदंशो क्रियेष्टा वमनं तथा ॥ ७३ ॥  
 शूषणारुक्करवचाफलाम्लोष्णांबुमस्तुभिः ।,  
 अक्षराययान्मंडमुष्णं हिमं मधं च कालवित् ॥ ७४ ॥  
 तृपि भ्रमाभ्मासरम मद्य वा मसितं पिवेत् ।,  
 आतपाससितं मधं यवकोलाबुसक्तुभिः ॥ ७५ ॥  
 सर्वाण्यगानि लिपेच्च तिलपिण्याककाजिकैः ।,  
 शीतस्नानास्तु मद्याबु पिवेत्तृष्णान् गुडाबु वा ॥ ७६ ॥  
 मघादर्धजल मधं ज्ञातोऽम्लवर्णैर्युतम् ।,  
 स्नेहतीक्ष्णतराग्निस्तु स्वभावशिशिरं जलम् ॥ ७७ ॥  
 स्नेहाद्रुष्णाबु जीर्णास्तु जीर्णान्मद पिषामितः ।,  
 पिवेत्स्निग्धाक्षतृपितो २ हिमस्वधि गुडोदकम् ॥ ७८ ॥,  
 गुर्वाघ्ननेन तृपित पीतवोष्णाबु तदुल्लिखेत् ।,  
 पचजायां क्षयहितं सर्वं बृहणमीषपम् ॥ ७९ ॥,  
 कुशदुर्बलरूपाणां क्षीरं छागं रसोऽथवा ।  
 क्षीरं च सोर्ध्ववातायां क्षयकासहरं शृतम् ॥ ८० ॥,  
 रोगोपसर्गजातायां धान्याबु समितामघु ।  
 पाने प्रदास्तं सर्वाश्च क्रिया रोगाद्यपेक्षया ॥ ८१ ॥,  
 तृप्यन् पूर्वामयचीणो न लभेत् जल यदि ।  
 मरण दीर्घरोगं वा प्राप्नुयात्त्वरितं ततः ॥ ८२ ॥  
 सात्त्विकपानभेषज्यैस्तृष्णा तस्य जयेत्पुरः ।  
 तस्यां जितायामन्योऽपि शक्यो व्याधिश्चिकित्सितुम् ॥ ८३ ॥

१ तदंशो सन्निपातवन्नी आमवन्नी च क्रिया । २ हिमसादिहिमादपिशितम् ।

## सप्तमोऽध्यायः ।

अथाऽतो मदात्ययचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

मदात्ययचिकित्साप्रकारः—

“यं दोषमधिकं पश्येत्तस्यादौ प्रतिकारयेत् ।  
कफस्थानानुपूर्व्या वा तुल्यदोषे मदात्यये ॥ १ ॥,  
पित्तमास्तपर्यंतः प्रायेण हि मदात्ययः ।

मद्योत्पन्नव्याधेर्मद्ये नैवशान्तिः—

हीनमिष्यातिपीतेन यो व्याधिरुजायते ॥ २ ॥  
ममपीतेन तेनैव स मद्येनोपशाम्यति ।  
मद्यस्य विपसादश्यात्,

त्रिपान्मद्यस्य शैलक्षयम्—

विषं तूत्कर्षवृत्तिभिः ॥ ३ ॥

विधियुक्तं मद्यपानं हितम्—

सीदणादिभिर्गुणैर्गोत्राद्विपातरमपेक्षते ।  
सीदणोष्णेनातिमात्रेण पीतेनाम्लविदाहिना ॥ ४ ॥  
मद्येनान्नरसकलेदो विदग्धः क्षारता गतः ।  
यान्कुर्यान्मदनृणमोहज्वरातदाहविभ्रमान् ॥ ५ ॥  
मद्योत्किञ्चिद्दोषेण रुद्धः श्रोतः सु मास्तः ।  
मुर्वाग्रा वेदना याञ्च शिरस्यस्थिषु संधिषु ॥ ६ ॥  
जीर्णमिमद्यदोषस्य प्रकाशान्गायत्रे सति ।  
योगिकं विधिवच्चुक्तं मद्यमेव निवृत्तिं तान् ॥ ७ ॥

१ मदात्यये प्रथमं कफस्याधिक्यंततः पित्तवातयोराधिक्यम् ।

## तत्रहेतुः—

सारो हि याति माधुर्गं शीघ्रमम्लोपसंहितः ।  
मद्यमन्त्रेषु च श्रेष्ठं दोषविष्यदनादलम् ॥ ८ ॥

## सद्योधातुसाम्यकरणम्—

तीक्ष्णोष्णघ्नेः पुरा श्रोतृर्दोषनाद्यैस्तथा गुर्भैः ।  
सात्म्यत्वाच्च तदेवास्य धातुसाम्यकरणं परम् ॥ ९ ॥

## पानात्ययोपधकालः—

मसाहमष्टरात्र वा कुर्यात्पानात्ययोपधम् ।  
जीर्मेत्येतावता पानं कालेन विपद्याश्रितम् ॥ १० ॥

## ततो रोगानुसारेण भेषजप्रयोगः—

परं ततोनुबध्नाति यो रोगस्तस्य भेषजम् ।  
यथावत् प्रयुज्जीय 'द्वृत्तपानात्ययोपधः ॥ ११ ॥

## घातोत्पत्तेर्यथात्ययचिकित्सा—

तत्र घातोत्पत्तेर्ये मर्षं दद्यात्पिष्टमृत्तं पुतम् ।  
घीजपूरककुलाम्बकोलदाडिमदीप्यकं ॥ १२ ॥  
मयानोदुपुपाजानीम्भोत्रिलवणार्द्रकं ।  
सूत्यंमार्गैर्हरितकं स्नेहवद्भिन्नं मत्तुभि ॥ १३ ॥  
ज्वलस्निग्धाम्बलवणा मेध्यमामरमा हिता ।  
आघ्रासातकपेदीभिः संस्कृता रागसाहवाः ॥ १४ ॥  
गोधूममापविष्टीमूर्दुचित्रा मुखप्रियाः ।  
अदिकाद्रिककुलमापमृत्तमागादिभिर्भिणी ॥ १५ ॥  
गुरभिर्लवणा शीता गदा वाचढवाण्णी ।  
स्वरगो दाडिमात्तु यः पंचमूलात्तनीयसः ॥ १६ ॥

१ मसाहमष्टरात्रवेत्यत्रोक्तं पानात्ययोपधो रोगी । २ आद्रिका "अदिका"  
इति हि०, आद्रिकं लुब्धं ।

शुष्को धान्यात्तथा मस्तुमूलाभोत्थाम्बुमाजिवम् ।  
 अम्बुगोद्वर्तनस्नानमुष्ण प्रावरणं घनम् ॥ १७ ॥  
 घनध्रागुग्गो धूपः पंकध्रागुग्गुकुम् ।  
 कुचोरश्रोणिशालिन्यो धीवनोष्णागवष्टयः ॥ १८ ॥  
 हर्षणालिगनैर्युक्ताः प्रियाः संवाहनेषु च ।

पित्तोत्थेषु मदास्थयाचक्रिस्ता—

पित्तोत्थेषु बहुजलं कार्करं मधुना युजम् ॥ १९ ॥  
 रमंदार्दिमलज्वरभेद्यद्राधापरपकैः ।  
 सुतान् ममिताद्यकु योऽभ्य साष्टक् च पानवम् ॥ २० ॥  
 स्नादुवर्गकणाययो युक्तां मद्यं समाशिरुम् ।  
 शालिपट्टिकमश्रौवाच्छनाज्जणकदिदलैः ॥ २१ ॥  
 सर्तानमुद्गामलरूपटोलोदाडिमैरपि ।  
 कक्कपित्तं समुत्थिष्यमुल्लिखेत्तृड्विदाह्वानम् ॥ २२ ॥  
 पोषाद्यु द्योतं मद्यं वा भूरोभुरससंयुतम् ।  
 द्राक्षारसं वा संमर्मी तर्पणादिपरं हितः ॥ २३ ॥  
 तयाग्निर्दीप्यते तस्य दोषतोषाप्रपाचनः ।  
 कासे सरन्मिष्टीये पार्श्वस्तनरजामु च ॥ २४ ॥  
 तृष्णायां सविदाहायां सौत्क्लेशे हृदयोरसि ।  
 गृह्णीमद्रमुस्ताना पटोलस्यायवा रमम् ॥ २५ ॥  
 मश्रुगवेरं पुंजीव तित्तिरिप्रतिभोजनम् ।  
 शृण्वते चाऽतिबलवद्वातपित्ते यमुद्धते ॥ २६ ॥  
 दद्याद् द्राक्षारसं पानं दीतं दोषानुलोमनम् ।  
 जीर्णेऽद्यान्मधुराम्लेन छागमांशुरमेन च ॥ २७ ॥  
 शृण्वत्पशः पिबेन्मद्यं मदं रसान् बहूदकम् ।  
 मुस्तदार्दिमलाग्रानु जलं वा पणिनीशृतम् ॥ २८ ॥  
 पटोल्युत्पलकंदैर्वा स्वभावादेव वा हिमम् ।  
 मद्यतिपानादध्यातां क्षीणे तेजसि चांद्धते ॥ २९ ॥

यः शुष्कमलताल्बोष्ठो जिह्वां निष्कृष्य चेटते ।  
 पाययेत्कामतौंभस्तं निशीथपवनाहतम् ॥ ३० ॥  
 कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रोकाञ्चुक्रिकारसः ।  
 पंचाम्लको मुखालेपः सद्यस्तृष्णां नियच्छति ॥ ३१ ॥  
 त्वचं प्राप्तञ्च पानोष्मा पित्तरक्तप्रभिमूर्छितः ।  
 दाहं प्रकुर्वते घोरं तत्राऽतिशिशिरो विधिः ॥ ३२ ॥  
 अशाम्यति रसैस्तृप्तं रोहिणी व्यधयेच्छिराम् ।

### कफजमदात्यचिकित्सा —

उत्प्लेखनोपचामाभ्या जयेच्छेष्मोऽन्धेन पियेय ॥ ३३ ॥  
 शीतं शुंठीस्थिरोदीच्यदुःस्पर्शान्पित्तमोदकम् ।  
 निरामं क्षुधित काले पाययेद्बहुमाक्षिकम् ॥ ३४ ॥  
 घाकंरं मधु वा जीर्णमरिष्टं मीधुमेव च ।  
 रुक्षतर्पणमयुक्तं यवानीनापराश्वितम् ॥ ३५ ॥  
 यूपेण यवगोधूमं तनुनाऽपेन भोगयेत् ।  
 उष्णाम्लकटुतिक्तैर्न कीलरयेनाल्पसर्पिषा ॥ ३६ ॥  
 शुष्कमूलकजैश्छागै रसैर्वा धन्वचारिणाम् ।  
 गाम्लवेतमवृक्षाम्लपटोलभ्योपशब्धैः ॥ ३७ ॥  
 प्रभूतशुंठीमग्निहरिताद्रकपेक्षिकम् ।  
 र्वाजपूररमाद्यम्लभृष्टनीरमवतितम् ॥ ३८ ॥  
 कपोरकरमर्दादिरोचिष्णु बहुशालनम् ।  
 प्रव्यत्ताष्टागलवर्णं विकल्पितनिमर्दकम् ॥ ३९ ॥  
 यथाग्निं भक्षयन्मार्तं गाधनं निगदं पिबेत् ।  
 मितासौवर्चलाजाजीतिन्तिर्डीकाम्लवेतमम् ॥ ४० ॥  
 त्वगेलाभरिचार्पाश्चमष्टागलवर्णं हितम् ।  
 ओतोविशुद्धचक्रिकरं कफप्राये मदात्यये ॥ ४१ ॥

१ शालतंहरितकंमूलकादि । २ विकल्पितो निष्पादितो निमर्दको येन मांमेन  
 सत् । प्रभूतेत्यादि निमर्दकान्तं मागविशेषणम् । प्रभूतेत्यादिना निमर्दकस्य  
 विविधप्रकारत्वं दर्शयति ।

रुदोष्णोद्वर्तनोद्वर्पस्नानभोजनलघनैः ।

सकामाभिः सह स्त्रीभिर्युक्त्या जागरणेन च ॥ ४२ ॥

मदात्ययः कफप्रायः शीघ्र समुपशाम्यति ।

**सर्वजमदात्ययचिकित्सा—**

यदिदं कर्म निदिष्टं पृथग्दोषबलं प्रति ॥ ४३ ॥

मनिपाते दशविधे श्चक्ष्मेऽपि विवर्त्येत् ।

त्वङ्नागपुष्पमगघामरीचाज्जिधान्यकैः ॥ ४४ ॥

परुषकमधूकलासुराह्वैश्च मित्ताग्नितैः ।

सकपित्थरमे हृद्यं पानकं सक्षिबोधितम् ॥ ४५ ॥

मदात्ययेषु सर्वेषु पेयं रुच्यमिदोपनम् ।

**हर्षणीक्रिया—**

नाविक्षोभ्य मनो मद्यं शरीरमविहन्य वा ॥ ४६ ॥

कुर्यान्मदात्ययं तस्मादिष्यते हर्षणी क्रिया ।

**पयः पानम्—**

संशुद्धिशमनाद्येषु मददापः कृतेष्वपि ॥ ४७ ॥

॥ चेच्छाम्येकफे क्षीणे जाते दीर्घत्वलाघवे ।

तस्य मद्यविदग्धस्य वातपित्ताधिकस्य च ॥ ४८ ॥

गोप्मोपतप्तस्य तरोर्यथा वर्षं तथा पयः ।

**तत्रहेतुः—**

मद्यग्रीणस्य हि क्षीणं क्षीरमाश्वेन पुष्यति ॥ ४९ ॥

१ मदात्यय चिकित्सितं पृथग्दोषबलं प्रति यन्निदिष्टं सत् दोषेषु दशविधे-  
सन्निपाते मदात्ययजेविवर्त्येत् त्रिविधं कृत्वा वल्येत् । वातोत्थणस्य तथा  
पित्तोत्थणस्य मदात्ययस्य यत्कर्म कथितं तन्मिश्रितं कर्म वातपित्तोत्थणोत्त-  
पात्रेमदात्ययजे कुर्यादित्यर्थः । एवमन्यस्मिन् दोषेषु सन्निपातेविवर्त्येत् । दशविधः  
सन्निपातो यथा त्रिदोषोत्थणादयः, हीनमध्यानिकदोषैः पट् ममदोषैश्चैकैः ।

ओजस्तुल्यं गुणैः सर्वैर्विपरीतं च मद्यतः ।

**पयसारोगेजितेऽल्पमद्यपानम्—**

पयसा विजिते रोगे बले जाते निवर्तयेत् ॥ ५० ॥

क्षीरप्रयोगं मद्यं च क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ।

न विदुक्षयध्वंसकोत्थैः स्पृशेत्तोषद्रवैर्यथा ॥ ५१ ॥

**विदुक्षयध्वंसकयोध्विकित्सा—**

तयोस्तु स्याद्भूतं क्षीरं वस्तयो बृंहणाः शिवाः ।

अभ्यंगोद्धर्तनस्नानमन्नपानं च वातजित् ॥ ५२ ॥

**मद्यसंभोगेकारणम्—**

युक्तमद्यस्य मद्योत्थो न व्याधिरजामने ।

अतोऽस्य वक्ष्यते योगो यः सुखायैव केवलम् ॥ ५३ ॥

**सुरागुणाः—**

आश्विनं या महत्तेजो बलं सारस्वतं च या ।

दधात्यैदं च या वीर्यं प्रभावं वैष्णवं च या ॥ ५४ ॥

अत्तं मकरकेतोर्यां पुरुषार्थो बलस्य या ।

मीनामण्या द्विजमुखे या हुताग्ने च हूयते ॥ ५५ ॥

या सर्वापधिमंपूर्णान्मिथ्यमानात्सुरामुरैः ।

महोदधेः समुद्भूता श्रीशशाकामूर्तं सह ॥ ५६ ॥

मधुमाधवमैरेयमीधुगोडासवादिभिः ।

मदशक्तिमनुज्झन्ती या हर्षवैर्बहुभिः स्थिता ॥ ५७ ॥

यामासाद्य विलासिन्यो यथार्थं नाम विभ्रति ।

मृतागनाऽपि या पीत्वा नयत्युद्धतमानसा ॥ ५८ ॥

अनंगान्निमित्तैर्गः क्वाऽपि चेतो मुनेरपि ।

सरंगभंगभृकुटीतर्जनीनिनीमन्तः ॥ ५९ ॥

१ मुनेरपि चेतः यथापि नयतीत्यन्वयः । सरङ्गेण मङ्गाः २/४  
तथा तर्जानि प्रणयारुहनिदोपास्तैः ।



एकं प्रमाद्य कुक्षे या द्वयोरपि निर्वृतिम् ।  
 यथाकामं भटावाप्तिपरिहृष्टाप्परोक्षे ॥ ६० ॥  
 तृणवत्पुष्पा युद्धे यामासाद्य त्वजत्यगूर्न् ।  
 यां शील्यित्वाऽपि चिरं बहुया बहुविग्रहाम् ॥ ६१ ॥  
 नित्यं हर्षातिवेगेन तत्पूर्वमिव सेवते ।  
 शोकोद्वेगारतिभयैर्वा दृष्ट्वा नाभिभूयते ॥ ६२ ॥  
 गोष्ठीमहोत्सवोद्यानं न यस्याः गोभने विना ।  
 स्मृत्वा स्मृत्वा च बहुषो विमुक्तः शोचते यया ॥ ६३ ॥  
 अप्रसन्नाऽपि या प्रीत्यै प्रसन्ना स्वर्ग एव या ।  
 'अपीदं मन्यते दुःस्व' हृदयस्थितया यया ॥ ६४ ॥  
 अनिर्देश्यमुखास्वादा स्वयंवेद्यैव या परम् ।  
 'इति चित्रास्ववस्थामु प्रियामनुकरोति या ॥ ६५ ॥  
 प्रियाञ्जलिप्रियतां याति यत्प्रियस्य विदीपतः ।  
 या प्रीतिर्या रतिर्या वाग्वा पुष्टिरिति च स्मृता ॥ ६६ ॥  
 देवदानवर्गधर्मवक्षराक्षसमानुषैः ।  
 पानप्रवृत्ती मत्स्यां ता मुरां तु विधिना पिबेन् ॥ ६७ ॥

युक्तमद्यपानात्सर्वरोगनाशः—

गंगमंति च ये रोगा मेदोऽनिलरुफोद्महाः ।  
 त्रिधिमुक्ताहते मद्यास्ते न मिष्यति दाहणाः ॥ ६८ ॥  
 अस्ति देहस्य सावस्था यस्यां पानं निवार्यते ।  
 अन्यथा मद्याग्निगदादिविधीपचसंभूताद् ॥ ६९ ॥

१ द्वयोःस्त्रीपुंगवोः निर्वृतिं शीलयम् । भटसन्नूरुपुष्पस्यावाप्या परिहृष्टोऽप्यारोगणीयस्मिन् युद्धे । यामुराऽप्रसन्ना रामलापि पीत्यै हर्षाय । प्रसन्ना निर्मला स्वर्ग एव । २. हृदयस्थितया यया मुरया । पुरय इन्द्रमपि दुःस्व' दुःस्मितं मन्यते । प्रिया-नन्दोऽप्रसन्ना प्रणयकलहं कुपिता । प्रमत्ता त्वत्करोषा । याशीलयित्वेत्यादिः प्रिया-यामपि योजनः । ३ इति—एवं चित्रामु नानाविधामु । या मुरा प्रियां वल्लभां (प्रियम्) । यत्प्रियस्य मुराप्रियस्य । प्रिया इष्टा मुरा, अथवा प्रिया वल्लभा, यत्प्रियस्याति-प्रियतां याति । पानप्रवृत्ती मत्स्यां—येषा धर्मशास्त्रेषु पानाधिकारोऽस्तीत्यर्थः ।

मद्ये न विना मांसपरिणामाभाय :—

आनूपं जांगलं मांसं विविनाऽप्युपरुक्षितम् ।  
मद्यं महायमप्राप्य गम्यक् परिणमेत्तृणम् ॥ ७० ॥

मद्ये न विना लशुनस्याल्पोगुणः—

मुनोश्चमास्तव्याधिघातिनो लशुनस्य च ।  
मद्यमांसवियुक्तस्य प्रयोगः स्यात्किंवा न गुणः ॥ ७१ ॥

मद्ये न शस्त्रजन्ययदेनासह्यत्वम्—

निगृह्यत्पाहरणे क्षत्रशाराग्निर्मर्मणि ।  
पीतमद्यो विपहते गुह्यं वैद्यविरुध्यनाम् ॥ ७२ ॥

मद्यादन्यन्नारोग्यकृत्—

अनलोत्तेजनं हृत्त्र्यं क्षोक्षमयिनोदकम् ।  
न चाऽतः<sup>१</sup> परमस्य न्यक्षारंगययलपुष्टिकृत् ॥ ७३ ॥

तस्मान्मद्यं पेयम्—

रक्षता जीविनं तस्मात्पेयमात्मवता मदा ।  
आश्रितोपाश्रितहिमं परमं धर्ममाधनम् ॥ ७४ ॥

मद्यपान विधिः—

स्नातः प्रणम्य गुरुविप्रगुरुभ्यामथ  
शुक्तिं विधाय च गम्यत्परिग्रहम्<sup>१</sup> ।  
धापानभूमिमथ र्गमजलाभिषक्त-  
माहारमल्पगर्भापगतां श्येत ॥ ७५ ॥

स्वाम्नृोऽथ क्षयने कमनीये  
शृण्वमिश्ररमर्णागमवेतः ।

१ विद्वत्पुत्रास्तृथना । २ अतोऽस्मान्मद्यात् । ३ परिग्रहस्य कर्मकरस्य ।  
सावदस्यादिपक्षं वसन्ततिलकम् ।

स्वं यशः<sup>१</sup> कथकचारणसंपे-

रुद्धं निशमयन्नतिलोकम् ॥ ७६ ॥

<sup>२</sup>विलासिनीनां च विलासयोभि

गोतं सनृतं कलतूर्यघोषैः ।

कांचोकलापैश्चलार्ककिणोक्तैः

क्रीडाविहंगैश्च वृत्तानुनादम् ॥ ७७ ॥

<sup>३</sup>मणिजनकसमुत्परीपगेर्यैर्विचित्रैः

मञ्जलविविधनेत्रशोभस्त्रावृताङ्गैः ।

अपि मुनिजनचित्तज्ञोभसपादिनीभि-

श्चकितहरिणलोलप्रेशणीभिः प्रियाभिः ॥ ७८ ॥

<sup>४</sup>स्तननितंबवृत्तादतिगौरवा-

दलममाकुलमीश्वरसंभ्रमाद् ।

इति गतं दपतोभिरसंस्थितं

तरणचित्ताविलोभनकार्मणम् ॥ ७९ ॥

<sup>५</sup>योवनासवमत्ताभिर्विलासाधिष्ठितारण्यभिः ।

मधार्थमाणं युगपत्तन्वगीभिरितस्ततः ॥ ८० ॥

१ कथकः “कथक” इति लोके । चारणः खन्डी—कीर्तिमञ्चारकः, यदुक्तं पद्य-  
पुताने चारणलक्षणम्—“गन्धर्वाणां ततो लोकः परतः द्यवयोजनाद् । देवानां  
गायनास्ते च चारणाः स्तुतिपाठकाः” । अतिलोकमदमुनरूपम् । २ विलासिनीनां  
स्त्रीणाम् । विलासयोभिर्भाति गीतमित्यस्य विशेषणम् । स्वास्तुतइति स्यागतावृत्तम्  
कला मधुरा तूर्याणां घोषा शब्दास्त्वैः । कलाः किंकिर्णोक्ताः शुद्धघण्टिका येषां  
वाक्त्रास्त्रापाता स्तैः । विलास लक्षणं यथा—यानस्यानामनादीनां हृषभ्रूनेप्रकर्मणां  
विशेषात् । विलासः स्पादिएसंदर्शनादिना । क्रीडाविहङ्गाः सारदादयः ।  
उदयविहङ्गाः । ३ मञ्जलं लावण्यविविधं विविधजेतं यत्शोभस्त्रं तेना  
गुणमङ्गलैर्भातैः । मालिनी वृक्षमेतद् । ४ अलङ्कृतं गमनं दपयोभिः । ईश्वरस्य  
प्रभासः गम्भागमयं गम्भाद् । कर्मणं गमयं वशीकरणमित्यर्थः । द्रुत विलम्बितं  
लम्बः । ५ योवनागवान्नां मत्तानिः । निम्बमिनाधिष्ठित आत्मा चित्तं यामा  
पदिनः ।

### तेषामुपक्रमः—

शीताः प्रदेहा भणयः सेका व्यजनमास्ताः ।  
 सिताद्राक्षेक्षुर्जूरकाश्मर्यः स्वरमाः पयः ॥ १०१ ॥  
 सिद्धं मधुरवर्गेण रमा यूपाः सदाडिमाः ।  
 पट्टिकाः दालयो रक्ता यवाः सपिण्ड जीमन् ॥ १०२ ॥  
 बल्याणकं महातिक्तं पट्पलं पयसाग्निः<sup>२</sup> ।  
 पिप्पल्यो वा शिलाह्वं वा रमायनविधानतः ॥ १०३ ॥  
 त्रिकला वा प्रयोक्तव्या मधृतश्रीद्राकरा ।

### प्रसक्तवेगेषु मुखनासावरोधनादिः—

<sup>१</sup>प्रसक्तवेगेषु हितं मुखनामावरोधनम् ॥ १०४ ॥  
 पिषेद्धा मानुषीक्षीरं तेन दद्याच्च नाशनम् ।  
 मृणालबिसवृष्णः वा लिह्यात्क्षीरेण सामयः ॥ १०५ ॥  
 दुरालभा वा ध्रुस्ता वा शीतेन सलिलेन वा ।  
 पिषेन्मरिचकोलास्त्रिमज्जोशीराहिकेमरम् ॥ १०६ ॥  
 धान्रीफलरसे सिद्धं पथ्याक्वायेन वा घृतम् ।

### दोषघटानुसारं क्रियाः—

कुर्यात्क्रियां यथोक्ता च यथादोषबलोदयम् ॥ १०७ ॥  
 पंचकर्माणि चेष्टानि सेचनं क्षोणितस्य च ।  
<sup>४</sup>मत्त्वस्यालंबनं ज्ञानमगृद्धिर्विषयेषु च ॥ १०८ ॥

### मदादिपुनस्यादियोजनाः—

मदेष्वतिप्रबुद्धेषु मूर्च्छयेषु च योजयेत् ।  
 तीक्ष्णं मंन्यामविहितं विषघ्नं विषजेषु च ॥ १०९ ॥

१ जीवनं प्राणधारणमेतत्सर्वमथवा जलम् । २ अग्निश्चित्रकः । ३ प्रसक्त-  
 वेगेषु अतिसमवेगेषु मदादिषु । तेन मानुषी क्षीरेण । ४ मत्त्वस्य गुणस्यालम्बन-  
 माश्रयणम् । अगृद्धिरनभिकाट्क्षा ।

संन्यासेशीघ्रं नस्यादियोजना :—

आद्यु प्रयोज्यं संन्यासे मुनीदण नस्यमंजनम् ।  
 धूमप्रधमन, तोदः सूचीभिश्च नखांतरे ॥ ११० ॥  
 वेशानां लुंचनं, दाहो, दंशो दशनवृश्चिकः ।  
 कट्वम्लगालनं वषत्रे कपिकच्छूववर्षणम् ॥ १११ ॥  
 उत्थितो लब्धसंज्ञश्च लशुनस्वरसं पिबेत् ।  
 खादेत्सव्योपलवणं बीजपूरककेसरम् ॥ ११२ ॥  
 लघ्वन्नं प्रति 'सौक्ष्णोष्णमद्यास्त्रोतोविशुद्धये ।

मदादिमसउपाचरणम्—

विस्मापनैः संस्मरणैः प्रियभ्रवणदर्शनैः ॥ ११३ ॥  
 पटुभिर्गतिवादिप्रशब्दैर्व्याधिमक्षोलनैः ।  
 ग्लानोत्प्लेखनैर्भूमैः क्षोणितम्पायमेचनैः ॥ ११४ ॥  
 उपाचरेत्तं प्रतप्तमनुबधभयात्पुनः ।  
 तस्य सरक्षितव्यं च मनः 'प्रलयहेतुतः' ॥ ११५ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोऽर्शां चिकित्सित व्याख्यास्यामः ।

अशोरोगिणोयंत्रादि—

"काले साधारणं व्यभ्रे नातिदुर्बलमर्शसम् ।  
 विशुद्धकोष्ठं 'लघ्वल्पमनुलोमनमाशितम् ॥ १ ॥  
 शुचि कृतस्वस्त्ययनं मुक्तविष्णुमूत्रमव्ययम् ।  
 दायने फलके वाग्यनरोत्सांगे व्यपाधितम् ॥ २ ॥

१ सौक्ष्णोष्णलघ्वन्नं प्रति अल्पम् । विस्मापनं विस्मयकारिभिः । २ प्रलय-  
 हेतुतः नाशहेतुतः । ३ आशितं भोजितम् ।

पूर्वैर्ण कायेनोत्तानं प्रत्यादित्यगुदं समम् ।  
 समुन्नतकटीदेशमथ यत्रणवाससा ॥ ३ ॥  
 सक्थोः शिरोचरायां च परिक्षिप्तमृजुस्थितम् ।  
 आलंबितं परिचरैः सर्पिषाम्यक्तमायवे ॥ ४ ॥  
 ततोऽस्मै मर्षिषाम्यक्तं निदध्याहजुयंत्रकम् ।  
 शनैरनुमुखं पाथी ततो हृष्ट्वा प्रवाहणात् ॥ ५ ॥  
 यंत्रे प्रविष्टं कुर्नाम ज्ञोतुं छित्तिमाऽनु च ।  
 क्षलाकयोत्पीड्य भिषग् यथोक्तविधिना दहेत् ॥ ६ ॥  
 क्षारेणैवाद्रंभितरत्क्षारेण ज्वलनेन वा ।  
 महद्वा बलिनश्लित्वा वीतयत्रमयातुरम् ॥ ७ ॥  
 स्वभ्यन्तरागुजघनमवगाहे निघापयेत् ।  
 निर्वातमंदिरस्थस्य ततोऽस्माचारमादिशेत् ॥ ८ ॥  
 एकैकमिति सप्ताहात्सप्ताहात्समुपाचरेत् ।

बह्वर्शसांकर्मक्रमः—

प्राग्दक्षिणं ततो वाममर्शः पृष्ठाग्रजं ततः ॥ ९ ॥  
 बह्वर्शसः,

मुद्गन्धस्तक्षणम्—

मुद्गन्धस्य स्याद्वायोरनुलोभता ।  
 रुचिरग्नेऽग्निगुता स्वास्थ्यं वर्णबलोदयः ॥ १० ॥

वस्तिशूलेलेपः—

वस्तिशूले त्वघोनाभेलेपयेच्छूलदणकलिकृतीः ।  
 यर्षाभ्रुकुष्ठमुरभिमिशिलोहामराह्वयैः ॥ ११ ॥

पुरीषादिप्रतीघाते काथादिः—

षट्पञ्चमूत्रप्रतीघाते परिपेकावगाहयोः ।  
 वरणालवुषैरङ्गोक्तकपुनर्वैः ॥ १२ ॥

सुपर्वाभुरभीम्या च क्वाथमुष्णं प्रयोजयेत् ।  
सस्नेहमथवा क्षारं तैलं वा वातनाशनम् ॥ १३ ॥  
युंजीतान्नं शबृद्धभेदि स्नेहान् वातघ्नदीपनान् ।

**दाहायोग्यस्यतैलेनसेचनादि—**

अथाऽऽवोज्यदाहस्य निर्गतान् कफघातजान् ॥ १४ ॥  
गंस्तंभकं ह्रस्वशोफानम्यज्य गुदकोलकान् ।  
विल्वमूलाश्लिषाक्षारकुण्टः मिद्धेन सेचयेत् ॥ १५ ॥  
तैलेनाहिबिडालोष्ट्वराहवसयाथवा ।  
स्वेदयेदनुपिटेन द्रवस्वेदेन वा पुनः ॥ १६ ॥  
गत्तुना पिडिकाभिर्ना श्लिष्यान् तैलगण्डिषा ।  
रास्नाया हृषुषाया वा पिड्ढिर्वा<sup>१</sup> काष्ण्यगधिकं ॥ १७ ॥

**धूपनम्—**

अर्कमूलं शमीपत्रं नृकेमा<sup>२</sup> गर्पकचुकम् ।  
मार्जारचर्मगन्धिश्च धूपनं हितमर्शनाम् ॥ १८ ॥  
तथाश्वगन्धा मुरमा बृहती पिप्पली घृतम् ।

**शुद्धजशातिनीवर्ति :—**

घाग्याम्लपिण्डं जीमूतबीजं स्तब्जालकं<sup>३</sup> मृदु ॥ १९ ॥  
रोपितं छायेया शुद्धं वर्तिगु<sup>४</sup> दजघातनी ।

**अन्यवर्ति :—**

सज्जालमूलजीमूतनेहे वा क्षारसंयुते ॥ २० ॥  
मुंजामुरणकूप्मांडबीजं वर्तिस्तथागुणा ।

**लेपा :—**

स्फुरशीरार्द्रनिशालेगस्तथा गोमूत्रकल्कितैः ॥ २१ ॥

१ अग्निश्रितः । २ कृष्णगन्धा शोभाजनम् । ३ तस्य जीमूतफलस्य जातम् । जीमूतो 'बन्नात' हि० ।

१ वृकवाकुः कुम्कुटः । २ हल्लिनो-ल्लाङ्गली । ३ अनुवामनेभवानि आनुवास-  
 निसानिर्तः पिप्पलीमदनफट्टमित्यादिभिः । ४ जलजा-जलीका । ५ बह्निश्चित्रकः ।  
 १ वृकवाकुश्चकुम्कुटानिशागुं प्राधत्तस्तथा ।,  
 स्नुक्क्षीरपिटैः २ पङ्गुंथाहल्लिनोवारणास्त्यभिः ॥ २२ ॥  
 कुलीरशृंगोविजयाकुशारप्करतुन्धकैः ।  
 शिशुमूलकजैर्वीजैः ३ पत्रैरश्वत्थानिवजैः ॥ २३ ॥  
 पोलुमूलेन बिल्वेन हिगुना च समन्वितैः ।,  
 बुध्ने शिरीषबीजानि पिप्पल्यः सैषवं गुडः ॥ २४ ॥  
 अर्कक्षीरं मुवाक्षीरं त्रिफला च प्रलेपनम् ।,  
 आर्कं पयः स्नुहीकाडं कटुकालाबुपल्लवाः ॥ २५ ॥  
 करजो घन्तमूत्रं च लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ।,  
 ३ आनुवासनिकैलेपः पिप्पल्याद्यैश्च पूजितः ॥ २६ ॥,

### तैलाभ्यञ्जनम्—

एभिरेषौषधैः कृदांस्तैलाभ्यञ्जनानि च ।

### धूपनादिभिर्दुष्टरुधिरस्त्रायः—

धूपनालेपनाभ्यागैः प्रमथन्ति गुदाकुराः ॥ २७ ॥  
 मचितं दुष्टरुधिरं ततः संपद्यते सुखी ।

### रुधिरहरणम्—

भवतमानमुच्छूनकठिनेभ्यो हरेदसृक् ॥ २८ ॥  
 अर्शोभ्यो ४ जलजाद्यस्त्रनूचैर्बुधैः पुनःपुनः ।  
 शीतोष्णस्निग्धहृष्टाद्यैर्न ५ शोधयेत्पद्याभ्यात् ॥ २९ ॥  
 रक्ते दुष्टे भिषक् तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत् ।

### गोरक्षपानम्—

यो जानो गोरक्षः शौराद्वह्निचूर्णानधूणितान् ॥ ३० ॥

१ वृकवाकुः कुम्कुटः । २ हल्लिनो-ल्लाङ्गली । ३ अनुवामनेभवानि आनुवास-  
 निसानिर्तः पिप्पलीमदनफट्टमित्यादिभिः । ४ जलजा-जलीका । ५ बह्निश्चित्रकः ।  
 गोरक्षः ।



पिबंस्तमेव तेनैव भुञ्जानो गुदञ्चान् जयेत् ।

### चूर्णपानम्—

कोविदारस्य मूलानां मयितेन रजः पिबेत् ॥ ३१ ॥

अश्वन् जीर्णे च पथ्यानि मुच्यते १ हतनामभिः ।

### हिंवादि चूर्णपानम्—

गुदश्चयष्टचूर्णार्तो मंदाग्निर्गोमिकान् पिबेत् ॥ ३२ ॥

हिंवादीननुतक्रा वा खादेद्गुदहरीतकीम् ।

तक्रेण वा पिबेत्पथ्यावेत्ताम्रिकुटजन्वच ॥ ३३ ॥

कलिंगमगधज्योति २ मूरणान्वागवचिनाम् ।

कोष्णोद्युम्बा वा त्रिपटुव्योपहिंश्चम्बवेतसम् ॥ ३४ ॥

### तक्रतर्पणम्—

युक्तं बिरवकपिन्ध्याभ्यां महीपथविडेन वा ।

आरुक्करैर्यवान्या वा प्रदद्यात्तत्रतर्पणम् ॥ ३५ ॥

दद्याद्वा हृषुषा हिगु चित्रकं तक्रभंगुतम् ।

मामं तक्रानुषानानि खादेन्मोक्षुफल्यानि वा ॥ ३६ ॥

पिबेद्दहरहस्तक्रं निरघ्नो वा प्रकामसः ।

अत्यर्थं मंदकायाग्नैस्तक्रमेवावचारयेत् ॥ ३७ ॥

### तक्रप्रयोगकालादि—

मसाह वा दशाहं वा मासार्धं मासमेव वा ।

बलकालविकारजो भिषक् तक्रं प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥

सार्यं वा लाजमत्तूना दद्यात्तक्रावनेहिकाम् ।

जीर्णे तक्रे प्रदद्याद्वा तक्रपेया मर्मवचाम् ॥ ३९ ॥

तत्रानुषानं रास्नेहं तक्रोदनमतः परम् ।

गुपे रमैर्वा तक्राढ्यैः शालोन् भुञ्जीत मात्रया ॥ ४० ॥

## त्रिविधतक्रप्रयोगः—

रक्षमर्षोद्धृतस्नेहं यतश्चानुद्धृतं घृतम् ।  
तक्रं दीपाग्निबलवत्त्रिविधं तत्प्रयोजयेत् ॥ ४१ ॥

## तक्रप्रयोगेगुणाः—

न प्ररीहति गुदजा. पुनस्तक्रममाहवाः ।  
निषिक्तं तद्धि दहति भूमावपि तृणोलुपम् ॥ ४२ ॥  
स्रोतःसु तक्रदुद्धेषु रमो घातूनुर्पति यः ।  
तेन गुष्टिर्वलं वर्णः परं तुष्टिश्च जायते ॥ ४३ ॥  
घातश्लेष्मत्रिकाराणां घातं च विनिवर्तते ।

## मथितविशेषपानेगुदुजक्षयः—

<sup>१</sup>मथितं भाजने क्षुद्रकृशीफण्येपिने ॥ ४४ ॥  
निपातं पर्युपितं पेयमिच्छद्भिर्गुदजक्षयम् ।

## तक्रारिष्टपानम्—

घान्धोपकुञ्चिकाजाजीह्वुपापिप्पलीद्वयः ॥ ४५ ॥  
<sup>२</sup>कारवीथ्रंविनशठीमवाभ्यक्षियवानर्हः ।  
चूर्णितंघृतपात्रस्थं नात्मम्ल तक्रमामुतम् ॥ ४६ ॥  
तक्रारिष्टं पिबेज्जातं ध्येक्ताम्लकटु कामतः ।  
दीपनं रोचनं वष्यं कफवातानुलोमनम् ॥ ४७ ॥  
गुदश्वयगुर्कट्वातिनाशनं बलवर्धनम् ।

## तक्रप्रयोगः—

त्वर्धं चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुभं प्रलेपयेत् ॥ ४८ ॥  
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्षोहरं पिबेत् ।  
भाण्यास्फोनामृतापचकोलेष्वप्येष संविधिः ॥ ४९ ॥

१ मथितं तक्रम् । २ कारवी—“अंगरेला” या “स्माह्वारा” इति लोके ।

## स्नेहतपेयादि—

पिटृर्गजकणापाठागरवीपंचकोटकैः ।

तुचर्वजाजीघनिकाविस्त्रमध्यैश्च कल्पयेत् ॥ ५० ॥

फलाभ्यान्ममकस्नेहान् पेयायूपरमादिकान् ।

एभिरेवीपर्घैः साध्यं चारि मपिश्च दीपनम् ॥ ५१ ॥

वक्ष्यते गाढवर्चयाम् क्रमोयं भित्तशृता,

## गाढवर्चसिचिकित्सा—

स्नेहाद्वैः मत्तुभिर्मुक्ता लवणा वारुणी पिबेत् ॥ ५२ ॥

लवणा एव वा तत्रमीधुघान्याम्भवाहणीः ।

प्राग्भक्तं यमके शृष्टान् मत्तुभिश्चावर्चयित्वान् ॥ ५३ ॥

करंजपल्लवान् खादेद्वातवर्चोनुलंभनान् ।

मगुड नागर पाठा गुच्छारवृत्तानि वा ॥ ५४ ॥

गोमूत्राप्युपिगामघामगुडा वा हरीतकीम् ।

## हरीतकी प्रयोगः—

पथ्यास्तनद्वयं मूत्रत्रोणेनाऽऽमूत्रमंशयात् ॥ ५५ ॥

पक्वात् खादेत्तममघृना द्वे द्वे ऽन्ति कफोदभवान् ।

दुर्नामकुष्ठरवणुगुम्भमेहोदरकुमीन् ॥ ५६ ॥

पथ्यधुंदापचीस्थोन्धपाद्दुरोगाक्षमारुगान् ।

## गुदाङ्कुरनाशनायोगाः—

अत्रशृंगीजटारल्लज्जामूत्रेण य. पिबेत् ॥ ५७ ॥

गुडवार्तारुभुत्तम्य नश्यत्याशु गुदाङ्कुराः ।

श्वेत्तारमेन त्रिवृता, पथ्या तत्रेण वा मह ॥ ५८ ॥

१ एभिर्गजकणादिभिः पिप्पलीद्वयपिप्पलीगजपिप्पली च । यवानकोऽ-  
जमोश । २ लवणा लवणमहिताम् । चार्तिको वृत्ताः । श्वेत्तारिका लवणा-  
मल्लवणाः ।

पथ्यां वा पिप्पलीयुक्तां घृतभृष्टा गुडान्विताम् ।,  
 अथवा मन्त्रिवृद्धी भक्षयेदनुलोमनीम् ॥ ५९ ॥  
 हृते गुदाशये दोषे गुदजा याति संक्षयम् ।,  
 दाडिमस्वरमाजाजीववानीगुडनागरैः ॥ ६० ॥  
 पाठ्या वा युतं तक्रं वातवर्जानुलोमनम् ।,  
 सीधुं वा गौडमयञ्च सचिश्चकमहीपचम् ॥ ६१ ॥  
 पिपेत्सुरा वा हृष्टा पाठासौवर्चलान्विताम् ।,  
 दद्यादिदशकैर्वृद्धा<sup>१</sup> पिप्पलीद्विपिचुं तिलान् ॥ ६२ ॥  
 पीत्वा क्षीरेण लभते बलं देहहृताशयोः ।,

### पाठाप्रयोगः—

दुस्पर्शकेन वित्त्वेन यवान्या नागरेण वा ॥ ६३ ॥  
 एकैकेनापि संयुक्ता पाठा हृत्पार्श्वे स्था सजम् ।

### अभयारिष्टः—

मलितस्य बहे पक्त्वा प्रस्यार्धमभयात्पचम् ॥ ६४ ॥  
 प्रस्यं धाम्ना दशपलं कपित्थानां ततोऽर्धतः ।  
 विशालां रोध्रमरिचकृष्णावेल्लैलवालुकम् ॥ ६५ ॥  
 द्विपलाशं पृथक्पादशये पूने गुडास्तुले ।  
 दत्त्वा प्रस्यं च घातवयाः स्थापयेद् घृतभाजने ॥ ६६ ॥  
 पक्षात्मा क्षालितोऽरिष्टः करोत्यग्निं निहंति च ।  
 गुदजग्रहणीपाङ्गुक्षोदरगरज्वरान् ॥ ६७ ॥  
 श्वयधुस्रोहृद्दोषगुल्मवदमवर्मागुमीन् ।

### अन्योऽरिष्टः—

जलद्रोणे पचेद्द्विदशमूलजराधिकान् ॥ ६८ ॥

१ दशपिप्पल्य आदियैषा दशवाना दशादयश्चने दशकास्तैः । प्रथमदिनं दश  
 पिप्पलीमितलस्य च द्विपिचुमेवं प्रतिदिनं दशपिप्पलीद्विपिचुं च तिलस्य  
 वर्द्धयेत् । अत्रनालस्यानुत्तत्वाद्येष्ट बालमस्य प्रयोगः कार्यः । बहे द्रोणचतुष्टये ।

पालिकान्पादश्रेणे तु शिपेद्गुष्टुलं परम् ।

पूर्ववत्तर्कमस्य स्थादागुलमितरस्त्वयम् ॥ ६६ ॥

### दुरालभारिष्टः—

पचेद्दुरालभाप्रस्थं श्रेणेऽपां प्रासृतैः सह ।

देन्तीपाठासिबिजयावामामलकनागरैः ॥ ७० ॥

तस्मिन् सितासतं<sup>१</sup> दद्यात्पादस्थेऽग्न्यञ्च पूर्ववत् ।

लिपेत्कुम्भं तु फलिनीकृष्णाचम्पाज्यमाक्षिपैः ॥ ७१ ॥

### घृतप्रयोगः—

प्राग्भक्तमानुलोभ्याय फलाम्लं वा पिवेद् घृतम् ।

मध्वचित्रकमिद्धं वा यवशारगुडाम्बितम् ॥ ७२ ॥

पिप्पलीमूलमिद्धं वा मगुडशारनागरम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूत्रधेनिकादाडिमैर्घृतम् ॥ ७३ ॥

दध्ना च मापितं पातशकृन्मूत्रविषधहृत् ।

पक्षाशशारतोयेन त्रिगुणेन पचेद् घृतम् ॥ ७४ ॥

वरमकादिप्रतीवापमर्शोन्नि दीपनं परम् ।

पञ्चक्रीताभयाक्षारयवार्नविडनैववै ॥ ७५ ॥

सपाठाभान्यमरिचैः मयिह्वैर्दधिमद्धृतम् ।

माधयत् तज्जयरपाशु गुदवक्षणवेदनाम् ॥ ७६ ॥

प्रवाहिका गुदभ्रदा मूत्रकुञ्जु परित्यजम् ।

### चाङ्गेरीघृतम्—

पाठात्रमोदवनिकाश्वेदंष्ट्रापचक्रोलकैः ॥ ७७ ॥

सवित्स्वैर्दधि चाङ्गेरीस्वरसे च घृतगुणे ।

हंताज्घ्नं सिद्धमानाह मूत्रकुञ्जु प्रवाहिकाम् ॥ ७८ ॥

१ अरपदन्तरिष्टस्यपरमन्वरमवपातकीपरिमाणं - घृतभाजने - स्थापनादि पूर्ववत्-अभमारिष्टनुत्थम् । २ विजया पय्या । ३ अन्यत्-स्थापनादि पूर्ववदभया-रिष्टवत् । ४ धनिरा धान्यवम् ।

गुदघ्नं चातिगुदजग्रहणीगदमारुतान् ।

मांसरसप्रयोगः—

शिशितित्तिरिलावाना रमान्मलान् मुमस्त्वान् ॥ ७६ ॥

दशाणां वर्तमाना वा दद्याद्विद्वातमग्रहे ।

शाकान्नादि—

वास्तुकाग्निवृद्धीपाठाम्लीकादिपल्लवान् ॥ ८० ॥

अन्यच्च कफवातघ्नं शार्कं च लघु भेदि च ।

सहिगु यमके शृष्टं मिदं दधिसरः सह ॥ ८१ ॥

घनिकार्षचकौलाम्या पिष्टाम्ना दाडिमायुना ।

१ आद्रिकायाः किमलयैः शकलैरार्द्रस्य च ॥ ८२ ॥

युक्तमगारघूपेन हृद्येन मुरभीवृतम् ।

सजीरकं ममीरिषं विडसीवर्चलोत्पटम् ॥ ८३ ॥

वातौत्तरस्य रूपस्य मंदाग्नेर्बद्धवर्धनः ।

कल्पयेद्रक्तपाल्यम् २ व्यजनं शाकवत्मान् ॥ ८४ ॥

मोगोपाछागलोष्ठाणां विशेषात्क्रव्यभोजिनाम् ।

पानम्—

मदिरां शार्करं गौडं सीधुं तक्रं तुषोदकम् ॥ ८५ ॥

अरिष्टं मस्तु पानीयं पानीयं वाऽत्यक्तं शृतम् ।

धान्येन धान्यशुंठीभ्या कटकारिरुयाज्यवा ॥ ८६ ॥

अत्रे भक्तस्य मध्ये वा वातवर्चोनुलोमनम् ।

विड्वाताद्यनुलोमने हेतुः—

विड्वातकफपित्तानामानुलोम्ये हि निर्मले ॥ ८७ ॥

गुदे शाम्यति गुदजाः पावकश्चाभिवर्धते ।

१ आद्रिकाया घनिकायाः किमलयैः पल्लवैः । शकलैः खण्डैः । २ व्यञ्जनं  
गूपकवितादि ।

## अनुवासन वस्तिप्रयोगः—

उदावर्तपरीता ये ये चात्यर्थं विरुक्षिताः ॥ ८८ ॥  
 बिलोमवाताः शूलार्तास्नेपिष्टमनुवापनम् ।  
 पिप्पली मदनं विल्वं अताह्नां मधुक वनाम् ॥ ८९ ॥ -  
 कुष्ठं दाठीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च ।  
 पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरमंगुतम् ॥ ९० ॥  
 अर्शनां मूढवातानां तच्छुष्यमनुवासनम् ।  
 गुर्वनिःकरणं शूलं गूधकृच्छ्रं प्रवाहिकम् ॥ ९१ ॥  
 कट्पूरुपृष्ठदोषैत्यमानाहं वंक्षणाग्रयम् ।  
 पिच्छान्नावं गुरे शोफ वातवर्षाविनिग्रहम् ॥ ९२ ॥  
 उन्धानं घट्टशी वच्च जयेत्तच्चानुवापनात् ।

## निरुहण प्रयोगः—

निरुहं वा प्रयुजोत गशीरं पाचमूलिकम् ॥ ९३ ॥  
 ममूषस्नेहलवणं धर्त्तैर्युक्तं फलादिभिः ।

## रक्तार्शश्चिकित्सा—

अथ रक्तार्शता वीक्ष्य मास्तस्य कफस्य वा ॥ ९४ ॥  
 अनुषर्धं घृतः स्निग्ध दक्षं वा योजयेद्विमम् ।

## वातानुबन्धकफानुबन्धकसंज्ञम्—

शकृच्छ्रघावं खरं रुजमथो निर्वर्ति नाविलः ॥ ९५ ॥  
 कट्पूरगुदशूल च हेतुर्गदि च रुक्षणम् ।  
 तत्रानुबन्धो यातस्य, श्वेत्पणो यदि विट् श्लथा ॥ ९६ ॥  
 श्वेता पीता गुरुः स्निग्धा मपिच्छः स्तिमितो मुदः ।  
 हेतुः स्निग्धगुदविद्याशयास्वं चाग्नलक्षणात् ॥ ९७ ॥

## दुष्टेऽश्लेशोचनादिः—

दुष्टेऽग्रे शोषनं वार्यं तंघनं च यथावलम् ।  
 मायच्च दोषैः फालुष्यं भुतेस्तानुपेक्षणम् ॥ ९८ ॥

### तित्कद्रव्यैरुपचारः—

दोषाणां पाचनार्थं च वह्निसंघुभगाय च ।  
संग्रहाय च रक्तस्य परं तिक्तैरुपाचरेत् ॥ ६६ ॥

### प्रक्षीणदोषादेरक्तस्नावेचिकित्साः—

यत्तु प्रक्षीणदोषस्य रक्तं वातोत्पणम्य वा ।  
स्नेहैस्तन्त्रोद्ययेद्युक्तं पानाम्भ्यञ्जनवस्तिपु ॥ १०० ॥

### पित्तोत्त्रिण रक्तस्यस्तम्भनम्—

यत्तु पित्तोत्त्रिण रक्तं धर्मकाले प्रवर्तते ।  
स्तम्भनीय तदेकान्मात्रं चेद्वातरुफानुगम् ॥ १०१ ॥

### कफानुगतेरक्ते क्रियाः—

सर्वफेऽग्रे पिवेत्पावयं दृढी कुटजवल्कलम् ।  
किराततित्कं दृढी घन्वयास कुर्षदणम् ॥ १०२ ॥  
दार्वीत्वङ्निवसेभ्यानि त्वचं वा दाडिमोद्भवाम् ।  
कुटजत्वक्कल साधर्मं माक्षिकं <sup>१</sup>धुणवृक्षभाम् ॥ १०३ ॥  
पिवेत्तुल्लतोमेन कल्कितं वा <sup>२</sup>मयूरकम् ।

### कुटजावलेहः—

तुला दिभ्याभनि पचेदाश्रयाः कुटजत्वचः ॥ १०४ ॥  
नीरमामा त्वचि क्वाये दद्यात्सूक्ष्मरजीकृतान् ।  
मर्मगाफलनीमोचरसाम्मुष्टर्षचक्रान्समान् ॥ १०५ ॥  
<sup>३</sup>तैश्च शक्रमवान्यूते ततो दर्वीप्रलेपनम् ।  
पक्त्वावनेहं लोढ्वा च तं यथाश्विल पिवेत् ॥ १०६ ॥  
पेया मर्दं पयशलागं मर्द्यं वा छागदुग्धमुह् ।  
सेहोऽयं शमयत्याशु रक्तातीमारपायुजान् ॥ १०७ ॥

१ ताश्च रमाञ्जनम् । धुणप्रिया अतिविपा । २ मयूरकमपामार्गम् ।

३ तैः गमद्गादिभिः समान् शक्रमवान्-इन्द्रयवान् ।



बलवद्रक्तपित्तं च सबद्धर्ममघोऽपि वा ।

अन्यः कुटजावलेहः—

कुटजत्वक्कुटा शोथे पचेदष्टाशतोपताम् ॥ १०८ ॥

कल्कीकृत्य क्षिपेत्तत्र तापर्यशैले वटुत्रयम् ।

रोध्रद्वयं मोचरमं बला दाडिमजां स्वचम् ॥ १०९ ॥

चित्पत्रकटिका युस्तं समगा धातकीफलम् ।

पलोन्मितं दद्यपलं कुटजस्यैव च स्वच ॥ ११० ॥

त्रिशात्पत्तानि गुडतो घृतात्पूते च विशतिः ।

तत्पक्व लेहतां धातं घाग्ये पक्वस्थितं लिहन् ॥ १११ ॥

मवांनोप्रहृणीदोषश्चासकानाश्रियच्छति ।

रक्तस्तम्भनाः प्रयोगाः—

रोध्रं तिलान्मोचरमं समगा चंदनीफलम् ॥ ११२ ॥

पापयित्वाऽजदुग्धेन घालीस्तेनैव भोजयेत् ।

यष्टपाह्वपक्वकान्तापमस्याक्षीरमोरटम् ॥ ११३ ॥

मनिसामधु पातम्य दीतसोयेन तेन वा ।

रोध्रकृद्गङ्गकुटजसमंगाद्यात्मलीत्वचम् ॥ ११४ ॥

हिमकेसरयष्टपाह्वसंख्यं वा तडुलावुना ।

ययानीद्रववा. पाठा बित्त्व शु ठी रसाजनम् ॥ ११५ ॥

चूर्णञ्च लेहितः शूलं प्रवृत्ते चाऽतिशोणितं ।

दुग्धिकाकटकारीम्या सिद्ध सर्पिः प्रशस्पते ॥ ११६ ॥

अथवा धातकीरोध्रकुटजत्वक्पलोत्पलैः ।

मकेसरैर्यवक्षारदाडिमस्वरसेन वा ॥ ११७ ॥

शर्करांभोजकजत्वक्महितं सह वा तिलैः ।

अभ्यस्तं रक्तगुदजान् नवनीतं नियच्छति ॥ ११८ ॥

छागनवनीतादिप्रयोगः—

छागानि नवनीताज्यक्षोरमांसानि जागतः ।

अनम्लो वा फटम्लो वा गवास्तुरुरगो रमः ॥ ११९ ॥

रक्तमालिः सरो दध्नः पष्टिकस्तृणी मुरा ।

तरणश्च नुगमंडः शोणितस्योपयं परम् ॥ १२० ॥

**पलाण्डु प्रयोगः—**

पेयायूपरमाद्येषु पलाण्डुः केवलोऽपि वा ।

म जयत्युत्कर्षं रक्तं मारुतं च प्रयोजितः ॥ १२१ ॥

**रक्तेऽतिस्तुतेचिफिरसा--**

वातोन्वणानि प्रायेण भवन्त्यग्रेऽतिनिःसृते ।

अर्तामि तन्मादधिकं तज्जये यत्नमाचरेत् ॥ १२२ ॥

**रक्तेऽतिवृद्धेशीतोपचारः--**

दृष्ट्वाऽन्नपित्तं प्रवृज्जमवली च कफानिली ।

शीतोपचारः कर्तव्यः सर्वथा तत्प्रसातये ॥ १२३ ॥

**एवं शमाभात्रेरसैस्तर्पणम्—**

यदा चैवं शमो न स्यात् स्निग्धोष्णैस्तेर्पयेत्ततः ।

रमैः कोष्णैश्च सपिभिरपि ईकयोजितैः ॥ १२४ ॥

तेजयेत्त कवोष्णैश्च कामं तैत्तयोधृतैः ।

**पिच्छायस्तिः—**

यवामकुशकाशाना मूलं पुष्पं च शात्मनैः ॥ १२५ ॥

श्यामोषोर्दुर्वराश्वत्थशुंभाश्च द्विपलोष्मिताः ।

त्रिप्रस्थे सलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थे च माघयेत् ॥ १२६ ॥

क्षीरशेषे कपाये च तस्मिन्पूते विमिश्रयेत् ।

कन्कीकृतं मोचरमं समगां चदनोत्पलम् ॥ १२७ ॥

प्रियंगुं कीटजं बीजं कमलस्य च केसरम् ।

पिच्छावस्तिरयं मिदः भघृतदोदशर्करः ॥ १२८ ॥

१ अवपीडकं भक्तोत्तरं घृतपानम् ।

प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तमावज्वरापहः ।

**अनुवासनम्—**

षष्ठ्याह्नुपुंडरीकेण तथा मोचरमादिभिः ॥ १२६ ॥

क्षीरद्विगुणितः पक्वो देयः स्नेहोऽनुवासनम् ।

**धृतम्—**

मधुकोशकरोध्रांशुमधंगा विल्वचंदनम् ॥ १२७ ॥

चक्रिकातिविषा गुस्तं पाठा क्षारो यवाग्रगः ।

दार्ढ्यत्वङ्नागरं माषी चित्रको देवदारु च ॥ १२८ ॥

द्यागैरोत्थरसं भपिः साधितं तैल्लिदोषजित् ।

अर्गोतिसाग्नहर्षापादुरोगज्वराक्षयी ॥ १२९ ॥

मूत्रकृच्छ्रं गुदभगे बस्त्यानाहं प्रधाहणे ।

पिच्छासावर्शमा गुणं देय तन्मरमोपधम् ॥ १३० ॥

**व्यत्यासान्मधुराम्लप्रयोगः—**

व्यत्यासान्मधुराम्लानि क्षीर्माषाणि च यांजयन् ।

निम्बमश्विबलापेक्षा जयन्वर्शं कृतान् गदगन् ॥ १३१ ॥

**स्वेदादि—**

उदावर्तानिमज्जयन् तैलं क्षीतज्वरापहः ।

गुलिधैः स्वेदयेन्निर्द्वैर्वातिमग्ने गुदे ततः ॥ १३२ ॥

अभ्यक्ता तरुतरागुष्ठमनिभामतुलीमर्कम् ।

दद्याच्छनामानिबृहतीपिप्पलीनीलिनीफली ॥ १३३ ॥

त्रिचूर्णितैल्लयणीगुडमोमूत्रमयुतैः ।

तद्वन्मागधिकाराठगृध्रमे समर्पयैः ॥ १३४ ॥

एतेषामेव वा चूर्णं गुदे नाड्या विनिर्धयेत् ।

**स्निग्धवस्त्यादि—**

उद्विषाते मुतीक्ष्णं तु वस्ति स्निग्धं प्रीडयेत् ॥ १३५ ॥

कञ्जं कुर्यादगुदाद्यरो विष्मूत्रमस्तोऽस्य नः ।  
 भूयोऽनुबन्धे वातघ्नैर्विरेच्यः, स्नेहरेचनैः ॥ १३६ ॥  
 अनुवासरश्च रौक्ष्यादि संगो मास्त्रवर्चसोः ।

कल्याणकक्षारः—

त्रिकटुत्रिगुणश्रेष्ठादंस्वरुक्करचिचकम् ॥ १४० ॥  
 जर्जरं स्नेहमूत्राक्तमंतर्धूमं विपाचयेत् ।  
 दारावमथो मृक्षितं क्षारः कल्याणकाह्वयः ॥ १४१ ॥  
 स पीतः सर्पिषा युक्तो भक्तौ वा त्रिगुणभोजिना ।  
 उदावर्तविषधानोऽगुन्मपाहूदरकुमां ॥ १४२ ॥  
 मूत्रमंगाशमरोक्षोऽहोऽहोऽगप्रहर्णोऽगदान् ।  
 मेहस्त्रीहरुजानाहृष्यामकामाश्च नागयेत् ।

गाढपुरीषप्रदत्रयोऽयम्—

नर्षं च कुर्याद्यत्प्रोक्तमर्थना गाढवर्चसाम् ॥ १४३ ॥

शुक्तप्रयोगः—

द्रोणोऽगो पूतिवल्कदिनुलमथ पचे-  
 त्पादशये च तस्मिन्  
 देयानोतिगुडस्य प्रतनुकरजसो  
 व्यापतांष्टी पलानि ।  
 एतन्मासेन जातं जनयति परमा-  
 मूषुगः पक्तिवर्ति  
 शुक्तं कृत्वाऽनुलोम्यं प्रजयति गुदज-  
 प्लाहगुल्मीदराणि ॥ १४४ ॥

शुक्ल प्रयोगः—

पचेत्तुला पूतिकरंजवल्काद्  
 द्वे मूलतश्चित्रककटकाद्यौ ।  
 द्रोणत्रयोऽग चरणावशेषे  
 पूते दाने तत्र गुडस्य दद्यात् ॥ १४५ ॥

पल्लिकां च मुचणितं त्रिजात-  
 त्रिकटुप्रथिरुदाडिमाशमभेदम् ।  
 गुरुगुप्फरमूलचान्यचन्यं  
 हृषुषामार्द्रकमम्लवेतसं च ॥ १४६ ॥  
 दातोभूतं क्षीद्रविशत्युपेत-  
 मार्द्रद्राक्षावोजपूरार्धकश्च ।  
 युक्त काम गडिकाभिस्त्येक्षोः  
 सर्पिः पात्रे मासमात्रेण जातम् ॥ १४७ ॥

क्षुक्रं प्रकचमिवेद दुर्नाम्ना वह्निदीपन परमम् ।  
 पांडुगरोदरगुल्मप्लीहानाहाशमकृच्छ्रघ्नम् ॥ १४८ ॥

### द्वितीय र्क्षुक्र प्रयोग :-

द्रोण पीतुरमस्य वस्त्रगलित न्यस्त हविर्भाजने  
 युजीत द्विपलैर्मदौमघुफलासर्जूरधानीफलैः ।  
 पाठामाद्रिदुरालभाम्लविदुलव्योपत्वंगैलौहकै-  
 स्पृकाकोललवगनेल्लक्षपलामूलामिनकैः पालिकैः ॥ १४९ ॥

गुडपलद्यतयोजित निवाते  
 निहितमिदं प्रपिबश्च पक्षमाश्रात् ।  
 निशमयति गुदांशुरान् सगुल्मा-  
 ननलबलं प्रबल करोति चाद्यु ॥ १५० ॥

### गुडावलेह :-

एकैकरो दशपले दशमूलकुम्भै-  
 पाठाद्व्याकषुणवत्तभक्तफलानाम् ।  
 १ दग्धे, सृतेऽनु कलशेन जलेन पक्वे  
 पादस्थिते गुडनुला पलपचक च ॥ १५१ ॥

१ मदा-पातकी । मधुफला-द्राक्षा । मार्द्रा रेखुका । २ कुम्भः त्रिवृत् ।  
 ३ दग्धे, कलशेन द्रोणेन जलेन सृते पक्वे पाद स्थिते ।

## पिण्डी—

चूर्णीकृताः षोडश मूरणस्य  
 भागास्ततोऽर्धेन च चित्रकस्य ।  
 महोपचादौ गरिचस्य चैको  
 गुडेन दुर्गानजयाय पिण्डी ॥ १५८ ॥

## चूर्णम्—

पथ्यानागरकुण्ठाकरंजवेल्हामिभिः सितातुल्यैः ।  
 यड्यामुख इव जरयति बहुगुर्वपि भोजनं चूर्णम् ॥ १५९ ॥

## वटिका—

कलिगलामलीकुण्ठावल्हपपामार्गतडूलैः ।  
 भूनिवसैभ्यगुडगुडा गुदजनाशनाः ॥ १६० ॥

## चूर्णतम्रयुक्तम् :—

लवणोत्तमवल्हकलिगयवा-  
 श्रिरवित्थमहापिचुमंदयुतान् ।  
 पिव ममदिन यथितानुडितान्  
 यदि मदितुमिच्छति पायुरहान् ॥ १६१ ॥

## अर्शसिप्रधानसौषधम् :—

दुध्नेषु भक्षातकमपूपमुक्तं  
 भैषज्यमार्द्रेषु तु यस्मकस्वरु ।  
 रावेपु सर्वर्तुषु कालोप-  
 मर्शःसु बल्यं च मलापहं च ॥ १६२ ॥

## अन्यत्संन्यास्याज्यन्वः—

भित्ता विबंधाननुलोमनाय  
 यन्मास्तस्याग्निबलाय यच्च ।

तद्वन्नानीपधमद्यमेन<sup>१</sup>

सेव्यं, विवर्ज्यं विपरीतमस्मात् ॥ १६३ ॥

अर्शसिजाठराग्निरक्षा—

अर्शोतिमारग्रहणीविकाराः

प्रायेण चान्योन्यनिदानभूताः ।

मन्नेऽनले संति न संति दीप्ते

रक्षेदतस्तेषु विशेषतोऽग्निम् ॥ १६४ ॥

## नवमोऽध्यायः ।

अथातोऽतीसारचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

अतीसारे लंघनम्—

“अतीमारो हि भ्रमिष्ठं भवत्यामाद्यपान्बयः ।

हृत्वाग्निं वातजेष्वस्मात्प्राक् तस्मिन्लंघनं हितम् ॥ १ ॥

वमनम् :—

शूलानाहप्रसेकात् वामयेदतिसारिणम् ।

संचितदोषेषूपेक्षा—

दोषाः संनिचिता ये च विदम्याहारमूर्छिताः ॥ २ ॥

अतीमाराम कल्पते तेषूपेक्षैव भेषजम् ।

भृशोत्केनेद्यप्रदृत्तेषु स्वयमेव चलादमम् ॥ ३ ॥

१. अस्मात् विपरीतं वातजिवन्वाग्निमग्न्यहस्वप्रपन्नम् ।

## आमातिसारेभेषजनिषेधः—

प्रयोज्यं नतु मंग्राहि पूर्वमायाविमारिणि ।

## विबद्धेदोषेहरीतकी—

अपि चाग्मानगुप्ताशूक्तस्तैगित्यारिणि ॥ ४ ॥

प्राणदा प्राणदा दोषे विबद्धे संप्रवर्तनी ।

## मध्याल्पदोपयोश्चिकित्सा—

पित्तेररुक्षयितास्तोषे मध्यदोषो विदोषयन् ॥ ५ ॥

शूनीकपिप्पलीसूठोवचाधाम्यहरीतकीः ।

अथवा बिल्वधनिकामुस्तानागरवालपम् ॥ ६ ॥

विट्ठाठावचापध्नाशृमिजिन्नागगणि वा ।

मूठोषनवचामा श्लेष्मिल्वल्म्यकहिगु वा ॥ ७ ॥

रास्पने त्वल्पदोषाणामुपवामोऽतगारिणाम् ।

## साधितजलम्—

वचाप्रांति रपास्था वा गुप्ताशृपटनेन वा ॥ ८ ॥

श्लेष्मेनागराम्ब्रा वा विपक्वं पाययेज्जलम् ।

## क्षुधायामन्नम्—

पुष्पेऽन्नफले शुम्भामं लम्बप्र प्रतिबोजयेन् ॥ ९ ॥

तथा न त्रीन् प्राश्नाति रुचिमग्निबल बलम् ।

## मुखानस्य पानम्—

तक्रेणावतिसोमेन यवाग्ना वर्पणेन वा ॥ १० ॥

गुरया मजुना वाऽथ यथासात्म्यमुपाचरेत् ।

## भोज्यानि—

भोज्यानि कल्पयेदूर्ध्वं याहिदीपनपायनैः ॥ ११ ॥

बालबिल्वशठीधान्याह्निगुग्गुलास्तदादिभ्यैः ।

पल्लवाह्नुपाजानीयवानीविट्ठमेधवैः ॥ १२ ॥



लघुना पंचमूलेन पंचकोलेन पाठया ।

पेय.—

घालिपर्णीवलाविल्वैः पृथिपपर्था च माधिता ॥ १३ ॥

दाडिमाम्बुहिता पेया कफपित्ते ममुत्पणे ।

अभयापिप्पलीमूलविस्वैर्वातानुलोमनी ॥ १४ ॥

धनुदोपेचिकिरसा—

विचट्टं दोषबहुलो दोताप्रियोऽत्रिसार्यते ।

कृष्णाविडंगत्रिफलाकपार्यस्तं विरेचयेत् ॥ १५ ॥

पेया युञ्ज्याद्विरक्तस्य वातघ्नैर्दोषनैः कृताम् ।

अतिसार्यामेचिकिरसा—

आमे परिणमे यस्तु दीप्तैऽश्वावुपवेश्यते ॥ १६ ॥

सफेनपिच्छं सर्जं सविबंधं पुनः पुनः ।

अस्यास्पमत्पं ममलं निर्विड्वा सप्रवाहिकम् ॥ १७ ॥

दधितलघृतशरीरैः स घृठी समुद्रा गिवेत् ।

स्विन्नानि गुडतलेन भक्षयेद्ददराणि वा ॥ १८ ॥

गाढविड्विहितैः शार्कैर्बहुस्नेहेस्तथा रतैः ।

धुधितं भोजयेदेनं दधिदाडिममाधितं ॥ १९ ॥

घाल्यादनं तिलैर्माषैर्मुद्गैर्वा साधु साधितम् ।

घृत्थं मूलैकपोद्गायाः पाठायाः स्वस्तिकम् वा ॥ २० ॥

स्तुपायवानीककर्कशरीरिणीविर्भटस्य वा ।

उपोदकाया जीवन्त्या वाकुच्या वास्तुत्रस्य वा ॥ २१ ॥

मुवर्चलायाश्चुचोर्वा लोणिकाया रसेरपि ।

कूर्मवर्तकरोपाकधिसितित्तिरिक्वीकुरुटैः ॥ २२ ॥

१ मूलकरोना लघुमूलम् । स्वस्तिकम् “मुन्गारी” इति लोके । २ स्तुपा-  
ग्रिण्डगुर्यवा वटी । अतिमैर्जं रोषम् ।

तत्तद्व्यागूः—

मिलनमुत्ताशिशिर्भपज्यभासकीपुष्पनागरः ।  
पक्काठीसारजित्तत्रे यवागूदाधिकी तथा ॥ २३ ॥  
कपित्थ<sup>१</sup>कञ्जुरापांभोथूथिकावटशंखुजः ।  
दाडिमोक्षणकार्पासीतात्मलीमोचपद्मार्पः ॥ २४ ॥

प्रवाहिकौपधम्—

कल्कोविल्वशालादूना तिलफलश्च तत्समः ।  
दध्नः सरौऽम्लः गन्धेहः खलो हृति प्रवाहिकाम् ॥ २५ ॥

अपराजितः खलः—

मरिचं घनिकाज्जानीनित्तिडीकशठीविडम् ।  
दाडिमं धातकी पाठा शिकता पचसोचकम् ॥ २६ ॥  
मायशकं कपित्थाम्रजयूमध्यं गर्दाप्यकम् ।  
विष्टैः पद्मगुणविल्वंस्तैर्दध्न मुद्गरसे गुडे ॥ २७ ॥  
स्नेहे च यमके सिद्धः खलोऽपमाराजितः ।  
दोषनः पाचनो प्राहृत्<sup>२</sup> हर्ष्या विविदिनाशनः ॥ २८ ॥

पुरीषक्षये चिकित्सा—

कीलाना वातवित्ताना कल्कैः शालिवयस्य च ।  
मुद्गमागतिनानां च धास्ययुषं प्रकल्पयेत् ॥ २९ ॥  
ऐकध्यां यमके भूटं दधिदाडिममारिकम् ।  
वर्चःक्षये क्षुब्धमुष्टं शात्यम्न तेन भोजयेत् ॥ ३० ॥  
दध्नः सरं वा यमके भृष्टं मगुडनागरम् ।  
मुरा वा यमके भृष्टा व्यञ्जनार्थं प्रयोजयेत् ॥ ३१ ॥  
फलाम्लं यमके भृष्टं युषं शृङ्गनरुत्य वा ।  
भृष्टान्वा यमके गत्तून् छादेद्ब्योपावचूर्णितान् ॥ ३२ ॥

१ कञ्जुरा जवागा । शंखुः—‘छसोडा’ हि० । २ विन्विनी प्रवाहिका रोगः ।

भापान् मुमिद्धास्तद्वद्वा घृतमण्डोपनेवनान् ।  
 रसं मुमिद्धपूतं वा छागमेपांतराधिजम् ॥ ३३ ॥  
 पचेद्दाण्डिमसाराम्लं गघान्यस्नेहनागरम् ।  
 रक्तशाल्योदनं तेन भुञ्जानः प्रपिवंश्च तम् ॥ ३४ ॥  
 वर्चःशायवृत्तरागं विनारंः परिमुच्यते ।

### लोहप्रयोगः—

बालबिम्बं गुडं तैलं पिप्पलीत्रिश्वभेषजम् ॥ ३५ ॥  
 लिह्याद्वाते प्रतिहृते मञ्जूलः मप्रवाहिकः ।  
 वत्सलं शिवरं पुष्पं धातव्या बदरीफलम् ॥ ३६ ॥  
 पिवेद्बिमरक्षौद्रवपित्त्यश्चरसाप्लुतम् ।  
 विवद्ववातवर्चास्तु बहुशूलप्रवाहिकः ॥ ३७ ॥

### क्षीरप्रयोगः—

सरक्तपिच्छस्तृष्णार्तं क्षीरमीहिन्यमर्हति ।  
 यमकस्योपरि क्षीरं धारोष्णं वा प्रयोजयेत् ॥ ३८ ॥  
 शृतमेरंडमूलेन बालबिम्बेन वा पुनः ।

### क्षीरपाकः—

पयस्युत्काश्य मुस्तानां विशतिं त्रैगुणेश्भमि ॥ ३९ ॥  
 क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्यादामं सवेदनम् ।

### प्रवाहिकौषधम्—

पिप्पल्याः पिवतः रुधिरं रजो मरिचजम्ब वा ॥ ४० ॥  
 निरकालानुपक्ताऽपि नश्यत्याशु प्रवाहिका ।

### क्षारघृत प्रयोगः—

निरामरूपं मूलार्तं लघनाक्षिच कपितम् ॥ ४१ ॥

१ अन्तराधिर्मध्यं शरीरम् । २ शिवरं वत्सलं लोघत्वक् । ३ विशतिर्मुस्ताः पलपरिमिताः । पाकप्रभो यथा—क्षीरालानि चत्वारि, पानीय पत्तानि द्वादश, पलपरिमितमुस्ताश्च दत्त्वा क्षीरावशेषः कार्यः ।

स्नानोष्ठमण्डेदयानि मक्षारं पाययेद् घृतम् ।

तैलप्रयोगः—

सिद्धं दधिपुरामण्डे दशमूलस्य चांभमि ॥ ४२ ॥

मिधूत्पपंचकोलाम्या तैल सद्योऽर्तनाशनम् ।

पद्भिः क्षुंठ्याः पलंद्वाभ्यां द्वाभ्यां ग्रंथ्यग्निसेधवात् ॥ ४३ ॥

तैलप्रस्थं पचेद्दध्ना निःसारकद्वजापहम् ।

एकतो मासदुग्धाज्यं पुरीषप्रहसूलजिव ॥ ४४ ॥

पानानुवासनान्धर्म्यप्रयुक्त तैलमेकतः ।

तद्धि यातजितामर्ष्यं शूलं च विगुणोऽनिलः ॥ ४५ ॥

धात्वन्तरोपमर्दाद्वै बलो व्यापी स्वधामगः ।

तैल मंदानलस्मादपि युक्त्या शर्मकर परम् ।

याम्बाशये सतैगे हि विविशो नावतिष्ठते ॥ ४६ ॥

क्षीणे मले स्वायतनच्युतेषु

दोषान्तेष्वारण्ये<sup>१</sup> एकरीरे ।

को निष्टनन्प्राणिति कोष्ठशूलो

नातर्त्रहिस्तैलपरो यदि स्यात् ॥ ४७ ॥

क्षीरघृतप्रयोगः—

गुदलभ्रं<sup>२</sup> क्षमोर्मुग्यात्मक्षीरं साधितं हविः ।

रसे कोटाम्लवागेयोर्दध्नि पिष्टे च नागरे ॥ ४८ ॥

१ निःसारकः प्रवाहिका । २ शूलं च विगुणोऽनिलः विगुणः क्षुपितोऽनिलो वायुः, (चेत्) शूलमूत्रक्षमित्यर्थः । धात्वन्तराणां पित्तश्नेष्मादीनां मुपमर्दोऽन्यथा-भावस्तस्मात् क्षुपितश्चलो वायुः, व्यापी सकलशरीरव्यापनशीलः, स्वधामगः पक्ववायव्यस्थः । ३ मलेपुरीये । दोषान्तरेषु-वायुवजितेषु क्षुपित्तादिषु । ईरणे बाने । निष्टनन् प्रवाहिकां कुर्वन् । आग्रन्दनपूर्वकः मशूलः पुरीषत्यागो निष्टननं कथ्यते । प्राणिति जीवति ।

## अन्यदुघृतम्—

तैरेव चाम्लैः संयोज्य मिदं मुष्टुद्वयकृत्तैः ।  
पान्योपपविडाजाजीपांचकोलकदाडिमैः ॥ ४६ ॥

## स्नेहवस्ति :—

योजयेत्स्नेहवस्ति वा दधामूलेन मायितम् ।  
शठीशताह्वाकुष्ठैर्वा वचया चित्रणेन वा ॥ ४७ ॥

## गुदभ्रंश चिकित्सा—

प्रवाहणे गुदभ्रंशे मूत्रापाते कटिग्रहे ।  
मधुराम्लैः शृतं तैलं घृतं बाप्यनुवागनम् ॥ ४८ ॥  
प्रवेशयेद्गुदं घ्वस्तमभ्यक्तं स्वेदितं मृदु ।  
कुर्याच्च गोःफणायघं मध्यच्छिद्रेण चर्मणा ॥ ४९ ॥  
पंनमूलस्य महतः कार्यं शीघ्रं विपाचयेत् ।

## मूषकतैलम्—

तुन्दुलं चात्ररहितं तेन वातज्जकलञ्चत् ॥ ५० ॥  
तैलं पचेद्गुदभ्रं च पानाम्भगेन तच्चयेत् ।  
पैले तु सामे तीक्ष्णोष्णवर्ज्यं प्रागिव लघनम् ॥ ५१ ॥

## अष्टाङ्गजलपानादि -

तृड्वान् पिबेत् पङ्कगान् सभूनिचं समारिवम् ।  
पेयादि क्षुधितस्यान्नमक्षिसंभुक्षणं हितम् ॥ ५२ ॥  
वृहत्पादिगणाभीरुद्रिबलाभूर्पपणिभिः ।

## अनुबन्धेऽतिइन्द्रियवाख्यपिष्टपानम्—

पापयेदनुवये तु सद्योऽत्रं तुदुलांममा ॥ ५३ ॥  
धत्तकस्य फलं पिष्टं सवर्त्तं सधुलाप्रियम् ।  
पालावत्सकवीजतन्मन्त्रार्थिप्रियक्युठि वा ॥ ५४ ॥

धार्थं चाऽतिविषावित्प्रवृत्तकादीन्धमुस्तजम् ।  
अथवाऽतिविषामूर्वानिर्धेद्रयवतार्ह्यजम् ॥ ५८ ॥  
समध्वतिविषाशुंठीमुस्तैद्रयवत्फलम् ।

### अन्यद्वीपधम्—

पलं वत्सकबीजस्य अपयित्वा रमं पिबेत् ॥ ५९ ॥  
यो रसादी जयेच्छीघ्रं स पैत जाठराममम् ।  
मुस्ताकपायमेवं वा वा पिवेन्मधुममायुतम् ॥ ६० ॥  
मक्षीं शात्मलीबुंतवपायं ना हिमां ह्वयम् ।

### तंडुलजलेन किरातचित्तर्वाद्योगाः—

किरातचित्तकं मुस्तं वरमां सरसाजनम् ॥ ६१ ॥  
कटक्टेरी ह्रीवेरं चिन्ममघ्यं दुरालभाम् ।  
तिलान् मोचरसं रोधे समगा कमलोत्पलम् ॥ ६२ ॥  
नागरं घातकीपुष्पं दाडिमस्य त्वगुदालम् ।  
अर्घश्रीरैः स्मृता योगा गक्षीद्रास्त्वंद्रुगानुना ॥ ६३ ॥

### निशादिकाथः—

निर्धेद्रयवगोघ्नैलाकाथः पकातिमारनुत् ।

### रोघादिगणपानम्—

रोघावघ्नाप्रियंन्नादिगणान्तद्रव् पृथक् पिबेत् ॥ ६४ ॥

### पेया—

कट्वंगयत्कयष्टथाह्वफलनीदाडिमाकुरैः ।  
पेयाविलेपीयगकान् कुर्यात्सद्वित्ताडिमान् ॥ ६५ ॥  
तद्वद्वित्प्रवृत्तवाद्यजंमुम्वैः प्रवजयेत् ।

### अजापयः प्रयोगः—

अजापयः प्रयोक्तव्यं निरामे तेन चेष्टम् ॥ ६६ ॥

दोषाधिक्यात् जायेत बलिनं तं विरेचयेत् ।

कायादि—

अपत्यात्तेन दानृद्रक्तमुपवेश्येत योऽपि वा ॥ ६७ ॥

पलाशफलनिर्गूहं युक्तं वा पयसा पिबेत् ।

ततोऽनु कोष्णं पातय्यं क्षीरमेव यथाबलम् ॥ ६८ ॥

प्रवाहिते तेन मले प्रशाम्यत्युदरामयः ।

त्रायमाणः प्रयोज्या—

पलाशवत्प्रयोज्या वा त्रायमाणा विरोधनो ॥ ६९ ॥

अनुवासनम्—

संनर्भा क्रियमाणायां सूक्ष्मं यद्यनुवर्तते ।

सुतदोषस्य तं शीघ्रं यथाबलं अनुवासयेत् ॥ ७० ॥

शतपुष्पावरीभ्यां छ बिल्बेन मधुकेन च ।

तैलपाद गमोयुक्तं गन्धमन्त्रासनं शृतम् ॥ ७१ ॥

पिच्छावस्ति :—

अशांतावित्यतीसारे पिच्छावस्तिः परं हितम् ।

आस्थापनवस्ति :—

परिवेष्ट्य कुशंरात्रैराद्र्बुतानि शाल्मले ॥ ७२ ॥

वृष्णमृत्तिकवाऽऽलिप्य स्वेदयेद्गोमयाग्निना ।

मृच्छोपे तानि मंशुच्य तर्पिडं मुष्टिसंमितम् ॥ ७३ ॥

भद्रं यत्पयसः प्रस्थे पूतेनास्थापयेत्ततः ।

नतपट्टचाकमल्काज्यक्षौद्रतैलवत्ताऽनु च ।

सातो भुञ्जीत पयसा जांभवेन रसेन वा ॥ ७४ ॥

पित्ताग्निमाग्ज्वरक्षोफमुल्म-

ममीरणासग्रहणीविकारान् ।

ज्वरपथं शीघ्रमतिप्रवृत्तिं

विरेचनास्थापनयोश्च वस्तिः ॥ ७५ ॥

## कुटजोत्थफाणित्तादि—

फाणितं कुटजोत्थं च सर्वातीसारनाशनम् ।  
वस्मकादिममायुक्तं सांवष्टादि समाशिवम् ॥ ७६ ॥

## पुटपाक प्रयोगः—

निष्ङ्गनिराम दोषासैरपि भासं चिरांत्यतम् ।  
नानावर्णमर्तीसारं पुटपाकं स्याद्वरेत् ॥ ७७ ॥  
स्थक्पिडादीर्घवृंतस्य<sup>१</sup> श्रोणोपद्रमंवृतात् ।  
मृत्तिमादग्निना स्विन्नाद्रसं निष्पीडितं द्विमतम् ॥ ७८ ॥  
अतीमारी विवेक्षुक्तं मधुना मितपाऽववा ।  
एष क्षीरद्रुमत्वग्भिस्त्वप्त्ररोहैश्च कल्पयेत् ॥ ७९ ॥

## स्थोनाक प्रयोगः—

कट्वगत्वग्धृतयुता स्वेदना मलिलोष्मणा ।  
मक्षीदा हृत्स्थतीसारं बलगतमपि द्रुतम् ॥ ८० ॥

## रक्तातिसारचिकित्सा—

पित्तातिगारी सेवेत पित्तलान्घेव यः पुनः ।  
रक्तातिसारं कुर्वन् तस्य पित्तं सतृद्वयरम् ॥ ८१ ॥  
दाहणं गृधपाकं च तत्र घ्राणं पर्यां हितम् ।  
पयोत्पलमर्मणाभिः शृतं मोघरसेन वा ॥ ८२ ॥  
सारिवापष्टिरोध्रं वा प्रमथैवा वटादिजैः ।  
गक्षीद्रक्षार्कं पाने भोजने गुदसेचने ॥ ८३ ॥

## रसादयः—

तद्वद्रगादयोऽजम्ब्याः साज्याः पानाप्रयोहिताः ।  
काशमर्षकलमूपञ्च त्रिषिदम्भः मशकैरः ॥ ८४ ॥



## पिच्छावस्ति :—

अल्पाऽप्यं बहुसो रक्तं सद्गलमुपवेक्ष्यते ।  
 यदा विबद्धो वायुश्च कृच्छ्राच्चरति वा न वा ॥ ६४ ॥  
 पिच्छावस्ति तदा तस्य पूर्वोक्तमुपकल्पयेत् ।  
 प्लवाम् जर्जरीरुत्प सिशिपाकोविदारयोः ॥ ६५ ॥  
 पचेद्यवाश्च स क्वायो घृतशोरसमन्वितः ।  
 पिच्छाघृतौ गुदभ्रंशे प्रवाहणकृत्यमु च ॥ ६६ ॥  
 पिच्छावस्तिः प्रयोक्तव्यः शतशीणघलावहः ।

## अनुवासनम्—

प्रपीणरीकगिद्धेन गर्गिषा चाऽनुवायनम् ॥ ६७ ॥

## सपिट्प्रकृति सारंशतात्रांघृतलेहः—

रक्त विट्गहितं पूर्वं पञ्चाद्या योऽतिमार्यते ।  
 शतावरीघृत तस्य लेहार्थमुपकल्पयेत् ॥ ६८ ॥

## लेहविशेषः—

सर्कणार्धातयः सौंढं नवनीत नवोद्धृतम् ।  
 क्षीरपाद जयेच्छीघ्रं न विकारं हितान्तिन ॥ ६९ ॥

## अन्यो लेहः—

न्यग्रोघोदुंवराश्वत्थद्युंगानापोऽप्य वामपेत् ।  
 अहोरात्रं जले तप्ते घृतं तेनाभमा पचेत् ॥ १०० ॥  
 तदर्धशर्करायुक्तं नेहयेत्क्षीरपादिकम् ।  
 अधो वा यदि वायुमूर्ध्वं यस्य रक्तं प्रवर्तते ॥ १०१ ॥

## श्लेष्मातिसारचिकित्सा—

श्लेष्मातिमारं वातोक्तं विशेषादामपाचनम् ।  
 नर्तव्यमनुवधेऽस्य पिबेत्पक्त्वाऽग्निदीपनम् ॥ १०२ ॥  
 विन्त्रार्कटिकामुस्तप्राणशविशभेपत्रम् ।  
 चचाविडंभूतीकयानकामरदाह वा ॥ १०३ ॥

अथवा पिप्पलीमूलपिप्पलीद्वयचित्रकाः ।

पाठाग्निवत्कम्प्यतिक्ताद्युष्णीवचाभयाः ॥ १०४ ॥

ववथिता यदि वा पिष्टाः श्लेष्मातीसारभेषजम् ।

मीनचर्चलवचान्योपहिगुप्रतिविपाभयाः ॥ १०५ ॥

पिष्टेच्छ्लेष्मातिसारात्तद्भ्रूणिताः कोष्णवारिणा ।

लेहः—

मध्व लोद्वा कपित्थस्य मन्थोपक्षीदशर्करम् ॥ १०६ ॥

कट्फलं मधुयुक्तं वा मुच्यते जठरामयात् ।

अन्यदौष्यनिर्देशः—

फणां मधुयुता लोद्वा तक्र पीत्वा सचित्रम् ॥ १०७ ॥

भुक्त्वा वा बालबिल्वानि व्यपोह्युदरामयम् ।

पाठादिपानम्—

पाठामोचरसामोदघातरीदिल्वनागरम् ॥ १०८ ॥

गुरुच्छुम्प्यतीसारं गुडतक्रेण नाशयेत् ।

कपित्थाष्टक चूर्णम्—

यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जनिकनागरैः ॥ १०९ ॥

मरिचाग्निजलाज्जीधान्यमीवर्चलैः समैः ।

वृक्षाम्लघातकीकृष्णावित्थदाडिमदीप्यकैः ॥ ११० ॥

त्रिगुणैः पङ्गुणसितैः कपित्थाष्टगुणैः कृत ।

धूर्णोत्तीमारग्रहणीक्षमगूलमोदरामयान् ॥ १११ ॥

कामश्वासाग्निसादार्धः पीनमारोचकाञ्जयेत् ।

दाडिमाष्टक चूर्णम्—

कर्पोन्मिता तवक्षोरी चानुर्जातं द्विकापिरम् ॥ ११२ ॥

१ अथयवान्यादीनि सर्वाणि द्रव्याणि समानि यथा—तोलकपरिमितानि, वृक्षाम्लानीनि त्रिगुणानि—यथा तोलक त्रयमितानि, मिता पङ्गुणा, कपित्थ-  
श्चाष्टगुणः ।

यसानीयान्यकाजाजीघ्रिविद्योषं पलायकम् ।

पलानि दाडिमादष्टौ मितायाश्चैकतः कृतः ॥ ११३ ॥

गुणैः कपित्वाष्टरुच्युर्णोऽनं दाडिमाष्टकः ।

खलः—

श्रीग्नो वातातिमारोक्तेर्पथावस्थं सलादिभिः ॥ ११४ ॥

मविट्ठंगः रामरिचः सरुपित्त्यः सनागरः ।

छायेरीतत्रकोलाभ्यः खलः श्लेष्मातिसारजित् ॥ ११५ ॥

शीणो श्लेष्मणि पूषोक्तमम्लं लाक्षादिपट्पलम् ।

पुराणं वा घृतं दद्याद्यवागूं मर्दमिश्रिताम् ॥ ११६ ॥

पिच्छावस्तिः—

वातश्चेन्मविबधे च मथत्यतिककेऽपि वा ।

शूने प्रवाहिकाया वा पिच्छावस्तिः प्रशस्यते ॥ ११७ ॥

अनुवासनम्—

यचायित्वकणाकुष्ठशताङ्गालवणाश्वितः ।

विन्वर्तलेन, तैलेन यचाद्यैः माधितेन वा ॥ ११८ ॥

बहुधाः कफवातार्ते काष्णानान्यामनं हितम् ।

क्षीणकफादी वायुजयः कार्यः—

क्षीणे कफे गृहे दीर्घमाळाठीसारदुर्बले ॥ ११९ ॥

अनिलः प्रबलीश्वर्यं स्वस्थानस्थं प्रजायते ।

न बटो सहसा हृत्वात्तस्मात् तस्या जयेत् ॥ १२० ॥

वायोरनंतरं पित्तं पित्तस्याऽनंतरं कफम् ।

जयेत्पूर्वं त्रयाणां वा भवेद्यो बलवत्तमा ॥ १२१ ॥

भीयोकाश्चामपि चलः क्षीघ्रं कुप्यत्यवस्तयोः ।

कार्यं क्रिशा वातहरा हर्षणाशमनानि च ॥ १२२ ॥

१ चातुर्जातद्विकारिकं प्रत्येकं कोलमानं ग्राह्यम् । मितायाश्चेत्यत्र चकारात्  
पताया अष्टौ पलानीत्यर्थः ।

शान्तोदरामयलक्ष्णम्—

भस्योच्चारादिना मूर्ध्नं पवनो वा प्रवर्तते ।

दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्य शांतस्तस्योदरामयः ॥ १२३ ॥

## दशमोऽध्यायः ।

अथाऽतो ग्रहणीदोषचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

ग्रहणयामजीर्णातिसारवदुपचारः—

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् ।

अतीमारोक्तविधिना तस्मात् च विपाचयेत् ॥ १ ॥

अन्नकालेयवाग्वादिः—

अन्नकाले यवाग्वादि ण्वकोलादिभिर्पुतम् ।

विनरेत्पटुलब्धन्नं पुनर्योगाच्च दीपनान् ॥ २ ॥

दद्यात्पातिविषां पेयामामं साम्ला सनागराम् ।

पानेऽजीमारविहितं वारि तक्रं सुरादि च ॥ ३ ॥

ग्रहण्यां तक्रस्यहितत्वम्—

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनग्राह्यत्वात् ।

पथ्यं मधुरपाकित्वाच्च च पित्तप्रदूषणम् ॥ ४ ॥

कषायोष्णविकासित्वादद्रूक्षत्वाच्च कफे हितम् ।

वाने स्वादुम्लमाद्रेत्वात्मचक्रमविदाहि तत् ॥ ५ ॥

## चूर्णम्—

चतुर्णां प्रस्यमम्लानां श्यूपणान्च पलत्रयम् ।  
 लवणानां च चत्वारि शर्करायाः पलाष्टकम् ॥ ६ ॥  
 तच्चूर्णं शकम्पान्नरागादिष्ववचारयेत् ।  
 कामाजीर्णश्चिश्वासहृत्पाश्चमियनूलनुत् ॥ ७ ॥

## नागरादि फायः—

नागरातिविषामुस्त पाकयमानहृतं पिबेत् ।  
 उष्णाबुना वा तत्कल्कं नागर वाऽथवाऽभयाम् ॥ ८ ॥  
 ससंघव वचादि वा तद्वन्मदिरयाऽथवा ।

## आमेपुरीपेविडलवण प्रयोगः—

वर्चस्यामे तप्रवाहे पिबेद्वा द्वाद्विमाबुना ॥ ९ ॥  
 विड्ढेन लवण पिष्ट बिज्जचित्तकनागरम् ।  
 मामे कफानिले कोष्ठरुदरे कोष्णवारिणा ॥ १० ॥

## कलिङ्गादिक पानादि—

कलिङ्गादिप्रतिविषावचामीवर्चलाभयम् ।  
 द्वाद्विहृद्गोमूत्रेषु पेयमुष्णेन वारिणा ॥ ११ ॥  
 पश्यामीवर्चलाजाजीवूर्णं मरिचसंयुतम् ।

## पिप्पल्यादि चूर्णम्—

निप्लात्री नागरं वाटा सारिवा नृहृतीद्वयम् ॥ १२ ॥  
 बिप्रकं कौटजं क्षारं तथा लवणपंचकम् ।  
 चूर्णीकृतं दधिपुरातन्मंडोष्णाबुकाजिकैः ॥ १३ ॥  
 पिबेदग्निविवृद्धपथं कोष्ठवातहरं परम् ।

## पाचनीदीपनीगुटिका—

पट्टनि पंच द्वौ क्षारी मरिचं पंचकोलाम् ॥ १४ ॥

दोष्यर्हं हिनु गूलिका बात्रपूरणे कृता ।

कोण्डादिमनोये वा परं पाचनदोषो ॥ १५ ॥

### तालीसादि गुटिका—

तालीसवक्त्रचक्वित्तामरितानां पलं पञ्चम् ।

कृष्णा सन्मूलयोद्धे द्वे दले दण्डौ पञ्चमम् ॥ १६ ॥

चतुर्जानमुत्तोरं च वर्णासं धृङ्गन्मूर्धनम् ।

गुटेन षट्पान्गुत्वा त्रिगुणेन मदा भजेत् ॥ १७ ॥

मद्यपूपरगारिष्टमस्तुपेशपयोनुतः ।

षातश्चेत्माग्मना छर्दिषट्णीपाशर्हद्भुजाग ॥ १८ ॥

उत्तरश्वयमुषाहुक्वगुम्भयानाद्वयार्धगाम् ।

प्रमेतपीनमग्नामशामाना च निवृत्तये ॥ १९ ॥

अभवा नागररूपाने दद्यादनैव सिद्धप्रदे ।

छर्द्यादिषु च पौत्तेषु चतुर्गुणमितान्विताः ॥ २० ॥

पात्रेण षटकाः कार्वा गुटेन गितपात्रपि वा ।

परं हि बह्विमंपर्काह्वयिमानंभजति ते ॥ २१ ॥

### निरामशनहृग्नी चिकित्सा—

अर्धनं परिपक्वममारउग्रहृणोपदम् ।

दीपनीययुतं सर्पिः पाययेदन्वयो भिषक् ॥ २२ ॥

किञ्चित्संघुक्षिते त्वग्नी मत्तविष्मूत्रमाग्त्रम् ।

द्वपहं श्वहं वा मंस्तेह्य स्विप्राभ्यक्तं निरुह्येत् ॥ २३ ॥

तत एरटर्तलेन सर्पिषा तंत्वकेन वा ।

मक्षारेणाग्निले घाते सस्तदोष विरेचयेत् ॥ २४ ॥

### शुद्धरूक्षाशयस्यानुवासनादि—

शुद्धरूक्षाशयं वद्वचस्कं चाश्रुवासयेत् ।

दीपनीयाम्लवातध्वनिद्वर्तलेन त ततः ॥ २५ ॥

निहृदं च विरिक्तं च गम्यन्वाग्यनुवामितम् ।  
मन्वन्नयनिसंयुक्तं सपिरम्यासयेत्पुनः ॥ २६ ॥

### शूलादिनाशकं धृतम्—

पञ्चमूलाभयान्धोपपिप्पलीगूलसौधर्वैः ।  
रात्राशारद्वयाजाजीविङ्गजठिभिर्घृतम् ॥ २७ ॥  
शुक्तेन मातुलुंगस्य स्वरसेनाद्रकस्य वा ।  
क्षुब्धमूलककोलाम्लपुक्रिकादाडिमस्य च ॥ २४ ॥  
तक्रमम्बुमुसुरामंडादीरीरक्तुपोदकैः ।  
काजिकेन च तप्तकमग्निदोषिकरं परम् ॥ २९ ॥  
शूलमुल्मादरस्वानकासानिबलफापहम् ।  
सर्षापपूरकरसे सिद्धं वा पाययेद्भृतम् ॥ ३० ॥  
तैलमभ्यञ्जनार्थं च गिद्धमेभिश्चलापहम् ।  
लनेपामीपपाना वा पियञ्जूर्ण गुणायुता ॥ ३१ ॥

### चूर्णम्—

धानश्लेष्मावृते मामे कफे वा वायुबोद्धने ।

### पित्तजमहृषी चिकित्सा—

अग्नेनिर्वापक पित्तं रेकेण वमनेन वा ॥ ३२ ॥  
हृत्या तित्नाल्लघुग्राहिदीपनैरविदाहिभिः ।  
अम्लैः गण्डाघेदांश्च चूर्णैः स्नेहैश्च तित्नातैः ॥ ३३ ॥

### पटोलादि चूर्णम्—

पटोलनिवत्रायंतीतित्नाति<sup>१</sup>वपपटम् ।  
शुटजलवपल मूर्तामधुशिशुफलं बचा ॥ ३४ ॥  
दार्वह्रिवागदमकादीरेयवानीशुस्तर्पदम् ।  
भीराष्टपतिविषाभ्योपस्त्वगेलापददाह च ॥ ३५ ॥

१. एनेषामौघधाना पश्चमूलाभयादीनाम् । २. तित्नातं भूनिम्बम् ।

## पेया प्रयोगः—

पंचफलोत्तमप्राधान्यपाठा<sup>१</sup> भेषपलायकैः ।

बौतपुरप्रबालैश्च मिदं पेयादि कृतयेत् ॥ ४६ ॥

## मधूकामवः—

द्रोणं मधूकमुष्णानां विदग्धं च ततोऽर्धतः ।

चित्रकम्ब ततोऽर्धं च तथा भक्ष्नातकारुटम् ॥ ४७ ॥

मंजिष्ठाऽष्टपलं चैतज्जलद्रोणत्रये पचेत् ।

द्रोणत्रये शृतं जीर्णं मधुपर्पादिकर्मयुतम् ॥ ४८ ॥

एकामृणालगुहभिरवन्दनेन च रुक्षिते ।

कुम्भे गार्मं स्थितं जातमागय त प्रयोजयेत् ॥ ४९ ॥

ग्रहणी दोषमन्येष वृहणः पित्तरक्तनुत् ।

शोषकुष्ठकिलामाना प्रमेहाणां च नाशन ॥ ५० ॥

## द्वितीयोमधूकामवः—

मधूकमुष्णकृद्वयं शुक्लमर्धतयीकृतम् ।

शीघ्रपादयुगं क्षीतं पूर्ववन्मनिधावयेत् ॥ ५१ ॥

तस्मिन् ग्रहणीदोषान् जयेन्मर्षाम् हितानलः ।

## अन्यासवनिर्देशः—

तद्दृढालोभुसर्जूरस्वरसानामुताद् पियेत् ॥ ५२ ॥

## हिग्वा दत्तार प्रयोगः—

हिगुतिक्तावधामाक्षीपाठेद्वयगोभुग्म् ।

पंचलाकं च रम्यामं पलाय पटुपचकम् ॥ ५३ ॥

शुततैलद्रिबुडवे दध्नः प्रस्थद्वये च तत् ।

आपोऽयं गन्धकदाम्नी मृदाननुमते रमे ॥ ५४ ॥

अंतर्भूमं ततो दग्धा चूर्णाद्विष्य घृताप्लुतम् ।

पिवेत्तानितलं तस्मिन् जीर्णे स्वात्मधुरागवः ॥ ५५ ॥



वातश्लेष्मामयान् भवान् हन्याद्विषगणैश्च मः ।

अन्यक्षारः—

भूनिबं रोहिणीं तित्तां पटोलं निवपपटम् ॥ ५६ ॥

दग्ध्वा महिषमूत्रेण पित्तदग्निविषवर्धनम् ।

अन्यक्षारः—

द्वे हरिद्वे वचा कुण्टं चित्रकः कटुरोहिणी ॥ ५७ ॥

गुस्ता च छागमूत्रेण सिद्धः क्षारोऽग्निवर्धनः ।

गुटिकाः—

अणुपलं मुष्काकाङ्गाग्निपलं लवणत्रयात् ॥ ५८ ॥

घातककुड्मव चाकादिष्टो द्वे चित्रकात्सले ।

दग्ध्वा रमेन वार्तासाद्गुटिका भोजनोत्तराः ॥ ५९ ॥

मुक्तमग्नं पचत्स्यान् कामश्वागार्गसा हिता ।

विमूचिकाप्रतिस्त्र्यायहृद्रोगशमनाः ताः ॥ ६० ॥

मातुलुङ्गादि चूर्णम्—

मातुलुगशठी राज्ञा कटुयवहरीतकी ।

स्वजिकायावदूकादयो क्षारो पचपटूनि च ॥ ६१ ॥

मुरवांबुपीत तच्चूर्णं बलवर्णाग्निवर्धनम् ।

घृतम्—

श्लेष्मिके ग्रहणीद्रोणे मवाले सैर्घृतं पचेत् ॥ ६२ ॥

धान्यन्तरं पटपलं च भल्लातकघृताभयम् ।

क्षार घृतम्—

त्रिटकाचोपलवणस्वजिकायावदूकजान् ॥ ६३ ॥

सप्तलां कटकारी च चित्रकं चक्रतो दहेत् ।

सप्तदृत्वः मृतम्याजस्य क्षारम्याज्यदिके पचेत् ॥ ६४ ॥

आदकं गर्पिषः पेयं तदग्निबलवृद्धये ।

### सन्निपातजग्रहणीरोगे पञ्चकर्मादि—

निचये पञ्चकर्माणि युज्यान्वैतद्यथावल् ॥ ६१ ॥

प्रतिदोषादिमन्दाग्निस्त्वमाश्रित्य चिकित्सा—

प्रसक्ते श्लेष्मिनेऽप्याग्नेर्दपितं दशतित्तम् ।

योऽयं कृशस्य व्यत्यासात्क्राम्यदर्श कफादये ॥ ६२ ॥

क्षीणक्षामशरीरस्य दीपनं स्नेहसंयुतम् ।

दीपनं बहुपित्तस्य तित्तं मधुरकैर्युतम् ॥ ६३ ॥

### दुर्बलानलदीपनायस्नेहःश्रेष्ठः—

स्नेहोऽल्लयणैर्बुक्तो बहुवातस्य शस्यते ।

स्नेहमेव परं विद्याद्दुर्बलानलदीपनम् ॥ ६४ ॥

नाऽतः स्नेहमिदस्य जनावान्नं नुगुर्वपि ।

योऽन्धाग्निवातरुके क्षीणे वर्षः पक्ष्मपि श्लथम् ॥ ६५ ॥

मुचेद्यद्दीपययुतं म पिवेदलःशो घृतम् ।

तेन स्वमार्गमानीतः स्वकर्मणि निषोजितः ॥ ७० ॥

समानो दापयत्यग्निमाने मधुशर्को हि मः ।

पुराणं यश्च कृच्छ्रं कठिनत्वादिमुचति ॥ ७१ ॥

म घृतं लयणेयुं कं नरोऽन्नावग्रहं पिवेत् ।

रोऽयान्नमदेऽनले सर्पिस्तैलं वा दीपनैः पिवेत् ॥ ७२ ॥

शारचूर्णमवारिष्टान् मदे स्नेहातिपानतः ।

उदायतः प्रयोक्तव्या निरुहस्नेहस्तथा ॥ ७३ ॥

दोषाऽतिबृद्ध्याऽभेदो संशुद्धोऽश्विषि चरेत् ।

व्याधिमुक्तस्य मदेऽग्नौ सर्पिरेव तु दीपनम् ॥ ७४ ॥

‘अत्रोपवागक्षामवैर्यवाग्वा पाययेद् घृतम् ।

अत्रावरोदितं वत्स्यं दीपनं बृंहणं च तत् ॥ ७५ ॥

१ अग्नेनावग्रहं दुर्बलमग्नमनप्रतियन्धो यस्य घृतस्य तत् । घृतपीत्वाऽन्नं भोक्तव्यमित्यर्थः ।

## मांसप्रयोगः—

दीर्घकालप्रमंसात्तु क्षामशीणट्टयाग्ररान् ।  
 प्रगृह्णानां रसैः माम्स्त्रैर्भोजयेत्पिप्पितायिनाम् ॥ ७६ ॥  
 लघूष्णकटुसोचिस्ताद् दीपयंत्याद्यु नेऽनलम् ।  
 मांसोपचितमांसत्वात्पर च यत्तवर्धनम् ॥ ७७ ॥

## स्नेहादिप्रयोगः—

स्नेहासवमुरारिष्टचूर्णकवापहिताशनैः ।  
 मम्यक् प्रयुक्तैर्देहस्य बलमग्नेश्च वर्धते ॥ ७८ ॥

## स्नेहस्याग्निवृद्धिकरस्येष्टान्तः—

दीप्तो यथैव स्यात्पुश्च बाह्योऽग्निः मारदारभिः ।  
 मस्नेहैर्जायते तद्बदाहारः कोष्ठमोऽनलः ॥ ७९ ॥

## अभोजनातिभोजनाभ्यां नाग्निवृद्धिः—

नाऽभोजनेन कायाग्निर्दीप्यते नाऽतिभोजनात् ।  
 यथा निरिधनो बह्निरल्पो वाऽस्तीधनावृतः ॥ ८० ॥

## भस्मकरोगः—

यदा क्षीणे कफे पित्तं स्वस्थाने पवनानुगम् ।  
 प्रवृद्धं कर्मवर्षाणि तदामौ मानिभ्योऽनलः ॥ ८१ ॥  
 पक्त्वाग्रमाद्यु धातुश्च सर्वानोजश्च संक्षिपन् ।  
 मारयेत्साधनात्स्वस्थो भुक्ते जीर्णे तु ताम्पनि ॥ ८२ ॥  
 तृट्कामदाहमूर्छाद्या व्याधयोऽत्यक्षिभंभवाः ।

## भस्मकरोगचिकित्सा—

सप्तम्यांश्च गुत्तस्त्रिग्विधं दसाद्रहिमस्थिरैः ॥ ८३ ॥  
 अत्रपानैर्नयेच्छाति र्दत्तमक्षिमिवांबुभिः ।  
 मुहुर्मुहुर्जीर्णेऽपि भोज्यान्वस्योपहारयेत् ॥ ८४ ॥  
 निरिधनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैवं न विषादयेत् ।  
 वृषारां पायसं क्षिप्यं पैष्टिकं गुडवैट्तम् ॥ ८५ ॥

अश्रमादीदकानूपपिचितानि घृतानि च ।  
 मत्स्यान्विशेषतः शुद्धभासु स्थिरतोयचराश्च ये ॥ ८६ ॥  
 धाविकं मुभृतं मासमद्यादस्यप्रिवारणम् ।  
 पयः सहमधूच्छिष्टं धृतं वा तृपितः पिबेत् ॥ ८७ ॥  
 गोधूमचूर्णं पयसा बहुगणितपरिप्लुतम् ।  
 आनूपरमयुक्तान्द्या स्नेहोस्त्वैलविर्वाजितान् ॥ ८८ ॥  
 शयमाश्रितुद्विषवत्त्वं वा पयो दद्याद्विरेचनम् ।  
 अमृत्युत्तहरणं पायसं प्रतिभोजनम् ॥ ८९ ॥  
 यत्किञ्चिद्गुरु मेघं च शत्रुघ्नकारि च भोजनम् ।  
 गर्भं तदभ्यतिष्ठितं भुक्त्वा च न्यपन्नं दिवा ॥ ९० ॥  
 आहारमसिः पचति, दापनाहारयजिनः ।  
 घातून् क्षीणेषु दोषेषु, जीवितं पातुमक्षयं ॥ ९१ ॥

### प्रकृत्येष्वधिकृष्टाद्यादि—

‘गुत्तम्प्रकृत्यैव त्रिगुणम्’  
 मंथोगमस्कारवशेन चेदम् ।  
 दद्याद्यविज्ञाय यथेष्टचेष्टा-  
 धरति यन्मांसं वल्लभ्य शक्तिः ॥ ९२ ॥

### जाठराग्निरक्षणापदेशः :—

तस्मादग्निं पालयेत्सर्वयत्न-  
 स्तस्मिन्नष्टे याति ना नाशमेव ।  
 दोषैर्ग्रस्ते ग्रस्यते रोगतर्प-  
 युक्ते तु स्यान्नीम्नो दीर्घजीवी ॥ ९३ ॥

१. गुददन्तं प्रकृत्या स्वभावेन, गर्भयोगेन, सस्कारेण विरज्यमाश्रिता माप्रासा-  
 लादिविरलमिदमपिज्ञायामुद्ध्वा यथेष्टचेष्टा यथेष्टमाहारं मेवमाना यच्चरन्ति  
 नाग्निवल्लभ्य शक्तिः । स्वभावादिबोद्धमन्तमपयान्तिच ये यथेष्टं भुञ्जते गर्भं  
 विषमन्तं तन् परिप्लव्यतेति तन् जातिरजस्य नामधेयं शस्त्रिक मन्त्रेति सर्वं  
 मन्त्रैरतिपातयेदित्यर्थः । तस्मिन्नष्टौ । ना पुष्पः ।

## एकादशोऽध्यायः ।

अथातोऽमूत्राघातचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

मूत्रकृच्छ्रेयला सैजेनाभ्यंगादि—

कृच्छ्रे वातघ्ननलाक्षमयानाभे, नमीरजे ।

मुक्तिर्गन्धं स्वेदयेदगं पिडमेकावगाहनः ॥ १ ॥

शूलहराः स्नेहाः—

दशमूलबलरंडयवाभीरुतुनर्वः ।

कुसुमकोलपत्तूरवृक्षीर्वापलभेदकैः ॥ २ ॥

तैलमपिर्वराहर्षवमाः जघ्नितकल्कितैः ।

मयंचलवणाः गिडा पीताः शूलहराः परम् ॥ ३ ॥

दशमूलादिद्रव्यादीनां पानान्नैर्योजनम्—

द्रव्याण्येतानि पानान्ने तथा पिडापनाहने ।

गृह्णैलफलैर्बुज्यान्माम्बलानि स्नेहन्ति च ॥ ४ ॥

गोमर्चलाद्या मदिरां पिवेन्मूत्ररसापहाम् ।

पित्तकृच्छ्र चिकित्सा—

पैसे मुंजीत्र सिगिरं मेकलेपावगाहनम् ॥ ५ ॥

पिवेद्वरी गोशुरकं त्रिदारी मयत्तेक्ष्वाम् ।

पृथग्यं पचमूलं च पानयं समधुनर्करम् ॥ ६ ॥

शृणुकं त्रिभुमं वारं लट्वावीजानि कुतुमम् ।

द्राशाभोमिः त्रिवेलावोम्भूत्रापातानगोदति ॥ ७ ॥

१. पमूरं-पत्रजम् । वृक्षीयः श्वेतपुनर्व्या । जालभेदकः पाषाणभेदः ।  
लट्वावीजं कुतुम्भयोजनम् :

एवोरबीजयष्ट्याह्लादावीर्वा तंडुलावुना ।

तोयेन कम्पः द्राक्षायाः पिवेत्पुष्पितेन वा ॥ ८ ॥

### कफजकृच्छ्र चिकित्सा—

कफत्रे वमनं स्वेदं तीक्ष्णोष्णवद्भोजनम् ।

यशाना विवृत्तोः क्षारं कालसेयं च क्षीरयेत् ॥ ९ ॥

पिप्पेन्मद्येन मूदमैला धात्रीफलरमेन वा ।

सारमास्थिष्वदंष्ट्रीलाब्धोर्षं वा मधुमूत्रवत् ॥ १० ॥

स्यरसं कटुकार्षा वा पापयेन्माक्षिकान्वितम् ।

सितिवारपबीजं वा तत्रेण श्लक्ष्णचूर्णितम् ॥ ११ ॥

धवसमाह्लवुटजं गुहूचीचतुरगुलम् ।

कटुफैलाकरंजं च पान्यं समबुगाधितम् ॥ १२ ॥

तैर्वा पेयां प्रवालं वा चूर्णितं तंडुलावुना ।

मर्तलं पाटलाक्षारं मत्तकुस्वोज्यवा शृतम् ॥ १३ ॥

पाटलीमावशूकाम्बा पारिभद्रात्तिलादपि ।

क्षारोदकेन मदिरा त्वगेलोपकैश्चयुताम् ॥ १४ ॥

पिप्पेद्गुटायदक्षाम्बा तिह्यादेतान् पृथक्-पृथक् ।

### सन्निपातजकृच्छ्राचिकित्सा—

सन्निपातात्मके सर्वं यथावस्थमिदं हितम् ॥ १५ ॥

अशमभ्यथ चिरोत्थाने वातयस्यादिकेषु च ।

### अशमरीचिकित्सा—

अशमरी दारुणो व्याधिरंतकप्रतिमो मनः ॥ १६ ॥

तरुणो भेषजं माच्यः प्रबुद्धश्छेदमर्हति ।

तस्य पूर्वेषु रूपेषु स्नेहादिक्रम इष्यते ॥ १७ ॥

पाषाणभेदो यमुको वसिरोऽप्यमंतो वरी ।

वपान्तर्वकानि वराभन्तूकोक्षोरकत्तूणम् ॥ १८ ॥

१ सितिवारक बीजं करञ्जबीजम् । २ ऊरुः 'रुद्र' हि० । ३ वयुक्.—  
शिवलिङ्गं । वसिर- मूर्ध्निवर्त्तभेदः । वपान्तर्वक्त्रा 'हृद्द्वार' हि० । यान्तूकः  
स्त्रीनाकः । मुण्डः 'भोदनी' हि० ।

वृक्षादनी शाकफलं व्याघ्री गुंठस्त्रिकंटकम् ।  
 यवाः कुलत्थाः कोलानि वरणः कतकाफलम् ॥ १६ ॥  
 ऊपकादिप्रतीवापमेपा क्वाथे शृतं घृतम् ।  
 भिनत्ति वातसंभूता तत्पीतं घ्रीघ्रमश्मरोम् ॥ २० ॥  
 गंधकं हस्तबृहतीव्याघ्रीमोक्षुरकेभुरात् ।  
 मूलकल्कं पिवेद्घ्ना मधुरेणाज्जमभेदनम् ॥ २१ ॥  
 कुशः काशः शरीं गुठ इस्कटो मोरटोज्जमभित् ।  
 दनो विदारो वाराही शालोमूलं त्रिकंटका ॥ २२ ॥  
 भल्लूक पाटली पाठा पत्तूरः सकुरटकः ।  
 गुनर्जवा शिरीषश्च तेषां क्वाथे पचेद्घृतम् ॥ २३ ॥  
 पिप्प्लेन त्र्यम्बादीनां बीजेर्नदीवरेण वा ।  
 मधुकेन शिलाजेन तस्मिन्नाश्मरिभेदनम् ॥ २४ ॥  
 वरुणादिः समीरघ्नी गण्डाबेला हरेणुका ।  
 गुग्गुचुर्मरिचं कुष्ठं चित्रकः समुराह्वयः ॥ २५ ॥  
 तैः कल्किनः कृतावापमपकादिगणेन च ।  
 भिनत्ति कफजामासु मग्नित घृतमश्मरीम् ॥ २६ ॥  
 धारक्षीरयवाग्वादि द्रव्यैः स्वीं स्वींश्च कल्पयेत् ।

### शर्कराचिकित्सा—

पिबुकाकोल्लकतकशार्कंदीवरजैः फलैः ॥ २७ ॥  
 पीतमुष्णावु मगुड शर्करापातनं परम् ।  
 त्रीकाष्टरामभास्वीनि श्वदष्टा तालपत्रिका ॥ २८ ॥  
 अजमोदा कदंबस्य मूलं विल्वस्य बीषधम् ।  
 पीतानि शर्करा भिद्युः सुरयोष्णोदकेन वा ॥ २९ ॥  
 \*नृत्यकुण्डन्बीजानां चूर्णं माक्षिकमंयुतम् ।  
 अविशारेण गताहं पीतमश्मरिपातनम् ॥ ३० ॥

१ तालपत्रिका गुडली । २ औषधनागरम् । नृत्यकुण्डन्बीजानां मोक्षुरजानाम् ।

३ शर्कटबीजचूर्णमिति नष्टे पाठः । मुधुतस्तु त्रिकंटकस्य बीजानां चूर्णं शीतगन्धुम् । अविशारेण गताहमश्मरीभेदनं परमिति पठति ।

नवाथश्च शिथूलोऽथः कटूष्णोऽश्मरिपातनः ।  
 तिलापामार्ग इदलीपलाशवसंभवः ॥ ३१ ॥  
 धारः पयोऽपि मूत्रेण शर्करास्वश्मरीषु च ।  
 कपोतवंजामूलं वा पिवेदेकं मुरादिभिः ॥ ३२ ॥  
 तस्मिद्धं वा पिवेत्क्षीरं वेदनाभिरुपद्रुतः ।  
 हरीतकमस्थिमिद्धं वा मापितं वा पुनर्मदः ॥ ३३ ॥  
 क्षीरासृग्गर्हनिस्तामूलं वा संदुल्लबुना ।

### मूत्राघातचिकित्सा—

मूत्राघातेषु विभजेदतः दोषेष्वपि क्रियाम् ॥ ३४ ॥  
 वृहत्यादिगणे सिद्धं द्विगुणोऽमृतमोक्षुरे ।  
 तोयं पयो वा गपिर्वा सर्वमूत्रविकारजित् ॥ ३५ ॥  
 देवदारु घन मूर्धा यष्टी मधु हरीतकीम् ।  
 मूत्राघातेषु सर्वेषु मुराक्षीरजलं पिवेत् ॥ ३६ ॥  
 रत्नं वा घन्वयामस्य कषायं ककुभस्य वा ।  
 मुक्ताभसा वा त्रिफला पिष्टा नैधवमयुताम् ॥ ३७ ॥  
 व्याघ्रीगोक्षुरकश्वाले यवाम् वा गफानिताम् ।  
 क्वाथे वीरतण्डुदेर्वा ताम्रचूडरमेऽपि वा ॥ ३८ ॥  
 अद्याद्वीरतराद्येन भावितं वा घिलाजनु ।  
 मद्यं वा निगदं पीत्वा रोगाश्चैनं वा यजन् ॥ ३९ ॥  
 क्षीप्रवेगेन संक्षोभात्तदाऽप्य च्यवतेऽश्मरी ।  
 सर्वथा चोपयोक्तव्यो वर्गो वीरतरादिकः ॥ ४० ॥  
 रेकार्थं तैत्त्वकं गपिर्वस्तिनर्म च शोलेयेत् ।  
 विसंयानुत्तरान् बम्बीन्,

### शुक्रारमरी चिकित्सा—

शुक्राश्मर्या च क्षांयिते ॥ ४१ ॥



१ तैर्मूर्ध्नि वलवान् शुक्राशयविगुह्ये ।

पुमान् मुनूतो वृष्याणां मामाना कुक्कुटस्य च ॥ ४२ ॥

कामं मकामाः सेवेत प्रमदा मददामिनोः ।

### शस्त्रावधारणम्—

मिदं रूपं प्रमरेभिर्न चेष्टान्तिस्तदा भिपक् ॥ ४३ ॥

इति राजानमापृच्छन् दासं गाव्यवधारयेत् ।

अत्रियाया ध्रुवो मृत्युः क्रियायां सगयो भवं ॥ ४४ ॥

निश्चितस्याऽपि वैद्यस्य बहुधाः मिदं कर्मणः ।

अथाऽनुरमुगन्निध द्युदमीपञ्च कर्तव्यम् ॥ ४५ ॥

अभ्यक्तस्त्रिवधवपुषमभुक्तं कृतमंगलम् ।

आजानुफलकरश्च नरस्याके व्यपाधितम् ॥ ४६ ॥

पूर्वेण कायेनोत्तानं निपण्णं १ वस्त्रबुभले ।

ततोऽस्याकुञ्चितं जानुकूपरे वासना दृढम् ॥ ४७ ॥

महाधयमनुप्येण बद्धस्याश्वासितस्य च ।

नाभेः समतादभ्यज्यादवस्तस्याञ्च २ वामतः ॥ ४८ ॥

मृदित्वा मुष्टिना कामं यावदभ्यर्षयोगता ।

तैलाक्ते वर्धितनखे तर्जनीमध्यमे ततः ॥ ४९ ॥

३ अदक्षिणे गुदेंद्रगुल्फौ प्रणिधायान्जुसेपनीम् ।

४ आसाद्य बल्यं ताम्यामश्वरी गुदमेदूयो ॥ ५० ॥

वृत्तांतरे तथा वस्तिं निर्धलीकमनायतम् ।

उत्पीडयेदंगुलिभ्या यावद्विबिबोधतम् ॥ ५१ ॥

मत्स्यं स्यात्मेवनी भुक्त्वा यवमानेण पाटयेत् ।

अशममानेन न यथा मिक्षते मा तथा हरेत् ॥ ५२ ॥

१ तैस्तवस्तिभिः । २ वस्त्रबुभले वेष्टितकुण्डलीकृतवस्त्रे । चुम्बन्त्यस्तृण-  
चेतां घटादीना मञ्जुनरक्षार्थमाधारः, लोके गेदुरीति वक्ष्यते । ३ तस्या  
नाभेः । वर्धितनखे वर्धितनखे । ४ अदक्षिणे वामे अङ्गुल्यौ तर्जनीमध्यमाङ्गुल्यौ ।  
तान्ना अङ्गुलीभ्याम् ।

ममग्रं सर्पवक्त्रेण स्त्रीणां वस्तिस्तु पार्श्वगः ।  
 गर्भाशयाश्रयस्तासां शस्त्रमुत्संगवत्ततः ॥ ५३ ॥  
 न्यसेदतोऽन्यथा ह्यामां मूत्रप्लावी व्रणो भवेत् ।  
 मूत्रप्रसेकशरणाघ्नरस्याऽप्यपि चैकधा ॥ ५४ ॥  
 वस्तिभेदोऽश्मरीहेतुः सिद्धिं याति न तु द्विधा ।

### शस्त्रक्रियानन्तरं विधिः—

विशाल्यमुष्णापानीयद्रोण्या तमवगाहयेत् ॥ ५५ ॥  
 तथा न पूर्वतेऽस्त्रेण वस्तिः पूर्णं तु पीडयेत् ।  
 मेढ्रातः क्षीरिवृक्षाद्यु,

### मूत्रशोधनम्—

मूत्रसशूद्धं नत ॥ ५६ ॥  
 कुर्याद्गुडस्य सौहित्यं मध्वाज्याक्तव्रणः पिवेत् ।  
 द्वा कालौ मघृता कोट्या यथागू मूत्रशोधनं ॥ ५७ ॥  
 श्यह दशाह पयसा गुडाब्जैनाऽन्वमोदनम् ।  
 भुञ्जीतोर्ध्वं कलाम्बुध रसैर्जगलचारिणाम् ॥ ५८ ॥

### व्रणोपचारः—

क्षीरिवृक्षकषायेण व्रणं प्रक्षाल्य लेपयेत् ।  
 प्ररोङ्गरीकमंजिष्ठापट्टमाह्वनैः नोपधैः ॥ ५९ ॥  
 व्रणार्म्यं पचेत्तैलमेभिरेव निशाम्बितैः ।  
 दशाहं स्वेदयेच्चर्चनं रवमार्गं सप्तरात्रत ॥ ६० ॥

### दाहः—

भूत्रे त्वगच्छति दहेदश्मरीव्रणमग्निना ।  
 स्वमार्गप्रतिपत्तौ तु स्वादुपायैरुपाचरेत् ॥ ६१ ॥

१ तंमु'धमानं यत्पान् शुक्राशयविन्दुद्वये ।

शुक्रान् शुक्रांशो वृष्याणा मांगानां शुक्रकुटम्बे च ॥ ४२ ॥

वामं गवामाः मेवेत प्रमदा मददायिनोः ।

### शस्त्रावधारणम्—

निर्देशप्रमर्शेभिर्न चेच्छान्तिस्तदा भिरह् ॥ ४३ ॥

इति राजानमावृण्व्य वारं गाव्यवधारयेत् ।

अत्रियाया ध्रुवो मृग्युः क्रियाया मंगयो भवेत् ॥ ४४ ॥

निश्चितस्यापि वैद्यस्य वृद्धः निश्चरमणः ।

अथाऽनुरमुश्रिम्बं दृष्टमीगन्धं वक्षिणम् ॥ ४५ ॥

अभ्युत्तरीस्वन्नवगुणमभुक्तं वृत्तमंगलम् ।

आजानुपलङ्गस्यस्य नरस्वाके व्यपाशितम् ॥ ४६ ॥

गूयैण कायेनोत्तानं निषण्णं यस्त्रधुभने ।

ततोऽस्यानुचितं जानुपूर्वरे वातना दृढम् ॥ ४७ ॥

महाश्रयमनुष्येण बद्धस्याश्वानितस्य च ।

नाभेः समतादभ्यज्यादधस्तस्याभे' यामतः ॥ ४८ ॥

मृदित्वा मुष्टिना वामं यावदशमर्षयोगता ।

तैलाक्ते यधितमये तर्जनीमध्यमे ततः ॥ ४९ ॥

१ अदक्षिणे गृद्धेऽगुल्यौ प्रणिधायाऽनुमेवनीम् ।

२ आमाद्य बल्यं ताम्यामशमरो गुदमेदूपोः ॥ ५० ॥

गृह्णातिरे तथा वस्ति निर्वलीकमनायतम् ।

उत्पीड्येदंगुलिभ्या यावद्विगिरिवीश्रतम् ॥ ५१ ॥

मर्त्यं स्यात्मेवनी भुक्त्वा यवमाश्रेण पाटयेत् ।

अशममानेन न यथा मिश्रते मा तथा हरेत् ॥ ५२ ॥

१ तैस्तवस्तिभिः । २ वस्त्रधुभने वेष्टितकुण्डलीवृत्तवस्थे । शुम्भलस्तृण-  
रचितं घटादीना मञ्जलग्नशार्चमाधारः, लोके भेदुरीति कथ्यते । ३ तस्या  
नाभेः । यधितनखैर्कृततनखे । ४ अदक्षिणे वामे अङ्गुल्यौ तर्जनीमध्यमाङ्गुल्यौ ।  
तान्ना अङ्गुलीभ्याम् ।

समग्रं सर्पवक्त्रेण स्त्रीणां वस्तिस्तु पार्श्वगः ।  
 गर्भाशयाश्रयस्तासां शस्त्रमुत्संगवत्ततः ॥ ५३ ॥  
 न्यसेदतोऽन्यथा ह्यामां मूत्रसावीं व्रणो भवेत् ।  
 मूत्रप्रसेकक्षारणाघ्नरस्याऽप्यपि चैकधा ॥ ५४ ॥  
 यस्तिभेदोऽश्मरोद्भूतः सिद्धिं याति न तु द्विधा ।

### शस्त्रक्रियानन्तरं विधिः—

विद्यत्स्यमुष्णापानीयक्षोण्या तमवगाहयेत् ॥ ५५ ॥  
 तथा न पूर्यतेऽग्रेण वस्तिः पूर्णे तु पीडयेत् ।  
 मेढ्रातः क्षीरिवृक्षावु,

### मूत्रशोधनम्—

मूत्रसशुद्धये ततः ॥ ५६ ॥  
 कुर्याद्गुडस्य सौहित्यं मध्वाज्यान्तव्रणः पिवेत् ।  
 इा काठी सष्टना कोट्या यवाणू मूत्रशोधनैः ॥ ५७ ॥  
 श्यह दशाह पयसा गुडाक्षोनाऽल्पमोदनम् ।  
 भुञ्जीतोर्ध्वं फलाम्लैश्च रम्यजगिलचारिणाम् ॥ ५८ ॥

### घ्रणोपचारः—

क्षीरिवृक्षकपायेण घ्रणं प्रक्षाल्य लेपयेत् ।  
 प्रपोडरीकर्मजिष्ठामष्टघाह्वनैः पनीपथैः ॥ ५९ ॥  
 घ्रणार्म्यगे पचेत्तैलमेभिरेव निशाम्वितैः ।  
 दशाहं स्वेदयेच्चैर्न स्वमार्गं रात्ररात्रतः ॥ ६० ॥

### दाहः—

मूत्रे न्यगच्छति दहेदश्मरोघ्रणमग्निना ।  
 स्वमार्गं प्रतिपत्तो तु स्वादुपायैरुपाचरेत् ॥ ६१ ॥

तं वस्तिभिः

वर्जनम्—

न चारोहेद्र्यं दृढवृणोऽपि मः ।

मथनागाश्ववृक्षस्त्रीरयान्नाप्यु ज्वेत गः ॥ ६२ ॥

शस्त्रावधारण निषेधः—

मूत्रशुक्रवहो वस्तिवृषणौ सेवनी मुदम् ।

मूत्रप्रमेक योनिं च शस्त्रेणाऽष्टौ विवर्जयेत् ॥ ६३ ॥



## द्वादशोऽध्यायः ।

अथाऽतः प्रमेहचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

मेहिनोवमनादि—

मेहिनो बलिनः कुर्मादादी वमनरेचने ।

स्निग्धस्य सर्पवारिष्टनिवृत्ताशकरंजकैः ॥ १ ॥

तैलैस्त्रिकटकाद्येन यथास्वं साधितेन वा ।

स्नेहेन मृस्तदेवाहुनागरप्रतिषापवत् ॥ २ ॥

सुरमादिक्वायेण द्वादशास्थापनं ततः ।

न्यग्रोषादेस्तु पित्तार्तं रसैः शुद्धं च तर्पयेत् ॥ ३ ॥

शमनादि—

मूत्रप्रवृत्त्याभुल्लक्षयाद्यास्त्वपतर्पणात् ।

ततोऽनुवधरसार्थं शमनानि प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

असंशोध्यस्य तान्येव सर्वमेहेषु पाययेत् ।

**पञ्च प्रयोगाः—**

घात्रीरमप्लुतां प्राह्वे हरिद्रा माक्षिकान्विताम् ॥ १ ॥

दार्वीमुराह्वत्रिफला मुस्ता वा कथिता जले ।

चित्रजत्रिफलादार्वीकलिगान्धा समाक्षिकान् ।

मधुयुक्त गुह्यया वा रसमामलकस्य वा ॥ ६ ॥

**कपायाः—**

रोध्राभयातोयदकट्फलानां

पाठाविडगाजुं नधान्यकानाम् ।

गायत्रिदार्वीकृमिहृद्धानां

कफे श्वः क्षीरयुताः कपायाः ॥ ७ ॥

उक्षीररोध्राजुं नचंदनात्ता

पटोलनिवामलकामृतानाम् ।

रोध्रावुकालीयकघातकीना

विषे श्वः क्षीरयुताः कपायाः ॥ ८ ॥

**रोध्रादिभिः पानान्नादि—**

यथास्वमेभिः पानान्नं यवगोधूममावताः ।

**वातजप्रमेहेषु स्नेहकल्पनाः—**

वातोत्प्रेषणेषु स्नेहाश्च प्रमेहेषु प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥

अधूपसक्तुवाठ्यादिर्यवानां विकृतिहिता ।

गवाश्वगुदमुक्त्तानामपवा वैष्णुजन्मनाम् ॥ १० ॥

तृणघान्यानि मुद्गाद्याः शालिजीर्णः सपट्टिकः ।

श्रीकुवकुटोऽम्लः खलकस्तिरुसर्पपविट्जः ॥ ११ ॥

१ गायत्री खदिरः । इमिह्व विडङ्गम् । २ वैष्णुजन्मनां वशजानां यवानाम् ।  
श्री कुवकुटर्गजोऽम्लखलकः ।

कपित्थं तिष्ठकं जंघुस्तल्लता रगसांडवाः ।

तिवतं शाकं मधु श्रेष्ठा भद्रयाः घृष्काः ससक्तवः ॥ १२ ॥

घन्वमांमानि शूल्यानि परिशुष्कान्ययस्कृतिः ।

मध्वरिष्टासवा जीर्णाः सीधुः पक्वरसोद्भवः ॥ १३ ॥

तथाऽमगादिसारायु दर्माभो माक्षिकोदकम् ।

**सीधुनासक्तुपानम्—**

वासितेषु धराववाये शर्वरी घोषितेष्वहः ॥ १४ ॥

यवेषु भुक्तान्सक्तून्सखीद्वान्भीघुना पिबेत् ।

**कफपित्तप्रमेहेषु शालादिप्रयागः—**

शालसप्ताह्नकं पिष्टवृक्षकाक्षकपिरयजम् ॥ १५ ॥

रोहीतकं च कुसुम मधुनाऽद्यात्सुष्णितम् ।

कफपित्तप्रमेहेषु पिबेद्धात्रीरसेन वा ॥ १६ ॥

**धातुकफजादौतैलादि—**

त्रिकटुनिगारोघ्नसोमबल्कवचाजुर्नैः ।

पद्मकाश्मतकारिष्टचंदनागुहरीष्पकैः ॥ १७ ॥

पटोलमुस्तमजिष्ठामाद्रीभल्लातकैः पचेत् ।

तैलं वातकफे, पित्ते घृतं, मिश्रेषु मिश्रकम् ॥ १८ ॥

**धान्वन्तर घृतम्**

दधमूलं घटी दंती सुराह्णं द्विपुनर्वम् ।

मूलं स्तुगर्कयोः पथ्या भूकदवमरुत्करम् ॥ १९ ॥

**१ रगसाण्डवाः—**

“सितारुचकं सिन्धूर्यैः सवृक्षाम्लपक्वैः ।

निम्बफलरमैर्युक्तो रागो राजिक्या युतः” ॥

“गुडादिपक्वं वञ्चितमाममाग्नफलेन पुनः

स्नेहैलानागर्युक्तो ज्ञातव्यो राजश्लेष्टवः”

**२ मत्ताह्नः सप्तच्छदः ।**

करंजवरुणान्मूलं पिण्ड्याः पीप्परं च यत् ।  
 पृथग् दशपलं प्रस्थान् यवकोलकुलत्वतः ॥ २० ॥  
 \*श्रीश्राष्टमुणिते तोये विपचेत्पादवतिना ।  
 तेन <sup>३</sup>द्विपिप्पलीचव्यवचानित्रुश्राहिर्पैः ॥ २१ ॥  
 त्रिवृद्विडङ्गकपिल्लभागी।बल्वैश्च साधयेत् ।  
 प्रस्थं घृताज्जयेत्सर्वास्तन्मेहान् पिटिकाविपम् ॥ २२ ॥  
 पाण्डुविद्रधिगुल्मार्शः शोफशोपगरोदरम् ।  
 श्वातं कामं वमि वृद्धि प्लीहानं वातशोणितम् ॥ २३ ॥  
 कुष्ठोन्मादावपस्मारं धान्वन्तरिदं घृतम् ।

रोगासवः—

\*रोगमूर्वाशठोवेहभागीनतनलप्लवान् ॥ २४ ॥  
 कलिंगकुष्ठक्रमुकप्रियंवदतिविपात्रिकान् ।  
<sup>१</sup>द्वे विशाले चतुर्जतिं भूनिचं कटुरोहिणीम् ॥ २५ ॥  
 यवानो पीप्परं पाठा गन्धि चक्षु फलत्रयम् ।  
 कर्पाशमवुकलशो पादशेषे शृते हिमे ॥ २६ ॥  
 द्वौ प्रस्थौ नाशिकारित्वा रक्षेत्पक्ष्मपुपेशया ।  
 रोगासवोऽयं मेहार्शःशिवत्रकुष्ठार्चिकृमीन् ॥ २७ ॥  
 पाण्डुत्वं ग्रहणीदोषं स्थूलता च नियच्छति ।

अयस्कृतिः—

साधयेदमनादीनां पलानां विंशति पृथक् ॥ २८ ॥  
 द्विवहेऽयां क्षिपेत्तत्र पादस्थे द्वे शने गुडात् ।  
 शीघ्रादकार्यं पटिकं क्लृप्तकादि च कल्कितम् ॥ २९ ॥  
 ततशीद्विपिप्पलीचूर्णप्रदिग्धे घृतभाजने ।  
 म्रियतं दृढे <sup>२</sup>जतुसुते यवराशौ निमापयेत् ॥ ३० ॥

२ चीनप्रस्थान् यवादीनाम् । यवादि प्रत्येकं प्रस्थ परिमितं ग्राह्यम् ।  
 ३ तेन-पादशेषेण जलेन । ॥ वेहो विडङ्गम् । प्लवःकवर्तमुस्तवम् । १ विशाला  
 दम्बवारी । २ जटुसुते लासालिते पात्रे ।



सदिरोगारतमानि बहुशोऽत्र निमज्जयेत् ।

तनूनि त्राणलोहस्य पत्राण्वालोहमंशयात् ॥ ३१ ॥

अयस्कृतिः स्थिता पीता पूर्वस्मादयिता गुणैः ।

उद्धर्तनादि—

रश्ममुद्धर्तनं गाढं व्यायामो निधि जागरः ॥ ३२ ॥

यच्चाऽयच्छृङ्खलमप्येदोर्ध्वं बहिरंतश्च सद्वितम् ।

शिलाजतुप्रयोगः—

मुभाविता सारजलैस्तुलां पीरवा विलाद्वमवात् ॥ ३३ ॥

मारायुनैव भुजानः धानि जागलजं रमैः ।

सर्वानभिभवेन्मेहान् सुबहुपद्रवानपि ॥ ३४ ॥

गंडमालार्बुदंघ्रिस्फीत्यकुष्ठमगंदरान् ।

वृमिश्रीपक्वशोफाश्च परं चैतद्विगायनम् ॥ ३५ ॥

निर्घनप्रमेहिविकिरसा—

अपनशठपपावपरहितो मुनिवर्तनः ।

योजनानां घटं वायात्खनेद्रा सलिलाद्ययात् ॥ ३६ ॥

गोशङ्खमूत्रवृत्तिर्वा गोभिरेव सह भ्रमेत् ।

कृशप्रमेहियांचिकिरसा—

बृंहयेदोषघाहारैरमेदोमूत्रलैः कृशम् ॥ ३७ ॥

प्रमेहपिटिकोपचारः—

शराविकासाः पिटिकाः शोफवत्प्रमुपाचरेत् ।

अपक्ता, अणनस्पकाः,

ः रसासौ प्राग्रूप एव च ॥ ३८ ॥

क्षीरिष्वशानु पानाय वस्तुमूत्रं च दस्यते ।

तीक्ष्णं च शोथनं प्रायो दुविरेख्या हि मेहिनः ॥ ३९ ॥

१ स्थिता मम्पन्ना । पूर्वस्माद्रोधासवात् । २ तामांपिटिकानाम् ।

तैलमेलादिना कुर्यादगणेन वणरोपणम् ।

उद्धर्तने कपायं तु वर्णेणारम्बधादिना ॥ ४० ॥

परिपेकोऽभनाद्येन पानान्ते घल्मकादिना ।

पाठा चित्रकशाङ्गष्टा सारिवा कंटकारिका ॥ ४१ ॥

सप्ताहं कौटर्जं मूलं सोमवत्कं नृपद्रुमम् ।

संचूर्ण्य मधुना लिह्यात्तद्वच्चूर्णं नवायमम् ॥ ४२ ॥

मधुमेहे प्रयोगः—

मधुमेहित्वमापन्नो भिषग्भिः परिवर्जितः ।

मिश्राजतुनुलामद्यात्प्रमेहार्तः पुनर्नवः ॥ ४३ ॥

## त्रयोदशोऽध्यायः ।

शल्यतन्त्रम्

अथाऽतो विद्रधिबृद्धिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

आमविद्रघौ शोफवदुपचारः—

विद्रधिं सर्वमेवामं शोफवत्समुपाचरेत् ।

प्रततं च हरेद्वर्तं पक्वे तु वणवत्क्रिया ॥ १ ॥

वातविद्रधिचिकित्सा—

पंचमूलजलैर्घृतं वातिकं लवणोत्तरैः ।

भद्रादिवर्गयष्ट्याह्वतिलैरालेपयेद्व्रणम् ॥ २ ॥

वेरेबलिकपुत्तेन श्रवृतेन विशोध्य च ।

विदारौवर्गसिद्धेन श्रवृतेनैव रोपयेत् ॥ ३ ॥

क्षान्तिं क्षीरितोयेन लिपेद्यष्ट्यमृतातिलैः ।

**पित्तविद्रधिचिकित्सा—**

पैतं घृतेन सिद्धेन मज्जिष्ठोद्योरपचकैः ॥ ४ ॥

पयस्माद्विनिशाश्वेष्टायष्टौदुग्धैश्च रोपयेत् ।

भ्यग्नोष्ठादिप्रवालत्वक्फलैर्वा,

**कफविद्रधिचिकित्सा—**

कफजं पुनः ॥ ५ ॥

आरग्वधांशुना घृतं सक्तकुंभनिशातिलैः ।

लिपेत्कुलत्थिकादतीत्रिवृच्छयामाम्भितित्वक्कैः ॥ ६ ॥

ससैयवै मग्नोमूत्रैस्तैलं कुर्वीत रोपणम् ।

रक्तांतूदभवे कार्या पित्तविद्रधिवत्क्रिया ॥ ७ ॥

**आभ्यन्तरविद्रधिचिकित्सा—**

वर्णादिगणववायमपक्वत्रैऽभ्यन्तरे स्थिते ।

ऊषकादिप्रतीवापं पूर्वाह्णे विदधी पिबेत् ॥ ८ ॥

घृतं विरेचनद्रव्यैः मिदं<sup>१</sup> ताभ्यां च पाययेत् ।

निरुहं स्नेहवस्ति च ताभ्यामेव प्रकल्पयेत् ॥ ९ ॥

पानमोजननेपेषु मधुधिषु प्रयोजितः ।

दत्तावापो मयादोषमपक्वं हति विद्रधिम् ॥ १० ॥

**त्रायन्त्यादिक्वाथः—**

त्रायंतीत्रिफलानिवकटुकामधुक ममम् ।

त्रिवृत्पटोलमूलाम्यां चत्वारोऽंशाः पृथक् पृथक् ॥ ११ ॥

मग्नूरात्रिस्तुषादष्टौ तत्कवाथः सघृतो जयेत् ।

विद्रधोगुल्मवीमर्षदाहमोहमदग्बरान् ॥ १२ ॥

तृणमूर्छादिहृद्रोगपित्तासृक्कुष्ठकामलाः ।

घृतम्—

कुडवं पायमाणायवा. साध्यमष्टगुणैश्मसि ॥ १३ ॥

कुडवं वदन्नाद्याग्नीस्वरमाक्षीरतो घृतात् ।

कर्पादां कल्कितं तित्तात्रार्पतीधन्वयासकम् ॥ १४ ॥

मुस्तातामरकीवीराजीवतीचंदनोत्पलम् ।

पचेदेकत्र मंयोऽयं तद्घृतं पूर्ववद्गुणैः ॥ १५ ॥

अन्यदूघृतम्—

शिक्षा मधूकं खजूरं विदारो सततावरो ।

परुषकाणि त्रिकला तत्त्ववाचे पाचयेदूघृतम् ॥ १६ ॥

क्षीरेक्षुधाग्नीनिर्मासं प्राणदाकल्कमपुतम् ।

तच्छीतं दार्कराक्षीद्विपादिकं पूर्ववद्गुणैः ॥ १७ ॥

अस्तृक्मोक्षः—

हरेच्छृंगादिभिरस्तृक् मिरया वा यथातिकम् ।

उपनाहः—

विद्रधि पच्यमानं च कोष्ठत्वां बहिस्तप्तम् ॥ १८ ॥

शास्वोपनाहयेत्

पक्वविद्रधिभेदनादि—

शूले स्थिते तत्रैव रिडिते ।

तत्पाश्वर्षपीडनात्मुक्तो दाहादिप्वत्यंकेषु च ॥ १९ ॥

पक्वः स्याद्विद्रधिं भित्वा व्रणवत्तमुपाचरेत् ।

अंतर्भागस्थं चाप्येतच्चिह्नं पक्वस्य विद्रधेः ॥ २० ॥

### विद्रघौदोषविशेषस्योपेक्षादि—

पक्वः स्रोताग्नि संपूर्य स यात्यूर्ध्वमघोऽग्नवा ।  
स्वयं प्रवृत्तं तं दोषमुपेक्षेत हिताग्निनः ॥ २१ ॥  
दशाहं द्वादशाहं वा रक्षन् निपगुणद्रवान् ।  
असम्पन्नवहति क्लेदे वरणादि मुखाभमा ॥ २२ ॥  
पादयेन्मधुसिद्धं वा यवागूं तेन वा कृताम् ।

### यथादिजैर्यूपैःसहाश्रम्—

यवकोलकुन्थोत्थयूर्परश्च च स्यते ॥ २३ ॥

### दशाहाद्वनन्तरं शोधनादि—

ऊर्ध्वं दद्याद्वात्त्रायंतीसपिपा संत्वहेन वा ।  
दोषयेद्बलतः द्यूढः सञ्जीव तित्तिर्क पिबेत् ॥ २४ ॥

### विद्रधेर्गुल्मवदुपक्रमः—

सर्वघो गुल्मवन्धनं यथादोषमुपाचरेत् ।

### गुग्गुलुशिलाजतु प्रयोगः—

सर्वावस्थामु सर्वासु गुग्गुलुं विद्रघीषु च ॥ २५ ॥  
कपाययोगिकैर्गुज्यात्स्वीः स्वस्तश्चिठलाजतु ।

### यत्नेन पाकवारणादि—

पाकं च वारयेद्यत्नात्सिद्धिः पक्वे हि दैविकी ॥ २६ ॥  
अपि चाऽऽयु विदाहित्वादिद्रविः सोऽभिधीयते ।  
मति चालोचयेन्मेहे प्रमेहाणां चिकित्सितम् ॥ २७ ॥

### स्तनजविद्रधि चिकित्सा—

स्तनजे घणवत्सर्वं नत्वेनमुपनाहयेत् ।  
पाटयेत्पालयन्स्तन्यवाहिनीः कृष्णचूचुकी ॥ २८ ॥  
मवास्वामासवस्थामु निर्दुहीतं च तत्स्तनम् ।

### बुद्धि चिकित्सा—

गोधयेत्त्रिवृता स्निग्धं बृद्धौ र्नेहैश्चलात्मके ॥ २९ ॥  
 कौशाम्नास्तिस्वर्करडमुकुमारवामिश्रकः ।  
 ततोऽनिलघ्ननिर्गृहवत्कस्नेहैर्निहयेत् ॥ ३० ॥  
 रसेन भोजितं यष्टितलेनान्वासयेदनु ।  
 स्वेदप्रलेपा वातघ्नाः पक्वे भिस्वा क्षणक्रियाः ॥ ३१ ॥  
 पित्तोक्तोद्भवे बुद्ध्यावामपक्वे यथायथम् ।  
 शोऽन्नप्रणक्रियां कुर्यान् प्रतप्तं च हरेदसृक् ॥ ३२ ॥  
 गोमूत्रेण पिचेत्स्वल्क श्लेष्मिके पातदारुजम् ।  
 विम्लापनादने चाऽन्न श्लेष्मप्रधिक्रमो हितः ॥ ३३ ॥  
 पक्वे च पाटिते तैलमिष्यते क्षणशोधनम् ।  
 सुमनोरप्यराकोल्लसत्तण्डु माधितम् ॥ ३४ ॥  
 पटोभनिवरणीविडंगकुटजेषु च ।  
 मेदोर्जं मूत्रपिष्टेन मुस्विन्नं सुरसादिना ॥ ३५ ॥  
 शिरोविरेकद्रव्यैर्वा र्जयन्फलसेवनीम् ॥  
 दारुपेद्बुद्धिपत्रेण मम्यद्भेदसि मूदृते ॥ ३६ ॥  
 ग्रणं माक्षिककासीसमैधवप्रतिसारितम् ।  
 सीधेदम्यंजनं चाऽस्य योज्यं मेदोविशुद्धये ॥ ३७ ॥  
 मनःशिलैलामुमनोर्धपिभ्रम्रातर्कः श्रुतम् ।  
 तैलमात्रणसमानात्स्नेहैर्बो च शीलयेत् ॥ ३८ ॥  
 मूत्रजं स्वेदितं स्निग्धैर्वस्त्रपट्टेन वेष्टितम् ।  
 विधेदधस्तात्सेवन्मा सावयेच्च यथोदरम् ॥ ३९ ॥  
 ग्रणं च स्थविकाबद्धं रोपयेत्,  
 अन्नहेतुके ।  
 फलकौशमसंप्राप्ते चिकित्सा वातबुद्धिवत् ॥ ४० ॥

गुल्मेऽन्यैर्वातिरुफजे शीघ्रं चार्थं विधिः स्मृतः ।

कनिष्ठिकानामिकयोर्विश्वाभ्यां च यतो गदः ॥ ५१ ॥”

## चतुर्दशोऽध्यायः ।

कायचिकित्सा २२ अध्यायान्तम् ।

अथाऽतो गुल्मचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

गुल्मस्यतैलसाधनादि—

“गुल्मं बद्धशकृद्भातं वातिकं तीक्ष्णवेदनम् ।

रुशशीतोद्भव तैलैः साधयेद्भातरोगिकैः ॥ १ ॥

पानाग्राह्यासनाभ्यर्गः छिद्यस्थ स्वेदनाचरेत् ।

आकाह्वेदनास्तम्बविषयेषु विशेषतः ॥ २ ॥

मोतसा मार्दवं कृत्वा जिस्वा मारुतमुल्बणम् ।

भित्त्वा विषं छिद्यस्थ स्वेदो गुल्ममपोहति ॥ ३ ॥

स्नेहपानं हितं गुल्मे विशेषेणोष्ध्वनाभिजे ।

एकाशमगते अस्तिरुभयं जठराश्रये ॥ ४ ॥

शीतैऽङ्गी वातिके गुल्मे विषधेऽनिलवर्चसोः ।

दृढगान्धद्रवानानि छिद्योष्णानि प्रदापयेत् ॥ ५ ॥

पुनःपुनः स्नेहपानं,

निष्ठाः सानुवासनाः ।

प्रमोक्ष्या वातजे गुल्मे कफपित्तानुरक्षणः ॥ ६ ॥,

१ विश्वाभ्या यतो यस्मिन् पाश्चैयदस्तस्मिन्पाश्चै कनिष्ठिकानामिकयो  
रपरि यन् सावर्णितं तन्तुममं तदुत्तिप्यतिर्यक् छित्वादहेदित्यर्थः ।

### वस्तिकर्म गुल्मघ्नम्—

वस्तिकर्म परं विद्यादगुन्मघ्नं तद्धि मारुतम् ।  
 न्वस्थाने प्रथमं जित्वा सद्यो गुल्ममपोहति ॥ ७ ॥  
 तस्मादभीक्षणो गुल्मा निरुहैः मानुषामनैः ।  
 प्रभृग्मनैः शाम्यन्ति चातृगित्तककात्मकाः ॥ ८ ॥

### घृतम्—

हिणुमौर्यचलम्योपबिडडाडिमदोष्यकैः ।  
 पुष्कराजजिधान्याम्लवेतसशारचित्रकैः ॥ ९ ॥  
 राठीवचाजगंधैलामुरमैर्दधिसंतृप्तैः ।  
 मूलानाहहरं सपिः साधयेद्वातगुल्मिनाम् ॥ १० ॥

### अन्यदूघृतम्—

हृषोपणपृथ्वीकार्पचकोलकदीप्यकैः ।  
 साजाजीसैमर्दघ्ना दुस्तेन च रसेन च ॥ ११ ॥  
 दाडिमान्मूतकात्कोलात्पचेत्पिनिहति तत् ।  
 वातगुल्मोदरानाहपार्श्वहृत्कोष्ठवेदनाः ॥ १२ ॥  
 योन्मर्शोद्वह्णीदोषकासश्वासारुचिज्वरान् ।

### घृतम्—

दशमूलं बला कालां मुपवी द्वौ पुनर्नवी ॥ १३ ॥  
 पीष्करैरंडरास्त्राश्वगंधभाग्यमृताशठीः ।  
 पपेर्दुर्धपलाशं च द्रोणंऽपि द्विपलोन्मितम् ॥ १४ ॥  
 यवैः कोलैः कुलर्यश्च भार्यश्च प्रास्थिकैः सह ।  
 नवाग्नेस्मिन्दधिपात्रे च घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १५ ॥  
 स्वरसैर्दीडिमाघ्रातमालुंगोदमवैर्युतम् ।  
 तथा नृपांबुधान्याम्लयुतैः शुहणैश्च कल्कितैः ॥ १६ ॥

१. पृथ्वीका मगरल । २. काला-नीलिनी । मुपवीस्पूलजीरकः ।



भार्गोर्बुबुरपङ्गुयाग्रंथिरास्त्राभ्रधान्यकैः ।  
 'यवानक्यवान्यम्लवेतसामितजीरकैः ॥ १७ ॥  
 अजार्जाहिगुहपुपाकारवीवृषकोपकैः<sup>१</sup> ।  
 निकुंभकुंभमूवेमपिण्णलीवेह्लदाडिमैः ॥ १८ ॥  
 श्वदंष्ट्राश्रपुर्मवह्वीजहि<sup>२</sup>स्त्राश्मभेदकैः ।  
 मिसिद्धिधारमुरगसारिवानीलिनीफलैः ॥ १९ ॥  
 शिकटुश्रिपट्टपेतैर्दोधिकं यद्व्यपोहति ।  
 रोगानाशुतरान्पूर्वान्कण्टानपि च शीलितम् ॥ २० ॥  
 अपस्मारगरोन्मादमूत्राघातानिलामयान् ।

### श्यूषणादिघृतम्—

श्यूषणत्रिफलाधान्यचविकावेह्लचित्रकैः ॥ २१ ॥  
 कल्कीकृतैर्घृतं पक्व सक्षीर वातगुल्मनुत् ।

### सर्वधातगुल्मविकारजिदूघृतम्—

तुला लक्षुनकदाना पृथक्पंचपलाशकम् ॥ २२ ॥  
 पंचमूल महृच्चाबु<sup>३</sup>भारार्थं तद्विपाचयेत् ।  
 पादशोष तदधेन दाडिमस्वरसं मुराम् ॥ २३ ॥  
 धान्याम्ल दधि चाऽदाम पिष्टाभ्रार्धपलाशकान् ।  
 श्यूषणत्रिफलाहिगुयवानीषव्यदीप्यकान् ॥ २४ ॥  
 साम्लवेतमभिधूत्यदेवदाहन्पचेद्दृतात् ।  
 तैः प्रत्य तत्परं सर्वधातगुल्मविकारजित् ॥ २५ ॥

### अन्यदूघृतम्—

पट्फलं वा पिबेन् सपिप्यदुक्तं राजयक्ष्मणि ।  
 प्रमत्रया वा क्षीरार्थः मुरया दाडिमेन वा ॥ २६ ॥

१ यवानकः अजमोदा, अथवा खुरासानी जवाइन । २ ऊपरः—धार-  
 मृत्तिका । ३ हिश्रा-रास्त्रा । ४ महृत्त्राश्रमूलं प्रत्येकं पञ्चपलम् । भारार्थं  
 वसाशते पले तोये । तदधेन पादशोषादधेन । ५ तैश्श्यूषणादिभिः । ३ गुल्मनाशाय  
 पट्फलं घृतं, दुग्धं विहाय प्रमन्नादिषु केनचिदेकेन विपाचयेत् ।

घृते मास्तगुल्मघ्नः कार्यो दघ्नः सरेण वा ।

चमनम्—

वातगुल्मे कफो वृद्धो हृत्वाग्निमर्च्चि यदि ॥ २७ ॥

हृत्स्नाग्नी गीरथं सद्रा जनयेदुल्लिखेत्तु तम् ।

शूलानाहविवधेषु ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम् ॥ २८ ॥

काथादिप्रयोगः—

निर्यूहचूर्णवटकाः प्रयोग्या घृतभेषजैः ।

चूर्णपानम्—

कोलदाडिमघर्मावुतक्रमद्याम्लकांजिकैः ॥ २९ ॥

मडेन वा पिवेत्प्रातश्चूर्णान्यन्नस्यै वा पुरः ।

चूर्णवटकाः—

चूर्णानि मातुर्लुगस्य भाविताभ्यसङ्गद्वये ।

कुर्वीत कार्मुकतरान् वटकान् ककवातयोः ॥ ३० ॥

हिङ्गुश्चादि चूर्णम्—

हिङ्गुवचाविजयापशुगन्धा-

दाडिमदीप्यकघाभ्यकपाठाः ।

पुष्करमूलघठीहपुषास्त्रि-

क्षारमुगत्रिपटुत्रिकटूनि ॥ ३१ ॥

माज्जात्रिचम्बं सहितित्तिडोर्कं

सवेतसाम्ल विनिहति चूर्णम् ।

हृत्पाण्डुरवस्तित्रिकयोनिपायु-

शूलानि चाय्वामकफोद्भवानि ॥ ३२ ॥

१ घर्माभ्यु उष्णाम्बु । २ अन्नस्य पुरः भोजनार्थे । ३ पशुगन्धा अ-  
“ममरो” । त्रिपटुनि सैन्धवमीवर्चलामुदलवणानि ।

घृच्छुम् शुल्मान्वातविषमूत्रमंगं  
कंठे बंधं हृदग्रहं पांडुरोगम् ।  
अन्नाश्रद्धाज्ञोहृदुर्नामहिंसा-  
वर्ध्माध्मानश्वासकासाद्विसादान् ॥ ३३ ॥

वैश्वानरचूर्णम्—

<sup>१</sup>लवणयवानोदीप्यक-  
कणनागरमुत्तरोत्तरं वृद्धम् ।  
मर्चसमाद्यहरोत्तकी-  
चूर्णं वैश्वानरः साक्षान् ॥ ३४ ॥

द्विङ्गुवष्टक चूर्णम्—

त्रिरुदुकमजमोदा सैधवं जीरकं द्वे  
<sup>२</sup>ममधरणघृतानामष्टगो हिगुभाक् ।  
प्रथमकवलभोग्यः सर्पिषा चूर्णकोऽयं  
जनयति भृशमग्निं वातगुल्मं निहति ॥ ३५ ॥

शार्दूलारुचचूर्णम्—

<sup>३</sup>हिगुप्तादिहस्तुल्यजाजिविजमावाट्याभिधानामर्च-  
चूर्णः शुभ्रनिकुम्भमूलसहितैर्भागोत्तरं ध्रियते ।  
पीतः कोष्णजलेन कोष्ठग्रह्णो शुल्मोदरादीनयं  
शार्दूलः प्रसभं प्रमथ्य हरति व्याधीन् मृगोद्यानिव ॥ ३६ ॥

सैन्धवादि चूर्णम्—

निधूत्यपश्चात्कणदोष्यकानां  
चूर्णानि तोषं पिवता कक्षोष्णीः ।

१ अजदीप्यकोऽजमोदापरमन्त्रः परिमार्जनेऽत्र अजमोदास्थानेऽपि यवानो एव  
ग्राह्याः । २ परणंप्रमाणम् । ३ वाट्याभिधानं पुष्करमूलम् । आमयम् कुष्ठम् ।  
शार्दूलः निहः । कुम्भः त्रिकृत् । निकुम्भः दन्ती ।

प्रयाति नाशं कफवातजन्मा  
नाराचनिर्मिन्न इवामयीषः ॥ ३७ ॥

### क्षारचूर्णम्—

पूतीकपत्रगजचिर्मटचव्यवह्नि-  
भ्योपं च संस्तरचितं लवणोपधानम् ।  
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमस्तुयुतं प्रयोज्यं  
गुल्मोदरव्यथुः।।दुग्दोदुग्धत्रेषु ॥ ३८ ॥

### रसोनरसप्रयोगः—

हिमृन्निगुणं सैबवमस्मान्निगुणं तु तैलमरडम् ।  
तन्निगुणरसोनरसं गुल्मोदरवर्ध्मशूलघ्नम् ॥ ३९ ॥

### मातुलुंगरसप्रयोगः—

मातुलुंगरसो हिगु दाडिमं विडसैधवम् ।  
मुरामडेन पातय्य वातगुल्मघ्नपहम् ॥ ४० ॥

### शुषक्यादि चूर्णम्—

शुष्क्याः कर्पं गुडस्य द्वौ धीतात्कुण्डलितलात्पलम् ।  
सादन्नेकत्र सधूर्ण्य कीष्णक्षीरानुपोजयेत् ॥ ४१ ॥  
वातहृद्गोशगुल्मार्शोमोनिशूलघ्नकृद्ग्रहान् ।

### एरण्डतैल प्रयोगः—

पिवेदेरंडतैलं तु वातगुल्मी प्रसन्नया ॥ ४२ ॥  
श्लेष्मण्यनुवले वायो, पित्तं तु पयसा सह ।

### विरेचनादि—

विब्रुद्धं यदि वा पित्तं संतापं वातगुल्मिनः ॥ ४३ ॥

१ पूतीकपत्रं वरञ्जपत्रम् । गजचिर्मटद्वन्द्ववारणी । लवणोपधानं सैन्धवगर्भम्  
सैन्धवं च सर्वे.समम् ।

कुर्याद्विरेचनीयोऽसौ सस्नेहेरानुलोमिकः ।  
तापानुवृत्तायेवं च रक्तं तस्याऽवसेचयेत् ॥ ४४ ॥

### लशुनपक्वञ्जीरम्—

सापयेच्छुद्धसुष्कस्य लशुनस्य चतुःपलम् ।  
क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरक्षेपं च पाचयेत् ॥ ४५ ॥  
वातगुल्ममृशवर्तं गृध्रसीं विषमञ्जरम् ।  
हृद्रोगं विद्रधि शोषं साधयस्याशु तत्पयः ॥ ४६ ॥

### अन्ये प्रयोगाः—

तैलं प्रमृगानोमूत्रमारनालं यवाग्रजः ।  
गुल्मं जठरमानाहं पीतमेकत्र साधयेत् ॥ ४७ ॥  
चित्रकम्रधिकैरडसुण्ठीकाथः परं हितं ।  
शूलानाहखिबन्धेषु सहिगुबिडसैधवः ॥ ४८ ॥  
पुष्करैरडयोर्मूलं यषधन्वयवासकम् ।  
जलेन कथितं पीतं कोष्ठदाहुरुजापहम् ॥ ४९ ॥  
पाटपार्श्वैरडदर्भाणां मूलं दाहं महीषधम् ।  
पीतं निःशवाध्य तोयेन कोष्ठपृच्छं सशूलमिति ॥ ५० ॥

### शिलाजतुप्रयोगः—

शिलार्जं पयसाऽनल्पपंचमूलशृतेन वा ।  
वातगुल्मी पिबेद्वाटयमुदावर्ते तु भोजयेत् ॥ ५१ ॥  
लिम्बं पेषालिकमूँपैर्मूलकानां रसेन वा ।  
बद्धविष्मारतोऽभीयात्क्षीरेणोष्णेन यात्रकम् ॥ ५२ ॥  
गुल्मापान्वा बहुस्नेहान् भक्षयेद्वावणोत्तरान् ।  
नीलिनीत्रिवृतादतीपथ्याकपिल्लकैः सह ॥ ५३ ॥  
समलाय धृतं देयं सविडशारनागरम् ।

### नीलिनीघृतम्—

नीलिनीं त्रिफलां राक्षां कलां कटुकरोहिणीम् ॥ ५४ ॥

पचेद्विडंगं व्याघ्रीं च पालिकानि जलाढके ।  
 रसेऽष्टमागरोपे तु घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५५ ॥  
 दध्नः प्रस्थेन संयोज्य सुषाक्षोरपत्नेन च ।  
 ततो घृतफलं दद्याद्यवागूमंडमिधितम् ॥ ५६ ॥  
 जीर्णे सम्यग्विरिक्तं च भोजयेद्रसभोजनम् ।  
 गुल्मकुष्ठोदरव्यंगशोफपाण्ड्वामयज्वरान् ॥ ५७ ॥  
 शिवत्रं ब्रीहानमुन्मादं हृत्येतन्नीलिनीघृतम् ।

### मांसादिप्रयोगः—

कुक्कुटाश्च मयूराश्च चित्तिरिक्लौषवर्तकाः ॥ ५८ ॥  
 घालयो मदिराः सर्गिर्वातगुल्मचिकित्सितम् ।

### भोजनादि—

मितमुष्णं द्रवं क्षिब्धं भोजनं वातगुल्मिणाम् ॥ ५९ ॥  
 समं डावारुणीपानं तप्तं वा धान्यकैर्जलम् ।

### पित्तजगुल्मचिकित्सा—

क्षिब्धोष्णेनोदिते गुल्मे पित्तिके संसनं हितम् ॥ ६० ॥  
 द्राक्षाऽभयगुडरसं कपिर्ह्वं वा मधुद्रुतम् ।  
 कल्पोक्तं रक्तपित्तोक्तं,

### रूक्षोष्णे घृतादि—

गुल्मे रूक्षोष्णजे पुनः ॥ ६१ ॥

परं संशमनं सपिप्तिक्तं वासाघृतं शृतम् ।  
 सृणास्यपंचकनवाये जीवनीयगणेन वा ॥ ६२ ॥  
 शृतं तेनैव वा क्षीरं न्यग्रोधादिगणेन वा ।

१ कल्पोक्तं कल्पस्थानोक्तं रक्तपित्तोक्तं त्रिफलात्रिबुनेत्यादिकम् । २ तेनैव जीवनीयगणे नैव । तत्रापि रूक्षोष्णजेऽपि गुल्मे ।

## संसनम्—

तत्राऽपि संसनं युज्याञ्जीघ्रमात्ययिके भिषक् ॥ ६३ ॥  
 वैरेचनिकमिदं गपिया पयगाऽपि वा ।

## सिद्धघृतम्—

रसेनामलकेधूणां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६४ ॥  
 पथ्यापादं पिवेत्सपिस्तस्मिद्धं पित्तगुल्मनुत् ।  
 पिवेद्वा तैल्वर्कं सर्पिर्धन्वोक्तं पित्तविद्रवी ॥ ६५ ॥

## द्राक्षादिपानम्—

द्राक्षां पयस्यां मधुकं चंदनं पद्मकं मधु ।  
 पिवेत्तद्गुलतोयेन पित्तगुल्मोपघातये ॥ ६६ ॥

## त्रायमाणः प्रयोगः—

द्विपलं त्रायमाणाया जलद्विप्रस्थसाधितम् ।  
 जलमागस्थितं पूतं कोष्णं क्षीरसमं पिवेत् ॥ ६७ ॥  
 पिबेदुपरि तत्स्पोष्णं क्षीरेण यथाबलम् ।  
 तेन निर्हृतदोषस्य गुल्मः क्षाम्यति पतितः ॥ ६८ ॥

## दाहेऽभ्यङ्गादि—

दाहेऽभ्यङ्गो घृतः साज्जीर्णो हिमोपधः ।  
 स्पर्धः मरोरुहा पत्रैः पानैश्च प्रबलम्बलः ॥ ६९ ॥

## रक्तहरणम्—

विदाहपूर्वस्त्रिषु शूलैश्चक्षुश्च मार्दवे ।  
 बह्वोऽहरेर्दत्तं पित्तगुल्मे निरोपतः ॥ ७० ॥  
 छिन्नमूला विदहते न, गुल्मा याति च क्षयम् ।  
 रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चाऽस्ति रुक् ॥ ७१ ॥  
 हृतदोषं परिम्लानं जांगलैस्तपितं रसैः ।  
 समाश्वस्तं सनेपातिं सपिरम्यासयेत्पुनः ॥ ७२ ॥

## पाकोन्मुखे गुल्मेक्रिया —

रक्तपित्तातिवृद्धत्वात्क्रियामनुपलभ्य वा ।

गुल्मे पाकोन्मुखे सर्वा पित्तविद्रधिवात्क्रिया ॥ ७३ ॥

## भोजनादि —

शालिर्गन्ध्याजपयसा पटोलो जांगलं घृतम् ।

घात्रो परुषकं द्राक्षा सर्जूरं दाडिमं तिष्ठाम् ॥ ७४ ॥

भोज्यं पानेऽनुबलया वृद्ध्यासौषच माधितम् ।

## कफगुल्मचिकित्सा —

श्लेष्मजे वामयेत्पूर्वमवम्यमुपवामयेत् ॥ ७५ ॥

तिक्तोष्णकटुमंसर्ग्या घृष्टि संघुस्येत्ततः ।

हिग्वादिभिश्च द्विगुणक्षारहिग्वम्लवेतसैः ॥ ७६ ॥

निगूढं यदि बोधद्वं स्थिमितं कठिनं स्थिरम् ।

आनाहादिघृतं गुल्मं संशोष्य विनयेदनु ॥ ७७ ॥

घृतं सक्षारकटुकं पातभ्यं कफगुल्मिना ।

सम्योपक्षारलवणं सहिषुबिहदाडिमम् ॥ ७८ ॥

कफगुल्मं जयत्माशु दधमूलशृतं घृतम् ।

## भल्लातकं घृतम् —

भल्लातकानां द्विपल पञ्चमूलं पलोन्मितम् ॥ ७९ ॥

अल्पं त्रयोषाढके सार्धं पादशेषेण तेन च ।

तुल्यं घृतं तुल्यपयो विपचेदक्षसमितः ॥ ८० ॥

विडङ्गहिगुसिधूतस्थानात्रपाकशठीविटैः ।

सद्दीपिरास्त्रावष्टेचाह्वपद्भ्याकणनागरैः ॥ ८१ ॥

एतद्भल्लातकघृतं कफगुल्महरं परम् ।

प्लीहपाद्वागमयश्वाग्महणीरोगकासनुत् ॥ ८२ ॥

१ विनयेत् उपसमयेत् । २ अल्पहृत्स्वं पञ्चमूलं शालपण्यादि ३ द्वीपीचिन्मकः ।



## स्वेदप्रयोगः—

उत्तोऽप्य गुल्मे चेहे च समस्ते स्वेदमाचरेत् ।  
 सर्वत्र गुल्मे प्रथमं स्नेहस्वेदोपपादिते ॥ ८३ ॥  
 वा क्रिया क्रियते याति सा सिद्धि न विरुक्षिते ।  
 क्षिण्यस्विन्नशरीरस्य गुल्मे शैथिल्यमागते ॥ ८४ ॥

## घटिका योजनादि—

यथोक्ता घटिकां म्यस्येद्गृहीतेऽपनयेच्च ताम् ।  
 चक्ष्रांतरं सतः कृत्वा लिङ्गाद्गुल्मं प्रगाणवित् ॥ ८५ ॥  
 विमार्गाजपदादर्शय्यालार्भं प्रपीडयेत् ।  
 प्रमृज्याद्गुल्ममेवैकं न त्वंश्चहृदयं स्पृशेत् ॥ ८६ ॥  
 तिलैरंघ्रातसीबीजसर्पपैः परिलिप्य वा ।  
 श्लेष्मगुल्ममयस्पाश्र्मः सुक्ष्मोर्णः स्वेदयेत्ततः ॥ ८७ ॥

## शोधनादि—

एवं च भिक्षुतं रथानाम् कफगुल्मं विरेचनैः ।  
 मस्नेहैर्यस्तिभिर्धनं शोधयेद्दशमूलकैः ॥ ८८ ॥

## मिश्रकारकः स्नेहः—

पिप्पल्यामलकद्राक्षाश्यामाचीः पालिकं पचेत् ।  
 एरंडतलहविपोः प्रस्थो पयसि पङ्गुणे ॥ ८९ ॥  
 मिदोऽयं मिश्रकः स्नेहो गुल्मिना संसनं हितम् ।  
 धृद्धिनिद्राधिपूलेषु वातश्याधिषु चागूतम् ॥ ९० ॥

## नीलिनीघृतपानादि—

पिवेद्वा नीलिनीमपिमात्रया द्विपलीकया ।  
 तथैव सुकुमारारूपं घृतान्घोदरिकाणि वा ॥ ९१ ॥

१ विमार्गः काष्ठस्रण्डः । २ एरण्डतलस्य प्रस्थम् सार्धपञ्च प्रस्थम् ।  
 ३ द्विपलीकयामात्रया द्विपलप्रमाणया मात्रया ।

## दन्तीहरीतकी—

द्रोणैर्मगः पचेद्द्व्याः पलानां पञ्चविंशतिम् ।  
 चित्रकस्य तथा पद्यास्तावतीस्तद्वत्ते स्रुते ॥ ६२ ॥  
 द्विप्रस्थे माषयेत्स्रुते क्षिपेद्द्वीममं गृहम् ।  
 तैलात्पलानि चत्वारि त्रिवृतायाश्च चूर्णतः ॥ ६३ ॥  
 कणारूपी तथा द्युःश्याः मिदं लेहे तु घोटले ।  
 मधु तैलममं दद्यान्वतुर्जातान्वतुर्धिकाम् ॥ ६४ ॥  
 अतो हरीतकीमेका सावलेहपलामदम् ।  
 मुखं विरिच्यते जिम्बो दोषप्रस्यमनामयः ॥ ६५ ॥  
 गुल्महृद्रोगदुर्नामशोकानाहगरौदरान् ।  
 कुष्ठोत्कलेशारुचिष्ठीहृत्प्रहर्णाविषमज्वरान् ॥ ६६ ॥  
 धनति दतीहरोत्कयः पाण्डुतां च मक्तामलाम् ।

## सुधाक्षीर प्रयोगः—

सुधाक्षीरद्वयं चूर्णं त्रिवृतायाः मुभावितम् ॥ ६७ ॥  
 कापिकं मधुसपिम्ब्या लीङ्वा साधु विरिच्यते ।

## कुष्ठदि प्रयोगः—

कुष्ठश्यामात्रिवृद्दीविजयाक्षारगुग्गुलुम् ॥ ६८ ॥  
 गोमूत्रेण पिबेदेकं तेन गुग्गुलुमेव वा ।

## निरुहादियोजना—

निरुहान्कल्पसिद्धपुक्तान् योजयेद्गुल्मनाशनान् ॥ ६९ ॥

## क्षारादिप्रयोगः—

वृषमूलं महावास्तुं कठिनं स्तिमितं गृहम् ।  
 गूढमार्मं जयेद्गुल्मं क्षारारिष्टाधिकर्मभिः ॥ १०० ॥

१ तथा-चित्रकस्य पलानां पञ्चविंशतिम् । पद्यास्तावतीः पलपञ्चविंशतिम् ।  
 पलपरिमिताम् । ३ तेन गोमूत्रेण एकमेवयगुग्गुलुमेव ।

एकांतरं द्वयंतरं वा विश्रमय्याऽथ वा श्र्यहम् ।  
 क्षरीरदोषबलयोर्वर्धनक्षपणोद्यतः ॥ १०१ ॥  
 अक्षीरमरीग्रहृष्टुक्ताः क्षारा योज्याः कफोत्वणे ।

### देवदारवादिक्षारः—

देवदारुनिवृद्धीकडुकापंचकोलकम् ॥ १०२ ॥  
 स्वजिकायावदुकाण्वी श्रेष्ठा पाठोपकुञ्चिकाः ।  
 कुष्ठं सर्पसुगन्धा च द्रवक्षांशं, पटुपंचकम् ॥ १०३ ॥  
 पालिकं क्षूणितं तैलवसादधिघृताप्पुतम् ।  
 घटस्यानः पचेत्पक्रमशिवर्णे घटे च तम् ॥ १०४ ॥  
 क्षारं घृहीत्वा क्षीराज्यसक्रमद्यादिभिः पिबेत् ।  
 गुल्मोदावर्तवर्ध्मर्शिजठरग्रहणीकृन्मान् ॥ १०५ ॥  
 अपस्मारगरोन्मादयोनिशुक्रामयाश्मरीः ।  
 क्षारोऽग्न्योऽयं क्षमयेद्विषं चालुभुजं गजम् ॥ १०६ ॥  
 श्लेष्माणं मधुरं लिग्धं रसक्षीरघृवाग्निनः ।  
 छित्त्वा भित्त्वाऽऽशयं क्षारः क्षारस्वात्पातयत्यथः ॥ १०७ ॥

### आसवादि प्रयोगः—

मधेऽग्नावरुची सात्स्यैर्गदीः सस्नेहमश्नताम् ।  
 योजयेदामवारिष्टान्निगदान्मार्गसुदुये ॥ १०८ ॥

### अन्नपानम्—

क्षालयः पट्टिका जीर्णाः कुलत्था जागलं पलम् ।  
 चिरिबित्वाग्निस्पर्करीयवानीवरणांकुराः ॥ १०९ ॥  
 शिम्बुस्तरणबित्वानि बालं क्षुण्णं च मूलकम् ।  
 बीजपूरकहिम्बम्लवेतसक्षारदाडिमम् ॥ ११० ॥  
 व्योषं तक्रं घृतं तैलं भक्तं पानं तु वारुणी ।  
 घान्याम्लं मस्तु तक्रं च यवानीबिडचूणितम् ॥ १११ ॥

## दन्तीहरीतकी—

द्रोणैर्ममः पचेद्दृत्याः पलानां पञ्चविंशतिम् ।  
 चित्रकस्य तथा पथ्यास्तावतीस्तद्वत्ते स्तुते ॥ ६२ ॥  
 द्विप्रस्थे साधयेत्पूते क्षिपेद्दन्तीसमं गृहम् ।  
 तैलात्पलानि चत्वारि त्रिवृतायाश्च घूर्णतः ॥ ६३ ॥  
 कणाकर्षो तथा क्षुब्ध्याः मिद्धं लेहे तु शोतले ।  
 मधु तैलसमं दद्याच्चतुर्जतान्चतुर्थिकाम् ॥ ६४ ॥  
 अतो हरीतकीमेकां सावलेहपलामदन् ।  
 मुलं विरिञ्चते क्षिब्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥ ६५ ॥  
 गुल्महृद्रोगदुर्नामशोफानाहगरोदरान् ।  
 कुष्ठोत्क्लेशाश्चिह्नोहृद्यहृणीविषमम्बरान् ॥ ६६ ॥  
 ध्वनति दन्तीहरीतक्यः पाण्डुना च सकामलाम् ।

## सुधाक्षीर प्रयोगः—

सुधाक्षीरद्वयं घूर्णं त्रिवृतायाः सुभाक्षितम् ॥ ६७ ॥  
 कापिकं मधुसपिन्ध्यां लोढ्वा साधु विरिञ्चते ।

## कुष्ठदि प्रयोगः—

कुष्ठश्यामात्रिवृत्तीविजयाक्षारगुग्गुलुम् ॥ ६८ ॥  
 गोमूत्रेण पिबेदेकं तेन गुग्गुलुमेव वा ।

## निरुहादियोजना—

निरुहान्कल्पमिद्धयुक्तान् योजयेद्गुल्मनाशनाम् ॥ ६९ ॥

## क्षारादिप्रयोगः—

कृतमूलं महावास्तुं कठिनं स्निग्धं गुरुम् ।  
 गूढमार्गं जयेद्गुल्मं क्षारादिष्टाधिकर्मभिः ॥ १०० ॥

१ तथा-चित्रकस्य पलानां पञ्चविंशतिम् । पथ्यास्तावतीः पलपञ्चविंशतिम् ।  
 पलपरिमितम् । ३ तेन गोमूत्रेण एकमेवगुग्गुलुमेव ।

एकोत्तरं द्वयन्तरं वा विश्रमय्याऽथ वा श्रमम् ।  
 क्षरीरदोषबलयोर्वर्धनक्षपणोद्यतः ॥ १०१ ॥  
 अशोऽश्मरीमहण्युक्ताः क्षारा योज्याः कफोत्त्वणे ।

### देवदार्वोदिचारः—

देवदारुत्रिवृद्धतीकटुकापंचकोलकम् ॥ १०२ ॥  
 सर्वाजिकायावगूकारूपौ श्लेष्मा पाठोपकुंचिकाः ।  
 कुष्ठं 'सर्पमुगंधां च द्यूक्षांशं, पटुपंचकम् ॥ १०३ ॥  
 पालिकं जूणितं तैलवसादधिघृताप्लुतम् ।  
 घटस्यानः पचेत्पक्रमग्निवर्णे घटे च तम् ॥ १०४ ॥  
 क्षारं गृहीत्वा क्षीराज्यतक्रमद्यादिभिः पिबेत् ।  
 गुल्मोदावर्तकर्मशोऽजठरग्रहणीकुमीन् ॥ १०५ ॥  
 अपस्मारगरोन्मादयोनिशुक्रामयाश्मरीः ।  
 क्षारोऽगदोऽयं क्षमयेद्विषं चागुभुजंगजम् ॥ १०६ ॥  
 श्लेष्माणं मधुरं लिण्घं रसक्षीरघृताशिनः ।  
 छित्त्वा भित्त्वाऽऽशयं क्षारः क्षारस्वात्पातयत्यथः ॥ १०७ ॥

### आसवादि प्रयोगः—

मदेऽश्नावद्वौ सात्स्म्यैर्मदैः सस्नेहमश्नताम् ।  
 योजयेदामवारिष्टाग्निगदान्मार्गशुद्धये ॥ १०८ ॥

### अन्नपानम्—

क्षालयः पष्टिका जीर्णाः कुलस्था जागलं पलम् ।  
 बिरिबित्वाप्रितर्कारीयवानीवरणांबुराः ॥ १०९ ॥  
 शिग्रुस्तरणवित्त्वानि बालं शुष्कं च मूलकम् ।  
 बीजपूरकहिम्यम्लवेतसक्षारदाडिमम् ॥ ११० ॥  
 शोषं तक्रं धृतं तैलं भक्तं पानं तु वारुणी ।  
 घान्याम्लं मस्तु तक्रं च यवानीविडजूणितम् ॥ १११ ॥

पञ्चमूलशृङ्खलं वारि जीर्णं माद्रीकमेव वा ।

सुरादिप्रयोगः—

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकाजाजिसंवर्धः ॥ ११२ ॥

सुरा गुल्मं जयत्याद्यु जांगलश्च विमिश्रितः ।

दाहकरणम्—

वमनैर्लपनैः स्वेदैः सर्पिःपानैर्विरेचनैः ॥ ११३ ॥

वस्तिक्षारासवारिष्टगुल्मकापथ्यभोजनैः ।

श्लैष्मिको बद्धमूलत्वाद्यदि गुल्मो न शाम्यति ॥ ११४ ॥

तस्य 'दाहं' हृते रक्ते कुर्यादिते घराविभिः ।

अथ गुल्मं सपर्यंतं वाससांतरितं भिषक् ॥ ११५ ॥

नाशिवस्त्यंश्चहृदयं रोमराजौ च वर्जयन् ।

नातिगार्ढं परिमृच्छेच्छरेण ज्वलताऽथवा ॥ ११६ ॥

'लोहेनारणि'कोत्थेन दारुणा सैदुकेन वा ।

ततोऽसिवेगे क्षमिते क्षीतैश्चण इव क्रिया ॥ ११७ ॥

आमान्वयेऽग्निसंधुत्तणादिः—

आमान्वये तु पेयाद्यैः संभूक्ष्याग्निं विलंघिते ।

स्वं स्वं कुर्यात्क्रमं मिथ मिथदोषे च कालवित् ॥ ११८ ॥

नार्यारक्तगुल्मचिकित्सितम्—

गतप्रसवकालार्थं नार्यं गुल्मेऽप्यसंभवे ।

स्निग्धस्विप्रशरीरायै दद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥ ११९ ॥

तिलकवायो घृतगुदब्योपभार्गोरजोन्वितः ।

पानं रक्तमये गुल्मे नष्टे पुष्ये च योषितः ॥ १२० ॥

भार्गवृष्णाकरंजत्वर्गग्रंथिकामरदारुजम् ।

चूर्णं तिलानां क्वाथेन पीतं शुक्मरुजापहम् ॥ १२१ ॥

१ तस्य श्लैष्मिकगुल्मस्य । २ लोहेनक्षरेण ।

पलाशक्षारपाने द्वे द्वे पात्रे तैलसर्पिपोः ।

गुल्मशोधित्यजननीं पक्त्वा भात्रां प्रयोजयेत् ॥ १२२ ॥

न प्रमिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविरेचनम् ।

योनिविशोधनादि—

क्षारेण युक्तं <sup>१</sup>पल्लं सुषादीरेण वा सतः ॥ १२३ ॥

ताम्यां वा भावितान्दद्याद्योनीं कटुकमत्स्यकान् ।

यदाहमत्स्यपित्ताम्यां नक्तकान्वा सुभाविताम् ॥ १२४ ॥

किण्वं वा सगुडक्षारं दद्याद्योनीं विषुद्धये ।

रक्तपित्तहरं क्षारं लेहयेन्मद्युसर्पिषा ॥ १२५ ॥

लक्षुनं भदिरां तीक्ष्णां मत्स्यांश्चास्यं प्रयोजयेत् ।

वर्त्ति सक्षीरगोमूर्त्रं सक्षारं दाक्षमूलिकम् ॥ १२६ ॥

अवर्तमाने रुधिरे हितं गुल्मप्रभेदनम् ।

यमकाम्मक्तदेहायाः <sup>२</sup>प्रवृत्ते समुपेक्षणम् ॥ १२७ ॥

रमोदनस्तथाऽऽहारः पानं च तरुणी सुरा ।

रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहराः क्रियाः ॥ १२८ ॥

कार्या वातरुगार्तायाः सर्वा वातहराः पुनः ।

<sup>३</sup>आनाहादायुदावर्तवत्सामघ्न्या यथायथम् ॥ १२९ ॥



१ पल्लं भृष्टतिलचूर्णम् । कटुकमत्स्यकः सक्ती अत्र क्षुद्रमत्स्य इति परकेचत्रपाणिः । २ प्रवृत्ते रक्ते प्रवृत्ते । ३ आनाहादायुपद्वे सति ।

## पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथास्त उदरचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

उदरिणो विरेचनम्—

दोषात्रिमाशोपचयारश्रोतोमार्गनिरोधनान् ।  
संभवत्युदरं तस्मान्नित्यमेवं विरेचयेत् ॥ १ ॥

स्निग्धं विरेचनम्—

पाययेत्तैलमैरंडं गमूत्रं सपयोऽपि वा ।  
मामं द्वौ वायवा गन्धे मूत्रं माहिषमेव वा ॥ २ ॥  
पिवेद् गोक्षीरश्लुक् स्याद्वा करभीर्दारवर्तनः ।  
बाह्यानाहातिनृष्णूर्ध्वपरीतस्तु विक्षेपतः ॥ ३ ॥

घृतयोजना—

रुक्षाणां बहुवातानां दोषमंशुद्विकान्तिणाम् ।  
स्नेहनीयानि सर्षापि जठरघ्नानि योजयेत् ॥ ४ ॥,  
पट्पलं दशमूलांबु मस्तुग्घ्राटकमाधितम् ।,  
नागरं त्रिपलं प्रस्थं घृततैलात्तथाऽऽकम् ॥ ५ ॥  
मस्तुनः साधयित्वैतत्पिबेत्सर्वोदरापहम् ।  
कफमारुतसंभूते गुल्मे च परमं हितम् ॥ ६ ॥,  
अतुर्गुणे जले, मूत्रे द्विगुणे, चित्रकात्पले ।  
कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सक्षारं जठरी पिवेत् ॥ ७ ॥,  
मयकोलकुलत्पानां पंचमूलस्य चाभसा ।  
मुरासीवीरकाम्पां च मिद्धं वा पाययेद्दृतम् ॥ ८ ॥,



### स्निग्धे विरेचनम्--

एभिः स्निग्धाय संजाते बले धाते च मास्ते ।  
स्वस्ते दोषाशये दद्यात्कल्पदृष्टं विरेचनम् ॥ ६ ॥

### पटोल चूर्णपानादि--

पटोलमूलं त्रिफलां मिश्रा वेत्तं च कापिकम् ।  
कंपिह्ननीलिनीकुम्भमागान् द्वित्रिचतुर्गुणान् ॥ १० ॥  
पिवेत्संचूर्णं मूत्रेण पेयां पूर्वं ततो रमैः ।  
विरक्तो जांगलैरद्यात्ततः पद्दिवसं पयः ॥ ११ ॥  
शृतं पिवेन्द्यापयुतं पीतमेवं पुनः पुनः ।  
हन्ति सर्वोदराप्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि ॥ १२ ॥

### गवाक्ष्यादि चूर्णपानम्--

गवाक्षी शंसिनी दंती तिल्वकस्य स्वर्षं वचाम् ।  
पिवेत्कर्कधुमुद्धीकाकोलाभोमूत्रमीघुभिः ॥ १३ ॥

### नारायण चूर्णम्--

यवानी हृषुपा धान्यं शतपुष्पोऽङ्गुविका ।  
कारवी पिप्पलीमूलमजगघा शठी वचा ॥ १४ ॥  
चित्रकाज्जाजिकं व्योषं स्वर्णक्षीरी फलत्रयम् ।  
ही क्षारी पीप्परं मूलं कुष्ठं लवणपत्रकम् ॥ १५ ॥  
विडंगं च गमाद्यानि दंरया भामत्रयं तथा ।  
त्रिवृद्विजाले द्विगुणे साजला च चतुर्गुणा ॥ १६ ॥  
एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणानहः ।  
नैनं प्राप्याभिवर्धते रोगा विष्णुमिवामुराः ॥ १७ ॥  
तक्रेशोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदरांजुना ।  
आनाह्वाते मुरया वातरोगे श्रमत्रया ॥ १८ ॥  
दभिर्गडेन निट्मये दाडिगांनोभिरर्चयति ।  
परिक्ते सवृशाम्लरूपांनुमिरजीर्णके ॥ १९ ॥

भगंदरे पांडुरोगे फाते श्वासे गलग्रहे ।  
 हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मंदेऽनले ज्वरे ॥ २० ॥  
 दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे चिपे ।  
 यथाहं श्लिष्पकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ २१ ॥

### हृषुपादि चूर्णपानम्—

हृषुपां काचनक्षीरो त्रिफलां नीलिनीफलम् ।  
 प्रायती रोहिणीं त्रिक्तां सातलां त्रिवृतां वचाम् ॥ २२ ॥  
 मैघवं काललवणं पिप्पलीं चेति चूर्णयेत् ।  
 दाडिमत्रिफलामांसरसमूत्रसुखोदकैः ॥ २३ ॥  
 पेयोऽयं सर्वगुल्मेषु स्त्रीह्नि सर्वोदरेषु च ।  
 श्वित्रे कुष्ठेज्वरैरके सदनै विषमेऽनले ॥ २४ ॥  
 शोफार्णःपांडुरोगेषु कामलायां हलीमके ।  
 घातपित्तकफाश्रया विरेकेण प्रसाधयेत् ॥ २५ ॥

### नीलिन्यादि चूर्णम्—

नीलिनी निचुलं व्योषं क्षारी लवणपंचकम् ।  
 विप्रकं च पिवेच्चूर्णं सपिपोदरगुल्मनुद् ॥ २६ ॥

### दुग्धप्रयोगः—

पूर्ववच्च पिवेद्दुग्धं क्षामः शुद्धोऽन्तरांतरा ।  
 कारभं गन्धमाजं वा, दद्यादात्ययिके गदे ॥ २७ ॥  
 स्नेहमेव विरेकार्थं दुर्बलेभ्यो विशेषतः ।

### हरीतकी प्रयोगः—

हरीतकीमूढमरजःप्रस्थयुक्तं घृताढकम् ॥ २८ ॥  
 अग्नौ विलाप्य मथितं सजेन यवपल्लके ।  
 निघापयेत्ततो भासादुद्धृतं गालितं पचेत् ॥ २९ ॥

१ अजरके—अजीर्णे । २ पूर्ववच्च—यथा पटोलमूलादिके चूर्णे विधानं तथैव  
 क्षामः जोगलरमादनन्तरमन्तराऽन्तरा दुग्धं पिवेत् । आत्ययिके गदे विरेका  
 स्नेहेनैव दद्यात् ।

हरीतकीनां कायेन दध्ना चाग्नेन संयुतम् ।  
उदरं गरमघ्नोलामानाहं गुल्मविद्रधिम् ॥ ३० ॥  
हृत्पेतस्कुष्ठपुन्मादमस्मारं च पानतः ।

### स्तुक्क्षीरघृत प्रयोगः—

स्तुक्क्षीरमुक्तादगोक्षीराच्छृतशीतास्त्रजाहताव ॥ ३१ ॥  
यजातमाउय स्तुक्क्षीरसिद्धं तच्च तथागुणम् ।  
क्षीरद्रोणं मुधाक्षीरप्रस्थार्धेन युतं दधि ॥ ३२ ॥  
घातं मयित्वा तत्सपिस्त्रिवृत्सिद्धं च तद्गुणम् ।  
तथा सिद्धं घृतप्रस्थं पयस्पृष्टगुणं पिबेत् ॥ ३३ ॥  
स्तुक्क्षीरपलकत्केन त्रिपृष्ठापदपरोन च ।  
एषा चाऽनु पिबेत्पेया रसं स्वादु पयोधवा ॥ ३४ ॥  
घृते जीर्णे विरिक्तञ्च कोष्णं नागरमाधितम् ।  
पिबेद्दधु तत पेया ततो यूषं कुलत्पजम् ॥ ३५ ॥  
पिबेद्ब्रह्मस्यहं त्वेवं भूयो वाप्रतिभोजितः ।  
पुनः पुनः पिबेत्सपिरानुपूर्व्याऽनयैव च ॥ ३६ ॥  
घृताग्न्येतानि सिद्धानि विदध्यात्कुशलो भिषक् ।  
गुल्मानां गरदोषाणामुदराणां च घातये ॥ ३७ ॥  
पीलुकल्कोपसिद्धं वा घृतमानाहभेदनम् ।  
तैत्त्वकं नीलिनीसपिः स्नेहं वा मिश्रकं पिबेत् ॥ ३८ ॥  
हृतदोषः क्रमादशनम् लघुत्वात्प्योदनं प्रति ।  
उपयुंजीत जठरी दोषशेषनिवृत्तये ॥ ३९ ॥

### हरीतकीपिप्पली सहस्र प्रयोगः—

हरीतकीमहश्च वा गोमूत्रेण पयोऽनुपः ।  
सहस्रं पिप्पलीनां वा स्रुग्दीरेण मुभावितम् ॥ ४० ॥  
पिप्पलीं वर्धमानां वा क्षीराजी वा सिग्गजतु ।  
तद्वद्वा गुग्गुलुं क्षीरं तुल्यार्द्रकरसं तथा ॥ ४१ ॥

## अन्ये प्रयोगाः—

चित्रकामरदारुम्यां कल्कं क्षीरेण वा पिवेत् ।  
 मामं युक्तस्तथा हस्तिपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ ४२ ॥  
 विडंगं चित्रको दन्ती चय्यं व्योषं च तैः पयः ।  
 बल्कः कोलममैः पीत्वा प्रवृद्धमुदरं जयेत् ॥ ४३ ॥  
 भोज्यं भुञ्जीत वा मासं शुद्धीक्षीरघृतान्वितम् ।  
 उत्कारिकां वा सूक्ष्मक्षीरपीतपथ्याकणावृताम् ॥ ४४ ॥  
 पार्श्वदूलमुपस्तम्बं हृग्रहं च समीरणः ।  
 यदि कुर्यात् ततस्तैलं बिल्वक्षारान्वितं पिवेत् ॥ ४५ ॥  
 पक्वं वा टिटुकपलाशातिलनालजैः ।  
 क्षारैः कदल्यपामार्गवकर्षीजैः पृथक्कृतैः ॥ ४६ ॥  
 कफे वातेन पित्ते वा ताम्ब्यां थाप्यावृतेऽनिले ।  
 बलिनः स्त्रीपथयुतं तैलमेरुद्वजं हितम् ॥ ४७ ॥

## लेपः—

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिदिग्गुहैः ।  
 साश्वकर्णैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं बहिः ॥ ४८ ॥

## काथमूत्र सेकः—

शृङ्गिकालीवचाशुंठीवचमूलपुनर्नवात् ।  
 वर्षाम्रूयान्य कुष्ठान्च क्वाथैर्मूत्रैश्च सेचयेत् ॥ ४९ ॥

## वेष्टनम्—

विरिक्तं म्लानमुदरं स्वेदितं सात्वलादिभिः ।  
 वाससा वेष्टयेदेवं वायुर्नाऽऽप्नापयेत्पुनः ॥ ५० ॥

## सपनाहनम्—

शुविरिक्तस्य यस्य स्यादाघ्नानं पुनरेव तम् ।

१ ताम्ब्यां पित्तकफाम्ब्यामावृतेऽनिले । स्त्रीपथयुतं येन दोषेणावरणं तद्दोष  
 नाशकौपमयुतम् ।

मुस्निग्धैरम्ललवणैर्निस्सृहैः समुपाधरेत् ॥ ५१ ॥

वस्तयः—

सोपस्तम्भोऽपि वा वायुराध्मावयति यं नरम् ।

तीक्ष्णाः सक्षारगोमूत्राः घस्यन्ते तस्य वस्तयः ॥ ५२ ॥

इति सामान्यतः प्रोक्ताः सिद्धा जठरिणा क्रियाः ।

वातोदर चिकित्सा—

वातोदरेऽयं बलिर्न विदार्यादिशृतं घृतम् ॥ ५३ ॥

पाययेत्तु ततः स्निग्धं स्वेदितांगं विरेचयेत् ।

बहुशस्तैत्वकेर्ननं सपिपा मिश्रकेण वा ॥ ५४ ॥

घृते संतर्जने क्षीरं बलार्थमवचारयेत् ।

प्रागुत्पलेद्यान्निवर्तेत बले लब्धे क्रमात्पयः ॥ ५५ ॥

यूपै रसैर्वा मृदाम्ललवणैरेषितानलम् ।

सोदावर्तं पुनः स्निग्धं श्विन्नमास्यापयेत्ततः ॥ ५६ ॥

तीक्ष्णाऽधोभागयुक्तेन दाद्यामूलिकवस्तिना ।

तिलोरुवृकतैलेन वातध्माश्लशृतेन च ॥ ५७ ॥

स्फुरणाक्षेपसध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकातिषु ।

रुसं बद्धश्चक्रद्वार्तं दीप्ताग्निमनुवासयेत् ॥ ५८ ॥

अविरेच्यस्य घमना बस्तिक्षीरघृतादयः ।

पित्तोदर चिकित्सा—

बलिर्न स्वादुसिद्धेन पित्ते संस्नेह्य सपिपा ॥ ५९ ॥

श्यामाग्निमंडीनिफ्र्याविपषवेन विरेचयेत् ।

सितामघुपृताढ्येन निरुहोऽस्य सत्वो हितः ॥ ६० ॥

१ सोपस्तम्भः कफा द्यापारकेण सह वर्तत इति सोपस्तम्भः । २ श्यामा  
गुणान्निवृत् घृददारकोवा । त्रिभंडी त्रिवृत् ।

न्यग्रोधादिकपायेण स्नेहवस्तिश्च तच्छृतः ।  
 दुर्बलं त्वनुवास्यादौ शोधयेत्क्षीरवस्तिभिः ॥ ६१ ॥  
 जाते त्वन्निबले स्निग्धं भूयो भूयो विरेचयेत् ।  
 क्षीरेण सन्निवृत्तत्वेनोन्मूलकशृतेन तम् ॥ ६२ ॥  
 सातलाशयमाणार्घ्या शृतेनाऽऽरम्भेन वा ।  
 सकफे वा समूत्रेण, सतिक्ताज्येन सानिखे ॥ ६३ ॥  
 पयसान्यतमेन वा विदार्यादि शृतेन वा ।  
 मुञ्जीत, जठरं चाऽस्य पायसेनोपनाहयेत् ॥ ६४ ॥  
 पुनः क्षीरं पुनर्वस्ति पुनरेव विरेचनम् ।  
 क्रमेण ध्रुवमातिष्ठन्यतः पित्तोदरं जयेत् ॥ ६५ ॥

### कफोदर चिकित्सा—

घृतवादिषिपक्वेन कफे संस्नेह्य सर्पिषा ।  
 त्विन्नं स्नुवक्षीरसिद्धेन बलवतं विरेचितम् ॥ ६६ ॥  
 मंसर्जयेत्कटुक्षारयुक्तं रन्ने. कफापहैः ।  
 मूत्रशूषणतलाज्यो निरूहोऽस्य सर्वो हितः ॥ ६७ ॥  
 मुष्फकादिकपायेण स्नेहवस्तिश्च तच्छृतः ।  
 भोजनं ध्यापदुग्धेन कौलत्येन रसेन वा ॥ ६८ ॥  
 स्तमित्यारुचिहृद्भ्रातर्मदेऽग्री मद्यपाय च ।  
 दद्यादरिष्टान् क्षाराश्च कफस्त्यानस्थिरोदरे ॥ ६९ ॥

### क्षारः—

हिमपशुत्ये त्रिकला देवदारु निशाद्वयम् ।  
 भक्ष्मातकं शिथुफलं कटुकां तिक्तकं वचाम् ॥ ७० ॥  
 शुंठी माद्री घनं वृष्ट सरलं पटुपंचकम् ।  
 दाहयेज्जर्जरीकृत्य दधिस्नेहचतुष्कवत् ॥ ७१ ॥  
 अंतर्धूमं ततः क्षाराद्विडालपदकं पिबेत् ।  
 भदिरादधिर्मंडोष्णजलारिष्टमुरामवैः ॥ ७२ ॥

१ तच्छृतस्तेनन्यग्रोधादिनपायेण शृतः पक्वः ।

उदरं गुल्ममण्ठीलां तून्वी शोफं विसूचिकाम् ।  
प्लोहहृद्दोग्दुदजानुदावर्तं च नाशयेत् ॥ ७३ ॥

### अरिष्टादिप्रयोगः—

जयेदरिष्टगोमूत्रचूर्णमिष्टुविपाकतः ।  
सशारतैलपानैश्च दुर्बलस्य कफोदरम् ॥ ७४ ॥

### उपनाहनस्वेदप्रयोगः—

उपनाह्यं समिद्धार्थकिण्वर्वाजैश्च मूलकात् ।  
कल्कितैस्त्वरस्वेदमग्नीदणं चाऽप्य योजयेत् ॥ ७५ ॥

### सन्निपातोदर चिकित्साः—

सन्निपातोदरे दुर्यान्नातिक्षीणबलानले ।  
दोषोद्रेकानुरोधेन प्रत्याख्याय क्रियामिमाम् ॥ ७६ ॥  
दन्तीद्रवतीफलजं तैलं पाने च दास्यते ।  
'क्रियामिवृत्ते जठरे त्रिदोषे तु विक्षेपतः ॥ ७७ ॥  
दद्यादापृच्छप तज्जातीन् पातु मद्यैव कल्पितम् ।  
मूलं फाकादनीगुञ्जाकरवीरकस्तम्भम् ॥ ७८ ॥

### विषप्रयोगः—

पानभोजनमंयुक्तं दद्याद्वा स्थावरं विषम् ।  
मस्मिन्वा कुपितः सर्पेण विमुञ्चति फले विषम् ॥ ७९ ॥  
तेनास्य दोषमघातः स्थिरो लीनो विमार्गगः ।  
यहिः प्रयतते भिन्नो विषेणाशु प्रमाथिना ॥ ८० ॥  
तथा घ्नजल्पगदतां, क्षरीरातरमेव वा ।

### शीतपयः पानादि—

हृतदोषं तु क्षीतांबुध्रातं तं पाययेत्पयः ॥ ८१ ॥  
पेया वा त्रिवृतः धानं भङ्गन्या वास्तुकस्य वा ।  
कालदाकं यवाख्यं वा खादेत्स्वरससाधितम् ॥ ८२ ॥

निरम्पलवर्णस्नेहं स्विशास्विम्नमनन्मधुम् ।

मासमेकं सप्तद्वयैवं कृषितः स्वरगं पिबेत् ॥ ८३ ॥

### उष्ट्रोदुग्धप्रयोगः—

एवं विनिर्हृते पार्श्वदोषे मागान् परं सतः ।

दुर्बलाय प्रयुञ्जीत प्राणभृतारभं पयः ॥ ८४ ॥

### प्लीहोदरचिकित्सा—

प्लीहोदरे यथादोषं सिध्यस्य स्वेदितस्य च ।

स्त्रियो मुक्तवतो दध्ना वामबाह्वौ विमोक्षयेत् ॥ ८५ ॥

लघ्वे जले च भ्रूयोऽपि स्नेहयौतं विमोक्षितम् ।

समुद्रशुक्तिर्जं चारं पयसा पाययेत्तथा ॥ ८६ ॥

धम्मलशृतं विडकणाचूर्णाद्व्यं नक्तमालजम् ।

सीमांजनस्य वा ववायं सैषवाग्निवर्णाग्निजम् ॥ ८७ ॥

हिवादिचूर्णं क्षाराग्न्यं युञ्जीत च यथाबलम् ।

पिप्पली नागरं दतीं समाद्यं द्विगुणाभयम् ॥ ८८ ॥

विडार्माद्ययुतं धूर्णमिदमुष्णाबुजा पिबेत् ।

विडगं चित्रकं सक्तून् सधृतान् सैषवं वषाम् ॥ ८९ ॥

दग्ध्रा कपाले पयसा गुल्मप्लीहापहं पिबेत् ।

### बृधरपत्रप्रयोगः—

तैलोन्मिश्रैर्बृधरकपत्रैः संमदितैः समुपनदः ।

मुचलेन पीडितोऽनु याति प्लीहा पयोभृजो नाशम् ॥ ९० ॥

### रोहीतकप्रयोगः—

रोहीतकज्वराः क्लृप्त्वाः खंड्यः साभया जले ।

मूत्रे वाऽऽमुनुयात्तत्तु सप्तरात्रस्थितं पिबेत् ॥ ९१ ॥

कामलाप्लीहगुल्मार्शः कृमिमेहोदरापहम् ।

### रोहीतकधृतम्—

रोहीतकत्वचः क्लृत्वा पलानां पंचविधतिम् ॥ ९२ ॥



कोलद्विप्रस्थमंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत् ।  
 पालिकैः पंचकोलैस्तु तैः समस्तैश्च तुल्यया ॥ ६३ ॥  
 हरोतकत्वचा पिष्टैष्टुतप्रस्थं विपाचयेत् ।  
 प्लीहाभिवृद्धिं क्षमयत्येतदाशु प्रयोजितम् ॥ ६४ ॥

### अन्येप्रयोगाः—

कन्दल्यास्तिलनालानां क्षारेण धुरकस्य च ।  
 तैलं पचय जयेत्पानात्प्लीहानं कफघातजम् ॥ ६५ ॥  
 जघातो गुल्मविधिना योजयेदक्षिकर्म च ।  
 जप्राप्तपिच्छासलिले प्लीहं घातकफोत्थये ॥ ६६ ॥  
 वैश्विके जीवनीयानि सर्पापि क्षौरवस्तपः ।  
 रक्तावसेक. संशुद्धिः क्षौरपानं च शस्यते ॥ ६७ ॥

### यकृच्चिकित्सा—

यकृति प्लीहवत्कर्म दक्षिणे तु मुत्रे मिराम् ।

### षष्ठोदरचिकित्सा—

स्विन्नाय षष्ठोदरिणे भूशतीक्ष्णीपधान्वितम् ॥ ६८ ॥  
 मर्तलं लवणं दद्यान्निरुहं मानुवासनम् ।  
 परिसंतीनि चाशानि दीदृणं चास्मै विरेचनम् ॥ ६९ ॥  
 उदावर्तहरं कर्म कार्यं यच्चानिलापहम् ।

### छिद्रोदर चिकित्सा—

छिद्रोदरमूत्रे स्वेदाच्छ्वेत्प्योदरवदाचरेत् ॥ १०० ॥  
 जातं जातं जलं साम्यमेवं तद्यापयेदभिपक् ।

### उदकोदर चिकित्सा—

बषां दोषहराण्यादी योजयेदुदकादरे ॥ १०१ ॥

मूत्रयुक्तानि तीदनानि विविधशार्वन्ति च ।

दांपनीयैः कफघ्नैश्च तमाहारैरुपाचरेत् ॥ १०२ ॥

### चार गुटिका—

सारं द्यागकरीपाखां शृतं मूत्रेऽग्निना पचेत् ।

घनोभवति तस्मिन् कपांश्च चूर्णितं क्षिपेत् ॥ १०३ ॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं दुष्टो लवणार्णवकम् ।

निकुम्भकुम्भत्रिफलास्वर्णक्षीरीविषाणिकाः ॥ १०४ ॥

स्वर्जिकाक्षारपट्टप्रधासातलायवधूकजम् ।

कोलाभा गुटिकाः कृत्वा ततः सौवीरकाप्लुताः ॥ १०५ ॥

पिवेदजरके शोफे प्रवृद्धे चोदकोदरे ।

### शस्त्रप्रयोगः—

हृत्पीपध्वरप्रघमे त्रिपु<sup>१</sup>बद्धोदरादिषु ॥ १०६ ॥

प्रयुजीत भिषक् दाह्यमार्तबंधुनृपापितः ।

जिम्बस्त्रिभ्रतनोनभिरधो बद्धशतांशयोः ॥ १०७ ॥

पाटयेदुदरं युक्त्वा वामतश्चतुरंगुलात् ।

चतुरंगुलमानं तु निष्कास्यान्नाणि तेन च ॥ १०८ ॥

निरीक्ष्याऽपनयेद्वालमललेपोपलादिष्वम् ।

छिद्रे तु दाह्यमुद्धृत्य विशोध्यार्त्रं परित्वम् ॥ १०९ ॥

<sup>२</sup>मर्कोटैर्दधयेच्छिद्रं तेषु लग्नेषु चाहरेत् ।

कार्यं मूर्ध्नोऽनुनांषाणि यथास्थानं निवेक्षयेत् ॥ ११० ॥

अक्तानि मधुमपिर्म्यामिष सीव्येद्वद्विर्धनम् ।

ततः कृष्णमृदाऽऽलिप्य बध्नीयाद्यष्टिमिथया ॥ १११ ॥

निवातस्थः पयोवृत्तिः स्नेहदोष्या वसेत्ततः ।

अन्येषां जातजलानामुदरिणां चिकित्सा—

गजसे जठरे तैलैरभ्यक्तस्याऽनिलापहैः ॥ ११२ ॥

१ त्रिपु-बद्धछिद्रोदकोदरेषु । २ मर्कोटः 'चीटा' इति लोके ।

स्विन्नस्योष्णांशुनाऽऽक्षुभदरे परिवेष्टिते ।  
 बद्धन्तिद्रोदितस्थाने विध्येदंगुलमात्रकम् ॥ ११३ ॥  
 निधाय तस्मिन्नाडौ च श्वाक्येदर्धमंभसः ।  
 अथाऽस्य नाडौमाकृष्य तैलेन लवणेन च ॥ ११४ ॥  
 कृण्वन्मयज्य बद्ध्वा च घेष्टयेद्वाससोदरम् ।  
 तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा यावदापोढ्यं दिनम् ॥ ११५ ॥  
 तस्य विघ्नम्य विघ्नम्य श्वाक्येदल्पशो जलम् ।  
 विवेष्टयेद्गाढतरं जठरं च शुष्याशुष्यम् ॥ ११६ ॥  
 निःकृते लंघित पेयामस्नेहलवणा पिवेत् ।

जलोदरस्यसंवत्सरेण ज १ प्रकारः—

स्यात्सीरवृत्तिः पण्मासांस्त्रीन्येषां पयसा पिवेत् ॥ ११७ ॥  
 त्रीञ्चाऽऽन्यान्यमवाद्यात् फलाम्लेन रसेन वा ।  
 अल्पशः स्नेहलवण जीर्णं श्यामाककोद्रवम् ॥ ११८ ॥  
 प्रमतो वत्सरेणैवं विजयेत्तज्जलोदरम् ।

वर्ज्यावर्ज्ये

वर्ज्येषु यन्त्रितो दिष्टे नारपदिष्टे जितेन्द्रियः ॥ ११९ ॥

सर्वोदर चिकित्सा—

मर्ममयोदरं प्रायो दोषसंघातजं मतः ।  
 अतो वातादिशमनी क्रिया सर्वा प्रशस्यते ॥ १२० ॥

भोज्यानि—

वह्निर्मंदत्वमायाति दोषैः कुक्षौ प्रपूरिते ।  
 तस्माद्भोज्यानि भोज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ १२१ ॥

१ त्रीञ्चान्यान्मासान् । २ वर्ज्येषु-अन्नपानादिषु उदररोगी यन्त्रितस्तद-  
 सेवीत्यात्, दिष्टे कथितेऽन्नपानादावति यन्त्रितो न स्यात् । अदिष्टेऽरुचिने  
 जितेन्द्रियोऽलोन्मुप-स्यादित्यर्थः ।

सर्पचमूलान्यत्पाम्लपटुस्नेहवद्गुनि च ।

भावितानां यवां मूत्रे पष्टिकानां च तंहृतैः ॥ १२२ ॥

यवागूं पयसा सिद्धां प्रकामं भोजयेन्नरम् ।

पिवेदिशुरसं चानु जठराणां निवृत्तये ॥ १२३ ॥

स्वं स्वं स्थानं ब्रजंत्येषां वातपित्तकफास्तथा ।

त्याज्यानि —

अत्यथोष्णाम्ललवणं रुक्षं ग्राहि हिमं गुह ॥ १२४ ॥

गुहं सैलवृत्तं चाकं बारि पानावगाहयोः ।

आयामाध्वदिवास्वप्नयानानि च परित्यजेत् ॥ १२५ ॥

उदरेतक्रपानव्यवस्था—

सायर्थस्रावं मधुरं तक्रं पाने प्रचक्षते ।

मकणालवणं वाते, पित्तं सोपणचर्करम् ॥ १२६ ॥

यवानामीषवाजाजीमघुब्धोपैः कफोदरे ।

द्रूपणक्षारलवणैः संयुतं निचयोदरे ॥ १२७ ॥

मधुतैलवचाद्युंठीशताह्लाकृष्टसैधवेः ।

प्लीह्नि<sup>१</sup>, बद्धे गु हृषुपायवानीषद्वजादिभिः ॥ १२८ ॥

सटृष्णाभाक्षिकं छिद्रे<sup>२</sup>, व्योपवत्सलिलोदरे ।

तक्रप्रयोग प्रशंसा—

गीरवारोचकानाहर्मदवह्नयतिसारिणाम् ॥ १२९ ॥

तक्रं वातकफातानाममृतत्वाय कल्पये

क्षीरप्रयोगः—

प्रयोगाणां च सर्वेषामनु क्षीरं प्रयोजयेत् ॥ १३० ॥

स्पर्धयन्मृत्मर्वघातूनां बल्यं दोषानुबन्धहृत् ।

भेषजापचित्तांगानां क्षीरमेवामृतायते ॥ १३१ ॥

## पोडशोऽध्यायः ।

अथाऽतः पांडुरोगचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

पाण्डुरोगिण आदौसर्विष्यानम्—

पाण्ड्यामयी विवेत्सपिरादौ कल्याणकाह्वयम् ।

पंचगव्यं महातिक्तं मृतं पाऽऽरम्भधादिना ॥ १ ॥

सिद्धघृतम् —

दाडिमात्कुडवो धान्यात्कुडवार्धं पलं पलम् ।

चित्रकाच्छुग्धवेराञ्च पिप्पल्यर्धपलं च सैः ॥ २ ॥

कल्किर्तंबित्तिपलं घृतस्य अलिलाढके ।

सिद्ध हृत्पाण्डुगुल्मार्यः प्लोहशतकफातिनुत् ॥ ३ ॥

दीपनं श्वामकासघ्नं मूढवातानुलोमनम् ।

दुःखप्रमविनीनां च बंध्यानां च प्रशस्यते ॥ ४ ॥

स्नेहितस्यवमनादि :—

स्नेहितं वामयेत्तीक्ष्णः पुनः क्षिप्तं च शोषयेत् ।

पयसा मूत्रयुक्तेन बहुधाः केवलेन वा ॥ ५ ॥

पानम्—

दंतीपलरसे कोप्ले काश्मर्याञ्जलिमासुतम् ।

द्राक्षाञ्जलिं वा मृदितं तत् पिबेत् पाण्डुरोगजित् ॥ ६ ॥

मूत्रेण पिष्टां पयसां वा तस्मिद्धं वा फलत्रयम् ।

स्वर्णक्षीर्यादिकपानादि—

स्वर्णक्षीरीत्रिवृज्जघामाभद्रदारुमहोपयम् ॥ ७ ॥

गोमूत्रांजलिना पिष्टं मृतं तेनैव वा पिबेत् ।  
माषितं क्षीरमेभिर्वा पिबेद्दोषानुलोमनम् ॥ ८ ॥

लोह प्रयोग :—

मूत्रे स्थितं वा सप्ताहं पयमाऽगोरजः पिबेत् ।  
जीर्णे क्षीरेण मुञ्जीत रक्तेन मधुरेण वा ॥ ९ ॥  
दृढध्वाभयतो लिह्यारपण्यां मधुपृष्ठद्रुताम् ।

चूर्णपानम्—

विशाला बहुका मुस्तां पुष्टं दारु कलिगकः ॥ १० ॥  
कर्पाषा, त्रिविचुर्मूर्वा कर्पाषाणा पुणप्रिया ।  
पीत्वा तच्चूर्णमभोमिः मुखैर्लिह्यात्ततो मधु ॥ ११ ॥  
पांडुरोगं ज्वरं दाहं कासं श्वातमरोचकम् ।  
गुल्मानाहामवाताश्च रक्तपित्तं च तत्रपेद् ॥ १२ ॥

काय :—

वासागुहूषी त्रिफलाकर्द्वीमूनिर्वनिवजः ।  
कायः सौद्रयुतो हति पांडुपित्तास्रकामलाः ॥ १३ ॥

चूर्णम्—

व्योषाग्निवेल्लत्रिफलामुस्तैस्तुन्यमयोरजः ।  
शूणितं तक्रमच्छाज्यकोष्णाभोभिः प्रयोजितम् ॥ १४ ॥  
कामलापांडुद्वोगुकुष्ठार्धमिहनाशनम् ।

मण्डूर गुटिका—

गुडनागरमंडूरतिलांशान्मानतः समान् ॥ १५ ॥  
पिप्पलीद्विगुणान्दद्याद्गुटिकां पांडुरोगिणे ।

ताप्यादयः—

ताप्यं दाव्यास्त्वचं चर्व्यं ग्रंथिकं देवदारु च ॥ १६ ॥

१ पुणप्रिया-अतिविषा । २ ताप्यंस्वर्णमाक्षिकभस्म ।

व्योपादि नवकं चैतच्छूर्णयेद् द्विगुणं ततः ।  
 मंहूरं चाजननिमं सर्वतोऽष्टगुणोऽय तत् ॥ १७ ॥  
 पृथग्विपक्वे गोमूत्रे वटकीरुणदामे ।  
 प्रक्षिप्य वटकान्कुर्यात्तान्खादेतक्रभोजनः ॥ १८ ॥  
 एते मंहूरवटकाः प्राणदाः पांडुरोगिणाम् ।  
 कुष्ठान्यजरकं<sup>१</sup> क्षोफमूस्तंभमरोचकम् ॥ १९ ॥  
 अद्यामि कामला मेहान् झीहान् समयंति च ।

### शुटिका—

साप्याद्रिजतुरोप्यायोमलाः पचालाः पृषक् ॥ २० ॥  
 चित्रकत्रिफलावरोपविडंगं पालिकं सह ।  
 शर्कराष्टपलोन्मिश्रान्चूर्णिता मधुना द्रुताः ॥ २१ ॥  
 पांडुरोगं विषं कामं यदभार्ष विषमं उवरम् ।  
 कुष्ठान्यजरकं मेहं क्षोफं श्वासमरोचकम् ॥ २२ ॥  
 विषेपाङ्गुल्यपस्मारं कामला गुदजानि च ।

### वटका :—

वोटजत्रिफलानिबपटोलघननागरः ॥ २३ ॥  
 आपितानि दद्याद्दानि रत्नैश्चित्रिगुणानि वा ।  
 शिलाजतुपलाग्न्यष्टौ तावती सितशर्करा ॥ २४ ॥  
 स्वर्क्षीरोपिप्लीयात्रीकर्कटाश्याः पलोन्मिताः ।  
 निदिग्ध्याः फलमूलाभ्या पलं, युक्त्या त्रिजातकम् ॥ २५ ॥  
 मधुत्रिपलमंयुतान् कुर्यादक्षमभान्गुडान् ।  
 दाडिमांबुपयःपक्षिरसतोयसुराश्वान् ॥ २६ ॥  
 तान् मशयित्वानुपिवेन्निरसो भुक्त एव वा ।  
 पांडुकुष्ठज्वरझीहृतमकार्षोभगंदरम् ॥ २७ ॥  
 हृन्मन्त्रपूतिसुत्रादिदोषशोभरोदरम् ।  
 कागासुंदरपित्तासृक्क्षोफगुल्मगलामयान् ॥ २८ ॥

मेहवर्धनमात्रं हन्तुः सर्वदोषहराः शिवाः ।

द्राक्षांशेह :—

द्राक्षाप्रस्थं कणाप्रस्थं चर्करार्धतुलां तथा ॥ २६ ॥

द्विपलं मधुकं घृणीत्ववक्षीरं च विचूर्णितम् ।

घात्रीफलरसद्रोणे तत्क्षिप्त्वा सेह्यपचेत् ॥ २७ ॥

घोताग्न्यधुप्रस्थयुताम् लिह्यात्पाणितलं ततः ।

हलौमकं पादुरोगं कामलां च नियच्छति ॥ २८ ॥

पानभोजनेह पञ्चमूलं शस्तम् —

कनीयः पञ्चमूलांबु शस्यते पानभोजने ।

पाह्नुना कामलातानां मृद्वोकापलकाद्रसः ॥ २९ ॥

इति सामान्यतः प्रोक्तं पादुरोगभिरपि जितम् ।

विकल्प्य योग्यं विदुषा पृषदोपबलं प्रति ॥ ३० ॥

धाताद्युत्पन्न पाण्डुरोगचिकित्सा—

स्नेहप्रायं पवनजे तित्तशीतं तु दैतिके ।

रक्षत्तिके कटुस्फोष्णं, विमिश्रं सान्निपातिके ॥ ३१ ॥

मृत्तिकाज पाण्डुरोगचिकित्सा :—

मूत्रं निर्यापयेत्कायात्तीक्ष्णैः संक्षोषणैः पुरः ।

बलाधानानि सर्पिषि धुद्वे कोष्ठे तु योजयेत् ॥ ३२ ॥

घृतप्रयोग :—

भ्योषविस्त्रिदिरजनीत्रिफलाद्विपुनर्नवम् ।

मुस्तान्ययोरजः पाठा विडंगं देवदारु च ॥ ३३ ॥

वृषिचमली च भार्गवा च सक्षीरस्तैः शृतं घृतम् ।

सर्वान्प्रदामयत्याशु विकारान्मृत्तिकाकृतान् ॥ ३४ ॥

१. मधुवर्धनं, घृष्टाग्न्यधुप्रस्थयुताम् पृथक् पृथक् द्विपलम् । २. निर्यापयेत् ।  
३. 'दुर्गा' ।



तद्वत्केमरयष्ट्याह्वयिष्यलीक्षीरशाङ्खलैः ।

**भक्षणाथंभावितमृद्धानम्—**

मृद्वेषणाय तत्सलीले नितरेद्भावितां मृदम् ॥ ३८ ॥

वेह्नाग्निनिवप्रसवेः पाठया मूर्वयाथवा ।

**दोषानुसारिणी चिकित्सा—**

‘मृदुभेदभिन्नदोषानुगमाद्योज्यं च भेषजम् ॥ ३९ ॥

**कामला चिकित्सितम्—**

कामलायां तु पित्तघ्नं पांडुरोगाविरोधि यत् ।

पथ्याशतरसे<sup>१</sup> पथ्यावृता<sup>२</sup>र्घशतकलितः ॥ ४० ॥

शस्यः सिद्धो घृताद्गुल्मकामलापांडुरोबनुत् ।

भारन्वधं रसेनेक्षोविदार्यामलकस्य वा ॥ ४१ ॥

सम्यूपणं विल्वमात्रं पामयेत्कामलापहम् ।

पिथेन्निकुम्भवलक<sup>३</sup> वा द्विगुणं क्षीतवारिणा ॥ ४२ ॥

कुम्भस्य चूर्णं सक्षीद्वैथैफलेन रसेन वा ।

त्रिफलामा गुह्यया वा दाभ्यां निवस्य वा रसम् ॥ ४३ ॥

प्रातः प्रातर्मधुपुतं कामलातपि योजयेत् ।

निशानैरिकधात्रीभिः कामलापहमं मनम् ॥ ४४ ॥

तिलपिष्टनिर्भं यस्तु कामलाघान्स्त्रेण्मलम् ।

ककद्वद्वपथं तस्य पित्तं ककद्वर्जयेत् ॥ ४५ ॥

**आतुर विशेषस्यचिकित्सा :—**

<sup>१</sup> रक्षाशीतगुह्स्वादुल्यायामबलनिग्रहेः ।

ककर्ममूर्च्छितो वायुर्यदा पित्तं बहिः शिपेत् ॥ ४६ ॥

१ मृदुभेदो विशेषः कृष्णपाण्डुरादिस्तेन भिन्नो विशेषितो योदोषस्तस्यानु-  
गमाज्ज्ञानात् । २ घृतं पथ्याफलबन्धनम् । ३ निकुम्भोदन्ती । द्विगुणं पलद्वय-  
मात्रम् ।

हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्श्वेतवर्षास्तदा नरः ।  
 भवेत्पाटोपविष्टंभो गुरुणा हृदयेन च ॥ ४७ ॥  
 दोर्वत्यालाशिपाश्चातिहिम्माश्वामार्चचिज्वरैः ।  
 ग्रमेणात्येज्जुपज्येत पित्तं शाखाममाग्निने ॥ ४८ ॥  
 रमेस्तं रुक्षत्त्वमर्तं, घिखितित्तिरिदशर्जः ।  
 दण्डमूलकज्वरूपैः कुल्लव्योत्थैश्च भोजयेत् ॥ ४९ ॥  
 भृशाम्लतांशुषदुकुल्लवणोष्णं च शस्यते ।  
 मर्वाजूरकरनं लिह्याद्योषं तथाद्यथम् ॥ ५० ॥  
 स्वं पित्तमेति तेनाजस्य घृहृदप्यनुरज्यते ।  
 वायुश्च यासि प्रमर्मं सहाटोपाद्युपद्रवैः ॥ ५१ ॥  
 निवृत्तोपद्रवस्याऽस्य कार्यः कामलिङ्गे विधिः ।

### कुम्भकामला चिकित्सा—

गोमूत्रेण पियेतुंभकामलायां शिलाजतु ॥ ५२ ॥  
 मामं माक्षिकघातुं वा किट्टं वाऽथ<sup>१</sup> हिरण्यजम् ।

### हलीमक चिकित्सा—

गुहूष्णीस्वरसशीरसाधितेन हलीमकी ॥ ५३ ॥  
 महिषीहविषा स्निग्धः पिवेद्वाग्रीरसेन तु ।  
 त्रिवृतां तद्विरक्तोद्यात्स्वादु चित्तानिलापहम् ॥ ५४ ॥  
 द्राक्षाखेहं च पूर्वोक्तं सर्पीषि मधुराणि च ।  
 यापनान्धीरवस्तीश्च शीलयेत्मानुवासनान् ॥ ५५ ॥  
 मार्दोन्मरिष्टयोगांश्च पिवेच्चक्षुष्याग्निवृद्धये ।  
 कामिकं वाऽभयाखेहं पिणलीमषुकं बलाम् ॥ ५६ ॥  
 पयसा च प्रयुञ्जीत यथादोषं यथाबलम् ।  
 पादुरोगेषु कुसलः शोफोक्तं च क्रियावमम् ॥ ५७ ॥

## सप्तदशोऽध्यायः ।

अथास्तः श्वयधुचिकित्सितं व्याख्यस्यामः ।

नागरादिपानम्—

सर्वत्र सर्वागमरे दोषजे श्वयथी पुरा ।  
नामे विशोपितो भुक्त्वा लघु कोष्णाभता पिवेत् ॥ १ ॥  
नागरातिविपादारुविड्गेंद्रयवोपणम् ।  
अथवा विजयाशुठीदेवदारुनर्नवम् ॥ २ ॥  
नवायमं वा दोषाढ्यः क्षुब्धं भूत्रहरीतकीः ।  
धराक्राधेन कटुकाकुभायस्त्रूपणानि वा ॥ ३ ॥  
अथवा गुग्गुलु तद्वज्रु वा क्षौलसंभवम् ।

मन्दाग्नेस्तक्रपानादि—

मंदाग्निः क्षौलयेदामगुरुभिग्रविवद्विद्वत् ॥ ४ ॥  
तक्रं तीवर्बलव्योपशोद्रुक्तं गुडाभयाम् ।

अन्येप्रयोगाः—

तक्रानुपानामथवा तद्वद्वा मुडनागरम् ॥ ५ ॥  
आर्द्रकं वा ममगुडं प्रवृत्तार्धविवधितम् ।  
पक्ष्मपलं मार्गं मूषांशोररगाशनः ॥ ६ ॥

गुल्मोदरार्धः श्वयधुप्रमेहान्  
श्वासप्रतिश्यालसक्राविपाकान्  
सकामलाधोफमनोविकारान्  
कामं कफं चैव जयेत्प्रयोगः ॥ ७ ॥

## घृतप्रयोगः—

घृतमाद्रिकलागरस्य कल्क-  
स्वरसाम्या पयसा च साधयित्वा ।  
शत्रयशुद्धावबुद्धराश्रिमादै-  
रभिभूतोऽपि पिबन् भवत्यरोगः । . . .

## क्षीरमूत्रप्रयोगः—

नेरामो बद्धशमलः पिबेच्छुषीडितः ।  
त्रिकटुनिवृत्तादंतीचित्रकैः साधितं पयः ॥ १६ ॥  
मूत्रं गोर्वा महिष्या वा सक्षीरं क्षीरभोजनः ।  
मसाहं मासमथवा स्यादुष्ट्रीक्षीरवर्जनः ॥ १७ ॥

## घृतम्—

देवानकं यवक्षारं यवानीं पंचकोलकम् ।  
मरिचं दाडिमं पाठा घानकाम्प्लवेतसम् ॥ ११ ॥  
बालबिल्वं च कर्पाशं साधयेत्सलिलाढके ।  
तेन पक्वो घृतप्रस्थः शोफार्शोगुल्ममेहहा ॥ १२ ॥  
दध्नाश्विन्नकगर्भाद्वा घृतं तत्तत्क्रममुतम् ।  
पक्वं सचित्रकं तद्वदगुणैः,  
युज्याच्च कालवित् ॥ १३ ॥

धान्वंतरं महातिक्तं कल्याणमभयाघृतम् ।

## अभयाश्लेहः—

दशमूलकपायस्य कसि पथ्याशतं पचेत् ॥ १४ ॥  
दत्त्वा गुडतुला तस्मिन् लेहे दद्याद्विचूर्णितम् ।  
पिजातकं त्रिकटुकं त्रिचिन्म यवमूकजम् ॥ १५ ॥

१ यवानकः अजमोशः, शमलंशकृत् । २ दध्नाश्विन्नकगर्भात् चित्रकवूर्ण-  
श्रिताद्गुग्गादुत्पन्नदध्नीजातं घृतम् । सर्गं च तदेव । ३ कसि आडके ।

प्रस्यार्धं च हिमे शोदात्तत् निर्हत्युपयोजितम् ।

प्रवृद्धघोफज्वरमेहमुल्म-

काश्यामिवाताभ्रकरतपित्तम् ।

वैवर्ण्यामूत्रानिलशुक्रदोष-

शवासारुचिज्ञोद्दरोदरं च ॥ १६ ॥

**हितभोजनादि—**

पुराणयथाल्पभर्त्तु दशमूलावुमाधितम् ।

अल्पमल्पपटुस्नेहं भोजनं श्वययोहितम् ॥ १७ ॥

क्षारव्योपान्वितैर्मोदगैः कौलर्यैः सकणै रसैः ।

तथा जागलजैः कूर्मगोधाश्ल्यकर्जैरपि ॥ १८ ॥

अनम्लं मधितं पाने मद्यान्यौषधवन्ति च ।

**पेया—**

अजाजीशठिनीवतीकारवीपीध्वराधिकैः ॥ १९ ॥

विश्वमध्ययवक्षारवृक्षाम्लैर्बदरोन्मिषैः ।

कृता पेयाऽऽज्यर्तलाभ्या युक्तिभूटा परं हिता ॥ २० ॥

क्षोफातिसारहृद्रोगगुल्माशौऽल्पाग्निमेहिनाम् ।

शुणैस्तद्वच्च पाठायाः पंचकोलेन साधिता ॥ २१ ॥

**अभ्यञ्जनादि—**

क्षौलेयकुष्ठस्थीणेररेणुकागुल्फयकैः ।

श्रीवेष्टकनस्रस्पृकादेवदारुप्रियंगुभिः ॥ २२ ॥

मांसीमागधिकावन्यधान्यध्यामकवालर्कैः ।

चतुर्जातकतालीसमुस्तागंधपलाशकैः ॥ २३ ॥

शुर्पादभ्यंजनं तैलं स्नेहं शानाय तूदकम् ।

स्नानं वा निववर्षाभूतकमालार्कवारिणा ॥ २४ ॥

## लेपः—

एकांगसोफे वर्षामूकरवीरवकिशुर्कः ।  
 विद्यालान्निफलारोघ्ननलिकादेवदारुभिः ॥ २५ ॥  
 हिंसाकोशातकोमाद्रीतालपर्णीजयतिभिः ।  
 स्थूलकाकादनीशालनाकुलोद्धृपैर्पणिभिः ॥ २६ ॥  
 घृष्टपृष्ठिहस्तिकर्णश्च सुषोष्णलेपनं हितम् ।

## वातशोफचिकित्सा—

अयाऽनिलोत्थे श्वयचो मासायं त्रिद्वृतं पिबेत् ॥ २७ ॥  
 तैलमैरुंङ्गं वातविड्विबधे तदेव तु ।  
 प्राग्भक्तं पयसा युक्तं रसैर्वा कारयेत्तथा ॥ २८ ॥  
 स्वेदान्नगन्धसमीरणान् लेपमेकांगे पुनः ।  
 मानुषुगाग्निमन्धेन घण्टीहिंसामराह्वयैः ॥ २९ ॥

## पित्तश्वयथुचिकित्सा—

पतं तित्तं पिबेत्सन्निव्यग्रोषाद्येन वा शृतम् ।  
 क्षीरं नृशहमोहेषु लेपार्गगाश्च क्षीतलाः ॥ ३० ॥

## काथपानम्—

पटोलमूलत्रायवीयष्टपाह्वकटुकामयाः ।  
 दारु दावी हिमं दंती विद्याला निबुलं कणा ॥ ३१ ॥  
 तैः कायः सघृतः पीतो हृत्पतस्तापतृड्भ्रमान् ।  
 मसनिपातबीमर्षघोफदाहविषम्बरान् ॥ ३२ ॥

## कफश्वयथुचिकित्सा—

वारग्वघादिना सिद्धं तलं श्लेष्मोद्भवे पिबेत् ।

## क्षारादिप्रयोगः—

स्रोतोविबधे मंदेऽग्रावहनी स्तिमिताशयः ॥ ३३ ॥

१ तान्पर्णी मुखली । काकादनी 'कौवाठोदो' हि० । घृष्टपर्णी-भूपकपर्णी ।

सारचूर्णमिवारिष्टमूत्रतक्राणि क्षीलयेत् ।

प्रलेपादि—

वृष्णापुसपिण्याकशिपूत्वक्सिकतावसीः ॥ ३४ ॥

प्रलेपोन्मर्दने युंज्यात्मुखोष्ण मूत्रकल्किताः ।

स्नानं मूत्राभर्षी सिद्धे कुष्ठकर्णरिचित्रकैः ॥ ३५ ॥

कुष्ठत्थनागराम्बा वा <sup>१</sup>चंडागुरु विलेपने

कालाञ्च शृंगीमरुतस्वगंधाह्याह्वयाः<sup>२</sup> ॥ ३६ ॥

<sup>३</sup>एकैपिका च लेपः स्याच्छ्वयथावेकमात्रजे ।

दोषानुसारेणशुष्यादि—

यथादोषं यथासम्नं वृद्धिं रक्तावसेचनम् ।

बुधैर्लेपः, मिश्रशोथे तु दोषाद्वैकबलात्किञ्चनम् ॥ ३७ ॥

अजाज्यादिपानम्—

अजाजिपाठाघनपंचकोल-

ध्याघ्नीरजन्ध. सुखतोयपीता ।

लोफं त्रिदोषं विरजं प्रबुद्धं

निघ्नन्ति भूनिबमहीपधीम् ॥ ३८ ॥

अमृताद्विग्रहं सिवाटिका<sup>४</sup>

मुरकाष्टं सपुंरं सगोजलम् ।

श्वयधुवरकुष्ठपांडिता-

कृमिमेहोर्ध्वकफाविलापहम् ॥ ३९ ॥

सुतोत्थादि शोफेऽसृग् विरोधनादि—

इति निजमधिगृह्य पथ्यमुक्तं

क्षतजनिते क्षतजं विरोधनीयम् ।

१ चण्डा-चोरकुष्ठी । २ काला नीलिनी । वस्तुगन्धान्तरयोः । ३ एकैपिका त्रिवृता । ह्याह्वया अश्वगन्धाकर्णिकार इत्यन्ये । ४ मुरकाष्टं देवदाह । पुंरं गुग्गुलु । गोजलं गोमूत्रम् ।

स्रुतिहिमघृतलेपसेकरै-

र्विपजनिते विपजिञ्च शोफ इष्टम् ॥ ४० ॥

त्याज्यानि—

ग्राम्यानूर्प पिशितलवणं दृष्कश्चाकं तिलाद्रम्

गोडं पिष्टाघ्नं दधि सकृशरं विज्जलं मद्यमम्लम् ।

घानावल्गूरंसमशनमथो गुर्वसात्स्यं धिदाहि

स्वप्नं धारावौ श्वययुग्मदधान्वर्जयेन्मैथुनं च” ॥ ४१ ॥

## अष्टादशोऽध्यायः ।

अथास्तो विसर्पचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

विषर्पेषुपूर्वलङ्घनादि—

“आदावेव विसर्पेषु हितं लघनरक्षणम् ।

रक्तावसेको वमनं विरेकः, स्नेहनं न तु ॥ १ ॥

वमनम्—

प्रकृर्धनं विसर्पघ्नं सयष्टीद्रव्यं कलम् ।

पटोलपिप्पलीनिबपल्लवंर्वा ममन्वितम् ॥ २ ॥

विरेचनम्—

रसेन युक्तं प्रायत्वा द्राक्षायास्त्रैफलेन वा ।

विरेचनं त्रिवृच्चूर्णं पयसा मपिपाऽथवा ॥ ३ ॥

१ विज्जलं पिच्छिलम् । वल्गूरं दृष्कमागम् ।



योऽयं कोष्ठयते दोषे विज्ञेयेषु विज्ञोघनम् ।

**अरूपदोपेशमनप्रकारः—**

अविशोध्यस्व दोषेऽप्ये शमनं चन्दनोत्पलम् ॥ ४ ॥

मुस्तनिवपटोलं वा पटोलादिकमेव वा ।

सारिवामलकोशीरमुस्तं वा कथितं जले ॥ ५ ॥

**दुरालभादिपानम्—**

दुरालभा पर्यटकं गुडूची विश्वभेषजम् ।

पाक्यं क्षीतकपाय वा तृष्णावीसर्पवान् पिवेत् ॥ ६ ॥

**दान्धादिपानम्—**

दावीपटोलकटुकाममूरत्रिफलास्तथा ।

सनिवपट्टीनायसी. कथिता घृतमूर्च्छिता ॥ ७ ॥

**शास्त्रादुष्टे रक्तहरणम्—**

शास्त्रादुष्टे तु रुधिरं रक्तमेवाहितो हरेत् ।

त्वङ्मांसस्नायुसन्तलेदो रक्तवनेदादि जायते ॥ ८ ॥

**निरामेघृतम्—**

निरामे श्लेष्मणि क्षीणे वातपित्तोत्तरे हितम् ।

घृतं तिक्तं महातिक्तं शृतं वा त्राममाणया ॥ ९ ॥

**प्रलेपसेकादि—**

निहृतेऽग्रे विशुद्धेऽवदोषे त्वङ्मांससंक्षिप्ते ।

नहिःत्रियाः प्रदेहाद्याः सद्यो वीसर्पघातये ॥ १० ॥

**घातविसर्पे प्रलेपः—**

शलाह्नामुस्तवाराहीकंचार्तगलघान्यकम् ।

मुराह्ना वृष्णगंधा च कुष्ठं वा लेपनं जले ॥ ११ ॥

## पित्तविसर्पे प्रलेपः—

न्यग्रोधादिगणः पित्ते तथा पद्मोत्पलादिकम् ।

## अन्यो लेपः—

न्यग्रोघपादास्तरुणाः कदलीगर्भसंयुताः ॥ १२ ॥

विसर्पेण्यश्च लेपः स्याच्छतघृतघृताप्लुतः ।

पद्मिनोकर्दमः घृतः पिष्टं मीत्तिकमेव वा ॥ १३ ॥

शंसः प्रवालशुक्तिर्वा गैरिकं वा घृतान्वितम् ।

## कफविसर्पहृत्—

त्रिफलापद्मकोदीरममंगाकरवीरकम् ॥ १४ ॥

मलमूलान्यनंता च लेपः शुष्मविमर्षहा ।

## अन्यविधोलेपः—

धवमसाह्वलदिरदेवदारुकुरंटकम् ॥ १५ ॥

ममुस्तारवर्धं लेपो वर्गो वा वरुणादिकः ।

आरव्यघस्य पत्राणि स्वचः शुष्मांतकोद्मवाः ॥ १६ ॥

ईद्राणीशाकं काकाह्ला शिरोपकुसुमानि च ।

## सेकादिकाः—

सेकत्रणाम्मगह्विलेपचूर्णाद् यथायथम् ॥ १७ ॥

एतैरेवोपभैः कुर्वाद्यायौ लेपा घृतादिकाः ।

## कफस्थानगतेवायौलेपः—

कफस्थानगते सामे पित्तस्थानगतेऽथवा ॥ १८ ॥

आर्शोतोष्णा हिता स्या रक्तपित्ते घृतान्विताः ।

अत्यर्यशीतास्तनवस्तनुवस्त्रावरास्थिताः ॥ १९ ॥

योऽयाः क्षणे क्षणेऽन्येऽन्ये मंदवीर्यास्त एव च ।

मंसृष्टदोषे मंसृष्टमेतत्कर्म प्रसस्यते ॥ २० ॥

१ त एव ये पूर्वमुपयुक्ताः पुनः प्रयुज्यमानामन्दवीर्याः स्युः ।

### अग्निविसर्पचिकित्सा—

शतधीतधृतेनाग्निं<sup>१</sup> प्रदिह्यात्केवलेन वा ।  
मेचयेद्भूतमडेन शीतेन<sup>२</sup> मधुकांबुना ॥ २१ ॥  
गोतांभसांभोजजलैः क्षीरेणैधुरसेन वा ।  
शान्तेपनसेकेषु महातित्तं परं हितम् ॥ २२ ॥

### ग्रन्थिविसर्पचिकित्सा—

मंश्याख्ये रक्तपित्तघ्नं कृत्वा सम्प्राप्यथोदितम् ।  
कफानिलघ्नं कर्मोष्टं पिष्टस्वेदोपनाहनम् ॥ २३ ॥  
ग्रन्थिवीषर्यगूने तु तैलेनोष्णेन मेचयेत् ।  
दधामूलविषवधेन तद्वन्मूत्रैर्जलेन वा ॥ २४ ॥  
सुखोष्णया प्रदिह्याद्वा पिष्टया कृष्णगधया ।  
नक्तमान्त्वचा दाहकमूलकैः<sup>३</sup> कलिनाञ्चया ॥ २५ ॥

### दन्त्यादिलेपः—

दन्ती चित्रकमूलस्वर्गमौघार्कपयसी गुहः ।  
भक्ष्णातकास्थि कामीसं लेपो भिक्षाच्छिलामपि ॥ २६ ॥  
बहिर्गार्गाश्रितं ग्रंथिं हि पुनः कफर्मभवम् ।  
दीर्घबालस्थितं ग्रथिमेभिर्निद्यान्व भेषजैः ॥ २७ ॥

### ग्रन्थिभेदनम्—

मूलकानां कुलत्यागां मूषैः गक्षारदाडिमैः ।  
गोधूमगन्धैर्वान्धैश्च समीधुमघुसर्करैः ॥ २८ ॥  
मक्षीर्वाक्ष्णीर्मटैर्मानुलुगरमान्वितं ।  
त्रिफलायाः प्रयोगैश्च पिप्पल्याः क्षौद्रमंयुतैः ॥ २९ ॥  
देवदारुमुहुक्ष्योश्च प्रयोगैर्गिरिजस्य च ।  
मुस्तभक्ष्णातगन्तूनां प्रयोगैर्गार्गाशिकस्य च ॥ ३० ॥

धूर्मविरैकैः शिरमः पूर्वोक्तैर्मुल्मभेदनैः ।  
तप्तायोद्देमलवणपापाणादिप्रसीदनैः ॥ ३१ ॥

दाहः—

आभिः क्रियाभिः मिद्धाभिर्विविधाभिर्बले स्थितः ।  
ग्रन्थिः पापाणकठिनो यदि नैवोपशाम्यति ॥ ३२ ॥  
अथास्य दाहः क्षारेण शरैर्हृन्माऽपि वा हितः ।  
पाकिभिः पाचयित्वा तु पाटयित्वा तमुद्धरेत् ॥ ३३ ॥

रक्तमोक्षः—

मोक्षयेद्बहुशश्चाऽस्य रक्तमुत्प्लेगमागतम् ।  
पुनश्चापहृते रक्ते वातश्चेन्मज्जिदोषयम् ॥ ३४ ॥

तैलघृतप्रयोगः—

प्रविलम्बे दाहपाकाम्बां बाह्यांतर्ग्रणवत्क्रिया ।  
दार्ढ्यविडम्बकपिल्लैः सिद्धं तैलं ब्रणे हितम् ॥ ३५ ॥  
दूर्वास्वरससिद्धं तु कफपित्तोत्तरे घृतम् ।

रक्तहरणहेतुः—

एकतः सर्वकर्माणि रक्तमोक्षणमेकतः ॥ ३६ ॥  
विमर्षो नष्टमसृष्टः सोऽन्मपित्तेन जायते ।  
रक्तमेवाश्रयश्वास्य बहुघोऽश्वं हरेदतः ॥ ३७ ॥

त्रिसर्पिणोघृतदान व्यवस्था—

न घृतं बहु दोषाय देयं गन्धविरेचनम् ।  
तेन दोषो ह्युपस्तब्धस्त्वग्रत्तपिचितं पचेत् ॥ ३८ ॥



## एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः कुष्ठचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ॥

कुष्ठिनः स्नेहः —

“कुष्ठिनं स्नेहपानेन पूर्वं सर्वमुपाधरेत् ।

तत्र घातोक्षरे तैलं घृतं वा साधितं हितम् ॥ १ ॥

दशमूलासृतेरंशुनाङ्गुयष्टामेपशृगिभिः ।

सिक्तघृतम्—

पटोलनिबकटुकादार्वीपाठादुरालभा ॥ २ ॥

पर्पटं त्रायमाणां च पलाशं पाचयेदपाम् ।

द्वपादकेऽष्टाशोपेण तेन कर्षोर्गितैस्तथा ॥ ३ ॥

त्रायंतीमुस्तभूनिबकलिगकणचन्दनैः ।

मपिपो द्वादशवलं पचेत्तत्तत्कं जयेन् ॥ ४ ॥

पित्तकुष्ठारीसर्पगिटिकादाहवृद्भ्रमान् ।

कङ्कपाद्मामयान् गंडान् दुष्टमाडीव्रणापचीः ॥ ५ ॥

विस्कोटविद्रधीगुल्मशोफोन्मादमदानपि ।

हृद्भोगतिमिरर्ध्वग्रहणीस्त्रिप्रकामलाः ॥ ६ ॥

भगंदरमपम्मारमुदरं प्रदरं गरम् ।

अर्शोऽप्यपित्तमन्याश्च

सुरुच्छ्रान् पित्तजान् गदान् ॥ ७ ॥

पित्तकुष्ठेषु महातिसृष्टम्—

महाज्वरः, पर्पटश्च, शर्याश्च, कटुकश्च, चन्दनं, १

विपला पञ्चकं पाठा रज्ज्वी सारिवे कणौ ॥ ८ ॥

निबचदंनयष्टधाह्विविशालेन्द्रयवामृताः ।  
 किरातवित्तर्कं सेव्यं<sup>१</sup> वृषो भूर्वा चतावरो ॥ ९ ॥  
 पटोलातिविषामुस्तात्रायंतीघन्वयागवम् ।  
 दंजलेऽष्टगुणे सर्पिद्विगुणामलकोरगे ॥ १० ॥  
 सिद्धं तित्कान्महावित्तं गुणैरभ्यधिकं मतम् ।

### कफोत्तरेकुष्ठेघृतम्—

कफोत्तरे घृतं सिद्धं निबससाह्विविचकैः ॥ ११ ॥  
 कुष्ठोषणवचाशालप्रियालवतुरंगुलैः ।

### ध्रुवकुष्ठचिकित्सा—

सर्वेषु चारुकरजं तीक्ष्णं सर्पपं पिबेत् ॥ १२ ॥  
 स्नेहं घृतं वा कृमिजित्पय्याभक्ष्णातर्कैः शृतम् ।  
 आरुख्यस्य मूलेन शतशृङ्खलः शृतं घृतम् ॥ १३ ॥  
 पिबन्कुष्ठं जयत्याशु भजन् सखदिरं जलम् ।  
 एभिरेव यथास्वं च स्नेहैरभ्यञ्जनं हितम् ॥ १४ ॥  
 स्थिग्वस्य शोधनं योग्यं विसर्पे यदुदाहृतम् ।

### शिराविमोचनादि—

ललाटहस्तपादेषु शिराश्चास्य विमोक्षयेत् ॥ १५ ॥  
 प्रच्छानमल्पके कुष्ठे शृंगाद्याश्च यथायथम् ।

### स्नेहैराप्यायनादि—

स्नेहैराप्याययेन्ध्रुवं कुष्ठन्नैरंतरांतरा ॥ १६ ॥  
 मुक्तरक्तविरक्तस्य रित्तकोष्ठस्य कुष्ठिनः ।।  
<sup>२</sup>प्रमंजनस्तथा ह्यस्य न स्याद्देहप्रभजनः ॥ १७ ॥

## वसकघृतम्—

वामामृतानिबवरापटोल-  
व्याघ्रीकरंजोदककल्कपक्वम् ।  
मपिर्विसर्पज्वरकामलाम्ब-  
कुष्ठापहं वज्रकमामनन्ति ॥ १८ ॥

## महावज्रकघृतम्—

त्रिफलात्रिवन्दुद्विकटकारी-  
फटुकाकुम्भनिकुम्भराजवृक्षैः ।  
सवचातिविपाक्षिकैः सपाठै-  
पिचुभार्गनववज्रदुग्धमुष्ट्या ॥ १९ ॥  
पिष्टैः सिद्धं सपिपः प्रस्थमेभि  
क्षूरे कोष्ठे स्नेहं रेचनं च ।  
कुष्ठश्चित्रशीहृद्यर्धमाशमगुल्मान्  
हृन्मालकुष्ठ्रास्तिग्महायजकास्थम् ॥ २० ॥

## ऊर्ध्वाधःशुद्धिकरंघृतम्—

दंत्याढकमपां द्रोणे पत्रत्वा तेन घृतं पचेत् ।  
धामार्गवपले पीतं तदूर्ध्वाधो विशुद्धिदम् ॥ २१ ॥  
‘आवर्तकी’मुला द्रोणे पचेदष्टाशेषितम् ।  
तन्मूलंस्तत्र निगूहे पृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २२ ॥

१ आवर्तकी—मेपटुङ्गी सौधृतकुष्ठनिकिते “द्वैपदग्धं चर्म मातङ्गजं वा भिन्ने-  
स्फोटे तैलपुक्तं प्रलेपः” अथ टीकाया उत्तरेण “सैतमत्रविपाणिकागिद्धं । तदुक्तम्—  
आवर्तकीमूलनिद्धेन तैलेनाम्बज्यावचूर्णयेत् । गजशीपिचर्ममसीचूर्णेन त्रिफला लोह  
चूर्णेनवा” इति आवर्तकीशब्देन विपाणिकार्थप्रतिपादनात् । “आवर्तकी-विपाणा  
कारा रक्तगुण्यो रंगाकारा पीतकीलकयुक्ता चर्मरञ्जनकारिणी” इति वाचस्पत्याभि-  
धानम् ।

अत्र “आवर्तकी” शब्देन दन्त्या अपि ग्रहणं सम्भाव्यते । दन्त्याः कुष्ठदृत्वाद्,  
तथा चोक्तं राजनिघण्टौ पिप्पल्यादिगणे-अन्यादन्ती केसरहृत्वा विषमदा जयावहा ।  
आवर्तकी वराङ्गी च जयावहा भद्रदन्तिका । अन्यादन्ती कटूणा च रेचनी क्रिमिहा-  
परा । मूलकुष्ठामदोषलो त्वयामर्षाविनाशिनी । अन्यापदेन यद्यपि कश्चिदन्तीभेद-  
स्तथापि तस्या अत्राप्यत्रादन्ती एव ग्राह्या तदुपगत्वात् ।

सायोमला सामलका सतैला  
 कुष्ठानि वृच्छाणि निहन्ति लीढा ॥ ४६ ॥  
 पथ्यातिलगुडैः पिंडो कुष्ठं सास्पर्करंजयेत् ।  
 गुडारप्करजंतुज्वनोमराजीवृत्ताऽप्यवा ॥ ४७ ॥  
 विडंगाद्रिजतुसौद्रं सर्पिष्मत्सादिरं रजः ।  
 किटिभक्षिग्रदद्रुग्धं खादेन्मितहिताशनः ॥ ४८ ॥  
 मितातैलकृमिघ्नानि धात्र्ययोमलपिप्पलीः ।  
 लिहानः सर्वंबुष्टानि जयन्त्यतिगुह्यमपि ॥ ४९ ॥

### चूर्णम्—

मुस्तं व्योषं त्रिफला मंजिष्ठादारुपंचमूले द्वे ।  
 मसच्छदनिवत्षक् सदिशाला चित्रको मूर्वा ॥ ५० ॥  
 चूर्णं तर्पणभागीर्नवभिः संयोजितं समध्वंसम् ।  
 निर्यमं कुष्ठनिबर्हणमेतत्प्रायोगिकं<sup>१</sup> खादन् ॥ ५१ ॥  
 श्वपशुं सपांडुरोगं श्वित्रं ग्रहणीप्रदोपमर्शसि ।  
 वर्ध्मभगंदरपिष्टकार्कहूकोठापचीर्हन्ति ॥ ५२ ॥

### तुवरास्थिशीलनम्—

रगायनप्रयोगेण तुवरास्थीनि शीलयेत् ।  
 भल्लातकं बाकुचिकं बल्लिमूलं शिलाह्वयम् ॥ ५३ ॥

### अन्तेर्देपिजितेलेपादि :—

इति दोषे विजितेऽस्तम्  
 त्वपस्थे शमनं बहिः प्रलेपादि हितम् ।  
 तीक्ष्णालेपोत्थिलघ्नं  
 कुष्ठं हि विवृद्धिमेति मलिने देहे ॥ ५४ ॥  
 स्थिरकठिनमंडलानां कुष्ठानां पोदलेहितः स्वेदः ।  
 स्विन्नोत्सन्नं कुष्ठं घटशौलिकितं प्रलेपनैल्लिपेत् ॥ ५५ ॥



येषु न शस्त्रं क्रमते स्पर्शोऽन्द्रियनाशनेषु कुष्ठेषु ।  
 तेषु निपात्यः क्षारो रक्तं दोषं च निस्त्राव्यम् ॥ ५६ ॥  
 लेपोऽतिकठिने पक्ष्मे सुप्ते कुष्ठे स्थिरे पुराणे च ।  
 पीतागदस्य कार्प्यो विषः समंत्रोऽगदेष्वानु ॥ ५७ ॥  
 स्तम्भात्तिमुप्तमुत्तान्यस्वेदनकङ्कलानि कुष्ठानि ।  
 पृष्ठानि क्षुब्धगोमयफेनकधस्त्रैः प्रदेह्यानि ॥ ५८ ॥  
 मुस्ता शिफला मदनं करज आरग्वधफलितपत्राः ।  
 सप्ताह्मकुटफलिनीदार्ष्यः सिद्धार्थक स्नानम् ॥ ५९ ॥  
 एष कपाथो वमनं विरेचनं वर्णकरस्तथोदर्यः ।  
 त्वदोषकुष्ठशोफप्रबोधनः पाहुरोगघ्न ॥ ६० ॥  
 करवीरनिवकुटजाच्छम्बाकाच्चित्रकाच्च मूलानाम् ।  
 मूत्रे दर्वलिपी क्वाथो लेपेन कुष्ठघ्नः ॥ ६१ ॥  
 श्वेतकरवीरमूलं कुटजकरंजात्फलं त्वचो दाढ्याः ।  
 मुमनःप्रवालमुक्तो लेपः कुष्ठापहः विद्वः ॥ ६२ ॥  
 शैरीषीश्वरपुष्पं कार्पास्या राजवृक्षपत्राणि ।  
 पिष्टा च काकमाची चतुर्विधः कुष्ठहा लेपः ॥ ६३ ॥

व्योपसर्पपनिशागृहधूम-  
 यावत्पुष्पटुचित्रककुष्ठैः ।  
 कोलमात्रमुटिकार्थविषाशाः  
 शिवत्रकुष्ठहरणो चरलेपः ॥ ६४ ॥  
 निबं हृदि मुरसं पटोलं  
 कुष्ठाश्वगंधि मुरदारु शिबुः ।  
 मसर्पपं तुङ्ग घान्यचन्यं  
 चंडावचूर्णानि समानि कुर्यात् ॥ ६५ ॥  
 तैस्तक्रपिष्टैः प्रथमं घरीरं  
 तंलात्तमुद्धर्तयितुं यतेत ।  
 तेनास्य कंदूषिटीकाः सकोटाः  
 कुष्ठानि पीक्याश्च चर्म घर्तयि ॥ ६६ ॥

१ मृस्तामृताग्नयटवटेरो-  
मासीमर्कपिहानुष्ठरोध्राः ।  
गन्धोपलः गर्जरगो विडंग  
मनः शिलाले करवीरवत्सर्प ॥ ६७ ॥

तैलास्तगायस्य घृतानि चूर्णा-  
न्येतानि दद्यादवचूर्णनार्थम् ।  
दद्रुः सर्कः कटिभानि पामा  
विषाचिचि ॥ ६८ ॥

२ स्नुग्गण्डे सर्पपात्सर्कः कुकूलानलपाचितः ।  
लोपाद्विचचिका हति रागवेग इव त्रयाम् ॥ ६९ ॥

मनःशिलाले मरिचानि तैल-  
मार्कं पयः कुष्ठहरः प्रदेहः ।  
तथा करंजप्रपुनाटबीजं  
कुष्ठान्वितं गोमालितेन विष्टम् ॥ ७० ॥

गुग्गुलुमरिचविडंगैः सर्पपकामीसमर्जरममुस्तैः ।  
श्रीवेष्टकालगर्धर्मनःशिलाकुष्ठकपिलैः ॥ ७१ ॥  
उभयहरिद्रामहिर्वश्नाक्रिकतैलेन मिथितैरेभि ।  
दिनकरकराभितर्तैः कुष्ठं धूप्यं च नष्टं च ॥ ७२ ॥

मरिचं तमालपत्रं कुष्ठं समनःशिलं सकासीसम् ।  
तैलेन युक्तमुपितं सप्ताहं भाजने ताम्रे ॥ ७३ ॥  
सेनालिप्तं मिष्टं सप्ताहाद्वर्गमेष्विनोपैति ।  
भासाग्नवं किलासं स्नानेन विना विद्युदस्य ॥ ७४ ॥

१ गन्धं कैवर्तमुस्तनम् । २ अमृतासर्जं तुल्यकम्, अमृतागुह्वरी, सङ्गस्तुत्यकं  
मिति वा । बटवटेरी दारहरिद्रा । गन्धोपलो गन्धकः आलंहरित्तालम् ।

३ स्नुग्गण्डे स्नुहोकाण्डे । प्रपुनाटश्चक्रमर्दकः । श्रीवेष्टकं, "गन्धाविरोजा"  
इतिलोके । चाक्रिकं तैलं सद्यः पीडितं चक्रस्थमेवोष्णं तैलम् ।

भयूरकदारजले सप्तकृत्वः परिक्षुते ।

मिदं ज्योतिष्मतीतैलमभ्यङ्गारिसिध्मनाशनम् ॥ ७५ ॥

बायसजंघामूलं वमनीपत्राणि मूलकाद्वीजम् ।

तत्रेण भीमवारे लेपः सिध्मापहः सिद्धः ॥ ७६ ॥

जीवंतीमंजिष्ठादार्वीकंपिप्लवं पयस्तुत्यम् ।

एष घृततैलपाकः सिद्धः सिद्धे च सर्जरसः ॥ ७७ ॥

द्वेयः समघृच्छिट्टो विषादिका तेन नश्यति ह्यक्ता ।

चर्मैककुष्ठचिटिभं कुष्ठं शाम्यत्यलमकं च ॥ ७८ ॥

### वञ्जकसंक्षतैलम्—

मूलं सप्ताह्वारवक् क्षिरोपाश्वमारा-

दकीर्णमालरयाश्रिमकास्फोटनिवाण् ।

बीजं कारंजं सार्पपं प्रापुनाटं

श्लेष्ठा जंतुर्जं श्यूपणं द्वे हरिद्रे ॥ ७९ ॥

तिलतैलं साधितं तैः समूत्रै-

स्त्वग्दोषाणां दुष्टनाडीव्रणानाम् ।

अभ्यङ्गेन श्लेष्मवातोद्भवानां

नासायालं वञ्जकं वञ्जतुत्यम् ॥ ८० ॥

### महावञ्जकतैलम्—

एरंडताम्र्यंघननीपकदंभवार्गी-

कंपिप्लवेक्ष्मफलनीमुरवारुणाभिः ।

निगुण्ड्यरप्करमुराह्णसुवर्णदुग्धा-

श्रीवेष्टगुग्गुलुचिलापटुतालविषवैः ॥ ८१ ॥

१ भयूरकोऽपामार्गः । ज्योतिष्मती “माल कांकुनी” इतिलोके । २ बायस-  
जंघा-शकजघा । वमनीय पत्राणि-कार्पासिकापत्राणि । तथा चोक्तं योग-  
रत्नाकरे—“कार्पासिकापत्रविमिश्रकाजह्वाकृतो मूलकबीजयुक्तः तत्रेण लेपः  
क्षितिपुत्रवारे निध्मानि सद्यो नश्यति प्रणाशम्” । ३ श्लेष्ठा त्रिफला । जंतुर्जं  
विडङ्गम् ।

नुन्यस्तुगर्कदुग्धं सिद्धं तैलं स्मृतं महावज्रम् ।  
 अतिशयितवज्रकणुपं शिवनाथोऽयिमालाब्जम् ॥ ८२ ॥  
 फुट्टास्वमारभृगार्कमूत्रस्तुक्क्षीरसैधवैः ।  
 तैलं सिद्धं विपाषापमम्यं गातुष्टजित्परम् ॥ ८३ ॥  
 मिद्धं सिक्वयन्मिद्वरपुस्तुत्यक्ताक्ष्यजैः ।  
 कच्छू विचर्चिकां धाञ्जु कटुतैलं नियन्तति ॥ ८४ ॥  
 लाक्षाभ्योपं प्राप्नुनाटं च बीजं  
 सश्रीवेष्टं कुष्टसिद्धार्थकाञ्च ।  
 तत्रोन्मिधः स्याद्विद्या च लेपो  
 दद्रूपुक्तो मूलकोत्थं च बीजम् ॥ ८५ ॥

घट्ट लेपाः—

चित्रकतोभाजनको मुहुच्यपामागदेवदारुणि ।  
 सदिरो धवश्च लेपः श्यामा दंती ब्रवन्ती च ॥ ८६ ॥  
 लाक्षारसाजनैला पुनर्नवा चेति कुष्ठिनी लेपाः ।  
 दधिमध्युताः पादैः यद् प्रोक्ता मारुतकफघ्नाः ॥ ८७ ॥  
 \*जलवाप्यलोहकेसरपत्रप्लवण्डनमृणालानि ।  
 भागोत्तराणि सिद्धं प्रलेपनं पित्तकफकुष्ठे ॥ ८८ ॥

घृतविशेषैरभ्यङ्गः—

तित्कघृतैर्घातघृतैरभ्यङ्गो दह्यमानकुष्ठेषु ।  
 तैलैश्चदनमधुकप्रर्षोऽङ्गरीकोत्पलयुतैश्च ॥ ८९ ॥  
 क्लेदे प्रपतति चांगे दाहे विस्फोटके च चर्मदले ।  
 शीताः प्रदेहसेका व्यघ्नविरेको घृतं तित्कम् ॥ ९० ॥  
 सदिश्वपनिबकुटजाः  
 श्रेष्ठा वृमिजित्पटोलमधुपर्णः ।  
 अंतर्बहिःप्रयुक्ताः  
 कृमिकुष्ठनुदः सगोमूत्राः ॥ ९१ ॥

१ जलं गुण्यवालाकम् । वाप्यं कुष्ठम् । लोहमगुह ।

चातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु ।  
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं चाग्र्यम् ॥ ६२ ॥

### लेपानां सिद्धिकरणम्—

ये लेपाः कुष्ठानां युज्यन्ते निर्हृतास्त्रिदोषाणाम् ।  
संशोषिताद्ययाना मद्यः सिद्धिर्भवति तेषाम् ॥ ६३ ॥  
दोषे हृतेऽपनीते रक्ते बाह्यांतरे कुठे क्षमने ।  
स्नेहे च काल्पयुक्ते न कुष्ठमतिवर्तते साध्यम् ॥ ६४ ॥

### बहुदोषः कुष्ठो संशोध्यः—

बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठो बहुशोऽनुरक्षता प्राणान् ।  
दोषे ह्यतिमात्रहृते वायुर्हृन्म्यादवलमाद्यु ॥ ६५ ॥

### वमनादिकालः—

पक्षात्पक्षाच्छोर्दनाभ्यग्न्युपेया-  
न्मासान्मासाच्छोधनाभ्यप्यथस्तात् ।  
द्युद्धिर्मूर्ध्नि स्यान्निरात्रास्त्रिरात्रात्  
पठे पठे मास्यसृग्मोक्षणानि ॥ ६६ ॥

### कुष्ठिनांसम्पूर्णदोषनिर्हरणं कार्यम्—

यो दुर्वातो दुर्विरक्तोऽथवा स्यात्  
कुष्ठो दीर्घरुद्धर्थाप्यपितेऽसौ ।  
निःशंसदेहं मास्यसाध्यत्वमेव  
तस्मात्कुत्स्नाग्निर्हरेदस्य दोषान् ॥ ६७ ॥

### मृतादीनि कुष्ठनाशकानि—

‘व्रतदमयमखेवाख्यामशीलाभियोगो  
द्विजसुरगुरुपूजा सर्वसत्त्वेषु भैत्रो ।  
शिवशिवसुतशारामास्कराराधनानि  
प्रकटितमलपापं कुष्ठमुन्मूलयति” ॥ ६८ ॥



१ व्रतं नियमः वृच्छवान्द्रायणादि । दमोवाहोन्द्रियजयः । यमः—अहिंसा  
मत्वास्तवग्रह्णचर्यापरिग्रहाः । सेवा दीनसेवा । त्यागो दानम् । शिवमुद्रोगणेशा ।

## विंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः शिवत्रकृमिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

शिवत्रेशीघ्रं यत्नोपिधेयः—

“कृष्णादपि बीभत्सं यच्छीघ्रत्ररं च मात्पसाव्यत्वम् ।  
शिवत्रमृतस्तच्छात्स्यै यतेत दीप्तं यथा भवने ॥ १ ॥

संशोधनादि—

संशोधनं विरोपाद्रप्रयोजयेत्पूषमेव देहस्य ।  
शिवत्रे संमनमग्र्यं 'मलयूरम्' इक्षते सगुडः ॥ २ ॥  
तं पीत्वाऽम्यक्ततनुर्यथाबलं मूर्धपादसंतापम् ।  
सेवेत विरिक्तजगुस्त्र्यहं पिपासुः पिबेत्प्रेषाम् ॥ ३ ॥

स्फोटभेदनादि—

शिवत्रेण ये स्फोटा जायन्ते कंटकेन तान् भिद्यात् ।  
स्फोटेषु निःसृतेषु प्रातः प्रातः पिबेत् त्रिदिनम् ॥ ४ ॥  
मलयूरममनं त्रिपुण्ड्रं दत्तपुण्यां चाभमा समुत्पवाद्य ।  
शालाशं वा क्षारं यथाबलं काणितोपेतम् ॥ ५ ॥

कल्कपानादि—

'फलवदशवृक्षवक्त्रलनियूहेन्द्रुराजिवाकल्कम् ।  
पीत्वोणस्थितस्थ जाते स्फोटे तत्रेण भोजनं निर्लवणम् ॥ ६ ॥

१ मलयुः 'बहूपर' अथवा 'बकुची' । २ फल्युः 'बहूपर' हि०, इन्दुराजी 'यकुची' ।

## गोमूत्रपानम्—

गव्यं मूत्रं चित्रकव्योपयुक्तं  
 मषि-कुंभे स्थापितं क्षौद्रमिश्रम् ।  
 पक्षादुर्ध्वं शिवत्रिभिः पेयमेतत्  
 कायं चास्मै नुष्ठदृष्टं विपानम् ॥ ७ ॥

## भृंगराजभक्षयम्—

मार्कवमयवा खादेद् भ्रष्टं तैलेन लोहपानस्यम् ।  
 बीजकशृतं च दुग्ध तदनु पिबेच्छिवत्रनाशाय ॥ ८ ॥

## लेपः—

पूतीकार्कश्वौघाधिघातस्तुह्ना  
 मूत्रे पिष्टाः पल्लवा जातिषाञ्च ।  
 घ्नन्त्यालेपाच्छिवत्रदुर्नामदहू-  
 पामाकुष्ठान्दुष्टनाडीघ्नञ्च ॥ ९ ॥

## दग्धचर्म लेपः—

द्वैपं दग्धं चर्म मातंगजं वा  
 शिवत्रे लेपस्तेलयुक्तो वरिष्ठः ।  
 पूतिः कीटो राजवृक्षोद्भवेन  
 क्षारेणाक्तः शिवत्रमेकोऽपि हन्ति ॥ १० ॥

## भस्मातक प्रयोगः—

रात्रौ गोमूत्रे चासितान् जर्जरागा-  
 नल्लि जलमायां सोपयेत्स्फोटहेतून्<sup>१</sup> ।

१ पूतीकः करंजः । व्याधिघातः “अमलत्नास” इति लोके । जातिः  
 ‘चमेली’ हि ० । २ द्वैपं चर्म द्वौपी विश्वव्याघ्रः “दीपा” । ३ स्फोटहेतून्  
 भस्मातकान् ।

एवं वारांस्त्रीस्त्वंस्ततः षण्दशपिष्टैः

स्तुद्धा क्षीरेण शिवत्रनासाय लेपः ॥ ११ ॥

लेपः—

असतलकृतो लेपः कृष्णसर्षपद्विभवा मयी ।

शिम्रिपिसं तथा दग्धं ह्रीवेरं वा तदाप्लुतम् ॥ १२ ॥

कुडवो बल्गुजबीजाद्वरितालवतुर्यभागसंमिश्रः ।

भूत्रेण गवा पिष्टः सवर्णकरणं परं शिवत्रे ॥ १३ ॥

वाकुची लेपः—

क्षारे सुदग्धे गजलिङ्गे च<sup>१</sup>

गजस्य भूत्रेण परितुते च ।

द्रोणप्रमाणे दशभागयुक्तं

दत्त्वा पचेद्बीजमवस्नुजानाम् ॥ १४ ॥

शिवत्रं जयेच्चिक्कणतां गतेन

तेन प्रलिपन्बहुजः प्रघृष्टम् ।

कुष्ठं मयी वा तिलकालक वा

मदा व्रणे स्यादधिमासजातम् ॥ १५ ॥

भल्लातकादिलेपः—

भल्लातकद्वीपिमुधारकमूलं

गुल्जाफलशूषणशस्त्रचूर्णम् ।

सुतयं सकुष्ठं लवणानि पंच

क्षारद्वयं लागलिकां च पक्त्वा ॥ १६ ॥

स्नुगर्कदुग्धं घनमाश्रमस्थं

घलाक्या तद्विदधीत नेत्रम् ।

कृष्टे विन्यासे तिलकालवेपु ।

मांसिषु दुर्नामिषु चर्मकीने ॥ १७ ॥



शुद्धपा क्षोणितगोर्ध्वविस्फाणैर्भक्षणैश्च सक्तूनाम् ।  
शिवभं कस्यचिदेव प्रशाम्यति क्षोणपापस्य ॥ १८ ॥

इति श्वित्रचिकित्सा ।

## कुमिचिकित्सा—

वस्त्रियोजनादि—

मृगयस्त्रिभुजे गुडक्षीरमास्याचं कृमिणोदरे ।  
उत्खलेदितकृमिकफे द्यवरी तां मुखोपिने ॥ १९ ॥  
गुरसादिगण मूत्रे क्वाथयित्वाध्वारिणि ।  
तं कषायं कणागालकृमिजित्कल्पोजितम् ॥ २० ॥  
सर्तलस्वर्जिकाक्षारं युञ्ज्याद्वस्त्रि ततोऽह्नि ।  
तस्मिन्नेव निहृदं तं पाययेत् विरेचनम् ॥ २१ ॥  
मिश्रकृत्कं फलकणाकषागालोदितं ततः ।  
ऊर्ध्वाधः क्षोषिते कुर्यात्पचकोलयुतं क्रमम् ॥ २२ ॥  
मृदुतिक्तकषायाणां कषायैः परिषेचनम् ।  
काले विद्वंगतैलेन ततस्तप्तमनुरासयेत् ॥ २३ ॥

शिरोगत क्रिमिचिकित्सा—

शिरोरोगनिषेधोक्तमाधरेन्मूधगण्डमु ।  
उद्विक्ततित्तकटुकमल्पस्नेहं च भोजनम् ॥ २४ ॥

पेयापानम्—

विडंगकृष्णामरिचपिप्पलीमूलसिग्रुभिः ।  
पिपेत्सस्वर्जिकाक्षारं यवागूं तक्रमाधिताम् ॥ २५ ॥

## शिरीषादि प्रयोगः

रसं शिरोषकिणिहीपारिमद्रकवैद्युतात् ।

पालाशबीजपत्तूरपूतिकाद्वा पृथक् पिबेत् ॥ २६ ॥

मसौद्रं सुरसादीन्वा लिह्यात्सौद्रयुतान् पृथक् ।

## अश्वविट् प्रयोगः—

घृतवृत्थोश्वविट्चूर्णं विडंगवदायभावितम् ॥ २७ ॥

कृमिमान्मधुना लिह्याद्भावितं वा वरारसं ।

## शिरोगतेषु कृमिषु चूर्णनस्थम्—

शिरोगतेषु कृमिषु चूर्णं प्रघमनं च तत् ॥ २८ ॥

## पूपलिकादिभक्षणम्—

आसुकर्णोक्तिसलयैः सुपिष्टैः पिष्टमिश्रितैः ।

पक्त्वा पूपलिकां खादेज्जान्याम्लं च पिबेदनु ॥ २९ ॥

सर्पचकोललवणमसौद्रं तक्रमेव वा ।

नीपमार्कवनिमु'दीपल्लवेष्ट्यप्ययं विधिः ॥ ३० ॥

विडंगचूर्णमिश्रैर्वा पिष्टमैक्ष्यान् प्रकल्पयेत् ।

## तैलयोजनाः—

विडंगतंडुलैर्युक्तमर्घाश्चैरतपस्थितम् ॥ ३१ ॥

दिनमाशुकरं तैलं पाने वस्तौ च योजयेत् ।

सुराक्ष्मरलस्नेहं पृथगेवं प्रकल्पयेत् ॥ ३२ ॥

पुरीषजेषु मुतरा दत्ताद्रस्तिविरेचने ।

शिरोविरेकं घमनं घमनं कफजन्मसु ॥ ३३ ॥

रक्तश्रानां प्रतीकारं कुर्यात्पृष्ठचिकित्मितात् ।

इंद्रलुप्तविधिश्चात्र विषयो रोमभोजिषु ॥ ३४ ॥

त्याज्यपदार्थाः—

64921

क्षीराणि मांसानि घृतं पुडं च  
दधीनि शाकानि च पर्णवन्ति ।  
ममामसोम्लान्मधुराम् रसाश्च  
कृमीन् जिहामुः परिवर्जयेच्च” ॥ १५ ॥

## एकविंशोऽध्यायः ।

अथास्तः वातव्याधिचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

वायोरादीस्नेहोपचारादि—

“केवलं निरुपस्तंभमादौ स्नेहेष्टान्वरेत् ।  
वायु मर्पिवंसामज्जातैलपानैर्नरैः ततः ॥ १ ॥  
स्नेहाक्रांतं सभाषवास्थ पयोभिः स्नेहयेत्पुनः ।  
यूपीग्राम्योदकानूपरमंवा स्नेहसंयुतैः ॥ २ ॥  
पायसैः कृशरैः साप्पल्लवणैः मानुवासनैः ।  
वातघ्नैस्तर्पणैश्चाग्नैः सुस्निग्धैः स्नेहयेत्ततः ॥ ३ ॥  
स्वभ्याक्तं स्नेहसंयुक्तैः संकराद्यैः पुनः पुनः ।

स्वेदगुणाः—

स्नेहाक्तं स्विन्नमर्गं तु यक्रं त्वत्त्वं सवेदनम् ॥ ४ ॥  
यथेष्टमानमपितुं मुखमेव हि शस्यते ।  
दुष्काण्यपि हि काष्ठानि स्नेहस्वेदोपपादनैः ॥ ५ ॥  
शक्यं कर्मभ्यदा नेतुं किमु गात्राणि जीवताम् ।  
हर्षतोदरगात्रामसोफस्तंभग्रहादयः ॥ ६ ॥

स्विन्नस्याशु प्रयाम्यति मार्दवं चोपजायते ।  
 स्नेहश्च धातून् संशुष्कान् पुष्णात्याशु प्रयोजितः ॥ ७ ॥  
 बलमग्निचलं पुष्टिं प्राणं चाऽस्याभिवर्धयेत् ।  
 अतकृत्तं पुनः स्नेहैः स्वेदंश्च प्रतिपादयेत् ॥ ८ ॥  
 तथा स्नेहघृदौ कोष्ठे न तिष्ठन्त्यनिलामयाः ।

### शोधनम्—

यद्येतेन सदोषत्वात्कर्मणा न प्रयाम्यति ॥ ९ ॥  
 मृदुभिः स्नेहसंयुक्तैर्भेषजैस्तं विशोधयेत् ।

### घृतप्रयोगः—

घृतं तित्त्वकसिद्धं वा मातलासिद्धमेव वा ॥ १० ॥  
 पयसैरङ्गनैलं वा पिबेद्दोषहरं शिवम् ।

### भारुतानुलोमनेहेतुः—

स्निग्धाम्ललवणोष्णाद्यैराहारैर्ह मलश्रितः ॥ ११ ॥  
 स्रोतोरुद्ध्वाऽनिलं हंभ्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत् ।

### निरुह प्रयोगः—

कुर्वन्तो योऽग्निरेज्यः स्यात्तं निरुहेत्पाचरेत् ॥ १२ ॥  
 दीपनैः पाचनीयैर्वा भोज्यैर्वा तद्युतैर्नरम् ।  
 संशुद्धस्योत्थिते चाऽग्नी स्नेहस्वेदौ पुनर्हिती ॥ १३ ॥

### अङ्गगतवायुचिकित्सा—

आमाशयगते वायौ वमितप्रतिभोजिते ।  
 मुखानुना पट्चरणं बचादि वा प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥  
 मधुभिर्नेत्रौ परतो विधिः केवलवातिकः ।  
 मत्स्याभ्राभिर्प्रदेशस्थे सिद्धान्वित्वशलादुभिः ॥ १५ ॥  
 बस्तिकर्म रक्थोनामेः दास्यते चाऽवपीडकः ।  
 कोष्ठगे दारचूर्णाद्या हिताः पाचनदीपनाः ॥ १६ ॥

१ तद्युतं दीपनोपपाचनोपयुतः । २ अवपीडकः स्नेहः श्रुतस्योपरिसेव्यः ।

हृत्स्थे पपः स्थिरासिद्धम्

शिरोवस्तिः शिरोमते ।

स्नेहिकं नावनं धूमः श्रोत्रादीनां च तर्पणम् ॥ १७ ॥

स्वेदाम्बंगानि वा तानि हृद्यं चान्नं स्वग्राधिते ।

शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्तमोक्षणम् ॥ १८ ॥

विरेको मांसमेदस्थे निदहाः शमनानि च ।

बाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्जागतं जयेत् ॥ १९ ॥

प्रहर्षोन्नं च ह्यक्तस्थे बलशूकरं हितम् ।

विवदमार्गं दृष्ट्वा तु शुक्लं दद्याद्विरेचनम् ॥ २० ॥

विरिक्तं प्रतिशुक्तं च पूर्वोक्तं कारयेत्क्रियात् ।

गर्भं शुष्के तु बानेन वालानां च विक्षुम्भताम् ॥ २१ ॥

सिताकाशपर्यमधुकैः सिद्धमुत्पापने पपः ।

स्नावसंधिशिराप्राप्ते स्नेहदाहोपनाहकम् ॥ २२ ॥

तैलं संकुचितेऽर्धगो मापमैधवसाधितम् ।

आगारधूममण्डलं तैलैः क्षुतेऽसृमि ॥ २३ ॥

मुप्तोऽग्रे वेष्टयुक्ते तु कर्तव्यमुपनाहनम् ।

अथतासक चिकित्सा—

अवाऽपतानकेन तमसस्ताक्षमवेपनम् ॥ २४ ॥

अस्त्वध्यमेदमस्वेदं महिरामामर्शजितम् ।

असदबाधातिनं चैतं त्वरितं समुपाचरेत् ॥ २५ ॥

तत्र प्रागेव मुस्तिव्यस्विन्नयो रीक्षयनाशनम् ।

ओतोविशुद्धये गुञ्जादच्छपानं ततो घृतम् ॥ २६ ॥

विदार्यादिगणनवाचदधिशीरस्यं शृतम् ।

जाडतिमार्गं तथा वायुव्याप्नोति सहस्रं वा वा ॥ २७ ॥

मुल्लयसंतकोलानि भद्रदार्वादिर्कं गणधम् ।

निःकवाध्यानूपमातं च तेनाम्लैः पयसाऽपि च ॥ २८ ॥

स्वादुस्कन्धप्रतीवापं महास्नेहं विपाचयेत् ।

शेनाभ्यंगावगाहान्नपानास्वानुवातनः ॥ २९ ॥

म हंति वार्तं, ते ते च महेस्वेदाः मुषोद्धिताः ।  
 वेगांतरेषु मूर्धनिमनकृन्वास्त्य रेचयेत् ॥ ३० ॥  
 छवर्षादेः प्रथमनेस्तीक्ष्णः श्लेष्मनिबर्हणीः ।  
 श्वत्ननामु विमुक्तामु तथा मंजा न विदति ॥  
 नीवर्चलाभयाव्योपमिद्धं मणिश्चलेऽपिने ॥ ३१ ॥

### सिद्धघृतम्—

पलायक तित्त्ववत्तो घरायाः  
 प्रस्थ पलायं गुरपं वमूलम् ।  
 सैरद्विहीनिकृतं घटेऽरा  
 पक्त्वा पचेत्पादभृतेन तेन ॥ ३२ ॥  
 दध्नः पात्रे यावद्गूकानि विल्वैः  
 मापिऽप्रस्थं हंति तत्सेव्यमानम् ।  
 दुष्टान्वातानेकमर्वागसंस्थाम्  
 योनिभ्यापद्गुल्मवर्ध्मोदरं च ॥ ३३ ॥  
 विधिस्तिथ्यकवर्जयो धम्याकाशोऽयोरपि ।  
 चिकित्सितमिदं कूर्मान्द्रुदवावापतानके ॥ ३४ ॥  
 संसृष्टदोषे संसृष्टं,  
 चूर्णयित्वा कफान्विते ।  
 सुबुद्ध्यभ्याहिगुपीकरं लवणप्रयम् ॥ ३५ ॥  
 यवत्रयावावुना पेर्य हृत्पाश्चात्यपतंत्रके ।  
 हिगु नीवर्चलं क्षुण्ठी दाडिमं साम्लवेतसम् ॥ ३६ ॥  
 विवेद्रा श्लेष्मपवनहृद्रोगोक्तं च शस्यते ।

### आयामचिकित्सा--

आयामयोरदितवद्वाह्याभ्यतरयोः क्रिया ॥ ३७ ॥  
 संलद्रोष्वां च शयनमातरोऽत्र सुदुस्तरः ।

### असाध्यत्वम्—

निवर्णदंतवदनः सस्तांगो नष्टचेतनः ॥ ३८ ॥

प्रस्विद्यंश्च घनुष्कंभी दशरात्रं न जीवति ।  
 वेगेष्वतोऽन्यथा जीयेन्मदेषु विनतो जडः ॥ ३८ ॥  
 स्रजः कुण्ठिः पक्षहृत् पंगुलो विकल्पोऽथवा ।  
 हनुस्रसे हनू स्निग्धस्विघ्नो स्वस्थानमानयेत् ॥ ४० ॥  
 उग्रामयेच्च कुशलश्चिकुं विवृते मुखे ।  
 नामयेत्संवृते शोपमेकायामवदाचरेत् ॥ ४१ ॥  
 जिह्वास्तंभे यथावस्थं कार्यं वातचिकित्सितम् ।  
 अर्दिते नावनं मूर्ध्नि तैलं श्रोत्राक्षितर्पणम् ॥ ४२ ॥  
 मशोके वमनं दाहरागयुक्ते मिराभ्यस्य ।  
 स्वेदनं स्नेहमयुक्तं पश्चाच्छास्ते विरेचनम् ॥ ४३ ॥  
 अथवाहौ हितं तस्य स्नेहश्चोत्तरभक्तिरु ।  
 ऊरुस्तंभे न च स्नेहो न च संशोधनं हितम् ॥ ४४ ॥  
 श्लेष्माममेदोबाहुल्याद्युक्त्या तत्क्षपणान्वितः ।  
 कुर्याद्रूपोपचारश्च यवश्यामाककोद्रवाः ॥ ४५ ॥  
 शार्करलवणं शान्ताः किञ्चित्तेलैर्जलैः शृतैः ।  
 जामलैरष्टुर्मासैर्मध्वंभोरिष्टपायनः ॥ ४६ ॥  
 वल्गकादिर्हरिद्रादिर्धचादिर्वा ससंधवः ।  
 आमवासे मुखामोयिः वेयः पद्चरणोऽथवा ॥ ४७ ॥  
 लिह्यारऔद्रेण वा श्रेष्ठाचम्पतित्ताकषापनान् ।  
 वल्गं समधु वा चक्षुषध्याग्निमुरदारुणम् ॥ ४८ ॥  
 मूर्ध्निर्वा शालयेत्पथ्या गुग्गुलु गिरिमभवम् ।  
 व्योपाग्निमुस्तत्रिफलाविडंगैर्गुग्गुतु समम् ॥ ४९ ॥  
 सादनं सर्वान् जयेद्याधीन् मेदःश्लेष्मामवातजान् ।

एवंवायोःशमनादि—

शाम्यत्येवं कफाक्रांतः समेदस्कः प्रभंजनः ॥ ५० ॥  
 शारभूशान्वितान् स्वेदान् सेमानुद्धर्तनानि च ।  
 कुर्याद्विह्मण्य मूत्राद्व्यैः करंजफज्जर्पपैः ॥ ५१ ॥

मूलवर्ष्यकर्तकारीनिवर्जः मसुराह्वयः ।  
सशोद्रमर्षपापक्वलोष्टवल्मीकमृत्तिकैः ॥ ५२ ॥

ऊरुस्तम्भिनो व्यायामादि—

कफक्षयार्थं व्यायामे सह्ये चैनं प्रवर्तयेत् ।  
स्यलान्द्युल्लभयेन्नारीः क्षत्तिवः परिशीलयेत् ॥ ५३ ॥  
स्थिरतोयं सरः क्षेपं प्रतिस्तोतो नदीं तरेत् ।  
शुष्ममेदःक्षये खाड्यं स्नेहादीन्वचारयेत् ॥ ५४ ॥

शेषवातचिकित्सा—

स्थानं दूष्यादि चालोच्य कार्यां शेषेष्वपि क्रिया ।

कायः—

सहृषरं सुरदाहं सनागरं  
कषितमंभसि तैलविमिश्रितम् ।  
पवनरीडितदेह्यतिः पिवेद्  
द्रुतविलंबितगो भवतीष्ठया ॥ ५५ ॥

रास्नादिघृतम्—

रास्नामहीपघट्रीपिपिप्पलीशठिषीष्करम् ।  
पिष्ट्वा विपाचयेत्पिर्वातरोगहरं परम् ॥ ५६ ॥

पञ्चतित्तघृतं गुग्गुलुः—

निवामृतावृषपटोलनिदिग्विकानां  
भागान् पृथक् दश पलान् विपचेद्वटेऽपाम् ।  
अष्टांशोपितरसेन पुनश्च तेन  
प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिप्पुभागवल्मीकैः ॥ ५७ ॥  
पाठाविडंगमुरदाहजोपकुल्या-  
द्विशारनागरनिनामिश्रचण्डूभिः ।

१ गजोपकुल्या गजपिप्पली । वरपा त्रिकलया । एतद्धृतं चक्रदत्तेन कुष्ठ  
चिबिन्धितं पठितम् ।



सेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्नि-  
 रोहिण्यल्परवचाकणमूलयुक्तैः ॥ १८ ॥  
 मंजिष्ठयातिविषया वरया यवान्या  
 संकुडगुग्गुलुपत्तैरपि पंचसंख्यैः ।  
 तत्सेवितं प्रथमति प्रबलं समीरं  
 संध्यस्त्रिमज्जगतमप्यथ फुल्लमीदृक् ॥ १९ ॥  
 नाडीस्रगाबुंदभगंदरगंडमाला-  
 जभूर्ध्वसर्चंगदगुल्मगुदोत्पमेहान् ।  
 मरुमारुचिश्वसनपीनसकासघोफ-  
 हृत्पादुरोगमदविद्रधिवातरक्तम् ॥ २० ॥

### घृतनस्यम्—

बलाद्वित्त्वशृते क्षीरे घृतमंडं विपाचयेत् ।  
 तस्य द्युतिः प्रकुंचो वा नखं वाते शिरोरगते ॥ २१ ॥  
 सद्गरिस्त्रिधा वसा नक्रमत्स्थकूर्मचुलुकजा ।  
 विशेषेण प्रयोक्तव्या केवले मातरिश्वनि ॥ २२ ॥

### तैलपानम्—

'जीर्णं पिप्पलाकं पंचमूलं पृथक्च  
 काष्यं काषाय्यामेकतस्तैलमास्याम् ।  
 क्षीरादष्टांशं पाचयेत्तैलं पानाद्  
 वाता नश्येयुः श्लेष्मवुक्ता विशेषात् ॥ २३ ॥

### प्रसारिणी तैलम्—

प्रसारिणी तुलाज्वापे तैलप्रस्थं पयः समम् ।  
 द्विमेदामिशिमंजिष्ठाकुष्ठरास्नाकुचदनैः ॥ २४ ॥  
 जीवकर्पभकाकोलीयुगुलामरदाहभिः ।  
 कल्कितैर्विपचेत्सर्वमास्तामयनाद्यनम् ॥ २५ ॥

## सहाचर तैलम् —

समूलघातस्य महाचरस्य  
 तुलां ममेतां दशमूलतश्च ।  
 पलानि पञ्चाशदभारतश्च  
 पादावरोपं विपचेद्रहेष्णाम् ॥ ६६ ॥  
 सप्त मेघनक्षकुष्ठहिर्मला-  
 स्पृक्प्रियंगुनलिकाबुधिलार्जः ।  
 लोहितानलदलोद्गुराह्यैः  
 कोपनामिशितुस्त्वनतैश्च ॥ ६७ ॥  
 तुल्यं क्षीरं पालिकैस्तैलपात्रं  
 सिद्धं कुञ्छान्दोलितं हति यातान् ।  
 कदाक्षेपस्तंभघोषादियुक्तान्  
 गुल्मोन्मादी पीनम् योनिरोगान् ॥ ६८ ॥

## द्वितीयः सहाचर तैलम् —

सहाचरतुलायास्तु रसे तैलाढक पचेत् ।  
 मूलबल्कादघपलं पयो दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ६९ ॥  
 अथवा नतपद्मं वास्मिराकुष्ठमुराह्वयान् ।  
 मैलानलदशैलेयघताह्वारकचंदनान् ॥ ७० ॥  
 मिद्धेऽस्मिन् चर्कराचूर्णादिष्टादशपलं क्षिपेत् ।  
 भेडस्य भंमर्त तैलं तत्कुञ्छाननिलामयान् ॥ ७१ ॥  
 वातकुंडलिकोन्मादगुल्मवर्ध्मादिकान् जयेत् ।

## बलातैलम्—

बलाघृतं छिन्नरुहापादं राधाष्टमायिकम् ॥ ७२ ॥  
 जलाढकघृते पक्त्वा घृतभागस्थिते रसे ।  
 दधिमस्तिशुनिर्ग्रामशुल्कैस्तैलाढकं सगैः ॥ ७३ ॥

१ दशमूलस्यापि तुलायाम् । अमीरः घृतावरी । बहे चतुर्दोणे । हिमं चन्दनम्  
 इतं केदारम् । कोपना चण्डा ।

पचेत्माजपयोर्घाशं कल्कैरेभिः पलोन्मितैः ।  
 शंठीसरत्तदावैलागं जिष्ठागुरुचंदनैः ॥ ७४ ॥  
 पद्मकातिबलामुस्ताशूर्पपर्णाहरेणुभिः ।  
 यष्टपाह्यगुरसव्याघ्रनखर्पभक्तजीवर्कैः ॥ ७५ ॥  
 पलाशरमकस्तूरोनीलिकाजातिकोशकैः ।  
 स्पृष्टागुरुकुमशैलेयजातिकाकट्फलांबुभिः ॥ ७६ ॥  
 त्वक्कुंदरुक्कपूरतुरप्कश्रोनिवासकैः ।  
 लवगनखकरोलकुष्ठमांतीप्रियंगुभिः ॥ ७७ ॥  
 स्थीणेषतगरव्यामवचामदनकप्लवैः ।  
 मनागकेसरैः मिष्टे दद्याच्चाऽत्रावतारिणे ॥ ७८ ॥  
 पञ्चकल्कं ततः पूत विधिना तत्प्रयोगं जिवम् ।  
 कामश्यामञ्जरचछदिमूर्छागुल्मशरक्षयान् ॥ ७९ ॥  
 प्लीहसोपमपरगारमलमो च प्रणाशयेन् ।  
 बलातैलमिदं श्रेष्ठ वातव्याधिनिनाशनम् ॥ ८० ॥

### तैल प्रयोग काला :—

पाने नस्येऽन्वासनेऽर्धजने च  
 स्नेहा. काले सम्यगेते प्रयुक्तः ।  
 बुष्टान्वाठानाश्च शान्तिं नयेयुः  
 र्वध्मा नारीः पुत्रमाजश्च कुर्युः ॥ ८१ ॥

### कफादेर्वस्तिभिर्जय :—

भ्रंगम्लानी तु न स्याव्यं रुक्षं वातोत्तरं च यत् ॥ ३ ॥  
 स्नेहस्वेदैर्द्रुतः श्लेष्मा यदा पक्वाशये स्थितः ।  
 पित्तं वा दग्धेद्रूपं वरितभिस्तं विनिर्जयेत् ॥ ८२ ॥

## द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो वातशोणितचिकित्सितं व्याख्यास्यामः ।

वातशोणितिनः शोणितहरणादिः—

“वातशोणितिनो रक्तं स्निग्धस्य बहुशो हरेत् ।

अल्पाल्प पालयन् वायुं यथादीर्घं यथाबलम् ॥ १ ॥

स्यागतोदवाहेषु जलोक्तोभिर्विनिहरेत् ।

शृणुतुर्वैश्वमिचिमाकं हूलूहूयनान्वितम् ॥ २ ॥

शोणितहरण निषेधः—

प्रक्ष्वानेन सिरामिषां देशाद्देशांतरं ब्रज्येत् ।

अङ्गुलानो तु न श्वाभ्यं ह्यस्य वातोत्तरं च मत् ॥ ३ ॥

गंभीरं श्वयष्टु रतं कं पद्मायुतिरामयान् ।

श्लानिमग्न्याश्च वातोत्थान् कुर्याद्वायुरस्तृक्षयात् ॥ ४ ॥

विरेपनयोग्यस्यत्रिरेचनम्—

विरेष्यः स्नेहयित्वा तु स्नेहयुक्तैर्विरेचनैः ।

वाताधिके पुराण घृतम्—

वातोत्तरे वातरक्ते पुराणं पामयेदृतम् ॥ ५ ॥

सिद्धं घृतम्—

आयणीशीरकाकोलीक्षोरिणीजीवकैः सर्गैः ।

मिद्धं सर्पपक्वैः सपिः सद्यौरं वातरक्तनुत् ॥ ६ ॥

सिद्धं घृतम्—

द्राक्षामधूकशरिण्यां मिद्धं वा समितोपलम् ।

घृतं पिबेत्तथा क्षीरं गुह्वीस्वरसे शृतम् ॥ ७ ॥

तलं पयः शर्करां च पाययेद्वा सुमूछितम् ।

**बलादिशृतं क्षीरम्—**

बलाशतावरीरास्नादशमूलैः मषोलुभिः ॥ ८ ॥

श्यामैरंडस्थिराभिश्च वातातिघ्नं शृतं पयः ।

**धारोष्णं क्षीरम्—**

धारोष्णं मूत्रपुक्तं वा क्षीरं दोपानुलोमनम् ॥ ९ ॥

**पित्ताधिकेशत्तावर्यादिपानम्—**

पंचे पक्त्वा वरीतिक्तापटोलत्रिफलाप्लवः ।

पिवेद् घृत वा क्षीरं वा स्वादुतिक्तद्रव्याधितम्<sup>१</sup> ॥ १० ॥

**एरण्डतैलम्—**

क्षीरेणैरण्डतैलं च प्रयोगेण पिवेन्नर ।

यद्बुद्धोपो विरेकायं जीर्णे क्षीरोदनाशनः ॥ ११ ॥

कषायमभयानां वा पाययेद् घृतवर्जितम् ।

क्षीरानुपानं त्रिवृताचूर्णं द्राक्षारसेन वा ॥ १२ ॥

**वस्तिप्रयोगः—**

निर्हरेद्वा मलं तस्य मघृतैः क्षीरवस्तिभिः ।

नहि वस्तिपत्रं किंचिद्वातरक्तविकल्पितम् ॥ १३ ॥

विदोषात्पायुपास्वोत्पर्वस्त्रिजठरातिष्ठ ।

**कफोत्तरे मुस्तादीनां काथः—**

मुस्तद्राक्षाहृदिद्राणां पिवेद्कायं कफोन्बधं ॥ १४ ॥

मशौद्रं त्रिफलाया वा गुडची वा यथा तथा ।

यथाऽर्हस्नेहपौतं च वागिनं मृदु रूचयेत् ॥ १५ ॥

## शूलान्विते वातरक्ते भैषज्यम्—

त्रिफलाव्योषध्रैलात्वक्नीरोचित्रकं वचाम् ।  
 विडंगं पिण्डीमूलं लोमशं<sup>१</sup> वृषकं त्वचम् ॥ १६ ॥  
 शृङ्गि लोणलिकं चव्यं ममभागानि पेपयेत् ।  
 चूर्णलिप्त्वायमी पात्रां मध्याह्ने भक्षयेद्विदम् ॥ १७ ॥  
 वाताग्ने मर्बहोपेऽपि परं शूलान्विते हिमम् ।  
 'कोकिलाक्षकनिपू'ह पीतस्तुच्छाक्मोजिना ॥ १८ ॥  
 कृपान्याम इव क्रोधं शान्तरक्तं निपण्ठति ।  
 पञ्चमूलस्य धात्र्या वा रमैर्जेलीतर्को घसाम् ॥ १९ ॥  
 सुडं मुस्तमप्यङ्गे ग्रह्याचारो पियन् जयेत् ।  
 हृत्वाभ्यन्तरमुद्दिष्टं कर्म बाह्यमतः परम् ॥ २० ॥

## पक्षसर्जरसतैलम्—

आरनालाङ्के तैलं पादमर्जरं शृतम् ।  
 प्रभूते खजितं तोये ज्वरदाहातिमुत्तरम् ॥ २१ ॥

## पिण्ड तैलम्—

समपूच्छिष्टमंजिष्ठं समर्जरसगारवम् ।  
 पिण्डतैलं तदभ्यागाद्वातरक्तलजापहम् ॥ २२ ॥

## क्षीरपाकः—

दध्मूले शृतं क्षीरं सघः शूलनिवारणम् ।  
 परिपेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा ॥ २३ ॥

## परिपेचनम्—

स्नेहैर्मधुरमिदं वा चतुभिः परिपेचयेत् ।  
 स्तंभाक्षेपकशूलार्तं कोष्णैर्दहि तु शीतलैः ॥ २४ ॥

१ लोमशः—भांगी—अथवा वचा । चरकेणु—शृङ्गिलाङ्गलिकमित्यत्र  
 “शृङ्गि लोणलिकं” इति परम् । २ कोकिलाक्षकः “ताल मखाना” इति लोके ।

तद्वद्गन्ध्याविकल्पागः क्षीरैस्तैलविमिश्रितैः ।

निःस्वार्थजीवनीयानां पंचमूलस्य वा लघोः ॥ २५ ॥

द्राक्षेधुरममद्यानि दधिमस्त्वम्लकांजिकम् ।

मेमार्थं तंदुलक्षौद्रशर्कराभञ्जं शस्यते ॥ २६ ॥

**क्षियोदाहृष्यः —**

प्रियाः प्रियंवदा नार्यश्रंदनार्द्रकरस्तथा ।

स्पर्शशीताः मुखस्पर्शांघ्रंति दाहं रजं बलमम् ॥ २७ ॥

**रुग्दाहनाशको लेपः —**

सरागे सरजे दाहे रक्तं हृत्वा प्रलेपयेत् ।

प्रपीडरीकर्मजिह्वादाधीमधुकचंदनैः ॥ २८ ॥

समितोपलकासेधुममूरैरकसक्तुभिः ।

लेपो रुग्दाहबीमपरागशोफनियहणः ॥ २९ ॥

**उपनाहनम् —**

पातध्ने साधितं स्निग्धं कृशरो मुद्गपायसः ।

तिलमर्षपिण्डंश्च नूलघ्नमुपनाहनम् ॥ ३० ॥

बीदका प्रमहानूपवेनवाराः मुमंस्कृता ।

जीवनीवीपघस्नेहयुक्ताः स्फुरपनाहने ॥ ३१ ॥

स्तंभवोदस्नायामशोफोग्रहनाशनाः ।

जीवनीवीपघैः मिष्टाः सपयस्का वमाऽपि वा ॥ ३२ ॥

**लेपाः —**

घृतं सहचराम्बूल जीवंती च्छागलं पयः ।

लेपः पिष्ट्वा पिलास्तद्वद्भृष्टा पयसि निर्चुताः ॥ ३३ ॥

क्षीरपिष्टधुमालेपमेरंडस्य फलानि वा ।

कुर्यात्प्लूलनिवृत्त्यर्थं घृताह्वां वाऽनिलेऽधिके ॥ ३४ ॥

मूत्रस्यारमूत्रापक्वं घृतमम्यंजने हितम् ।

१ महचरः “कटमर्या” इति लोके । २ धुमा-अतमी । घृताह्वा “सौक” इति लोके ।

सिद्धं ममघुशुक्तं वा मेकाभ्यंगाः,

कफोत्तरे ॥ ३५ ॥

घृहघूमो वचा घृष्टं घताह्वा रजनोद्वयम् ।

प्रलेपः शूलनुद्धातरक्ते,

वातकफोत्तरे ॥ ३६ ॥

मधुशिग्रोहितं तद्वद्वीजं धान्याम्लसंप्लुतम् ।

मुहूर्तलितमम्लैश्च सिचेद्वातकफोत्तरे ॥ ३७ ॥

<sup>१</sup>उत्तानं लेपनाभ्यंगपरिपेकावगाहनैः ।

विरेकास्थापनैः स्नेहपानैर्गभीरमाचरेत् ॥ ३८ ॥

<sup>२</sup>वातश्लेष्मोत्तरे कोष्णा संपाद्यास्तत्र शीतलैः ।

विदाहशोफरुक्कङ्गबिबुद्धिः स्तम्भनाद्भवेल ॥ ३९ ॥

पित्तरक्तोत्तरे वातरक्ते लेपादयो हिमाः ।

उष्णं, प्लोपोयरग्रागस्वेदापदरणोद्भवः<sup>३</sup> ॥ ४० ॥

सिद्धतैलस्यचतुः प्रयोगः—

मधुयष्ट्याः पलघात कपाये पादसेपिते ।

तैलाढकं ममक्षीरं पचेत्तत्कैः पलोन्मिर्वैः ॥ ४१ ॥

<sup>१</sup>स्थिरातामलकीदूर्वापयस्याभीरुष्वदनैः ।

लोहहंसपदामांसीद्विमेदामघुपर्णभिः ॥ ४२ ॥

काकोलीक्षीरकाकोलीशतपुष्पादिपद्मकैः ।

जीर्बतीजीर्बर्षभकत्वक्पुत्रनसवालकैः ॥ ४३ ॥

प्रपौडरीकर्मजिष्ठामारिर्वेद्रीवितुन्नकैः ।

चतुःप्रयोगं वातासृक्पित्तदाहज्वरातिनुत् ॥ ४४ ॥

१ उत्तानं त्वङ्मांशाश्रयम् । गम्भीरं त्वङ्मांसव्यतिरिक्तत्वाश्रयम् ।

२ वातश्लेष्मोत्तरे उत्ताने । तत्र वात श्लेष्मोत्तरे । ३ अपदरणं त्वचः स्फुटनम् ।

४ स्थिरा शालपर्णी । तामलकी भूम्यामलकम् । पयस्याक्षीरविदारो, अभीरुः

घतावरी । लोहमगुह । मधुपर्णी मुहुची । ऐन्द्री-इन्द्रवारुणी । वितुन्नकम् 'धनियो' ।

चतुः प्रयोगः-अभ्यङ्गनस्यपानानुबामनरूपः ।



### धलात्तैलम् :—

धलात्तैलकपायाम्या तैलं क्षीरसमं पचेत् ।  
सहस्रघनपाकं तद्वातासृग्वातरोगनुत् ॥ ४५ ॥  
रमायनं मुख्यतममिन्द्रियाणां प्रमादनम् ।  
जीवमं बृंहणं स्वयं शुक्रासृग्दोषनाशनम् ॥ ४६ ॥

### मार्गरोधात्कुपिते वाते स्नेहनादि :—

कुपिते मार्गभरोधान्मेदसो वा कफस्य वा ।  
क्षतिवृद्धधानिने द्यस्तमादौ स्नेहनवृहणम् ॥ ४७ ॥  
कृत्वा तन्माध्यवातोक्तं वातघोणितिकं ततः ।  
भेषजं स्नेहनं कुपयिष्व रक्तप्रमादनम् ॥ ४८ ॥  
प्राणादिफोषे युगपद्योर्हिष्टं यथामयम् ।  
यथामग्नं च भेषजं विकल्प्यं स्याद्यथाबलम् ॥ ४९ ॥  
नीले निरामतां मासे स्वेदलघनपाचनैः ।  
कदाश्वालेपसेकाद्यैः कुर्यात्केवलवातनुत् ॥ ५० ॥

### अङ्गशोपादयोऽवश्यं चिकित्स्याः

शोपादोपणमकोचस्तम्बस्वपनकपनम् ।  
हनुमन्मोदितं खाद्यं पाण्डुर्यं सुडवातता ॥ ५१ ॥  
संधिच्युतिः पक्षवधो मेदोमज्जास्थिगा यदाः ।  
एते स्थानस्य गोभीर्यास्तिघ्नेषुर्वलतो न वा ॥ ५२ ॥  
तस्माज्ज्येष्णवानेतान् बलिनो निरुपद्रवान् ।  
बाधौ पिप्ताकृते शीतामुष्णा च बहुशः क्रियाम् ॥ ५३ ॥  
व्यत्यामाद् योजयेत्सर्पिर्ज्विनीर्यं च पात्रमेत् ।  
धन्वमानं यथाः जालिविरेकः क्षीरवान्मृदुः ॥ ५४ ॥  
मक्षोरा द्यस्तप्रः क्षीरं पंचमूलवताशृतम् ।  
कालेज्जुनासनं तैलं मधुग्रीपमाहितम् ॥ ५५ ॥

१ व्यत्यामात् वैपरीत्यात् शीतां कृत्वा उष्णामुष्णां कृत्वा शीताम् ।

यष्टीमधुबलातैलघृतक्षीरैश्च सेचनम् ।  
 पंचमूलकपायेण वारिणा क्षौतलेन च ॥ ५६ ॥  
 कफावृते यवान्नानि जांगला मुगपक्षिणः ।  
 स्वेदास्तीक्ष्णा निरुहाश्च वमनं सविरेचनम् ॥ ५७ ॥  
 पुराणसर्पिस्तैलं च तिलसर्पपत्रं हितम् ।  
 मसृष्टे कफपित्ताभ्यां पित्तमादौ विनिर्जयेत् ॥ ५८ ॥  
 वारयेद्रक्तसंसृष्टे वाते क्षोणितिकीं त्रियाम् ।  
 स्वेदाम्बंगरताः क्षीरं स्नेहो मांसावृते हितः ॥ ५९ ॥  
 प्रमेहमेदोवातघ्नमाख्यवाते भिषग्वितम् ।  
 महास्नेहोऽस्थिमज्जस्ये पूर्वोक्तं रेतसावृते ॥ ६० ॥  
 अन्नावृते पाचनीयं वमनं दीपनं लघुम् ।  
 मूत्रावृते मूत्रलानि स्वेदा उत्तरवस्तयः ॥ ६१ ॥  
 एरट्टतैलं वर्षास्थे अस्तिस्नेहाश्च भेदिनः ।  
 कफपित्ताविरुद्धं यद्यच्च वातानुलोमनम् ॥ ६२ ॥  
 सर्वस्थानावृते त्वाद्यु तत्कार्यं मातरिष्वनि ।

### सर्वधात्वावृते चिकित्सितम्—

अनभिष्यदि च स्निग्धं क्षौतसां शुद्धिकारणम् ॥ ६३ ॥  
 पाचना वस्तयः प्रायो मधुराः सानुवासनाः ।  
 प्रममीक्ष्य बलाधिक्यं मृदु कार्यं विरेचनम् ॥ ६४ ॥  
 रसामनानां सर्वेषामुपयोगः प्रशस्यते ।  
 क्षिलाह्वस्य विशेषेण पयसा शुद्धगुग्गुलोः ॥ ६५ ॥  
 लेहो वा मार्गवस्तद्वदेकादशमितामितः ।  
 अथाने स्वावृते सर्वं दीपनं प्राहि भेषजम् ॥ ६६ ॥  
 वातानुलोमनं कार्यं मूत्राययविशोधनम् ।

### एतद्विचार्यभिषजाकृतव्यम्—

इति संक्षेपतः प्रोक्तमावृतानां चिकित्सितम् ॥ ६७ ॥

प्राणादीनां भिषक्कुर्याद्वितव्यं स्वयमेव तत् ।  
 उदानं योजयेदूर्ध्वमपानं चानुलोमयेत् ॥ ६८ ॥  
 समानं क्षमयेद्विद्वोस्त्रिधा ध्यानं च योजयेत् ।  
 प्राणो रक्ष्यश्चतुर्भ्योऽपि तस्मिन् देहमस्यतिः ॥ ६९ ॥  
 स्वं स्वं स्थानं नयेदेवं वृत्तान्वातान्विमार्गिणाम् ।

वातावरणोलशुन प्रयोगः—

मघं चावरणं पित्तरक्तमंसगर्भजितम् ॥ ७० ॥  
 रमायनविधानेन क्षुण्णो हंति शालितः ।  
 पिप्पलाशुते पित्तहरं मूत्रश्रानुलोमनम् ॥ ७१ ॥  
 रक्तामृतेऽपि तद्वच्च पुट्टोक्त यच्च भेषजम् ।  
 रक्तपित्तानिलहरं विविधं च रमायनम् ॥ ७२ ॥

आयुर्वेदफलं चिकित्सितम्—

यथानिदानं निर्दिष्टमिति मम्यक् चिकित्सितम् ।  
 आयुर्वेदफलं स्थानमेतत्प्रसोतिनाशनम् ॥ ७३ ॥

चिकित्सितर्यायाः—

चिकित्सितं हितं पथ्यं प्रायश्चित्तं भिषग्वितम् ।  
 भेषजं क्षमनं क्षस्तं पर्यायैः स्मृतमोषधम् ॥ ७४ ॥

समाप्तमिदं चिकित्सितं स्थानम् ।

अ० ॥ २२ ॥ श्लो० ॥ १६६१ ॥



कल्पस्थानम् ।

समग्रंस्थानं कायचिकित्सा

प्रथमोऽध्यायः ।

अथाऽतो वमनकल्पं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुरात्रेयादयो महर्षयः ॥

वमनविरेचनयो मदनत्रिवृन्मूले श्रेष्ठे—

वमने मदनं श्रेष्ठं, त्रिवृन्मूलं विरेचने ।

जीमूतादेर्विशिष्टता—

नित्यमग्न्यस्य तु व्याधिविशेषेण विशिष्टता ॥ १ ॥

मदनफलचूर्णयोजना—

फलानि तानि पाहूनि नचाऽतिहरितान्यपि ।

आदायाऽर्द्धं प्रक्षत्नक्षे मध्ये शीघ्रममंतयोः ॥ २ ॥

प्रमुञ्च्य कुशमु<sup>१</sup>त्तोल्या क्षिप्वा बद्ध्वा प्रलेपयेत् ।

शोमयेनानृमुत्तोली धान्यमध्ये निधापयेत् ॥ ३ ॥

मृदुभूतानि मध्विष्टमंधानि कुशमेष्टनान् ।

निष्कृप्य निर्गतेऽष्टाहे शोपयेत्तान्यथातपे ॥ ४ ॥

\*तेषा ततः मुद्राणामुद्राणां फलपिप्पलीः ।

दधिमध्वाज्यप<sup>२</sup>ल्लैर्मु<sup>३</sup>दित्वा शोपयेत्पुनः ॥ ५ ॥

१ अन्यस्य जीमूतादेरारग्वधादेश्च । २ मुत्तोली पुटकः । ३ तेषा मदन फलानाम् । फल पिप्पलीः मदनफलबीजानि । पिप्पली—“दाना” इति हिन्दी ।  
४ पलरु तिलवृक्षः ।

ततः सुगुप्तं संस्थाप्य कार्यकाले प्रयोजयेत् ।

### अनन्तरं पानादि—

अथाऽऽदाय ततो मात्रा जर्जरीकृत्य वासयेत् ॥ ६ ॥

१ शर्वरी मधुयष्ट्या वा कोविदारस्य वा जले ।

कर्बुदारस्य विन्ध्या वा नीपस्य विदुलस्य वा ॥ ७ ॥

२ शण्णपुष्पाः सदा पुष्पाः प्रत्यक्पुष्पदुन्दुबेऽप्यवा ।

ततः पिबेत्कपायं तं प्रातर्मृदितगालितम् ॥ ८ ॥

सूत्रादितेन विधिना साधु तेन तथा वमेत् ।

प्लोष्मज्वरप्रतिश्यायमुल्मातविद्वधीषु च ॥ ९ ॥

प्रच्छदयेद्विशेषेण यावत्पित्तस्य दर्शनम् ।

### फलपिप्पलाचूर्णपानादि—

फलपिप्पलिचूर्णं वा क्वाथेन स्वेन भावितम् ॥ १० ॥

त्रिभागान्नफलाचूर्णं कोविदारादिवारिणा ।

पिबेज्ज्वरारुचिष्वेवं ग्रंथ्यपच्यर्बुदोदरी ॥ ११ ॥

पित्तं कफस्थानगते जीमूतादिजलेन तत् ।

### हृद्वाहादौ क्वथितक्षीरादिपानम् —

हृद्वाहेऽधोऽसपित्तं च क्षीरं तत्पिप्पलीशृतम् ॥ १२ ॥

३ क्षीरेयी वा

कफच्छदिप्रसेवतमकेषु तु ।

दन्तुतरं वा दधि वा तच्छूतक्षीरसंभ्रमम् ॥ १३ ॥

१ शर्वरी रात्रिम् । कोविदारः काञ्चनारः योदारदि पुष्पवान् । कर्बुदारः काञ्चनारः—वमन्ते पुष्पवान् विम्बो "जंगली-सोता-कुंदरू" इति लोके । नीपः कदम्बः । विदुलो वेतवः । २ शण्णपुष्पो घण्टारवा, आरुण्य क राजः । ३ मदा-पुष्पो अर्कः । अस्त्रक्पुष्पो अपामार्गः । सूत्रादितेन सूत्रस्थानोक्तवमनविरेचना-ध्यामविहितेन "श्वोचम्यम्" इत्यादिना विधिना । ४ क्षीरेयी मदनफल् विद्वक्षीरेण कृता पयागः ।

फलादिकषायकल्पाभ्यां सिद्धं तस्मिद्धदुग्धजम् ।  
 मपिः कफामिभूतेऽग्नी शुष्यद्देहे च वामनम् ॥ १४ ॥  
 स्वरसं फलमज्ज्ञो वा भक्ष्यातकविमिश्रितम् ।  
 आदवनिपनात्सिद्धं लोढ्वा प्रच्छर्दयेत्सुखम् ॥ १५ ॥  
 न लेहं भक्ष्यभोज्येषु तत्कपायाश्च योजयेत् ।

फलकपायः—

कर्मकादिप्रतीवापः कपायः फलमज्जजः ॥ १६ ॥  
 नित्रार्कान्यतरकषायममायुक्तो नियच्छति ।  
 बद्धमूलानपि व्याधोन्मर्यान्संतर्पणीदभवान् ॥ १७ ॥

घ्राणेन वमनम्—

१ राठपुष्पफलश्लक्ष्णचूर्णमार्त्थं सुरुक्षितम् ।  
 पमेन्मंडरसादीनां गृहीतो जिघ्रन् सुखं सुखी ॥ १८ ॥  
 एवमेव फलाभाये कल्प्य पुष्पं शलाटु वा ।  
 जीमूताद्याश्च फलवत्,  
 २ जीमूतं तु विरोपनं ॥ १९ ॥  
 प्रयोक्तव्यं ज्वरश्वामकामहिष्मादिरोगिणाम् ।  
 पयः पुष्पेऽस्य निर्वृत्ते फले पेया पयस्वृता ॥ २० ॥  
 १ लोमशो क्षीरमन्तान्, दध्युत्तरमलोमशे ।  
 शृतं पयसि दध्यम्ले जाते हरितपाण्डुके ॥ २१ ॥

१ राठो मदनफलम् । शलाटु अपक्वंफलम् । २ जीमूतो देवदाली “बग्नाल” इति लोके, निर्वृत्ते पक्वे । लोमशोलोमयुक्तः । क्षीरसन्तानः “मलाई माढी” इति हिन्दी । दध्युत्तरं दधिमन्तानः । तुम्बी वटुतुम्बी । कोशातकी “तरोई” इति लोके मापितिक्तव । पर्यागताः मम्यक् परिपक्वाः । वेणिजन्मना देवदाल्युत्त-  
 भाना फलानाम्, वेणीदेवदाली । तित्तो तमस्य निम्बस्य । आरग्वधादिनवकात्  
 आरग्वधादिवर्गाद्यौपवनवकादन्यतमस्य ।

आगुस्य चारुक्षीमंढं पिबेन्मृदितपातितम् ।

कफादरोचके कासे पाण्डुत्वे राजयक्ष्मणि ॥ २२ ॥

• तुम्बा कोशातकीप्वपियोजना :—

इयं च कल्पना कार्या तुंबीकोशातकीप्वपि ।

पित्तश्लेष्मज्वरिणश्चूर्णपानम्—

पर्यागतानां शुष्काणां फलानां वेणिजम्भनाम् ॥ २३ ॥

चूर्णस्य पयसा शक्तिं वातपित्तातिदः पिबेत् ।

द्वै वा प्रीण्यपि वाऽऽपोष्य क्वाथे तिक्तोत्तमस्य वा ॥ २४ ॥

आरम्भधादिनयकादामुत्थान्यतमस्य वा ।

विमूढं पूतं तं क्वाथं पित्तश्लेष्मज्वरो पिबेत् ॥ २५ ॥

जीमूतचूर्णं कल्कं वा पिबेच्छीनेन शरिणा ।

ज्वरे वैक्ले क्वाथेन कफवातान्कफादपि ॥ २६ ॥

कामश्वामविषच्छादिज्वरातं कफकृशिते ।

इक्ष्वाकुकल्पः—

१ इक्ष्वाकुर्वमने दास्त, प्रताप्यति च मानवे ॥ २७ ॥

फलपुष्पविहीनतम प्रबालैस्तस्य नापितम् ।

पित्तश्लेष्मज्वरे क्षीरं पित्तोदिकं प्रयोजयेत् ॥ २८ ॥

हृतमध्ये फले जीर्णे स्थितं क्षीरं मदा दधि ।

स्मात्तदा कफजं कानशरासे वम्यं च पामयेत् ॥ २९ ॥

मस्तुना वा फलान्मर्ध्य पाण्डुपट्टविपादितः ।

२ तेन तर्कं विषक्व वा पिबेत्समधुनैधवम् ॥ ३० ॥

भावयित्वाऽज्जहुयेन बीजं ३ तेनैव वा पिबेत् ।

विषमुल्मोदरघृणिगंडेषु श्लोपदेषु च ॥ ३१ ॥

सत्तन्निर्वा पिबेन्मयं तुंबीस्वरसभावितैः ।

कफोदभवे ज्वरे कासे गलरोगेष्वरोचके ॥ ३२ ॥

१ इक्ष्वाकुः कटुतुम्बी । २ तेन इक्ष्वाकुफलमध्येन । ३ बीजमिक्ष्वाकुबीजनं ।

तेनैव-अज्जहुयेनैव ।

तुल्ये ज्वरे प्रमत्ते च क्लृप्तं मांसरसः पिबेत् ।  
 नरः माधु वमत्येवं न च दीर्घत्वमश्नुते ॥ ३३ ॥  
 तुम्बाः फलरसैः शुष्कैः मधुर्धरवर्णितम् ।  
 उर्ध्वेऽप्येवमाद्यमाश्राय गंधनंपत्मुखाचितः ॥ ३४ ॥

### धामार्गव-प्रयोगः—

कान्तुल्मोदरगरे वाते ज्ञेयमाद्यस्थिते ।  
 कफे च कंठवक्त्रस्थे कफमंचयजेषु च ॥ ३५ ॥  
 धामार्गवो गदेष्विष्टः स्थिरेषु च महत्सु च ।  
 जीववर्षभकी धीरा कपिकण्डूः दातावरी ॥ ३६ ॥  
 बाकोली धावणी मेढा महामेढा मधूलिका ।  
 तद्रजोभिः पृथग्नेहा धामार्गवरजोऽन्विताः ॥ ३७ ॥  
 कासे हृदयदाहे च दास्ता मधुमिताद्रताः ।  
 ते मुखोभोनुपानाः स्युः पित्तोष्मसहिते कफे ॥ ३८ ॥  
 धान्यतुंबुरुपेण क्लृप्तस्तस्य विषापहः ।  
 त्रिज्वाः पुनर्नवाया वा काममर्दस्य वा रमे ॥ ३९ ॥  
 एकं धामार्गवं द्वे वा मानसे मृदेतं पिबेत् ।  
 तच्छृतक्षीरजं सर्पिः साधितं वा फलादिभिः ॥ ४० ॥

### तिक्तकोशातकी-प्रयोगः—

क्ष्वेदोऽतिक्षुतीक्ष्णोष्णः प्रगाढेषु प्रशस्यते ।  
 मृष्टपांड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु ॥ ४१ ॥  
 पृथक्फलादिषट्कस्य क्वाथे मांसमनूपजम् ।  
 कोशातकया समं मिद्व तद्रसं लवणं पिबेत् ॥ ४२ ॥

१ धामार्गवो राजकोशातकी । २ क्ष्वेदोऽतिक्षुतीक्ष्णोष्णः यातिव्यक्तरेखा-  
 न्विवा "तरोई" इतिलोके । ३ फलादिषट्कस्य-मदनफलेडवाकादिवस्य ।



फलादिपिप्पलीतुल्यं सिद्धं श्वेदरसेऽथवा ।  
श्वेदकाथे पिवेत्सिद्धं मिश्रमिधुरसेन वा ॥ ४३ ॥

### कुटजप्रयोगः—

कुटजं सुकुमारेषु पित्तरक्तरूपोदये ।  
ज्वरे विसर्पे हृद्रोगे बुधे कृष्टे च पूजितम् ॥ ४४ ॥  
सर्पपाणां मधूकानां तोयेन लवणस्य वा ।  
पाययेत्कीटजं बीजं युक्तं कृशरयाऽथवा ॥ ४५ ॥  
नसाहं वाकंदुग्धाक्तं तच्चूर्णं पाययेत्पृथक् ।  
फलजीमूतकेहवाकुजीर्षंतीजीवकोदकैः ॥ ४६ ॥

### वमनोपघकल्पना —

वमनोपघमुत्थानामिति कल्पदिगोरिता ।  
बीजनानेन मतिमानन्यान्वपि च कल्पयेत् ॥ ४७ ॥

## द्वितीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो विरेचनकल्पं व्याख्यास्यामः ।

### त्रिवृद्गुणाः—

“कषामा मधुरा रूक्षा विपाके कटुका त्रिवृत् ।  
कफपित्तप्रशमनी रोक्याच्चानिलकोरनी ॥ १ ॥  
सेदानीमीषर्षयुक्ता वातपित्तकफापहैः ।  
‘कल्पवंदोध्यमामाद्य जायते सर्वरोगजित् ॥ २ ॥  
द्विधा रूपातं च तन्मूलं श्यामं श्यामारुणं त्रिवृत् ।

त्रिवृदाख्यं वरतरं निरपायं गुणं तयोः ॥ ३ ॥  
गुफुमारे शिखी वृद्धे मृदुकोष्ठे च तद्वितम् ।

सापायत्वेहेतुः—

मूर्छाग्निमोहहृन्कंठरुपणक्षयप्रदम् ॥ ४ ॥  
श्यामं सौष्टवाधुकारित्वादतस्तदपि शस्यते ।  
क्रूरे कोष्ठे ब्रह्मो द्रोणे श्वेदशमिणि चानुरे ॥ ५ ॥

तस्यामूलप्रहणउपायः—

गंभीरानुगतं श्लक्ष्णमतिर्यग्विसृतं च यत् ।  
गृहीत्वाविसृजेत्काष्ठं त्वचं क्षुप्ता निघापयेत् ॥ ६ ॥

धातादौ तत्प्रयोगविशेषः—

अथ काले तु तच्चूर्णं किञ्चिन्नामरसैधवम् ।  
धातामये पित्तेदम्लैः, पित्ते साज्यमितामघु ॥ ७ ॥  
क्षीरद्राक्षेभुकाशमर्यस्वादुस्फंघवरारमैः ॥  
कफामये पीलुरममूत्रमधाम्लकाजिकं ॥ ८ ॥  
पंचकोलादिचूर्णैश्च युक्त्या युक्तं कफापहैः ।

हृद्यं विरेचनम्—

त्रिवृत्कल्पायेण साधितः मसितो हिमः ॥ ९ ॥  
मधुत्रिजातसंयुक्तो लेहो हृद्यं विरेचनम् ।  
अजगंधा तवशीरी विदारो शर्करा त्रिवृत् ॥ १० ॥  
भूजिनं मधुर्गन्धिभ्यां लीढ्वा साधु विरिच्यते ।  
संनिपातज्वरस्तंभपिपासादाहपीडितः ॥ ११ ॥

इक्षुगंडिका भक्षयम्—

लिपेद्वत्स्त्रिवृत्या द्विधा कृत्वेशुगडिनाः ।  
एकीकृत्य दधेत्स्विन्नं गुटपानेन भक्षयेत् ॥ १२ ॥

## तर्पणम्—

त्वगेलाभ्यां समा नीली तैस्त्रिवृत्तैश्च शर्करा ।  
 चूर्णं फल्गरसदौद्रसक्तुभिस्तर्पणं विवेत् ॥ १३ ॥  
 वातपित्तकफोत्थेषु रोगेष्वल्पान्तेषु च ।  
 नरेषु मुकुमारेषु निरुपार्य विरेचनम् ॥ १४ ॥

## लोहः—

विडंगतंडुलधरायावसककणास्त्रिवृत् ।  
 सर्वेभ्योऽर्धेन तल्लीडं मध्वाज्येन गुडेन वा ।  
 गुल्मं प्लीहोदरं कासं हलीमकमरोषकम् ।  
 कफवातवृत्ताश्चान्यान्यपरिमाष्टि यदान्बहुन् ॥ १५ ॥

## कल्याणको गुडः

विडंगपिप्पलीमूलत्रिफलापान्यचित्रकम् ।  
 मरिचैर्द्रवयाज्जोपिप्पलीहस्तिपिप्पली ॥ १७ ॥  
 दीप्यकं पंचलवणं चूर्णितं कापिकं पृथक् ।  
 तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौ चाष्टपलोन्मितौ ॥ १८ ॥  
 घात्रीफलरसप्रस्थास्त्रीन् गुडार्धतुलान्वितान् ।  
 पक्त्वा मृदग्निना सादेततो मात्रामयंत्रण ॥ १९ ॥  
 कृप्यार्शः कामलगुल्ममेहोदरभगंदरान् ।  
 ग्रहणीपोट्टुरोगांश्च हंसि पुंसवनश्च सः ॥ २० ॥  
 गुटः कल्याणको नाम सर्वेष्वृत्तुषु यौगिकः ।

## गुटिकाः—

\*व्योपत्रिजातकोमोदकृमिन्नामलकंस्त्रिवृत् ॥ २१ ॥  
 सर्वैः समा समसिता क्षौद्रेण गुटिकाः कृताः ।  
 मूत्रशूलज्वरजठदिकासोपघ्नमक्षये ॥ २२ ॥

ग्रावे पाद्वामपेलोऽग्नौ दत्ताः गर्वक्षिपेत् ॥ २३ ॥

### त्रासुविरेचनानि—

त्रिबुजा बोटर्ष बीत्रं त्रिपली विरचनेरहम् ॥ २३ ॥

शोऽशधारगोपेर्षं चर्षकात्रे विरेचनम् ।

त्रिबुजुरालभासुत्तागर्षरोरीष्यर्षदनम् ॥ २४ ॥

द्रागाम्बुना गयष्टपाहं गायतं ज्ञष्टपायम् ।

त्रिबुजा वित्रये पाठामत्रात्रौ सरत्नं चषाम् ॥ २५ ॥

स्वर्णक्षीरी च द्वेभते चूर्णमुष्णांशुना विरेत् ।

त्रिबुजा चर्षरातुस्या द्रोष्मकाले विरेचनम् ॥ २६ ॥

त्रिबुजायं त्रिहपुषागातलावदुरोहिणीः ।

स्वर्णक्षीरी च मंगूर्णं गाम्बुने भावयेत् ॥ २७ ॥

एष सर्वतुर्की योगः त्रिप्यानां मलशोषहृत् ।

### रुक्षाणां विरेचनम्—

व्यामानिबुदुरालभाहस्वित्रिपलिवरणम् ॥ २८ ॥

शीलिनीवदुषामुस्ताश्रेष्टामुक्तं सुपूणितम् ।

रगागमोष्णाम्बुभिः दस्तं रुक्षाणामपि सर्वदा ॥ २९ ॥

### राजवृक्षप्रयोगः—

अरहूद्रोगवातासुगुदावर्तद्विरोगिषु ।

राजवृक्षोऽधिकं पथ्यो मृदुर्मधुरदीपलः ॥ ३० ॥

पाले वृक्षे दाते क्षीणे मुकुमारे च मानवे ।

योग्यो मृदुनपायित्वाद्रिरोषाच्चतुरंगुलः ॥ ३१ ॥

### फलप्रदणादि—

फलकाले परिणतं फल तस्य समाहरेत् ।

तेषां गुणवती भारं सिक्तासु विनिक्षिपेत् ॥ ३२ ॥

ममरात्रात्ममुद्धृत्य शोषयेच्चातपे ततः ।  
ततो मग्जानमुद्धृत्य चुची पात्रे निपापयेत् ॥ ३३ ॥  
द्राक्षारसेन तं दद्याद्वाहोदाधर्तपीडिते ।  
चतुर्वेपै मुखं वाते यावद्दादशवापिके ॥ ३४ ॥

कपायः—

चतुरगुलमज्जो वा कपायं पापयेद्धिमम् ।  
द्विमंढसुरामंढपात्रीफलरसं पृषक् ॥ ३५ ॥  
मीथीरकेण वा युक्तं कल्केन प्रबृतेन वा ।

अरिष्टः—

दन्तीकपाये तम्भजो गुटं जीर्णं च निशिपेत् ॥ ३६ ॥  
तमरिष्टं स्थितं मासं पापयेत् पशमेव वा वा ।

तिल्वक प्रयोगः—

एष च <sup>१</sup>तिल्वकमूलस्य त्वयत्वाभ्यन्तरबल्कलम् ॥ ३७ ॥  
विशोष्य चूर्णयित्वा च द्वौ भागौ बालयेत्ततः ।  
रोध्रस्मैव कपायेण तृतीयं तेन भावयेत् ॥ ३८ ॥  
कपाये दशमूलस्य तं भागं भावितं पुनः ।  
सृज्जं चूर्णं पुनः कृत्वा ततः पाणितले पियेत् ॥ ३९ ॥  
मस्तुमूत्रमुरामंढकोलपात्रीकलाबुभिः ।

लेहः—

तिल्वकस्य कपायेण कल्केन च मशर्करः ॥ ४० ॥  
सघृतः साधितो लेहः स च श्रेष्ठं विरेचनम् ।

१ तिल्वको लोध्रः । अभ्यन्तरबल्कलं कठित्वात्यक्त्वा विशोष्य चूर्णयित्वा  
तच्चूर्णस्य त्रिभागकृत्वा भागद्वयकषाययित्वा तेन कपायेण तृतीयभागं भावयेत् ।  
ततोदशमूलकपायेण भावयेत् भावनात्वेकविंशतिशराक्ष्मदनपत्रावदिति ज्ञेयम् ।

## सुधा प्रयोगः—

मुधा भिनत्ति दोषाणां महांतमपि संचयम् ॥ ४१ ॥  
 आश्वेव कोष्ठविभ्रंशान्नैव तां कल्पयेदतः ।  
 मृदो कोष्ठेऽवले बाले स्वविरे दीर्घरोणिणि ॥ ४२ ॥  
 कक्षप्या गुल्मोदरगरस्वग्रोगमधुमेहिषु ।  
 पांडो दूषोऽपि शेफे दोषविभ्रांतचेतसि ॥ ४३ ॥  
 मा श्रेष्ठा कंटकंस्तीक्ष्णैर्बहुभिरश्व समाचिता ।

## सुधागुटिका—

द्विक्वपां वा त्रिक्वपां वा शिशिराजे विशेषतः ॥ ४४ ॥  
 ता पाटयित्वा शस्त्रेण क्षीरमुद्धारयेत्ततः ।  
 चित्वादीनां बृहत्सोर्वा ववायेन सप्तपेकस्तः ॥ ४५ ॥  
 मिश्रयित्वा सुधाक्षीरं ततोऽगारेषु शोषयेत् ।  
 पिबेत्तृत्वा तु गुटिका मस्तुमूत्रमुरादिभिः ॥ ४६ ॥

## घृतेन त्रिवृतादिपानम्—

त्रिवृतादीन्नव<sup>१</sup> वरान् स्वर्णक्षीरी सप्तातलाप ।  
 सप्ताहं स्नुष्यमःपीतान् रसेनाज्येन वा पिबेत् ॥ ४७ ॥  
 सद्बन्धोपोत्तमाकुंभनिकुंभादीन् गुडाबुना ।

## शङ्खिनी सप्तला प्रयोगः—

नातिशुष्कं फलं ग्राह्यं शस्त्रिण्या निस्तुषीकृतम् ॥ ४८ ॥  
 सप्तलायास्तथा मूलं ते<sup>२</sup> तु तीक्ष्णविकापिणी ।  
 श्लेष्मामयोदरगरस्वग्रव्यादिषु कल्पयेत् ॥ ४९ ॥

१ मुधा मेदुण्डः, सासुधा । २ त्रिवृतादीन्नव-त्रिवृत-कृष्णत्रिवृत, राजवृत्तः,  
 तित्वकः, गुया, शस्त्रिणी, सप्तला, दन्ती द्रवन्ती चेति नव । वरा त्रिफला । शंतिनी  
 यवतिक्ता । ३ ते शंखिनीसप्तलामूले ।

**तयोः पिण्ड प्रयोगः—**

अक्षमात्रं तयोः पिण्डं मदिरालवणान्वितम् ।

हृद्रोगे वातकफजे तद्वदगुन्मे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

**दन्ती द्रवन्ती प्रयोगः—**

दन्तिदन्तस्थिरं स्थूलं मूलं दन्तीद्रवन्तिजम् ।

आताप्रश्यान्तोष्णोष्णमाद्युकारि त्रिकाशि च ॥ ११ ॥

गुह प्रकोपि वातस्य पित्तश्लेष्मविलायनम् ।

**तन्मूलपानम्—**

तत्क्षीप्रपिप्पलीलितं स्वेद्यं मृद्भवेष्टितम् ॥ १२ ॥

शोथ्यं मन्दातपेऽग्न्यर्को हृतो ह्यस्य त्रिकाशिताम् ।

तत्पिबेन्मस्तुमदिरातक्रूरीक्षुरमासवैः ॥ १३ ॥

अभिष्यन्तनुर्गुल्मी प्रमेही जठरी गरी ।

गोमृगाजरमै पादुः कुम्भिकोष्ठी भगदरी ॥ १४ ॥

**दन्ती द्रवन्तीसिद्धं घृतादि—**

मिद्धं तत्तत्राथरुत्काम्या दधमूलरसेन च ।

वितर्पविद्वध्यण्जीकक्षादाहान् जमेद्वृत्तम् ॥ १५ ॥

सैले तु गुल्ममेहाशोविबधकफमाश्रितान् ।

महास्नेहः शक्नुयुः क्वातमंघानिलव्यथाः ॥ १६ ॥

**विरेचने मुख्यता—**

विरेचने मुख्यतमा नर्वते त्रिवृदादयः ।

**हरीतकी प्रयोगो भोदकाश्च—**

हरीतकीमपि त्रिवृद्विधानेनोपकल्पयेत् ॥ १७ ॥

गुडस्याष्टपले पथ्या विंशतिः स्यात्पलं पलम् ।

दन्तीचित्रकयोः कर्षा पिप्पलीत्रिवृतोर्दश ॥ १८ ॥

प्रकल्प्य मोदकानेवं दशमे दशमेऽहनि ।

उष्णाम्मोऽपि पिवेत्सादेतान्सर्वान्विधिनाऽमुना ॥ ५६ ॥

एते निःपरिहाराः स्युः सर्वव्याधिनिवर्हणाः ।

विशेषाद्बह्विणीपाण्डुकङ्ककोष्ठार्थसा हिताः ॥ ६० ॥

कारणविशेषैर्महाल्पकर्मत्वम्—

‘अल्पस्याऽपि महार्थत्वं प्रभूतस्याऽल्पकर्मताम् ।

कुर्यात्संश्लेषश्चेत्पक्षालसंस्कारयुक्तिभिः ॥ ६१ ॥

मनोऽनुकूलैः सह विरेचनप्रयोगः—

त्वक्केसराभ्रातकदाडिमैला-

सितोपलामासिकमातुर्गुर्गः ।

मर्चश्च संस्तश्च मनोनुकूलै-

युक्तानि देयानि विरेचनानि” ॥ ६२ ॥



१ वीर्येण मानया वा अल्पस्याल्पोपवप्रयोगस्य संश्लेषादिना महार्थत्वमतिकार्यकारित्वं, तथा वीर्येण मानया वा प्रभूतस्य बहुकार्यकारिण औपधयोगस्य संश्लेषादिनाऽल्पकर्मतामल्पकार्यकारित्वं कुर्यात् । संश्लेषोमेलनम् । विश्लेषोऽमेलनम् । बालो मध्याह्नं प्रत्युपादिः । संस्कारोऽप्यगुणोत्पादनम् । युक्तियोजना प्रकारविशेषः ।



## तृतीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो वमनविरेचनव्यापत्तिद्वि व्याख्यास्यामः ॥

वमनेऽधोगतेपुनर्वमनम्—

“वमनं मृदुकोष्ठेन क्षुद्रताञ्जलकफेन वा ।  
अतिलीक्ष्णहिमस्तोकमजीर्णं दुर्बलेन वा ॥ १ ॥  
पीतं प्रयास्यधस्तरिमन्निष्टहानिर्मलौदयः ।  
वामयेत्तं पुनः क्षिप्य स्मरन् पूर्वमतिक्रमम् ॥ २ ॥

विरेचनेऽधोर्ध्वगते पुनर्विरेचनम्

अजीर्णिनः श्लेष्मवतो मज्जत्यूर्ध्वं विरेचनम् ।  
अतिलीक्ष्णोष्णलवणमहृद्यमतिभूरि वा ॥  
तत्र पूर्वोदिता व्यापत्तिद्विश्च न तथापि चेत् ॥ ३ ॥  
आपयेत्तिष्ठति ततस्तृतीयं नावचारयेत् ।  
अन्यत्र सात्त्व्याद्वादा भेषजाग्निरपायतः ॥ ४ ॥

विरेचनस्यायोगाः—

अक्षिप्यास्त्रिप्रदेहस्य पुराणं हृत्तमोषणम् ।  
दीपानुत्तलेश्य निर्हर्तुं भरात् जनयेद्गदान् ॥ ५ ॥  
विभ्रंशं शययुं हिघ्नं तमसो दर्शनं तृणम् ।  
पिष्टिकोद्वेष्टनं कंठमूर्धोः सादं विवर्णताम् ॥ ६ ॥  
क्षिप्यस्त्रिप्रदेहस्य वाऽत्यल्पं दीप्ताग्नेर्जोर्णमोषणम् ।  
शोनिर्वांस्तब्धमाभे वा तपुत्तलेश्य हरेन्मलान् ॥ ७ ॥

तानेव जनयेद्रोगानयोगः सर्व एव सः ।

**तत्रकर्तव्यम्—**

तं तैललवणाम्यक्तं त्विन्नं प्रस्तरश्चंकरैः ॥ ८ ॥

-निरुद्धं जांमलरसैर्मोजयिरवाऽनुवासयेत् ।

फलमागधिकादारुसिद्धतैलेन मात्रया ॥ ९ ॥

स्निग्धं घातहरैः स्नेहैः पुनस्तोदणेन घोषयेत् ।

**अल्पौषधप्रयोगेन्यापत्तिश्च—**

बहुदोषस्य ह्यस्य मदाग्नेरल्पमीषधम् ॥ १० ॥

मोदावर्तस्य चोत्प्लेश्य दोषान्मार्गं निरुध्य तैः<sup>१</sup> ।

भृशमाग्मापयेन्नाग्निं पृष्ठपार्श्वशिरोरुजम् ॥ ११ ॥

श्वासं विष्मूत्रवातानां सङ्गं कुर्याच्च दारुणम् ।

अभ्यंगस्वेदवर्ष्यादिसनिरूहानुवासनम् ॥ १२ ॥

उदावर्तहरं सर्वं कर्माऽऽग्मातस्य दास्यते ।

**यथागूः—**

पंचमूलयवक्षारवधाम्रुतिकसैधवैः ॥ १३ ॥

यथागूः सुवृत्ता धूलत्रिवंधानाहनाशनी ।

**पिप्पल्यादिपानम्—**

पिप्पलीदादिमक्षारहिमृशुष्ट्यम्लवेजसान् ॥ १४ ॥

ससैधवान्पिप्पल्यादीन् सपिप्पलीदकेन वा ।

प्रवाहिकापरिक्षावे वेदनापरिकर्तने ॥ १५ ॥

**पीतौषधेवेगरोघाद्रोगाः—**

पीतौषधस्य वेगानां निग्रहान्मास्तादयः ।

कुपिता हृदयं गत्वा घोरं कुर्वति हृदग्रहम् ॥ १६ ॥

१ तैदीपैः ।

हिष्मापार्थरुजाकासदैन्यलालाक्षिविभ्रमैः ।

जिह्वां खादति निःसंजो दन्तान्कटकटाययन् ॥ १७ ॥

### तत्रवमनादि—

न गच्छेद्विभ्रमं तत्र वामयेदाशु त भिषक् ।

मधुरैः पित्तमृच्छार्तं, कटुभिः कफमृच्छितम् ॥ १८ ॥

पाचनीयैस्ततश्चास्यं दोषशेषं विपाचयेत् ॥

कायाऽग्निं च बलं चास्य क्रमेणाऽभिप्रवर्धयेत् ॥ १९ ॥

### अतिवमने भैषज्यम्—

पवनेनाऽतिवमतो हृदयं यस्य पीड्यते ।

तस्मै त्रिगुणाम्ललवणं दद्यात्पित्तकफेऽभ्यधा ॥ २० ॥

### पीतौषधस्यवेगानिग्रहादौषातहृत्स्वेदादि—

पीतौषधस्य वेगानां निग्रहेण कफेन वा ।

रुद्धोऽति वा विशुद्धस्य शृङ्गात्यंगानि मास्त ॥ २१ ॥

स्तंभवेश्मिनिस्तोदसादोष्ठेऽतिभेदनैः ।

तत्र घातहरं सर्वं स्नेहस्वेदादि क्षम्यते ॥ २२ ॥

### विरेचनातियोगे विरेचनद्रव्योद्धरणम्—

बहुतीक्ष्णं क्षुधार्तस्य मृदुकोष्ठस्य भेषजम् ।

हृत्वाऽऽशुं विट्पित्तकफान्घातूनांसावयेद्द्रवाम् ॥ २३ ॥

तत्रातियोगे मधुरैः शोषमीषममुल्लिखेत् ।

### अतिवमनादौ विरेकादि—

योग्योऽतिवमने रेको विरेके वमनं मृदु ॥ २४ ॥

परिपेकावगाहाद्यैः सुशीतैः स्तंभयेज्य तम् ।

### अतियोगहरं पानम्—

जंजनं चंदनोत्तीरमञ्जासूक्ष्मकर्करोदवम् ॥ २५ ॥

लाजचूर्णैः पिबेन्मंथमतियोगहरं परम् ।

यमनस्याऽतियोगे तु पीतानुपरिपेचितः ॥ २६ ॥

पिवेत्फलरसमयं मधुतशोदशर्करम् ।

सोदगारायां भृशं छर्त्ता मूर्वाया घान्यमुस्तयोः ॥ २७ ॥

समधूकांजनं चूर्णं लेहयेन्मधुसंयुतम् ।

वमतोऽन्तःप्रविष्टार्या जिह्वायां कवलग्रहाः ॥ २८ ॥

स्निग्धाम्ललवणा हृद्या ग्रूपमासरमा हिताः ।

फलान्यम्लानि खादेषुस्तस्य चान्येऽग्रतो नराः ॥ २९ ॥

निःसृता तु तिलद्राक्षाकल्कलिप्तां प्रवेदायेत् ।

घाग्नग्रहानिखरोगेषु घृतमामोपसाधिताम् ॥ ३० ॥

यवागू सनुका दद्यात्स्नेहस्वेदी च कालवित् ।

### जीवादानम्—

अतियोगान्ध भैषज्यं जीवं हरति घोणितम् ॥ ३१ ॥

तजीवादानमिरयुक्तमादत्ते जीवितं यतः ।

धुने काकाम वा दद्यात्तेनासमसृजा सह ॥ ३२ ॥

भुक्ते तस्मिन् वदेजीवमभुक्ते पित्तमादितेत् ।

धुक्लं वा भ्रावितं बल्लमावान् कोष्णवारिणा ॥ ३३ ॥

प्रक्षालितं विवर्णं स्मात्पित्ते धुद्धं तु घोणिते ।

### जीवादाने चिकित्सा—

तृष्णामूर्छामिदार्तस्य कुर्यादामरणं क्रियाम् ॥ ३४ ॥

रक्तपित्तातिसारध्वी तस्याश्च प्राणरक्षणीम् ।

मृगभोमहिषाजानां मद्यस्कं जीवतामसृक् ॥ ३५ ॥

पिवेज्जीवाभिसंधानं जीवं तद्वधाश्च यच्छति ।

तदेव दर्भमृदितं रक्तं वस्ती निषेवयेत् ॥ ३६ ॥

श्यामाकाशमयमधुरदूर्वाक्षीरैः शृतं पयः ।

घृतमण्डाजनयुतं वस्ति वा योजयेद्धिमम् ॥ ३७ ॥

पिच्छावस्ति मुद्योतं वा धृतमंडानुवासनम् ।  
 गुदं अष्टं कपायैश्च स्तंभयित्वा प्रवेशयेत् ॥  
 विसंज्ञं श्रावयेत्साम<sup>१</sup> वैशुगोतादिनिस्वनम् ॥ ३८ ॥

## चतुर्थोऽध्यायः ।

अथाऽतो दोषहरणसाकल्यं वस्तिकल्पं व्याख्यास्यामः ।

सर्वगदप्रमायी वस्तिः—

“बला गुह्यचो त्रिकलां मरास्त्रा  
 द्विपंचमूलं च पलोन्मितानि ।  
 अष्टौ फलान्यर्धतुला च मासा-  
 च्छामासवेदेषु चतुर्थशेषम् ॥ १ ॥  
 पूतो यवानोफलवित्स्वकुष्ठ-  
 वधाशताङ्गुलीपिण्डलीनाम् ।  
 कल्कं गुह्यद्विघृतैः मत्तैर्ल-  
 युक्तः सुखोष्णो लवणान्वितश्च ॥ २ ॥  
 वस्तिः परं सर्वगदप्रमायी  
 स्वस्थे हितो जीवनवृंहणश्च ।  
 वस्त्वौ च यस्मिन्पठितो न कल्कः  
 मर्वत्र दद्यादमुमेव तत्र ॥ ३ ॥

सर्धानिलन्याधिहरोनिरुहः—

निर्धुपचमूलस्य रमोऽम्लयुक्तः  
मच्छागमांसस्य सपूर्वकल्कः ।  
त्रिस्नेहयुक्तः प्रवरो निरुहः  
सर्वानिलन्याधिहरः प्रदिष्टः ॥ ४ ॥

क्षीपनोपस्तिः—

बलापटोलीलघुपुंघमूल-  
प्रायग्निकैरंशुयथात्सुमिद्धात् ।  
प्रस्थो रमाच्छागरमाधुयुक्तः  
साध्यः पुनः प्रस्थसमः स यावत् ॥ ५ ॥  
प्रियंगुवृक्षापनरुत्फयुक्तः  
सतैलसोपमघुसंयवश्च ।  
स्याक्षीपनोमासयलप्रदश्च  
चक्षुर्वलं क्षोपदधाति सद्यः ॥ ६ ॥

वातकफजिद्वस्तिः—

एरंडमूलातिवपलं पलाशा-  
क्षया पलाशं लघुपुंघमूलम् ।  
रास्नावलाछिन्नहृद्वाश्वगंधा-  
पुनर्नक्षारखवदेवदारु ॥ ७ ॥  
फलानि चाऽष्टौ सलिलादकाम्यां  
विपाचयेदष्टमशेषितेऽस्मिन्  
यथाशताह्वाहपुपाप्रियंगु-  
यष्टीकणावत्सकबीजमुस्तम् ॥ ८ ॥  
दद्यात्सुपिष्टं महतादर्यशैल-  
मक्षप्रमाणं लघुपांशुयुक्तम् ।

१ तथा त्रीणिपलानि पलाशात् ।

समाश्लिष्टस्तैलयुतः ममूत्रो  
 वस्तिर्जयेह्लेवनदीपनोऽग्नौ ॥ ९ ॥  
 जंघोस्पादित्रिकपृष्ठकोष्ठ-  
 हृद्गुह्यशूलं मुक्तां विवर्धय ।  
 गुल्माश्मवर्ध्मघ्नोऽग्नौदोषां-  
 स्तांस्तांश्च रोगान्कफघातजातान् ॥ १० ॥

पित्तामये यष्ट्यादिवस्ति :—

यष्ट्याह्वरोघ्राभयचन्दनैश्च  
 शृतं पयोष्यं कमलोत्पलैश्च ।  
 सशर्कराक्षौद्रघृतं सुशीतं  
 पित्ताभयान्हीति मजीवनायम् ॥ ११ ॥

दाहादिनाशको निरुहः—

रास्ना वृष १लोहितिकामनता  
 बरुण कनोपस्तृणपञ्चमून्मयी ।  
 २गोपीगनाचन्दनपद्मकर्द्वी-  
 यष्ट्याह्वरोघ्राणि पलार्धकानि ॥ १२ ॥  
 नि.ववाय्य तोयेन रसेन तेन  
 शृतं पयोषडिकर्मबुहीनम् ।  
 जीवन्तिमेदादिवरीयदारी ।  
 कीराद्विभक्तिकोलिकेतुल्यगिः ॥ १३ ॥  
 सितोपलाजीवकपद्मरेणु-  
 षपीडरीकोत्पलपुंडरीकैः ।  
 तोहात्मगुप्तामधुमष्टिकाभि-  
 र्नागाह्ममुजातकचन्दनैश्च ॥ १४ ॥

पिष्टैर्धृतक्षोद्रयुतेनहृद्  
 मसैष्वं शीतलमेव दद्यात् ।  
 प्रत्यागते घन्वरसेन द्यामीन्  
 क्षीरेण वाऽद्यात्परिपिकमात्रः ॥ १५ ॥  
 दाहातिमारुप्रदरास्रपित्त-  
 हृत्पाण्डुरोगान्विषमज्वरं च ।  
 सर्वाभयान् पित्तवृत्ताग्निहृति ॥ १६ ॥

**कफरोगितादेर्निरुहः—**

कोशातकारम्बधदेवदारु-  
 मूर्वाश्वदण्डावुटार्कपाठाः ।  
 पक्त्वा कुलत्याग्वृहती च तोये  
 रत्नस्य तस्य प्रसूना दद्यात् स्युः ॥ १७ ॥  
 तान् सर्पपंलामदनैः मकुटै-  
 रस्रप्रमाणैः प्रसृष्टैश्च युक्तान् ।  
 क्षीद्रस्य तैलस्य फलाह्वयस्य  
 दारस्य तैलस्य मसर्पिपश्च ॥ १८ ॥  
 दद्याग्निहृद् कफरोगिताय  
 मंदाग्रये चाशनविद्विषे च ।

**सुकुमाराणां निरुहाः—**

षण्ये मृदूस्नेहवृत्तो निरुहान्  
 सुखोचितानां प्रसूतैः पृषक् स्युः ॥ १९ ॥  
 अयेमान्गुकुमाराणां निरुहान् स्नेहान्मृदून् ।  
 कर्मणा विष्णुतानां तु वक्ष्यामि प्रसूतैः पृषक् ॥ २० ॥

**घातघ्नोवस्तिः—**

क्षीराद् द्रवी प्रसूतो कार्यो मधुवैतघृतास्त्रयः ।  
 सजेन मधितो वस्तिघातघ्नो बलवर्षवृत् ॥ २१ ॥

१ कर्मणा यमनादिशर्मणा, विष्णुतानां अप्यानाम् ।



### वातजिह्वस्ति :—

एकैकः प्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिणाम् ।  
वित्वादिमूलकवायाद् द्वौ कोलत्वाद् द्वौ स  
वातजिह्व ॥ २२ ॥

### असिष्यन्दादौवस्ति :—

पटोलनिबभूतीकरास्त्रासतच्छदांभमः ।  
प्रसृतः पृथगाज्याञ्च वस्तिः सर्पपकलकवान् ॥ २३ ॥  
सर्पचतितोभिष्यदङ्गुलिमुष्ठप्रमेहहा ।

### विट्संगादिनाशकोवस्ति :—

चत्वारस्तैलयोमूत्रदधिभ्रंशाम्नाकांजिकात् ॥ २४ ॥  
प्रसृताः सर्पपैः पिष्टैर्विट्संगावाहभेदनः ।

### शुक्रकरो वस्ति :—

पयस्येषुस्थिरारास्त्राविदारीक्षौद्रसर्पिणाम् ॥ २५ ॥  
एकैकप्रसृतो वस्तिः कृष्णाकल्को वृषत्वक्कृत् ।

### सिद्धवस्तिकथनम्—

सिद्धवस्तीगती पक्ष्ये सर्वदा याम्प्रयोगयेत् ॥ २६ ॥  
निष्पपिषे बहुकलान्वलपुष्टिकरान् मुखान् ।

### माधुतैलिको निरुहः—

मधुतैले समे कर्पः सैधवाद द्विपिच्छमिमिः ॥ २७ ॥  
एरंडमूलकायेन निरुहो माधुतैलिकः ।  
रसायनं प्रमेहार्शःकुमिगुल्मानवृद्धिभुत् ॥ २८ ॥  
रसपटिमधुनञ्चैव चक्षुष्यो रक्तपित्तजिह्व ।

१ बलोपचमवर्णनां व्याविशतस्य च मिदिकारकत्वात् मिद्धवस्तिः ।

२ मधुतैलयोः प्राधान्यान्माधुतैलिक इति संज्ञा ।

## यापनो वस्ति :—

यापनो घनकल्केन मधुतेलरसाज्यवान् ॥ २९ ॥

पायुजघोस्त्वृषणवास्तिमेहनशूलजित् ।

## युक्तरथोवस्ति :—

प्रसृतांसंघृत्तसौद्रवसातलैः प्रकल्पयेत् ॥ ३० ॥

एरंडमूलनिःकायो मधुतैलः समेषवः ।

एष युक्तरथो वस्तिः सवधापिप्पलीफलः ॥ ३१ ॥

## दोषहृद्वस्ति :—

सकायो मधुपद्मंघाघताह्वाहिगुलैषवः ।

मुरदाख्यचारास्तावस्तिदोषहरः परः ॥ ३२ ॥

## सिद्ध वस्ति :—

पंचमूलस्य निःवत्रायस्तलं मागधिका मधु ।

ससंघवः समधुकः सिद्धवस्तिरिति स्मृतः ॥ ३३ ॥

## कफरोगादिजिद्वस्ति :—

द्विपंचमूलत्रिफलाफलवित्त्वानि पाचयेत् ।

गोमूत्रेण च पिष्टं च पाठावत्सकतीयदैः ॥ ३४ ॥

सफलैः क्षौद्रतैलाम्बां क्षारेण लवणेन च ।

युक्तो वस्तिः कफव्याधिपांडुरोगविमूचिषु ॥ ३५ ॥

दुन्नानिलविवंधेषु वस्त्याटोपे च पूजितः ।

## वातहरोद्युष्यवस्ति :—

मुस्तापाठामुतैरंडमलारास्तापुनर्नवान् ॥ ३६ ॥

१ रयेष्वपि हि युक्तं हस्त्यश्वेष्वपि योजयेत् ।

सस्मान्न प्रतिपिदोऽप्यगतो युक्तरथः स्मृतः ॥—सुभुतम् ।

२ मुस्तादीनि नर्वाणिद्रव्याणि पृथक् पलप्रमाणानि । गदनफलानि अष्टौ ।

मंजिशारंगवघोदीरत्रायमाणादारोहिणीः ।  
 कनीयः पंचमूलं च पालिकं मदनाष्टकम् ॥ ३७ ॥  
 जलाढके पचेत्तच्च पादगेपं परिस्तुतम् ।  
 क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं क्षीरक्षेपं पुनः पचेत् ॥ ३८ ॥  
 सपाशजंगलरमः ससर्पिर्मधुमैधवः ।  
 पिष्टैर्वष्टिमिश्रयामाकलिंगकरसाजनैः ॥ ३९ ॥  
 वस्तिः मुखोष्णो मासाग्निबलशुक्रविवर्धनः ।  
 वातासृग्मोहमेहासौगुल्मविष्मूत्रसंग्रहम् ॥ ४० ॥  
 विषमअवरवीमर्पवन्मऽऽप्मानप्रवाहिकाः ।  
 वक्षणोरुकटौकुक्षिमन्याथोत्रशिरोरुजः ॥ ४१ ॥  
 हृन्वाइसृग्दरोष्मादधोफकासावमकुडलात् ॥

अत्यर्थघृप्यो वस्तिः—

वक्षुप्यः पुत्रदो राजा यापनाना रमायनम् ॥ ४२ ॥  
 मृगाणा लघुवभ्रूणा दशमूलस्य चाभवा ।  
 हृषुपामिसिगागेवीकल्कैर्वतिहरः परम् ॥ ४३ ॥  
 निहृदोत्पथैर्वृष्यश्च महास्तेहसमन्वितः ।

बलशुक्रशृङ्गवस्तिः—

मयूरं पशुपितात्रपादवित्तुंडवर्जितम् ॥ ४४ ॥  
 लघुना पंचमूलेन पालिकेन समन्वितम् ।  
 पनत्या क्षीरजले क्षीरक्षेपं मधूतमाक्षिकम् ॥ ४५ ॥  
 तद्विदारोक्रणायष्टीयताह्लाफलबलजत्र ।  
 वस्तिरोपत्पटुयुतः परमं बलशुक्रवत् ॥ ४६ ॥

तित्तिर्यादिष्वप्येवंकल्पना—

कल्पनेषं पृथक् कार्या तित्तिरिप्रभृतिष्वपि ।

त्रिज्विरेषु समस्तेषु प्रतुदप्रमहेषु च ॥ ४७ ॥  
जलचारिषु तद्वच्च मत्स्येषु क्षीरवर्जिता ।

रसायनमस्ति :—

शोषानकुलमार्जारचत्त्यकोदुरजं पलम् ॥ ४८ ॥  
पृथक् दद्यापलं क्षीरे पंचमूलं च साधयेत् ।  
तत्पयः फलवदेहीरुन्मृद्विलवणान्वितम् ॥ ४९ ॥  
ससितातलमध्वाज्यो वस्तिर्योग्यो रसायनम् ।  
व्यायाममपितोरस्वदीर्घोद्देयवलीजसाम् ॥ ५० ॥  
विषद्वद्गुक्रयिभूत्रलुडपातविकारिणाम् ।  
गजवाजिरथक्षोभमग्नजर्जरितात्मनाम् ॥ ५१ ॥  
पुनर्नवत्वं कुह्लो वाजीकरणसत्तमः ।

भोजनम्—

मिद्वेन पयसा भोग्यमात्मगुप्तोच्छटेधुरैः ॥ ५२ ॥

स्नेहवस्तिफलपनम्—

स्नेहाभ्यायत्रणान् सिद्धान्सिद्धद्वयैः प्रकल्पयेत् ।

स्नेहवस्तिः सर्वचातविकारजित्—

क्षोषघ्नाः सपरीहारा वदन्ते स्नेहवस्तपः ॥ ५३ ॥  
दशमूलं बलां रास्त्रामयवर्गधां पुनर्नवाम् ।  
गुह्यर्च्यरंढभूतीकभार्गीवृषकरोहिणम् ॥ ५४ ॥  
घटावरी सहवरं काकनासां पलाशकम् ।  
यवमापातमीकोलकुलत्यान्त्रसृतोन्मितान् ॥ ५५ ॥  
वहे विपाच्य तोयस्य द्रोणशेषेण तेन च ।  
पचेत्तलाढकं पेष्यर्जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ ५६ ॥

१. स्नेहान् स्नेहवस्तीन् । अयन्त्रणान् परिहार रहितान् ।

अनुवासनमित्येतत्पञ्चातविकारस्तु ।

अनुपासां वसा तद्वज्रोवनीयोपमाधिता ॥ ५७ ॥

यताह्लाचिरिवित्वाभ्लस्तैलं मिदं समीरये ।

मैघवेनाग्निवर्णेन तप्तं वाऽतिलजिदं घृतम् ॥ ५८ ॥

### पुत्रीयमनुवासनम्—

जीवतीं मदनं मेदां आषणी मधुकं घलाम् ।

यताह्वयंभकी कृष्णां काकनासा यतावरीम् ॥ ५९ ॥

स्वगुप्ता क्षीरकाकोली कर्कटारुया शठी यचाम् ।

पिष्ट्वा तैलघृतं क्षीरे माघयेत्तन्वतुगुणैः ॥ ६० ॥

बृहणं वातपित्तघ्नं यलक्षुप्रप्लिवर्यनम् ।

रजःशुक्रामग्रहरं पुत्रीयमनुवासनम् ॥ ६१ ॥

### कफरोगादिनुदनुवासनम्—

मैघधं मदनं कुष्ठं यताह्ला निचुलो वचा ।

होमेरं मधुकं भार्गो देवदारुपकटफलम् ॥ ६२ ॥

नागरं पुष्करं मेदा चविका चित्रकः शठी ।

विडंगातिविषा श्यामा हरेणुनीलिनी स्थिरा ॥ ६३ ॥

बिल्वाजमोदचपला दंती राक्षा च तै समैः ।

माध्यमेरंडतैलं वा तैलं वा कफरोगनुत् ॥ ६४ ॥

वध्मोदावर्तमुल्मार्चः शीहमेहाद्वपमास्तान् ।

थानाहमथमरी चायु हृन्पात्तदनुवासनम् ॥ ६५ ॥

### साधितंतैलंकफघ्नम्—

साधितं पंचमूलेन तैलं बिल्वादिनाऽथवा ।

कफघ्नं कल्पयेत्तैलं द्रव्यैर्वा कफपातिभिः ॥ ६६ ॥

फलैरष्टगुणैश्चाभ्लैः सिद्धमन्वामनं कफे ।

### तीक्ष्णादिवस्ति :—

मृदुवस्तित्रयोभूते तीक्ष्णोऽन्यो वस्तिरिष्यते ॥ ६७ ॥

तीक्ष्णैर्विकर्षिणे स्निग्धो मधुरः शिशिरो गृधुः ।  
 तीक्ष्णत्वं मूत्रपीत्वश्चिलवणशास्सर्पपैः ।  
 प्राप्तकालं विवातध्वं, घृतक्षीरैस्तु मार्दवम् ॥ ६८ ॥

**विचार्य प्रयुक्तोवस्तीरोगघ्नः—**

बलकालरोगदोषप्रवृत्तीः प्रविभज्य योजितो वस्तिः ।  
 स्वैः स्वैरोपधवर्गैः स्वान् स्वान् रोगान्निकर्तयति ॥ ६९ ॥

**वस्तिर्योजना प्रकारः—**

उष्णार्तानां शीताश्छोत्तार्तानां तथा मुखोष्णाश्च ।  
 तद्योग्योपधयुक्तान्बस्तीन्संतर्ष्य युंजीत ॥ ७० ॥

**वस्तेरयोग्याः—**

वस्तीन् गृह्णीयान् दद्याद्भ्याधिषु विशोषनीयेषु ।  
 भेदस्त्वनो विशोध्या ये च नराः कुष्ठमेहार्ताः ॥ ७१ ॥  
 न क्षीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकृशशुष्कशूद्रदेहानाम् ।  
 दद्याद्विशोषनीयान् 'दोषनिवद्धायुषो ये च' ॥ ७२ ॥

## पञ्चमोऽध्यायः ।

**अथाऽतो वस्तिव्यापत्सिद्धिं व्याख्यास्यामः ।**

**वस्तेरयोगः—**

“अग्निग्नस्विन्नदेहस्य गुरुकोष्ठस्य योजितः ।  
 शीतोऽन्नेहलवणद्रव्यमात्रो धनोऽपि वा ॥ १ ॥

१ विशोषनीयाश्छोषनकरान् वस्तीन् । दीपनिवद्धं सम्बद्धमायुर्जननं येषां ते दीपनिवद्धायुषः ।

वस्तिः गंधोम्य तं दोषं दुर्बलत्वादिनिर्हरन् ।  
करोत्ययोगं तेन स्याद्वातमूत्रक्षयदग्दहः ॥ २ ॥  
नाग्निवस्तिरुज्जादाहो हृत्लेपः श्वयमुर्गुदे ।  
कङ्कूर्गङ्गानि वैवर्ण्यमरतिर्वह्निमार्दवम् ॥ ३ ॥

### तत्रचिकित्सा—

अथाथद्वयं प्राग्निहितं मध्यदोषेऽतिसारिणि ।  
उष्णस्य तस्माद्धैषकस्य तत्र दानं प्रशस्यते ॥ ४ ॥  
फलवर्त्यस्तथा स्वेदाः कालं ज्ञात्वा विरेचनम् ।  
वित्त्वमूलत्रिवृद्धाह्वयवकोलकुलस्यवान् ॥ ५ ॥  
सुरादिमास्तत्र वस्तिः गन्ध्राश्वेष्वस्तमानयेत् ।

### अल्पवीर्येवस्नौदत्तं वायुरोधादि :—

युक्तोत्तनीयो दांपाठ्ये रुले क्रूरासयेऽथवा ॥ ६ ॥  
वस्तिर्दोषावृत्तो रुद्धमार्गो रुद्धपात्समीरणम् ।  
मविमार्गोऽनिल कुर्यादाघ्नानं मर्मपीडनम् ॥ ७ ॥  
विदाहं गुदकोष्ठस्य मुष्णवक्षणेवेदनम् ।  
रुगद्धि हृदयं शूलंरितश्चेतश्च धावति ॥ ८ ॥

### तत्रचिकित्सा—

स्वप्नतःस्विन्नप्राप्तस्य तत्र वृत्तिं प्रयोजयेत् ।  
वित्त्वादिश्च निरुहः स्यात्पीलुमर्षपमूत्रवान् ॥ ९ ॥  
मरलामरदारुभ्या मावितं वाऽनुवागमनम् ।

### वेगरोधेन वस्तिर्मूर्च्छादिकृत्—

कुर्वतो वेगसरोधं पीडितो वाऽतिमात्रया ॥ १० ॥

१ प्रागतिसारचिकित्साते । अथाथद्वयं भूतीरुपिण्ड्यादिरेको, वित्त्व घनिको  
द्वितीयः । २ प्राक्पेष्णेन सह वर्तत इति तत्राक्पेष्णः । पूर्वार्ध्यापेयवस्तिरूपे  
बलांगुहूर्वामित्यादौ पेष्णोयवाग्यादिस्तेनप्राक्पेष्णेन युक्तः । तन्मुत्तिलष्टदोषम् ।

तीक्ष्णैर्विकर्षिते श्लिम्बो मधुरः शिथिरो मृदुः ।  
 तीक्ष्णत्वं मूत्रपीत्वश्लिषणसारसर्पपैः ।  
 प्राप्तकालं विचातघ्नं, धृतसौरस्तु मार्दनम् ॥ ६८ ॥

विचार्य प्रयुक्तोषस्तोरोगघ्नः—

बलकालरोगदोषप्रकृतीः प्रविभज्य योजितो बस्तिः ।  
 स्वैः स्वरोपघर्गैः स्वान् स्वान् रोगान्निवर्तयति ॥ ६९ ॥

वस्तियोजना प्रकारः—

उष्णार्तानां क्षांताश्लोतार्तानां तथा सुषोष्णांश्च ।  
 तद्योग्योपघयुक्तान्बस्तीन्मन्तक्यं युंजात ॥ ७० ॥

वस्तेरयोग्याः—

वस्तीन् बृंहणीयान् दद्याद्व्याधिषु विक्षोभनीयेषु ।  
 मेदस्विनो विक्षोभ्या ये च नराः कृष्टमेहार्ताः ॥ ७१ ॥  
 न क्षीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकृशशुष्कशुद्धदेहानाम् ।  
 दद्याद्विक्षोभनीयान् 'दोषनिबद्धायुषो ये च' ॥ ७२ ॥

## पञ्चमोऽध्यायः ।

अथाऽतो वस्तिव्यापत्तिर्द्धि व्याख्यास्यामः ।

वस्तेरयोगः—

“अश्लिम्बस्विन्नदेहस्य गुरुकोष्ठस्य योजितः ।  
 शीतोष्णस्नेहलवणद्रव्यमात्रो घनोऽपि वा ॥ १ ॥

१ विक्षोभनीयाश्लोभनकरान् वस्तीन् । दीर्घनिबद्धं सम्बद्धमायुर्जीवनं येषां ते दोषनिबद्धायुषः ।



वस्तिः संक्षोभ्य तं दोषं दुबलत्वादनिर्हरन् ।  
 करोत्ययोगं तेन स्याद्वातगूत्रगृह्णहः ॥ २ ॥  
 नाभिवस्तिरुजादाहो हृत्लेपः श्वययुग्मुदे ।  
 कर्तुर्गङ्गानि श्वयर्थमरतिर्वह्निमार्दवम् ॥ ३ ॥

### तत्रचिकित्सा—

ववायद्वयं प्राग्विहितं मध्यदोषेऽतिगारिणि ।  
 ज्वणस्य तस्माद्वेधकस्य तत्र पानं प्रशस्यते ॥ ४ ॥  
 फलवर्त्यस्थया स्वेदाः कालं ज्ञात्वा विरेचनम् ।  
 वित्त्वमूलभिवृद्वाह्यवकोलकुलस्थवान् ॥ ५ ॥  
 मुरादिमास्तत्र वस्तिः सप्राक्पेप्यस्वमानयेत् ।

### अलक्षणीयेवस्तौदत्ते वायुरोधादि :—

मुक्तौत्पत्तीयौ दोषादर्थं लक्ष्ये क्रूराशयेऽथवा ॥ ६ ॥  
 वस्तिर्दोषावृत्तो रुद्धमार्गो रुद्धधाम्मपीरणम् ।  
 मविभागोनिल कुर्यादाध्मानं मर्मपीडनम् ॥ ७ ॥  
 विदाह गुश्कोष्ठस्य मुष्कवक्षणवेदनम् ।  
 रुणद्धि हृदयं भूलैरितश्चेतश्च धावति ॥ ८ ॥

### तत्रचिकित्सा—

स्वम्यक्तस्विघ्नगान्नस्य तत्र वर्ति प्रयोजयेत् ।  
 वित्त्वादिश्च निरुहः स्यात्पीडुमर्पणमूत्रवान् ॥ ९ ॥  
 सरलाभरदाहस्या तापितं वाऽनुयासनम् ।

### वेगरोधेन वस्तिगूर्च्छादिकृत्—

कुर्वतो वेगसरोधं पीडितो वाऽतिमात्रया ॥ १० ॥

१ प्रागतिसारचिकित्सिते । ववायद्वयं भूतीकृषिणत्यादिरेको, वित्त्व धनिको  
 द्वितीयः । २ प्राक्पेप्येण मह वर्तत इति सप्राक्पेप्यः । पूर्वाप्यापेवस्तिक्त्ये  
 बलागुह्वीमित्यादौ पेप्योयवान्यादिस्तेनप्राक्पेप्येण युक्तः । तमुत्तिलष्टदोषम् ।

अल्पेन्द्रोपे मृदो कोष्ठे प्रयुक्तो वा पुनःपुनः ।  
अतियोगावमापन्नो भवेत्कुक्षिरुजाकरः ॥ २२ ॥  
पिरेचनातियोगेन स तुल्याकृतिमाधनः ।

पैतिकस्य च रादिनाकृतोऽस्तिर्दाहादिशृत्—

वस्तिः क्षाराम्लतीक्ष्णोऽणलवणः पैतिकस्य वा ॥ २३ ॥

गुदं दहन् लिखन् क्षिप्रान्करोत्यस्य परितप्तम् ।  
मज्जिदग्धं स्रवत्यस्रं यर्षः पित्तं च भूरिभिः ॥ २४ ॥

बहुताभ्यातिवेगेन मोहं गच्छति सौम्यशृत् ।  
रक्तपित्तापिमारुध्नो क्रिया तत्र प्रशस्यते ॥ २५ ॥

दाहादिषु निवृत्तत्वं मृद्वीकावारिणा पिवेत् ।  
तद्धि पित्तशृङ्गातांगृत्वा दाहादिकाञ्जयेत् ॥ २६ ॥

विशुद्धञ्च पिवेच्छीता शवाधू शर्करायुताम् ।  
मुग्धाद्वातिविरक्तस्य क्षीणविट्कस्य भोजनम् ॥ २७ ॥

मापयूपेण कुल्माषान्पान दध्ययवा सुराम् ।

स्नेहवस्तेर्ष्यापत्तिरिद्धिः—

निद्रिर्घस्यापदाभेवं स्नेहवस्तेस्तु वक्ष्यते ॥ २८ ॥

अधिकेवातः।दियोगे चिकित्सा—

घोतोल्लो वाऽधिके वाते पित्तत्युष्णः कफे मृदुः ।

अतिभुक्ते पुरुर्वर्चः संचयेऽल्पबलस्तथा । ॥ २९ ॥

दत्तस्तैराकृतस्नेहो नायात्यभिभवादपि ।

स्तंभोरुमदनाध्मानज्वरद्वारंगमर्दनैः ॥ ३० ॥

पाण्डुरस्वेष्टर्नविद्याद्यायुना स्नेहमाकृतम् ।

स्निग्धाम्लतत्रणोऽर्णैस्त्वं रासनाशीतद्रुतैर्लिकैः ॥ ३१ ॥

सौवीर्यमुयस्मैलकुलत्वयवसाधितैः ।

निरुहैर्निर्हरेमभ्यक् समूत्रैः पंचमूलकैः ॥ ३२ ॥

मूत्रश्यामानिवृत्तिद्वौ यवकोलकुलत्थवान् ।

तत्सिद्धतैलो देयः स्यान्निरुहः सानुवासनः ॥ ४२ ॥

कंठादागच्छतः स्तम्भकंठग्रहविरेचनैः ।

छदिघ्नोभिः क्रियाभिश्च तस्य कुर्यात्सिबर्हणम् ॥ ४३ ॥

**अपक्वस्नेहोनयोज्यः—**

नापवर्षं प्रणयेस्नेहं गुदं स ह्युपलिप्ति ।

ततः कुर्यात्सिन्धुमोहकंक्षीफान् क्रियाश्च च ॥ ४४ ॥

क्षीफणो वस्तिस्तथा तैलमर्कपत्ररसे शृणुम् ।

**अनुच्छ्वास्यवस्तेर्वदनेघट्टेचिकित्सा—**

अनुच्छ्वास्य तु वट्टं वा दत्ते निःशेष एव च ॥ ४५ ॥

प्रविश्य क्षुभितो वायुः दूततोदपरो भवेत् ।

तथाम्यंगो गुदे स्वेदो वातघ्नान्यशतानि च ॥ ४६ ॥

**शीघ्रप्रणीतादौचिकित्सा—**

द्रुतं प्रणीते निष्ठृष्टे गहमोक्षिप्त एव वा ।

स्यात्कटीगुदजघोरुवस्तिस्तभातिभेदनम् ॥ ४७ ॥

भोजनं तत्र वातघ्न स्वेदाम्यगाः सवस्तयः ।

**पीड्यमानेमध्येमुक्ते चिकित्सा—**

पीड्यमानैतरा मुक्ते गुदे प्रतिहतोनिलः ॥ ४८ ॥

उरःशिरोरुहं गादमूर्ध्वं जनयेद्बली ।

वस्तिः स्यात्तत्र बिल्वादिफलेः श्यामादिमूत्रवान् ॥ ४९ ॥

**अतिप्रपीडितेचिकित्सा—**

अतिप्रपीडितः कोष्ठे तिष्ठन्मायाति वा गच्छ ।

तत्र वस्तिविरेकश्च गलपोडादि कर्म च ॥ ५० ॥

**विशुद्धोनरोयत्नतो रक्षणीयः—**

यमनार्धविशुद्धं च सामदेहबलानलम् ।

मयाङ्गं तर्पणं पूर्णं संतृप्तार्थं यथा तथा ॥ ५१ ॥

भिषक् प्रयत्नजो रक्षेत्सर्वस्मादपचारतः ।  
 दद्यान्मधुरहृद्यानि ततोऽम्लवर्णी रसौ ॥ ५२ ॥  
 स्वादुतिक्तौ ततो भूयः कषायकटुको ततः ।  
 अन्योन्यप्रत्यनीकानां रमानां श्लिग्धश्शयोः ॥ ५३ ॥  
 व्यत्यासाद्रुपयोगेन क्रमात्तं प्रकृतिं नयेत् ।  
 सर्वमहः स्थिरबलो विज्ञेयः प्रकृतिं गतः ॥ ५४ ॥

## पष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽतो भेषजकल्पं व्याख्यास्यामः ।

प्रशस्तभेषजलक्षणम्—

"धन्वसाधारणे देसे समे सन्मृत्तिके शुची ।  
 श्मशानध्वंस्यायतनश्वभ्रवल्मीकवर्जिते ॥ १ ॥  
 मृदी प्रदक्षिणजले कुशरोहिपसंस्तृते ।  
 मफालवृष्टेऽनाक्राते पादपर्वलवत्तरैः ॥ २ ॥  
 दस्यते भेषजं जातं युक्तं वर्णरमादिभिः ।  
 जल्वज्रग्न्यं दवादग्न्यमविदग्न्यं च वैकृतैः ॥ ३ ॥  
 भूर्तशलायातपान्वाद्यैर्यथाकालं च सेवितम् ।  
 अवगाढमहामूलमुदीची दिश्याश्रितम् ॥ ४ ॥

१ धन्वदेसे जायतदेसे । २ दधोवनाग्निः । वैकृतैर्विगुणैर्भूर्तैराकाशाविभूतै-  
 रविदग्धमनामेवितम् ।

## औषधप्रहरण कालः—

अथ कल्याणचरितः श्राद्धः शुचिरुपापितः ।

शुद्धोपादौषधं सुस्थं<sup>१</sup> स्थितं काले च कल्पयेत् ॥ ५ ॥

सक्षीरं तदमपचावनतिक्रान्तवत्परम् ।

शृते गुडधृतसौदधान्यकृष्णाविडंगतः ॥ ६ ॥

## दुग्धादेर्महस्यविधिः—

पयो वाष्कयणं<sup>२</sup> ग्राह्यं विषमूर्तं तच्च मोक्षजम् ।

वयोबलवतां धातुपिच्छर्जगन्धुरादिकम् ॥ ७ ॥

## कषाययोनयः पंचरसाः—

कषाययोनयः पंच रसा लवणवर्जिता ।

रसः कषकः शृतः शीतः फांटस्पैति प्रकल्पता ॥ ८ ॥

पंचधैव कषायाणां पूर्व पूर्वं बलाधिका ।

## स्वरसादीनां लक्षणानि—

सद्यः समुद्धृतात्पुत्राद्यः स्रवेत्पटपीडितात् ॥ ९ ॥

स्थिरसः स समुद्दिष्टः,

कषकः पिष्टो द्रवाप्नुतः<sup>३</sup>,

धूर्णोऽप्नुतः<sup>४</sup>,

शृतः वनाथः,

शीतो रात्रिं द्रवे स्थितः ॥ १० ॥

सद्योमिषुतपूतस्तु<sup>५</sup> फांटस्तन्मानवल्पने ।

## मात्राविचारः—

युज्यादव्याध्यादिवलतस्तथा च वचनं मुनेः ॥ ११ ॥

१ सुस्थंस्थितं स्थितियुक्तौषधम् । २ वाष्कयणी तरुणवत्मागोः । ३ अप्पुत्रो रहितः-वाष्कमेवपिष्टं द्रव्यं धूर्णशब्दवाच्यम् । ४ तेषां स्वरसादीनां मानं च कल्पना च मानवत्पने । ५ धेप्यस्यवत्कस्य धूर्णस्य वा कर्षे मर्ष्यमानं । तच्चनेत्यस्यकर्षे वक्ष्यचित् द्रवस्य पलत्रये प्रक्षिप्पालोड्यम् ।

मानाया न व्यवस्थाऽस्ति ध्याधि कोष्ठं धलं वयः ।  
वालोज्य देशवाली च योज्या तद्वच्च वत्पना ॥ १२ ॥

मानम्

मध्यं नु मानं निर्दिष्टं स्वरसस्य चतुःपलम् ।  
पेक्षस्य वर्षमात्रोक्तं तद्वचस्य पलत्रये ॥ १३ ॥

फलपना :—

वषार्धं द्रव्यपले<sup>१</sup> कुर्यात्प्रस्थार्धं पादशेषितम् ।  
शीतं पले पलैः षड्भिः,

स्नेहपाक परिभाषा—

<sup>२</sup>चतुर्भिश्च ततोऽपरम् ॥ १४ ॥  
स्नेहपाके त्वगानोक्ती चतुर्गुणविवक्षितम् ।  
कल्कस्नेहद्रव्यं योज्यम्,

स्नेहफलपनायां शौनकमतम्—

अधीते धौनकः पुनः ॥ १५ ॥  
स्नेहे मिद्धपति द्युद्धावुनिःकायस्वरसैः क्रमात् ।  
कल्कस्य योज्येर्द्वयं चतुर्थं पञ्चमष्टमम् ॥ १६ ॥  
पृथक् स्नेहममं<sup>३</sup> दद्यात्पचभृति तु द्रवम् ।

स्नेह पाकलक्षणम्—

नागुलिग्राहिता कल्के न स्नेहेऽग्नी सशब्दता ॥ १७ ॥

१ कार्यं द्रव्यपले प्रस्थार्धद्रवस्यदत्त्वा पाकेन पादशेषितं कुर्यात् । शीतं हिमरूपाय पलेद्रव्ये षड्भिः पलैर्द्रवैः कृत्वा वत्पयेत् । ३ अपरं फाटं चतुर्भिश्चतुर्गुणैर्द्रवैर्द्रव्या-  
णूपेक्षया कुर्यात् । स्नेहपाके कल्काच्चतुर्गुणः स्नेहः स्नेहाच्चतुर्गुणो द्रवः । द्युद्धाम्बु-  
नामिद्धपतिस्नेहे कल्कस्याग्नौ स्नेहाच्चतुर्थं, वायेन पष्ठं, स्वरसैरष्टमम् । यत्र स्नेहे  
पञ्चदशवा. स्फुरतश्च द्रवस्य पृषड्मानं स्नेहगमम् । न तु परस्परसाम्येन मिलि-  
तानि स्नेहचतुर्गुणानि ।

वर्णादिमपञ्च यदा तदेनं दीप्तमाहरेत् ।

### अन्यलक्षणम्—

धृतस्य फेनोपशमस्तैलस्य तु तदुद्भवः ॥ १८ ॥

लोहस्य तंतुमत्ताऽप्यु मज्जनं शरणं न यः ।

पाकस्तु त्रिविधो मन्दश्चिकणः खरचिकणः ॥ १९ ॥

'मन्दः कल्कममे किञ्चिच्चिकणो मदनोपमे ।

किञ्चित्मीदति कृष्णे च वर्तमाने च पञ्चिमः ॥ २० ॥

दग्धोत कश्चै निःकार्यः स्यादामस्त्वपिनादकृत् ।

मृदुर्नस्ये खरोऽभ्यंगे, पाने वस्ती च चिकणः ॥ २१ ॥

### ज्ञानपरिभाषा—

ज्ञानं पाणितकं मुष्टिः कुडव प्रस्थमादयम् ।

द्रोणं पदं च क्रमशो विजानीयाच्चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥

### शुद्धकार्द्रव्ययोर्योजनाप्रकारः—

द्विगुणं योजयेदाद्रं कुडमादि तथा द्रवम् ।

### अनुक्ते द्रवे जलंमाह्वयम्—

पेपणालोडने वारि स्नेहपाके च त्रिवि ॥ २३ ॥

### भागमाह्वयता—

कल्पयंतस्तेहृदांभागान्प्रमाणं यत्र नोदितम् ।

कल्कीकुर्याच्च भैरवमनिरूपितकल्पनम् ॥ २४ ॥

१ तदुद्भवः फेनोत्पत्तिः, शरणमवयवशोगमनमप्यु एव ।

२ कल्केन समे समानेद्रव्ये कल्कोपयाङ्गुलिशुद्धाति किञ्चिनया मन्दःपाकः मृदुरित्स्पर्शः । मन्दपाके स्नेहस्य कल्कस्य च पृथक्त्वं भवति । चिकणो मध्यम इत्यर्थः । मदनोपमे मधुच्छिद्यन्त्यु । कल्के किञ्चित्मीदति अवयवज्ञे, कृष्णे कृष्ण-वर्णे । वर्तमानेयतिभागव्यति यतिवत्कल्के । पञ्चिमोऽन्तिमः खरचिकण इत्यर्थः । अत ऊर्ध्वं खरचिकणादूर्ध्वं दग्धोदग्गाकः, आमगाक ईषत्याकः स्नेहः ।

## मानकयनम्—

द्वौ शाणौ वटकः फोलं बदरं द्रंशणञ्च, ती<sup>१</sup> ।  
 अक्षं पिबुः पाणितलं मुवर्णं कवल्ग्रहः ॥ २५ ॥  
 कर्षो बिटालपदकं तिटुकः पाणिमानिका ।,  
 'शब्दान्यत्वमभिन्नेऽर्थे द्युक्तिरष्टमिका पिबू ॥ २६ ॥  
 पलं प्रबुचो बित्त्वं च मुष्टिराञ्च चतुर्थिका ।,  
 द्वे पले प्रसृतस्ती<sup>२</sup> हायञ्जलिस्ती<sup>३</sup> तु मानिका ॥ २७ ॥  
 आढकं भाजनं कंसो द्रोणः शृंगो घटोर्मणम् ।  
 सुता पलशतं तानि विंशतिभार उच्यते ॥ २८ ॥

## शैलभेदाद्द्रव्यविशेषः—

हिमवद्रिध्यलाम्बां प्रायो व्याप्ता वसुधरा ।  
 तीर्थं पथ्यं च तत्राद्यभागेयं वैध्यमीपयम्<sup>४</sup> ॥ २९ ॥

समाप्तमिदं कल्पस्थानम् । अ० ॥ ६ ॥ श्लो० ३१२ ॥



१ ती द्रंशणद्वयमक्षम् । २ अभिन्नेऽर्थे-एकस्मिन्नर्थे-शब्दान्यत्वं शब्दानामने-  
 कत्वं पर्यायवाचित्वमित्यर्थः । यथा गटकादयः परस्परं पर्यायाः । अक्षाद्वारस्य  
 पाणिमानिकान्ताः शब्दाः पर्यायाः । एवमन्यत्राप्युक्तम् । ३ ती द्वौ प्रसृताव-  
 डलिः । ४ ती द्वौ अङ्गुली मानिका । तानि-पलशतानि विंशतिभारः । आद्यं  
 हैनवतमीपयम् ।



अष्टाङ्गहृदये

उत्तरस्थानम् ।

कौमारभृत्यम्

प्रथमोऽध्यायः ।

अथाऽतो बालोपचरणीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

इति ह स्माहुराग्नेयादयो महर्षयः ॥

जातमात्रस्य बालस्य उत्तरफालीनं कर्म—

“जातमात्रं विशोष्योत्पादबालं<sup>१</sup> संधवमपिपा ।

प्रभूतिवलेक्षितं चानु बलात्तलेन सेषयेत् ॥ १ ॥

अश्वमनोर्वादनं चास्य कर्णमूले समाचरेत् ।

अघास्य दक्षिणे कर्णे मंत्रमुच्चारयेदिमम् ॥ २ ॥

मन्त्रनिर्देशः—

“अंगादंगात्संभवति हृदयादभिजायते” ।

“आरमा वै पुत्रनामासि स जीव शरदां गतम्” ॥ ३ ॥

“शक्रायुः क्षतवर्षोऽसि दीर्घमायुरवाप्नुहि” ।

“नक्षत्राणि दिशो रात्रिरहस्र त्वाभिरस्तु” ॥ ४ ॥

## नालच्छेदनम्—

स्वस्थीभूतस्य नाभिं च मूत्रेण चतुरंगुलात् ।  
 बद्धोर्ध्वं वर्धयित्वा च श्रीवायामवगंजयेत् ॥ ५ ॥  
 नाभिं च कुष्ठतैलेन संचयेत्तत्तपयेदगु ।  
 क्षीरिषुक्षारुपायेण सर्वगघोदकेन वा ॥ ६ ॥  
 कौष्णेन तत्सरजततपनीयनिमज्जनैः ।

## तालुग्रमनादि—

ततो दक्षिणतर्जन्या तालुग्रम्यावगुंठयेत् ॥ ७ ॥  
 शिरसि स्नेहपिचुना प्राश्यं चास्य प्रयोजयेत् ।  
 हरेणुमात्रं मेवायुर्वलार्थमभिमंत्रितम् ॥ ८ ॥  
 'ऐंक्षीब्राह्मीवचार्शलपुष्पीकल्कं घृतं मधु ।  
 चामीकरवचाम्राह्मीताप्पपण्या रजीवृताः ॥ ९ ॥  
 लिष्टान्यधुघृतोपेता हेमधात्रीरजोऽपवा ।

## गर्गभीष्मोवसनम्—

गर्गभीः मैघवता मणिना नामयेत्ततः ॥ १० ॥

## जातकर्म—

प्राज्ञापत्येन विधिना जातकर्माणि कारयेत् ।

## मातुस्तन्यप्रवर्तने हेतुः—

मिराणा हृदयस्थाना विवृतत्वात्प्रसूतितः ॥ ११ ॥  
 तृतीयेऽह्नि चतुर्थे वा स्त्रीणां स्तन्यं प्रवर्तते ।

१ नाभिं चतुरंगुलादूर्ध्ववद्ध्वा, वर्धयित्वाच्छेदयित्वा । छिन्नां नाड्यग्रप्रदेश-  
 गूत्रबद्धां घृत्वा तत्सूत्रं श्रीवायामवसजयेत्-योजयेत् शिथिलं बध्नीयात् । श्रीवाया  
 सूत्रयोजनं सावपरिहारार्थम् । तपनीयं स्वर्णम् । २ ऐन्द्री इन्द्रवाहणी । चामीकरं  
 सुवर्णम् ।

### बालस्यभोजन प्रकारः—

प्रथमे दिवसे तस्माद्विकालं मधुसविषी ॥ १२ ॥  
 अनन्तामिश्रिते मंत्रपाविते प्रादायेच्छिशुम् ।  
 द्वितीये लक्ष्मणमिदं तृतीये च घृतं, ततः ॥ १३ ॥  
 प्राङ्निषिद्धस्वनस्यास्य तत्पाणितलसमितम् ।  
 स्तन्यानुपानं द्वौ कालौ नवनीतं प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥

### स्तन्यपानार्थं धात्रीयोजना—

मानुरेष पिवेत्स्वम्य तत्परं देहवृद्धये ।  
 स्तन्यधात्र्यायुभे कार्ये तदसपदि वत्मसे ॥ १५ ॥  
 अव्यये ग्रहाचारिण्या वर्णप्रकृतितः समे ।  
 नीरुजे मङ्गप्रवयसी जीवद्वस्ते न लामुपे ॥ १६ ॥  
 हिताहारविहारेण गत्नादुपचरेन्व तं ।

### स्तन्यनाशहेतवः—

दावक्रोधलंघनायासाः स्तन्यनाशस्य हेतवः ॥ १७ ॥

### स्तन्यवृद्धिहेतवः—

स्तन्यस्य सीधुवर्गानि मद्यान्यानुपजा रसाः ।  
 क्षीरं क्षीरिण्य ओषध्यः क्षोकादेश्च विपर्ययः ॥ १८ ॥

### स्तन्यं बालस्यरोगहेतुः—

विरुद्धाहारभुक्तायाः शुधिताया विचेतसः ।  
 प्रदुष्टधातोर्गन्निष्याः स्तन्यं रोगकरं शिशोः ॥ १९ ॥

### मातुःस्तन्याभावेच्छागादिपथः—

स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् ।  
 ह्रस्वेन पंचमूलेन स्थिरया वा सितायुतम् ॥ २० ॥

१ तस्यशिशोः पाणितलेन सम्मिश्रितं नवनीतम् । तदसम्पदि मातृस्तन्या-  
 सम्पत्तौ । २ स्तन्यस्य ह्रस्वत्र हेतव इति योज्यम् । ३ तद्गुणं छागसमानगुणम् ।  
 पञ्चमूलेन स्थिरया पाचनेन गव्यक्षीरं स्यात् ।

## पट्टीरात्रिकृत्यम्—

पट्टो निम्नो विशेषेण कुत्तरसावलिप्रियाः ।

जागृयुर्वाधवास्तस्य दधतः परमा मुदम् ॥ २१ ॥

## नामकरणम्—

दशमे दिवसे पूर्णे विविमिः स्वकुलोचितः ।

कारयेत्सूतिकोत्थानं नाम बालस्य चाचितम् ॥ २२ ॥

विभ्रतोऽगैर्मनोह्वालरोचनागुरुचंदनम् ।

नक्षत्रदेवतायुक्तं वाघवं वा समाक्षरम् ॥ २३ ॥

## आयुःपरीक्षणादिः—

ततः प्रकृतिभेदोक्तरूपैरायुःपरीक्षणम् ।

<sup>१</sup>प्रागुदक्षिरसः कुर्यात् बालस्य ज्ञानवान् भिषक् ॥ २४ ॥

क्षुचिषोतोयधानानि निर्वलीनि मूदूनि च ।

शय्यास्तरण्यवासांसि रक्षोर्जैर्धूपितानि च ॥ २५ ॥

काको <sup>२</sup>विद्यस्तः क्षस्तश्च धूपने त्रिवृताम्बितः ।

## मण्यादिधारणम्—

<sup>३</sup>जीवस्त्रङ्गादि शृङ्गोत्थान् सदा बालः शुभान् मणीन् ॥

धारयेदौषधीः श्रेष्ठा ग्राह्यं ग्रीवकादिकाः ।

हस्ताभ्यां ग्रीवया मूर्ध्ना विदोषात्सर्वतं वचाम् ॥ २७ ॥

आयुर्मेषास्मृतिस्वास्थ्यकरी रक्षोभिरक्षिणीम् ।

पंचमे मासि पुण्येऽह्नि धरण्यामुपवेशयेत् ॥ २८ ॥

पठेऽक्षप्राशनं मासि क्रमात्तत्र प्रयोजयेत् ।

## कर्णव्ययः—

पट्सप्तमाष्टमासेषु नोरुजस्य शुभेऽह्नि ॥ २९ ॥

१ प्राक् क्षिरसः, उत्तरक्षिरसोवा । २ विद्यस्तोमारितो न तु स्वयंमृतः ।

३ सङ्गः "गैद्या" इति भाषा, मणिः "मनिया" गुरिया इति भाषा । आयुर्मेषे-

कर्णौ हिमागमे विष्येद्वाभ्यन्तस्थस्य सांत्वयन् ।  
 प्राग्दक्षिणं कुमारस्य . निपम्बामं तु योषितः ॥ ३० ॥  
 दक्षिणेन दधत्सूची पालिमन्थेन पाणिना ।  
<sup>१</sup>मध्यतः कर्णपीठस्य किञ्चिद्गण्डाश्रयं प्रति ॥ ३१ ॥  
 जरायुसाश्रयप्रच्छन्ने रविरश्म्यवभासिते ।  
 घृतस्य निम्नलं सम्यगलक्तकरमाकृते ॥ ३२ ॥  
 विष्येद्देवकृतं छिद्रं सङ्कदेवजुं लापवात् ।  
 मोर्ध्वं न पार्श्वतो नायः निरास्तथ<sup>२</sup> हि संश्रिताः ॥ ३३ ॥  
 कालिका भर्मरी रक्ता

सिरान्यधाद्रागादयः—

तस्यवाद्रागरज्वराः ।

सर्गोफदाहमरंभमग्न्यास्त्वभापतातकाः ॥ ३४ ॥  
 तेषां यथामयं कुर्यादिभज्यान् चिकित्सितम् ।  
 सम्यग्व्यधेगुणाः कर्तव्यानि च—  
 स्थाने व्यधान्न हृषिरं न स्यागादिभभव. ॥ ३५ ॥  
 स्नेहाक्तं मूच्यनुस्यूतं मूत्रं चानु निधापयेत् ।  
 आमे तलेन सिचेच्च बहुला तद्वारया ॥ ३६ ॥  
 विष्येत्पान्ती हितभुजः सचार्याय<sup>३</sup> स्थवीयसी ।  
 वतिस्थ्यहाततो हृदं वर्धयेत् क्षतैः क्षतैः ॥ ३७ ॥

जातदन्तस्य कर्म—

भयंनं जातदशनं क्रोणापनयेत्स्त्वनाम् ।  
 पूर्वोक्तं योजयेत्सीरमन्त्रं च लघुर्वृहणम् ॥ ३८ ॥

भक्षणाथमोदकः—

प्रियालमजमधुकमघुलाजसितोपलेः ।  
<sup>४</sup>अपस्तनस्य संयोज्यः प्रीणनो मोदकः शिखीः ॥ ३९ ॥

१ वर्णपीठस्यगन्धतो मध्यभागे । निम्नलंघृतस्य बालस्य । २ तत्र-ऊर्ध्वदिः  
 पार्श्वप्रदेने । बहुला स्तूणाम् । ३ स्थवीयसी-अतिशय स्थूलावतिः । पूर्वोक्तक्षीरं  
 छागादियम् । ४ अपस्तनस्य त्वक्तस्तनस्य ।

दीपनो बालबिर्त्त्यलायर्कालाजमस्तुभिः ।

संग्राही घातकीपुष्पसर्कयलाजतर्पणः ॥ ४० ॥

बालस्यरोगशान्त्युपायः—

रोगांघ्रास्य जयेत्सीम्यैर्भेषजैरविपादकैः ।

अन्यत्रात्ययिकाध्याधेर्वरेकं मुनरां त्यजेत् ॥ ४१ ॥

भयोत्पादनं न कार्यम्—

नासयेन्नाविधेयं तं नृत्वं गृह्णति हि ग्रहाः ।

रक्षणम्—

बल्लवातात्स्वरस्पन्निं पालयेद्वापितान्च तम् ॥ ४२ ॥

बाङ्गमेधादिकरं घृतम्—

आह्वीमद्वार्धकवचामारिवाकुष्ठमैश्वरैः ।

सकर्णं साधितं पीतं बाङ्गमेधास्मृतिवृद्धतम् ॥ ४३ ॥

आयुष्यं पाप्मरक्षोष्णं भूतोन्मादनिवर्हणम् ।

द्वितीयं घृतम्—

इवर्चदुलेखा मङ्गकी धलपुष्पी शतावरी ॥ ४४ ॥

ब्रह्ममोमामृतात्राह्वीः कल्कीवृक्ष्य पलाशिकाः ।

अष्टाङ्गं विपचेत्पविःप्रस्थं क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ४५ ॥

तत्पीतं धन्यमायुष्यं बाङ्गमेधास्मृतिवृद्धित्वम् ।

सारस्वतं घृतम्—

अत्राक्षीरामवाव्योपपाठोप्राशिष्टुमैश्वर्यैः ॥ ४६ ॥

मिद्धं सारस्वतं सपिर्वाङ्गमेधास्मृतिवृद्धित्वम् ।

अन्मद्धतम्—

वचामृतागठोपस्थाशखिनीवेहनागरैः ॥ ४७ ॥

१ अविधेयमनानाकारिणम् । २ इन्दुलेखा बाकुची । मङ्गकी मंजिष्ठा ।  
ब्रह्म-पलाशः ।

अपामार्गेण च घृतं साधितं पूर्ववद्गुणैः ।

चत्वारो लेहाः—

हेमश्चेतवचा कुष्ठमर्कपुष्पी मर्काचिना ॥ ४८ ॥

हेममत्स्याक्षकः शंसः कैंडर्यः क्लृप्तं वचा ।

चत्वार एते पादोक्ताः प्राण्या मधुघृतप्लुताः ॥ ४९ ॥

वर्षं लीढा वपुर्धेधाबलवर्णकगः शुभाः ।

वचादिभिर्वाग्बिशुद्धिः—

वचायष्टघाह्वसिपूत्यपथ्यानागरदीप्यकैः ॥ ५० ॥

शुद्धघृते वाग्बिशुद्धिः मकुष्ठकणजीरकैः ।”

## द्वितीयोऽध्यायः ।

अथाऽतो बालामयप्रतिपेधं व्याख्यास्यामः ।

त्रिविधो बालः—

१ “त्रिविधः कथितो बालः २ क्षीराशोभयवर्तनः ।

स्वास्थ्यं ३ ताम्यामदुष्टाम्यां दुष्टाम्यां रोगसंभवः ॥ १ ॥

३ हेम स्वर्णम् । अर्कपुष्पी पयस्या अर्कतुल्यपयमुप्ता । श्वेतदूर्बल्यभ्ये ।  
मत्स्याशोभाह्वी । शंसः शंसपुष्पी । कैंडर्यः महानिम्बः ।

२ क्षीरवर्तनः, अन्नवर्तनः, क्षीराशोभयवर्तनः । वर्तनं वृत्तिः । शुभ्रनेत्रु क्षीराद  
इतिशब्दव्यवहारः । ३ ताम्या क्षीरताम्याम् । अन् क्षीरम् । अद्भिर्जनैः ।

## शुद्धक्षीरलक्षणम्—

यदग्निरेवन्तां याति न च दोषैरधिष्ठितम् ।  
तद्विशुद्धं पयः

## दुष्टक्षीर लक्षणम्—

घाताद्गुह्यं तु ज्वरतोज्ज्वलति ॥ २ ॥

कषायं केनिलं रुक्षं बर्चोभूयविबन्धकृत् ।  
पित्ताद्गुह्यम्लकटुकं पीतराज्यप्यु दाहकृत् ॥ ३ ॥  
कफासल्लवणं गात्रं जले मज्जति पिच्छिलम् ।  
संस्पृष्टलिगं संसर्गात्त्रिलिगं सांनिपातिकम् ॥ ४ ॥  
यथास्थलिकास्तन्वाधीन् जनयत्युपयोजितम् ।

## घातस्य रोगज्ञानप्रकारः—

शिथोस्तीक्ष्णामतीक्ष्णां च रोदनाल्लसयेद्रुजम् ॥ ५ ॥  
मोयं स्पृशेद्भृशं देशं यत्र च स्पर्शनाशमः ।  
तत्र विद्याद्गुह्यं,

मूर्ध्नि रुजं चाक्षिनिमीलनात् ॥ ६ ॥

हृदि जिह्वोष्ठदशनश्वासमुष्टिनिपीडितः ।  
कोष्ठे विबन्धवमग्न्यस्तनर्दसात्रकूजनैः ॥ ७ ॥

आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्ममनैरपि ।  
वस्ती शुही च विष्मूत्रसंगत्रासदिभीक्ष्णैः ॥ ८ ॥

## धात्र्याःस्तन्यशोधनोपायः—

अथ धात्र्याः क्रियां कुर्याद्यथादोषं यथामयम् ।  
तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलं त्र्यहं पिवेत् ॥ ९ ॥  
अथवाश्विनचापाठाकटुकाकुष्ठदीप्यकम् ।  
मभार्गदिरामरलवृश्चिकालीकणोपणम् ॥ १० ॥  
ततः पिवेदन्यत्रम् वातव्याधिहरं घृतम् ।  
अनु चाञ्छमुरामेवं शिग्वं मृदु विरेचयेत् ॥ ११ ॥



वस्त्रिकर्म ततः कृपास्वेदादीश्चानिलापहान् ।

शिशोर्लेहः—

रासाजमोदासरलदेवदारुजोन्वितम् ॥ १२ ॥

बालो लिङ्गाद् घृतं तीर्त्वा विपक्वं समितोषलम् ।

पित्तदुष्टेऽमृताभीषण्टोलीनिबर्चनम् ॥ १३ ॥

घात्री कुमारश्च पिबेत् क्वाथयित्वा मसारिवम् ।

अथवा त्रिफलामुस्तमूनिबकटुरोहिणीः ॥ १४ ॥

सारिषादि पटोलादि पथकादि तथा गणम् ।

घृतान्येभिश्च मिढानि पित्तघ्नं च विरेचनम् ॥ १५ ॥

सीतांश्चाभ्यंगलेपादीन् युज्यात्,

श्लेष्मारमके पुनः ।

यष्ट्याह्वयैधक्युतं कुमारं पाययेद् घृतम् ॥ १६ ॥

मिधून्धपिप्पलीमहा पिष्टौ क्षौद्रपुर्तरथ ।

राठपुष्पैः स्तनी लिपेच्छिदोश्च दशनच्छदौ ॥ १७ ॥

मुखमेवं वमेद्बालः

धात्र्यावमनादिः—

तीक्ष्णैर्पात्री तु वामयेत् ।

अथाचरितमसर्गो मुस्तादि क्वथितं पिबेत् ॥ १८ ॥

तद्वत्तगरपृथ्वीकामुरदास्कलिकान् ।

अथवाऽतिविषामुस्तपद्मं पापञ्चकोलकम् ॥ १९ ॥

क्षीरालसक गदोपक्रमः—

स्तन्ये त्रिदोषमलिने दुर्गन्धाम् जलोपमम् ।

विवद्धमच्छं विच्छिन्नं फेनिलं चोपवेश्यते ॥ २० ॥

राट्पानाभ्यधावर्णं मूत्रं पीतं सितं घनम् ।

ज्वरातोचकनृट्छादिशुष्कोद्गारविजृम्भिकाः ॥ २१ ॥

अग्न्यग्नौऽग्निलेपः कृज्जनं वेपथुर्भ्रमः ।

घ्राणाशिमुरगपाकाया जायतेऽन्येऽपि तं गदम् ॥ २२ ॥

वीरालसकमित्याहुरत्ययं चातिदारुणम् ।

तत्राशु घात्री बालं च वमनेनोपपादयेत् ॥ २३ ॥

विहितायां च संसर्गा वचादि योजयेद्गणम् ।

निशादि वाऽऽवा माद्रीपाठातिक्ताधनामयान् ॥ २४ ॥

पाठाद्युत्थमुत्तातिक्तातिक्तादेवाह्वयारिवाः ।

समुस्तमूवेदयवाः स्तन्यदोषहराः परम् ॥ २५ ॥

अनुसंधे यथाव्याधि प्रतिकुर्वीत कालवित् ।

### दन्तोद्धेद प्रकरणम्—

दन्तोद्धेदश्च रोगाणां सर्वेषामपि कारणम् ॥ २६ ॥

विरोपाज्ज्वरविड्भेदकासच्छदिशिरोरजाम् ।

अतिस्पन्दस्य पोषक्या विमर्षस्य च जायते ॥ २७ ॥

पृष्ठजने लिङ्गालानां बहिर्णां च शिखोद्धमे ।

दन्तोद्धवे च बालानां नहि किञ्चिन्न दूयते ॥ २८ ॥

यथादोषं यथारोगं यथोद्वेकं यथासयम् ।

विमज्ज्य देहकालदीप्तत्र योज्यं भिषग्जितम् ॥ २९ ॥

त एव दोषा दूष्पाश्च अवराद्या व्याधयश्च यत् ।

अतस्तदेव भूषणं मात्रा त्वस्य कनोपसी ॥ ३० ॥

सौकुमार्याल्पकायत्वात्सर्वानुपसेवनात् ।

स्निग्धा एव सदा बाला धृतक्षीरनिषेवणात् ॥ ३१ ॥

मद्यस्ताम्बुमनं तस्मात्पापयेन्मतिमान् मृदु ।

स्तन्यस्य तुप्तं वमयेत् क्षीरक्षीराश्लेषेविनम् ॥ ३२ ॥

पीतबतं तनुं पेयामन्नादं धृतसंयुताम् ।

वस्ति साध्ये विरेकेण मर्सेन प्रतिमर्शनम् ॥ ३३ ॥

मुञ्ज्याद्विरेचनादोस्तु घात्र्या एव यथोदिताम् ।

मूर्वाध्वोपवराकोलजंबूत्वग्द्रास्तर्पणाः ॥ ३४ ॥

१ तत्रक्षीरालसकमदे । संसर्गा पेयादिग्रमे । २ माद्री अतिविषा, रेणुका वा । ३ जायते कारणमित्याहार्यम् । ४ अस्य बालस्य ।

मपाठा मधुना लोढाः स्तन्यशेषहराः परम् ।  
 दंतपालीं समधुना धूर्णेन प्रतिसारयेत् ॥ ३५ ॥  
 पिप्पल्या घातकीपुष्पधात्रीफलकृतेन वा ।  
 लावतित्तिरवक्षूररजः पुष्परसप्लुतम् ॥ ३६ ॥  
 द्रुतं करोति बालानां दंतकेयरवन्मुसम् ।  
 यचाद्रिवृहतीपाठाकटुसतिविपाथनैः ॥ ३७ ॥  
 मधुरैश्च घृतं सिद्धं सिद्धं दशनजम्भनि ।

रजन्यादिचूर्णलेहः—

रजनी दाह मरल. श्वेयसी बृहतीद्रवम् ॥ ३८ ॥  
 पृश्निपर्णी क्षताह्वा च लोढं माक्षिकसपिपा ।  
 ग्रहणीदीपनं श्रेष्ठं मास्तस्यानुलोमनम् ॥ ३९ ॥  
 अतीसारज्वरश्वासकमलापाङ्कमनुत् ।  
 बालस्य सर्वरोगेषु पूजितं बलवर्धनम् ॥ ४० ॥

घृतम्—

मर्मगाघातफीरोघ्रकुटनटबलाह्वयं ।  
 महासहाशुद्रसहाशुद्रबिल्वक्षलादुभिः ॥ ४१ ॥  
 सकर्पासीफलस्तोये साधितः साधितं घृतम् ।  
 शीरमस्तुपुत हति शीघ्रं दंतोदमबोदभक्षन् ॥ ४२ ॥  
 विविधानाममानेतद्वृद्धकक्ष्यपनिमित्तम् ।

दन्तोद्गमरोगेषुनाति चालयन्त्रणम्—

दंतोदमवेषु रोगेषु न बाह्यमतिग्रयेत् ॥ ४३ ॥  
 स्वपपप्युपशाम्यति जातदंतस्य यद्गदाः ।

मालशोपः (मुखंही) —

अत्यटुःस्वप्नशीतांबुशर्लम्बिकस्तन्यनेविनः ॥ ४४ ॥

शिरोः कफेन रुद्धेषु स्रोतःषु रसवाहिषु ।

अरोचकः प्रतिश्यायो ज्वरः कासश्च जायते ॥ ४५ ॥

कुमारः शुष्यति ततः स्निग्धशूलमुखेक्षणः ।

( १ )

तत्रप्रयोगाः—

संघबन्धोपशान्ज्वालागिरिकदंबकान् ॥ ४६ ॥

शुष्यतो मधुमर्पिर्म्यामरुब्ध्यादिषु योजयेत् ।

( २ )

अशोकरोहिणीयुक्तं पचकोलं च चूर्णितम् ॥ ४७ ॥

( ३ )

बदरीघातकीयान्चूर्णं वा सर्पिषा द्रुतम् ।

स्विरावचाद्विवृहतीकाकोलीपिप्पलीनतैः ॥ ४८ ॥

निचुलोत्पलवर्षाभूभागौमुस्तैश्च कापिकैः ।

सिद्धं प्रस्थार्थमाग्न्यस्य स्रोतसा शोधनं परम् ॥ ४९ ॥

( ४ )

सिंहपुष्पवर्गधा मुरमा कणागर्भं च तद्गुणम् ।

( ५ )

यष्टपाह्वपिप्पलीरोध्रपद्मकोत्पलचंदनैः ॥ ५० ॥

सालोममारिबाम्बां च साधितं शोषजिद्घृतम् ।

( ६ )

शृंगीमधूलिकामागीपिप्पलीदेवदारुभिः ॥ ५१ ॥

अश्वगंवाद्रिकाकोलीराश्रपभकजोवकैः ।

शूर्पपर्णोविडंगैश्च कल्बितैः साधितं घृतम् ॥ ५२ ॥

शशोत्तमागनिष्ठुहे शुष्यतः पुष्टिकृत्परम् ।

( ७ )

चयावयस्यातगरकायस्थाचोरकैः शृतम् ॥ ५३ ॥

वरतभूषमुराम्या च तैलमर्घ्यजने हितम् ।

लाक्षादितैलम्—

लाक्षारमसमं तैलप्रस्थं मस्तुचतुर्गुणम् ॥ ५४ ॥

अष्वगंधानिशादाह्कोतकुष्ठाब्जचंदनैः ।

ममूषारोहिणीराजानताह्वामधुकैः समैः ॥ ५५ ॥

मिर्चं लाक्षादिकं नाम तैलमर्घ्यजनादिदम् ।

इत्थं ज्वरक्षयोन्मादश्वासापस्मारवातनुत् ॥ ५६ ॥

यक्षराक्षसभूतघ्नं गर्भिणीना च घस्यते ।

लेहः—

मधुनाऽतिविपाट्टुगीपिप्पलीर्लेहयेच्छिद्यम् ॥ ५७ ॥

एका वातिविपा कामज्वरच्छदिरुपद्रुतम् ।

दुग्धवमने चिकित्सा—

पोतं पोतं वमनि यः स्तभ्य तं मधुमपिपा ॥ ५८ ॥

द्विवार्ताकीफलरसं पंचकोलं च लेहयेत् ।

पिप्पली पंचलवणं कुमिजित्पारिभद्रकम् ॥ ५९ ॥

तद्वह्निह्यतथा व्योष मयी वा रोमचर्मणम् ।

रागमतः दाह्यकषवाविदगोषक्षंसितिजग्मनाम् ॥ ६० ॥

धृतम्—

सदिराकुंभतालीसकुष्ठचंदनजं रसे ।

मधोरं गाधितं गर्पिर्वमघ्ने विनियच्छति ॥ ६१ ॥

सदन्तेषालेजातेशान्त्यादिकम्—

सरंदो अयते यस्तु इताः प्राग्वस्य चोत्तराः ।

पुर्वति तस्मिन्नुत्पाते शांतिकं च द्विजातये ॥ ६२ ॥

दद्यात्तदक्षिणं बालं नैगमेपं च पूजयेत् ।

**तालुकण्टकरोगः—**

तालुमांसे कफः क्रुद्धः कुरते तालुकण्टकम् ॥ ६३ ॥

तेन तालुप्रदेशस्य निम्नता भूयि जायते ।

तालुपातः स्तनद्वेषः कृच्छ्रात्पानं शत्रुद्वेषम् ॥ ६४ ॥

तृडास्पकङ्कवक्षिज्जा ग्रीवादुर्धरता वमिः ।

**तालुकण्टकचिकित्सा—**

तत्रोत्तिष्ठ यवशारक्षीद्राम्यां प्रतिसारयेत् ॥ ६५ ॥

तानुं तद्वत्कणाशुण्ठीगोदाकृद्रमसैर्धनैः ।

भृंगवैरनिशाभृङ्गं कल्चितं वटपल्लवैः ॥ ६६ ॥

यद्वा गोदाकृता लिप्तं कुकूले स्वेदयेत्ततः ।

रसेन लिपेत्तात्वास्मं नेत्रे च परिदेवयेत् ॥ ६७ ॥

हरीतकीवचाकुष्ठकल्कं भाक्षिकसंगुतम् ।

पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुकण्टकात् ॥ ६८ ॥

**बालस्थगुदरोगः—**

मलोपलेपात्स्वेदाद्वा गुदे रक्तकफोद्भवः ।

ताम्रो वर्णोऽथःकहूमान् जायते भूर्गुपद्वयः ॥ ६९ ॥

केचित्तं मातृकादोषं वदन्त्यन्येऽपि पृतनम् ।

प्रष्टारगुदकुदं च केचिच्च तमनामिकम् ॥ ७० ॥

१ क्षेपकावप्रवर्तते पूजयेदित्यनन्तरम्—

हनुमूलगतो वायुर्दन्तदेशेऽस्तिमोचरः ।

यदा मिश्रोः प्रकृपितो नोतिष्ठति तदा द्विजाः ॥ १ ॥

रक्षादिनो वातिकस्य चालयत्यनिलः क्षिराः ।

हन्वाग्रयाः प्रगुप्तस्य दन्तैः शब्दं करोत्यतः ॥ २ ॥

२ केचिदाचार्याः ।

### तत्रचिकित्सा—

तत्र धात्र्याः पयः शोष्यं पित्तश्लेष्महरीपवैः ।  
 शृतशोतं च शोतांबुधुक्तमंतरपानकम् ॥ ७१ ॥  
 ससोद्वितादर्थयन्नेन ग्र्णं तेन च लेपयेत् ।  
 त्रिफलावदरोक्षसत्त्वकृवाथपरिपेचितम् ॥ ७२ ॥  
 कामोसरोचनातुल्यमनोह्वालरसांजनैः ।  
 लेपयेदम्लपिष्टैर्वा चूर्णितैर्वधिचूर्णयेत् ॥ ७३ ॥  
 मुशुद्गणैरथवा यष्टीशंखसौवीरकाजनैः ।  
 सारिवाशंखनाभिभ्यामसनस्य त्यचाऽथवा ॥ ७४ ॥  
 रागकंदूल्कटे कुर्याद्रित्त्यावि जलीकसा ।  
 सर्वं च पित्तप्राणजिच्छस्यते शुद्धकुट्टके ॥ ७५ ॥

### मृदूबरोगनाशको लेहः—

पाटावेलाद्विरजनीमुस्तभार्गोपुनर्नवैः ।  
 सत्रित्वभ्यूगणैः सविबुध्रिकालीयुतैः शृतम् ॥ ७६ ॥  
 लिहानो मात्रया रोगैर्मुच्यते मृत्तिकोद्भवैः ।

### अपधेलिप्तेस्तने रोगनाशः—

व्याधेयंयस्य भ्रैपञ्चं स्तनस्तेन प्रतेपितः ।  
 स्थितो मुहूर्तं धीतोनु पीतस्त्वं तं जयेद्गदम् ॥ ७७ ॥



१ शृतं जलं पञ्चाञ्छीतमेवविधर्षिताभ्युक्तं अन्तरश्चाननञ्च हितम् ।

२ तादर्थ्यशैलं रसवतः ।

## तृतीयोऽध्यायः ।

भूतविद्या ।

अथातो बालग्रहप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

द्वादशग्रहाः—

“पुरा गुहस्य रक्षार्थं निर्मिताः घ्नलपाणिना ।

मनुष्यविग्रहाः पञ्च, मत्त स्त्रीविग्रहा ग्रहाः ॥ १ ॥

ग्रहनामानि—

स्वन्दो विनासो मेपाख्यः षडग्रहः पितृसंज्ञितः ।

राकुनिः पूतना शीतपूतना दृष्टिपूतना ॥ २ ॥

नुल्लमडलिका तद्भवेवती शुष्करेवती ।

ग्रहीप्यतां गृहाणां पूर्वरूपम्—

तेषां ग्रहीप्यतां रूपं प्रतप्तं रोदनं ज्वरः ॥ ३ ॥

सामान्य लक्षणम्—

मामान्यं रूपमुन्नासज्जुभात्रूक्षोपदीनताः ।

केनस्तावोर्ध्वदृष्टोष्ठदंतदंशप्रजागराः ॥ ४ ॥

रोदनं कुत्रनं स्तम्भविद्वेषः स्वरवैश्रुतम् ।

नर्धरकस्मात्परितः स्वयाम्भंगविलेखनम् ॥ ५ ॥

स्कन्दगृहीतस्य लक्षणम्—

तत्रैकनयनग्यावी शिरो विशिषते मुहुः ।

हर्तकपदाः स्तब्धांगः सस्वेदो नवकंषरः ॥ ६ ॥

दंतस्तादी स्तनद्वेपी यस्यन् रोदिति विस्वरः ।

चक्रवक्रौ वमेल्लाणां भृशमूर्ध्वं निरीक्षते ॥ ७ ॥



वसासुष्मपिच्छद्विषो बद्धमृष्टिघातुच्छिद्युः ।

चलितैकाक्षिगंडध्रुः संरक्तोभयलोचनः ॥ ८ ॥

स्कंदार्तस्तेन वैकल्यं मरणं वा भवेद्भुवम् ।

### विशाखलक्षणम्—

संज्ञानारो मुहुः केशलुचनं कंधरानतिः ॥ ९ ॥

विनम्य जूम्भमाणस्य शङ्कुन्मूत्रप्रवर्तनम् ।

केनोद्धमनमूर्ध्वक्षा हस्तध्रुपादनर्तनम् ॥ १० ॥

स्तनस्वजिह्वासंदंशमरंभज्वरजागराः ।

प्लयशोणितगंधिश्च स्कंदापस्मारलक्षणम् ॥ ११ ॥

### मेघाख्यलक्षणम्—

आध्मानं पाणिपादास्यस्पर्दनं केननिर्वम ।

तृष्णुष्टिबधातीसारस्वरदैन्यविवर्णताः ॥ १२ ॥

कूजनं<sup>१</sup> स्तननं<sup>२</sup> छदिः कासहिष्माप्रजागराः ।

ज्योष्ठदंशागतकोचस्तभमस्तामगंधताः ॥ १३ ॥

ऊर्ध्वं निरीक्ष्य हसनं मध्ये विनमनं ज्वरः ।

मूर्च्छकनेत्रशोफश्च नेगमेपग्रहाकृतिः ॥ १४ ॥

### श्वग्रह लक्षणम्—

कंपो हृषितरोमत्वं स्वेदश्चक्षुर्निमीलनम् ।

बहिरायामनं जिह्वादंशोऽतः कंठकूजनम् ॥ १५ ॥

धावनं विट्सगंधत्वं क्रीडनं<sup>३</sup> श्वानवच्छुनिः ।

### पितृग्रह लक्षणम्—

रोमहर्षो मुहुःप्रासः सहसा रोदनं ज्वरः ॥ १६ ॥

कासातीसारवममधुज्जातृदशवगंधताः ।

अग्निध्वाशेषविशेषः शोषस्तंभविवर्णताः ॥ १७ ॥

मुष्टिबंधः सुविश्रवाणोर्बालस्य स्युः पितृग्रहे ।

शकुनिग्रह लक्षणम्—

अस्तांगत्वमर्तामारो जिह्वातालुमले घणाः ॥ १८ ॥  
स्फोटाः नदाहस्त्पाकाः संधिषु स्युः पुनः पुनः ।  
निशयल्लि<sup>१</sup> प्रविलीयन्ते पाको वषट्ते मुदेऽपि वा ॥ १९ ॥  
भयं शकुनिगंधत्वं ज्वरश्च शकुनिग्रहे ।

पूतनाया लक्षणम्—

पूतनाया वमिः कंपस्तंद्रा रात्रौ प्रजागरः ॥ २० ॥  
हिष्माध्मानं शब्दभेदः पिपासा मूत्रनिग्रहः ।  
अस्तहृष्टागरोमत्वं काकवत्पूतिगंधता ॥ २१ ॥

शीतपूतना लक्षणम्—

शीतपूतनया कंपो रोदनं तिर्यंगीक्षणम् ।  
तृष्णात्रकृजोऽलीमारो वसावदित्तरंग्यता ॥ २२ ॥  
पार्श्वस्पर्शकम्य शीतत्वमुष्णत्वमपरस्य च ।

अन्धपूतना लक्षणम्—

अंधपूतनया छात्रिर्ज्वरः कासोऽल्पवह्निता ॥ २३ ॥  
वर्चसो भेदवर्ण्यदीर्घध्यान्यशोषणम् ।  
दृष्टिमादोऽतिरुद्धपोथकीजन्मसून्यताः ॥ २४ ॥  
द्विध्मोद्वेगस्तनद्वेषवैवर्ण्यं स्वरतीक्ष्णता ।  
वेषधुर्धत्समगधित्वमथवा माम्लमंधिता ॥ २५ ॥

मुखमण्डिता लक्षणम्—

मुखमण्डिता पाणिपादस्य रमणीयता ।  
मिराभिरमिताभाभिराचितोदरता ज्वरः ॥ २६ ॥  
अरोचकोऽगन्धपनं गोमूत्रमगंधता ।

१ निमि स्फोटाः स्युरल्लि प्रविलीयन्ते ।

## रेवती लक्षणम्—

रेवत्याः श्यावनीलत्वं कर्णनाभाक्षिमर्दनम् ॥ २७ ॥

कामहिम्माक्षिविदोषवक्रवक्रत्वस्तथाः ।

यस्तर्गधो ज्वरः क्षोपः पुरीषं हरितं द्रवम् ॥ २८ ॥

जायते शुष्करेवत्यां क्रमात्सर्वांगसंक्षयः ।

## ग्रहगृहीतस्य बालस्यासाध्य-लक्षणम्—

केशघातोऽथविद्वेषः स्वरद्वयं विवर्णता ॥ २९ ॥

रोदनं वृधगधित्वं दीर्घकालानुवर्तनम् ।

उदरे प्रययो वृत्ता यस्य नानाविध दृक् ॥ ३० ॥

जिह्वाया निम्नता, मध्ये श्याव तालु च तं त्यजेत् ।

“मुञ्चानोऽर्धं बहुविधं यो बालः परिहोयते ॥ ३१ ॥

तृष्णागृहीतः शामाक्षो हन्ति तं शुष्करेवती ।”

## ग्रहग्रहणेहेतुत्रयम्—

हिमारत्यर्चनाकाशा ग्रहग्रहणकारणम् ॥ ३२ ॥

## हिंसात्मके ग्रहे लक्षणानि—

तत्र हिंसात्मके बालो महान् वा सुतनामिकः ।

क्षतजिह्वः क्वणोद् बाढमुखो साश्रुलोचनः ॥ ३३ ॥

दुर्बर्णो हनिवचनः पूतिर्गभिश्च जायते ।

शामो मूत्रपुरीषं स्वं मृदनाति न पुनृप्सते ॥ ३४ ॥

हस्ती शोचाम्य संख्यो हृत्यारमानं तथा परम् ।

तद्वच्च शस्त्रकाष्ठादीरणि वा दोषमाविशेत् ॥ ३५ ॥

अप्यु मज्जेत्पतेत्कूये कुर्यादन्यच्च तद्विधम् ।

तृप्ताहमोहान् पुयस्य छर्दनं च प्रवर्तयेत् ॥ ३६ ॥

रक्तं च सर्वमार्गेभ्यो रिष्टोत्पत्तिश्च तं त्यजेत् ।

## रतिकामेग्रहे लक्षणानि—

रहःस्त्रीरतिसंलापगंधसम्भूषणप्रियः ॥ ३७ ॥

हृष्टः शांतश्च दुःसाध्यो रतिकामेन पीडितः ।

## अर्चकामेग्रहे लक्षणानि—

दीनः परिमृशेद्वक्त्रं शुष्कोष्ठगलतालुकः ॥ ३८ ॥

दंकिंतं धीक्षते रीतिं ध्यायत्यापाति दीनताम् ।

अन्नमन्नाभिलाषेऽपि दत्तं नाति बुभुक्षते ॥ ३९ ॥

गृहीतं बलिकामेन तं विद्यात्सुखसाधनम् ।

## ग्रह चिकित्सा—

हंतुकाम जयेदोमैः सिद्धमंत्रप्रवर्तितैः ॥ ४० ॥

इतरी तु यथाकामं रतिवत्यादिदानतः ।

अथ साध्यग्रहं बालं विविक्ते शरणे स्थितम् ॥ ४१ ॥

निरहः सितस्रसृष्टे सदा संनिहितानले ।

विकीर्णभूतिकुमुदपत्रबीजाश्रसर्पणे ॥ ४२ ॥

रक्षोघ्नतलज्वलितप्रदीपहतपाप्मनि ।

व्यवायमघपिशितनिवृत्तपरिचारके ॥ ४३ ॥

पुराणसविपाभ्यक्तं परिपित्तं सुखांशुना ।

साधितेन बलानिबर्जयन्तीनृपदुर्मैः ॥ ४४ ॥

पारिभद्रककटुर्ध्वजबूवरुणकटुतृणैः ।

कपोतवंकाधामार्गपाटलाभ्युक्षिष्णुभिः ॥ ४५ ॥

काकजधामहाश्वेताकपित्थशौरपादपैः ।

मवर्द्धकं रजश्व घृणं स्नातस्य चाचरेत् ॥ ४६ ॥

१ इतरीरत्यर्चकामो । २ विविक्ते शरणे-एकान्तगृहे । ३ अहोदिवसस्य त्रिहोत्रं चारान् निवने संसृष्टेऽशोधिते च । ४ विकीर्णभूत्यादिका यस्मिन् गृहे । रक्षोघ्नः सर्पणः । व्यवायादिकर्मविशुद्धपरिचारके गृहे । वैजयन्ती अरणी । कपोतवद्वा ग्राही । महाश्वेता कटुमी ।

द्वोपिव्याघ्रादिभिर्हर्षचर्मभिर्धृतमिश्रितैः ।

धूपः—

पूतीदशांगीसिद्धार्थवचामल्लातदीप्यकैः ॥ ४७ ॥

गकुष्ठैः गघृतेधूपः सर्वग्रहविमोचकः ।

दशाङ्गोधूपः—

ववाहिगुचिङ्गानि सैषथं मज्जपिप्पली ॥ ४८ ॥

पाठा प्रतिविषाभ्योषं दद्यात्कः कश्यपोदितः ।

सर्वग्रह निवारणोधूपः—

सर्वपा निबपत्राणि मूलमश्वत्थुरा वचा ॥ ४९ ॥

भूर्जपत्रं घृतं धूपः सर्वग्रहनिवारकः ।

ग्रहजिह्वस्तम्—

अनंताऽऽग्रास्थितगर मरिचं मधुरो गणः ॥ ५० ॥

शृङ्गालविष्णा मुस्ता च कल्मषैस्त्वर्धृतं पचेत् ।

दशमूलरसक्षीरं युक्तं तद्ग्रहजिह्वस्तम् ॥ ५१ ॥

सर्वग्रह रोगहरघृतम्—

राक्षसाश्चशुभती<sup>१</sup> वृद्धपंचमूलवचापनात् ।

ववाये सपिः पचेत्पिष्टैः सारिवाभ्योपचित्रकैः ॥ ५२ ॥

पाठाविष्टं गमधुकपयस्याहिगुदाहभिः ।

सर्पयिकैः मंत्रयवैः शिशोस्तत्पतत हितम् ॥ ५३ ॥

मर्वरोगग्रहहरं दीपनं बलवर्णदम् ।

सारिवादि घृतम्—

मारिवागुर<sup>२</sup> भीमाहोर्जिन्विनीकृष्णसर्पयैः ॥ ५४ ॥

१ पूतीकरञ्जः । दशाङ्गविकल्पमाणा वचादिः । २ शृङ्गालविष्णा वृक्षिनीकर्णौ ।  
३ द्वपंचशुभती शालपर्णीपृश्निपर्णी । वृद्धमहत् । ४ मुरभी राक्षा ।

चचाश्वगंधामुरसायुक्तैः सपिविपाचयेत् ।

तन्नाशयेद्गह्वान्सर्वान्पानेनाभ्यञ्जनेन च ॥ ५५ ॥

धूपः—

गोशृंगलोमबालाहिनिमौकवृषदंशविट् ।

निवपत्राज्यनटुका मदनं बृहतीद्रव्यम् ॥ ५६ ॥

कापाम्पास्त्रियवच्छायरोमदेवाङ्गसर्पपम् ।

मयूरपत्रघीवातं तुपकेयं सरामठम् ॥ ५७ ॥

मृदभाडे बस्तमूत्रेण भावितं श्लक्ष्णशूणितम् ।

घूपनार्थं हितं सर्वे भूतेषु विपमे ज्वरे ॥ ५८ ॥

घृतानि—

घृतानि भूपविद्यायां वक्ष्यन्ते यानि तानि च ।

मुञ्ज्यास्तथा बलि होमं जपनं मंत्रतंत्रवित् ॥ ५९ ॥

स्नपनम्—

पूतीकरजस्ववपत्रं दारिद्र्यो बर्बरदापि ।

मुबीबिवालारलुकाघमीबित्त्वकपित्थकाः ॥ ६० ॥

उत्पवाध्य तौर्यं तद्वात्री बालानां स्नपनं शिवम् ।

अन्यरोगहरमौषधम्—

अनुबधान्यमाकृच्छ्रं ग्रहापापेष्पुपद्रवान् ।

बालामयनिषेधोक्तभेषजैः ममुपाचरेत् ॥ ६१ ॥

इयमाष्टाङ्गहृदये कीमारत्नं त्रितयं समाप्तम् ।

## चतुर्थोऽध्यायः ।

अथाऽतो भूतविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

सामान्यंभूतविज्ञानम्—

"लक्षयेज्ज्ञानविज्ञानवाक्चेष्टाबलपीरूपम् ।  
पुरवेऽपीरूपं यत्र तत्र भूतग्रहं वदेत् ॥ १ ॥

अष्टादश भूतसंख्या—

भूतस्य रूपप्रकृतिशयागम्यादिचेष्टितैः ।  
यस्यानुकारं कुरुते तेनाविष्टं तमादिशेत् ॥ २ ॥  
सोऽष्टादशविधो देवदानवादिविभेदतः ।

भूतग्रहणे हेतुः—

हेतुस्तदनुपत्तौ तु तद्यः पूर्ववृत्तोऽपवा ॥ ३ ॥  
प्रज्ञापरायः सुतरां तेन <sup>१</sup>कामादिजन्मना ।  
नुतधर्मवताचारः पूज्यान्मतिवर्तते ॥ ४ ॥  
तं तथा भिन्नमयीदं पापमात्मोपघातिनम् ।  
देवादयोऽप्यनुष्मन्ति ब्रह्मशिल्पप्रहारिणः ॥ ५ ॥  
छिद्रं पापक्रियारम्भः पाकोऽनिष्टस्य कर्मणः ।  
एकस्य शून्येऽवस्थानं श्मशानादिषु वा निधि ॥ ६ ॥  
२ दिग्ब्रह्मस्त्वं गुरोर्निदा स्तेरविधितेवनम् ।  
अशुचेद्वैतार्चादिपरभूतकसंकरः ॥ ७ ॥  
होममंत्रजलीज्यानां विगुणं <sup>३</sup>परिकर्म च ।  
समामाद्दिनचर्यादिप्रोक्तचारव्यतिश्रमः ॥ ८ ॥

## भूतग्रहण कालः—

शुक्लान्ति शुक्लप्रतिपत्तृयोदशयोः सुरा नरम् ।  
 शुक्लप्रयोदशीकृष्णैर्द्वादशयोर्द्वाविंशः ॥ ६ ॥  
 मंघवास्तु चतुर्दश्या द्वादश्यां चोरगाः पुनः ।  
 पंचम्या शुक्लमसम्येकोदशयोस्तु धनेश्वराः ॥ १० ॥  
 शुक्लाष्टपंचमोर्णमासोपु ब्रह्मराक्षसाः ।  
 कृष्णे रघुःपिशाचाद्यां नवद्वादशपर्वसु ॥ ११ ॥  
 दशमावास्ययोरष्टनवम्योः पितरोऽऽरे ।  
 गुरुबृज्जादयः प्रायः कालं मंघ्यानु लक्षयेत् ॥ १२ ॥

## देवग्रहगृहीत लक्षणम्—

पूज्यपशोपममुखं मोघ्यदृष्टिमकोपनम् ।  
 अल्पवाक्स्वेदविष्मयं भोजनानांभलापिणम् ॥ १३ ॥  
 देवद्विजातिपरमं शुचिसंस्तुतवादिनम् ।  
 मीलयतं विराधेने मुरभि वरदायिनम् ॥ १४ ॥  
 शुक्लमाल्यावरमरिचट्टलोच्चमभनप्रियम् ।  
 अनिद्रमप्रघृष्यं च विद्याद्देववशीकृतम् ॥ १५ ॥

## दैत्यग्रहगृहीत लक्षणम्—

विह्वर्ष्टिं दुरात्मानं गुरुदेवद्विजद्विपम् ।  
 निर्भयं मानिनं दूरं क्रोधनं व्यवसायिनम् ॥ १६ ॥  
 रघुः स्कंदो विद्याखोऽहमिन्द्रोऽहमिति वादिनम् ।  
 मुराभाभर्त्तुच विद्याद् दैत्यग्रहगृहीतकम् ॥ १७ ॥

## गन्धर्वग्रहगृहीत लक्षणम्—

स्वाभारं मुरभि हृष्टं गीतनर्तनकारिणम् ।  
 आनोद्यानरुचि रत्नवस्त्रमाल्यानुलेपनम् ॥ १८ ॥  
 शृंगारलीलाभिरत मंघवांश्च्युपितं वंदत् ।



## सर्पग्रहगृहीत लक्षणम्—

रक्ताक्षं क्रोधनं स्तब्धदृष्टिं वक्रगतिं चमम् ॥ १६ ॥  
 श्वमंतमनिशं जिह्वालालिनं सुकिणीलिहम् ।  
 प्रियदुग्धगुडस्नानमघोवदनशायिनम् ॥ २० ॥  
 शरणाधिष्ठितं विद्याश्वस्थितं चातपन्नतः ।

## यक्षग्रहगृहीत लक्षणम्—

विष्णुतं वस्तरक्ताक्षं क्षुभगंधं सुतेजसम् ॥ २१ ॥  
 प्रियनृत्यकथागीतज्ञानमास्यानुलेपनम् ।  
 मन्त्र्यमामर्शचिं हृष्टं तुष्टं बलिनमम्पयम् ॥ २२ ॥  
 चञ्चिताग्रकरं कर्म किं ददामोति वादिनम् ।  
 रत्नस्यभाषिणं वैद्यद्विजातिपरिभाषिनम् ॥ २३ ॥  
 अल्परोपं हृतगतिं विद्याश्वग्रहोतकम् ।

## अक्षराक्षसगृहीत लक्षणम्—

हास्यनृत्यप्रियं रौद्रचेष्टं छिद्रप्रहारिणम् ॥ २४ ॥  
 आक्रोशिनं दीघगतिं देवदिजभिपतिपम् ।  
 आत्मानं काष्ठशस्त्रादीर्जितं भोः शब्दवादिनम् ॥ २५ ॥  
 शास्त्रवेदपठं विद्याद् गृहीतं अक्षराक्षसैः ।

## राक्षसगृहीत लक्षणम्—

मक्रोददृष्टिं भृशुष्टिमुद्रहतं ससंभ्रमम् ॥ २६ ॥  
 प्रहर्तुं प्रभावतं ध्वस्तं भैरवाननम् ।  
 अप्राद्विनापि बलिनं नष्टनिद्रं निशाचरम् ॥ २७ ॥  
 निर्दक्षमगुचिं शूरं क्रूरं परपभाषिणम् ।  
 रोपणं रक्तमाल्पस्योरक्तमद्यामिपप्रियम् ॥ २८ ॥  
 दृष्ट्वा च रक्तं मांसं वा लिहानं दशनच्छदी ।  
 हृगतमन्नमाले च राक्षसाधिष्ठितं वदेत् ॥ २९ ॥

## पिशाचगृहीत लक्षणम्—

अस्यस्थचित्तं नैकत्र तिष्ठतं परिधाविनम् ।

उच्छिद्यन्त्युत्पन्नांघ्रवर्हाममधामिषप्रियम् ॥ ३० ॥

१ निर्भर्त्सनादीनमुखं रुदंतमनिमित्ततः ।

मर्त्यलिखंतमात्मानं रुक्षध्वस्तवपुःस्वरम् ॥ ३१ ॥

आवेदयंतं दुःखानि संबद्धाद्यद्वभाषिणम् ।

नष्टस्मृतिं धूम्यरतिं लोलं नग्नं मलौमसम् ॥ ३२ ॥

२ रघ्माचैलपरीधानं तृणमालाविभूषणम् ।

आरोहतं च काष्ठाश्वं तथा ३ संकरकूटकम् ॥ ३३ ॥

बह्वाग्निं पिशाचेन विजानीयादधिष्ठितम् ।

## प्रेतगृहीतलक्षणम्—

प्रेतावृत्तिक्रियार्गघं भीतमाहारविद्विषम् ॥ ३४ ॥

तृणच्छिदं च प्रेत्येन गृहीतं नरमादिषोऽ ।

## कुम्भाण्डाधिष्ठितलक्षणम्—

बहुप्रलाप कुम्भास्यं प्रविलंबितयायिनम् ॥ ३५ ॥

तूनप्रलंबवृषणं कुम्भाण्डाधिष्ठितं वदेत् ।

## निपादाधिष्ठितलक्षणम्—

गृहीत्वा काष्ठलोष्टादि भ्रमंतं चौरवामसम् ॥ ३६ ॥

नग्नं घावंतमुग्रस्तर्हष्टिं तृणविभूषणम् ।

धमसानशून्यायतनं रघ्यंकद्रुमसेविनम् ॥ ३७ ॥

तिलाधमद्यमांसेषु सततं सक्तलोचनम् ।

निपादाधिष्ठितं विद्याद् वदंतं परपाणि च ॥ ३८ ॥

१ निर्भर्त्सनात् भयदर्शकत्वान्यकथनात् । २ रघ्या प्रतोलो मार्गः । घंलं-

३ संकरकूटकम् । संकरः “कूंडा” इतिलोके कूटकोराधिः ।

## श्रीकिरणगृहीत लक्षणम्—

माचंतमुदकं चान्नं प्रस्तालोहितलोचनम् ।  
उग्रवाक्यं च जानीयात्प्रमौकिरणादितम् ॥ ३६ ॥

## वेतालगृहीत लक्षणम्—

गंधमात्सरति मरत्यवादिनं परिबेपिनम् ।  
बहुचिच्छिद्रं च जानीयाद्वेतालेनैवघ्नीकृतम् ॥ ४० ॥

## पितृग्रहगृहीत लक्षणम्—

अप्रसन्नहर्षा दीनवदनं क्षुप्ततालुचम् ।  
चलन्नयनपदमार्गं निद्रालुं भंदपावकम् ॥ ४१ ॥  
अपमध्यपरीधानं तिलमासगुडप्रियम् ।  
स्खलद्वाचं च जानीयात् पितृग्रहवर्षाकृतम् ॥ ४२ ॥

## गुर्वादीनांशापाद्यनुसारेण ग्रहविज्ञानम्—

गुरुष्वृद्धपिसिद्धाभिघ्नाफचितानुरूपतः ।  
व्याहाराहारचेष्टाभिर्व्यास्यं तदग्रहं वदेत् ॥ ४३ ॥

## असाध्यलक्षणम्—

कुमारवृंदानुगतं नयमुद्धतमूर्धजम् ।  
अस्वस्थमनसं दैर्घ्यकालिकं तं ग्रहं स्पृजेत् ॥ ४४ ॥

## पञ्चमोऽध्यायः ।

अथाऽतो भूतप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अहिंसाकामभूतस्य ज्ञपादिभिर्जन्यः—

“भूतं जयेदहिंसेच्छं जपहोमचलिप्रवृत्तः ।

ततःशीलसमाधानज्ञानदानदयादिभिः ॥ १ ॥

ग्रहापहाः प्रयोगाः—

हिगुव्योपाल<sup>१</sup>नेपालोल्लुनाकंजटाजटाः ।

अजलोमी सगोलोमी भूतकेची वचा लता ॥ २ ॥

कुङ्कुटी सर्पगन्धाख्या तिलाः काणविकाणिके ।

वज्रप्रोक्ता वयस्या च शृङ्गी मोहनवत्पि ॥ ३ ॥

स्रोतोजांजनरत्नोर्ध्वं रक्षोर्ध्वं चान्यदोपधम् ।

सराश्वश्वाविदुर्ध्वगोधानकुलशल्पकान् ॥ ४ ॥

द्वीपिभार्जारणोसिंहव्याघ्रमाधुदसत्त्वतः ।

चर्मपित्तद्विजनसा वर्मोऽस्मिन् माययेद्वृत् ॥ ५ ॥

पुराणमथवा तैलं नदं सराननस्ययोः ।

अभ्यगे च प्रयोक्तव्यमेपां धूर्णं च धूपने ॥ ६ ॥

१ समाधानं मनसो बाह्यविषयेभ्यो निवारणम् । २ नेपाली मनःशिला  
अथवा कस्तूरी । अर्कजटा-अर्कमूलम् । जटागन्धमामी । अजलोमी-श्वेतदूर्वा  
गोलोमी-दूर्वा, भूतकेची-मांसी । लता प्रियङ्गुः । कुङ्कुटी शितिवारकः-कुङ्कुट-  
सहस्रवन्दा । सर्पगन्धा वर्षानुष्ठानाकारा । काणविकाणिके वासोवीक्षीरकाकोष्ठी  
वज्रप्रोक्ता-वज्रचन्द्र । वयःस्यामुद्ग्वो शृङ्गी, अतिविषा कर्कटशृङ्गी वा, मोहन  
वह्नी-वटपत्राः ।

एभिश्च गुटिकां युज्यादंजने सावपीडने ।  
 प्रनेपे कल्कमेतेषां कायं च परित्येचने ॥ ७ ॥  
 प्रयोगोऽयं ग्रहोन्मादान्तापस्माराच्छ्रमं नयेत् ।

नावनादि—

गजाद्धापिप्पलीमूलव्योषामतकसर्पपान् ॥ ८ ॥  
 गोघानकुलमार्जारस्तपपित्तपेपितान् ।  
 नावनाभ्यगसेकेषु विदधीत ग्रहापहाव् ॥ ९ ॥

सिद्धार्थकं घृतम्—

सिद्धार्थकं वचा हिगु प्रियंगुरजनाड्यम् ।  
 मंजिष्ठा श्वेतरुटभी वचा श्वेतादिकर्णिका ॥ १० ॥  
 निवस्य पत्रं बीजं तु नक्तमाशशिरीषयोः ।  
 सुराहं व्यूषणं सर्पिर्गोमूत्रे सैन्धुतुर्गुणैः ॥ ११ ॥  
 सिद्धं सिद्धार्थकं नाम पाने नस्ये च योजितम् ।  
 ग्रहान्तर्वाप्तिहृत्याशु विक्षेपादासुरान् ग्रहान् ॥ १२ ॥  
 वृत्त्यालक्ष्मीविषोन्मादज्वरापस्मारपाप्म च ।

एभिरगद् प्रयोगः—

एभिरेवोपधैवंस्तवारिणा कल्पितोऽगदः ॥ १३ ॥  
 पाननस्याजनालेपस्तनोद्धर्षणयोजितः ।  
 गुणैः पूर्ववदुद्दिष्टो राजद्वारे च सिद्धवत् ॥ १४ ॥

शुद्धकाः—

सिद्धार्थकव्योपवचाश्वगधा  
 निशाद्वयं हिगुपलांडुर्बदम् ।  
 बीजं करंजातुगुमं शिरीषात्  
 फलं च वल्गुश्च कपित्थवृक्षात् ॥ १५ ॥

समाणिमयं मनतं मनुष्यं  
 स्योनाकमूलं किण्वही मिता<sup>१</sup> च ।  
 वस्तस्य मूत्रेण विभावितं तत् ।  
 पित्तेन गन्धेन गुडान् विदध्यात् ॥ १६ ॥  
 दुष्टग्रणोन्मादतमोनिघांघा-  
 नुद्वदकान् वारिनिमग्नदेहान् ।  
 दिग्घाहतान् दधितमपदष्टा-  
 स्ते माषयत्यंजननस्यलेपः ॥ १७ ॥

### स्कन्दादिघ्नं धूपनम्—

<sup>१</sup>फापीमास्थिमयूरपिच्छवृहतीनिर्मन्यपिडीतक-  
 त्वाद्मांसीवृकदंशविट्पुषकांशाहिनिर्मोचनैः ।  
 नागेन्द्रजिह्वगृहिगुमरिचस्तुल्यैः कृतं धूपनं  
 स्वदोन्मादपिघ्नाचराक्षसमुरावेगज्वरघ्नं परम् ॥ १८ ॥

### भूतघाराह्वयं पानम्—

<sup>२</sup>त्रिवटुकदलकुङ्कुमग्रंथिकशारनिही-  
 निघादाशमिद्वार्धगुग्मायुजक्लाह्वयैः  
 मितलघुनफलत्रयोनीरतित्तावका-  
 नुत्ययष्टीबलालोहितैलाशिलापदमकैः ।  
 दधितगरमधूकमारप्रियाह्वाविपाख्या-  
 विपाताक्ष्यशैलैः सचव्यामयैः  
 कस्तिर्तपृतमनवमदोषमूत्रांशसिद्धं मतं  
 भूतरावाह्वयं पानतस्तद् ग्रहणं परम् ॥ १९ ॥

१ मिता-श्वेतद्रुवी ।

२ उद्वदकान् दत्तगलपाद्यान् 'फांसी' । ३ निर्माल्यं शिवनिर्मान्यमिति शिवदामः ।  
 स्पृक्का इति वाचस्पत्याभिधानम्, वृकदंशविट् भार्जारविष्टा । अहिनिर्मोचनं 'मांष-  
 का केचुर' । नागेन्द्र द्विजो गजदन्तः । ४ दलं पत्रम् । मिद्वार्धगुग्मं सर्वपद्वयम्  
 मितं श्वेतचन्दनम् । लोहिता मञ्जिष्ठा, प्रियाह्वा प्रियंगुः । विपा अत्रिविपा, विपा  
 बालोलो लाङ्गुली वा, सप्राह्व इन्द्रयवः । तार्यक्षैलम् रमाञ्जनम् । आमयकुष्ठम्

## महाभूतरावसंज्ञकं घृतम्—

नतमधुकरंजलाक्षापटोलीममंगावचा-  
 पाटलीहिंगुसिद्धार्थीतिहीनिद्यायुगलवारोहिणी-  
 वदरकटुफलत्रिकाकांडाकटुमिन्ताजगंधा-  
 मरकोल्लकोद्यातर्फीतिप्रुनिवांबुद्धेद्राह्वयैः ।  
 गदशुकतल्लपुष्पबोजोग्रपष्टघट्टिकर्णोतिर्कुंभा-  
 शिबिल्वैः मर्गैः कल्कितैर्मूत्रवर्णैश्च सिद्धं घृतम् ।  
 विधिविनिहितमाद्यु सर्वैः क्रमैर्योजितं हंति  
 मध्वग्रहोन्मादकुष्ठज्वरास्तन्महाभूतरावं स्मृतम् ॥ २० ॥

## ग्रहग्रहणदिने बल्यादि—

ग्रहा गृह्णन्ति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः ।  
 दिनेषु बलिहोमादीन्प्रयुजीत चिकित्सकः ॥ २१ ॥  
 स्नानवस्त्रवमामासमद्यश्चैरगुडादि च ।  
 रोचते यद्यदा येभ्यस्तत्तेषामाहरेत्तदा ॥ २२ ॥  
 रत्नानि गन्धमाग्यानि बीजानि मधुमपिपी ।  
 भक्ष्याश्च सर्वे सर्वेषां सामान्यो विधिर्निरूप्यम् ॥ २३ ॥

## सुरादिभ्योबलिदानस्थानानि—

मुरपिगुरुवृद्धेभ्यः सिद्धेभ्यश्च सुरास्रये ।  
 दिश्वुत्तरस्यां तत्राऽपि देवाद्योपहरेद्बलिम् ॥ २४ ॥  
 पश्चिमायां यथाकालं दैत्यभूताय धत्तरे ।  
 मध्वर्वाय गवां मार्गे सवस्त्राभरणं बलिम् ॥ २५ ॥  
 पितृनागप्रदे नद्यां, नागेभ्यः पूर्वदक्षिणे ।  
 यथायं यथायतने सरितोर्वा समागमे ॥ २६ ॥

१ मिही कण्टकारिका । लता-दूर्वा । कटुः “कुटकी” । २ अपरा गुह्यो  
 निर्गुणोऽयं । इन्द्राक्षयः कुटजः । गदः कुष्ठम् । शुकतल्लसिरोपः । जगं बज्रः ।  
 अश्विर्णो अपराजिता । ३ यथायतने घटवृक्षे ।

चतुष्पथे राक्षसाय भीमेषु गहनेषु च ।

रक्षसां दक्षिणस्या तु, पूर्वस्यां ग्रह्यरक्षसाम् ॥ २७ ॥

सू-बालमे विशाचाय पश्चिमां दिक्षमास्तिषते ।

देवादीनां बलिद्रव्याणि—

क्षुचिशुबजानि मात्स्यानि गंधाः क्षीरेयमोदनम् ॥ २८ ॥

दधि छत्रं च धवलं देवानां बलिरिष्यते ।

घृतम्—

हिरण्यपपहर्षाम्योषैरर्भपलोन्मिर्तः ॥ २९ ॥

चतुर्गुणे गवां मूत्रे घृतप्रस्यं विपाषयेत् ।

तत्पाननावनाभ्यंगदैर्ग्रहविमोक्षणम् ॥ ३० ॥

नन्दाज्जनं वचाहिरुलगुनं वस्तवारिणा ।

क्षेत्रे बलिर्बहुफलः क्षीरकम्पलोत्पलः ॥ ३१ ॥

नागानां मुमनोलाजगुडापूपगुडीदतैः ।

परमाग्नमधुक्षारवृष्णमूत्रागकेमरैः ॥ ३२ ॥

वचापपपुरोक्षीररक्तोत्पलदलैर्वलिः ।

श्वेतपत्रं च रोध्रं च तगरं नागमर्षपाः ॥ ३३ ॥

क्षीरेण वारिणा पिष्टं नावनाभ्यंगयोहितम् ।

यक्षाणां क्षीरदध्याज्यमिश्रकोदनगुगुलुः ॥ ३४ ॥

देवशक्तुपलं पंचमुक्षीरं वस्त्रकाचनम् ।

हिरण्यं च बलिर्घोर्ज्या,

मूत्राज्यक्षीरमेकतः ॥ ३५ ॥

मिष्टं ममोन्मिर्तं परित्नावनाभ्यंगने हितम् ।

हरीतक्यादि नावनादि—

हरीतकी हर्षिद्रे द्वे लघुनो मरिचं वचा ॥ ३६ ॥

१ परमान्नं तण्डुलदुग्धवृजं क्षीरम् । श्वेतपत्रं शुक्लामलम् । नागः—नागर  
मुस्ता, नागवेनरो वा ।



निवपत्रं च वस्तांबुलिकतं नायनांजनम् ।

महारक्षोबलिः १ सिद्धं यवानां पूर्णमाढकम् ॥ ३७ ॥

तोयस्य कुम्भः पललं छत्रं वस्तं विलेपनम् ।

घृतपानम्—

गायत्रीविंशतिपलक्वाथेऽर्धपलिकैः पचेत् ॥ ३८ ॥

श्रूपणत्रिकलाहिगुपद्ग्रंथामिशिसर्पपैः ।

मनियपत्रलघुनैः कुडवाग्सम सपिपः ॥ ३९ ॥

गोमूत्रे त्रिगुणे पाने नस्याम्यंगेषु तद्धितम् ।

रक्षसां १ पललं शुक्लं कुमुमं मिश्रकीदनम् ॥ ४० ॥

बलिः पक्वाममासानि निष्पावा रुधिराक्षिता ।

नस्याञ्जने—

नक्तमालशिरीषखड्मूलपुष्पफलानि च ॥ ४१ ॥

तद्वच्च कृष्णपाटल्या विस्वमूलं कटुत्रिकम् ।

हिंशिद्वयवसिद्धार्धलघुनामलकीफलम् ॥ ४२ ॥

नायनांजनयोर्गोम्यो वस्तमूत्रमुतोऽगवः ।

१ एभिरेव घृतं सिद्धं गवा मूत्रे चतुर्गुणे ॥ ४३ ॥

रक्षोमहान् वारयते पानार्थजननावनैः ।

विशाचानां बलिः क्षीघ्रुपिण्याकः १ पललं दधि ॥ ४४ ॥

घृतम्—

मूलकं लवणं सफिः १ मभूतोदनयावकम् ।

हृदिद्राद्वयमजिष्ठांमिशिसंघवनागरम् ॥ ४५ ॥

१ सिद्धमिति—यवै पूर्णपक्वपात्रम् । सिद्धं पक्वम् । आढकम्पात्रम् । आढक-  
रक्षोऽथ पात्रवाचकोननुमानवाचकः । पात्रमत्र क्षरावं सच्च पक्वं न त्वामम् ।  
२ पललं तिलरिष्टिः । मिश्रकीदनम्—मातेन सह पक्वमोदनम्, मांनवा । ३ भूतीदन-  
मासीदनम् । यावकं—यवतमत्रम् ।

हिमप्रियंगुत्रिकटुरसोनत्रिफला वचा ।

पाटलाश्वेतकटभीशिरोपद्ममुमैर्धृतम् ॥ ४६ ॥

गोमूत्रपादिकं सिद्धं पानाम्भजनयोहितम् ।

वस्तांबुपिष्टैस्तीरेव योज्यमंजननाचनम् ॥ ४७ ॥

**देवादौतवर्ज्यावर्ज्ये—**

देवापिपितृगंधर्वे तीक्ष्णं नस्यादि वर्जयेत् ।

मपि पानादिमृदस्मिन् भैषज्यमवचारयेत् ॥ ४८ ॥

**देवादौ प्रतिकूलाचरणनिषेधः—**

ऋते पिशाचास्मर्वेषु प्रतिकूलं च नाचरेत् ।

मर्वद्यमातुरं ध्मात्, क्रुद्धास्ते<sup>१</sup> हि महोजसः ॥ ४९ ॥

**जपः—**

ईश्वरं द्वादशभुजं<sup>२</sup> नारमार्गावलोकितम् ।

मर्वन्माघिचिक्लिप्तं जपन् सर्वग्रहान् जयेत् ॥ ५० ॥

तथोग्मादानपस्मारानर्घ्यं वा चित्तविल्लवम् ।

महाविद्यां च मामूरीं शुचिं तं श्रावयेत्सदा ॥ ५१ ॥

**पूजनम्—**

भूतेषां पूजयेत् स्थाणुं<sup>३</sup> प्रमथास्थात्र तद्गणान् ।

जपन् मिडांश्च तन्मन्त्रान् ग्रहान्सर्वानपोहति ॥ ५२ ॥

**वक्ष्यमाणं हितम्—**

यन्जानन्तरयोः किञ्चिद्वक्ष्यतेऽभ्यासयोहितम् ।

यन्बोक्तमिह तत्सर्वं प्रयुज्येत परस्परम् ॥ ५३ ॥

१ ते देवादयः । महोजसो महाप्रभावाः । २ आर्यं धेष्टम् । अवलोकितारूपम् । “मर्वन्माघिचिक्लिप्ता च” इति पाठान्तरम् । अवलोकितारयः कश्चिद्बोद्धाचार्यः । चित्तविल्लवं बुद्धिविभ्रंशम् । ३ बुद्धदेवतां मामूरीं विद्याम् । भूतेषां प्राणिनामीषां विष्णुं । स्थाणुं महादेवम् । तन्मन्त्रान् विष्णु महादेव मन्त्रान् अष्टाङ्गाष्टाशदीन् । ४ अनन्तरयोस्त्वेमादापस्मारार्पितेपेवाह्वयोः ।

## पष्ठोऽध्यायः ।

अथाऽत उन्मादप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

पञ्चदुत्मादाः—

"उन्मादाः पट् पृथग्दोषनिचयौघिविषोदभवाः

उन्मादरवरूपम्—

उन्मादो नाम मनसो दोषैरुन्मार्गगमदः ॥ १ ॥

निदानपूर्विकोन्मादसम्प्राप्ति—

द्यारोरमानसैर्दुष्टैरहितादन्नपानतः ।

विकृतासात्म्यममलाद्विषमादुपयोगतः ॥ २ ॥

विषमन्याल्पमत्वस्य व्याधिवेगसमुद्गमात् ।

क्षीणस्य चेष्टावंपम्यात्पूज्यपूजाभ्यतिक्रमात् ॥ ३ ॥

आधिभिभ्रित्तविभ्रंशाद् विषेणोपविषेण च ।

एभिर्विहीनसत्त्वस्य हृदि दोषाः प्रदूषिताः ॥ ४ ॥

धियो विधाय कालुष्यं हृत्या मार्गान् मनोबहान् ।

उन्मादं कुर्वते तेन धीविज्ञानस्मृतिभ्रमात् ॥ ५ ॥

देहो दुःखमुखभ्रष्टो भ्रष्टसारधिवदयः ।

भ्रमत्वचितितारभः,

धातोन्माद लक्षणम्—

तत्र वातात्क्यांगता ॥ ६ ॥

अस्थाने रोदनाक्रोशहसितस्मितनर्तनम् ।

गं तवादिप्रवागंगविधेनास्फोटनानि च ॥ ७ ॥

१ असाग्ना वेणुवीणादिशब्दानुकरणं मुहुः ।  
 आस्यात्फेनागमोऽस्त्रमटनं बहुभाषिता ॥ ८ ॥  
 अलंकारोनलकारैर्यानैर्गमनोद्यमः ।  
 गृहिरन्म्वहायेषु तल्लाभे वावमानता ॥ ९ ॥  
 २ उत्पिण्डताह्णाक्षित्वं जीर्णे चाग्ने गदोद्भवः ।

### पित्तोन्माद लक्षणम्—

पित्तास्तंतर्जनं क्रोधो मुष्टिलीष्टाद्यभिद्रवः ॥ १० ॥  
 शीतच्छायादकाकाक्षा नष्टत्वं पातवर्णता ।  
 धसत्यञ्ज्वलनज्वालातारकादीपदर्शनम् ॥ ११ ॥

### कफोन्माद लक्षणम्—

कफादरोचकण्ठदिरत्येहाहारवाच्यता ।  
 स्त्रीकामता रह प्रीतिर्लासिबाणकस्त्वृतिः ॥ १२ ॥  
 वैभस्वं दौचविद्वेषो निद्रा श्वययुरानने ।  
 उन्मादो बलवान् रात्री मुक्तमात्रे च जायते ॥ १३ ॥

### सन्निपातोन्माद लक्षणम्—

१ सर्वायतनमस्यानमनिताने तदारमकम् ।  
 उन्मादं वारुणं विद्यात् त भिषगपरिवर्जयेत् ॥ १४ ॥

### शोकोन्माद लक्षणम्—

घनकातादिनाशेन दुःमहेनाभिपगवान् ।  
 पाण्डुरीनो मुहुर्मुह्यन् हाहेति १ परिदेवते ॥ १५ ॥

१ असाग्ना-उच्चैः । २ उत्पिण्डतेति-अश्विनोऽस्त्रमटनं पिण्डमावाऽह्णत्वं च ।  
 रहः-गन्तः । सिबाण-शोनामामलम् । ३ सर्वाणि त्रिदोषविषयाणि आयतनानि  
 कारणानि मस्यानानि लिङ्गानि यस्मिन्मन्निपाते तत्तयोक्तम् । तदारमकं सन्निपातो-  
 त्मा मुन्मादम् । ४ परिदेवने विवशं करोति ।

रोद्रियकस्मान्निघ्नयते तद्गुणान् बहु मन्यते ।

शोकविलष्टमना ध्यायन् जामहसो विचेष्टते ॥ १६ ॥

विषोन्माद लक्षणम्—

विषेण श्वावबदनो नष्टज्जयावलेंद्रियः ।

वेगातरेऽपि संभ्रातो रक्ताक्षस्तं विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

चिकित्सा :—

अवाग्लज्ज उन्मादे स्नेहपानं प्रयोजयेत् ।

पूर्वमापृतमार्गे तु मस्नेहं शृङ्ग साधनम् ॥ १८ ॥

कफपित्तभवेऽप्यादौ वमनं मध्विरेचनम् ।

स्निग्धस्विन्नस्य यस्ति न क्षिरत मध्विरेचनम् ॥ १९ ॥

तथास्य क्षुब्धदेहस्य प्रसादं लभते मनः ।

अनुष्टुभीनाक्षणावनादि :—

इत्यमप्यनुष्टुभी तु तं क्षणं नाकनमजतम् ॥ २० ॥

हर्षणाश्वाभनोत्प्राभभयताडनतर्जनम् ।

अभ्यंगोद्धर्तनालेपधूमान् पानं च मर्षिणः ॥ २१ ॥

युज्यात्तानि हि दुष्टस्य नयन्ति प्रकृतिं मनः ।

घृतम्—

हिगुनीवर्चलग्नापीद्विपलाशीर्षृगाडकम् ॥ २२ ॥

मिद्धं ममृगमुन्मादभूतापस्मारानुत्परम् ।

ब्राह्मीघृतम्—

द्वौ प्रस्थां सःरमाद् ब्राह्म्या घृतप्रस्थं च गाधितम् ॥ २३ ॥

व्योपश्यामात्रिवृत्तीश खगुणीनृपद्मैः ।

ममसलानुमिहरे कतिवर्तंरक्षयमितिः ॥ २४ ॥

पलवृद्धया प्रयुज्जितं परं मात्राचतुष्पलम् ।

उन्मादकुष्ठापस्मारहरं वंज्यामुतप्रदम् ॥ २५ ॥

१अमाग्ना वेणुगोणादिसञ्चानुकरणं मुहुः ।  
 आस्यात्केतागमोज्ज्वलमर्तनं बहुभाषिता ॥ ८ ॥  
 खलंकारोनलंकारस्मानैर्गमनोद्यमः ।  
 शुद्धिरभ्यवहार्येषु तल्लाभे यावमानता ॥ ९ ॥  
 २उत्पिष्टाणुशक्तिं धीर्णं चाग्ने गदोद्भवः ।

### पित्तेन्माद लक्षणम्—

पित्तामृतर्जनं क्रोपो मुष्टिर्गोष्ठाद्यभिद्रवः ॥ १० ॥  
 द्यौनच्छायोदकाकाक्षा नलत्वं पोतवर्णता ।  
 अमत्यञ्जलनज्जालातारकादीपदर्शनम् ॥ ११ ॥

### कफोन्माद लक्षणम्—

कफादरोचकश्लक्ष्णिरल्पेहाहारवाक्यता ।  
 स्त्रोकामता रट् प्रीतिर्लालामिवाथकस्फुतिः ॥ १२ ॥  
 वैमन्थ्यं शोचोवद्वेषो निद्रा शय्यधुरानने ।  
 उन्मादो बलवान् रात्रौ भुक्तमात्रे च जायते ॥ १३ ॥

### सन्निपातोन्माद लक्षणम्—

१मर्त्रायतनमस्त्वानमनिरात्रे तदात्मकम् ।  
 उन्मादं दारुणं विद्यात् त भिद्यन्नरिवर्जयेत् ॥ १४ ॥

### शोकोन्माद लक्षणम्—

घनकातादिनाशेन दुःमहेनाभियंगनान् ।  
 पाण्डुरीनो मुहुर्मृगन् हाहेति ३परिदेवते ॥ १५ ॥

१ अमाग्ना-उन्मत्तः । २ उत्पिष्टतेति-अश्वगोक्ष्णतपिष्टभावाऽरुणत्वं च ।  
 रट्-नृपान्तः । मिषाणुकोनामामलम् । ३ मर्त्राणि त्रिदोषविषयाणि आवतनानि  
 कारणानि मस्यानानि लिङ्गानि तस्मिन्सन्निपाते तत्तरोक्तम् । तदात्मकं मन्त्रिणाता-  
 त्मा मुन्मादम् । ४ परिदेवते विलापं करोति ।

रोदित्यक्स्मान्निनयते तद्गुणान् बहु मन्यते ।  
शोकवितृष्टमना ध्यायन् जागरूको विचेष्टते ॥ १६ ॥

विषोन्माद लक्षणम्—

विषेण श्याववदनो नष्टज्जायाबलेंद्रियः ।  
वेगात्तरेऽपि मंभ्रातो रत्ताशस्त विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

चिकित्सा :—

अथानिग्ज उन्मादे स्नेहपानं प्रयोजयेत् ।  
पूर्वमावृतमार्गे तु मस्नेहं मृदु घाघमम् ॥ १८ ॥  
कफपित्तभयेऽध्यादौ यमन सयिरेचनम् ।  
स्निग्धम्विन्नस्य वस्ति च शिरसि सविरेचनम् ॥ १९ ॥  
तथास्य शुद्धदेहस्य प्रमादं लभते मनः ।

अनुपृत्तीनां दण्डनावनादि :—

इत्थमप्यनुवृत्ती तु तं क्षण नावनमजनम् ॥ २० ॥  
हर्षणाश्चामनोत्त्राभयताडनतर्जनम् ।  
अभ्यगाद्वर्तनालेपधूमान् पान च सविष ॥ २१ ॥  
युग्मात्तानि हि शुद्धस्य नयति प्रकृतिं मनः ।

घृतम्—

हिगुमीवचंतम्योपीद्विपलाक्षीर्घृताडकम् ॥ २२ ॥  
मिद्व गमूत्रमुन्मादभूतापस्मारनुत्परम् ।

ब्राह्मीघृतम्—

द्वौ प्रस्थां सारमाद् ब्राह्म्या घृतप्रस्थं च माधितम् ॥ २३ ॥  
व्योपश्यामात्रिवृत्तीशंखपुष्पीनृषद्रुमैः ।  
ममसलाहमिहरेः कलिकर्तृरक्षममितैः ॥ २४ ॥  
पल्लवृद्धया प्रयुंजीत परं भात्राचतुष्पलम् ।  
उन्मादवृष्टास्मारहर वध्यामुत्तप्रदम् ॥ २५ ॥

वाक्स्वरस्मृतिमेषावृद् धन्यं माह्वीधृतं स्मृतम् ।

कल्याणकं घृतम्—

१वराविद्यालामट्टिलादेवदावेलवालुकः ॥ २६ ॥

द्विसारिवाद्विरजनीद्विस्थिराफत्तिनोनतः ।

बृहतीनुष्ठमजिष्ठानामकेनरदादिमैः ॥ २७ ॥

घेस्ततालीगपत्रीलामातृतीमुकुण्डोत्तलः ।

सदत्तापचकहिमैः कर्पासैः सर्पिषः पचेत् ॥ २८ ॥

प्रस्यं, भूतशहोन्मादकातापस्मारपाप्मम् ।

पाण्डुकःशूबिषे शोके मोहे मेहे गरे उबरे ॥ २९ ॥

अरेतस्यप्रजमि वा दैवोपहृतचेतमि ।

अमेधमि स्खलद्वाचि स्मृतिकामेऽन्यपावके ॥ ३० ॥

वस्यं मंगस्यमायुष्य कांतिमीभाग्यपुष्टिदम् ।

कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंमवनेषु च ॥ ३१ ॥

महाकल्याणकं घृतम्—

एभ्यो द्विसारिवादीनि जले पक्वैर्कविशतिः ।

रसे तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गुष्टिंक्षीरचतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥

वीराद्विमेदाकाकोलीकपिकच्छूबिषाणिभिः ।

दूर्पपर्णीगुतरेतन्महाकल्याणकं परम् ॥ ३३ ॥

बृहणं संनिपातघ्नं पूर्वस्मादधिकं गुणैः ।

महापेशाचकं घृतम्—

१जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा ॥ ३४ ॥

त्रायमाणा जया<sup>२</sup> वीरा क्षीरकः कटुरोहिणी ।

कायस्था शुकरी छत्रा अतिच्छत्रा फलंवपा ॥ ३५ ॥

१ भट्टिला बृहद्दला । द्विसारिवा श्वेतकृष्णभेदेन । द्विस्थिरा शालपर्णी पृश्निपर्णी । २ गुष्टिः सकृत्प्रमुताग्नीः । ३ जटिला जटामासी । पूतनाहरीतकी । केशी मांसी भेदः । चारटी पञ्चचारिणी । पद्मशृणालमित्यन्ये मर्कटी कपिकच्छूः । ४ जया अरणी । वीराकाकोली, कायस्था क्षीरकाकोली । छत्रा घान्यवम् । अनिच्छत्रा शतपुण्या । शुकरी बृद्ध दासकः । महापुरणदत्ता शतावरी । वयस्था आमलकी । नाकुलीद्वय मपक्वी सर्पगुग्गुला च, रास्नाद्वयमितिकेचित् ।



महापुरुषदंता च वयस्था नापुल्लीद्वयम् ।

कंटभरा वृश्चिकाली घालिपर्णी च तैर्घृतम् ॥ ३६ ॥

सिद्धं चातुर्विकोन्मादप्रहापस्मारनाशनम् ।

महापैशाचकं नाम घृतमेतद्यथामृतम् ॥ ३७ ॥

बुद्धिमेघास्मृतिकरं बलानां चांगवर्धनम् ।

**वर्तिरुन्माद सूदनी -**

ग्राह्योर्मैत्रीविडंगानि व्योषं हिशु जटं मुराम् ॥ ३८ ॥

राजा विदास्यां लक्षुनं विपद्नां मुरनां वज्रम् ।

ज्योतिष्मती नागविश्रामनंतां महरीवकीम् ॥ ३९ ॥

काञ्ची च हस्तिमूत्रेण पिष्ट्वा छायाविशोषिता ।

वर्तिरुन्मादजनानेषधूपैरुन्मादगूदनी ॥ ४० ॥

**अवपीडादि :-**

अवपीडाश्च विविधाः सर्पपाः स्नेहसंपुताः ।

कटुर्मेनेन चाभ्यंगो द्वापयेच्चास्य तद्रजः ॥ ४१ ॥

महिगुस्तीक्ष्णधूमश्च धूपस्त्वानोदितो हितः ।

**धूमादिकम् -**

शृगालदाल्यकोलुकजलीकावृषवस्तजैः ॥ ४२ ॥

मूत्रपित्तशङ्खोमनलचर्मभिराचरेत् ।

धूपधूमाजनाभ्यंगप्रदेहपरिषेवनम् ॥ ४३ ॥

**श्वगोमत्स्यैर्धूप :-**

धूपयेत्मततं चैनं श्वगोमत्स्यैस्तु पूतिभिः ।

चातश्लेष्मात्मके प्रायः,

१ कटभरा-कटमी प्रसारणी वा । वृश्चिकाली श्वेतपुननर्षा ।

२ विपद्ना अतिविषा । विदास्या लाङ्गली । नागविन्ता नागवन्ती वृश्चिक-  
पर्णीवा, काञ्ची रजनी वा "किटकरी" इतिलोके ।

## भूतोन्मादे भूतौषधम्—

भूतानुबोधमं क्षेत्रं प्रोक्तं विद्याधिराकृतिम् ॥ ५५ ॥

यद्युन्मादे ततः कुर्याद्भूतनिदिष्टौषधम् ।

वर्णितः—

वर्णितं च दद्यात्पल्लवं यावत् सप्तनुपिडिगाम् ॥ ५६ ॥

क्षिप्थ मधुरमाहारं तंडुलान् रुधिरशितान् ।

पक्वामफानि गोसानि मुगधैरेवमागवम् ॥ ५७ ॥

अतिमुक्तस्य पुष्पाणि जातयाः सहचरस्य च ।

चतुष्पाथे गवा तीर्थे नदीनां सगमेषु च ॥ ५८ ॥

उन्मादाप्राप्तीहेतुः—

निवृत्तामिषमद्यो यो हिताशी प्रयत शुचिः ।

निजागंतुभिर्हन्मादैः सत्त्ववाप्त न युज्यते ॥ ५९ ॥

विगतोन्माद लक्षणम्—

प्रगाद इन्द्रियाधीना युद्धघातमगता तथा ।

भानूनां प्रकृतिस्त्वन्त विगतोन्मादलक्षणम् ॥ ६० ॥

१ प्रोक्तं पदं विषादोन्मादस्य निदोन्मादोऽपि कदाचित् निर्दिष्टं मत्स्याम् ।

२ अतिमुक्तः माधवीलता ।

## सप्तमोऽध्यायः ।

अथाऽतोऽपस्मारप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अपस्मार लक्षणम्—

"स्मृत्यपायो ह्यपस्मारः स धीमद्वर्षाभिसंज्ञयात् ।  
जायतेऽभिहृते वित्ते चिन्ताशोकमयादिभिः ॥ १ ॥  
उन्मादवत्प्रकुपितैश्चित्तदेहगर्वमलैः ।  
हृते सत्त्वे हृदि व्याप्ते संज्ञाबाहिष्य खेपु च ॥ २ ॥  
तमोविशन्मूढमतिर्वोभ्रसाः कुरुते क्रियाः ।  
हन्तान् खादन् वमन् फेनं हस्ती पादौ च विक्षिप्तम् ॥ ३ ॥  
प्राग्ग्रसन्ति रूपाणि प्रस्वलन्पतन्ति क्षिती ।  
विजिह्वाक्षिभ्रूवो दोषवेगेऽतीते विबुध्यते ॥ ४ ॥  
कालांतरेण स पुनश्चैवमेव विवेष्टते ।

अपस्मारस्य चातुर्विध्यम्—

अपस्मारश्चतुर्मेदो वाताद्यनिषयेन ॥ ५ ॥

पूर्वरूपम्—

रूपमुत्पित्तमानेऽस्मिन् हृत्कपः धून्यता भ्रमः ।  
तमो दर्शनं ध्यानं भ्रूव्युदासोऽशिवैरुत्तम् ॥ ६ ॥  
अशब्दश्रवणं स्वेदो लालासिंघाणकसूतिः ।  
अविपाकोऽरुचिर्भूर्छा कुर्यादोपो बलशयः ॥ ७ ॥  
निदानार्थोऽगमर्दस्तृट् स्वप्ने गानं सनर्तनम् ।  
पानं मद्यस्य सैलस्य तयोरेव च मेहनम् ॥ ८ ॥

## वातजापस्मार लक्षणम्—

तत्र वातात्स्फुरत्सविथ प्रपतंश्च मुहुर्मुहुः ।  
 अपस्मारेति संज्ञां च लभते विस्वरं रुदन् ॥ ९ ॥  
 'उत्पिण्डिताक्षः श्वसिति फेनं वमति कंपते ।  
 आधिष्यति शिरो र्ततान् दद्यत्वाध्मातर्कधरः ॥ १० ॥  
 परितो विक्षिपत्यंगं विपमं विनतागुलिः ।  
 हृक्षयवाधारणाक्षित्वङ्गनास्यः कृष्णमीक्षते ॥ ११ ॥  
 चपलं परुषं रुधं विरुपं विकृताननम् ।

## पित्तजापस्मार लक्षणम्—

अतस्मरति पित्तेन मुहुः संज्ञां च विदति ॥ १२ ॥  
 पीतफेनाक्षिवक्त्रस्यगास्फालयति<sup>१</sup> भेदिनीम् ।  
 भैरवाशीतर्हपित्तपदार्थो नृपान्वितः ॥ १३ ॥

## कफजापस्मार लक्षणम्—

कफान्चिरेण ग्रहणं चिरेणैव विबोधनम् ।  
 चेष्टाश्रया भ्रूयसी लाला क्षुब्धनेत्रनखास्पता ॥ १४ ॥  
 क्षुलाभरूपदक्षित्व,

सर्वस्त्रिं तु वर्जयेत् ।

## अपस्मार चिकित्सा—

अपाऽऽवृताना धीचित्तहृत्त्वानां प्राक्प्रबोधनम् ॥ १५ ॥  
 तीक्ष्णैः कुर्यादपस्मारे कर्मभिर्वचनादिभिः ।  
 वातिकं वस्तिभूयिष्ठैः, पैशं प्रायो चिरेचनैः ॥ १६ ॥  
 श्लैष्मिकं वमनप्रायंरपस्मारश्रुपाचरेत् ।

प्रयोगाः—

मर्चतस्तु विगुहस्य सम्पगाशवासितस्य च ॥ १७ ॥

१ उत्पिण्डिताक्षः उदूष्यं पिण्डितमक्षियस्य । आचिन्त्यति-वक्त्रोररोति ।  
 २ अस्फालयति-ताडयति । ३ भैरवंभयजननम् । आदोहं ज्वलितम् । कंपतं  
 क्रोधापिष्टम् । ४ ग्रहणमपस्माराविर्भावः ।

अपस्मारविमोक्षार्थं योगान्मंशमनान् शृणु ।

लघुपट्टागव्यं घृतम्—

गोमयस्वरस्योदधिभूयैः शृतं दधिः ॥ १८ ॥

अपस्मारज्वरोग्मादक्षामलातरं विवेत् ।

महत्पट्टागव्यं घृतम्—

द्विपचमूलीत्रिफलाङ्गिनिदाहृष्टजम्बूचः ॥ १९ ॥

गन्धकंमपामार्गं नीलिनी वटुरोहिणीम् ।

शम्पातपुष्करजटाफैलुगूढदुरालभाः ॥ २० ॥

द्विपला. तन्निद्रोणे पक्त्वा पादावधोपिते ।

भार्गीपाठाढनीकुम्भनिबुभ्बरोपरोहिण्यैः ॥ २१ ॥

मूर्धाभूतिरुन्निवर्धयामोसारिवाद्भयैः ।

भदयस्यग्निनिचुलंरसाद्यै. सर्पिषः पचेत् ॥ २२ ॥

प्रस्थं तद्वद् द्रवैः पूवैः पंचपथ्यमिदं महत् ।

ज्वरापस्मारजठरभगंदरहर परम् ॥ २३ ॥

शोफार्थः कामलापाङ्गुन्मकामहापटम् ।

ब्रह्मचादिधृतम्—

ब्राह्मीरमवचादुध्रसंसपुष्पीशृतं घृतम् ॥ २४ ॥

पुराणं मेघमृन्मादालङ्क्यनस्मारपाप्मजित् ।

तैलघृते—

तैलप्रस्थं घृतप्रस्थं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ २५ ॥

क्षीरद्रोणं वचेदिगद्धमपस्मारविमोक्षणम् ।

अन्यद्घृतम्—

<sup>३</sup>कमे क्षीरेक्षुरमयोः वाक्मयैः षष्ठगुणे रसे ॥ २६ ॥

१ पल्लु वाष्टोदुम्बरिका । २ पूर्वर्द्धयैः-गोमयस्वरमादिभि । ३ कसे-आढके ।

कापिर्ज्ञीवनीयेत्येव सर्तिप्रस्थं विवाचयेत् ।  
 घातपित्तोद्भवम् क्षिप्रमाग्न्यारं निर्हन्ति ननु ॥ २७ ॥  
 तद्वत्तज्जनिदारीभुङ्क्तुमक्षयशृतं पयः ।

**धूममाण्डघृतम्—**

कृष्णाण्डस्वरमे मणिरष्टाःसगुणं शृतम् ॥ २८ ॥  
 यष्टोत्तुल्यमपस्मारहरं धीवातुस्वरप्रदम् ।

**गवाक्षीनां पित्तोद्भिन्नम्—**

कपिलानां गवा पित्त नावना परम हिमम् ॥ २९ ॥  
 श्वशृगालविडालानां निद्राक्षीनां च पूजितम् ।

**पित्तासृद्धं तैलम्—**

गोधानकुलनागानां वृषभर्षपनामपि ॥ ३० ॥  
 पित्तेषु मायित तैल नभ्येऽभ्यगे च क्षमाने ।

**त्रिफलादितैलम्—**

त्रिफलाभ्यां पृथिवीन्द्र त्रिधा रफणिज्वरी ॥ ३१ ॥  
 यथामापामार्मकारंजत्रोर्जस्तैल विपातयाम् ।  
 धैस्तमूत्रे हि तस्य क्षूर्णं वाष्पानयेद्भिषक् ॥ ३२ ॥

**धूमः—**

मृदुलांशुकमाजिरिगुध्रहीटाहिका रजैः ।  
 तुष्टैः पक्षैः पुरीषैश्च धूममस्य प्रयोगयेत् ॥ ३३ ॥

**विधिप्रयोगाः—**

धीतयेत्तैलतनुं पयसा वा घृतानरीम् ।  
 ग्राहीरमं कृष्टरमं वषां वा मधुमं गुणाम् ॥ ३४ ॥

### दुश्चिकित्स्यस्य रसायन प्रयोगाः—

ममं ऋद्धेरपस्मारो दोषैः घारीरमानमैः ।  
 यज्ज्ञायते यतश्चैष महामर्मममाश्रयः ॥ ३५ ॥  
 तस्माद्रसायनैरेनं दुश्चिकित्स्यमुपाचरेत् ।  
 सदातं चाग्नितोषादेर्विषमास्वाल्मेयदा ॥ ३६ ॥

### गतेऽपस्मारे कृत्यम्—

मुक्तं मनोविकारेण स्वमित्यं कृतवानिति ।  
 न यूयाद्विषयैरिष्टैः निलष्टं चेन्नोऽस्य बृंहयेत् ॥ ३७ ॥

इत्यष्टाङ्गहृदये श्रुतसंज्ञं कृतीयं समाप्तम् ।

## अष्टमोऽध्यायः ।

### शालाक्यतन्त्रम्—

अथाऽतो वर्त्मरोगविज्ञानमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

### नयनरोगसम्प्राप्तिः—

“मर्वरोगनिदानोक्तैरहितैः कुपिता मलाः ।  
 ‘अचक्षुष्यैर्विशेषेण प्रायः पित्तानुमारिणः ॥ १ ॥  
 शिरामिहृष्वं प्रसृता नेत्रावयवमाश्रिताः ।  
 ‘वर्त्मसंधिं मितं कृष्णं दृष्टिं वा मर्वमक्षि वा ॥ २ ॥

१ अचक्षुष्यैः चक्षुषोरहितैराहारविहारैरातपधूमादिभिः । २ वर्त्म नेत्राच्छा-  
 दनं पलकं इतिभाषा ।

रोगान् कुर्युः,

वर्त्मगतारोगाः—

चलस्तत्र प्राप्य वर्त्माश्रयाः सिराः ।

सुप्तोत्थितस्य कुरुते वर्त्मस्तम्भं सवेदनम् ॥ ३ ॥

पांशुपूर्णभिनेत्रत्वं कृच्छ्रोन्मीलनमथ च ।

विमर्दनारस्याञ्च क्षमः कृच्छ्रोन्मीलं वदति तम्, ॥ ४ ॥

‘चालयन्वर्त्मनी वायुनिमेषोन्मेषणं मुहुः ।

करोत्यरुड् निमेषोऽग्नौ,

वर्त्म यत्तु निमील्यते ।

विमुक्तमधि निश्चेष्टं हीनं वातदहतं हि तत् ।

कृष्णाः पित्तेन बह्वधोऽन्तर्वर्त्मं कुम्भीकवीजवत् ॥ ६ ॥

आध्मायने पुनर्मिष्टा पिटिकाः कुभिसंश्लिताः ।

“सदाह्वलेदनिस्तोद रक्ताभं स्पर्शताक्षमम् ॥ ७ ॥

पित्तं जायते वर्त्म पित्तोरिष्टदुग्धनि तत् ।

“करोति कङ्क’ दाहं च पित्तं पक्ष्मात्रमाश्लितम् ॥ ८ ॥

पक्ष्मणा धातनं चानु पक्ष्मशातं वदति तम् ।

“योधक्यः पिटिका श्वेता सर्पवाभा घना कफात् ॥ ९ ॥

क्षोफीऽदेहस्कृकङ्कपिच्छिलाधूममग्नित्वा ।

“कफांश्छिष्टं भवेद्वर्त्मं स्तम्भक्येवोपदेहयत् ॥ १० ॥

“ग्रन्थिः पांडुरस्वपाकः कङ्कमान् कठिनः कफात् ।

कोलमात्रः स लगणः ‘किञ्चिदलस्ततोऽपि वा ॥ ११ ॥”

“रक्ता रक्तेन पिटिकास्तत्तुल्यपिटिकाचिताः ।

वत्संगाल्याः,

“तथोश्छिष्टं राजिमत्स्पर्शनाशमम् ॥ १२ ॥

“अशोऽधिमात्रं वर्त्मात्रः स्तम्भं स्निग्धं सदाहृक् ।

रक्तं रक्तेन तस्मावि छिन्नं छिन्नं च वर्धते ॥ १३ ॥”

१ ततः-कोलात् किञ्चिदलो ग्रन्थिः ।



( १ )

) 'मध्ये वा वर्त्मनोऽत्र वा कंठपास्वर्ता स्थिरा ।

मुदगमात्रासृजा ताम्रा पिष्टिकाञ्जनमामिका' ॥ १४ ॥,

"दोषैर्वर्त्मं बहिः शूनं यदंतः 'मूढमखाचितम् ।

गमाचमत्तस्त्वंदिमार्भं विसर्ज्यं तत् ॥ १५ ॥,

"पद्ममौक्तिकष्टमुत्तिष्ठमरुस्मान्मृगानतामियात् ।

रक्तदोषयोस्त्वजसाद् वदत्युष्णिष्टवर्त्मं तत् ॥ १६ ॥,

"श्याववर्त्मं मर्तं मार्मैः श्यावं रक्त्वेददोषवत् ।,

"क्षिष्टाव्यवर्त्मनी श्लिष्टं कंठश्वयपुराग्निर्मा ॥ १७ ॥,

"वर्त्मनोऽनः खरा स्त्र्याः पिटिकाः मिततोपमाः ।

सिकतावर्त्मं,

"वृष्णं तु कर्दमं कर्दमोपमम् ॥ १८ ॥,

"बहुलं बहुलंमर्मैः सवर्णैश्चोयने गर्मैः ।,

"बुफ्फुणकः शिशोरेव दतोऽपत्तिर्निमित्तजः ॥ १९ ॥

स्थात्तेन शिगुरुच्छूनताम्राक्षो बांधवाक्षमः ।

म वर्त्मशूलपैच्छिदत्यरुणवासाशिमर्दनः ॥ २० ॥,

"पद्मोपरोधे संकोचेऽन्तर्मना जायते तथा ।

खरतागर्भुखारं च लोम्नामग्यानि वा पुनः ॥ २१ ॥

बंटकैरिव तीक्ष्णप्रेष्टुष्टं तीरक्षि मूयते' ।

उप्यते श्वानिलादिद्विड्वाहः' श्यातिरुद्धृतैः ॥ २२ ॥

"कनीनके बहिर्वर्त्मं कठिने ग्रंथिरुन्नतः ।

ताम्रः पक्ष्वाऽग्न्यपूगा' मृदुलज्याभ्यामयते मुहुः ॥ २३ ॥,

"वर्त्मोत्तमामिदंभ. श्वयशुर्भयितो रजः ।

मार्मैः स्यादनु'दो दोषैर्वपमो बाह्यतरचलः ॥ २४ ॥,

वर्त्मोश्रयाणां संख्या—

चतुर्विंशतिरित्येते ब्राधयो वर्त्ममंश्रयाः ।

१ अञ्जनमामिका 'विलनी' हि० । २ र्मं क्षिद्रम् । ३ उच्चिलष्टं विशेष  
 यत्रेगयुक्तम् । ४ मूयते—शोषयुक्तमवति । ५ उद्धृतैरुपाटितैस्तैः पक्षमभिरुत्पानि-  
 दिनानि गान्तिर्भवति । ६ मृदु स्यात् ।

## साध्यत्वादि—

१ आद्योऽत्र भेषजः साध्यो द्वौ ततोऽर्शश्च वर्जयेत् ॥ २५ ॥

## शस्त्रक्रिया—

पश्मोनरोयो याप्यः स्थाच्छ्रेष्ठाच्छस्त्रेण साधयेत् ।

कुट्टयेत्पश्मरादनं द्विधात्तेष्वपि चार्बुदम् ॥ २६ ॥

भिद्याह्नगणकुंभीकाविसोत्सगाजनालर्जाः ।

पौषकीश्यावमिकता १ श्लेष्मतिक्लृष्टचतुष्टयम् ।

सकदंमं सबहलं बिलिखेत्सकुक्कुणकम् ॥ २७ ॥

## नवमोऽध्यायः ।

अथाऽतो वर्त्मरोगप्रतिषेध व्याख्यास्यामः ।

वृच्छ्रोन्मीले पुराणं घृतादि योजना—

“वृच्छ्रोन्मीले पुराणाय्यं द्वालाकृत्वागुमाधितम् ।

सहितं योजयेत्सिन्धुं नस्यभूमाजनाद च ॥ १ ॥

कुम्भीकावर्त्मोपक्रमः—

कुम्भीकावर्त्मं लिखितं मेधवप्रतिसारितम् ।

शष्ठीबाधोपदोलीना क्वाथेन परिषेचयेत् ॥ २ ॥

वर्त्मलेखनप्रकारः—

निवानेऽभिष्टितस्यासौः शुद्धस्योत्तानवायिनः ।

बहिः कोष्ठाच्युतसेनं स्वेदितं वर्त्मं वागमा ॥ ३ ॥

१ आद्यः वृच्छ्रोन्मीलनः । द्वौ-निषेधवातहृत् । २ उत्तिष्ठ चतुष्टय-वित्तो  
तिष्ठ वफोरिकच्छदं रक्तोत्तिष्ठमुत्तिष्ठवर्त्मवेति ।

निर्भुज्य<sup>१</sup> वस्त्रांतरितं चागांगुष्ठांगुलीधृतम् ।

न संसृते चलति वा वर्त्मनं सर्वतस्ततः ॥ ४ ॥

मंडलाग्रेण तत्तिर्यक् कृत्वा शस्त्रपदांकितम् ।

लिखेत्तेनैव पत्रैर्वा शाकशेफालिकादिर्जः ॥ ५ ॥

केनेन तोयराशेर्वा पिबुना प्रमृजयत्तसृक् ।

स्विते रक्ते मुलिखितं सशोर्द्रैः प्रतिसारयेत् ॥ ६ ॥

<sup>२</sup>यथास्वमुक्तंरनु च प्रसाल्योष्णेन वारिणा ।

घृतेनामित्तमभ्रक्तं बध्नीयान्मधुमर्षिपा ॥ ७ ॥

ऊर्ध्वाधः कर्णयोर्दत्त्वा पिडो च यवसत्तुभिः ।

द्वितीयेऽह्नि मुक्तस्य परिपेकं यथायथम् ॥ ८ ॥

कुर्वाणं चतुर्थे नस्यादीन्मुच्येदेवाह्नि पंचमे ।

**सुलिखितवर्त्म लक्षणम्—**

समं ललनिभं शोफकङ्कषपाक्षरीडितम् ॥ ९ ॥

विद्यात्सुलिखितं वर्त्म लिखेद् भूयो विपर्यये ।

**अनिलेखनादुजादीनि—**

रूपक्षमवर्त्मसदनं संसनादतिलेखनात् ॥ १० ॥

स्नेहस्नेहादिकस्तस्मिन्निष्ठो वातहरः क्रमः ।

**नवनीतेनाभ्यङ्गादि—**

अभ्यग्य नवनीतेन श्वेतरोधं प्रलेपयेत् ॥ ११ ॥

एरंडमूलकट्फेन पुटपाके पचेत्ततः ।

स्वित्रं प्रयालितं शुष्कं नृणितं पीटलीकृतम् ॥ १२ ॥

खिपाः क्षीरे छयत्या वा मृदितं नेत्रसेचनम् ।

**अतिलिखितचिकित्सा—**

चालितं दुग्धवत्त्वेन लिप्तं तद्वत्परिष्कृतम् ॥ १३ ॥

१ निर्भुज्य मुटिमीकृत्य-परिवर्त्य । तेनैवमण्डलाग्रेणैवसंस्नेज । २ तोयराशेः गमुद्रस्य केनेन । ३ यथास्वमुक्तैः नैग्यवादिभिः ।

कुर्यान्नेत्रेऽतिलिखिते मृदितं दधिमस्तुना ।

केवलेनाऽपि वा सेकं मस्तुना जांगलाशिनः ॥ १४ ॥

### पिटिकाभेदनादि—

पिटिका यीहिवक्त्रेण भित्वा तु कठिनोन्नताः ।

निष्पोडयेदनु विधिः परिशेषस्तु पूर्ववत् ॥ १५ ॥

लेसने भेदने चार्धं क्रमः सर्वत्र वर्त्मनि ।

### पित्तरक्तोक्लिष्टयोः शिरामोक्षणादि—

पित्तास्रोत्क्लिष्टयोः स्वादुस्कंधसिद्धेन सर्पिषा ॥ १६ ॥

मिराविमोक्षः क्षिब्धस्य त्रिवृच्छुद्धं विरेचनम् ।

लिखिते स्मृतारक्ते च वर्त्मनि क्षालनं हितम् ॥ १७ ॥

यष्टीकपायः सेकस्तु क्षीरं चंदनमाधितम् ।

### पद्मसदनचिकित्सा—

पद्मणां मदने मूच्या रोमकूपान् विबुद्धयेत् ॥ १८ ॥

प्राह्येद्वा जलीकोभिः पयसेधुरसेन वा ।

घमनं नाशनं सर्पिः शृतं मधुरशीतलैः ॥ १९ ॥

गन्धूर्प्यं पुष्पकासीसं भावयेत्पुरतारसैः ।

ताम्रे दद्याद् परमं पद्मशास्ते सदननम् ॥ २० ॥

### पोथकी चिकित्सा—

पोथकीलिखिताः क्षूण्ठीसैषवप्रतिसारिताः ।

उष्णांबुशालिताः सिचेत् खदिगात्रकिशिम्रभिः ॥ २१ ॥

अस्तिर्द्धाद्रिनिद्याश्रेष्ठागण्डुर्कनीं समाशिकः ।

### कफोत्क्लिष्टे लेखनादि—

कफोत्क्लिष्टे विलिखिते सक्षौद्रैः प्रतिमारणम् ॥ २२ ॥

मूदमैः सैषवकागीसमनोह्लाकणसाध्यैर्जैः ।

यमनांजननस्यादि सर्वं च कफजिदितम् ॥ २३ ॥

कर्तव्यं लगयेप्येतदशांतावधिना दहेत् ।

### कुक्कूणके चिकित्सा—

कुक्कूणे खदिरश्रेष्ठानिवपत्रैः शृतं घृतम् ॥ २४ ॥

पीत्वा धात्री वमेत्कृष्णायष्टौसर्पपसैर्घवैः ।

अभयापिप्पलीद्राक्षाकाथेनानां विरेचयेत् ॥ २५ ॥

मुस्ताद्विरजनौकृष्णावल्केनास्त्रेपयेत्ततर्ना ।

घूपयेत्सर्पपैः साज्यैः,

दुद्धा क्वायं च पाययेत् ॥ २६ ॥

पटोलमुस्तमृद्धीकागुह्वचीत्रिफलोदम्बम् ।

दिशोस्तु लिखितं वरुणं मृतासृग्वावुजग्मभिः<sup>१</sup> ॥ २७ ॥

घाश्वत्समतकजमूल्यपत्रववायेन सेचयेत् ।

### शिशूनां सर्वव्याधिषु सहेतुकं यमनम्—

प्रायः क्षीरघृतादित्वादबालानां श्लेष्मजा यदाः ॥ २८ ॥

तस्माद्दमनमेवाग्रे सर्वव्याधिषु पूजितम् ।

### तदेव यमनम्—

निपूत्यकृष्णापामार्गबीजाज्यस्तन्यमाशिकम् ॥ २९ ॥

चूर्णो वचायाः मदीन्द्रो मदनं मधुकान्धितम् ।

क्षीरं क्षीराशमघ्नं च भजतः क्रमशः दिशोः ॥ ३० ॥

यमनं सर्वरोगेषु विशेषेण कुक्कूणके ।

सप्तलारससिद्धान्त्यं योज्यं<sup>२</sup> चोभयशोधनम् ॥ ३१ ॥

दिनिशारोघ्रवष्टयाह्वरोहिणीनिवपल्लवैः ।

### कुक्कूणके वर्त्यादि—

कुक्कूणके हिता वर्तिः पिष्टैस्ताम्ररजोन्वितैः । ३२ ॥

१ अम्बुजग्मभिर्जलौकाभिः सतृप्तम्, कुक्कूणकः ( सुयुक्तः ) हि० । २ उभय-  
शोधनं यमनविरेचने ।

क्षीरक्षीद्रघृतोपेतं दग्धं वा लोहजं रजः ।

**कुक्कूणपोषकपोर्वर्ति :—**

एलारसोनकतकजं सोपणफणिज्जकं ॥ ३३ ॥

वर्तिः कुक्कूणपोषवयोः मुरापिट्टैः सकट्फलैः ।

**पद्मरोधचिकित्सा—**

पद्मरोधे प्रवृद्धेषु दृढदेहस्य रोमसु ॥ ३४ ॥

‘जलसृज्य द्वौ भ्रुवोऽधस्ताद्भागी भागं च पद्मतः ।

यवमात्रं यवाकारं तिर्यक्छित्त्वाऽऽर्द्रवाससा ॥ ३५ ॥

अपनेयमसृक् तस्मिन्मलीभवंति क्षोणिते ।

मीज्येकुटिलया सूच्या मुद्गमाभ्रानरैः पदैः ॥ ३६ ॥

चङ्गा ललाटे पट्टं च तत्र सीबनमूषकम् ।

नातिगाढश्लथं सूच्या निक्षिपेदथ योजयेत् ॥ ३७ ॥

मधुसर्पिकवलिका न चास्मिन्व्यमाचरेत् ।

न्यग्रोधादिकपार्यश्च सक्षीरैः सेचयेद्भुजि ॥ ३८ ॥

पंचमे दिवसे सूत्रमपनीयावधूर्णयेत् ।

गैरिकेण घर्षणं युज्यात्तीक्ष्णं नस्याजनादि च ॥ ३९ ॥

**अशान्तौ दाहादि—**

दहेदसाती<sup>१</sup> निर्भुज्य वर्त्मदोषाश्रया वलीम् ।

संदंशेनाधिकं पद्मं हृत्वा तस्याश्रयं दहेत् ॥ ४० ॥

सूक्ष्मश्रेणाशिवर्णेन दाहो बाह्यालजेः पुनः ।

अग्निप्रस्य शारवक्षिभ्यां मुच्छिन्नस्यासृ<sup>२</sup>दस्य च<sup>३</sup> ॥ ४१ ॥

१ भ्रुवोऽधस्ताद् द्वौ भागौ छित्त्वाऽर्द्रवस्त्रेण रक्तमपनेयम् ।

२ वर्त्म दोषाश्रयां बलिनिर्भुज्य दहेत् । अधिकं पद्मसंदंशेन हृत्वा तस्य पद्ममण

अश्रयं दहेत्, अग्निप्रस्य बाह्यालजेरशिवर्णेन सूक्ष्मश्रेण दाहस्तथा शारवक्षिभ्यां  
मुच्छिन्नस्यासृदस्य च दाहः कार्यः ।

## दशमोऽध्यायः ।

अथास्तः संधिसितासितरोगविज्ञानमारभ्यते ॥

नेत्रसन्धिरोगकथनम्—

“वायुः क्रुद्धः शिराः प्राप्य जलान्नं जलवाहिनीः ।  
 जलं स्नावयते वर्त्मशुक्लसंधेः कनीनकात् ॥ १ ॥  
 तेन नेत्रं सरुद्रागशोफं स्यात्स जलास्रवः १,  
 कफात्कफस्रवे श्वेतं पिच्छिलं बहुलं स्रवेत् ॥ २ ॥  
 “कफेन शोफस्तीक्ष्णाम्नः क्षारबुद्बुदकोपमः ।  
 पृष्ठशूलबलः स्निग्धः मवर्णमुदुपिच्छिलः ॥ ३ ॥  
 महानपाकः कंठमानुषनाहः स नीरुजः ॥  
 “रक्ताद् रक्तस्रवे ताम्रं बहृर्णं चाश्रु स्रववेत् ॥ ४ ॥  
 “वर्त्मसंध्याभया शुक्ले पिटिका दाहशूतिनी ।  
 ताम्रा मुद्गोपमा भिक्षा रक्तं स्रवति पर्वणी” ॥ ५ ॥  
 “पूयास्रावे मलाः सास्त्रा वर्त्मसंधेः कनीनकात् ।  
 स्त्रावयन्ति मुहुः पूर्वं सास्त्रस्वङ्मांसपाकतः” ॥ ६ ॥  
 “पूयास्रासो व्रणः मूढमः शोफसंरंभपूर्वकः ।  
 कनीनसंधावाध्मापी पूयास्रावी मयेदनः” ॥ ७ ॥  
 कनीनस्यांतरलज्जी शोफो रक्तोददाहवान् ।  
 अपागे वा कनीने वा कंठपापदमपोटवान् ॥ ८ ॥  
 पूयास्रावी कृमिश्रंयिर्ग्रंथिकृमियुतोऽर्जमान् ।

उपनाहादीनां शस्त्रेण साधनम्—

उपनाहृत्त्रिमिश्रंयिपूयास्रासकपर्वणीः ॥ ९ ॥

शस्त्रेण साधयेत्पञ्च सालजीनासवास्यजेत् ।

श्वेतभागजा रोगाः शुक्लिकाख्योरोगः—

पित्तं कुर्मोत्सिते बिदूनसितश्यावपीतकान् ॥ १० ॥

मलाक्तदशंतुल्यं वा सर्वं क्षुण्णं सदाहृत् ।

रोगोऽयं शुक्लिकासंज्ञः सप्तवृद्धभेदवृद्धवरः ॥ ११ ॥

कफाक्षुण्णे समं श्वेतं चिरवृद्धपथिमागमम् ।

शुक्लार्म

शोफस्त्वक्जः मधर्णो बहलां मृदुः ॥ १२ ॥

गुरुः स्निग्धोऽधुविद्वामो यत्नासप्रथितं स्मृतम् ।

बिदुभिः पिष्टधवलं हस्तैः पिष्टं नयेत् ॥ १३ ॥

रक्तराजीततं द्युपलमुप्यते यत्नवेदनम् ।

मयोफाश्रूपदेहं च शिरोत्पातः न शोणितान् ॥ १४ ॥

उपेक्षितः मिरोत्पातो राजीत्या एव वर्धयन् ।

कुर्मोत्साहं सिराहर्षं तेनाद्युद्धीक्षणाक्षमम् ॥ १५ ॥

मिराजाने सिराजालं युद्धतं धनोपगतम् ।

शोखितार्मं समं श्लक्ष्णं पद्माभगभिगासकम् ॥ १६ ॥

नीलः श्लक्ष्णोऽशुभं विदुः सशलोहितलोहितैः ।

मृदाद्युद्धधर्मात् प्रस्तारि श्यावलोहितम् ॥ १७ ॥

प्रस्तार्थमं मर्लः नारी,

स्नायार्मं स्नावसंनिभम् ।

शुक्लासृक्पिडवच्छयावं यन्मांसं बहत् पृष्ठ ॥ १८ ॥

अधिमांसार्मं तद्,

दाहर्षवंत्यः मिरावृताः ।

वृष्णासनाः सिरासंज्ञाः पीटिकाः सर्पपेपसाः ॥ १९ ॥



सितभागजानां त्रयोदशानां चिकित्सासूत्रम्—

दुक्लिहर्षमिरोत्पातपिष्टकप्रयितार्जुनम्<sup>१</sup> ।

साधयेदोषयः पट्कं मेघं सस्त्रेण समकम् ॥ २० ॥

नवोत्थं तदपि द्रव्यं,

वर्ज्यावर्ज्यविचारः—

अमोक्तं यन्त्र पंचघा ।

तच्छेद्यममितप्राप्तं मांसमावमिरावृतम् ॥ २१ ॥

<sup>२</sup>चर्मोद्वाह्यवदुच्छ्रायि दृष्टिप्राप्तं च वर्जयेत् ।

कृष्णगतरोगाभिधानम्—

पित्तं कृष्णेपत्रा दृष्टौ शुक्रं तोदानुरागवत् ॥ २२ ॥

दृष्ट्वा त्वचं जनयति तेन स्वात्कृष्णमंडलम् ।

पक्वजं वृनिभं किंचिन्निम्नं च क्षतशुक्रकम् ॥ २३ ॥

तत्कृष्णमाध्यं याप्यं तु द्वितीयपटलव्यधात् ।

तत्र तोदादिवाहृत्यं सुविधिदाभकृष्णता ॥ २४ ॥

तृतीयपटलच्छेदादमाध्यं निवितं घर्षः ।

क्षतशुक्लं कफात्माव्यं नाविहक् शुद्धशुक्रकम् ॥ २५ ॥

आताम्रपिच्छलायसुदाताम्रपिटिकातिहृत् ।

अजाविट्मदृशोच्छ्रायकाण्ठ्यां वर्ज्याऽसृजजका ॥ २६ ॥

सिराशुक्रं मलैः सार्धैस्तज्जुष्टं कृष्णमंडलम् ।

मतोददाह्वाग्नाभिः मिराभिरवतन्मते ॥ २७ ॥

अनिमित्तोष्णशीताच्छघनासस्रक् च तत्पत्रेत्<sup>३</sup> ।

“दोषैः मालः” सङ्कृष्णं नीयते शुक्लरूपताम् ॥ २८ ॥

घबलाभ्रोपलिप्ताभं निष्पावार्धदलाहुति ।

अतितीव्ररजारागदाहृषव्यष्टुभीहितम् ॥ २९ ॥

१ पट्कं दुक्लवादि । सप्तकं शुक्लरूपमिराजालम्भयत्तु श्रेष्ठि समकम् ।

२ तत्सममपि नवोत्पन्नं द्रव्यं मेघं माधयेत् । ३ चर्मोत्तिचर्मखण्डवत् आभासमानम् ।

‘पाकात्ययेन तच्छुक्रं यजयेत्तीव्रवेदनम् ।’

वज्र्यशुक्रकम्—

यस्य वा लिङ्गनाशोऽतः श्वावं यद्वा सलोहितम् ।

अत्युत्तेधावगाढं वा सासनाडीषणामृतम् ॥ ३० ॥

पुराणं पिपर्म मध्ये विच्छिन्नं यच्च शुक्रकम् ।

एचेत्युक्ता गदाः शुष्ये साध्यासाध्यविभागतः”

## एकादशोऽध्यायः ।

अथातः संधिसितासितरोगप्रतिपेधं व्याख्यास्यामः ।

उपनाह चिकित्सा—

‘उपनाहं त्रिपक् स्विन्नं भिन्नं व्रीहिमुखेन च ।

लेखयेन्मडलाग्रेण ततश्च प्रतिसारयेत् ॥ १ ॥

पिप्पलीक्षौद्रमिधूतर्ध्वज्जीवात्पूर्ववत्ततः<sup>१</sup> ।

पटोलपत्रामलकववाधेनाश्रोतयेच्च तम् ॥ २ ॥

पर्वणीचिकित्सा—

‘पर्वणी बडिरोनात्ताबाह्यसंधिनिभागतः ।

शुद्धिपत्रेण वज्र्यग्निं स्यादध्वनतिरन्यथा ॥ ३ ॥

१ यच्छुक्रं पाकात्ययेन तीव्रवेदनं तदपि यजयेत् । शुक्ररोगः—‘कूनी’ हि० ।  
२ पूर्ववत्—उष्णनजलेन प्रक्षाल्यधृतेनसिक्तं मधुमर्षिणाऽभ्यक्तमूर्च्छापिः कर्णमोश्च  
भवसत्तुभिर्निग्दीदत्वावधीयात् । ३ पर्वणी—मन्थिनिभागे जाता—दृहीतासखी  
शुद्धिपत्रेणार्पमाणे वज्र्याग्निं देहनीया । अन्यथाधिकन्द्रेतादध्वनादीत्यात् ।

चिकित्सा चार्मवत्सोदसैधवप्रतिसारिता ।

पूयालसेसिरान्यघादि—

पूयालसे सिरां विध्येततस्तमुपनाहयेत् ॥ ४ ॥

कर्वात चाक्षिपाकोक्तं सर्वं कर्म यथाविधि ।

चूर्णाञ्जनप्रयोगादि—

सैधवार्द्रककासोमलोहतात्रैः मृचूर्णैः ॥ ५ ॥

चूर्णाञ्जनं प्रयुञ्जीत सक्षीर्द्रवां रसत्रियाम् ।

क्रिमिसन्धिभदेनादि—

वृमिश्रय करीषेण स्विन्नं भित्त्वा विलिख्य च ॥ ६ ॥

त्रिफलाक्षीद्रकासोससैधवैः प्रतिमारयेत् ।

“पित्ताभिव्यन्दवच्छुक्तिं,,

बलासप्रथितपिष्टकयोरुपचारः—

बलासाह्वयपिष्टकौ ॥ ७ ॥

मफाभिव्यन्दवश्मुक्त्वा सिराम्यधमुपाचरेत् ।

बीजपूररसाक्तं च व्योपकट्फलमञ्जनम् ॥ ८ ॥

अलञ्जनम्—

जातीमुकुलसिधूत्पदेवदारुमहीपथैः ।

पिष्टैः प्रसन्नया वतिः शोफकङ्कृष्णमञ्जनम् ॥ ९ ॥

रक्तस्यदवदुत्पातहर्पजालार्जुने क्रिया ।

सिरोत्पाते विसर्पेण घृतमाक्षिकमञ्जनम् ॥ १० ॥

सिराहर्षे तु मधुना श्लेष्मणष्टु रसाञ्जनम् ।

अर्जुने चर्करामस्तुसोद्वैराभ्रोतनं हितम् ॥ ११ ॥

स्फटिकः कुङ्कुमं शंसो मधुको मधुनाञ्जनम् ।

मधुना चाञ्जनं शंसः केनो वा मितया सह ॥ १२ ॥

अर्मचिकित्सा—

बमोक्तं पञ्चधा तत्र तनु धूमाविलं च यत् ।

रक्तं दधिनिर्मं यच्च शुकवतस्य नेपजम् ॥ १३ ॥

## अमरुतः शस्त्रचिकित्सा—

उत्तानस्यैतत्<sup>१</sup> स्विन्नं ससिधूत्केन चाजितम् ।  
 रसेन बीजपूरस्य निमील्यादि विमर्दयेत् ॥ १४ ॥  
 २ इत्थं संरोपिताशस्य प्रचलेऽर्माधिमांशके ।  
 पृतस्य निश्चलं मूष्नि वर्त्मनोश्च विशेषतः ॥ १५ ॥  
 अषांगमोक्षमाणस्य वृद्धेर्मणि कनीनकात् ।  
 बली स्याद्यत्र तत्रार्म वडिदोनावलवितम् ॥ १६ ॥  
 नात्पायतं मुचुङ्क्षा वा मूच्या मूत्रेण वा ततः ।  
 समन्तान्मंडलग्रेण मोचयेद्य माक्षिकम् ॥ १७ ॥  
 कनीनकमुपानोय चतुर्भागावशेषितम् ।  
 छिद्यात्कनीनकं रथोद्वाहिनीश्चाथुवाहिनीः ॥ १८ ॥  
 कनीनकम्यथादध्नुनाडी चाक्षिण प्रवर्तते ।  
 वृद्धेर्मणि तथाऽष्वांगात्पश्यतोऽप्य कनीनकात् ॥ १९ ॥  
 सम्यक् क्षिन्नं मधुमोपमैश्वप्रतिसारितम् ।  
 उप्येन सपिपा मित्तमम्यक्तं मधुसर्पिणा ॥ २० ॥  
 बध्नीयात्सेचयेन्मुक्त्वा तृतीयादिदिनेषु च ।  
 कर्दजबीजमिद्धेन क्षीरेण कश्चितैस्तथा ॥ २१ ॥  
 सशोर्द्धनिगारोक्षपटोलीमर्द्धिक्चुनैः ।  
 कुरंदमुकुलीपेर्तमुचिदेवाह्नि सप्तमे ॥ २२ ॥  
 सम्यक् क्षिप्ने भवेत्स्वास्थ्यं ह्रीनातिच्छेदजान्नादान् ।  
 सेकाजनप्रभृतिभिर्जयेल्लेखनवृंहणैः ॥ २३ ॥

१ अमरुतः (नाम्नना) हि० उत्तानस्य रोगिणः । इतरत्—वामदक्षिणयोरेक-  
 नेत्रम् । २ इत्थं सैन्धव बीजपूररसाजितं निमील्यविमर्दनेन संरोपिताशस्य अम-  
 र्णिलीकरणाय संशोभितनेत्रस्य । वर्त्मनोश्च विशेषेण धृतस्य, कनीनकात्  
 अमर्णिवृद्धे सदयपाङ्गं पश्यतः । यत्रार्मणि बलीस्यात्तत्रनात्पायतं नातिदीर्घमपि  
 भवति तथा वडिदोनावलम्बितम् । ततोमुचुङ्क्षा तर्ज्जन्मुमुक्षुमन्दनेन ।

## अञ्जनम्—

मितामनः शिलातेयलवणोत्तमनागरम् ।  
अर्धकपोन्मितं तार्क्ष्यं पलार्धं च मधुप्लुनम् ॥ २४ ॥  
अञ्जनं श्वेत्पल्लिमिरपिल्लगुक्लार्धसोपजित् ।

## लेखनाञ्जनम्—

त्रिफलैकृतमद्रध्यत्वचं पानीयकल्मिषान् ॥ २५ ॥  
शरावपिहिता दग्ध्वा कसाते चूणयेत्ततः ।  
पृथक्क्षेपीपपरमैः पृथगेव च भाविता ॥ २६ ॥  
मा मपो द्योपिता पेध्या भूयो द्रिलनणांश्चत्वा ।  
श्रीण्येतान्यञ्जनान्याह लेखनानि परं निमिः ॥ २७ ॥

## कठिनक्षिराणामर्मवच्चिकित्सा—

मिराजालेमिरा यास्तु कठिना लेखनीपथैः ।  
न मिद्ध्यत्यर्मवत्तामा पिटिकाना च साधनम् ॥ २८ ॥

## शुक्रेघृतम्—

दोषानुरोधाञ्छुत्रेषु स्निग्धस्थं वराघृतम् ।  
तित्तमूर्ध्वमसृक्स्त्रावो रेकसेकादि चेप्यते ॥ २९ ॥

## क्षतशुक्रेपकघृतपानादि :—

त्रिखिवृद्धारिणा पक्वं क्षतशुक्रे घृतं पिबेत् ।  
मिरया तु हृदेदक्तं जलीकोभिश्च लोचनात् ॥ ३० ॥  
मिदंनोत्पलकाकोलीदाश्रायष्टिविदारिमिः ।  
ममिन्तनाजपयमा सेवनं मलिले न वा ॥ ३१ ॥  
रागाश्रुवेदनासांती परं लेखनमञ्जनम् ।

## वर्तय :—

वर्तयो जानिमुकुलकाशार्गरिकर्चदरैः ॥ ३२ ॥

१ त्रिफलागामेकस्य वस्यचिद्द्रव्यस्य त्वचम् । ततस्त्रिफलायाः ।

प्रसादयन्ति पित्तम्" धनन्ति च क्षतशुक्रम् ।

**नेत्रवर्ति :—**

दन्तैर्दन्तिवराहोष्ट्रगवाश्वजखरोदभवैः ॥ ३३ ॥

सशंसमौक्तिकांभोधिपेनेर्भरिचपादिकैः ।

क्षतशुक्रमपि व्यापि दन्तवर्तिर्निवर्तयेत् ॥ ३४ ॥

**वर्तिःसर्वशुक्रहृत्—**

तमालपत्रं गोदन्तयलकेनोऽस्य गार्दभम् ।

ताम्रं च वर्तिमूत्रेण मय्यक्षुक्रकनाशिनी ॥ ३५ ॥

**रत्नाद्युज्ज्वलम्—**

रत्नानि रत्ना शृंगाणि घातवच्छृणुपणं वुटि ।

करंजबीजं लशुनो ग्रणमादि च भेषजम् ॥ ३६ ॥

सप्तणाग्रणमंभोरत्नवत्स्थशुक्रकनमंजनम् ।

**निम्नशुक्रस्योन्नमनम्—**

निम्नमुन्नमयेत्स्नेहपानतस्यरसाजनैः ॥ ३७ ॥

तद्वर्जं नीरुजं तृमिष्टपाकेन शुक्रकम् ।

**शुद्धशुक्ले सेचनम्—**

शुद्धशुक्ले निशायटीमारिवासावराभसा ॥ ३८ ॥

सेचनं रोध्रपोटल्या कोष्णीभोमक्याऽथवा ।

**शुक्लघ्नी गुटिका—**

कृत्तीमूलयष्ट्याहृताम्रसंभवनागरैः ॥ ३९ ॥

धान्योफलाकुता पिष्टैर्लोपितं ताम्रभाजनम् ।

मवाज्यामलकीपत्रैर्वहुशो धूपयेत्ततः ॥ ४० ॥

तत्र कुर्वन् गुटिकास्ता जलक्षीद्रपेयिताः ।

महाभीजा इति ख्याताः शुद्धशुक्रहाराः परम् ॥ ४१ ॥

## अञ्जनम्—

सितामनः शिलाशैत्यलयणोत्तमनागरम् ।  
अर्धकप्योन्मिनं तादर्यं पलार्धं च मधुप्लुतम् ॥ २४ ॥  
अञ्जनं श्लेष्मतिमिरपिह्नशुक्लार्मशोपजित् ।

## लेखनाञ्जनम्—

भ्रिफलैकतमद्रव्यत्यर्चं पानोदकस्निग्धताम् ॥ २५ ॥  
क्षरावपिहिता दग्धा कनाने धूर्णयेत्ततः ।  
पृथक्क्षोपधरमैः पृथगेव च भाषिता ॥ २६ ॥  
मा मपो क्षोपिता पेक्ष्या भूयो द्रिलवणाभ्वता ।  
श्रीष्येतान्यञ्जनाग्राह लेखनानि परं निमिः ॥ २७ ॥

## कठिनसिराणामर्मवच्चिकित्सा—

मिराजालेसिरा मास्तु कठिना लेखनीपथैः ।  
न सिद्ध्यत्यर्मवत्तासा पिडिकानां च मायनम् ॥ २८ ॥

## शुक्रघृतम्—

दोषानुरोधान्द्रुक्तेषु स्निग्धरुक्षं वराघृतम् ।  
तित्तमूर्ध्वमसुक्तावां रेकमेकादि ज्ञेयते ॥ २९ ॥

## क्षतशुक्रपक्वघृतपानादि :—

त्रिस्रिद्व्युदारिणा पक्वं क्षतशुक्रं घृतं पिबेत् ।  
मिरया तु हरेद्वर्तं जलीकोभिश्च लोचनाद् ॥ ३० ॥  
मिद्वेनोत्पलकाकोलीशक्षायष्टिविदारिभिः ।  
ममितेनाजपयमा सेचनं सलिले न वा ॥ ३१ ॥  
रागाश्रुवेदनाशांती परं लेखनमञ्जनम् ।

## वर्तय :—

वर्तयो जानिमुकुललाशार्णरिकर्चदनीः ॥ ३२ ॥

नफलायामेकस्य कस्यचिद्द्रव्यस्य त्वचम् । ततस्त्रिकलायाः ।

प्रसादयन्ति पित्तान् घ्नन्ति च शत्रुशुक्रम् ।

नेत्रवर्ति :—

दंतेदंतिवराहोद्भवास्त्वाज्वरोद्भवः ॥ ३३ ॥

मर्माङ्गमीकिष्ठांभोधिक्लेनैर्विचयादिकैः ।

सप्तशुक्रमपि ध्यापि क्षतवर्तिनिवर्तयेत् ॥ ३४ ॥

वर्तिःसर्वशुक्रहृत्—

तमाळपत्रं गोदंतयंसकेनोऽस्य मार्दनम् ।

ताम्रं च वर्तिमूत्रेण सर्वशुक्रवनाशिनी ॥ ३५ ॥

रत्नाद्यञ्जनम्—

ग्यानि दंता गृग्माणि घातवन्मूपण कुटिः ।

करंजवीजं लघुनो वणमादि च भेषजम् ॥ ३६ ॥

मन्त्रगात्रगर्भीरस्ववम्बशुक्रघ्नमञ्जनम् ।

निम्नशुक्रस्याञ्जनमनम्—

निम्नशुक्रमयेस्नेहपाननस्पर्साजनैः ॥ ३७ ॥

गन्धर्व नीहजं तुसिपुटपाकेन शुक्रकम् ।

शुद्धशुक्रे सेचनम्—

गूढशुक्रे निशामष्टीमारिवाशाबराभमा ॥ ३८ ॥

नेचनं गोध्रपीटन्या कोष्ठाभोमस्रयाऽभवा ।

शुक्रघ्नी गुटिका—

वृद्धामृगपृष्ठान्नाम्रमेववनागरैः ॥ ३९ ॥

पार्श्वोन्मावृता पिष्टैरेपितं ताम्रभाजनम् ।

मयाग्यामयकीपवीर्यदुशो धूपयेत्ततः ॥ ४० ॥

यत्र कृष्णं गुटिकाग्न्या णालशौद्रयेपिताः ।

महाभीषा इति कथ्यताः गूढशुक्रहृताः परम् ॥ ४१ ॥





## द्वादशोऽध्यायः

अथाऽतो दृष्टिरोगविज्ञानीयमध्यायं व्याख्यास्यामः ।

तिमिराख्यरोगलक्षणम् —

“मिरानुसारिणि मने प्रथमं पटलं त्रिते ।  
 अव्यक्तमीक्षने रूपं व्यक्तमप्यनिमित्ततः ॥ १ ॥  
 ‘प्राते द्वितीयं पटलमभूतमपि पश्यति ।  
 भूतं तु यत्लादासन्नं दूरे मूढमं च नेशते ॥ २ ॥  
 दूरंतिक्स्थं रूपं च विपर्ययित मन्यते ।  
 दोषे मंडलमस्फाने मंडलानीव पश्यति ॥ ३ ॥  
 द्विर्धकं दृष्टिमध्यस्थे बहुधा बहुधा स्थिते ।  
 दृष्टेरभ्यंतरगते ह्रस्ववृद्धविपर्ययम् ॥ ४ ॥  
 नातिवस्थमघःमंस्थे दूरगं नोपरि स्थिते ।  
 पार्श्वे पश्येन्न पार्श्वस्थे तिमिराख्योऽयमामयः ॥ ५ ॥  
 प्राप्नोति काचतां दोषे तृतीयपटलाभिते ।  
 तेनोर्ध्वमीक्षते नाघस्तनुर्बलावुतोपम् ॥ ६ ॥  
 यथावर्णं च रज्येत् दृष्टिर्हृष्टिश्च क्रमात् ।  
 “तथाभ्युपेक्षमाणस्य चतुर्थं पटलं गतः ॥ ७ ॥  
 क्षिपनाद्यं मलः कुर्वन् छादयेद् दृष्टिमंडलम् ।  
 तत्र चातेन तिमिरे व्याविद्धमिव पश्यति ॥ ८ ॥  
 चलाविलारुणाभामं प्रमन्नं चेशते मुहुः ।  
 आलानि वेद्यान्मशकान् रश्मीश्चोपशितेऽत्र च ॥ ९ ॥

१ द्वितीयं मेद आश्रितं पटलम् । अभूतमविद्यमानम् । दूरे स्थितं तथा मूढमं  
 च न पश्यति । तिमिररोगः-आपायो मोतियादिद इति ।

काचीभूते दृग्गुणा पश्यत्यास्यामनामिकम् ।  
चन्द्रदीपाद्यनेकत्वं वक्रमृज्वपि मन्यते ॥ १० ॥  
वृद्धः काचो दृशं कुर्याद्रिजोधूमावृतामिव ।  
रसष्टास्याभा विस्तीर्णा भूदमा वा हतदर्शनाम् ॥ ११ ॥  
स लिङ्गनाशो,

घाते तु संकोचयति दृक्क्षिप्राः ।

दृग्मंडलं विशत्यंतर्गभीरा दृगसौ स्मृता ॥ १२ ॥  
पित्तजे तिमिरे विद्युत्खद्योतोद्योतदीपितम् ।  
शिखितित्तिरिपिच्छान्नं प्रायो नीलं च पश्यति ॥ १३ ॥  
काचे दृक् काचनीलाभा सादृगेव च पश्यति ।  
जकंदुपरिवेषाग्निमरीचीद्रघनूपि च ॥ १४ ॥  
भृङ्गनीला<sup>१</sup> निरालोका दृक् लिङ्गा लिङ्गनाशतः ।  
दृष्टिः पित्तेन ह्रस्वाख्या सा ह्रस्वाह्रस्वदर्शिनी ॥ १५ ॥  
भवेत्पित्तविदग्धाख्या पीता पीताभदर्शना ।

कफतिमिर लक्षणम्—

कफेन तिमिरे प्रायः लिङ्गं श्वेतं च पश्यति ॥ १६ ॥  
दालेंदुकुदकुसुमैः कुमुदीरिव<sup>२</sup> चाचितम् ।  
काचे तु निष्प्रभेद्रकप्रदीपादीरिवाचितम् ॥ १७ ॥  
सिताभा सा च दृष्टिः स्याद्विङ्गनाशे तु लक्ष्यते ।  
मूर्तः कफो दृष्टिमतः लिङ्गो दर्शननाशनः ॥ १८ ॥  
विदुर्जलस्येव बलः पद्मिनीपुटमस्थितः ।  
उप्यो संकोचमायाति छायायां परिसर्पति ॥ १९ ॥  
पांसवुदेंदुकुमुदस्फटिकोपमशुबिलमा ।  
रक्तेन तिमिरे रक्तं तमोभूतं च पश्यति ॥ २० ॥

१ लिङ्गनाशाद्दृष्टिर्भ्रमरवन्नीला प्रकाशरहिता स्निग्धा च स्यात् तेन ह्रस्व  
संज्ञा दृष्टिः । ह्रस्वा ह्रस्वाकृतिस्तथा ह्रस्वदर्शिनी च दृष्टिर्भवति । २ आचितं  
व्याप्तम् ।

काचेन रक्ता वृष्ट्या वा दृष्टिस्तादृक् च पश्यति ।  
 लिंगनाभोऽपि तादृग् दृष्ट् निःप्रभा हृददर्शना ॥ २१ ॥  
 संसर्गसंनिपातेषु विद्यात्संकीर्णलक्षणान् ।  
 तिमिरादीनन्माञ्च तैः स्याद्व्यक्तागुणलक्षणम् ॥ २२ ॥  
 तिमिरे, शेषयोर्दृष्टौ चित्रो रागः प्रजायते ।

### नकुलान्ध्यरोगः—

द्यौस्त्यने नकुलस्येव यस्य दृष्ट् निचिता मलः ॥ २३ ॥  
 नकुलाय. य तत्राह्नि चित्रं पश्यति नो निधि ।

### दोषान्धोरोगः—

अर्केऽस्तमस्तकन्यस्तगमस्तौ स्तंभमागताः ॥ २४ ॥  
 स्पगयंति दृष्टं दोषा दोषाघः स गदोपरः ।  
 दिवाकरकरस्पृष्टा भ्रष्टा दृष्टिपक्षान्मलाः ॥ २५ ॥  
 विलीनलीना यच्छंति व्यक्तमन्नाह्नि दर्शनम् ।

### रात्र्यान्ध्यादिरोगाः—

उष्णतप्तस्य सहसा शीतवारिनिमज्जनात् ॥ २६ ॥  
 त्रिदोषरक्तमृत्को यात्पूष्मोर्ध्वं ततोऽक्षिणी ।  
 दाहोपे मलिनं शुक्लमहन्पाविलदर्शनम् ॥ २७ ॥  
 रात्रावांध्यं च जायेत विदग्धोऽध्मेन सा स्मृता ।  
 “भृशमम्लाशनाद्दोषैः सार्धैर्षा दृष्टिराचिता ॥ २८ ॥  
 मन्त्रेदकङ्कलुपा विदग्धाम्बुन सा स्मृता ।,  
 शोक्ज्वरक्षिरोरोगसंतप्तस्यानिलादयः ॥ २९ ॥  
 धूमाविलां धूमधर्मा दृष्टं कुर्युः स धूमरः ।  
 महर्मावात्यसत्त्वस्य पश्यतो रूपमद्भुतम् ॥ ३० ॥

१ तैः संसर्गसंनिपातैः । २ शेषयोः काचलिङ्गनाशयोः । अस्तमस्त-  
 पर्वतस्य मस्तके न्यस्ता स्थापितामस्तय. किरणा येन स तस्मिन् अर्के । स्पगयन्ति  
 छादयन्ति ।

भास्वरं भास्करादि वा वाताद्या नयनाश्रिताः ।  
 कुर्वन्ति तेजः मंशोप्य दृष्टिं मुपितदर्शनाम् ॥ ३१ ॥  
 वैह्वर्यवर्णां स्तिमितां प्रकृतिस्यामिवाव्ययाम् ।  
 शीपसर्गिक इत्येव लिङ्गनाशो,

साध्यासाध्यविचारः—

ऽत्र वजयेत् ।

विना 'कफाङ्गिगनाशान् गंभीरां ह्रस्वजामपि ॥ ३२ ॥  
 पट् काचा नकुलाघञ्च याप्याः, रोपांस्तु साधयेत् ।  
 द्वादशेति, गदा दृष्टी निर्दिष्टा सप्तविंशतिः" ॥ ३३ ॥

## त्रयोदशोऽध्यायः ।

अथाऽस्तस्तिमिरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

तिमिरस्यशीघ्रमुपक्रमः—

"तिमिरं काचतां याति काचोप्याध्यमुपेतया ।  
 नेत्ररोगेष्वतो धीरं तिमिरं साधयेत् द्रुतम् ॥ १ ॥

साधितघृतपानं काचादिनाशकम्—

मुलां पचेत् जीवत्या द्रोणेऽर्षां पादशेषितैः ।  
 सत्त्ववाये द्विगुणशीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥

१ विनेति—वातपित्तसंसर्गसन्निपातरक्तजीवगर्गिकात् । पट् काचाः—वातपित्त-  
 कफरक्तमंससर्गसन्निपातजाः । रोपान् द्वादश—वातपित्तकफ रक्तमंससर्ग सन्निपातरिति-  
 तिमिराणि पट् । सप्तमः कफजो लिङ्गनाशः । अष्टमः पित्तविदग्धा दृष्टिः । नवमो-  
 दोषान्धः, दशम उष्णविदग्धादृष्टिः । एकादशो विदग्धाम्ला । द्वादशो घृमरः ।

प्रपोडरीककाकोलीपिप्पलीरोग्रसैधवीः ।  
 यताह्वामधुकद्राक्षासितादारफलत्रयः ॥ ३ ॥  
 कापिकर्निशि तत्पोतं तिमिरापहरं परम् ।  
 द्राक्षाचदनमजिष्ठाकाकोलीद्वयजीवकः ॥ ४ ॥  
 सिताशतावरोमेदापुंड्राह्वमधुकोत्पलः ।  
 पचेर्जाणं घृतप्रस्थं समक्षीरं पिचून्मिवैः ॥ ५ ॥  
 हृति तत्काचतिमिररक्तराजीधिरोरुजः ।

### अन्यद्घृतम्—

पटोलनिबकटुकादावसिन्धुवरावृषम् ॥ ६ ॥  
 सघन्धयासत्रायंतीपर्वटं पालिकं पृथक् ।  
 प्रस्थमामलकानां च क्वाथयेन्नत्वर्णोऽमसि<sup>१</sup> ॥ ७ ॥  
 सदादकेर्ध्वपतिकैः पिष्टं प्रस्थं घृतात्पचेद् ।  
 मुस्तभूनिवघट्टपाह्लकुटजोदीज्यचंदनैः ॥ ८ ॥  
 सपिप्पलीकैस्त्वत्सपिघ्नोणकणांस्परोजित् ।  
 विद्रधिज्वरदुष्टारोवसर्पापचिकुष्ठनुन् ॥ ९ ॥  
 विरोपाच्युक्त्वतिमिरनक्तान्व्योष्णाम्लदाहनुन् ।

### त्रिफलाघृतम्—

त्रिफलाष्टपलं क्वाथ्यं पादशेषं जलाढके ॥ १० ॥  
 तेन तुल्यपयस्कैः त्रिफलापलकल्कवान् ।  
 अर्धप्रस्थो घृतालिढः सितया माक्षिकेण वा ॥ ११ ॥  
 मुक्तं पियेततिमिरी तद्युक्तं वा वरारसम् ।

### महात्रैफलंघृतम्—

यष्टीमधुद्विकाकोलीव्याघ्रीकृष्णामृतीत्पलैः ॥ १२ ॥  
 पालिकैः ससिताद्राशीर्घृतप्रस्थं पचेत्सर्वैः ।  
 अजाधीरवरावामामार्कवस्वरसैः पृथक् ॥ १३ ॥

महानैफलमित्येतत्परं दृष्टिविकारजित् ।

लेहोगरुडतुल्य दृष्टिकृत्—

नैकलेनाथ हविषा लिहानस्त्रिफलां निशि ॥ १४ ॥

यष्टीमधुकसंयुक्तां मधुना च परिप्लुताम् ।

माममेक हिताहारः पिबन्नामलकोदकम् ॥ १५ ॥

१ मोषणं लभते चक्षुरित्याह भगवान्निमिः ।

त्रिफलाप्रयोगः—

ताप्यामोहेमयष्टपाह्नसितार्जुणज्यमाशिकैः ॥ १६ ॥

संयोजिता यथाकामं तिमिरघ्नी<sup>१</sup> वरा वरा ।

सघृतं वा वराम्बाधं क्षीलयेत्तिमिरामयी ॥ १७ ॥

अपूपमूपसफनून्वा त्रिफलाचूर्णसंयुताम् ।

पायसं वा वरायुक्तां क्षीतं ममघुशर्करम् ॥ १८ ॥

प्रातर्मत्तस्य वा पूर्वमद्यात्पथ्या पृथक् पृथक् ।

मृद्वीका शर्कराक्षीद्रीः सततं तिमिरातुरः ॥ १९ ॥

तिमिरापहं चूर्णाजनम्—

२ स्रोतोजाशश्चतुःपष्टि ताम्रागोरूप्यकांचनैः ।

युक्तान् प्रत्येकमेकाशैरंधमूपोदरस्थितान् ॥ २० ॥

ध्मापयित्वा समावृत्तां ततस्तन्त्र निपेचयेत् ।

रमस्कंधकपायेषु सततृत्वः पृथक् पृथक् ॥ २१ ॥

वैडूर्यभुक्ताशंखाना निभिर्भागैर्युतं ततः ।

चूर्णाजनं प्रयुंजीत तत्सर्वं तिमिरापहम् ॥ २२ ॥

१ सोपणं गारुडम् । २ वरात्रिफला । वराप्रदीप्ता । ३ स्रोताञ्जनस्य च तु.पष्टिभागाः, ताम्रादीनां प्रत्येकमेकभागः । समावृत्तां तिलायां पिष्टम् । रक्षेति-  
मधुरादिरमद्रव्यगणवचायेषु । वैडूर्यादीनांपृथक् क्रयोभागाः ।

## अञ्जनम्—

मांसीत्रिजातकायःकुङ्कुमनीलोत्पलाभयानुत्थैः ।  
 सितकान्धशंखफेनकमरीचोजनपिप्पलीमधुकैः ॥ २३ ॥  
 चन्द्रेऽश्विनीसनाये मुजूर्णितरंजयेद्युगुलमरणोः ।  
 तिमिरामरंरक्तराजीकङ्ककाचादिदशममिच्छन् ॥ २४ ॥

## अञ्जनम्—

मरिचवरलवणभाभी भाभी द्वौ कणसमुद्रफेनाभ्याम् ।  
 सौदीरभागनवकं चित्रापां चूर्णितं कफामयजित् ॥ २५ ॥

## अञ्जनम्—

द्राक्षाभृणालीस्थरसे क्षीरमद्यवमासु च ।  
 पृथक् दिव्याप्सु स्रोतोर्जं समकृत्यो निपेक्षयेत् ॥ २६ ॥  
 तच्चूर्णितं स्थितं शङ्खे हृक्प्रसादनमंजनम् ।  
 घटतं मर्वाक्षिरोगेषु विदेहपतिनिर्मितम् ॥ २७ ॥

## भास्कराञ्जनम्—

निर्दग्धं वादरांगारैस्तुल्यं चेत्यं निपेक्षितम् ।  
 क्रमादजापय.मपि क्षौद्रे तस्मात् पलद्वयम् ॥ २८ ॥  
 कार्पिकस्ताप्यमरिचस्रोतोऽजकुतानतैः ।  
 पट्टुरोम्रशिलापथ्याकर्णलाजनफेनिकैः ॥ २९ ॥  
 युक्तं पलेन यष्ट्याश्च मूपांतध्मांतचूर्णितम् ।  
 हवि काचार्मनत्तांव्यरक्तराजोः मुञ्चोलितः ॥ ३० ॥  
 चूर्णो विनेपगतिमिरं भास्करो भास्करो यथा ।

१ यस्मिन्निदमे वप्रक्षत्रस्यात् चन्द्रस्तस्मिन्दिने तदप्रक्षत्रयुक्तोभवति, ततो-  
 यस्मिन्दिनेऽश्विनीनक्षत्रं भवेत्तस्मिन्दिने, इत्यर्थः ।



## द्वितीयंभास्कराञ्जनम्—

त्रिसदभागा भुजंगस्य गंधपापाणपंचकम् ॥  
 शुल्बतारकयोर्द्वौ द्वौ वंगस्यैकोजनत्रयम् ॥ ३१ ॥  
 अंधमूपीकृतं ध्मात पक्वं विमलमंजनम् ।  
 तिमिरांतकरं तांके द्वितीय इव भास्करः ॥ ३२ ॥

## तुल्याञ्जनम्—

गोमूत्रे छगणरमेज्जलाजिके च  
 स्त्रीस्तन्ये हविषि विषे च माक्षिके च ।  
 यत्तुल्यं ज्वलितमनेकयो निषिक्तं  
 तत्तुल्यदिगच्छममं नरस्य चक्षुः ॥ ३३ ॥

## सौसकशलाका—

श्रेष्ठाजलं भृंगरम मविपाज्यमजापयः ।  
 मष्टीरसं च यत्सीमं सप्तकृत्व पृथक् पृथक् ॥ ३४ ॥  
 तप्तं तप्तं पायित तच्छलाका  
 नेत्रेयुक्ता साजनानंजना वा ।  
 तैमिर्यार्मदावर्षेच्छित्यवैल्ल  
 कङ्क जाड्यं रक्तराजो च हति ॥ ३५ ॥

## तिमिरावहमञ्जनम्—

रसेद्रभुजगी तुल्यो तयोस्तुल्यमधाजनम् ।  
 ईपस्तूर्परसंयुक्तमंजनं तिमिरापहम् ॥ ३६ ॥

## गृधाञ्जनम्—

यो गृध्रस्तरुणरविप्रकाशगल्ल-  
 स्तस्यास्यं समयमृतस्य गोशृङ्गिः ।

१ भुजङ्ग-मीसकम् । गन्धपापाणपञ्चकं गन्धकस्य पञ्चभागाः । शुल्बं वाग्रम्,  
 तारकं रजतम् । भुजङ्गादीनिशुद्धान्यत्रशास्त्राणि ननु तदमस्मानि । २ राजनिषष्ठ-  
 परिभाषया-ईपञ्छद्वयभुज्याचकस्तेन कर्पूरस्य चतुर्थभागः ।

निर्दग्धं समघृतमंजनं च पेप्यं

योगोऽयं नयनवलं करोति गाधम् ॥ ३७ ॥

**कृष्ण सर्पाञ्जनम्—**

कृष्णसर्पवदने महविष्कं दग्धमंजनमनिःसृतधूमम् ।

धूणितं नलदपत्रविमिश्रं भिन्नतारमपि रसति चक्षुः ॥ ३८ ॥

**अन्धानां पुरीपाञ्जनम्—**

कृष्णं सर्पं मृतं न्यस्य चतुरश्रापि वृश्चिकान् ।

क्षीरकुम्भे त्रिमसाहं कनेदयित्वाथ मंथयेत् ॥ ३९ ॥

तत्र यम्रवनीतं स्यात्पुष्णीयात्तेन कुक्कुटम् ।

रजस्तप्त्य पुरीषेण जैत्रेते ध्रुवमंथनात् ॥ ४० ॥

**रसक्रिया—**

कृष्णसर्पवमा क्षलः कतकात् फलमंजनम् ।

रसक्रियेयमचिरादंधाना दर्शनप्रदा ॥ ४१ ॥

**अप्रतिसाराञ्जनम्—**

गरिषानि दशार्धपिचु-

स्ताप्यात्तुल्यात्पल पिचुर्यष्टषाः ।

क्षीराद्रदग्धमंजन-

मप्रतिसाराख्यमुत्तमं तिमिरे ॥ ४२ ॥

**गुटिकाञ्जनम्—**

अशबीजगरिचामलकत्वक्-

तुल्ययष्टिमधुर्जैरुपिष्टैः ।

छायमैव गुटिकाः परिष्पृक्का

नाशयति तिमिराण्यचिरेण ॥ ४३ ॥

## पण्माक्षिक योगः—

मरिचामलकजलोद्भव<sup>१</sup>-  
तुल्यांजनताप्यधातुभिः क्रमवृद्धैः ।  
पण्माक्षिक इति योग-  
स्तिमिरार्मवलेदकाचकंहूहता ॥ ४४ ॥

## चूर्णास्त्रनमरोपदृष्टिरोगहरम्—

रत्नानि हृष्यं स्फटिकं मुवर्णं  
कोतोजनं ताम्रमयः सशंखम् ।  
कुचन्दनं लोहितगैरिकं च  
चूर्णांजनं सर्वदृग्गामयन्तम् ॥ ४५ ॥

## नस्यंहृग्यलकारकम्—

तिलतैलमक्षतैलं धुंगस्वरसोऽसनाच्च नियूहः ।  
आयसपान्नविषक्वं करोति दृष्टेर्बलं नस्यम् ॥ ४६ ॥

## नेत्ररोगिणः स्नेहादिभिरुपक्रमः—

दोपानुरोधेन च नैकशस्तं  
स्नेहाद्यविस्त्रावणरेकनस्यैः ।  
उपाचरेदंजनमूर्ध्ववस्ति-  
वस्तिस्त्रिमातर्पणलेपसेकैः ॥ ४७ ॥  
सामान्यं साधनमिदं प्रतिदोषमतः शृणु ।

## वातजेतिमिरे पक्षघृतादि—

वातजे तिमिरे तत्र दशमूलाभसा घृतम् ॥ ४८ ॥  
शीरे चतुर्गुणैश्चेष्टाकृत्स्नार्धं पिबेत्ततः ।  
त्रिफलापञ्चमूलानां कषायं शीरमयुतम् ॥ ४९ ॥

१ मरिचं दशभागम् । ताप्यात्स्वर्णमाशिरादर्धकर्पः । २ जलोद्भवं शंखम्  
पट्पूरणोमाक्षिणोयस्मिन्निति पण्माक्षिकः । पष्टं द्रव्यं माक्षिकमप्येत्यर्थः । कुचन्दन-  
रक्तचन्दनम् ।

सर्पिरष्टगुणशीरं पक्वं तर्पणमुत्तमम् ।

**तर्पणम्—**

मेदसस्तद्वदणैयाददुग्धसिद्धात् खजाहृतात् ॥ ५६ ॥

उद्धृतं साधितं तेजो<sup>१</sup> मधुकोशीरचदनैः ।

**वसातर्पणम्—**

श्वानिच्छत्यकगोधानां दशतिक्तिरिबहिणाम् ॥ ६० ॥

पृथक्पृथगनेनैव विधिना कल्पयेद्वनाम् ।

प्रसादनं स्नेहनं च पुष्टपार्कं प्रयोजयेत् ॥ ६१ ॥

वातपीनमवधाय निरूहं सानुवासनम् ।

**पित्तजेतिमिरे घृतपानादि—**

पित्तजे तिमिरे सर्पिर्ज्विर्नायफलत्रयैः ॥ ६२ ॥

विपाधितं पायमित्रा क्षिप्यस्य व्यथयेत्तिराम् ।

शर्करैलात्रिवृच्चूर्णैर्मधुपुक्तैर्विरेषयेत् ॥ ६३ ॥

मुदीतान् सेकलेषादीन् युज्यान्नेनास्यमूर्धसु ।

सारिषापचकोशीरमुक्तागारचदनैः ॥ ६४ ॥

**अञ्जनेवर्ति :—**

वर्तिः कस्ताजने चूर्णस्तथा पत्रोत्पलाजनैः ।

सनागपुष्पकर्पूरमष्टपाह्वस्वर्णगैरिकैः ॥ ६५ ॥

**तिमिरघ्नमञ्जनम्—**

<sup>२</sup>सौवीराजनतुल्यकर्जुमीघात्रीफलस्फटिककर्पूरम् ।

पंचांशं पंचांशं श्यंशमर्यकाशमंजनं तिमिरघ्नम् ॥ ६६ ॥

**नश्यम्—**

नश्यं चाज्यं शृतं क्षीरजीविनीपत्रितोत्पलैः ।

१ तेजोऽनस्नेहः । २ सौवीराजनतुल्यकयोः ५-५ भागाः । शृङ्गामलयोः

३-३ भागाः । स्फटिककर्पूरयोः १-१ भागः ।

### कफजतिभिर चिकित्सा—

श्लेष्मोद्भवैः मृताववायवराकणभृतं घृतम् ॥ ६७ ॥  
 विष्येत्सिरां पीतवतो दद्याद्यानुविरेचनम् ।  
 छाद्यं पूगाभयाद्युष्ठीकृष्णाकुंभनिकुंभजम् ॥ ६८ ॥  
 "हृत्वावेरदारुद्रिनिशाकृष्णाकल्कैः पयोन्वितैः ।  
 त्रिपञ्चमूलनिपूहे तैलं पक्वं च नावनम्" ॥ ६९ ॥

### विमलाकोकिलाख्येवर्त्ति—

दांसप्रियंगुनेगालीकटुत्रिकफलत्रिकैः ।  
 हृद्वंमल्याय विमला वर्तिः स्यात्कोकिला पुनः ॥ ७० ॥  
 कृष्णलोहरजोम्योपसंघवन्निफलाजनैः ।

### तिमिरशुक्रनाशिनीवर्ति :—

दाशगोखरसिंहोष्ट्रदिजा लालाटमस्थि च ॥ ७१ ॥  
 श्वेतगोवालमरिचशंखचन्दनफेनकम् ।  
 पिष्टं स्तब्धाजदुग्धाम्ना वर्तिस्तिमिरशुक्रजित् ॥

### रक्तजतिमिर चिकित्सा—

रक्तजे पित्तवत्सिद्धिः घीतैश्चासं प्रसादयेत् ॥ ७२ ॥  
 द्राक्षया नलदरोध्रमष्टिभिः  
 र्क्षुत्तुप्राहिमपसपचकैः ।  
 सांत्पलंशुगलदुग्धवर्तित-  
 रसजं तिमिरमाशु नश्यति ॥ ७३ ॥

### द्वन्द्वजादितिमिर चिकित्सा—

संसर्गमनिपातोत्प्रे यथादोषोदमं क्रिया ।  
 मिदं मधुकटुमिज्जिन्मरिचामरुदारुभिः ॥ ७४ ॥

१ नेपालीमन्त्रिस्ता । कोकिला कोकिलानाम्नी वर्तिः कृष्णलोहरदिभिः ।  
 २ हिमं चन्दनम् । छागदुग्धवर्तितं रजादुग्धपिष्टैः ।

मक्षीरं नावने तैलं पिष्टैल्लपो मुखस्य च ।  
 “नतनीलोत्पलानंतायष्टचाह्वमुनिपण्णकैः ॥ ७५ ॥  
 माधितं नावने तैलं शिरोबस्ती च द्यस्यते ।  
 दद्यादुद्योरनियूहे चूर्णितं कणसैधवम् ॥ ७६ ॥  
 तच्छृतं सघृत भूयः पचेत्सौद्रं घने श्लिपेत् ।  
 द्योते चास्मिन् हितमिदं सर्वजं तिमिरैऽजनम् ॥ ७७ ॥  
 भक्ष्योनि भजपूर्णानि सत्त्वाना रात्रिचारिणाम् ।  
 स्रोतोजाजनयुक्तानि बहस्यंभमि वासयेत् ॥ ७८ ॥  
 मामं विदातिरान्नं वा ततश्चोदृत्य क्षोपयेत् ।  
 समेषशृंगीपुष्पाणि मयष्टपाह्वानि तानि तु ॥ ७९ ॥  
 चूर्णितान्यजनं श्रेष्ठं तिमिरे सांनिपातिके ।

काचचिकित्सा—

काचेऽप्येवा क्रिया भुक्त्वा<sup>१</sup> मिरा यन्त्रनिपीडिताः ॥ ८० ॥  
 आध्याय स्युर्मला दद्यात्त्राग्ये रक्ते जलीकम् ।  
 गुडः केनोजनं कृष्णा मरिचं कुकुमाद्रजः ॥ ८१ ॥  
 रसक्रियेयं सक्षौद्रा काचयापनमंजनम् ।  
 नकुलांघ्रे त्रिबोपोर्ये तैमिर्यविहितो विधिः ॥ ८२ ॥  
 रसक्रिया घृतक्षौद्रगोमयस्वरसद्रुतः ।  
 ताक्ष्यगैरिकतालीसैनिशाग्ये हितमंजनम् ॥ ८३ ॥  
 दध्ना विष्टुष्टं मरिचं रान्योर्ध्वेजनमुत्तमम् ।  
 “करंजिकोत्पलस्वर्णगैरिकाभोजकेमरः ॥ ८४ ॥  
 विष्टुष्टोमयतोयेन वर्तिर्दोषांघ्यनाशिनी ।  
 “अजामूयेन वा कौतुकृष्णासोतोजसैधवै” ॥ ८५ ॥  
 “कालानुमारी।प्रबन्धुविफलालमनःशिला ।  
 मफेनाशलागदुग्धेन रात्र्यधे वर्तयो हिता” ॥ ८६ ॥

१ मिरां भुक्त्वा मिरांनमुञ्जेत् । यतो यन्त्रनिपीडिताः शिरोपयोगियन्त्र-  
 निपीडितामला आध्यायस्युः ।

“मनिवेश्य यकृन्मध्ये पिप्पलीरदहन्पचेत् ।  
 ताः सुष्का मधुना घृष्टा निशांष्ये श्रेष्ठमंजनम्” ॥ ८७ ॥  
 “खादेच्च श्लीहयकृती माहिषे तैलसर्पिषा ।”  
 “घृतं मिद्वानि जीवन्त्याः पल्लवानि च भक्षयेत् ॥ ८८ ॥  
 स्यात्तिष्ठुत्कर्करद्वयोफालस्यभिरुज्जानि” च ।  
 “भृष्टं घृतं कुम्भयोनेः पत्रैः पाने च पूजितम्” ॥ ८९ ॥  
 धूमराख्याम्बुविस्तोष्णविदाहे जीर्णसर्पिषा ।  
 सिम्ब विरेबयेच्छ्रोतैः श्रोतैर्दिष्टाच्च सर्वतः ॥ ९० ॥  
 गोशवृद्रसदुग्धाज्यंविषक्वं यस्यतैःजनम् ।  
 स्वर्णगैरिफतालीमचूर्णावापा रसक्रिया ॥ ९१ ॥  
 “भेदाद्यावरकान्तामंजिष्ठादाविव्यष्टिभिः ।  
 क्षीराष्टांशं घृत पक्व सतैलं नाचर्न हितम्” ॥ ९२ ॥  
 सर्पंश्च क्षीरसर्पिः स्यादशाम्यति सिराम्यधः ।

चिन्तादिभिस्तिमिर रोगिवद्वलोकनम्—

विताभिष्यातभीष्टोकरीडयात्सीत्कटकासनात् ॥ ९३ ॥  
 विरेवनस्यवमनपुटपाकादिविघ्नमात् ।  
 विदग्धाहारवमनात्शुत्तुष्णादिविधारणात् ॥ ९४ ॥  
 “अक्षिरोगावमानाच्च पश्येत्तिमिररोगिवन् ।  
 मयात्वं तत्र मुञ्जीत दोषादीन् वीक्ष्य भेषजम् ॥ ९५ ॥

अतितेजस्विनोपहतदृष्टी चिकित्सा—

गुरोर्परामानलविशुदादि-  
 विलोकनेनोपहृतेक्षणस्य ।  
 संतर्पणं ग्रिष्पहिमादि कार्यं  
 तर्पाजनं हेमघृतेन घृष्टम् ॥ ९६ ॥

अभिरुजा भङ्गा । २ अक्षिरोगावमानात् नेत्ररोगान्तात् ।

## सदानेग्रंरत्तणीयम्--

चक्षुरक्षाया मर्वकालं मनुष्यं-

यस्यः कर्तव्यो जीविते यावदिच्छा ।

व्यर्थो लोकोऽयं तुल्यरात्रिदिवानां

पुंसामेधानां विद्यमानेऽपि वित्ते ॥ ६७ ॥

## त्रिफलादिकं नेत्ररक्षकम्--

त्रिफला रुधिरस्रुतिर्विशुद्धि-

र्मनसो निर्वृतिरंजनं च नश्यम् ।

शकुनाशनता सपादपूजा

घृतपानं च सदैव नेत्ररक्षा ॥ ६८ ॥

अहितादशनात्मदा निवृत्ति-

श्रुशमास्वचलमूदमवीक्षणाच्च ।

मुनिना निमिनोपदिष्टमेतत्

परमं रक्षणमीक्षणस्य पुंसाम् ॥ ६९ ॥

१ निर्वृतिः प्रमत्तता, क्षान्तिरितियावत् । शकुनाशनता-पक्षिमांसाहारत्वम्

“दृष्टेहितं घातुन जाङ्गलं च” इति उत्तरस्थानीयमहादशाध्याये सुश्रुतोक्तेः ।

पादपूजा-पादयोरभ्यङ्गोद्वर्तनप्रशालनपादनाणघारणादिकम् ।



## चतुर्दशोऽध्यायः ।

अथातो लिङ्गनाशप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

कफोद्भूयलिङ्गनाशस्यव्यधादि—

“विध्येत्युजातं निःप्रेक्षं लिङ्गनाशं कफोद्भवम् ।

‘आवर्तनयादिभिः पङ्क्तिर्विचित्रितमुपद्रवं ॥ १ ॥

तत्रहेतुः—

‘मोऽमंजातो हि विषमो दधिमस्तुनिभस्तनुः ।

सलाकयाऽवकृष्टोऽपि पुनरुर्ध्वं प्रपद्यते ॥ २ ॥

करोति वेदना तीव्रा दृष्टि च स्यगयेत्युतः ।

श्लेष्मलैः पूर्यते चासु मोऽन्यैः सोपद्रवंश्चिरात् ॥ ३ ॥

आनीलतागदः—

श्लेष्मिको लिङ्गनाशो हि सितत्वाच्छ्लेष्मणः मितः ।

तस्यान्यदोषाभिभवत्तदानीलता गदः ॥ ४ ॥

आवर्तकीदृष्टिस्वरूपम्—

तत्रावर्तबला दृष्टिरावर्तस्यरूपा सिता ।

शर्करास्वरूपम्—

शर्करार्कपयोलेहानिचिनेव घनाति च ॥ ५ ॥

राजीमतीरूपम्—

राजीमती दृङ्निचिता आतिशूकाभराजिभिः ।

## लिङ्गांशुका—

विपमच्छिन्नदग्धाभा सरुद्धिर्वांशुका स्मृता ॥ ६ ॥

## चन्द्रकी—

दृष्टिः कांस्यसमञ्जसा चन्द्रकी चंद्रकाकृतिः ।

## छत्रकी—

छत्राभा नैकवर्णा च छत्रकी नाम नीलिका ॥ ७ ॥

## व्यधनिषेधः—

न विध्येदतिरार्हणां न दृक्पीनतकासिनाम् ।

नार्जोणिभोरुवमिततिर. कर्णाक्षिशुलिनाम् ॥ ८ ॥

लिङ्गनाश ( मोतियाबिन्द ) व्यधप्रकारः :-

अथ साधारणे काले शुद्धसमो गितात्मनः ।

देशे प्रकाशे पूर्वाह्णे भिषग् जानूचपीठगः ॥ ९ ॥

यंत्रितस्मोपविष्टस्य स्विघ्राक्षस्य मुखानिलैः ।

अंगुष्ठमुदिते नेत्रे दृष्टी दृष्ट्वोत्प्लुतं मलम् ॥ १० ॥

स्वनासा प्रेक्षमाणस्य, निष्कंपं मूत्रं धारिते ।

कृष्णादधर्गुलं मुक्त्वा तदर्धार्धमपागतः<sup>१</sup> ॥ ११ ॥

तर्जनीमध्यमागुष्ठैः शलाकां निश्चलं धृताम् ।

दैवच्छिद्रं<sup>२</sup> नयेत्पार्श्वदूर्ध्वमामंथयन्निव ॥ १२ ॥

सम्यं दक्षिणहस्तेन नेत्रं सम्येन चेतरेत् ।

विध्येत्,

## सुविद्ध लक्षणादि—

सुविद्धे धब्बः स्यादरुक्पांवलवसृतिः ॥ १३ ॥

सारवयमातुरं चानु नेत्रं स्तन्येन सेचयेत् ।

शलाकायास्ततोऽग्रेण निर्लिखेन्नेत्रमंडलम् ॥ १४ ॥

१ कृष्णात्कृष्णमण्डलात् । तदर्धार्धमपाङ्गतः-अपाङ्गात् तस्य कृष्णमण्डलस्या-  
धर्गुलं तस्याप्यर्धमङ्गुलचतुर्थभागं मुक्त्वा । २ शलाकां दैवच्छिद्रस्य पारवैनयेत् ।  
सम्यं वामम् । इतरत् दक्षिणं नेत्रम् ।

अवायमानः शनकैर्नामो प्रतिनुदस्ततः ।

उत्स्मिचनाद्यापहरेद्दृष्टिर्मङ्गलं कफम् ॥ १५ ॥

स्थिरे दोषे चले वापि स्वेदयेदग्निं बाह्यतः ।

अथ दृष्टेषु रूपेषु दालाकामाहरेच्छनैः ॥ १६ ॥

घृताज्जुतं पित्तुं दत्त्वा यद्दार्ढ्यं शाययेत्ततः ।

विद्वादन्येन पार्श्वेन तमुत्तारं द्रव्योव्यधे ॥ १७ ॥

निवाते शयनेऽभ्यक्तशिरःपार्श्वं हिते रतम् ।

सप्ताहं क्षवादिनिषेधः—

क्षवधुं काममुद्गारं श्लेष्मन् पानमभयः ॥ १८ ॥

अधोमुखस्थितिं क्षानं दत्तधावनभक्षणम् ।

सप्ताहं नाचरेत्स्नेहपीतवद्यान् यन्त्रणा ॥ १९ ॥

लङ्घनादि—

घृतिशो लंघयेत्सेको रजि कोष्णेन सर्पिषा ।

मन्योपामलकं वाट्यमक्षीयात्मघृतं द्रवम् ॥ २० ॥

विलेपी वा श्र्यहाद्यास्य क्वार्थधुक्त्वाग्निं सेचयेत् ।

वातघ्नः सप्तमे त्वह्नि सर्वयवाग्निं मोचयेत् ॥ २१ ॥

अतिसूक्ष्मादि दर्शननिषेधादि—

यन्त्रणामनुरज्येत दृष्टेरास्यैर्यलाभतः ।

रूपाणि मूत्रमदीप्तानि सहसा नावलोकयेत् ॥ २२ ॥

शोकरागरुजादीनामधिर्मयस्य शोद्भवः ।

अहिर्द्वैषदोषाच्च यथास्वं तानुपाचरेत् ॥ २३ ॥

मुखालेपः—

कल्मिताः सधृता हूर्वापवर्गरिकसारिवाः ।

मुखालेपे प्रयोक्तव्या रुजारागोपज्ञातये ॥ २४ ॥

१ अवायमानोऽग्नीह्वयः । नागाप्रति कफं नुदत् । २ यस्मिन् पार्श्वे नेत्रं विद्धं तस्मादन्येनपार्श्वेन शाययेत् । द्रव्योर्नेत्रयोर्व्यधे तत्रोग्निमुत्तारं शाययेत् । यन्त्रणा-  
पध्याहाराविहारौ ।

लेपः—

ससर्पपास्तिलास्तद्वन्मातुलगुरसाप्नुताः ।  
पयस्यासारिवानन्तामजिष्ठामधुवद्विभिः ॥ २५ ॥  
अज्राक्षीरयुतैर्लेपः सुखोष्णः क्षम्यत्परम् ।

आध्वातनम्—

रोध्रसैषवमृद्धीकामधुकैशठागलं पयः ॥ २६ ॥  
शृतमाध्वोतनं योज्यं रुज्जारागविनाशनम् ।  
मधुकोत्पलकुष्ठैर्वा द्राक्षालाक्षासितान्वितैः ॥ २७ ॥

धृतम्—

वातघ्नमिदं पयसि शृतं सर्पिश्चतुर्गुणे ।  
पयकादिप्रतीवार्यं सर्वकर्मसु शस्यते ॥ २८ ॥

सिराठवधः—

मिरा तथानुपशमे क्षिम्बस्विन्नस्य मोक्षयेत् ।  
मयोक्ता च क्रिया कुर्यान्वधे ह्येऽजनं मृदु ॥ २९ ॥

वर्तिः—

आठकीमूलमरिचहरितालरसाजनैः ।  
विद्वेऽदिण सगुडा वर्तियोग्या दिव्यांबुपेयिता ॥ ३० ॥

पिएडाञ्जनम्—

जातीक्षीरीपधवमेपविषाणपुष्प-  
वैडूर्यमौक्तिकफलं पयसा सुपिष्टम् ।  
आजेन ताम्रमधुना प्रतनुं प्रदिग्धं  
सप्ताहतः पुनरिदं पयसैव पिष्टम् ॥ ३१ ॥  
पिडाजनं हितमनातपद्युष्कमदिण  
विद्वे प्रसादजननं बलवृद्ध्य दृष्टेः ।  
स्रोतोऽवविद्रुमशिलांबुषिपेजतोष्णै-  
रस्यैव तुल्यमुदितं गुणकल्पनाभिः ॥ ३२ ॥”

## पञ्चदशोऽध्यायः ।

अथाऽतः सर्वाक्षिरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

वाताभिष्यन्द ( अस्त्रं उठना आना ) लक्षणम्—

“वातेन नेत्रेऽभिष्यंदे नासानाहोऽप्यशोफता ।

शंखाक्षिभ्रूललाटस्य तोदस्फुरणभेदनम् ॥ १ ॥

शुष्काल्पा दूषिका दीतमच्छमश्रु चला रुजः ।

निमेषोन्मेषणं कृच्छ्राञ्जुनामिष सर्पणम् ॥ २ ॥

अक्ष्याभ्मातमिवाभाति मूक्यैः शल्यैरिवाचितम् ।

स्निग्धोष्णौषधोपचमनं,

अधिमन्यलक्षणम्—

सोऽभिष्यंद उपेक्षितः ॥ ३ ॥

अधिमन्यो भवेत्तत्र कर्णयोर्नदनं भ्रमः ।

भरण्येव च मय्यंते ललाटाक्षिभ्रुवादयः ॥ ४ ॥

“हृताधिमन्यः सोऽपि स्यात् प्रमादात्तेन वेदनाः ।

अनेकरूपा जायंते द्रवणो दृष्टी च दृष्टिहा” ॥ ५ ॥

अन्यतोवातलक्षणम्—

“मन्याभिर्गन्धतो वायुरन्यतो वा प्रवर्तयेत् ।

व्यथा तीव्रामर्षेच्छित्त्वरागशोफं विलोचनम् ॥ ६ ॥

मंकोचयति पर्यश्रु सोऽन्यतोवातसंज्ञितः ।”

“तदन्नेन भवेद्ब्रिहामूत्रं घातविषयम्” ॥ ७ ॥

## पित्ताभिष्यन्दलक्षणम्—

दाहो घृमायनं शोफः श्यावता वर्तमानो वह्निः ।  
 अंतःकलेदोऽथ पीतोष्णं रागः पीतामददर्शनम् ॥ ८ ॥  
 क्षारोसितक्षवाशित्वं पित्ताभिष्यन्दलक्षणम् ।

## पित्ताधिमन्थलक्षणम्—

उबलदगारकीर्णमिं यकृत्पिडसमप्रभम् ॥ ९ ॥  
 अधिमंथे भवेन्नेत्रं

## कफाभिष्यन्वाधिमन्थलक्षणम्—

“स्यदे तु कफमभवे ।

जाड्यं शोफो महान् कङ्कनिद्राशानभिरन्दनम् ॥ १० ॥  
 माद्रस्निग्धबहुस्वेतपिच्छावद्दूषिकाभुता ।”  
 अधिमंथे गतं कृष्णमुन्नतं शुक्लमडलम् ॥ ११ ॥  
 प्रमेको नासिकाह्माम पापुर्णमिवेक्षणम् ।

## रक्ताभिष्यन्दलक्षणम्—

रक्ताश्रुराजीदूषीकशुबलमडलदर्शनम् ॥ १२ ॥  
 रक्तस्येन नयनं सपित्तस्यदलक्षणम् ।

## रक्ताधिमन्थलक्षणम्—

मंथेऽक्षि ताभ्रपर्यतमुत्पाटनमामरुक् ॥ १३ ॥  
 रागेण बंधूकनिभं ताम्पति स्पर्शनाक्षमम् ।  
 अस्तुङ्निमग्नारिष्टमं कृष्णमग्न्यामददर्शनम् ॥ १४ ॥

## सर्वाधिमन्थस्वरूपम्—

अधिमंथा यथास्वं च भवे स्पर्शाधिकव्यथाः ।  
 संसदतकपोलेषु कपाले चातिरुद्धाः ॥ १५ ॥

## शुष्काक्षियाकोरोगः—

वातपित्तोत्तरं धर्पतोदभेदोऽदेहवत् ।  
 मृदादाहणवत्सर्माक्षिहृन्क्षुब्धोन्मीलनमीलनम् ॥ १६ ॥

१ विकृण्वन् विद्युत्करत्वं धोतेच्छा शूलपाकवत् ।

उक्तः शुष्काक्षिपाकोऽयं

**सशोफोनेत्ररोगः—**

सशोफः स्यान्निर्मिलः ॥ १७ ॥

सर्ववर्तस्तत्र शोफोऽतिस्पृहाहृष्टीवनादिमान् ।

पृथ्वोदुम्बरसंकाशं जायते शुक्लमंडलम् ॥ १८ ॥

अध्रूष्णशीतविषादपिच्छलाच्छयनं मुहुः ।

अक्षपरोऽल्पशोफस्तु पाकोऽन्यैर्लक्षणैस्तथा ॥ १९ ॥

**अक्षिपाकात्ययलक्षणम्—**

अक्षिपाकात्यये शोफः संरंभः क्लृपाश्रुता ।

कफोपदिग्धमसितं सितं प्रक्तेदरागवत् ॥ २० ॥

दाहो दर्शनमरोधो वेदनाश्चानवस्थिताः ।

**अम्लोपितलक्षणम्—**

अन्नसारोऽम्लतां नीतः पित्तरक्तोत्वनैर्मिलः ॥ २१ ॥

सिराभिर्नेत्रमारुढः करोति श्यावलोहितम् ।

सशोफदाहपाकाश्रु भ्रूलं चाविलदर्शनम् ॥ २२ ॥

अम्लोपितोऽयम्,

इत्युक्ता गदाः षोडश सर्वगाः ।

**असाध्यादिः—**

हृताधिर्मयमेतेषु साक्षिपाकात्ययं त्यजेत् ॥ २३ ॥

वातोद्भूतः पंचरात्रेण दृष्टिम्,

मत्ताहेन श्लेष्मजातोऽधिमीयः ।

रक्तोत्पन्नो हन्ति तद्वित्ररात्रात्

मिथ्याचारात् पैत्तिकः सद्य एव ॥ २४ ॥”

१ विकृण्वन्मर्मिन्मृदुः । २ पाकोऽक्षिपाकात्ययः । अन्यैर्लक्षणैः शुष्काक्षि-  
पाकोवर्तेल्लक्षणैः । ३ संरंभः शोथः । ४ अनवस्थिता चञ्चला ।

## षोडशोऽध्यायः ।

अथ सर्वाक्षिरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

स्यन्देपुतीक्ष्ण गरुडपादि :—

“प्राग्रूप एव स्यन्देपु तीक्ष्णगंडूपनावनम् ।

कारयेदुपवासं च<sup>१</sup> कोपादन्यत्र वानजात् ॥ १ ॥

दाहादिशान्त्यैविडालकम्—

दाहोपदेहरामानुशोकघातर्ष विडालकम् ।

कुर्यात्सर्वत्र पत्रैलामरिचस्वर्णगैरिकैः ॥ २ ॥

सरसांजनयष्टघाह्वनतचदनमधवैः ।

सैधवं नागरं ताक्ष्यं धृष्टं मंडेन मपिपः ॥ ३ ॥

घातजे घृतभृष्टं वा योष्य शबरदेशजम्<sup>२</sup> ।

मामीपद्मककाकोलीयष्टघाह्वं पितरक्तयोः ॥

मनोह्लाफलनीक्षीर्द्रैः कके सर्वेस्तु सर्वजे ॥ ४ ॥

सद्यः प्रकुपितेचूर्णावगुंठनम्—

मिहामरिचभागमेकं चतुर्मनोह्वं<sup>३</sup> द्विष्टशाबरकम् ।

संचूर्णं नक्षत्रवर्द्धं प्रकुपितमात्रेऽथ<sup>४</sup> गुंठनं नेत्रे ॥ ५ ॥

चूर्णं नेत्रकोपणित् —

आरण्याश्लगणरसे पटावबद्धाः

मुस्विन्ना नक्षत्रितुषोऽवृताः कुलत्पाः ।

१ विडालको बहिनैरे लेपः पशमविवर्जितः । कोपात् वातजकोपमुक्त्वा ।

२ शबरदेशजं रोगम् । ३ द्विष्टशाबरकं रोगस्य षोडशभागाः । ४ अथगुंठना  
अथगुंठनं भ्रामयित्वा ।



तच्छूर्णं मृदवधूर्णनाप्रिर्जापे  
नेत्राणां विधमनि मद्य एव योगम् ॥ ९ ॥

नेत्रेष्ठीपधधारणम्—

घोषामयाऽनुश्वस्यद्विरोधै-  
‘मू’ती गमूःसैः श्वस्यवस्त्रवर्द्धः ।  
ताम्रस्वधाऽभ्याभ्यानिमघ्नमूर्ति-  
रति जयम्यदिनि नैकरुगाम् ॥ ७ ॥

सर्षदोपकुपिते नेत्रे सेकः—

पोट्टाभि मन्त्रिलपलः  
पलं तर्धकं १ कट्वटेर्याः मिदम् ।  
मेकोऽष्टभागविष्ट  
शीघ्रयुतः सर्षदोपकुपिते नेत्रे ॥ ८ ॥

शिग्रुः (सहिजन ) रस प्रयोगः—

वातपित्तकफमनिपातजा  
नेत्रयोर्वहृविषामपि व्ययाम् ।  
शीघ्रमेव जयति प्रयोजितः  
शिग्रुपल्लवरसः गमासिकः ॥ ६ ॥

सक्तुपिण्डिका—

तरुणमुद्गूकपत्रं  
मूलं च विभिद्य सिद्धमात्रे क्षीरे ।  
वात्राभिष्यन्दरुजं  
मद्यो विनिहति सक्तुपिण्डिका चोष्णा ॥ १० ॥

वाताभिष्यन्दे प्रयोगः—

आश्वेतनं मास्तजे वक्रायो बिल्वादिभिर्हितः ।  
कोष्णः सहैरंडजटावृहतीमधुशिग्रुभिः ॥ ११ ॥

१ मूती पोट्टली । २ कट्वटेरी (दारुहरी) ।

ह्रीवेरवक्रशाङ्गोष्टोदुम्बरस्त्वक्षु साधितम् ।  
सांभगा पयसाजेन शूलाश्चोतनपुत्तमम् ॥१२॥

रक्तपित्ताभिध्यन्दे प्रयोगाः—

मंजिष्टारजनीलाक्षाद्राक्षाद्विमधुकोत्पलैः ।  
कषायः मद्यर्करः क्षीतः सेचनं रक्तपित्तजित् ॥१३॥  
कसेरुयष्ट्या ह्लरजैस्तांतवे शिथिल स्थितम् ।  
अप्सु दिव्यासु निहितं हितं स्वदेऽक्षपित्तजे ॥१४॥  
"पुंड्रयष्टीनिशामूली प्लुता स्तन्ये मद्यर्करे ।  
छागदुग्धेऽथवा दाहरागाश्रुनिवर्तनी" ॥१५॥  
श्वेतरोध्रं समधुसं घृतभृष्टं मुचूर्णितम् ।  
मन्त्रस्थं स्तन्यमृदितं पित्तरक्ताभिघातजित् ॥१६॥

कफाभिध्यन्देनागराद्याश्चोतनम्—

नागरत्रिफलानिवयामारोध्रस कफे ।  
कोष्णमाश्चोतनं,  
मिश्रैर्भयजैः सांनिपातिके ॥१७॥  
सपि. पुराण पक्वे, पित्ते शर्करयान्वितम् ।  
व्योपसिद्धं कफे पीत्वा यवशारावचूर्णितम् ॥१८॥  
स्नायवेद्रुधिरं भूयस्ततः स्निग्धं विरेषयेत् ।  
आनूपवंसवारण शिरोघदनलेपनम् ॥१९॥  
उप्योन मूले दाहे तु पयःमपिपुंतहिमैः ।  
तिमिरप्रतिशोर्धं च वीर्यं युज्यात्तयाययम् ॥२०॥  
अयमेव विचिः तथो मय्यादिष्वपि शस्यते ।  
अशांती गवंधा मये भुवोरुपरि दाहयेत् ॥२१॥

वर्तिः—

रूप्यं रूक्षेण गंदध्ना लिपेन्नीलत्वमागते ।  
घृते तु मस्तुना वर्तिर्वातालया मयनाशनी ॥२२॥

मृनमःकोरका शंस्रिफला मधुकं वला ।  
 पित्तरक्तापहा वर्तिः पिष्टा दिव्येन वारिणः" ॥२३॥  
 "मैघवं त्रिफला व्योषं शंस्रनाभिः समुद्रजः ।  
 फेनः<sup>१</sup> शंलेयकं सजौ वर्तिः श्लेष्माचिरोमनुत् ॥२४॥

### सर्वाभिष्यन्दे पाशुपत प्रयोगः—

प्रपौडरीकं यष्टपाह्वं दावी<sup>२</sup> चाष्टपत्त पचेत् ।  
 जलद्रोणे रसे पूते पुनः पन्वे घने निपेत् ॥ २५ ॥  
 पुष्पाजनाद्दशपलं कर्पं च मरिचात्ततः ।  
 कृतश्चूणोऽयवा वर्तिः सर्वाभिष्यन्दमभवान् ॥ २६ ॥  
 हन्ति रागरुजाघर्षान् सद्यो दृष्टिं प्रमादयेत् ।  
 अयं पाशुपतो योगो रहस्यं भिषजां परम् ॥ २७ ॥

### शुष्काक्षिपाकचिकित्सा—

शुष्काक्षिपाके हविषः पानमङ्गोश्च तर्पणम् ।  
 घृतेन जीवनीयेन, नस्यं तैलेन चारुणा ॥ २८ ॥  
 परिपेको हितश्चात्र पयः कीर्णं ममैघवम् ।  
 "सर्पियुक्तं स्तन्यपिष्टमंजनं हि महौषधम्" ॥ २९ ॥  
 'धमा चानूपसत्त्वोत्था किञ्चित्मैघवनागरा ।'  
 घृताक्तान् दर्पणे<sup>३</sup> घृष्टान् केशान् मल्लकसंपुटे ॥ ३० ॥  
 दग्धवाज्यपिष्टा लोह्म्या मा मपी श्रेष्ठमंजनम् ।

### सशोफाल्पशोफनेत्ररोग चिकित्सा—

मशोफे चाल्पशोफे च क्षिप्रस्य व्यथयेत्तिराम् ॥ ३१ ॥  
 रेकः क्षिप्रैः पुनर्दाशापप्यान्वाथत्रिवृद्धैः ।  
 'श्वेतरोध्रं घृतभृष्टं चूणितं तांतत्रस्थितम् ॥ ३२ ॥

१ फेनः समुद्रफेनः । शंलेयकं "छरीला" । २ प्रपौडरीकादिकं मवं पृथक् पृथक् अष्टाष्टं शास्त्रम् । ३ केशान् घृताक्तान्दर्पणे घृष्टान् मल्लकसंपुटे दग्ध्वा घृतपिष्टा लोह्म्यान्वा गा मपी श्रेष्ठमंजनम् ।

उद्वज्जानुना विमृदितं सेकः शूलहरः पटम् ।  
 'दावीप्रयोदरीकस्य क्वाथो वाऽऽश्चोतने हितः ॥ ३३ ॥  
 मंवा'वांश्च प्रयुज्जीत घर्परामाश्रुह्मरान् ।  
 "ताम्रं लोहे भूजघृष्टं प्रयुक्तं  
 नेत्रे सपिधू'पितं वेदनाघ्नम् ।"  
 ताम्रघृष्टो गव्यदध्नः सरो वा  
 युक्तः कृष्णासंघवाभ्यां वरिष्ठः ॥ ३४ ॥  
 'शंखं ताम्रे स्तन्यघृष्टं घृताक्तैः  
 घाम्याः पत्रैर्धूपितं तद्वैश्व ।  
 नेत्रे युक्तं हति संघावसंज्ञ'  
 क्षिप्रं घर्पं वेदनां चातितीव्राम् ॥ ३५ ॥

'उज्ज्वरफलं लोहे घृष्टं स्तन्येन धूपितम् ।  
 साज्वैः घामीच्छदैर्दाहशूलरागाशुहर्षजित् ॥ ३६ ॥  
 'दिग्मुपल्लवनिर्मासः मुष्टुष्टस्तान्नसंपुटे ।  
 घृतेन धूपितो हति शोकघर्षाभ्युवेदना ॥ ३७ ॥  
 'तिलाभसा मूत्कपाल कास्थं घृष्टं मुष्टुपितम् ।  
 नियपत्रैर्घृ'ताभ्यवर्तयर्षशूलाश्रुरागजित् ॥ ३८ ॥  
 'संघावेनाजिते नेत्रे विगतीयधवेदने ।  
 स्तन्येनाश्चोतनं कार्यं, त्रिः परं नाजयेच्च' तैः' ॥ ३९ ॥

### गुटिका

तालीरापत्रचपलानतलोहरजाननैः ।  
 जातीमुकुलकासीससंघवेभू'त्रपेपितैः ॥ ४० ॥  
 ताम्रमालिष्य सप्ताहं धारयेत्पेपयेत्ततः ।  
 भूत्रेर्णवानुं गुटिकाः कुर्याच्छयाविशोपिताः ॥ ४१ ॥  
 ताः स्तन्यघृष्टा घर्षाभ्युशोफकंडूविनाशनाः ।  
 व्याघ्रोत्वङ्मधुकं ताम्ररजोजाशीरकलितम् ॥ ४२ ॥

१ वक्ष्यमाणानि संघावसंज्ञकानि अञ्जनानि । २ घृताक्तैः घामीपत्रैर्वैश्व  
 धूपितम् । ३ तैः संघावैः निर्वारणार्थं त्रिम्पवारैर्मयः परं नाञ्जयेत् ।

साम्यामलकपत्राज्यघृषितं शोफरूपप्रशुत् ।

**अम्लोषितचिकित्सा —**

अम्लोषिते प्रयुंजीत पित्ताभिष्यंदसाधनम् ॥ ४२ ॥

**उत्क्लिष्टादयोऽष्टादशरोगाः —**

उत्क्लिष्टाः कफपित्तास्रनिचयोत्पाः कृकूणकाः ।

पक्ष्मोपरोधः शुष्काक्षिपाकः पूयालसो विसः ॥ ४४ ॥

पोषक्यम्लोषिताल्पाख्यस्फंदमंथा विनानिलात् ।

एतेऽष्टादश पिल्लाख्या दीर्घकालानुबधिनः ॥ ४५ ॥

चिचिन्मा पृषयेतेषां स्वस्वमुक्ताथ वक्ष्यते ।

**पिल्लाचिकित्सा —**

पिल्लीभूतेषु मामान्यादय पिल्लाक्षिरोगिणः ॥ ४६ ॥

स्निग्धस्य उदितवतः शिराविद्धहृतासृजः ।

विरिक्तस्य च घर्मांशु निलिखेदाविशुद्धितः” ॥ ४७ ॥

“तुल्यकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विधत्तिः ।

त्रिघटा कांजिकपलं पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत् ॥ ४८ ॥

पिल्लानपिल्लान् कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि ।

तत्संकेनोपदेहस्तु कंहृशोफाश्च नाशयेत् ॥ ४९ ॥

“करंजबीजं सुरसं सुमनःकोरकाणि च ।

संशुच साधयेत्स्ववाधे पूते तत्र रसक्रिया ॥ ५० ॥

अंजनं पिल्लभैषज्यं पक्ष्मणा च प्ररोहणम् ।,

“रमांजनं सर्जरमो रीतिपुष्पं मनःशिला ॥ ५१ ॥

मधुद्रफेनं लवणं गेरिकं मरिचानि च ।

अंजनं मधुना पिष्टं वनेदकंहृन्मुत्तमम्” ॥ ५२ ॥

“अमवारसपिष्टं वा तपरं पिल्लाशनम् ।

भावितं वस्तमूत्रेण मस्नेहं देवदाह च” ॥ ५३ ॥

“मैघवदिफलावृष्णावटुकाश्चलनाभयः ।

मनाग्ररजमो वतिः पिल्लशुक्रकृनाशिनी” ॥ ५४ ॥

“पुष्पकामोमघूर्णो वा मुरंवारमभावितः ।

ताम्रे दशाहं तत् पल्लवपद्मशतजिर्दजनम्” ॥ ५५ ॥

अतं च सीवीरकमजनं च

ताम्या समं ताम्ररजश्च मूढमम् ।

विल्लेषु रोमाणि निपेवितोमी

नूर्णः करोत्येकशतारयापि ॥ ५६ ॥

लाक्षानिर्गुडीभृ गदावोरसेन

श्रेष्ठं कार्पासि भावितं मत्तपुत्रम् ।

दीपं प्रज्वाल्य मविषा तत्तमुत्था

श्रेष्ठा पिल्लानां रोपणार्थं मयी ना” ॥ ५७ ॥

पिल्लरोगिणः पुनः पुनर्वर्त्मान्वलेखादिकम्—

पर्मावलेखं बहुदन्तद्वण्डोणितमोक्षणम् ।

पुनः पुनर्विरेकं च निम्बमाध्नोतनाजनम् ॥ ५८ ॥

नाननं धूमपानं च पिल्लरोगानुरो भजेत् ।

पूयालसे त्वयातैऽजदाहं मूढमशलाकया ॥ ५९ ॥

नेत्ररोगेषु संख्यवर्ज्याहारविहारा :—

चतुर्नवतिरित्यष्टगोर्हृन्गुलक्षणमाधनीः ।

परस्परमर्मकीर्णाः कात्स्न्येन गदिता गदाः ॥ ६० ॥

मर्वदा च निवेवेत स्वस्थोऽपि नयनप्रियः ।

पुराणयवगोधूमशालिपर्णिकीदवान् ॥ ६१ ॥

मुद्गादीन् कफपित्तघ्नान् भूरिमपि परिष्कृतान् ।

शार्कं चैवंविधं गागं जागलं दाडिमं मिताम् ॥ ६२ ॥

सैधवं त्रिफला द्राक्षां वारि पाने च नाभसम् ।

आतपत्रं पदत्राणं विधिः द्योपयोधनम् ॥ ६३ ॥

वर्जयेद्देहसरोधमजोष्णव्यग्नानि च ।

दोकृन्तोयदिवास्वप्ननिशाजागरणानि च ॥ ६४ ॥

विदाहि विष्टंभर यज्ज्वहाहारभेषजम् ।

## उपानहादि सेवनम्—

द्वे पादमध्ये पृष्ठमनिवेशे  
 शिरे गते वे बद्ध्वा च नेत्रे ।  
 ताघ्नशण्डतर्जनलिंगादीन्  
 पादप्रयुक्ताघ्नयनं नयति ॥ ६५ ॥  
 मलोष्णसषट्पदपीडनाद्यै-  
 स्ता दूषयन्ते नयनानि दुष्टाः ।  
 भजेस्मदा दृष्टिहितानि तस्माद्  
 उपानदभ्यञ्जनघावनानि ॥ ६६ ॥

## सप्तदशोऽध्यायः ।

अथाऽनः कर्णरोगविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः ।

## वातात्कर्णशूलरोगः

“प्रतिष्ठापयजलप्रीडाकर्णकङ्कयनैर्महत् ।  
 मिथ्यायोगेन खड्गस्य, कुपितोन्मीशच क्लोपनैः ॥ १ ॥  
 प्राप्य व्योत्रधिराः कुर्यान्क्षुलं धोतसि वेगवत् ।  
 अर्थाविभेदकं स्तम्भं शिथिरानमिनंदनम् ॥ २ ॥  
 चिराच्च पाकं पक्वं तु लम्बोकामत्वशः सवेत् ।  
 व्योत्रं धून्यमकस्माच्च स्यात्संचारविचारवत् ॥ ३ ॥

१ पृष्ठमनिवेशे पृष्ठस्ये । २ संचारविचारवत् आच्छादित मनाच्छादितम् ।

## पित्तशूलम्—

शूलं पित्तात्मदाहोपा शीतेच्छा श्वयम्बु ज्वरः ।  
आनु पाकं प्रपक्वं च सद्योतलमिकामृति ॥ ४ ॥  
सा लसीका स्पृगेद्यच्चततत्राकमुपति च ।

## कफजशूलम्—

कफाच्छिरोहनुषोवागोरव मंदता रुजः ॥ ५ ॥  
कंठः श्वयम्बुरण्णेच्छा पाकाच्छ्वेतघना मृतिः ।

## रक्तजशूलम्—

करोति श्वणे शूलमभिघातादि दूषितम् ॥ ६ ॥  
रक्तं पित्तममानाति किचिद्वाधिकलक्षणम् ।

## सन्निपातजशूलम्—

शूलं ममुदितं दीपं, तदोक्तज्वरताग्रहम् ॥ ७ ॥  
पर्यायादुष्णशीतेच्छा जायते भुतिजाश्चवत् ।  
पक्वं सितसितारक्तघनपूषप्रवाहि च ॥ ८ ॥,  
"शब्दवाहिमिरामंस्थे शृणोति पवने मुहुः ।  
मादानकस्मादिविधान् कर्षणाद् वदति तम् ॥ ९ ॥  
श्लेष्मणानुगतो वायुर्नादो वा ममुपेक्षितः ।  
उच्चैः कृच्छ्राच्छ्रुति कुर्याद्विभिरव क्रमेण च ॥ १० ॥  
"वातेन शोषितः श्लेष्मा व्योतो लिपेत्ततो भवेत् ।  
हमीरवं पिधानं च स प्रतीनाहसजित्." ॥ ११ ॥  
कंदूशोषौ कफाच्छ्रोत्रं स्थिरो तत्तजया स्मृती ।  
"कफो विदग्धः पित्तेन मरुजं मोहज त्वपि ॥ १२ ॥  
घनभूतिबहुक्नेदं कुरुते पूतिकर्णकम् ।"  
यातादिदूषितं श्रापं मांसासृक्त्वेदजां रुजम् ॥ १३ ॥



खादंनो जंतवः कुर्युस्तीव्रां स कृमिकर्णकः ।

“श्रोत्रकक्ष्यनाज्जाते सते स्यात्पूर्वलक्षणः ॥ १४ ॥

विद्रधिः पूर्ववच्चान्यः,

शोफोऽशोखुं दमोरितम् ।

तेषु रक्त्वृत्तिकर्णस्य बधिरत्वं च वाचते ॥ १५ ॥

“गर्भेऽनिलात्मकुचिता शष्कुली कृचिकर्णः ।”

एको नीलगवेको वा गर्भे मांसांकुरः स्थिरः ॥ १६ ॥

पिप्पली पिप्पलीमानः,

“संनिपाताद्विदादिका ।

सवर्णः सरुजः स्तब्धः श्वययुः स उपेक्षितः ॥ १७ ॥

कटुतैलनिर्भं पक्वः स्रवेत् कृच्छ्रेण रोहति ।

संकोचयति रुढा च सा ध्रुव कर्णशष्कुलीम् । ॥ १८ ॥

“मिरास्यः कुरुते वायुः पालीशोपं उदाह्वयम् ।,

“दृष्ट्या दृढा च तंत्रीवत् पाली वातेन तंत्रिका,, ॥ १९ ॥

मुकुमारे चिरोत्सर्गात्सहस्रैव प्रवर्धिते ।

कर्णे शोफः सस्कृपात्स्यामरणः परिपोटवात् ॥ २० ॥

परिपोटः स पवनात्,

“उत्पातः पित्तशोणितान् ।

गुर्वाभरणभाराद्यैः श्यावो रुग्दाहपाक्वान् ॥ २१ ॥

श्वययुः स्फोटपिटकारागोपाक्तेदसंयुतः ।,

“पात्स्यां शोफोऽनिलकफात्मवर्तो निर्बन्धः स्थिरः ॥ २२ ॥

स्तब्धः सवर्णः कंठमानुष्मंयो गल्लिरश्च सः ।,

“दुर्विद्धे वर्द्धिते कर्णे सकंठदाहपाक्त्वम् ॥ २३ ॥

१ पूर्ववच्चान्यः पूर्वगम्प्राप्तिको विद्रधिमम्प्राप्तिकः, अन्य एवः कर्णविद्रधिरित्यर्थः । २ कर्णशष्कुली-कर्णस्य बाह्यः समस्तो भागः । पाली-लहर-श्रीर हि० ।

श्वयधुः संनिपातोत्थः ॥ नाम्ना दुःस्ववर्धनः ।,

“कफासृक्कृमिजाः मूदमाः सकंद्वन्द्वेदवेदनाः ॥ २४ ॥

सेष्वाख्याः पिटिकास्ता हि लिङ्गः पालीमृपेक्षिताः ।,

एषासाध्यासाध्यत्वम्—

पिप्पली सर्वजं क्षुल्लं विदारो कूचिवर्णकः ॥ २५ ॥

एषामसाध्या यार्पका तंत्रिकान्यास्तु साधयेत् ।

पंचविंशतिरित्युक्ताः कर्णरोगा विभागतः” ॥ २६ ॥



## अष्टादशोऽध्यायः ।

अथाऽतः कर्णरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।



वातजकर्णशूलचिकित्सा—

“कर्णशूले पवनजे पिवेदाग्नौ रसाशितः ।

वातघ्नसाधितं सर्पिः कर्णं स्विन्नं च पूरयेत् ॥ १ ॥

पत्राणां पृथगश्वत्थवित्वाकैरंडजन्मनाम् ।

तैलमिश्रूत्सदिग्धानां स्विन्नाणां पुटप्राक्छः ॥ २ ॥

रसैः कवोर्णास्तद्वच्च मूलकस्थारलोरपि ।

गणैः वातहरेऽम्लेषु मूत्रेषु च विगन्धितः ॥ ३ ॥

महारनेहो द्रुतं हन्ति सुतीक्ष्णमपि वेदनाम् ।

महतः पंचमूलस्य काष्ठात्क्षौमेण बेष्टितात् ॥ ४ ॥

तैलमिक्षात्प्रदीप्तायात् स्नेहः सद्यो रुजापहः ।

योग्यध्वैर्न नद्रकाष्ठात्पुष्पात्काष्ठाच्च सारलात् ॥ ५ ॥

वातव्याधिप्रतिश्यायविहितं हितमत्र च ।

वर्जयेच्छिरसा स्नानं शीतांभः पानमह्णयपि ॥६॥

### पित्तजशूलचिकित्सा—

पित्तशूले सितायुक्तघृतस्निघं विरेचयेत् ।

द्राक्षायाष्टशृतं स्तन्यं शस्यते कर्णपूरणम् ॥७॥

यष्टघनं ताहिमोशीरकाकोलीरोध्रजीवकः ।

मृणालविममजिष्ठासारिवाभिश्च साधयेत् ॥८॥

यष्टोमधुरमप्रस्थं क्षीरद्विप्रस्थसंयुतम् ।

तैलस्य कुडवं नस्यपूरणार्म्यजनैरिम् ॥९॥

निहति शूलदाहोपाः केवलं क्षौद्रमेव वा ।

यष्टपादिभिश्च सघृतैः कर्णौ दिह्यात्सर्मततः ॥१०॥

### कफजशूलचिकित्सा—

वामयेत् पिप्पलीसिद्धसर्पिःस्निघं कफोद्भवम् ।

धूमनावनर्गहूपस्वेदान् कुर्मात्कफापहान् ॥११॥

लक्ष्मणार्द्रकशिग्रूणां मुरुग्या मूलकस्य च ।

कदल्याः स्वरमः श्रेष्ठः कटुप्लवः कर्णपूरणे ॥१२॥

अर्काक्षुरानम्लपिष्टास्त्रैलाक्तास्तलवणान्भितान् ।

मनिषायस्त्रहीकाण्डे कोरिते तच्छदशपूतान् ॥१३॥

स्वेदयेत्पुटपाकेन स रसः शूलजित्परम् ।

रमेन बीजपूरस्य कपिशस्य च पूरयेत् ॥१४॥

मूत्रेण पूरयित्वा वा केनेनान्ववचूर्णयेत् ।

अजाविमूत्रवृक्षत्वक्सिद्धं तैलं च पूरणम् ॥१५॥

सिद्धं वा मार्प्यं तैलं हिगुर्मुबुनागरैः ।

### रक्तजशूलचिकित्सा—

रक्तजे पित्तवत्तायं शिरां चाद्यु विमोक्षयेत् ॥१६॥

### पक्वे पूयवहे कर्णे धूमादि—

पक्वे पूयवहे कर्णे धूमगंहपनावनम् ।

मुंज्यान्नाडीविधानं च द्रुष्टव्रणहरं च यत् ॥१७॥

### पिचुवर्तिभिः स्रोतः पूरणादि—

स्रोतः प्रमृज्य दिग्धं तु द्वौ कालौ पिचुवर्तिभिः ।

पूरयेद् धूपयित्वा तु मक्षिकेण प्रपूरयेत् ॥१८॥

मुरमादिगणबकायफणिताक्तां च योजयेत् ।

पिचुवर्तिमुमूढमैश्च तन्बूर्जैरवचूर्णयेत् ॥१९॥

शूलक्लेदगुरूत्वानां विधिरेव निवर्तकः ।

### कर्णस्त्रावहरं तैलम्—

प्रियंगुमधुकांबष्ठाघातव्युत्पलपर्णिभिः ॥२०॥

मंजिष्टालोघ्नलाक्षाभिः कपित्थस्य रसेन च ।

पचेत्तैलं तदास्त्रावं निष्कृष्ट्वास्याद्यु पूरणाद् ॥२१॥

### नादबाधिर्यं चिकित्सा—

नादबाधिर्ययोः कुर्याद् वातशूलोक्तमौषधम् ।

श्लेष्मानुबन्धे श्लेष्माणं प्राग्जयेद्वमनादिभिः ॥२२॥

### नादबाधिर्यहरंतैलम्—

एरंडशिग्रुवरुणमूलकात्पत्रजे रसे ।

चतुर्गुणे पचेत्तैलं क्षीरे चाष्टगुणोन्मिते ॥२३॥

यष्टघाह्वभोरकाकोलीकल्लुमुक्तं निर्हति तत् ।

नादबाधिर्यशूलानि नावनाम्यं गपूरणैः ॥२४॥

### रुजादिजिघत्सैलम्—

पक्वं प्रतिविपाहिमुमिश्रित्वक्स्वर्जिकोपणैः ।

समूचकैः पूरणात्तैलं रज्ज्वायश्रुतिनादनुत् ॥२५॥

१ उत्पल पर्णी—मुश्रुतेषु घीपतर्णी इतिपाठः, अत्र उत्पलं कुष्ठम् पर्णी-  
शालपर्णी । अमया उत्पलसंज्ञाया ।

कर्णनादे हितं तैलं सर्पपोतं च पूरणे ।

चारतैलम्—

सुषुम्णलकखंडानां क्षाप्ते हिम्बु महीषचम् ॥२६॥

शतपुष्पावचाकुष्ठदारुशिग्रुरसांजनम् ।

सौर्ध्वलवधारस्वाजिकौद्रमिदसैषचम् ॥२७॥

भूर्जप्रथिविडं मुस्ता मधुमूक्तं चतुर्गुणम् ।

मातुलुंगरसस्तद्वत् कदलीस्वरसश्च तैः ॥२८॥

पक्कं तैलं जयत्याशु सुकृच्छ्रानपि पूरणात् ।

कंदू क्लेदं च बाधियं पूतिकर्णं च स्वकृमीन् ॥२९॥

क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदंतामयेषु च ।

सुप्तकर्णयोरक्तहरणम्—

अथ सुप्ताविष स्यातां कर्णां रक्तं हरेत्ततः ॥३०॥

सशोफादिकर्णयोर्वमनम्—

सशोफक्लेदयोर्मंदलुतेर्वमनमाचरेत् ।

बाधियं वज्रिदालवृद्धयोश्चिरजं च यत् ॥३१॥

प्रतिनाहचिकित्सा—

प्रतिनाहे परिक्लेष्ट स्नेहस्वेदविधोषयेत् ।

कर्णशोधनकेनानु कर्णां तैलस्य पूरयेत् ३२॥

सगूतसैषवमघोर्मितुलुंगरस्य वा ।

शोधनाद् रुक्षतोत्पत्तौ घृतमंडस्य पूरणम् ॥३३॥

कटुघ्नलेपनम्—

प्रमोक्ष्यं मलपूणेऽपि कर्णे कंदूवां कफापहम् ।

नस्यादि तद्वच्छोफेऽपि कटुघ्नाश्चात्र लेपनम् ॥३४॥

कर्णस्त्रावोदितंजुयात्पूतिकृमिकर्णयोः ।

पूरणं कटुतैलेन विरोपात् कृमिकर्णके ॥३५॥

वमिपूर्वा हिता कर्णविद्रधो विद्रधिक्रिया ।  
पित्तोत्थकर्णशूलोक्तं कर्तव्यं चतविद्रधीं ॥३६॥  
घ्नारोऽधु देपु नासावद्

आमा कर्णविदारिका ।

कर्णविद्रपिवत्माध्या यथादोषोदयेन च ॥३७॥

पालीशोपचिकित्सा—

पालीशोपेऽनिलश्रोत्रशूलबन्धनस्यलेपनम् ।  
स्वेदं च कुर्यान् स्वित्ना च पालीमुद्रतयेत्तिलैः ॥३८॥  
त्रिमालबीजमष्टघ्राह्ममगंधामयान्वितैः ।  
तप्तः पुष्टिकरैः स्नेहैरभ्यर्गं नित्यमाचरेत् ॥३९॥  
शतावरीवाजिगंधापयस्वैरंजजीवकैः ।  
तैल विपक्वं महीरं पालीनां पुष्टिकृत्परम् ॥४०॥  
वल्केन जीवनीयेन तैलं पयमि पाचितम् ।  
आनूपमांसवकाये च पालीपोषणवर्धनम् ॥४१॥  
पाली क्षित्वात्तिसंक्षीणां शोषा संधाय पोषयेत् ।  
याप्यैवं तन्त्रिकारुष्यापि परिपोष्टेभ्यश्च विधिः ॥४२॥  
उत्पाते क्षीतलैलेपो जलीकोद्भूतशोणिते ।

सिद्धतैलम्—

जम्बाम्रपल्लवबलायष्टीरोध्रविलोत्पलैः ॥४३॥  
सघान्ध्याम्लैः समंजिष्टैः सकंदैः मसारिवैः ।  
सिद्धमभ्यञ्जनं तैलं विमर्षोक्तपूतानि च ॥४४॥

उन्मथ्यचिकित्सा—

उन्मथेऽभ्यञ्जनं तैलं गोषाकर्णवगान्वितम् ।  
तालपत्राश्वगंधार्कबाकुचीतिलसैषवः ॥४५॥  
मुरसालायलीभ्यां च सिद्धं तीक्ष्णं च नायनम् ।

दुर्विद्रकर्णचिकित्सा—

दुर्विद्धजर्मतजम्बाम्रपत्रवकायेन सेवितम् ॥४६॥

तैलेन पाली स्वम्यक्तां सुश्लदर्शंरवचूर्णयेत् ।  
 चूर्णैर्मधुकमंजिष्ठाप्रपुञ्जाहनिशोदभवैः ॥ ४७ ॥  
 लाक्षाविडम्बमिदं च तैलमभ्यंजने हितम् ।

परिलेही चिकित्सा—

स्विच्चां गोमयजैः पिडिर्बहुशः परिलेहिकाम् ॥ ४८ ॥  
 विडम्बसारैरालिपेदुरभ्रीमूत्रकल्कितैः ।  
 कौटजैर्गुदकारंजयोजसाम्बाकवल्कलैः ॥ ४९ ॥  
 अथवाभ्यंजने तैर्वा कटुतैलं विपाचयेत् ।  
 तमालपत्रमरिचमदनैर्लेहिकाव्रणे ॥ ५० ॥

छिन्नकर्णं चिकित्सा—

छिन्ने तु कर्णं शुद्धस्य वंघमालोच्य यौगिकम् ।  
 दाद्वासं लागयेद्भाग्ने सद्यश्छिन्ने विशोधनम् ॥ ५१ ॥

कर्णरोगविधानम्—

अथ ग्रथित्वा केशातं कृत्वा छेदमलेखनम् ।  
 निवेश्य संधि मुषमं न निम्नं न समुग्रतम् ॥ ५२ ॥  
 अभ्यज्य मधुसपिम्प्यां पिबुञ्जोतावमुठिउम् ।  
 सूत्रेणागाढधियिलं बद्ध्वा चूर्णैरवाकिरन् ॥ ५३ ॥  
 घोणितस्यापनर्न्रण्यमाचारं चादिशेत्ततः ।  
 सप्ताहादामर्तलातं धनैरपनयेत् पिबुम् ॥ ५४ ॥  
 सुहृदं जातरोमाणं क्षिप्यसंधिममस्थिरम् ।  
 सुवर्ष्माणं मुरागं च धनैः कर्णं विवर्धयेत् ॥ ५५ ॥

कर्णवर्धनतैलम्—

जलशूकः स्वयंगुप्ता रजन्यो बृहतीद्वयम् ।  
 अश्वघंषाबलाहस्तिपिप्पलीगौरसर्पपाः ॥ ५६ ॥

१ विशोधनं विरेकादि । २ सुवर्ष्माणं घोमनाकृतिम् । ३ जलशूको जल-  
 नीलिका शूकमुक्तो जलजन्तुर्वा, अश्वघ्नः करवीरः । रुषिका मन्दारः । कालेन-  
 दुधुंदरो न तु मारिता ।

मूलं कोसातकाश्वन्नरूपिकासप्तपर्णजम् ।

छुछुदरी कालमृता, गृहं मधुकरोदृतम् ॥ ५७ ॥

जंतूका जलजन्मा च तथा साबरकंदकम् ।

एभिः कल्कैः खरं पक्वं सर्तलं माह्विधं धृतम् ॥ ५८ ॥

हस्त्यश्चमूत्रेण परमर्भ्यातात्कर्णवर्धनम् ।

### छिन्ननासिका चिकित्सा—

अथ कुर्याद्वयस्थस्य छिन्नां शुद्धस्य नासिकाम् ॥ ५९ ॥

छिद्याग्रामासमं पत्रं तत्तुल्यं च कपोलतः ।

त्वङ्मार्मं नामिकास्थाने रक्षंस्तरानुतां नयेद् ॥ ६० ॥

मीन्येद् यदं ततः सूच्या मेविन्या पिबुमुक्तया ।

नासाच्छेदे च लिखिते परीक्षयोपरि त्वचम् ॥ ६१ ॥

कपोलवर्धं संदध्यात्सोव्येक्षासा च यत्नतः ।

नाडीम्यामुत्क्षिपेदंतः सुषोष्वासप्रयुतमे ॥ ६२ ॥

आमर्तलेन सिक्त्वा तु पतंगमधुसंजनैः ।

शोणितस्यापनीश्वार्धैः सुशुद्धनैरवचूर्णयेद् ॥ ६३ ॥

ततो मधुधृताम्यक्तं बद्धवाचारिकमादिशेत् ।

शाखावस्थांतरं कुर्यात् सद्योवर्णविधिं ततः ॥ ६४ ॥

छिद्याद्रूढेऽधिकं मासं नासोपाते च चर्मवत् ।

मीन्येत्ततश्च सुशुद्धं हीनं संवर्षयेत्पुनः ॥ ६५ ॥

निवेक्षिते यथाव्यासं सप्तरुद्धेऽप्ययं विधिः ।

### ओष्ठसंधानम्—

नाटीयोगादिनीहस्य नासासंधानविधिः ॥ ६६ ॥”

-----

१ जंतूका-चर्मचटिवन 'चमगादड़' । जलजन्मा-जलीका । साबरकन्दको लघुनः । २ पत्रं-पुष्पाणां, सुशुद्धे 'पृथिवी कृष्णाम्' इतिपाठः । तत्तुल्यं पत्र तुल्यम् । तत्-पत्रम् । अन्तर्मध्ये नामो च नाडीम्यामेरुणादीनामुत्क्षिपेत् ।



## एकोनविंशोऽध्यायः ।

अथास्तो नासारोगविज्ञानीयं व्याख्यास्यामः ।

प्रतिश्यायसम्प्राप्तिः—

“अवश्यामानिलरजोभाष्यातिस्वप्नजागरैः ।

नीचात्युच्चोपघानेन पीतेनान्येन<sup>१</sup> वारिणा ॥ १ ॥

अत्यवुपानरभणच्छदिबाष्पप्रहादिभिः ।

रुद्धा वातोत्थणा दोषा नामाया स्त्यानत्रा<sup>२</sup> गताः ॥ २ ॥

जनयन्ति प्रतिश्यायं वर्षमानं क्षयप्रदम् ।

वातादिजप्रतिश्याय लक्षणानि—

तत्र वाताजप्रतिश्याये मुखदोषो भ्रूयं क्षयः ॥ ३ ॥

घ्राणोपरोधनिस्तोददंतशंखमिरोव्यथाः ।

कीटका इव सर्पन्ति<sup>३</sup> मग्नये परितो भ्रूवौ ॥ ४ ॥

स्वरसादश्चिरात्पाकः शिशिराच्छकफस्रुतिः ।

पित्तातृष्णाज्वरघ्राणपिटिकासंभवभ्रमाः ॥ ५ ॥

नासाग्रनाको रूक्षोष्णस्ताम्रपीतकफस्रुतिः ।

कफात्कासोऽश्चिः श्वासो वमथुर्गोत्रगौरवम् ॥ ६ ॥

भाधुर्यं वदने कट्हुः स्निग्धशुक्लघना स्रुतिः ।

सर्वज्ञो लक्षणैः सर्वैरकस्माद्दृष्टिर्वाप्तिमान् ॥ ७ ॥

रक्तजप्रतिश्याय लक्षणम्—

दुष्टं नासामिराः प्राप्य प्रतिश्यायं करोत्यसृक् ।

उरसः मुतता नाग्रनेत्रत्वं श्वासपूतिता ॥ ८ ॥

१ अन्येन वारिणा पीतेन । २ स्त्यानत्रा घनत्वम् । ३ भ्रूवोपरितः कीटकाः सर्पन्तीव मग्नये ।

कंठः श्रोत्राक्षिनासासु पित्तोक्तं चान्न<sup>१</sup> लक्षणम् ।

**दुष्टप्रतिश्याय लक्षणम्—**

सर्व एव प्रतिश्याया दुष्टतां यात्युपेक्षिताः ॥ ६ ॥

यथोक्तोपद्रवाधिक्यात्स सर्वेद्रियतापनः ।

साक्षिसादञ्जरश्वासकागोरः पार्श्ववेदनः ॥ १० ॥

कुप्यत्यक्स्माद्बहुशो मुखदीर्घ्यसोफात् ।

नासिकापलेदसंक्षोपशुद्धिरोधकरो भ्रुहः ॥ ११ ॥

पूयोपमा सिता रक्तप्रयिता श्लेष्मसंस्तुतिः ।

मूर्छति चान्न कृमयो दीर्घस्निग्धसिताणवः ॥ १२ ॥

**पक्वप्रतिश्याय लक्षणम्—**

पक्वलिङ्गानि तेष्वङ्गलायर्ष क्षययोः क्षमः ।

श्लेष्मा सचिकणः पीवो ज्ञानं च रमण्यधयोः ॥ १३ ॥

**भृशक्षय लक्षणम्—**

सीदणघ्राणोपयोगार्करविमसूत्रतृणादिभिः ।

घातकोपिभिरन्यैर्वा नासिकातरुणास्त्रिभिः ॥ १४ ॥

विघट्टितेऽनिलः क्रुद्धो रुद्धः शृंगाटकः प्रवेत् ।

निवृत्तः कुस्तेऽयस्य क्षयश्रुं स भृशं क्षयः ॥ १५ ॥

**नासारोप लक्षणम्—**

क्षोपमन्नामिकास्रोतः कर्कं च कुस्तेऽनिलः ।

क्षूकपूर्णभिनामात्वं कृच्छ्रादुच्छ्वसनं ततः ॥ १६ ॥

स्मृतोऽसौ नासिकाक्षोषो,

नासानाहे तु जायते ।

मदस्वमिव नागायाः श्लेष्मरुद्धेन वायुना ॥ १७ ॥

निःश्वासोच्छ्वासमन्तोपात् स्रोतसौ संवृते हव ।

“पक्वेन्नासापुटे पित्तं त्वद्भासं दाहसूलवत् ॥ १८ ॥

न घ्राणपाकः,

स्तावस्तु तत्पञ्चः श्लेष्ममंत्रयः ।

अच्छो जलोपमोऽजस्रं बिरोपाग्रिणि जायते" ॥ १६ ॥

अपीनस लक्षणम्—

कफः प्रवृद्धो नासाया रुद्ध्वा स्रोतांस्थपीनसम् ।

कुर्यात्सिधुर्धुरं श्वामं पीनसाधिकवेदनम् ॥ २० ॥

अवेरिव स्रवत्यस्य प्रविलम्बा तेन नासिका ।

भजस्रं पिच्छल पीतं पक्वं सिंघाणकं घनम् ॥ २१ ॥

"रस्तेन नासादग्येन बाह्यांतः स्पर्नासहा ।

भवेद्भूमोपमोच्छ्रवामा सा दीप्तिर्दृष्टीव च" ॥ २२ ॥

"तापुमूले मलैर्दुष्टैर्मोक्तो मुखनानिकात् ।

श्लेष्मा च पूतिनिर्गच्छेत् पूतिनासे वर्धति तम्" ॥ २३ ॥

"निचयादभिपाताद्वा पूपासृद् नासिका स्रवेत् ।

तत्पृथक्कमाख्यातं शिरोदाहरत्नाकरम्" ॥ २४ ॥

"पित्तश्लेष्मावरुद्धोऽश्वर्नासायां शोषयेन्महत् ।

कफं सद्युष्कपुटतां प्राप्नोति पुटकं तु तत्" ॥ २५ ॥

अशोर्धुंक्षानि विभजेद्दोषलिर्गर्भायधम् ।

मर्बेषु कृच्छ्राच्छ्रवसनं पीनसः प्रततं क्षवः ॥ २६ ॥

मानुनासिकवादित्वं पूतिनासः शिरोभ्यधा ।

अष्टादशानामित्येषां वापयेद्दुष्टपीनसम् ॥ २७ ॥"

१ अवेर्मेपस्येव नासिका सततं प्रविलम्बा । सिंघाणकंकफम् । २ मकफः  
शुष्कपुटतां प्राप्नोति । ३ सर्वेष्वर्चःस्वर्बुधेषु च ।

## विंशोऽध्यायः ।

अथातो नासारोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

### पीनसचिकित्सा—

"मर्बुषु पीनमेष्वादौ निवातागारगो भवेत् ।  
 स्नेहनस्वेदयमनधूमगंधूपधारणम् ॥ १ ॥  
 वातो गुह्येण शिरसः सुषलं परिवेष्टनम् ।  
 कट्वम्ललवणं स्निग्धमुष्णं भोजनमदिवम् ॥ २ ॥  
 घनदमांसगुडक्षीरचणकत्रिकटूस्फटम् ।  
 मयगोधूमभूमिष्ठं दण्दिदाहिममाधितम् ॥ ३ ॥  
 बालगूलकजो मूषः कुलरोक्षध पूजितः ।  
 गयोष्णं दशमूलायु जीर्णं वा वारणी पियेत् ॥ ४ ॥  
 जिघ्रेश्वोरक्तकर्षीवचाग्निपुटुचिकाः ।

### व्योपादिवटी—

व्योपतालीसचिकित्सित्तिरीकाम्लवेदवम् ॥ ५ ॥  
 'साम्यजाजीदिपलिको त्वगेलापमपादिकम् ।  
 भीर्णाद्गुडात्तुलाधेन पक्वेन मटकीभुजम् ॥ ६ ॥  
 पीनसरवासकामधनं रुचिस्थरकरं परम् ।

### धूमपानम्—

पाताह्लातवन्धलाभूलं स्थोनाकैरंडवित्पजम् ॥ ७ ॥  
 सारग्वधं त्रिवेदूम वसाज्यमदनान्वितम् ।  
 अमवा सष्टमान्सक्तून् कृत्वा मल्लभसंपुष्टे ॥ ८ ॥

१ अग्निश्चित्रकः । व्योपादि अजाजी पर्यन्तं द्वयं प्रत्येकं दिपलिकम् ।  
 त्वगेलादिप्रत्येकं द्विकाधिकम् । २ मदनं मधुजिह्वम् । स्वेदनस्यादिको स्वेदादिकम् ।

सस्रदाहः सवेदमित्रः पूयासं दंतविद्रधिः ॥  
 “श्वयस्तुर्दंतमूलेषु रुजावान् पित्तरक्तजः ॥ २५ ॥  
 लालास्तावी ससुषिरो दंतमांसप्रघातनः ॥  
 “ससंनिपातज्वरवान् सपूयविरत्सुतिः ॥ २६ ॥  
 महास्रुषिर इत्युक्तो विशीर्णद्विजबंधनः ॥  
 “दंतांते कीलवच्छोफो हनुकर्णरुजाकरः ॥ २७ ॥  
 प्रतिहृत्पन्यवहति श्लेष्मणा मोक्षधिमांसकः ॥  
 “घृष्टेषु दंतमासेषु मरंभो जायते महान् ॥ २८ ॥  
 यस्मिन्म्रलंति दंताश्च स विद्भोऽभिपातजः ॥

### दन्तमांसगतमाह्यः—

दंतमांसाभितान् रोगान् यः साध्यान्पुपेक्षते ॥ २९ ॥  
 अंतस्तस्यास्रवन् दोषः मूकमा संजनयेद्गतम् ।  
 पुन्यं मुहुः सा स्रवति त्वद्मांसास्यप्रभेदिनो ॥ ३० ॥  
 ताः पुनः पंच विज्ञेया लक्षणैः स्वैर्यथोदितैः ।

### जिह्वारोगाः—

द्याकपत्रक्षरा सुता स्फुटिता घातदूषिता ॥ ३१ ॥  
 जिह्वा,  
 पित्ताद् सदाहोपा रक्तमांसांकुरंश्रिता ॥  
 द्याम्लीकण्टकाभैस्तु कफेन बहुला गुरुः ॥ ३२ ॥  
 “अफपित्तादधः शोफो जिह्वास्तंभकुक्षतः ।  
 मत्स्यगंधिर्भवेत्पक्वः सोऽलसो मांसघातनः ॥ ३३ ॥  
 “प्रबंधनेऽघो जिह्वायाः शोफो जिह्वाप्रसंनिभः ।  
 सांकुरः कफपित्ताम्लीलोपास्तंभवान् क्षरः ॥ ३४ ॥  
 अग्निजिह्वः सखंडूर्वास्याहारविघातकृत् ॥  
 “वाहयेषोपजिह्वस्तु जिह्वाया उपरि स्थितः ॥ ३५ ॥

### तालुगतरोगाः—

- तालुमांसेनिलाद्दुष्टे पिटिकाः सरुजः खराः ।  
 बह्वधो घनाः सायमुष्णस्तास्तालुपिटिकाः स्मृताः ॥ ३६ ॥  
 "तालुमूले कफात्सास्त्राग्मत्स्यबस्तिनिभौ मुदुः ।  
 प्रलंबः पिच्छिलः घोफो नासयाऽऽहारमीरयन् ॥ ३७ ॥  
 कंठोपरोधस्तृट्कासवमिष्टद्रुल्लशुषिहका ।,  
 "तालुमध्ये निरुद्धमांसं संहतं तालुसंहतिः ॥ ३८ ॥  
 घमाकृतिस्तालुमध्ये रक्ताण्डवपुस्तुदम् ।,  
 "कच्छपः कण्ठपाकारश्चिरवृद्धिः कफादस्कृत् ॥ ३९ ॥  
 "कोलाभः श्लेष्ममेदोभ्यां पुष्पुटो नोद्वजः स्तिरः ।,  
 "पित्तं पाकः पाकाख्यः पूयात्सावी महारुजः ॥ ४० ॥  
 "घातपित्तज्वरामांसस्तालुरोपस्तदाह्वयः ।,

### कण्ठगतरोगाः—

- जिह्वाप्रबंधजाः कंठे दारुणा मार्गरोधिनः ॥ ४१ ॥  
 मांसाकुराः क्षीघ्रचया रोहिणी क्षीघ्रकारिणी ।,  
 कंठोपरोधस्तृट्कातास्ता हनुभ्रोप्रच्छरी ॥ ४२ ॥  
 चित्ताज्ज्वरोपातृष्णोहकंठधुगामनाम्बिता ।  
 क्षिप्रजा क्षिप्रपाकातिरागिणो स्पर्शनासहाः ॥ ४३ ॥  
 कफेन पिच्छिला पादुः,,

### असृज्जा स्फोटकाचिता ।

- उत्तोगारनिभा कर्णच्छरी पित्तजाकृतिः ॥ ४४ ॥,  
 "गंभीरपाका निचयात्मवर्लिंगसमन्विता ।,  
 "दोषैः कफोत्त्वणैः शोफः कोलवद् ग्रथितोन्नतः ॥ ४५ ॥  
 शुककंटकवत्कंठे शालूको मार्गरोधनः ।,  
 "द्वन्द्वो वृत्तोन्नतो दाहज्वरवृद् गलपार्श्वगः ॥ ४६ ॥  
 "हनुगुम्फाश्रितः कंठे कापिनीफल्गुसंनिभः ।  
 पिच्छिलो मंदरस् शोफः कठिनस्तुडिकेरिका ॥ ४७ ॥

“वाह्यातः श्वयष्टुर्धरो गलमार्गार्गलोपमः ।  
 गलौघो मूर्धगुरतातंद्रालालाज्वरप्रदः ॥ ४८ ॥  
 “वलयं नातिरक्तं शोफस्तद्वदेवायतोन्नतः ॥  
 “मोमक्रीलो गले दोषैरेकोऽनेकोऽयवात्यस्क् ॥ ४९ ॥  
 कृच्छ्रोच्छ्वासाभ्यवहतिः पृथुमूलो गलायुक्तः ॥  
 “भूरिमांशांकुरवृता तीव्रतृट्ज्वरमूर्धरक् ॥ ५० ॥  
 शतप्ली निचिता वर्तिः शतप्लीवातिरक्करी ॥  
 “ध्यासमर्धगलः शीघ्रशम्पको महारुजः ॥ ५१ ॥  
 पूतिपूयनिभग्रावी श्वयष्टुर्गलविद्रधिः ॥  
 “जिह्वावमाने कंठादावपाकं श्वयष्टु मलाः ॥ ५२ ॥  
 जनयंति स्थिरं रक्तं नीरजं सद्रुलाशुं दम् ॥  
 “पक्वश्लेष्ममेदोभिर्गलगंडो भवेद्बहिः ।  
 वर्धमानः न कालेन मुष्कवर्ध्ववते निरुक्” ॥ ५३ ॥  
 “कृष्णोऽरुणो वा तोदाढ्यः स बातात्कृष्णराजिमान् ।  
 वृद्धस्तानुगले दोषं कुर्याच्च विरसास्यताम्” ॥ ५४ ॥  
 “स्थिरः सवर्णः कङ्कमान् द्यौतस्पर्शो गुरुः कफात् ।  
 वृद्धस्तानुगले लेपं कुर्याच्च मधुरास्यताम् ॥ ५५ ॥  
 “मेदसः श्लेष्मवद्धानिवृद्धयोः सोऽनुविधीयते ।  
 देहं वृद्धञ्च कुरुते गले शब्दं स्वरेऽल्पताम् ॥ ५६ ॥  
 “श्लेष्मरद्धानिलगतिः क्षुष्ककंठो ह्रस्वरः ।  
 ताम्यन् प्रसक्तं श्वसिति येन स स्वरहानिलात् ॥ ५७ ॥

### सर्पसरमुखरोगाः—

“करोति वह्नस्यातर्धणान्मर्वसरोऽनिलः ।  
 संचारिणोऽरुणान् स्थानोष्ठी ताम्नी चलत्वचो ॥ ५७ ॥

- १ गलमार्गस्थार्गलासदृशः । अन्तः प्रवेशनारोपकंकाष्ठम् “वैज्ञ” इतिलोके ।  
 २ श्लेष्मवत् कफजगलगण्डलक्षणवान् । समेदोजोगलगण्डो हानिवृद्धयोः देहमनु-  
 विधीयते देहवृद्धोगलगण्डवृद्धिं देहशयेनतमण्डकाख्यम् ।

जिह्वा शोठासहा गुर्वी स्फुटिता कंटकाचिता ।  
विमृणोति च कृच्छ्रेण, मुखपाको मुखस्य च, ॥ ५६ ॥  
“अथः प्रतिहतो नमुरर्धोगुल्मकफादिभिः ।  
यात्पूर्ध्वं वक्रदोर्ध्वं कुर्वन्पूर्ध्वगदस्तु सः, ॥ ६० ॥  
मुखस्य पित्तजे पाके दाहोपे तित्त्वक्प्रता ।  
क्षारोक्षितक्षतसमा क्षणाः,

तद्वच्च रक्तजे ॥ ६१ ॥

“कफजे मधुरास्यत्वं कंठमत्पिच्छिला क्षणाः ।,  
“अतःकपोलमाश्रित्य श्यावपांडु कफोत्पद्यते ॥ ६२ ॥  
कुर्यात्तत्पाटितं छिन्नं मुदितं च विवर्धते ।,  
मुखपाको भवेत्सासैः सर्वैः सर्वाङ्गतिर्गलैः ॥ ६३ ॥  
पृथ्वास्थिता च तीरेव दंतकाष्ठादिविद्विपः ।

### मुखरोग गणना—

ओष्ठं गडे द्विजे मूले जिह्वाया तालुके गले ॥ ६४ ॥  
घर्मे सर्वत्र चेत्युक्ताः पंचसप्ततिरामयाः ।  
“एकादशीको दश च त्रयोदश तथा च पद ॥ ६५ ॥  
अष्टावष्टादशाष्टी च क्रमात्,

### तेषां साध्यत्वादि—

तेष्वनुपक्रमाः ।

करालो मांसरक्तोष्ठावर्बुहानि जलादिना ॥ ६६ ॥

१ रक्तजे मुखपाके तद्वत् पित्तजमुखपाकवत् । २ ओष्ठं एकादश । एकीगण्डे ।  
द्विजे दन्ते दश । मूले दन्तमूले त्रयोदश । जिह्वाया पद, तालुनि अष्टी । गले  
अष्टादश । नेत्रे सर्वस्मिन्नष्टी । ३ तेषु समस्त मुखरोगेषु । जलादिना जलावर्बुदादोष्ठ-  
रोगादिना । करालमहागुण्णिरो दन्तरोगो । उर्ध्वमदोमुखरोगः । सण्डीष्ठ-वात-पित्त-  
कफ-सन्निपात-रक्तज-रक्तवर्बुद-मामज-भेदोज-शतज-जलावर्बुदानीत्येकादश ओष्ठ-  
रोगाः । गण्डालजीत्येकोगण्डरोगः । शीतदन्त-हृष-भेद-चाल-कराल-वर्धन-भूतिगन्ध-  
पर्करा-कपालिवा-श्यावदन्ता इतिदश दन्तरोगाः । क्रिमिदन्त-शीताद-उपद्रुत-पुष्पुट-



कञ्जपस्तातुपिटिका गलौघः सुपिरो महान् ।  
 स्वरहोर्ध्वगदः श्यावः सतघ्नीबलमालसाः ॥ ६७ ॥  
 नाड्योष्ठकोपो निचयात् रक्तजस्तर्वेभ्य रोहिणी ।  
 दशते स्फुटिते दन्तभेदः पञ्चोपजिह्विका ॥ ६८ ॥  
 गलगण्डः स्वरभ्रंशः कुञ्जोच्छ्वासोऽतिवत्सरः ।  
 पाथ्यस्तु हर्षो भेदश्च शोषान् सखीपञ्चजयेत् ॥ ६९ ॥

## द्वाविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो मुखरोगप्रतिपेधं व्याख्यास्यामः ।

### खण्डोष्ठ चिकित्सा—

“खण्डोष्ठस्य विलिख्याती स्मृत्वा त्रणवदाचरेत् ।  
 मष्टीज्योतिष्मतीरोध्रन्नावणोसारिवोत्पलः ॥ १ ॥  
 पटोल्या काफमाध्या च तैलमम्योजनं पचेत् ।  
 नस्यं च तैलं वातघ्नमधुरस्कंधसाधितम् ॥ २ ॥

१-अपिमांस-विद्रधि-विदग्धाः पञ्च नाड्यध्वेति त्रयोदश दन्तमूलगताः । वातज-  
 २-कफज-जलस अपिजिह्व-उपजिह्वाख्याः पट् जिह्वा रोगाः । पञ्चरोहिण्यः-  
 ३-कुण्डिकेरी-गलौघ-जलय-गुलायुक-सतघ्नी-विद्रधि-अर्बुद-गलगण्डा-वात-  
 जादयस्त्रयः स्वरघ्नश्चेत्यष्टादश गलरोगाः । पिटिका-गलशूण्डो-मंहति-अर्बुद-कण्ठप-  
 पुष्पुट-पाक-शोषा इत्यष्टौ तालु रोगाः ।

१ निचयात्सन्निपातात् नाडीदन्तमूलजा । निचयादोष्ठकोषश्च । रक्तजासन्नि-  
 पातजा च रोहिणी । दन्तभेद दशनेस्फुटिते सत्यसाध्यः । उपजिह्विका पञ्चा-  
 षाध्या । गलगण्डः स्वरभ्रंशः कुञ्जोच्छ्वासोऽतिवातवत्सरश्चत्स्राध्यः । नाड्योष्ठ-  
 मिति-ओष्ठं वातजोष्ठं दुग्धसिद्धैरेरण्ड पाल्मबर्नाख्यास्वेदयेत् ।

## वातीष्ठ चिकित्सा—

महास्नेहेन वातीष्ठे सिद्धेनाक्तः पिचुहितः ।  
 देवघूपमघृच्छिष्टगुग्गुल्वमरदारुभिः ॥ ३ ॥  
 यष्टपाह्वचूर्णयुक्तेन तेनैव प्रतिसारणम् ।  
 नाढ्योष्ठं स्वेदयेद्दुग्धमिद्धैरेरंडपल्लवैः ॥ ४ ॥  
 खंडोष्ठविहितं तस्य तस्य<sup>१</sup> मूर्ध्नि च तर्पणम् ।

## पित्ताभिघातजौष्ठचिकित्सा—

पित्ताभिघातजाबोष्ठौ जलौकोभिरुपाचरेत् ॥ ५ ॥  
 रोध्नमर्जरसक्षौद्रमधुकैः प्रतिसारणम् ।  
 गुह्यचीयष्टिपतंगसिद्धमम्यजने धृतम् ॥ ६ ॥  
 पित्तविद्रधिबध्ना क्रिया,,  
 “शोथितजेऽपि च ॥

इदमेव भवेत्कार्यं<sup>२</sup> कर्म,,  
 ओष्ठे तु कफोत्तरे ॥ ७ ॥  
 पाठाक्षारमधुव्योषैर्हृतास्ते प्रतिसारणम् ।  
 धूमनावनगंडूपाः प्रयोज्याश्च कफच्छिदः ॥ ८ ॥  
 स्विन्नं भिन्नं विमेषकं दहेन्नेदोऽजमग्निना ।  
 त्रिपंगुरोध्ननिफलामाक्षिकैः प्रतिसारयेत् ॥ ९ ॥

## जलाबुद् चिकित्सा—

ससीद्रा चर्पणं तीक्ष्णा भिन्नशुद्धे जलाबुदे ।  
 अवगाद्देऽतिवृद्धे वा क्षारोऽग्निर्वा प्रतिक्रिया ॥ १० ॥  
 “आमाशयस्थास्वलर्जी गंडे शोफवदाचरेत् ॥”

## शीतदन्त चिकित्सा—

स्विन्नस्य शीतदन्तस्य पाली विलिखितां दहेत् ॥ ११ ॥

१ तस्य वातीष्ठस्य । २ अत्रतयोः पित्ताभिघातजयोः । ३ इदमेव कर्म  
 कार्यं भवेत् ।

तैलेन प्रतिमार्गं च मृशोदघनसैधवं ।

दाडिमत्वग्दरातादर्थ्यं कांताजंज्वस्थिनागरैः ॥ १२ ॥

कवलः क्षीरिणां क्वाथैरणुर्तलं च नावनम् ।

**दन्तहर्ष चिकित्सा—**

दंतहर्षे तथा भेदे सर्वा वातहरा क्रिया ॥ १३ ॥

तिलयष्टीमघुशृतं क्षीरं गङ्गपधारणम् ।

**चलदन्त चिकित्सा—**

सस्नेहं दशमूलांशु गङ्गपः प्रचलद्दिजे ॥ १४ ॥

तुरथरोध्रकणाश्रेष्ठापत्तंगपदुषर्पणम् ।

स्निग्धाः शीत्मा यथावस्थं नस्याश्रकवलादयः ॥ १५ ॥

**अधिदन्तक चिकित्सा—**

अधिदन्तकमालिनं यदा क्षारेण शर्जरम् ।

कृमिदन्तमिषोत्पात्र्य तद्वज्ज्वोपधरेत्तदा ॥ १६ ॥

अनवस्थितरक्तं च दण्डे व्रण इव क्रिया ।

**दन्तशर्कराचिकित्सा**

अदिसन् दन्तमूलानि दन्तेभ्यः शर्करा हरेत् ॥ १७ ॥

क्षारधूर्णैर्मघुमुतैस्ततश्च प्रतिमारयेत् ।

कषालिकायामप्येवं हर्षोक्तं च समाचरेत् ॥ १८ ॥

**क्रिमिदन्तचिकित्सा—**

जयेद्विस्त्रावर्णः स्विन्नमबलं कृमिदन्तकम् ।

स्निग्धैश्चालेपगङ्गपनस्याहारैश्चलापहेः ॥ १९ ॥

मुडेन पूणे मुपिरं मवून्निउष्टेन वा दहेत् ।

गमच्छन्दार्कक्षीराम्भां पूरणं कृमिशूलजित् ॥ २० ॥

हिणुकटफलकासीसस्वजिकाकुष्ठवेत्तलजम् ।  
 रजो रुजं जघस्थाशु वस्त्रस्थं दशने धृतम् ।  
 गंधूषं धारयेत्तैलमेभिरेव च साधितम् ।  
 कवाथैर्वा युक्तमेरंडद्विव्याघ्रीभूकदंबजः ॥२२॥  
 क्रियायोगैर्वैहविधैरित्यद्यांतर्जं मृदम् ।  
 हृदमस्थुद्धरेत्तं पूर्वं मूलाद्विमोक्षितम् ॥२३॥  
 मंदंशकेन लघुना दंतनिर्घातेन वा ।  
 तैलं समष्ट्याह्वरजो गंधूपो मधुना ततः ॥२४॥  
 ततो विदारियष्ट्याह्वगृगाटककसेरुभिः ।  
 तैलं दशगुणक्षीरं गिळं युजीत भाषनम् ॥२५॥  
 कृशदुर्बलवृद्धानां वातातनां च नोद्धरेत् ।  
 नोद्धरेन्नोत्तरं दंतं बहुपद्रववृद्धि सः ॥२६॥  
 १एषामधुद्धृतैः सिग्धः स्वादुः क्षीतः क्रमो हितः ।

### शीतादचिकित्सा—

वित्तात्रितासे क्षीतादे सक्षीर्द्रं प्रतिसारणम् ॥२७॥  
 मुस्तार्जुनत्वक् मिफलाफलिनीताध्वनाभरैः ।  
 तत्त्ववायः कक्लो नस्यं तैलं मधुरसाधितम् ॥२८॥

### उपकुशचिकित्सा—

दंतमासान्युपकुशे ।स्वेन्नान्युष्णोबुधारणैः ।  
 मंडलाग्रेण शाकादिपत्रैर्वा बहुशो लिखेत् ॥२९॥  
 ततश्च प्रतिमार्याणि घृतमडमधुद्धृतैः ।  
 लाक्षात्रियंगुपत्तंगलत्रणोत्तमगैरिकैः ॥३०॥  
 सकुष्टाष्टीमरिचवष्टीमधुरसांजनै ।  
 मुखोष्णो घृतमंडोऽनु तैलं वा कवलगहः ॥३१॥

१ एभिः-हिङ्ग्यादिभिः । २ नोद्धरेदन्तमित्यन्वयः । ३ एषां कृशादीनामपि-  
 दन्तैर्द्धृतैःसिग्धादिःक्रमो हितः ।

पूतं च मधुरं मिदं हितं कवलनस्ययोः

**दन्तपुष्पुटचिकित्सा—**

दन्तपुष्पुटके स्विन्नछिन्नभिन्नविलेखिते ॥३२॥

यष्ट्याह्रस्वजिकाचुष्ठीमेषवै. प्रतिसारणम् ।

**दन्तविद्रधिचिकित्सा—**

विद्रघो कटुतीक्ष्णोष्णरूक्षः कवललेपनम् ॥३३॥

घर्षणं कटुकाकुष्ठवृश्चिकालीयबोदमवैः ।

रक्षेरपार्कं हिमैः पक्वैः पाटघो दाह्योऽवगाढकः ॥३४॥

**दन्तसौपिरचिकित्सा—**

सौपिरे छिन्नलिखिते ससौद्रैः प्रतिसारणम् ।

रोध्रमृस्तमिशिघ्रेष्ठातादर्यपत्तंगकिशुकैः ॥३५॥

सकटफलैः कपायैश्च तेषां गंहूप इष्यते ।

यष्टीरोध्रोत्पलानंवासारिबागश्चन्दनैः ॥३६॥

सर्गैरिक्मितापुङ्खैः सिद्धं तैलं च नावनम् ।

**अधिमांसकचिकित्सा—**

छिरबाधिमांसकं चूर्णैः मक्षीद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ ३७ ॥

धचातेजोवतीपाठास्वजिकायवशूकजैः ।

पटोलनिबत्रिफलाकपायः कवलो हितः ॥ ३८ ॥

**दन्तविदर्भचिकित्सा—**

विदर्भे दन्तमृत्तानि मंहलाग्रेण शोषयेत् ।

क्षारं युग्मात्ततो नस्यं गंहूपादि च शीतलम् ॥ ३९ ॥

**दन्तनाडीचिकित्सा—**

संशोध्योभयतः कायं शिरस्योपचरेत्ततः ।

नाडीं दंतानुगो दंतं समुद्धृत्याग्निना दहेत् ॥ ४० ॥

कुञ्जा नैकगतिं पूर्णामदनेन गुडेन वा ।  
धावनं जातिमदनखदिरस्वादुकैटर्कः ॥ ४१ ॥  
क्षीरिष्ठुतांबुगं हूपो नस्यं तैलं च तत्कृतम् ।

जिह्वारोगचिकित्सा --

कुर्वाद्यातोष्ठकोपोस्तं कटकेन निलात्मसु ॥ ४२ ॥  
जिह्वाया,

पित्तजातेषु घृष्टेषु रुधिरं क्षुते ।

प्रतिसारणगं हूपनाशनं मधुरैहितम् ॥ ४३ ॥

"तीक्ष्णैः कफोत्थेऽप्येवं सर्पपशूपणादिभिः ।"

"नवे जिह्वाक्षतेऽप्येवं तं तु क्षालेन न स्पृशेत् ॥ ४४ ॥

"उन्नम्य जिह्वामाकृष्टा बडिशेनाधिजिह्विकाम् ।

छेदयेन्मंडलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्वर्षणादि च ॥ ४५ ॥"

उपजिह्वी परिस्राव्य यवसारेण घर्षयेत् ।

कफघ्नीः शुद्धिका साध्या नस्यगं हूपघर्षणैः ॥ ४६ ॥

वद्वगलशुषिडकायां छेदनादि --

ऐर्वात्स्वीजप्रतिमं वृद्धायामधिराततम् ।

"अग्रे निविष्टं जिह्वाया बडिद्याद्यवलंबितम् ॥ ४७ ॥

छेदयेन्मंडलाग्रेण, नारयग्रे न च मूलतः ।

छेदेऽस्य सुक्षयान्मुत्पुडंति व्याधिर्विवर्धते ॥ ४८ ॥

मरिचातिविषापाठावचापुच्छकुटं नटैः ।

छिन्नाया सपटुक्षौद्रं घर्षणं कवलः पुनः ॥ ४९ ॥

कटुकातिविषापाठानिबरासावचांबुभिः ।

संधाते पुष्पुटे कूर्मे विलिख्यैवं समाचरेत् ॥ ५० ॥

१ कुञ्जामिति नैकगतिमित्यस्य विशेषणम् । २ वृद्धायामल शुषिडकायाम् ।

३ जिह्वाया अग्रे निविष्टम् ।

अपक्वे तालुपाके तु कासीमसीद्रताद्यर्जैः ।

घर्पणं कवलः शीतकपायमधुरोपचैः ॥ ५१ ॥

पक्वेऽष्टा<sup>१</sup>पदवद्भिन्ने तीक्ष्णोष्णैः प्रतिसारणम् ।

घृपनिबपटोलाद्यैस्तित्तैः कवलधारणम् ॥ ५२ ॥

### तालुरोपचिकित्सा —

तालुरोपे स्वतृष्णस्य सर्पिरुत्तरभक्तिकम् ।

कणाशु<sup>२</sup>ठीशृतं पानमम्लैर्गन्धूपधारणम् ॥ ५३ ॥

धन्वमांसरसाः क्षिण्याः क्षीरसपिश्व नावनम् ।

### कण्ठरोगचिकित्सा—

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादि कर्म च ॥ ५४ ॥

कषामः पानं च दार्वीत्वङ्निबतादर्पकलिगजः ।

हरीतकीकपायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः ॥ ५५ ॥

श्लेष्माव्योषयवज्जारदार्वीद्वीपिरसांजनैः ।

सवाठातेजिनीनिबैः सूक्तमोमूत्रमाधितैः ॥ ५६ ॥

कवलो गुटिका चाऽन कल्पिता प्रतिमारणम् ।

निचुलं कटमी मुस्तं देवदारु महोपयम् ॥ ५७ ॥

वचा हंती च मूर्धा च तेषः कोष्णोतिशोफहा ।

### रोहिणी चिकित्सा—

अयाऽतर्वाहृतः स्वप्नो धातरोहिणिकी लितेत् ॥ ५८ ॥

अंगुलीशस्त्रकेणाऽशु<sup>३</sup>पटुमुत्तलेन वा ।

पंचमूलांबुकवन्तैर्ल<sup>४</sup> गन्धूपनावनम् ॥ ५९ ॥

“विश्राव्य पित्तसंभूतां सिताशीदप्रियंगुभिः ।

धपेत्सरोधपतंगैः कवलः क्वथितैश्च तैः ॥ ६० ॥

१ पक्वे तालुपाकेऽष्टापदवद्भिन्ने मण्डलाग्र दक्षेण अष्टापदवत्तेसाभिर्भेदः कार्य इत्यर्थः । अष्टापदं चतुरङ्ग पिट्टम्—“चीनङ्ग अपवा “शतरंज का साना” ।  
२ द्वापी चित्रकः । तेजनी “तेजवल” इतिलोके । ३ पटुर्लवणः ।

द्राक्षापस्यकनवायो हितश्च कवलग्रहे ।,

“उपाचरेदेवमेव प्रत्याख्यायास्त्रयमवाम् ॥ ६१ ॥

“सागारधूमैः वटुकैः कफज्वां प्रतिसारयेत् ।

मस्यगंहूपयोस्तैलं साधितं च प्रशस्यते ॥ ६२ ॥

अपामार्गफलश्वेतादंतीजंतुघ्नसंघर्षः ।,

‘तद्वच्च शुंक्षालुकुमु‘डकेरीगिलायुषु ॥ ६३ ॥

“विद्वधी स्नायिते श्रेष्ठारोचनातार्क्ष्यगैरिकैः ।

सरोध्रपटुपतंगकर्णगैह्वपमर्षणे ॥ ६४ ॥,

### गल्लगण्ड चिकित्सा—

गल्लगण्डः पथनजः स्विद्रो निःसृतसोणितः ।

तिलैर्बौर्जैश्च लट्वाभाप्रियालक्षणमभवै ॥ ६५ ॥

उपनाहो श्लेष्मे रुद्धे प्रलेप्यश्च पुनःपुनः ।

दिग्मुसिल्वकतर्कारीगजकृष्णापुनर्नवैः ॥ ६६ ॥

कालामृताकैमूलैश्च पुष्पैश्च करहाटजैः ।

‘एकैपिकाश्विर्तैः पिष्टैः सुरया काजिवेन वा ॥ ६७ ॥

“गुह्यचीनिबकुटजहंसपादीवलादयै ।

साधितं पाययेत्तैर्लं सकृष्णादेवदारुभिः ॥ ६८ ॥

कर्तव्यं कफज्ज्वेप्येतत्स्वेदविम्लापने स्वति ।

लेपोजगंधातिविपाविद्यत्यासविपाणिकाः ॥ ६९ ॥

गुंजालाबुशुकाह्वाश्च पलाशसारकल्किताः ।

मूत्रमृतं हठक्षारं पक्त्वा कीदृक्कृत् पिबेत् ॥ ७० ॥

साधितं वत्सकाक्षैर्वा तैलं सपटुपंचकैः ।

कफघ्नान् घृण्यमननावनाशीश्च क्षीलयेत् ॥ ७१ ॥

मेदोभवे सिरां विष्येत्कफघ्नं च विधिं मजेत् ।

अमनादिरजश्चैनं प्रातमूत्रेण पाययेत् ॥ ७२ ॥



अघातौ पाटयित्वा च सर्वान्<sup>१</sup> व्रणवदाचरेत् ।

### मुखपाक चिकित्सा—

मुखपाकेषु सशोदाः प्रयोज्या मुखचावनाः ॥ ७३ ॥

ववयितास्त्रिफलापाठमृद्धीकाजातिपल्लवाः ।

निष्ठेव्या भक्षयित्वा वा कुठेरादिगणोऽप्यवा ॥ ७४ ॥

मुखपाकेऽनिन्नात् कृष्णापट्वेलाः प्रतिसारणम् ।

तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ७५ ॥

पित्तास्त्रे रक्तपित्तन्नः, कफश्च कफे विधिः ।

लिखेच्छाकादिपत्रैश्च पिष्टिकाः कठिनाः स्थिराः ॥ ७६ ॥

यथादोषोदयं कुर्यात्संनिपाते विकित्सितम् ।

### अर्बुद चिकित्सा—

नवेर्बुदे त्वमेर्बुदे छेदिते प्रतिसारणम् ॥ ७७ ॥

स्वर्जिकानागरक्षौद्रैः ववायो मंक्षूप इष्यते ।

गुह्यचीनिषक्कोत्थो मधुतैलसमन्वितः ॥ ७८ ॥

यवाभ्रशृक् तीक्ष्णतैलनस्याभ्यङ्गस्तथाचरेत् ।

### पूतिमुखचिकित्सा—

वमिते पूतिवदने भ्रूमस्तीक्ष्णः सनावनः ॥ ७९ ॥

सर्पगाघातकीरोधफलिनीपत्रकैर्जलम् ।

घावनं वदनस्यान्तरवृणितै<sup>२</sup>रवचूर्णनम् ।

शीतारोपमुज्जोक्तं च नाचनादि च शीलयेत् ॥ ८० ॥

### गुटिकाकण्ठादिरोगघर्त्ता—

फलत्रयदीपिकिरावतित-

यष्टपाह्मिदार्धकटुत्रिकाणि ।

१ सर्वान् गन्धगण्डान् । २ स एतरेव समझादिभिः शृङ्गितैर्मुंक्षाम्भन्तरेज्ज-  
घूर्णनं चार्थम् ।

मुस्ताहरिद्राद्वययावनूक-  
 वृक्षाम्लकाम्लाप्रि<sup>१</sup>मवेतसाश्च ॥ ८१ ॥  
 अश्वत्थर्जन्वाभ्रघनजयत्वक्  
 त्वक्<sup>२</sup>चाहिमारात्तदिरस्य सारः ।  
 ववायेन तेषां घनतां गतेन  
 तच्छूर्णमुक्ता गुटिका विधेयाः ॥ ८२ ॥  
 सा धारिता घ्नति मुखेन नित्यं  
 कंठोष्ठनास्वादिगदान् मुहुञ्छ्वान् ।  
 विशेषतो रोहिणिकास्यशांप-  
 मंधान् विदेहाधिपतिप्रणीताः ॥ ८३ ॥

### तैलंमुखरोगघनम् --

खविरमुल्लामंशुषटे<sup>३</sup> पक्त्वा तोयेन तेन पिष्टंश्च ।  
 चदनजाम<sup>४</sup>वकुंकुमपरिपेलववालकोष्ठीरैः ॥ ८४ ॥  
 सुरतरुधद्राक्षामंजिष्टाचोचपद्मकविर्दगैः ।  
 स्पृकानतनलकट्फलमूलमीलाप्यामकी.सपत्तंगैः ॥ ८५ ॥

तैलप्रस्थं विपनेत् ।

कर्पाक्षैः पाननस्यगंधैस्तत् ।

हृत्वास्ये सर्वगदान्

जनयति गाध्रौ हृद्यं, श्रुति च वायवीम् ॥ ८६ ॥

### उद्धरीनम् --

उद्धतितं च<sup>५</sup> प्रपुनाटरोध्र-

दावीभिरभ्यक्तमनेन वक्त्रम् ।

निर्व्यगनीलीमुखद्रूपिकादि

मंजायते चन्द्रसमानकांति ॥ ८७ ॥

२ अम्लोऽग्निमः पूर्वतनोयस्य स चामी वेतसोऽम्लवेत सः । ३ अहिमारः  
 अरिमेदकः । ४ घटो द्रोणः । ५ जोङ्गकमगुह । परिपेलवः कंवर्त मुस्तकः ।

१ प्रपुनाटश्चक्रमर्दः ।

### सर्वमुखरोगहृत्तैलम्—

पलशतं बाणात्तोषधटे  
 पक्त्वा रसेऽस्मिन् पलाधिकः ।  
 खदिरजम्बूयट्टधानंताम्रै-  
 रहिमारनीलोत्पलान्वितः ॥ ८८ ॥  
 तैलप्रस्थं पाचयेच्छलक्ष्णपिट्टै-  
 रेभिर्द्रव्यैर्धारितं तन्मुखेन ।  
 रोगान्मर्वाणं हन्ति कषत्रे विशेषा-  
 त्स्यैष घृते दंतपंक्तेष्वलायाः ॥ ८९ ॥

### बृहत्खदिरादिगुटिका —

खदिरमाराद द्वे तुले पचेद्भस्मात्तुलां चारिमेदमः ।  
 घटचतुष्के पादरोपेऽस्मिन् पूते पुनः क्वायनाद् घने ६०  
 आक्षिकं क्षिपेत्सूक्ष्मं रजः सेव्याबुपत्तंगैरिकम् ।  
 चंदनद्वयरोध्रगुंड्राह्वं यष्ट्यात्तुलासाजनद्वयम् ॥ ९१ ॥  
 धातकीकट्फलद्विनिद्यात्रिफलाचतुर्जातजौगकम् ।  
 मुस्तमंजिष्ठाग्न्यग्रोधप्ररोहमासीयवासकम् ॥ ९२ ॥  
 पद्मकंलेयसमंगाश्च क्षीते तस्मिन्स्तथा पालिका पृथक् ।  
 जातिपत्रिकां सजातीकलां महलवंगकंकोल्लकाम् ॥ ९३ ॥  
 स्फटिकशुभ्रमुरभिकर्पूरकुड्यं च तत्रावपेततः ।  
 कारयेद्गुटिकाः सदा चैता धार्मा मुखे सद्गदापहाः ॥ ९४ ॥

### कषायादि :—

३ कषायोपधव्यत्यययोजनेन  
 तैलं पचेत्कल्पनमाऽन्यैव ।

१ बाणः—नीलसहधरः “कटसरैया” इति लोके ।

२ स्फटिकेत्यादि कर्पूरविशेषणम् । ३ क्वायेति—खदिर गुटिकाया क्वायस्य ये द्वे औषधे खदिरमारारिमेदसाख्ये तयो र्व्यत्यययोजनेन, - खदिरादिगुटिकायां खदिरमारस्यद्वेतुलेऽरिमेदमस्तुलंका प्रोक्ता, अत्रतु तयोर्वैपरीत्ययोजना-खदिर मारस्यैवा तुला अरिमेदमश्च द्वे तुले ।

सर्वास्यरोगोद्धृतये तदाहु-  
दंतस्यिरत्वे त्विदमेव मुख्यम् ॥ ६५ ॥

दन्तदाह्यं करायोगा :—

खदिरेणैता गुटिका-  
स्तेलमिदं चारिमेदसा प्रथितम् ।  
अनु घोलयन् प्रतिदिनं  
स्वस्थोऽपि दृढद्विजो भवति ॥ ६६ ॥

कवलग्रहः—

क्षुद्रागुह्वीमुमनः प्रवाल-  
दावीयवामनिफलाकषायः ।  
क्षौद्रेण युक्तः कवलग्रहोऽयं  
सर्वामयान् वषत्रगताग्निहति ॥ ६७ ॥

प्रतिसारणम्—

पाठादावीत्वक्कुष्ठमुस्तासमगा-  
तिक्ताशीतागारोघ्रतेजोवतीनाम् ।  
चूर्णः सक्षीद्रो दंतमासातिकंठ-  
पाकक्षावाणा नाशनो घर्षणेन ॥ ६८ ॥

कालकरचूर्णः—

गृहप्लुमतादर्मपाठाव्योषक्षाराम्मयोवरातेजोह्वैः ।  
मुखदंतगलविकारे सक्षौद्रः कालको विधार्यश्चूर्णः ॥ ६९ ॥

पीतकचूर्णः—

दावीत्वक्गिष्पद्भवमनःशिलायावसूकहरितालैः ।  
धार्यः पीतकचूर्णो दतास्यगलामये गमघ्वाज्य ॥ १०० ॥

## रसविद्या—

विश्वामित्रस्य वीर्यस्य वीर्यस्य वीर्यस्य ॥ १०१ ॥

मोक्षेन विरचयन्त्यामृतम् ॥ १०१ ॥

पथ्या प्रयोगः—

\* गोमूत्रस्य वीर्यस्य वीर्यस्य ॥

पथ्यानां अर्धमिति कुट्टमानिधानम् ।

अतारं नरस्यस्योर्ध्वं नरस्यस्यः

मोक्षारं मृतमिव न हृत्तस्यस्यः ॥ १०२ ॥

प्राथम्यः—

मत्तस्योर्ध्वं वीर्यस्य वीर्यस्य

हृत्तस्योर्ध्वं वीर्यस्य वीर्यस्य ॥

पथ्यानां अर्धमिति कुट्टमानिधानम्

वैद्यस्य विद्येनारं हृत्तस्य वीर्यस्य ॥ १०३ ॥

पथ्यानां अर्धमिति कुट्टमानिधानम्

वैद्यस्य विद्येनारं हृत्तस्य वीर्यस्य ॥

पथ्यानां अर्धमिति कुट्टमानिधानम्

वैद्यस्य विद्येनारं हृत्तस्य वीर्यस्य ॥ १०४ ॥

वैद्यस्य विद्येनारं—

स्वरसः कथयितो दाम्प्यं वीर्यस्य वीर्यस्य ॥

आस्यस्यः भगवत्पुत्रस्य वीर्यस्य वीर्यस्य ॥ १०५ ॥

पथ्यानां अर्धमिति कुट्टमानिधानम्

वैद्यस्य विद्येनारं हृत्तस्य वीर्यस्य ॥ १०६ ॥

१ गोमूत्रेत्यादि पथ्याविशेषणम् । अतारं अस्त्रविद्यारम् । जलबालवम् ।  
मिश्रः क्षतपुष्पा ।

गण्डूषः—

खदिरायोवरापार्थमदयंत्यदिमारकैः ।

गंडूषोऽबुभृतेर्षायो दुर्बुलद्विजशोतये ॥ १०७ ॥

रुधिर स्त्रावणम् —

मुखदंतमूलगलजाः प्रायो रोगाः कफास्रभूयिष्ठाः ।

तस्मात्तेषामसहृद् रुधिरं विलावयेद्दुष्टम् ॥ १०८ ॥

विरेकादि —

कायदिरसोविरेको वमनं कवलप्रहाश्च कटुकवित्ताः ।

प्रायः घस्तं तेषां कफरक्तहर तथा कर्म ॥ १०९ ॥

भोजनादि —

यवतृणघान्यं भक्तं विदलैः क्षारोपितैरपस्नेहाः ।

यूषा भक्ष्याश्च हिता यद्याभ्यञ्जेन्मनाद्याय ॥ ११० ॥

मुखरोगेषुशीघ्रमुपक्रमः—

प्राणानिलपयसंस्थाः श्वसितमपि निरुधते प्रमादवज्रः ।

कंठामयारिषकिरितमवो द्रुतं तेषु कुर्वन् ॥ १११ ॥



## त्रयोविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः शिरोरोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ॥

शिरोरोगहेतवः—

“धूमासपतुपाराबुक्तीडातिस्वप्नजागरः ।

उत्स्वेदाधिपुरोवातवाष्पनिग्रहरोदनैः ॥ १ ॥

अत्यंबुमद्यपानेन कृमिभिर्वेगधारणैः ।

उपघानमृजाम्यंगद्वेषाघःप्रसृतेक्षणीः ॥ २ ॥

असात्म्यगंधदुष्टामभाष्याद्यैश्च शिरोगताः ।

जनयन्त्यामयान् दोषाः

तत्र मारुतक्रीपतः ॥ ३ ॥

निस्तुष्टौने भृशं शंखी घाटा संभिद्यते तथा ।

भ्रुवोर्मध्यं ललाटं च पततीवातिवेदनम् ॥ ४ ॥

वाग्धेते स्वनतः श्रोत्रे निष्कृज्येत इवाक्षिणी ।

घूर्णतीव शिरः सर्वं सधिभ्य इव मुच्यते ॥ ५ ॥

स्फुरत्यतिशिराज्जालं कंधराहनुर्मग्रहः ।

प्रकाशासहता घ्राणस्त्रावोऽकस्माद्गम्यपाद्यमी ॥ ६ ॥

मार्दवं भर्दनस्नेहस्वेदबंधैश्च जायते ।

शिरस्तापोऽयम्,

अर्धे तु मूर्ध्नः सोर्ध्वावभेदकः ॥ ७ ॥

पलातुप्यति मासाद्वा स्वयमेव च शाम्यति ।

अतिवृद्धस्तु नयनं श्रवणं वा विनाशयेत् ॥ ८ ॥

१ उपघानं “तक्रिया” इतिलोके । मृजासृद्धिः । वाष्पमयम् । २ घाटा  
प्रीतिपरचाद्भागः ।

शिरोमिताये पिप्तोत्थे शिरोधूमामयनं ज्वरः ।  
 स्वेदोक्षिदहनं मूष्णो निशि क्षीयैव मार्दवम् ॥ ९ ॥  
 “अरुचिः कफजे मूष्णो गुरुस्तिमितशीतता ।  
 शिरानिस्पन्दतामस्यं रुड्मंदाह्वयधिका निधि ॥ १० ॥  
 तदाशून्याक्षिकृष्टत्वं कर्णकङ्कनं वमिः,  
 रक्तात् पित्ताधिकजनः,  
 सधैः स्यात्सर्वलक्षणः ॥ ११ ॥

### द्विमिश्रिशिरोरोगलक्षणम् —

‘सर्कोर्णभोजनैर्मूष्णि क्लेदिते रुधिरामिधे ।  
 कोपिते संनिपाते च जायते मूष्णि ज्वरः ॥ १२ ॥  
 शिरसस्ते पिबन्तोऽर्ज घोराः कुर्वन्ति वेदनाः ।  
 पित्तविभ्रजजननीज्वरः कासो बलक्षयः ॥ १३ ॥  
 रौक्ष्यधोके ध्वषन्नेष्टदाहगृष्टवगूतिताः ।  
 कषाले तालुशिरसोः कंह घोषप्रमीलकः ॥ १४ ॥  
 ताम्रावर्तसिपाणकता कर्णनादश्च जंतुजे ।,  
 वासोत्वयाः शिरःकंठं तसंज्ञं कुर्वन्ते मलाः ॥ १५ ॥

### शंसक लक्षणम् —

पित्तप्रधानैर्वातासैः दंष्ट्रे घोफः सद्योणितैः ।  
 तीक्ष्णदाहज्वराद्यप्रलापज्वरतृड्भ्रमाः ॥ १६ ॥  
 तिकास्यः पीतबदनः क्षिप्रकारो य दंष्टकः ।  
 त्रिरात्राजीवितं हन्ति सिध्यत्यप्याशुसाधितः ॥ १७ ॥

### सूर्यावर्त लक्षणम् —

पित्तानुबद्धः घंछालिभूललाटेऽप्यु मास्तः ।  
 रुजं ‘सर्पदनां कुर्यादनुसूर्योदयोदयम् ॥ १८ ॥



आमभ्याह्नं विविचिष्णुः क्षुद्रतः सा विरोपतः ।

अव्यस्थितशीतोष्णमुखा आम्यत्यतः परम् ॥ १९ ॥

सूर्यावतः स,

इत्युक्तं दश रोगाः क्षिरोगताः ।

शिरःकपाल रोगाः—

शिरस्येष च वदयंतं कपाले व्याप्यते नव ॥ २० ॥

अपरापिकं लक्षणम्—

कपाले पवने दुष्टे गर्भस्थस्याऽपि जायते ।

सवर्णो नीरुजः शोफस्तं विद्यादुपशोर्पकम्, ॥ २१ ॥

मपादोपोदयं धूयात् पिटिकाषु<sup>१</sup>द्विविधधीम् ।

पिटिकाः—

कपाले क्लेशदबहुलाः नितासृक्स्लेष्मजंतुभिः ॥ २२ ॥

कणुसिद्धार्थकनिभाः पिटिकाः स्फुरत्पिकाः ।

दारुण रोगः—

कङ्ककेशच्युतिस्वापरोदयकृत् स्फुटनं त्वचः ॥ २३ ॥

मुमूर्क्षं कफवाताभ्यां विद्याद्दार्णकं तु तत् ।

इन्द्रलुप्त रोगः—

रोमकूपानुर्गं पित्तं वातेन सह मूर्छितम् ॥ २४ ॥

प्रच्यावयति रोमाणि ततः श्लेष्मा सक्षोणितः ।

रोमकूपान् स्नद्धधम्य<sup>२</sup> तेनान्येषामसम्भवः ॥ २५ ॥

ताद्रिदलुप्तं हृदयं च प्राहुश्चाचेति चापरे ।

स्वस्त्यतिरोगः—

स्वस्त्येतेरपि जन्मिवं मदनं तत्र तु क्रमात् ॥ २६ ॥

१ अव्यस्थितेति-कदाचित् क्षीप्तिन कदाचिदुष्णेनन मुखंभवतीत्यत्र व्यवस्था नास्ति । २ अन्येषां रोम्णाम् ।

सा वातादग्निदग्धाया पिप्पलास्त्रिगुणधरावृता ।  
 कफादघनत्वग्वर्णाश्च यथास्त्वं निर्दिशेत् त्वचि ॥ २७ ॥  
 दोषैः सर्वाकृतिः सर्वैरसाध्या सा नक्षप्रभा ।  
 दग्नाग्निनेव निर्लोभा सदाहृया च जायते ॥ २८ ॥

य उत्तरांगः—

दोषकथयक्रोपवृत्तः शरीरोष्मा शिरोगतः ।  
 केशान् सद्योपः पचति पलितं संभवत्यतः ॥ २९ ॥  
 सङ्घातात्कुटितं व्याधं स्रवं रक्षं जलप्रभम् ।  
 पिप्पलात्सदाहं पीताम्बुं, कफात् क्षिप्तं विवृद्धिमत् ॥ ३० ॥  
 स्थूलं सुशुक्लं, सर्वैस्तु विद्यादन्यामिधलक्षणम् ।

अन्यः पलितरोगः—

शिरोरुजोद्भवं बान्धवद्विषं स्वर्चनासहम् ॥ ३१ ॥  
 असाध्या संनिपातेन क्षलतिः पलितानि च ।

रसायनप्रयोगः—

शरीरपरिणामोत्थान्यपेक्षिते रसायनम् ॥ ३२ ॥

## चतुर्विंशोऽध्यायः ।

अथास्तः शिरोरोगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

वातजशिरोरोगचिकित्सा —

“शिरोऽमितापेऽनिलजे वातव्याधिविधिं चरेत् ।  
घृतान्मृत्तचिरा रान्नी पिवेदुष्णपयोनुपः ॥ १ ॥  
मापान् मुद्गान् कुलत्पास्वा चट्वास्त्रावेदूतान्वितान् ।  
तैल तिलानां कल्कं वा क्षीरेण सह पाययेत् ॥ २ ॥  
पिंडोपनाहस्वेदाश्च मासघान्यकृता हिताः ।  
वातघ्नदधमूलादिसिद्धक्षीरेण सेचनम् ॥ ३ ॥  
स्निग्धं मन्दं तथा धूमः शिरः श्रवणतर्पणम् ।  
वरणादौ गणैः क्षुण्णैः क्षीरमर्षोदकं पचेत् ॥ ४ ॥  
क्षीरावशिष्टं तच्छीतं मयित्वा सारमाहरेत् ।  
ततो मधुरकैः मिष्टं नस्यं तत्पूजितं हविः ॥ ५ ॥  
वर्गेऽत्र पक्वव क्षीरे च पेयं सूर्यिः सद्यर्करम् ।  
कापासमज्जात्वङ्मुस्तामुमनः कोरकाणि च ॥ ६ ॥  
नत्पुष्पावुपिष्टानि सर्वमूर्धदवापहम् ।

पित्तरक्तस्थेघृतादि

शर्कराकुंकुमशृतं घृतं पित्तासृगन्धये ॥ ७ ॥  
प्रलेपः सघृतैः कुष्ठकुटिलोत्पलर्षदनैः ।  
वातोद्रेकमयादत्तं न चास्मिन्नवसेचयेत् ॥ ८ ॥

१ मारं घृतम् । अत्र वरणादौ गणैः । २ मुमनः कोरकं जाति रजिका ।  
कुटिलं तगरम् ।

इ यथाती चले <sup>१</sup>दाहः, कफे चीर्णं यथोदितम् ।  
 शर्षाभेदके प्येषा यथादोषान्त्रयात्क्रिया ॥ ९ ॥  
 शिरोषबीजापामागंमूलं नश्यं बिडान्वितम् ।  
 स्थिरारसो वा लेपे तु प्रपुत्राटोऽल्लकल्लिवः ॥ १० ॥  
 सूयोवर्ते तु तस्मिस्तु गिर्यापहरेदसृक् ।

### पित्तोत्थशिरोरोगचिकित्सा—

शिरोऽभिन्नापे पित्तोत्थे स्निग्धस्य व्यययेत्स्त्रिराम् ॥ ११ ॥  
 क्षीताः शिरोमुखालेपसेकशोधनबस्तयः ।  
 जीवनीयभृते क्षीरसर्पिषो पाननस्ययोः ॥ १२ ॥  
 कर्तव्यं रक्तजेऽप्येतत्, श्रत्याहवाय च शंखके ।

### कफजशिरोरोगचिकित्सा—

श्लेष्माभिन्नापे जीर्णज्यस्नेहितः कटुकैर्वमेद् ॥ १३ ॥  
 स्वेदालेपनस्याद्या रुक्षतीक्ष्णोष्णभेजजैः ।  
 दास्यते चोपवासोऽत्र निचये मिश्रमाचरेत् ॥ १४ ॥

### क्रिमिजशिरोरोगचिकित्सा—

कृमिजे शोणितं नस्यं तेन मूर्च्छति जंतवः ।  
 मत्ताः शोणितगर्भेन निषीति घ्राणवनप्रयोः ॥ १५ ॥  
 मुनीक्ष्णनस्मश्रूमाम्यो कुर्यान्निर्हरणं ततः ।  
 विडंगस्वाजिकादंतीहिगुगुमूत्रसाधितम् ॥ १६ ॥  
<sup>१</sup>बटुनिर्बेगुदीपोलुतलं नश्यं पृथक् पृथक् ।  
 अजामूत्रद्रुतं नस्ये <sup>२</sup>कृमिजित्कृमिजित्तरम् ॥ १७ ॥  
 पूतिमत्स्ययुतैः कुर्याद् घूमं नावनमेपजैः ।  
 कृमिभिः पीतरक्तत्वाद्रक्तमत्र न निर्हरेत् ॥ १८ ॥

१ इत्ययान्ती इत्थं विविक्ताकरणेनानुपशमे चले वायो दाहः । २ कटुतलं  
 नपंपतलम् । ३ कृमिजित् विडङ्गं, कृमिजित् क्रिमिनाशकम् ।

वाताभितापविहितः कंषे दाहाद्विना क्रमः ।

चपशीपंकचिकित् । —

नवेज्ज्मोत्तरं जाते योजयेदुपशीर्षके ॥ १९ ॥

वातव्याधिक्रियां, पक्वे कर्म विद्रधिचोदितम् ।

आमपक्वे ययामोम्यं विद्रघीषिटिकाबुं दे ॥ २० ॥

अरुणिकाचिकित्सा —

अरुणिका जलोकोभिर्हृतास्ता निबवारिणा ।

मिक्षा प्रभूनलवर्णलिपेदन्नघट्टदसीः ॥ २१ ॥

पटोलनिबपत्रैर्वा सहरिद्रैः मुकुत्तिकैः ।

गोमूत्रजीर्णपिण्याकटुकैश्चकुमलैरपि ॥ २२ ॥

कपालभृष्टं कुष्ठं वा क्षूणितं सैलसंयुतम् ।

रूपिकाक्षेपनं कङ्कलेरदाहार्तिगात्रम् ॥ २३ ॥

मालतीचित्रकाश्चघ्ननक्तमालप्रसाधितम् ।

चाक्षारुणिकयोस्तैलमम्यगः क्षुरघृष्टयोः ॥ २४ ॥

अशांती धिरमः घृद्ध्यै यतेत यमनादिभिः ।

दारुणकचिकित्सा —

विष्केच्छिरां दारुणके लालात्म्यां क्षीलयेन्मुत्राम् ॥ २५ ॥

नावनं मूछि वसितं च लेपयद्य समाशिकैः ।

प्रियालबीजमधुकुष्ठमापैः ससर्पैः ॥ २६ ॥

लासाश्चम्याकैर्पत्रैर्दण्डयात्रीफलैस्तथा ।

कीरद्रूपतृणदारवारिप्रसालनं हितम् ॥ २७ ॥

इन्द्रलुप्तचिकित्सा —

इन्द्रलुप्ते ययाक्षन्ने सिरो विद्ध्वा प्रलेपयेत् ।

प्रष्टाय गाढं कांसोत्तमनोह्रातुत्यकोपणैः ॥ २८ ॥

१ इषयावृक्षमृदुः । २ चाचा इन्द्रलुप्तः । ३ चम्याकरपतुरङ्गुलः ।

४ एरण्यवचनमर्दः । ५ कर्प कर्तव्यमुत्तमम् ।

वन्ध्याभरतरम्या वा गुजामूलफलेस्तथा ।  
 तथा ताम्रलिकामूलैः करवीररसेन वा ॥ २६ ॥  
 मशं द्रक्षुदवातकिस्वरसेन रसेन वा ।  
 पत्तूरकस्य पद्माणां भक्तातकरसेन वा ॥ ३० ॥  
 धयवा माग्निककह्विस्तितपुष्पनिकटकैः ।  
 तैलात्मा हस्तिदंतस्य मपी वा बीषर्ष परम् ॥ ३१ ॥  
 शुक्ललोमोद्गमे सङ्गमपा मेघविपाणजा ।  
 वर्जयेद्धारिणा मेकं यावद्रोमसमुद्भवम् ॥ ३२ ॥

खल्लहयादेरांगधिकित्सः—

खल्लती पलिते वल्गो हरिल्लोमि च धोषितम् ।  
 नस्पवन्नशिरोर्म्यगप्रदेहैः समुपाचरेत् ॥ ३३ ॥  
 मिष्टं तैलं वृहत्याद्यैर्जीवनीयैश्च नावनम् ।  
 मानं वा निज्जं तैले शीरेन्दुत्तमयेद्विजः ॥ ३४ ॥  
 नीलीशिरीषकोरटभृगस्वरमभावितम् ।  
 दोत्वष्टतिलरामाणां बीजं काकाडकीसमम् ॥ ३५ ॥  
 पिष्ट्वाऽजपयसा लोहास्त्रिणावर्कधृतापितात् ।  
 तैलं शृतं क्षीरभुजो नावनान् पलितान्कुरु ॥ ३६ ॥  
 क्षीरात्सहचराद् भृंगरजसः सौरमाद्रसात् ।  
 प्रस्थैस्तैलस्य कुडवः सिद्धो मष्टीपलान्वितः ॥ ३७ ॥  
 नस्यं क्षीरोद्भवमे भाङ्गे शृङ्गे मेघस्य वा स्थितः ।  
 क्षीरेण श्लेष्मपिष्टो वा दुग्धिकाकरवीरको ॥ ३८ ॥  
 उत्पाठ्य पलितं देयावाशये पलितान्पहौ ।  
 क्षीरं प्रियालं यष्टपाह्वं जीवनीयो गणस्तिलाः ॥ ३९ ॥  
 कृष्णाः प्रलेपो वनस्य ह्रिल्लोमवलीहितः ।  
 तिलाः सामलकाः पद्मकिङ्करो मधुकं मधु ॥ ४० ॥  
 बृंहयेच्च रजोच्चैत्तु केशान्मूर्धप्रलेपनात् ।  
 मांसी कुष्ठं तिलाः कृष्णाः सारिवा नीलमुदरलम् ॥ ४१ ॥

क्षीर्द्रं च क्षीर-ष्टानि केशसंवर्धनं परम् ।  
 अयोरजो भृङ्गरजस्त्रिफला वृष्णमृत्तिका ॥ ४२ ॥  
 स्थितमिधुरसे मासं समूलं पलितं रजैव ।  
 मापकोद्रवधान्माभ्लंयन्वागूस्त्रिदिनोपिता ॥ ४३ ॥  
 लोहशुक्लोत्कटा<sup>१</sup> पिष्टा बलाकामापे रंजयेत् ।  
 प्रपोढरीकमधुकपिप्लोचदनोत्पलैः ॥ ४४ ॥  
 मिदं धात्रीरसे तैलं नस्येनाभ्यञ्जनेन च ।  
 सर्वान् मूर्धगदान् हन्ति पलितानि च शीलितम् ॥ ४५ ॥  
 वरीजीवतिनिर्यासपयोमिर्यमकं पचेत् ।  
 जीवनीयेश्च तस्यैव सर्वजन्तुर्ध्वरोगजित् ॥ ४६ ॥

### मायूरं घृतम् -

मयूरं पक्षपित्तान्नपादविट्कुड्वात्रितम् ।  
 दशमूलबलाराक्षामधुकैलिपलंयुतम् ॥ ४७ ॥  
 जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन् क्षीरसमं पचेत् ।  
 कल्किर्तैर्मधुरद्रव्यैः सर्वजन्तुर्ध्वरोगजित् ॥ ४८ ॥  
 तदभ्यासीष्टुतं पानवस्त्यभ्यञ्जननावर्तनैः ।

### मक्षामायूरम् -

<sup>२</sup>एतेनैव कषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४९ ॥  
 चतुर्मुखेन पयसा कल्किरेभिश्च कार्पिकैः ।  
 जीवतीत्रिफलामेदामृदीकादिपक्ष्पकैः ॥ ५० ॥  
 समगाचंविकाभागोकाशमरीककंटाह्वयैः ।  
 आत्मपुष्पामहाभेदातालखर्जूरमुस्तकैः ॥ ५१ ॥  
 भृणालबिसखर्जूरयष्टीमधुकजीवकैः ।  
 रातावरोविदारोक्षुवृहतीमारिवायुषैः ॥ ५२ ॥

१ अत्र "लोहकुष्ठोत्कटा" इति पाठान्तरम् । "लोहशुक्लोत्कटा" इत्यपि पाठान्तरम् । २ एतेनैव कषायेण मयूरदशमूलदिकषायेण ।

दूवशिवदंष्ट्र्यभकण्टगाटककमेरुर्कः ।  
 राक्षास्थिरातामलकीमूढमैलाशठिपीकरै ॥ ५३ ॥  
 पुमर्नवातवक्षीरीकाकोलीधन्वयासर्कः ।  
 मधूकाक्षोटवाताममुंजाताभिपुर्करापि ॥ ५४ ॥  
 मद्दामायूरमित्येजन्मायूरादधिक गुणैः ।  
 धातिवद्विद्यस्वरभ्रंशश्वामकासादितापहम् ॥ ५५ ॥  
 योन्यसृक्शुक्रदोषेषु शस्तं वध्यामुत्तप्रदम् ।  
 आसुभिः कर्कटैर्हंसैः शरीरचेति प्रकल्पयेत् ॥ ५६ ॥  
 जम्बूध्वजानां व्याधौनामेकभिद्यद्यतद्वयम् ।  
 परस्परमसंकीर्णं विस्तरेण प्रकाशितम् ॥ ५७ ॥

शिरोरक्षायां तत्परः स्यात्—

ऊर्ध्वमूलमधःक्षालमुपयः पुरुषं विदुः ।  
 मूलप्रहारिणस्तस्माद् रोगान् शीघ्रतरं जयेत् ॥ ५८ ॥  
 तर्जैर्द्विधाणि येनास्मिन् प्राणा येन च संश्रिताः ।  
 तेन तस्योत्तमार्गस्य रक्षाद्यामाहतो भवेत् ॥ ५९ ॥

## पञ्चविंशोऽध्यायः ।

अथास्तो व्रणविज्ञानीयप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

व्रणस्यद्वैविध्यम्—

व्रणो द्विधा निजागंतुदुष्टशुद्धविभेदेतः ।  
 निजो दोषैः शरीरोत्थरामतुर्वाह्यहेतुजः ॥ १ ॥  
 दोषैरपिहितो दुष्टः शुभस्त्वेरनपिहितः ।

१ निजागंतुभेदात्तुदुष्टशुद्धभेदाच्च व्रणो द्विविधः । २ तैर्दोषैरनपिहितः  
 शुद्धो व्रणः ।



## दुष्टघ्नविज्ञानम्—

‘मंवृतत्वं विवृतता काठिन्यं मृदुतापि वा ॥ २ ॥

अत्युत्सन्नावसन्नत्वमत्यौष्ण्यमतिशीतता ।

रक्तत्वं पाण्डुता काण्ड्यं पूतिनूयपरिस्त्रुतिः ॥ ३ ॥

पूतिमाससिराज्यायुच्छन्नतोत्संगितातिस्क् ।

सरंभदाहृष्ययुक्तंङ्वादिभिरुपद्रुतिः ॥ ४ ॥

दीर्घकालानुबंधश्च विघाददुष्टमप्याकृतिम् ।

स पंचदशधा दोषैः सरक्तैः

तत्र माहतात् ॥ ५ ॥

श्यावः कृष्णोऽरुणो भस्मकपोतास्थिनिर्भांर्ऽपि च ।

मस्तुभांमपुलाकाद्युत्पत्तन्वस्वसंस्त्रुतिः ॥ ६ ॥

निर्माणस्तोदभेदाब्धो रूक्षश्चटचटायते ॥,

“विस्त्रेण क्षिप्रजः पीतो नीलः कपिलपिगलः ॥ ७ ॥

मूर्त्राकशुकभस्माबुर्तलाभोष्णबहुस्त्रुतिः ।

क्षारोक्षितभ्रतसमभ्ययो रागोष्मपाकवान्, ॥ ८ ॥

“कफेन पाण्डुः कङ्कमान् बहुष्वेतथनस्त्रुतिः ।

‘स्थूलोष्ठः कठिनः स्यामिराजालस्ततोऽल्पस्क्’ ॥ ९ ॥

“प्रवालरक्तो रक्तेन सरक्तं पूयमुद्गिरेत् ।

वाजिस्थानसमो गधे युक्तो लिगैश्च पित्तिकैः, ॥ १० ॥

द्वाभ्यां त्रिभिरथ सर्वैश्च विद्यालक्षणसंकरात् ।

## शुद्धघ्नः—

जिह्वाग्रभो मुदुः शुद्धः श्यावीष्ठपिटिकः समः ॥ ११ ॥

१ संघृतत्वमल्पावकाशयुक्तत्वम् । अत्युत्सन्नत्वमत्युन्नतत्वम् । अत्यवसन्नत्वमतिनिम्नत्वम् । उत्संगितः कोटरवान् । मरम्भ- शोथः । पञ्चदशधापृष्ठादोषैस्त्रयः, द्वन्द्वजास्त्रयः, सन्निपातेनैकः । एवं गत । सर्वेष्वेतेषु रक्तान्वयात्मं कलनया चनुर्दश । केवलेन रक्तेनैकः । इति पञ्चदश । २ पुलाकः तुच्छघान्यम् । ३ स्थूलोष्ठः स्थूलप्रान्तः ।

किञ्चिदुत्तममध्ये वा घणः भुद्धोऽनुपप्रवः ।

त्रणाधिष्ठानानि—

स्वगामिपशिरास्त्रायुतंध्यस्थोनि त्रणाशयाः ॥ १२ ॥

कोष्ठो भर्म च तान्यष्टौ दुःसाध्यान्युत्तरोत्तरम् ।

साध्यत्रणाः—

मुसाध्यः सत्त्वमामाग्निकयोबलवति घणः ॥ १३ ॥

वृत्तो दीर्घस्त्रिपुटकश्चतुरस्त्राकृतिश्च यः ।

तथा स्फिकवायुमेढोऽष्टपृष्ठातर्बन्तगण्डयोः ॥ १४ ॥

कुच्छ्रसाध्यत्रणाः—

कुच्छ्रमाध्योऽक्षिदशननासिकापागनाभिषु ।

सेत्रनीजठरश्रोत्रपाश्वर्यकथास्तनेषु च ॥ १५ ॥

फेनपूयानिलबहः सत्यवानूर्ध्वनिर्धर्मो ।

भयंदरोतर्बदनस्तथा कट्यस्थिमंश्रितः ॥ १६ ॥

कुष्ठिना त्रिपञ्चाना शोपिशा मधुमेहिनाम् ।

घणा कुच्छ्रेण मिद्वर्षति येषां च स्फुर्वर्णे घणाः ॥ १७ ॥

असाध्यत्रणाः—

नैव सिद्धयति कीमर्पज्वरातीमारकासिनाम् ।

पिषामूनामनिद्राणां श्वामिनामविषाकिनाम् ॥ १८ ॥

भिन्ने शिरःरूपाले वा मस्तुनुगस्य दर्शने ।

साध्यस्याप्यसाध्यता—

सायुक्तेदातिगराल्लेदाद्गंगाभीर्मान्द्रिममन्त्रेणात् ॥ १९ ॥

अस्थिभेदात्मशल्पत्वात्मविषत्वादतर्कितत् ॥

मिथ्याबंधादतिस्नेहाद्रीक्ष्यादोमातिघट्टनात् ॥ २० ॥

क्षोभादशूद्रकोष्ठत्वात्सीह्रित्यादतिकर्शनात् ।

मद्यपानाद्दिवास्वापाद् व्यवायादानिजागरात् ॥ २१ ॥

व्रणो भिष्योपचाराच्च नैव साध्योऽपि रोहति ।

### रोहस्यलक्षणम्—

कपोतवर्णप्रतिमा मस्यांताः बलेदनाग्निताः ॥ २२ ॥

स्थिराश्चिपिटिकावन्तो रोहतीति समादिशेत् ।

### व्रणचिकित्सा

अथाऽत्र शोफावस्थाया यथामग्नं विशेषनम् ॥ २३ ॥

योज्यं, शोफो हि शुद्धानां व्रणश्चाशु प्रशाम्यति ।

कुर्याच्छीतोपचारं तु शोफावस्थस्य संततम् ॥ २४ ॥

दोषाग्निरग्निवत्तेन प्रयाति सहसा क्षमम् ।

शोफे व्रणे च कठिने विवर्णे वेदनाग्निते ॥ २५ ॥

विषयुक्ते विशेषेण गलीकाद्यैर्हरेदसृक् ।

दुष्टास्रेऽपगते सद्यः शोफरागद्व्यां शनः ॥ २६ ॥

हृते हृते च रुधिरं मुशीतं स्पर्शवीर्ययोः ।

सुश्लक्ष्णैस्तदहःपिट्टैः क्षीरेभ्रुस्वरमद्वैः ॥ २७ ॥

दातमीतधृतोपेतं मुहुरन्यैरशोपिभिः<sup>१</sup>

प्रतिलोमं हितो लेपः सेकाम्यगाश्च तत्कृताः ॥ २८ ॥

भ्यग्रोघोदुवराश्चत्प्लक्षवेतसवलकलैः ।

प्रदेहो मूरिमपिभिः शोफनिर्वापणः परम् ॥ २९ ॥

यातोत्वणानां स्तब्धानां कठिनानां महाक्षामम् ।

स्रुतासृजां च शोफानां व्रणानामपि चेदक्षामम् ॥ ३० ॥

आनूपवेगवाराद्यैः स्वेदा<sup>१</sup> सोमास्तिलाः पुनः ।

भृष्टा निर्वापिताः क्षीरे तत्पिष्टा दाहुरग्नयः ॥ ३१ ॥

स्थिरान् मंदरुजः शोफान् स्नेहैवतिकफापहैः ।  
 अम्यज्य स्वेदमिस्वा च, वेणुनाह्या घर्नः घर्नैः ॥ ३२ ॥  
 धिम्लापनाथं पृदनायात् तलेनांगुष्ठकेन वा ।  
 यवगोधूममुदयैश्च सिद्धपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ३३ ॥  
 विलीयते स चेन्मैवं ततस्तमुपनाहयेत् ।  
 अविदग्धस्तथा धाति विदग्धः पाकमश्नुते ॥ ३४ ॥  
 सकोलतिलवेल्लोमा दध्यध्वा सक्तुषिद्धिका ।  
 मक्किण्डकुष्ठलवणा कोष्णा शस्तोपनाहने ॥ ३५ ॥  
 मुपवधे पिडिते शोके पीडनैरुपपीडिते ।  
 दारुण्यं दारुणार्हस्य मुकुमारस्य धेय्यते ॥ ३६ ॥

### अणदारणौषधानि—

गुग्गुल्वससिगोदंतस्वर्णक्षीरीकपोतविट् ।  
 क्षारौषधानि क्षाराश्च पनवशौकविदारणम् ॥ ३७ ॥  
 पूषणभान्तुद्रारान् सोरसगान्मर्ममानपि ।  
 निःस्नेहैः पीडनद्रव्यैः समतात्प्रतिपीडयेत् ॥ ३८ ॥  
 दुष्यंतं मधुपेक्षेत प्रनेपं पीडनं प्रति ।  
 न मुखे धैनमालिपेत् तथा दोषः प्रमिच्यते ॥ ३९ ॥  
 कलायववगोधूममापमुदगहरेणवः ।  
 दध्याणो पिच्छिलानां च त्वङ्मूलानि प्रपीडनम् ॥ ४० ॥  
 सप्तमु क्षालनाद्येषु सुरसारग्वधादिकी ।  
 भृशं दुष्टे प्रणे योज्यी मेहुभ्रत्रणेषु च ॥ ४१ ॥  
 अपवा साधनं क्वाथः पटोलीनिबपत्रजः ।  
 अविशुद्धे विशुद्धे तु न्यग्रोषादित्वमुदभवः ॥ ४२ ॥  
 पटोलीतिलयष्ट्याह्वनिबृहतीनिशाद्वयम् ।  
 निबपत्राणि शालेपः गपटुष्यशोचनः ॥ ४३ ॥

घणान् विशोधयेद्वर्षा मूकभास्यान् मंथिमर्मणान् ।

वृत्ता त्रिवृतादंतीलांगलीमधुमंघवैः ॥ ४४ ॥

वाताभिभूतान् मास्रावान् धूपयेदुपवेदनान् ।

यवाज्यभूर्जमदनश्रीवेष्टकसुराह्वयैः ॥ ४५ ॥

निर्घोषयेद् भृशं शीतैः पित्तरक्तविपोष्यणान् ।

क्षुत्कात्पमासे गंभीरे व्रणैः ङासादमं हितम् ॥ ४६ ॥

न्यग्रोधपद्मकादिभ्यामश्वगंधावलातिलैः ।

अद्यान्मामादमांमानि विधिनोपहितानि च ॥ ४७ ॥

मामं मामादमांसेन वर्धते क्षुद्रचेतसः ।

उत्तमप्रमृदुमामाना व्रणानां भवसादनम् ॥ ४८ ॥

जातीमुकुलकासीसमनोह्वालपुराणिकैः ।

"उत्तममासान् कठिनान् कंदूयुक्तोश्चिरोत्थितान् ॥ ४९ ॥

व्रणान्मुदुःखशोष्णान् शोधयेत्क्षारकर्मणा ।"

स्खवंतीऽश्मरिजा मूर्ध्न ये घान्ये रक्तवाहिनः ॥ ५० ॥

छिन्नाश्च मंघयो येषा यथोत्तैर्यै च शोधनैः ।

शोष्यमाना न क्षुद्रघन्ति शोष्णाः स्युस्तेरिक्तकर्मणा ॥ ५१ ॥

### व्रणरोपणम्—

क्षुद्धाना रोपणं योज्यमुत्सादाय यदीरितम् ।

अश्वगंधाहरोध्नं कट्फलं मधुमष्टिका ॥ ५२ ॥

मर्मगाधातकीपुष्पं परमं व्रणरोपणम् ।

अपेतपूतिमासाना मांसस्थानामरोहताम् ॥ ५३ ॥

कल्कं संरोहणं कुर्यात् तिलाना मधुकान्वितम् ।

स्निग्धोष्णतिक्तमधुरकपायत्वं न सर्वजित ॥ ५४ ॥

सशोद्रनिबपनाभ्यां युक्तः संशोधनं परम् ।  
 'पूर्वाभ्यां सपिपा चासी युक्तः स्यादाशु रोपणः ॥ ५५ ॥  
 तिलवस्त्रवल्कं तु केचिदिच्छति तद्विदः ।  
 मास्त्रपित्तविपागतुर्गभीरान्मोघमणो ब्रह्मा ॥ ५६ ॥  
 शोरोपणभयज्यशृतेनाज्येन रोपयेत् ।  
 रोपणोपधसिद्धेन तैलेन कफाघातजा ॥ ५७ ॥  
 काशीरोध्राभ्यासजिह्वद्वाराजनतुल्यकम् ।  
 क्षूणितं तैलमदनैर्युक्तं रोपणमुत्तमम् ॥ ५८ ॥  
 समानां स्थिरमासानां स्वस्थानां चूर्णं ॥ ५९ ॥

त्वक्कारकाश्चूर्णाः :-

ककुभोबुन्दराशमत्पञ्चमूकदफत्तरोध्रजैः ॥ ५९ ॥  
 त्वक्चूर्णं निशुद्धति त्वक्चूर्णंश्चूर्णिता ब्रह्माः ।  
 लाक्षामनीह्वामजिष्ठाहरितालनिशाद्वयैः ॥ ६० ॥  
 प्रलेपः सधृतक्षौद्रस्त्वग्निशुशुक्रः परम् ।  
 कालीयकलतास्त्रारिहृमकालारसोत्तमः ॥ ६१ ॥  
 लेपः सगोमयरसः सवर्णकरणः परम् ।  
 दण्डो 'वारणदन्तोतर्धुमं तैलं रमोजनम् ॥ ६२ ॥  
 रोमसंजननो लेपस्तद्वैलपरिप्लुता ।  
 चतुष्पाद्यस्तरोमास्त्वक्चूर्णगुल्फजा मयी ॥ ६३ ॥  
 ब्रह्मिनः शस्त्रकर्मोक्तं पथ्यापथ्याश्चमादिदोत् ।  
 'द्वेपंचमूले वर्गश्च वातघ्नो घातिके हितः ॥ ६४ ॥

१ पूर्वाभ्यां शौद्रनिबपनाभ्याम् । अमी-तिलकलाः । २ वारणदन्तो  
 गजदन्तः । तद्वत्तरोममंजननी । तैलपरिप्लुता चतुष्पाद्यस्तरोमादिजा मयी । ३ ब्रह्मि-  
 नोनरस्य शस्त्रकर्मणि उक्तं पथ्यपथ्यमपथ्यमपथ्यञ्च ।

### व्रणशोधनादिघृतम्—

न्यग्रोधपद्मकाशी तु तद्वस्त्रिषत्प्रदूषिते ।

आरग्वधादिः श्लेष्मघ्नः कफे मिश्रस्तु मिश्रके ॥

एभिः प्रक्षालनालेपघृततैलरसक्रियाः ।

शूर्णो वतिश्च संयोज्या व्रणे सप्त यथायथम् ॥ ६६ ॥

### व्रणशोधनादिघृतम्—

जातीनिबपटोलपत्रकटुकादावीनिद्यासारिवा-

मंजिष्ठाभयसिन्धुतुरथमधुकैर्नक्ताह्वबीजान्वितैः ।

सर्पिःसाध्यमनेन सूक्ष्मवदना मर्माश्रिताः क्लेदिनो

गंभीराः सरुजो व्रणाः सगतयः शुद्धयन्ति रोहन्ति च ॥ ६७ ॥



## षड्विंशोऽध्यायः ।

अथास्तः सद्योव्रणप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

सद्योव्रणा अष्टधा—

“सद्योव्रणा ये सहस्रा संभवन्त्यभिधाततः ।  
अनन्तरपि स्रवंगमुच्यते पुष्टमष्टधा ॥ १ ॥  
पृष्ठावकृतविचित्रन्नप्रविलंबितपातितम् ।  
विद्धं भिन्नं विदलितं

तेषांलक्षणानि—

सत्र घृष्टं लसीकया ॥ २ ॥

रक्तलेसेन वा मुक्तं, सप्लोपं क्षेदनात् सवेत् ।  
अवगाढं सतः कृशं, विच्छिन्नं स्यात्ततोऽपि<sup>१</sup> च ॥ ३ ॥  
प्रविलंबि सद्योव्रणस्थि, पतितं पातितं तनोः ।  
गूढमास्यशल्यविद्धं तु विद्धं<sup>२</sup> कोष्ठविवर्जितम् ॥ ४ ॥  
‘भिन्नमन्यद्विदलित मञ्जरक्तपरिप्लुतम् ।  
प्रहारपीडनोत्पेपात्तहास्या पृष्ठता गतम् ॥ ५ ॥

धिकित्सा-सेकादिः—

सद्यः सद्योव्रणं तिचेदय यष्टपाहृतपिपा ।  
तीव्रन्यथ कबोष्णीन बलावतेन वा पुनः ॥ ६ ॥

तेपादयः—

क्षतोष्मणो निग्रहार्थं सत्कालं विस्तृतस्य च ।  
कषामद्योतमधुरस्निग्धा तेपादयो हिताः ॥ ७ ॥

१ सद्योपृष्ठावगाढं कृतम् । ततोऽपि कृतादपि अवगाढतरं विच्छिन्नम् ।

२ अन्तर्-कोष्ठेपदिद्धं तदभिघ्नम् ।



## घृतमधुप्रयोगः—

मद्योद्वेगेष्वप्यायनेषु मधुनाथं विशेषतः ।  
 मधुमपिच युञ्जीत पित्तघ्नाश्च हिमाः क्रियाः ॥ ८ ॥  
 ससंरम्भेषु कर्तव्यमूर्ध्वं चाधश्च शोधनम् ।  
 उपवामो हितं भुवतं प्रततं रक्तमांशनम् ॥ ९ ॥  
 घृष्टे विदलिते र्धप गुतरामिष्यते विधिः ।  
 'तयोर्हस्तं सबस्यं पाकस्तेनाद्यु जायते' ॥ १० ॥  
 अन्यर्धमस्य स्रवति प्रायशोऽप्यत्र विद्यते ।  
 नसो रक्तशयाद्रायो कुपितेऽतिरुजाचरे ॥ ११ ॥  
 स्नेहपानपरीपेकस्वेदलेपोपनाहनम् ।  
 स्नेहवस्ति च कुर्वीत वातघ्नोपधमाधितम् ॥ १२ ॥

## सप्ताहादूर्ध्वं ब्रणवत्क्रिया—

इति माताहिकः प्रोक्तः मद्योद्वेगहितो विधिः ।  
 मप्ताहादुपवर्गे तु पूर्वोक्तं विधिमाचरेत् ॥ १३ ॥  
 प्रायः सामान्यकर्मैर्दं बध्वते तु पृथक्पृथक् ।  
 घृष्टे रुजं निघृष्टाद्यु व्रणे शूर्णाणि याजयेत् ॥ १४ ॥  
 कल्कादीन्धवकृषो तु,

विच्छिन्नमखिलं विनोः ।

मीवनं विधिनोक्तं बध्नं चानुपीडनम् ॥ १५ ॥

## अस्फुटितनेत्रचिकित्सा—

अमाप्यं स्फुटितं, नेत्रमदोर्णं लब्धते तु यत् ।  
 मनिवेश्य ययास्यानमव्याविद्धसिरं भिषक् ॥ १६ ॥  
 पीडयेत् पाणिना पद्मपलाशांतरितेन तत् ।  
 ततोऽस्य सेचने मस्ये तर्पणे च हितं हविः ॥ १७ ॥

१ तयोर्घृष्टविदलितयोः । एवविधिः पूर्वोक्तः । सिञ्चेदित्यादिनोक्ताचिकित्सा ।

२ पूर्वोक्तं व्रणप्रतिरोधोक्तम् । ३ अदोर्णं अस्फुटितम् ।

विपक्वमार्जं यष्ट्याह्वजोवर्षभकोत्पलैः ।  
 सपयस्कैः परं तद्धि सर्वेनेत्राभिघातजित् ॥ १८ ॥  
 गलघ्नीडावसन्नेऽक्षिण वमनोत्क्लेशनक्षवाः ।  
 प्राणायामोऽथवा कार्यः क्रिया च दत्तनेत्रवत् ॥ १९ ॥  
 कर्णौ स्थानाच्चूयुते स्यूते स्रोतस्तलेन पूरयेत् ।  
 कृकाटिकायां द्विज्जायां निर्गच्छत्यपि मारुते ॥ २० ॥  
 समं निवेश्य बध्नीयात् स्यूत्वा शीघ्रं निरंतरम् ।  
 धात्रेण सर्पिषा चाऽन परिपेकः प्रद्यस्मते ॥ २१ ॥  
 उत्तानोऽज्ञानि भुञ्जीत शयीत च सुष्वितः ।  
 घातं शास्त्रासु तिर्यक्स्यं गात्रे सम्यङ्निवेशिते ॥ २२ ॥  
 स्यूत्वा पेक्षितबधेन बध्नीयाद् पगवासना ।  
 चर्मणा गोष्फणाबन्धः कार्यश्चामंगते<sup>१</sup> घण्टे, ॥ २३ ॥  
 पादौ यिस्तंभिसुष्कस्य प्रोक्ष्य नेत्रे च वारिणा ।  
 प्रवेश्य धूपणौ सीम्येत् सेवन्त्या तुभ्रसज्ञया ॥ २४ ॥  
 कार्यश्च गोष्फणाबन्धः कट्यामावेश्य पट्टकम् ।  
 स्नेहमेकं न कुर्वीत तत्र<sup>२</sup> विलघति हि व्रणः ॥ २५ ॥  
 कालानुसार्यगुर्वेलाजातीचदनपर्यटैः ।  
 शिलादाव्यमृतातुल्यैः सिद्धैस्तैलैश्च रोपयन् ॥ २६ ॥  
 द्विज्जां निःशेषतः शाक्यौ दग्ध्वा तैलेन युक्तिः ।  
 बध्नीयात् कोशबधेन ततो व्रणवदाचरेत् ॥ २७ ॥  
 'कार्या घत्पाहते विद्धे भंगाद्विदलिते क्रिया ।  
 शिरसोपदृते घाल्ये बालवर्तिं प्रवेशयेत् ॥ २८ ॥  
 मस्तुलुंगसूते प्रुद्धो हन्यादेन चलोऽन्यथा<sup>३</sup> ।  
 घण्टे रोहति शैर्कंकं शर्नरपनयेत्कचम् ॥ २९ ॥

१ अमंगतेऽभसंयुक्ते घण्टे चर्मणा गोष्फणाबन्धः कार्यः । २ तत्रस्नेह-  
 सेवेमति । ३ विद्धे-घाल्येऽपहृते भङ्गाद्विदलिते क्रिया कार्या । ४ अन्यथा  
 बालवत्प्रवेशात् । चलो वायुः ।

मस्तुलुङ्गमुत्तौ खादेन्मस्तिष्कानन्यजीवजान् ।  
 गत्ये हृत्तेगादन्यस्मात्स्नेहवर्ति निष्ठापयेत् ॥ ३० ॥  
 दूरावगोढाः सूक्ष्मास्या ये घ्राणाः स्मृतशोणिताः ।  
 मेचयेच्चकृतैलेन सूक्ष्मनेत्रापितेन तान् ॥ ३१ ॥

### कोष्ठभेद लक्षणम्—

भिन्ने कोष्ठेऽसृजा पूर्णे मूर्च्छाहृत्पाश्ववेदनाः ।  
 ज्वरो दाहस्तृडाध्मानं भक्तस्यानभिनन्दनम् ॥ ३२ ॥  
 मङ्गो विष्णुत्रमहता श्वायः स्वेदोक्षिरक्तता ।  
 लोहगणित्वमास्यस्य स्याद् गात्रे च विगन्धता, ॥ ३३ ॥  
 आम्लाशयस्थे रुधिरे रुधिरं छर्दयत्यपि ।  
 आध्मानेनाऽतिमात्रेण दूलेन च विशस्पते' ॥ ३४ ॥  
 पक्काशयस्थे रुधिरे सक्षुब्धं गौरवं भवेत् ।  
 नाभेरपस्ताच्छीतत्वं खेभ्यो रक्तस्य चागमः ॥ ३५ ॥

### अभिन्नाशयस्यापि रुधिरेण पूरणम्—

अभिन्नेऽप्याशयः सूक्ष्मैः स्रोतोभिरभिपूर्यते ।  
 असृजा स्पर्दमानेन पार्श्वे मूत्रेण दस्तिवत् ॥ ३६ ॥

### असाध्यता—

तत्रादिलोहितं धीतपादोच्छ्वासकराननम् ।  
 रक्ताक्षं पाहुवदनमानन्दं च विवर्जयेत् ॥ ३७ ॥

### कोष्ठभेदचिकित्सा—

आम्लाशयस्थे वमनं हितं, पक्काशयाशये ।  
 विरेचनं निरुहं च निःस्नेहोष्णैर्विशोध्यैः ॥ ३८ ॥  
 यवकोलकुलत्पानां रसैः स्नेहविवर्जितैः ।  
 सुजीतान्नं यवागू' वा पिबेत्तैषवर्गमुग्राम् ॥ ३९ ॥

अतिनिःश्वतरस्तस्तु मिन्नकोष्ठः विवेदसृक् ।  
 क्लिन्नमिश्रांशभेदेन कोष्ठभेदो द्विधा स्मृतः ॥ ४० ॥  
 मूर्छादयोऽप्याः प्रथमे, द्वितीये त्वतिबाधकाः ।  
 क्लिन्नांशः संशयी देही, मित्रांशो नैव जीवति ॥ ४१ ॥  
 यथास्वं मार्गयापन्ता यस्य विष्णुवमास्तः ।  
 व्युपद्रवः स भिन्नेऽपि कोष्ठे जीवात्यमंशयम् ॥ ४२ ॥

### अक्षप्रवेशोक्तम्—

अभिन्नमंत्रं निष्कृतं प्रवेश्यं न त्वतोऽन्यथा ।  
 उत्पण्डितशिरोमस्तं तदप्येके वदन्ति तु ॥ ४३ ॥

### अन्यप्रवेशनमकारः—

प्रक्षाल्य पममा दिग्धं तृणसोणितपंसुभिः ।  
 प्रमेधयेत्कनूतमल्लो घृतेचाक्तं कर्नं कर्नं ॥ ४४ ॥  
 क्षीरेणाग्नीकृतं क्षूबलं भूरितपि परिप्लुतम् ।  
 भगुल्मा प्रभुवेत्कण्ठं जलेनोद्वेजयेदपि ॥ ४५ ॥  
 तप्तमाणि विहात्यंतस्तत्कारं पीडयति च ।  
 प्रणतोक्ष्म्याद्दृष्ट्वाद्वा कोष्ठमपमनाविशत् ॥ ४६ ॥  
 तत्प्रमाणेन जठरं पाटयित्वा प्रवेशयेत् ।  
 यथास्थानं स्थिते सन्ध्याये सीष्येदनुव्रणम् ॥ ४७ ॥  
 स्थानादपेक्षमादत्तं जीवितं, कुपितं च तत् ।  
 वेष्टयित्वाऽनु पट्टेन घृतेन परिषेचयेत् ॥ ४८ ॥  
 पामयेत्तं ततः कोष्ठां विजातैलपुतं पयः ।  
 मुहुर्द्वितीयं घृततो वायोश्चापः प्रवृत्तये ॥ ४९ ॥

१ न त्वतोऽन्यथा अतोऽभिन्नादन्यथा मिश्रमंत्रं न प्रवेश्यम् । अन्ये तु तदपि-  
 मिश्रमपि उत्पण्डितानां शिरोभिर्निस्तं दृष्ट्वान्तः प्रवेशयामिति वदन्ति । उत्पण्डितः  
 “बोटा” इति लोके । २ तत्प्रमाणेनान्त्रप्रमाणेन । स्थानादपेक्षं च्युतं जीवन्  
 नाशयति । कुपितं च तदग्नं पट्टेन वेष्टयित्वा । पश्चात्तृतेन परिषेचयेत् ।

अनुवर्तेत वर्षं च ययोक्तां व्रणयंत्रणाम् ।

उदरान्मेदसोवर्तिनिष्क्रमणे कर्तव्यप्रकारः—

उदरान्मेदसो वर्तिं निर्गतां भस्मना मृदा ॥ ५० ॥

द्रवकीर्यं कपायैर्वा श्लक्ष्णमूर्तैस्ततः समम् ।

दृढं बद्ध्वा च सूत्रेण<sup>१</sup> वधयेत्कुशलो भिषक् ॥ ५१ ॥

तीक्ष्णोनाग्निप्रतप्तेन दास्त्रेण सकृदेव तु ।

स्यादन्यथा रुगाटोपो मृत्पुर्वा लिङ्गमानया ॥ ५२ ॥

सक्षौद्रं च व्रणे बद्धं सुजीर्णेश्चे घृतं पिबेत् ।

क्षीरं वा शर्कराचित्रा<sup>२</sup> लाक्षागोक्षुरकैः शृतम् ॥ ५३ ॥

रुदाहुजित्सयष्ठपाह्नैः परं<sup>३</sup> पूर्वोदितो विधिः ।

मेदोऽग्न्युदितं तत्र तैलमभ्यञ्जने हितम् ॥ ५४ ॥

सद्योव्रणेषुरोपणं तैलम्—

तालीसं पद्मकं मांसीहरेष्वगुरुचंदनम् ।

हरिद्रे पद्मबीजानि सोऽक्षीरं मधुकं च तैः ॥ ५५ ॥

पक्वं सद्योव्रणेषूक्तं तैलं रोपणमुत्तमम् ।

प्रहारादौ विकित्सा—

गूढप्रहारामिहवे पतिते विषमोच्चकैः ॥ ५६ ॥

कार्यं वातास्रजित् तृप्तिमर्दनाभ्यञ्जनादिकम् ।

विरिलष्टदेहादिकस्य तैलद्रोण्यांवासः—

विश्लिष्टदेहं मथितं क्षीणं गर्भहृताहतम् ।

वासयेत्तैलपूर्णायां द्रोण्यां मांसरसाग्निम्<sup>४</sup> ॥ ५७ ॥

१ वधयेत्-छिन्वात् । २ चित्रा-एरण्डः । ३ पूर्वोदितो विधिः तर्पणादिः

## सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो भंगप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

भंगस्यद्विप्रकारत्वम्—

“पातपातरदिभिर्द्वेषा भंगोऽस्मिन् संख्यमंभितः ।

सन्धिभग्नस्य लक्षणम्—

प्रमारणाकुंचनयोरशक्तिः सधिमुक्तता ॥ १ ॥

असन्धिभङ्गस्य लक्षणम्—

इतररिमम् भूतं शोकः सर्वावस्थास्वतिभ्यसा ।

अशक्तिर्भ्रष्टितेऽप्येव पीड्यमाने सशब्दता ॥ २ ॥

ममासादिति भंगस्य लक्षणं, बहुधा तु तत् ।

भिद्यते भंगभेदेन तस्य<sup>१</sup> सर्वस्य साधनम् ॥ ३ ॥

मया स्यादुपयोगाय तथा तदुपदेक्ष्यते ।

दुःसाध्यास्थानि—

<sup>२</sup>प्राग्यास्तुदारि यत्त्वस्थि स्पर्शं दग्धं करोति यत् ॥ ४ ॥

यत्रास्थिलेशः प्रविशेत्प्रध्यमस्थो<sup>३</sup> विदारितः ।

भग्नं यथाभिघातेन किञ्चिदेवावरोपितम् ॥ ५ ॥

उग्रम्यमानं दातवद्य मज्जति मज्जति ।

तद्दुःसाध्यं कृशाश्चक्ष्मातलात्पाणिनामपि ॥ ६ ॥

भिन्नकपालादिवर्ज्यम्—

भिन्ने कपालं यत् कृत्वा संधिमुक्तं च्युतं च यत् ।

अघ्नं प्रतिपिष्टं च भग्नं यत्तद्विवर्जयेत् ॥ ७ ॥

१ तस्यभङ्गस्य । साधनं चिकित्सितम् । २ प्राग्यैः प्रभूतेरष्टुभिःपूग्मेर्दारि-  
दारणमस्ति यत्रास्थिनितम् । ३ यत्र भङ्गे दारितोऽस्थिलेशोऽस्मिन् मध्यं प्रविशेत् ।

असंश्लिष्टकपालं च ललाटं चूर्णितं तथा ।

यच्च भग्नं भवेच्छंसशिरःपृष्ठस्तनांतरे ॥ ८ ॥

सम्यग्यमितमप्यस्थि दुर्न्यासाददुर्निबंधनात् ।

संक्षोभादपि यद्गच्छेद्विक्रिया तद्विवर्जयेत् ॥ ९ ॥

आदितो यच्च दुर्जातिमस्थि संभिरथापि वा ।

अस्थिविशेषाणां भङ्गप्रकारः—

तरुणास्थीनि भुज्यन्ते भग्यन्ते नलकानि तु ॥ १० ॥

कपालानि विभिद्यन्ते स्फुटं त्यन्यानि भूयसा ।

बन्धनप्रकारः—

अथावनतमुद्रम्यमुन्नतं चावपीडयेत् ॥ ११ ॥

अस्त्रिदतिक्षिप्तमघोगतं चोपरि वर्तयेत् ।

आंछनोत्पीडनोन्नामचर्मसंक्षेपबंधनैः ॥ १२ ॥

संधीन् शरीरगान्सर्वान् चलानप्यचलानपि ।

इत्येतैः स्थापनोपायैः सम्यक् संस्थाप्य निश्चलम् ॥ १३ ॥

पट्टैः प्रभूतमपि भिवेष्टयित्वा सुखंस्ततः ।

कदंबोर्दुबाराश्वत्थसर्जार्जुनपलाशजैः ॥ १४ ॥

बंधोद्भवैर्वा पृष्ठमिस्तनुभिः सुनिवेधितैः ।

मुग्धुर्धनैः सुप्रतिस्तम्भैर्वल्कलैः शकलैरपि ॥ १५ ॥

कृद्याह्वयैः समं बंधं पट्टस्योपरि योजयेत् ।

शियिलेन हि बंधेन संधेः स्थैर्यं न जायते ॥ १६ ॥

गाढेनाविरुद्धादाहपाकश्वयद्युगंभवः ।

१ यमितं सन्धितम् । दुर्न्यासादसम्यक् स्थापनात् । संक्षोभादभिध्यातभयादिना सञ्चलनात् । २ भुज्यन्ते कूटिलीक्रियन्ते । भग्यन्ते मिद्यन्ते । विभिद्यन्ते खण्डशो विदीर्णनिमग्नान्ति । अन्यानि रुचकानि वलयानि च । ३ आच्छेत्-  
स्वानानयनं कुर्यात् । ४ मुग्धुर्धनैः चिकुर्णैः । सुप्रतिस्तम्भैः कठिनैः । शकलैः मृगैः

ऋतुविशेषमोचनप्रकारः—

अह्याह्याहृती धर्मे, समाहान्मोक्षयेद्विमे ॥ १७ ॥

माचारणे तु पंचाहाद् भगदोषवक्षणे वा ।

सेकादि—

गन्धोधादिकपायेण ततः शीतेन सेचयेत् ॥ १८ ॥

तं पंचमूलपक्वेन पयसा तु सवेदनम् ।

मुखोष्णं धावचार्यं ह्याचवक्रतैर्हं विजानता ॥ १९ ॥

विमज्ज्य देशं कालं च वातघ्नीपथसंयुतम् ।

प्रततं सेक्रेषोरच विदध्याद् भृशशीतलान् ॥ २० ॥

गृष्टिहीरं सप्तपिण्डं मधुरोपघसाधितम् ।

प्रातः प्रातः पिबेद्भग्नः शीतलं लाक्षया युतम् ॥ २१ ॥

सप्तणमङ्गचिकित्सा—

सप्तणस्य तु भग्नस्य प्रणी मधुघृतोत्तरः ।

कपार्यः प्रतिसार्योऽथ दोषी भगोदितः क्रमः ॥ २२ ॥

लंबानि द्रव्यमांसानि प्रलिप्य मधुसपिपा ।

मंदधीतं प्रणान् वीद्यो ब्रघ्नैश्चोपपादयेत् ॥ २३ ॥

तान्तमान्मुस्थिताञ्जात्या कलिनीरोधकट्फलैः ।

सर्भगापातकीमुक्तंश्चूर्णितैरवधूर्णयेत् ॥ २४ ॥

धातकीरोधचूर्णैर्वा रोहत्याशू तथा प्रणाः ।

इति भग उपक्रांतः,

साध्यत्वादि—

स्थिरयातोऽर्हती हिमे ॥ २५ ॥

मांसलस्यात्यदोषस्य सुसाध्यो दारणोऽन्यथा ।

सन्धेःस्थैर्यकालः—

पूर्वमध्याह्नवयसामेकद्वित्रिगुणैः क्रमात् ॥ २६ ॥



भार्गः स्वयं भवेत्स्वयंभोक्तं भजतो विधिम् ।

कट्यादिभङ्गचिकित्सा—

कटीजंघोरुभग्नानां कपाटशयनं हितम् ॥ २७ ॥

भङ्गणार्थं तया कीलाः पञ्च कार्यं निबध्नाः ।

जंघावोः पार्श्वयोर्द्वौ द्वौ तल एकश्च कीलकः ।

श्रोण्यां वा पृष्ठवर्ति वा वक्त्रस्याक्षकयोस्तथ ।

विमोक्षे भग्नसंधीनां विधिमेवं समाचरेत् ॥ २८ ॥

धिरविमुक्तसन्धेःस्थानानयनम्—

नंधीश्चिरविमुक्तांस्तु स्निग्धाग्निस्वप्नान् मृदूकृतान् ।

उक्तैर्विधानैर्धुंद्वा च यथास्वं स्थानमानयेत् ॥ ३० ॥

असन्धिभग्नेचिकित्सा—

अमपिभग्नं रुद्धे तु विषमोल्बणसाधिते ।

आपोष्म भग्नं यमयेत्ततो भग्नवदाचरेत् ॥ ३१ ॥

भग्नपाकोऽप्रशस्तः—

भग्नं नैति यथा पार्कं प्रपतेत् तथा म्रियक् ।

पञ्चमासतिरास्नायुतंभिः स्लेपं न गच्छति ॥ ३२ ॥

भंगेस्नेहयोजना—

वातव्याधिविनिर्दिष्टान् स्नेहान् भग्नस्य योजयेत् ।

अनुप्रयोगान् अत्याश्वं बस्तिकर्म च क्षीलयेत् ॥ ३३ ॥

भंगेभोजनम्—

पात्वाज्जरमनुग्राह्यं पीष्टिकरविदाहिभिः ।

मात्रयोपचरेद्भग्नं संपित्तंस्तेष्वग्निरभिः ॥ ३४ ॥

१ उक्तैः पूर्वभङ्गोक्तैः अथावनमित्यादिनोक्तैः । २ आपोष्म भङ्ग्या ।  
यमयेत्बन्धीयात् । ३ अनुप्रयोगान् धाननस्याभङ्गानुवासनैः ।

ग्लानिर्न शस्यते तस्य संघिविश्लेषकृद्धि सा ।

भङ्गेत्याज्यानि—

लवणं कटुकं क्षारमम्लं मधुनमातपम् ।

व्यायामं च न सेवेत अथो ह्यर्धं च भोजनम् ॥ ३५ ॥

भङ्गसन्धानकङ्गन्धतैलम्—

कृष्णांस्तिलान् विरजसो हृदयस्त्रबद्धान्

सप्त क्षपा वहति धारिणि वासयेत् ।

संशोषयेदनुदिनं प्रविसार्य चैतान्

क्षीरे तथैव मधुकवचपिते च सोये ॥ ३६ ॥

पुनरपि पीतपयस्कां-

स्तान् पूर्ववदेव घोषितान् बाढम् ।

विगततुषानरजस्कान्

संचूर्ण्य सुचूर्णितैर्युज्यात् ॥ ३७ ॥

नलदवालकलोहितयष्टिका-

नखमिश्रिष्टपुष्टबलापयैः ।

ममरुचदनकुङ्कुमसारिवा

सरलसर्जरसामरदारुभिः ॥ ३८ ॥

वपकादिगणोपेतैस्तिलपिष्टं वतम् वत् ।

ममस्तर्गधर्मपञ्चसिद्धदुग्धेन पीडयेत् ॥ ३९ ॥

घृतपराक्षाशुमतीकसेध-

कालानुसारीनतपमरोध्रैः ।

ससीरयुक्तैः सपयस्कन्दूर्वै-

स्तैर्लं पनेतप्रलदादिभिश्च ॥ ४० ॥

१ तथैव पूर्वोक्तप्रकारेण सप्तरात्रीःक्षीरे तथा सप्तरात्रीर्मधुकवचापे भावना  
देया । २ नलदादिभिर्नलदवालकलोहितेत्यादिभिः ।

गंधतैलमिदमुत्तममस्थि-  
 स्यैर्यैः कृज्जयति चासु विकारान् ।  
 वातपित्तजनितानतिवीर्यान्  
 व्यापिनोऽपि विविधैरुपयोगैः ॥ ४१ ॥

## अष्टाविंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो भगंदरप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

भगन्दर लक्षणम्—

“हृत्स्थश्चपृष्ठमनकठिनोऽकटकासनैः ।  
 अशौनिदानामिहितैरपरैश्च निषेवितैः ॥ १ ॥  
 अनिष्टादृष्टपाकेन मद्यो वा साधुगर्हणैः ।  
 प्रायेण पिटिकापूर्वो यौगुले व्यगुलेऽपि वा ॥ २ ॥  
 पायोर्ब्रणोतर्बाह्यो वा दुष्टासृग्मांसगो भवेत् ।  
 बस्तिमूत्राशयाभ्याशयतश्चास्पन्दनात्मकः ॥ ३ ॥  
 भगंदरः स,

चिकित्साविना भगादिदेशादारणम्—

मर्षश्च दारयत्प्रक्रियावतः ।  
 भगवस्तिगुदास्तेषु दीर्यमाणेषु भूरिभिः ॥ ४ ॥  
 वातमूत्रशङ्कुन्दुक्रं खैः सूक्ष्मैर्वमति क्रमात् ।

सचाष्टधा—

दोषैः पृथग्युतैः सर्वैरायतुः सोष्टमः स्मृतः ॥ ५ ॥

१ अनिष्टेति-पूर्वजन्मकृताशुमकर्मणां विपाकेन । मर्हन्निन्दा ।

अपक्वं पिटिकामाहुः पाकप्राप्तं भगंदरम् ।

भगन्दरकरीपीटिका—

गूढमूलां ससरंभां स्वाद्व्यां रुढकोपिनीम् ॥ ६ ॥

भगंदरकरीं विद्यात् पिटिकां न त्वतोऽन्यथा ।

वातजादिभगन्दर कथनम्—

तत्र श्यावावणा तोदभेदस्फुरणस्करी ॥ ७ ॥

पिटिका मारुतात्,

पित्तातुष्ट्रयीवावदुच्छ्रिता ।

रामिणी तनुरूमाख्या ज्वरधूमायनान्विता ॥ ८ ॥

“स्थिरा क्षिप्वा महामूला पाहुः कंठमती कफात् ।

“श्यावा ताम्रा सदाहोषा घोररूपं घातपित्तजा ॥ ९ ॥

“पादुरा किञ्चिदाश्यावा कृच्छ्रपाका कफानिलात् ।

“पादागुष्ठममा सर्वैर्दोषैर्नानाविधव्यथा ॥ १० ॥

झूलारोचकतृडाहज्वरच्छदिरुपद्रुता ।,

मणतां याति साः पक्वाः प्रमादात्

“तत्र वातजा ॥ ११ ॥

दीर्घतिरगुमुखं शिखिः घतपोनकवत् क्रमात् ।

अच्छं खवदभिरालावमजस्तं केतसंयुतम् ॥ १२ ॥

शतपोनकस्तंशोऽयम्

“अङ्गमीवस्तु पित्तजः ।”

“बहुपिच्छापरिक्षावी परिक्षावी कफोदमवः” ॥ १३ ॥

घातपित्तात्परिक्षेपी परिक्षिप्य गुदं गतिः ।

जायते परितस्त्वथ प्राकारपरिधेव च ॥ १४ ॥

अनुर्वातकफा दृज्या गुदो गत्या तु दीर्यते ।

## अशोभगन्दर लक्षणम्—

“कफपित्ते तु पूर्वोक्तं दुर्नामाश्रित्य कुप्यतः ॥ १५ ॥

अशोभूले ततः शोफः कङ्कदाहादिमान् भवेत् ।

स दीर्घं पक्वभिन्नोऽस्य क्लेदयन्मूलमर्धसः ॥ १६ ॥

स्रवत्यजस्रं गतिभिरयमशो भगन्दरः ।

## शम्बुकावर्तलक्षणम्—

“सर्वजः शम्बुकावर्तः शम्बुकावर्तसंनिभः ॥ १७ ॥

गतयो दारयंत्यस्मिन् रुवेर्गैर्दार्ण्यगुदम् ।

## छन्मार्गिभगन्दर लक्षणम्—

अस्थिलेशोऽभ्यवहृतो मांसदृष्ट्वा यदा गुदम् ॥ १८ ॥

क्षिणोति तिर्यङ्निर्गच्छन्नुन्मार्गं क्षततो गतिः ।

स्यात्ततः प्रयदीर्णायां मांसकोथेन तत्र च ॥ १९ ॥

जायते कृमयस्तस्तु क्षादतः परितो गुदम् ।

विदारयति च विरादुन्मार्गी क्षतश्च सः ॥ २० ॥

## रुगादिज्ञानम्—

“तेषु रुदाहकश्वादीन् विद्याद् क्षणनिषेधतः ।

## कुञ्जसाध्यत्वादि—

यत्कुञ्जसापनास्तेषां निषयक्षतजी त्यजेत् ॥ २१ ॥

प्रवाहिनीं बलीं प्राप्तं सेवनीं वा समाश्रितम् ।

## पाकप्रतिषेधार्थयत्नः—

अयाऽस्य पिटिकामेव तथा यत्नादुपाचरेत् ॥ २२ ॥

शुद्धपासकृत्स्नविसेकार्थं पाकं न गच्छति ।

## पाकेऽवाङ्मुखत्वाद्यवलोकनम्—

पाके पुनरपसिग्नं स्वेदितं चावगाहतः ॥ २३ ॥

यंत्रयित्वा र्धसमिव पश्येत्सम्यग्मर्मंदरम् ।

अवाचीनं पराचीनमंतर्मुखबहिर्मुखम् ॥ २४ ॥

अन्तर्मुखस्य शस्त्रेण पाटनादि—

अयातर्मुखमेपित्वा सम्यक् शस्त्रेण पाटयेत् ।

बहिर्मुखं च निःशेषं ततः क्षारेण सामयेत् ॥ २५ ॥

अग्निना वा भिषक् साधु क्षारेणैवोष्कधरम् ।

शतपोनकपाटनप्रकारः—

नाडीरेकांतराः कृत्वा पाटयेच्छतपोनकम् ॥ २६ ॥

सामु खड्गामु क्षेपाश्च मृत्युर्दीर्घं गुदेऽन्यथा ।

अन्यभगन्दरचिकित्सोपदेशः—

परिक्षेपेति चाप्येवं नाड्युक्तैः क्षारगूनकैः ॥ २७ ॥

अशौभगन्दरे पूर्वमशीतिं प्रतिषाधयेत् ।

त्यक्त्वोपचर्यः क्षतजः शल्पः शल्पवतस्ततः ॥ २८ ॥

आहरेच्च तथा दद्यात् कृमिघ्नं लेपमोजनम् ।

पिडनाढ्यादयः स्वेदाः मुखिण्या एजि पूजिताः ॥ २९ ॥

“सर्वत्र च बहुच्छिद्रे छेदानालोच्य योजयेत् ।

गोतीर्धसर्वतोभद्रदललांगललांगलान्” ॥ ३० ॥

पार्श्वं गतेन शस्त्रेण छेदो गोतीर्धको मतः ।

सर्वतः सर्वतोभद्रः पार्श्वच्छेदोर्ध्वांगलः ॥ ३१ ॥

पार्श्वद्वये स्वांगलकः

समस्तांश्चाग्निना दहेत् ।

आद्यावमार्गाग्निश्रेयान्नैवं विकुस्ते युनः, ॥ ३२ ॥

१ अवाचीनं निम्नमुखम् । पराचीनमूर्ध्वमुखम् । २ अन्यथा एकत्रालं ममस्तनाडी पाटनेन गुदे दीर्घं सति मृत्युः स्यात् । ३ शतजोभगन्दरः त्यक्त्वा प्रत्या-  
ख्याय उपचर्यश्चिकित्स्यः ।

मनोऽपि कोट्युदी च भिन्नं दम्भीर्यया ।

संयोऽपि विद्यासाधिविद्याभ्यासवर्जितम् ॥ ३३ ॥

अथ्यह्मार्थं तैलम्—

प्रयोऽपि तैलमनुत्तमं तैलमनुत्तमं—

मृदादिगन्धैरप्योरवथा गुणैः ।

सर्व्वेभ्यो विद्येभ्यो भगवद्भ्याम्

तैलं तदपि तदपि तदपि तदपि ॥ ३४ ॥

द्वितीयं तैलम्—

मधुसरोप्रवत्तुतिरेतुता-

द्विरजनीकलिर्नपदुगादिः ।

कमलवेगवत्तुतादि-

मदनगर्जरगमरोप्रवत्तुताः ॥ ३५ ॥

मधीजतूरज्ज्वरनैरेभिर्तैलं विद्यावितम् ।

भगवद्भ्याम् तदपि तदपि तदपि तदपि ॥ ३६ ॥

तैलम्—

मधुतैलपुत्रा विद्यावत्तुता-

त्रिफलाभागमिकाकलाभ्य तैलाः ।

कृमिबुधभगवद्भ्याम्-

सात्रनाडीप्रणोदना मवीति ॥ ३७ ॥

अन्यदीपधम्—

मधुतैलपुत्रा विद्यावत्तुता-

कलिपथ्यामलकानि गुग्गुलुः ।

प्रमवृद्धमिदं मधुद्रुतं

पिटिकास्त्योत्पन्नमन्दरान् जयेत् ॥ ३८ ॥

## अन्यदौषधम्—

‘भागधिकात्रिकालगविहंगे-

बिल्वधृतैः सवरापलपटकैः ।

गुग्गुलुना सहशेन समेतैः

क्षौद्रयुतैः सकलामयनाशः ॥ ३६ ॥

## स्वायंमुवाख्योगुग्गुलुः—

गुग्गुलुपंचपलं पलिकांषा

भागधिका त्रिकला<sup>१</sup> च पृथक् स्यात् ।

त्वक् क्षुद्रिकर्षयुतं मधुलीढ

कृष्टभगंदरगुल्मगतिघ्नम् ॥ ४० ॥

## वातरोगजित्—

भृंगवेररजोयुक्तं तदेव<sup>१</sup> च मुभावितम् ।

मवाधेन दशमूलस्य विशेषाद्वातरोगजित् ॥ ४१ ॥

## तुल्यमहिषाख्यमाक्षिकम्—

‘उत्तमासदिरमारजं रज

शीलयन्नमनवारिभावितम् ।

हृति तुल्यमहिषाख्यमाक्षिकं

कृष्टमेहविट्वाभयंदरान् ॥ ४२ ॥

## अन्यं पुयथायोगमुपक्रमः—

‘भगदरेष्येण विशेष उक्तः

क्षेपाणि तु व्यञ्जनसाधनानि ।

१ अग्निश्चिदनकः । कतिञ्जद्वन्द्वयवः । वरा त्रिकला पट् पला । अन्यद्रव्याणि पृथक् पलपरिमितानि । २ त्रिकला च पलपरिमिता । त्वक् क्षुद्रिश्च पृथक् कर्ष्य-प्रमाणा । ३ तदेव गुग्गुलुपंचपलमित्यादि । ४ उत्तमात्रिकला । महिषाख्यं गुग्गुलु । ५ सर्वेषु भगदरेष्येण विशेष उक्तः, क्षेपाणि तु व्रणानि व्यञ्जनसाधनानि-प्रकटं चिन्तितानि तेषु व्रणाभिन्नायाचिन्तितं कुर्मादित्यर्थः ।



प्रजापितृरासदग्निर्यन्नाय  
सम्यग्विदितोऽपिर्ह निरप्यार ॥ ४३ ॥

वज्रयानि—

क्षरवृक्षमनं च उरोर्ध्वं  
मण्डपेन मन्त्रानामगाग्मम् ।  
गाह्यानि विविधानि च ३ः  
स्यार वसितरदिधर्ह वा ॥ ४४ ॥

## एकोनत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो ग्रन्थधुंदर्लापदापचीनाढोचिज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

ग्रन्थि (गाँठ) लक्षणम्—

“वफप्रधानाः कुर्याति मेदोमामागना मलाः ।

नवग्रन्थयः—

वृत्तोन्नतं यं शयनं न क्षिपिष्यताम्मुत ॥ १ ॥

दोषाग्रमाममेदोन्पिगिरावणमरा नव ।

अथैषां लक्षणानि—

“ते, तत्र चातादायामतोदभेदान्वितोऽसितः ॥ २ ॥

स्यानास्यानातरगनिरपत्माज्ञानिवृद्धिभान् ।

मृदुर्वस्तिरिवानजो विभिन्नोच्छं सवत्सयुक् ॥ ३ ॥

१ चलोरोधो वातनिग्रहः । २ ते ग्रन्थयो दोषादिभेदेन नव ।

पित्तासदाहः पाताभो रक्तो वा पच्यते द्रुतम् ।  
भिन्नोऽयमुष्णं सवति,

“श्लेष्मण्या नीरुजो घनः ॥ ४ ॥

दीतः मवर्णः कङ्कमान् पक्वः पूर्य सवेदनम् ॥,  
“दोषंदुष्टेऽसृजि ग्रन्थिभवेन्मूर्च्छितु जंतुषु ॥ ५ ॥  
मिरामांसं च संधित्य सत्वापः पित्तलक्षणः ॥,  
“मासलैर्दूषितं मांसमाहारैर्ग्रन्थिभावहेम् ॥ ६ ॥  
क्षिग्यं महान्तं कठिनं सिरानदं कफावृत्तिम् ॥,  
प्रबुद्धं मेदुरैर्मैदो नीतं मासेऽयवा त्वचि ॥ ७ ॥  
वायुना कुरते ग्रन्थि भृद्यं क्षिग्यं मृदुं चलम् ।  
श्लेष्मणुत्पाकृति<sup>१</sup> देहक्षयवृद्धिभयोदयम् ॥ ८ ॥  
न विभिन्नो घनं मेदस्ताम्राऽमितसितं श्रयेत् ॥,  
“अस्थिभंगामिघाताभ्यामुपतावनतं तु यत् ॥ ९ ॥  
सोऽस्थिग्रन्थिः

“पदानेस्तु महमाभोषगाहनात् ।

व्यायामाद्वा प्रतातस्य सिराजाल मद्योणितम् ॥ १० ॥  
वायुः संपीड्य संकोच्य यन्नीकृत्य विशेष्य च ।  
निःस्पृष्टं नीरुजं ग्रन्थि कुरते स सिराक्षयः ॥ ११ ॥  
“अरुढे रुढमात्रे वा ग्रणे मर्वरमागिनः ।  
साद्रं वा धंधरहिते गात्रेऽशमाभिहृतेऽयवा ॥ १२ ॥  
यातात्मसतुर्लं दुष्टं मंसोप्य ग्रन्थितं ग्रणम् ।  
कुर्यात्सदाहः कङ्कमान् यणग्रन्थिरयं स्मृतः ॥ १३ ॥”  
ग्रन्थीनां साध्यत्वादि—

साध्या दोषाद्यमेदोज्ञा न तु स्थूलपराध्वजाः ।

१ देहक्षयवृद्धिभ्यां क्षयोदयो यस्य सं-देहवृद्धौ ग्रन्थिवृद्धिदेहक्षयेग्रन्थिभय  
दत्यर्थः । २ पदानेः पदस्थानगमनशीलस्य । प्रतान्तस्य ग्लानियुक्तस्य ।

मर्मकंठोदरस्थाश्र

अर्बुदनिर्देशः—

महत्तु ग्रन्थितोर्बुदम् ॥ १४ ॥

तल्लक्षणं च मेदोन्तः पोढा दोषादिभिस्तु तत् ।

प्रायो मेदःकफाद्वत्वात्स्थिरत्वाच्च न पच्यते ॥ १५ ॥

शोणितार्बुदलक्षणम्—

सिरास्थं शोणित दोषः संकोच्यतः प्रपीड्य च ।

पाचयेत् तदानद्धं सालावं मासपिडितम् ॥ १६ ॥

मासाकुरैश्चितं याति वृद्धिं चाशु स्रवेत्ततः ।

अजस्रं दुष्टरुधिरं भूरि तच्छोणितार्बुदम् ॥ १७ ॥

साध्यासाध्यविचारः—

तेष्वसङ्गमांसजे वज्ये चरवार्यन्यानि साधयेत् ।

श्लीपद (पीलपाँत्र) लक्षणम्—

प्रस्थिता वंशणोर्वादिमधःकार्यं कफोत्पन्नाः ॥ १८ ॥

दोषा मांसास्रगाः पादो कालेनाश्रित्य कुर्वते ।

दानै-शनैर्घर्षं शोफं श्लीपदं तत्प्रपद्यते ॥ १९ ॥

“परिपीटयुतं गृष्णमनिमित्तदज खरम् ।

इदं च वातात्

पित्ताशु पीतं दाहज्वरान्वितम् ॥ २० ॥

कफाद्गुहं स्निग्धमरक् चितं मांसाकुरैर्बृंहत् ।

असाध्यता—

तत्पजेद्वत्परातोतं मुमहृगुपरिस्तुति ॥ २१ ॥

१ ग्रन्थितोर्बुदमेतदुर्बुदम् । तल्लक्षणं च मेदोन्तः पोढा—तस्यार्बुदस्य लक्षणं दोषैर्ग्रीणि रक्तमागमंशोभिर्ग्रीणि—इति षट् प्रकारम् । २ चरवारि-मृषक् दोषजानि मेदोत्राणि चेति । ३ परिलोम्स्वाभेदः ।

पाण्यादावपिश्लीषवोत्पत्तिः—

पाणिनामोष्ठरुणेषु बद्धंस्तेके तु पादवत् ।

शरीरपदं जायते तच्च देहोऽनूपे भृशं<sup>१</sup>भृशम् ॥ २२ ॥

गण्डमालापची (कण्ठमाला) समुत्पत्तिः—

मेदस्थाः कंठमन्यासाग्दावशणगा मलाः ।

सवर्णान् कठिणान् स्निग्धान् चार्ताकामलकाकृतीन् ॥ २३ ॥

वगाढान् बहून्<sup>२</sup> गंडाश्चिरपाकाश्च कुर्वते ।

पच्यतेऽल्परुजस्त्वन्ये स्ववंत्यन्यैः<sup>३</sup>तिरुद्धराः ॥ २४ ॥

नश्यत्यन्ते भवंत्यन्ये दीर्घकालानुवर्धनः ।

गंडमालापची चेय दूर्वेव क्षयवृद्धिभाक् ॥ २५ ॥

असाध्यता—

तां त्यजेत्सज्वरच्छदिपाश्वरक्वामपीनमाम् ।

नाडीत्रय ( नासूर ) निश्चानम्—

अभेदात्पक्ववक्षोपज्म्य घर्णे चापध्यसेविन. ॥ २६ ॥

अनुप्रविश्य मामादीन् दूर पूर्णाऽभिभावति ।

गतिः सा दूरगमनाघ्राष्टी नाडीव मंसते<sup>४</sup> ॥ २७ ॥

<sup>५</sup>नाड्यंकानुष्ठुरन्येषा संवानेकगतिर्गतिः ।

सा दीर्घः पृथगेरुस्थैः सत्येष्टुश्च पंचमी ॥ २८ ॥

घातात्सहस्रमूदममूर्त्वी विवर्णा केनिलोद्गमा ।

सवत्यभ्यधिकं रानी,

वित्तात्तुङ्गवरदाहहन् ॥ २९ ॥

१ भृशमतिभयेन । २ गण्डः—गृह्णतिटिका ।

३ सादूरगमनात्गतिः, नाडीव संश्रुतेर्नाडीत्युच्यते । अन्येषां तु तन्महता  
नतेएका नाडी अनुष्ठुः—श्रुतिना नाडीत्युच्यते । सैननाडी अनेवगतिर्गतिरित्युच्यते—  
इत्यर्थः ।

पीतोष्णपूतिपूषाग्निदया चाऽतिनिषिञ्चति ।

“यनविच्छिन्नमसाया कङ्कला कञ्जना कफान् ।

निनिषाज्म्यधिरवनेश”

सर्वैः मर्वाहृति रयज्ञे ॥ ३० ॥

शल्यजानाडी—

अंतःस्पर्शं घस्यमनाहतं तु

करोति नाडी बह्वे च माऽस्य ।

येनानुविद्धं तनुमल्पमुष्णं

माग्नं च पूर्णं महर्जं च दिव्यम्” ॥ ३१ ॥

## त्रिंशोऽध्यायः ।

अथातो ग्रन्थ्ययुर्दरलीपदापचीनाडीप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

अपक्वग्रन्थिपुशोफवत् क्रिया—

“ग्रन्थिधामेषु कर्तव्या यथास्थं शोफवत् क्रिया ।

शुद्धिकामस्य स्नेहनादि—

बृहतीचित्रकन्याघ्नीकणासिद्धेन मर्दिषा ॥ १ ॥

स्नेहयेन्नुद्धिकामं च तीक्ष्णैः शुद्धस्य लेपनम् ।

संस्तेष बह्वो ग्रन्थि विमृष्टीयात् पुनः पुनः ॥ २ ॥

एष वाते विशेषेण, क्रमः पित्तास्रजे पुनः ।

जलौकमो हिमं मर्नं, कफजे वातिकौ विधिः ॥ ३ ॥

## अपक्वग्रन्थेश्छेदनम्—

तथाप्यपक्वं छित्वैतं स्थिते रक्तोऽग्निना दहेत् ।  
साध्वशेषं सरोषो हि पुनराप्यायते ध्रुवम्, ॥ ४ ॥  
मांसग्रणोद्भवौ ग्रंथौ पाटयेदवमेव च ।

## मेदोजग्रन्थिधि कस्मा—

कार्यं मेदोभवेऽप्येतत्तमैः फालादिभिश्च तम् ॥ ५ ॥  
प्रमृद्यात्तिलदिग्धेन छन्नं द्विगुणवासमा ।  
घस्त्रेण पाटयित्वा वा दहेन्मेदमि मूढम्, ॥ ६ ॥  
मिश्राग्रं धौ नवे पेषं तैलं माह्वर तथा ।  
उपनाहोनिलहरैर्वस्तिकर्म सिराम्यधः ॥ ७ ॥  
अत्रुधि ग्रंथिबलं कुर्याद् यथास्व मुनरा हितम् ।

## श्लोपद् चिकित्सा—

श्लोपदेऽनिलजे विध्येत् क्षिप्यस्विन्नोऽनाहिने ॥ ८ ॥  
सिरामुपरि गुल्फस्य मृगं गुले, पाययेच्च तम् ।  
माममेरुदजं तैलं गामूत्रेण समन्वितम् ॥ ९ ॥  
जीर्णे जीर्णाग्रमभ्रीयाच्छुषोभृतपयोन्वितम् ।  
श्रृङ्गतं वा पित्तदेवमशातावग्निना दहेत् ॥ १० ॥  
गुल्फस्थाघः सिरामोक्षः,

वैस्ते सर्वं च पित्तत्रित् ।

## कफजश्लोपद् चिकित्सा—

सिरामं गुष्ठके विद्ध्वा कफत्रे शालयेद्यवान् ॥ ११ ॥  
सशीदाणि कपायाणि वर्धमानास्तयामपाः ।  
लिपेत्सर्पवार्ताक्रीमून्नाम्या धान्यमाथवा ॥ १२ ॥

१ तं मेदोभवं प्रन्वि तिलकलादिग्धेन द्विगुणवासमा छन्नं पाटयित्वा तमैः  
फालादिभिः प्रमृद्यात् । अथवा घस्त्रेण पाटयित्वा मेदमि वि.शेषमुद्धृते मति  
अग्निना दहेत् ।

## अपची चिकित्सा—

ऊर्ध्वाच.द्योधनं पेयमनघ्यां माधितं धृतम् ।  
 दंतीद्रवंतीत्रिवृत्ताजालिनीदेवदालिभिः ॥ १२ ॥  
 शौलयेत्कफमेदोर्न घूमगंहूपनावनम् ।  
 मिरयाभहरेद्रक्तं पिबेन्मूत्रेण तार्क्ष्यजम्<sup>१</sup> ॥ १४ ॥

## आमग्रन्थीनां लेपनादि—

ग्रंथीनपक्वानालिपेन्नाकुलीपटुनापरः<sup>२</sup> ।  
 स्विन्नान् लवणपोटभ्या कल्लिाननुमर्दयेत् ॥ १५ ॥  
 क्षमीमूलकशिग्रूणां बीजैः मयवमर्पणैः ।  
 लेपः पिष्टोम्लतत्रेण गधिगंडविलापनः ॥ १६ ॥

## पाकोन्मुखग्रन्थीनां जयप्रकारः—

पाकोन्मुखान् लुतावस्थ पित्तश्लेष्महरैर्जयेत् ।  
 अपक्वानेव खोदृत्य क्षाराग्निम्यामुपाचरेत् ॥ १७ ॥

## गण्डमाला चिकित्सा—

क्षुण्णानि निवपन्नाणि किलत्रैर्भस्त्रातकैः मह ।  
 शरावसंपुटे दग्ध्वा मार्धं मिद्वार्धकैः मर्मेः ॥ १ ॥  
 एतच्छागांदुना पिष्ट गण्डमालाप्रलेपनम् ।  
<sup>३</sup>काकादनीलागलिकानहिकोत्तुडिकीफलैः ।  
 जीमूतबीजकर्कोटीविशालावृत्तवेधनैः ॥ १८ ॥  
 पाठान्वितैः पलाषोर्नीवैषवर्पगुटैः पचेत् ।  
 प्रस्थं करजर्तलस्य त्रिगुंडीस्वरसादके ॥ १९ ॥  
 अनेन माला गंडानां चिरजा पूयवाहिनी ।  
 तिथ्यस्यमाध्यवत्पाऽपि पानान्मज्जननावनैः ॥ २० ॥

१ तार्क्ष्यजं रमाञ्जनम् । २ नाकुलो—राक्षाभेदः । ३ काकादनी—गुञ्जा  
 न्योतिष्मती च । नहिवा—गुणनामा । उत्तुडिह्री—कावतिका ।

## अपचोप्रणुत्तैलम्—

तैलं लांगलिकीकंदवत्कपादे चतुर्गुणे ।

निर्गुंडीम्बरमे पत्रं नस्यात्तरपचोप्रणुत् ॥ २१ ॥

## कुष्ठनाडीव्रणापचीहरं तैलम्—

भद्रश्रीदारुमरिचद्विहरिद्रात्रिवृद्धनैः ।

मनःसिलालनलद्विशालाकरवीरकैः ॥ २२ ॥

गोमूत्रपिष्टैः पलिकैर्विपस्यार्धपनेन च ।

प्राह्मोत्सारकजक्षीरगोशकृद्भममयुतम् ॥ २३ ॥

प्रथं सर्पपतैलस्य मिद्धमाशु व्यपोहति ।

पानाद्यैः शीलितं कुष्ठं दुष्टनाडीव्रणापचीः ॥ २४ ॥

## अपचीहरं तैलम्—

वचाहरीतकीलाक्षाकटुरोहिणिचदनैः ।

तैलं प्रमामितं पीतं ममूलामयची जयेत् ॥ २५ ॥

## नस्यालेषी—

दारपुखोदमथं मूलं पिष्टं तदुलवारिणा ।

नस्यालेषाञ्च दुष्टाक्षरपचीविपत्रतुजित् ॥ २६ ॥

## तैलम्—

मूर्लरत्तगकारव्याः पीनुषष्ठाः महानरात् ।

गरोप्राह्लययष्ट्याह्लयताह्लादीपिचरभिः ॥ २७ ॥

तैलं क्षीरममं मिद्धं नस्येऽर्ज्यगे च पूजितम् ।

गोव्यजाशमुरा दग्धा कटुर्त्तनेन लेपनम् ॥ २८ ॥

पैंगुदेन तु वृष्णाहिविषमो वा स्वयं मृतः ।

## दाहप्रकारः—

इत्यशान्ती गदम्याग्न्यपार्श्वजं पागमाधिनम् ॥ २९ ॥

१ उत्तमकारणी करम्भ. “उत्तमका चागाशरणिश्व । अत्र “उत्तम वारुणी”

इति पाठान्तरम् ।



या वर्तते यानि तैलानि तन्नाडीष्वपि नश्यते ।  
पिष्टं चक्षुफलं श्लेषाश्नाडीमण्डलं परम् ॥ ३७ ॥

नाडीहन्त्रीवृत्तिः—

घोटाफलस्वग्लवणं गलाक्षं  
शुक्लस्य पर्जन्यनितापयश्च ।  
स्तुगर्कदुग्धाम्बित एष कल्को  
वर्तकृतो हंस्याचिरेण नाडीम् ॥ ३८ ॥

कल्पादिगतिनाशकम्—

सामुद्रमोवर्चलमिधुजन्म-  
मुपकृष्टोटाफलवैशमधूमाः ।  
आघातमायत्रिजपल्लवाश्च  
टंकटेर्याविष्य चेतकी च ॥ ३९ ॥  
कल्पोऽम्यगे क्षुण्णं  
वर्त्या चेतुः सैन्यमानेषु ।  
अगतिरिव नश्यति गति-  
क्षपला क्षपलेषु भूतिरिव ॥ ४० ॥



१ चक्षुफलमेरुण्ड फलम् । २ घोष्टा बदरी ।

३ आघातः “आमडा” हि० । वटंकटेरी—दाहहृदिदा । चेतकी हरीतकी  
अगतिरविद्यमानगतिरिव । गतिनाशोन्नयः । क्षपलेषु चक्षुप्रवृत्तिषु नरेषु  
भूतिरिव—वित्तमिव ।

# एकत्रिंशोऽध्यायः ।

रोगविज्ञानम् ।

अथास्तः क्षुद्ररोगविज्ञानं व्याख्यास्यामः ।

“क्षिप्त्वा भवणां ग्रथिता नीरुजा मुद्गसंमिता ।

पिटिका कफवाताभ्यां बालानामजगल्लिका ॥ १ ॥

“यवप्रक्षया यवप्रक्षया<sup>१</sup> ताभ्यां मांसाश्रिता घना ।”

अवक्रारवाल्मीकवृत्तास्नोकपूया घनोद्भताः” ॥ २ ॥

प्रेषयः पंच वा पट्ट्वा कच्छुपी कच्छुपीना ।”

“कर्णस्थोर्ध्वं मर्मताश्च पिटिका कठिनोद्भक् ॥ ३ ॥

दानूवाभा पनसिका,

सोफस्त्वलरजः स्खरः ।

हनुमंघिममुद्गमूतम्या<sup>२</sup> पापाणगर्दभः” ॥ ४ ॥

“शात्मलीकटकाकाराः पिटिकाः मरुतो घनाः ।

मेदोगर्भा मुखे यूना<sup>३</sup> ताभ्यां च मुखदूषिकाः” ॥ ५ ॥

“ते पद्मकटका ज्ञेया यैः पद्ममिव कटर्कः ।

धीयते नीरुजैः श्वेतैः शरीरं कफवातजैः” ॥ ६ ॥

“पित्तं पिटिका वृत्ता पक्कोर्दुर्बलमग्निभा ।

महादाहज्वरकरी विवृता विवृतानना” ॥ ७ ॥

“गात्रेष्वंतश्च यवप्रस्य दाहज्वररुजान्विताः ।

ममूरमायाम्तद्वर्णास्तस्मिन्नाः<sup>४</sup> पिटिका घनाः” ॥ ८ ॥

१ ताभ्यां कफवाताभ्याम् । २-३ नाभ्यां वानककाभ्याम् । पापाणगर्दभः  
( गलमुवा ) । ४ तद्वर्णा ममूरवर्णाः, तस्मिन्ना ममूरिका ।

“ततः कष्टतराः स्फोटा विस्फोटाख्या महारुजाः ।,  
 “या पञ्चकृष्णिकावारा पिटिका पिटिकाचिता ॥ ६ ॥  
 सा विद्धा वातपित्ताभ्यां,,

“ताभ्यामेव च गर्दभी ।

मंडला विपुलोत्पन्ना सरागपिटिकाचिता,, ॥ १० ॥  
 “कक्षेति<sup>१</sup> कक्षामग्नेषु प्रायो देशेषु माऽनिलात् ,,  
 “पित्ताद्भवन्ति पिटिका. मूदमा लाजोपमा घनाः ॥ ११ ॥  
 तादृशी महती त्वेका गंधनामेति कीर्तिता ।,  
 “घर्मस्वेदपरीतेंगे पिटिकाः सरुजो घना ॥ १२ ॥  
 राजिकावर्णमंस्थानप्रमाणा राजिकाह्रयाः ।,  
 “दोषैः पित्तांस्वर्णमंदैर्विगर्पयन् विमर्षवत् ॥ १३ ॥  
 क्षोकोऽपाकस्तनुस्ताम्रो ज्वरहृज्जास्त्रगर्दभः ।”

अग्निरोहिणी—

मार्गः पित्ताख्यनी स्फोटा उवरिणो मामदारणाः ॥ १४ ॥  
 कक्षाभागेषु ज्वर्यं येऽभ्यासाः माऽग्निरोहिणी ।  
 पंचाहात्मसराप्रादा पक्षादा हति जीवितम् ॥ १५ ॥  
 “त्रिलिङ्गा पिटिका वृत्ता जन्पूर्वमिषिबेल्लिका ।”  
 “विद्यारीकंदकठिना विद्यारी कक्षबंधणे ” ॥ १६ ॥

शर्कराद्युदलक्षणम्—

“मेदोऽनिलकर्कश्रयिः स्नावुमामगिराश्रयः ।  
 भिन्नो यमाज्यमध्वामं मवेत्तत्रान्वयोऽनिलः ॥ १७ ॥  
 मांसं विदोष्य प्रयितं शर्करामुपपादयेत् ।  
 दुर्गंधं रश्मिर मृन्मलं नानावर्णं ततो मलाः ॥ १८ ॥

१ ततस्त्वाम्भो मगूरिकाभ्यां । २ ताभ्यां वातपित्ताभ्याम् । ३ कक्षा  
 (पक्षोरी) । ४ राजिकाह्रयाः पीत्यमान्दराप्राः पिटिकाः “अहोरी” इतिलोके ।

ता स्रावयन्ति निचिता विद्यात्तच्छर्करार्जुदम् ।

वल्मीकलक्षणम्—

पाणिपादतले संधौ जम्बूध्वं बोधनीयते ॥ १९ ॥

वल्मीकत्वच्छर्करांश्चिस्तद्वद्वह्मरुभिर्मुखः ।

रुग्दाहकं हृक्लेदाढ्यो वल्मीकोऽमी ममस्तजः ॥ २० ॥

“शर्करोन्मथिते पादे क्षते वा कंटकादिभिः ।

ग्रन्थिः कीलवदुत्सन्नो जायते कदरं (गुरलुल) तु तत्” ॥ २१ ॥

“वेगमधारणाद्वागुरपानोऽशानमंश्रयम् ।

अग्नूकरोति बाह्यांतमार्गमस्य ततः शकृत् ॥ २२ ॥

कृच्छ्राग्निर्गच्छति व्याधिरयं रुद्धगुदो मतः ।”

“कुर्यात्पित्तानिलं पाकं नलमासे सहज्वरम् ॥ २३ ॥

‘विष्यमक्षतरोगं च विद्यादुपनखं च तम् ।”

“वृष्णोऽभिपाताद्गुह्यश्च खरश्च कुनक्षो नलः” ॥ २४ ॥

“दुष्टकर्मसंस्पर्शात्कंठ्वक्लेदाव्विषातराः ।

( पैर का सङ्गना )

अंगुल्योऽलसमित्पाहः”

( तिल )

तिलाभास्तिलकालकान् ॥ २५ ॥

कृष्णानवेदनीस्त्ववस्थान्

( मसा )

“मापांस्तानेव चोपतान् ।”

“मावेभ्यस्तूत्रततरारचर्मकीलान् सितासितान्” ॥ २६ ॥

“तपाविषो जतुमणिः सहजो लोहितस्तु सः ।”

“वृष्णं मितं वा महजं मंडलं त्रिङ्गुलं (रुच्छन) ममम्” ॥ २७ ॥

८५. कृनीलिका लक्षणम्—

“शोकक्रोधादिकुपिताद्वातपित्तान्मुषे तनु ।  
श्यामत्वं मंडलं व्यंशं वक्त्रादन्यथ नीलिका” ॥ २८ ॥  
परुषं परुषस्पर्शं व्यंशं श्यावं च मारुतात् ।  
विताताग्रान्तमानीलं, श्वेतान्तं कंडुमस्कृष्टात् ॥ २९ ॥  
रक्ताद्भक्तितमातृभ्रं शोषं चिमचिमायते ।

प्रसुप्तिलक्षणम्—

वायुनोदीरितः श्वेत्पमा त्वर्षं प्राप्य विशुष्यति ॥ ३० ॥  
ततस्त्वग्जायते पादुः क्रमेण च चिचेनना ।  
अल्पकंडूरधिवनेदा सा प्रसुप्तिः प्रसुप्तिः<sup>१</sup> ॥ ३१ ॥

उत्कांठकोठ (जुरापिच्छी) लक्षणम्—

अक्षय्यावमनोदीर्णापित्तस्लेष्माग्निग्रहे ।  
मंडलाग्न्यतिकड्ढाग्नि रागवति बहूनि च ॥ ३२ ॥  
उत्कोठः सोऽनुबद्धस्तु कोठ इत्यभिधीयते ।  
प्रोक्ताः पट्पिच्छादित्येतं शुद्धरोगा विभागयः ॥ ३३ ॥”

## द्वात्रिंशोऽध्यायः ।

कायचिकित्सा ।

अथाऽतः क्षुद्ररोगप्रतिपेधं व्याख्यास्यामः ।

“विस्त्रावयेज्जलौकोभिरपक्तामजगल्लिकाम् ।,,

“स्वेदयित्वा यवप्रक्षयां (यबारी) विलमाय प्रलेपयेत् ॥ १ ॥

दाहकुष्ठमनोह्रासं,,

इत्यापापाण्यगर्दभात् ।

विधिस्ताश्चाचरेत्पक्वान् अणवत्साजगल्लिकान् ॥ २ ॥

मुखदूषिका ( मुहासा-डोइसा ) चिकित्सा—

“रोध्रकुस्तुबुरवचाप्रलेपो मुखदूषिके ।

वटपल्लवपुक्ता वा नारिकेलोत्पल्लवः ॥ ३ ॥

अर्शो वमन नस्यं ललाटे च सिरावधः ।

“निबालुवांतो निबालुगाधितं पद्मकंदके ॥ ४ ॥

पिपेत्सीद्रान्वितं सर्पिर्निर्धारवधलेपनम् ।,,

विशृतादीस्तु जालांतांश्चिकित्सेत्सेरिधेल्लिकान् ।

पित्तवीमर्षवत्तद्वत् प्रत्यास्थायाग्निरोहिणीम् ॥ ५ ॥

“विलंघन रक्तविमोक्षणं च

विस्क्षणं कायविशोधनं च ।

धार्त्राप्रयोगान् शिशिरप्रदेहान्

कुर्यात्तदा जालकगर्दभस्य ॥ ६ ॥,,

“विदारिको हूने रक्ते श्रेष्ठाध्विवदाचरेत् ।,,

“भेदोर्मुदक्रियां कुर्यान्मृगरा शर्कराबुद्धिं ॥ ७ ॥,,

"प्रवृद्धं सुबहुच्छिद्रं सशोफं भर्माणि स्थितम् ।  
वल्मीकं हस्तपादे च वर्जयेत्,,  
इतरस्तुनः ॥ ८ ॥

शुद्धस्यासौ हृते लिपेत् सपट्वारव्यतामृतैः ।  
श्यामाकुलत्तिकामूलदंतीपल्लमक्तुभिः,, ॥ ९ ॥  
"पक्वे तु दुष्टमांसानि गतीः सर्वाश्च क्षोषयेत् ।  
दास्त्रेण सम्यगनु च क्षारेण ज्वलनेन वा,, ॥ १० ॥  
"दास्त्रेणोत्कुर्य निःशोषं स्नेहेन कद्दरं दहेत् ।,  
"निहृदमणिवत्कार्यं रुद्धपायोश्चिकित्सितम्,, ॥ ११ ॥  
"क्षिप्यं शुद्धपा जितोष्माणं माधयेच्छस्त्रकर्मणा ।  
दुष्टं कुनलमप्येषं,,

"वरणाचलसे पुनः ॥ १२ ॥

धात्र्याम्लसिक्ती कासीमपटोलीरोचनातिलैः ।  
सनिवपत्रैरालिपेद्,,

"दहेत् तु तिलकालकान्" ॥ १३ ॥

"मर्पारिच सूर्यकातेन क्षारेण यदि वाऽग्निना ।  
"तद्वदुत्कुर्य दास्त्रेण चर्मकीलजत्वम्बुजी,, ॥ १४ ॥  
"क्लोत्तुमादित्रये कुर्यादधासन्नं मिराव्ययम् ।  
लेपयेत्क्षीरपिष्टं क्षीरिवृक्षत्वगंकुरैः ॥ १५ ॥

व्यङ्ग ( माँई ) चिकित्सा—

"व्यंगेषु चार्जुनत्वग्वा मज्जिष्ठा वा समाश्रिता ।  
लेपः मनवनीता वा श्वेताश्वत्थुरजा मर्पी,, ॥ १६ ॥  
रक्तचंदनमज्जिष्ठाकुष्ठरोधप्रियंगवः ।  
वटोक्षुरा मगूराश्च व्यङ्गघ्ना मुलकांतिदाः ॥ १७ ॥  
द्वे जीरके कृष्णतिलाः सर्पपाः पयसा गृह ।  
पिष्टाः कुर्वन्ति वस्त्रेद्रुमपास्तव्यङ्गलाघ्नम् ॥ १८ ॥

१ इतरत् प्रवृद्धादिगुणरहितं वल्मीकम् ।

क्षीरपिष्टा घृतक्षीद्रयुक्ता वा भृष्टनिस्तुपाः ।  
 ममूराः क्षीरपिष्टा वा क्षीरणाः शाल्मलिकटकाः ॥ १६ ॥  
 समुद्रः क्रीलमज्जा वा शगासुक्क्षीद्रकल्कितः ।  
 सप्ताहं मातुलुगस्यं कुष्ठं वा मधुनान्वितम् ॥ २० ॥  
 पिष्टा वा छागपयसा मक्षीद्रा मोक्षली जटा ।  
 गोरस्थि मुशलीमूलयुक्ता वा साज्यमाशिकम् ॥ २१ ॥  
 जम्बाम्रपल्लवा मस्तु हृदि द्वे द्वे नवो गुह्यः ।  
 लेपः सवणेरुः पिष्टं स्वरसेन च त्रिदुकम् ॥ २२ ॥  
 उत्पलपत्रं तगरं प्रियगुक्कालीमकं बदरमज्जा ।  
 इदमुद्धतं नमास्यं करोति क्षतपत्रमकणायम् ॥ २३ ॥  
 एभिरेवोपधैः पिष्टं मुंस्ताभ्यंगाय माधयेत् ।  
 यथादोषतुंकान् स्नेहान् मधुककायमंयुतैः ॥ २४ ॥

### अभ्यङ्गः—

यवान् मर्जरस्य रोध्रमुक्षीरं चन्दनं मधु ।  
 घृतं गुह्यं च गोमूत्रे पथेदादविलेपनात् ॥ २५ ॥  
 तदभ्यङ्गा स्रहंस्थासु नीलिकाभ्यगदूपिकान् ।  
 मुखं करोति पद्मार्भं पादौ पद्मदलोपमी ॥ २६ ॥

### नस्यम्—

कुङ्कुमोक्षीरकालीयलाक्षापिष्टाह्वर्चनम् ।  
 न्यग्रोधपादांस्तृणान् पद्मकं पद्मकेसरम् ॥ २७ ॥  
 सनीलोत्पलमंजिष्ठं पालिक सलिलाढके ।  
 पक्त्वा पादावरोधेण तेन पिष्टं च कार्ष्णिः ॥ २८ ॥  
 लासापतंगमजिष्टायष्टीमधुकुङ्कुमैः ।  
 अजाक्षीरद्विगुणितं तैलस्य कुडव पचेन् ॥ २९ ॥  
 नीलिकापलितभ्यङ्गवलीतिलकदूपिकान् ।  
 हतिं तल्लस्यसम्पत्नं मुलोपचयवर्णकम् ॥ ३० ॥



## कान्तिकरःस्नेहः

मंजिष्ठाशबरोद्भवस्तुवरिकालाशाहृदिद्राद्वयं  
 नेपालीहरितालकुङ्कुमगदागोरोचनागंरिकम् ।  
 पत्रं पाण्डु बटस्य चदनगुणं कालीयकं पारदं  
 पतंगं कनकत्वचं कमलजं बीजं तथा केसरम् ॥ ३१ ॥

सिक्चं तुल्यं पद्मकाष्ठो वसाज्यं  
 मञ्जा दीरं क्षीरिबुशाबु चान्नी ।  
 सिद्धं सिद्धं र्थगनीत्यादिनातो  
 वक्त्रे छायार्मिदबी चाशु घृतं ॥ ३२ ॥

‘‘मार्कवस्वरमक्षीरतोयपिष्टानि नासने ।  
 प्रसुप्ती वातकुष्ठोक्तं कुर्याद्दिहं च वह्निना ॥  
 डाकोडे कफपित्तोक्तं, षोडे सर्वं च कौष्ठिकम्’’ ॥ ३३ ॥

## त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ।

प्रसूतितन्त्रम्—

अथाऽतो गुह्यरोगविज्ञानं व्याख्यामः ।

उपदर्शादीनां निदानम्—

‘‘स्त्रीव्यवायनिवृत्तस्य मह्मा भजतोऽथवा<sup>१</sup> ।  
 दोषाध्युपित्तमंकीर्णमलिनानुरजःपथाम् ॥ १ ॥

१ दावरोद्भवो लोघम् । तुवरिका स्फटिका । नेपाली मन्.शिला । गदः  
 कुष्ठम् । तैदवी छाया चान्द्रमनी चान्तिः । २ मार्कवो भृङ्गराजः । ३ मह्माऽ-  
 वम्मान् स्त्रीमैथुनं भजतः । दोषैरध्युपित्तमंकीर्णो मलिनोऽग्न्युद्भूतो रजःपथ्या  
 योनिर्पथ्या.माताम् ।

अन्ययोनिमनिच्छ्वतीमगम्यां नवसूतिकाम् ।  
 दूषितं स्पृशतस्तोयं रतातेष्वपि नैव वा ॥ २ ॥  
 विवर्धयिषया तीक्ष्णान् प्रलेपादीन् प्रयच्छतः ।  
 मुष्टिदन्तनखोत्पीडाविषवच्छुक्रपातनैः ॥ ३ ॥  
 वेगनिग्रहदीर्घातिखरस्पर्शविषट्वनैः ।  
 दोषा दुष्टा गता गुह्यं त्रयोविधतिमामयान् ॥ ४ ॥  
 जनयंत्युपदंशादीम्

### उपदंशलक्षणानि—

उपदंशोत्र पंचधा ।

पृथग्दोषैः सरुधिरैः समस्तैश्च,  
 अत्र भास्तात् ॥ ५ ॥

मेढ्रदोषे रजश्रिणाः स्तम्भस्त्वक्परिपोटनम्<sup>१</sup> ।  
 "पक्वोर्दुर्बरसंकाशः पित्तेन श्वययुज्वरः ॥ ६ ॥"  
 श्लेष्मणा कठिनः श्लिष्यः कंहुमान् क्षीतलो गुदः"  
 "शोफितेनासितस्फोटसंभवोऽसामुतिज्वरः ॥ ७ ॥"  
 "सर्वजे सर्वलिगार्षं श्वययुर्मुष्कयोरपि ।  
 तीव्रा रगाद्युपचन दरणं वृमिसंभवः, ॥ ८ ॥

### उपदंशस्यसाध्यत्वादि—

याप्यो रक्तोद्भवस्तेषां मृत्यवे संनिपातजः ।

### मांसकीलकलक्षणम्—

जायते कुपितदोषैर्मुह्यासृक्पिशिताश्रयैः ॥ ९ ॥  
 अंतर्बहिर्वा मेढ्रस्य कहुला मांसकीलकाः ।  
 पिच्छिलास्रवा योनौ तद्वच्च छत्रसंनिभाः ॥ १० ॥  
 तेशां स्युःशया ध्नति मेढ्रपुंस्त्वभगार्तवम् ।

१ अन्ययोनि महिषी घोटकयादियोनिम् । रतातेष्वपि जलं नैव वा स्पृशतः । २ त्वक्परिपोटनं त्वचो विदरणम् ।

“गुह्यस्य बहिर्तर्वा पिटिकाः कफरक्तजाः ॥ ११ ॥

सर्पपामानमस्थाना घनाः सर्पपिकाः स्मृताः ।,,

“पिटिका बहवो दीर्घा दीर्घा मध्यतश्च याः ॥ १२ ॥

सोऽयमर्थः कफासृग्म्यां वेदनारोमहर्षवान् ।,,

“कुंभीका रक्तपित्तीत्या जां ववास्तिनिमाऽशुजाः ॥ १३ ॥

“अलज्जी भेदवद्विषाद् ।,

“उत्तमां रक्तपित्तजाम् ।

पिटिकां मापमुदगाभां ।,

“पिटिका पिटिरुचिता ॥ १४ ॥

कर्णिका पुष्परस्येव जेषा पुष्करिकेति या ।,,

“पाणिभ्या भृशमभ्यूडे<sup>१</sup> संप्यूडपिटिका भवेत् ॥ १५ ॥

“मृदितं मृदितं यस्त्वसरम्भं वातकोपत ।,,

“विषमा कठिना भुषा वायुनाऽष्टीलिका स्मृताः ॥ १६ ॥

### निवृत्तलक्षणम्—

विमर्दनादिदुष्टेन वायुना चर्म भेदजम् ।

निवर्तते मरुदाहं क्वचिम्पाकं च गच्छति ॥ १७ ॥

पिडितं प्रथितं चर्म<sup>२</sup> तत्प्रलवमधोमणैः ।

निवृत्तमन्तं गलक कटूवाठिभ्यवत् तत् ॥ १८ ॥

“दुष्टं स्फुटितं चर्म निर्दिष्टमधपाटिका ।

“वातेन दूषितं चर्म मणी मत्तं रुग्णदि चेत् ॥ १९ ॥

ओतो मूर्धं ततोम्येति मंदघारमवेदनम् ।

मणेरिवाशरोधश्च स निरुद्धमधिर्गदः ॥ २० ॥,,

“लिगं श्वरिवापूर्णं ग्रन्थिताल्यं कफोद्भवम् ।”

“भूवदूषितरक्तोत्पा स्पर्शहानिस्तदाह्वया” ॥ २१ ॥

१ भृशसंप्यूडे अत्रेति धयेन मर्दिते । यस्त्वसरम्भं यस्त्रेण दोषितम् । २ मणि निङ्गाप्रभागः ।

“छिद्रैरगुमुत्स्रियन्तु मेहनं सर्वतश्चित्तम् ।”  
 वातशोणितकोपेन तं विद्याच्छतपोनकम् ॥ २२ ॥  
 “पित्तासृग्म्यां त्वचः पाकस्त्वक्पाको ज्वरदाहवान् ।”  
 “मोत्स्यकः सर्वजः सर्ववेदनो मोक्षशासनः” ॥ २३ ॥  
 “मरामैरसितैः स्फोटैः पिटिकाभिश्च पीडितम् ।  
 मेहनं वेदनाश्चोग्रास्तं विद्यादसृग्वुदम् ॥ २४ ॥  
 मांसाशुद्धं प्रागुदितं विद्वद्भिश्च त्रिदोपजम् ।  
 “कृष्णानि भूत्वा मांसानि विधीयन्ते समन्ततः ॥ २५ ॥  
 पक्वानि मंनिपातेन तान् विद्यात्तिलकालकान् ।”

साध्यत्वादि—

मामोन्यमवुदं पाकं विद्वद्भि तिलकालकान् ॥ २६ ॥  
 चतुरो वर्जयेदेषामेयाश्लीघ्रमुपाचरेत् ।

योनिव्यापद् :—

विद्यतिव्यापिदो योनेर्जयिते दुष्टभोजनात् ॥ २७ ॥

वातजायोनिव्यापत्—

विषमस्यागदायनमृशमैश्वरसेवर्नः ।  
 दुष्टार्तवादऋष्यर्षोर्जदोपेण देवतः ॥ २८ ॥  
 योनी ऋद्धोऽनिलः कुर्याद्भुक्तादायाममुत्तमाः ।  
 पिपीलिकासृतिमिव स्तंभं कर्कशता स्वनम् ॥ २९ ॥  
 केनितारुणकृष्णाल्पतनुस्थार्तवसृतिम् ।  
 संसं घंशणपाञ्चदौ व्यथां गुल्मं क्रमेण च ॥ ३० ॥  
 सास्ताश्च स्वान्गदान्ध्यापद्वातिकी नाम मा स्मृता ।  
 “सैवातिचरणा शोफमं गुत्तातिव्यवायतः” ॥ ३१ ॥  
 “मैश्वरादतिवातायाः पृष्ठजंघोरुर्वंशणम् ।  
 रज्ज्वांद्रूपपेयोनि वायुः प्राक्चरयेति सा” ॥ ३२ ॥

"वेगोदावर्तनाद्योनि प्रपीडयति मारुतः ।  
सा केनिलं रजः कृच्छ्रादुदावृत्तं विमुञ्चति ॥ ३३ ॥  
इयं व्यापदुदावृत्ता"

जातघ्नी तु यदानिलः ।  
जातं जातं 'सुतं हति रीक्यादुदुष्टार्तबोद्भवम्' ॥ ३४ ॥

**अन्तर्मुखीयोनिः—**

अत्पाशिताया विपमं स्थितायाः मुरते मरुत् ।  
अग्नेनोत्पीडितो योनेः स्थितः स्रोतसि वक्रयेत् ॥ ३५ ॥  
सास्थिमांसं मुखं तोत्ररजमंतमुत्सीति सा ।  
"वातलाहारसेविन्या जनन्या कुपितीजनिलः ॥ ३६ ॥

स्त्रियो योनिमण्डूदारा कुर्यात्स्त्रीमुखीति सा ।  
"वेगरोषाहतौ वायुर्दुष्टौ विष्णुव्रतप्रहम् ॥ ३७ ॥  
करोति योनेः शोषं च शुष्कारूपा सातिवेदना ।  
"पडहात्मतरावादा दारुं गर्भाध्यात्मरुत् ॥ ३८ ॥  
वमेत्मरुद् नीरुजो वा यस्याः सा घामिनी मता ।  
"योनी वातोपतताया स्वांगमे बीजदोषतः ॥ ३९ ॥  
नृद्वेषिष्यस्तनी च स्यात्पदसंज्ञाऽनुपक्रमा ।"

**महायोनिः—**

दुष्टो विष्टम्य योन्यास्यं गर्भकोष्ठं च मारुतः ॥ ४० ॥  
कुरुते विवृतां सस्ता वातिकोमिव दुःखिताम् ।  
उत्तममामा तामाहुर्महायोनि महारुजाम् ॥ ४१ ॥

**पित्तजायोनिन्यापत्—**

यथास्वेद्वर्षणंदुष्टं पित्तं योनिमुपाश्रितम् ।  
परोति दाहपाकोपापूतिगंधजराश्रितम् । ४२ ॥

भृशोष्णभूरिबुणपनीलपीतामितातवात् ।

सा व्यापारैत्तिकी”

“रक्तबोन्ध्याख्यासुगतिमुतेः” ॥ ४३ ॥

कफजायोनिव्यापन्—

कफोभिष्यंदिभिः क्रुद्धः कुर्याद्योनिमवेदनाम् ।

शीतला कङ्कला पाण्डुपिच्छिला तडिघन्युतिम् ॥ ४४ ॥

सा व्यापञ्छैत्तिकी”

“वातपित्ताम्ना क्षीयते रजः ।

सदाहकार्यवर्ण्यं यस्यां सा लोहितचरा” ॥ ४५ ॥

परिप्लुता—

पित्तलाया नृसंवासे क्षवपूद्गारधारणात् ।

पित्तयुक्तेन मृत्वा योनिर्मवति दूषिता ॥ ४६ ॥

धूना स्पर्शमहा मातिर्नीलपीतास्त्रवाहिनी ।

वस्तिकुक्षिगुल्फवातोमारारोचककारिणी ॥ ४७ ॥

‘ओषिधंक्षणास्वतोदग्बरदृत्वा परिप्लुता ।

“वातश्लेष्माभयव्यासा श्वेतपिच्छिलवाहिनां ॥ ४८ ॥

उपप्लुता स्मृता योनिः”

विप्लुताप्या त्रधात्रनात् ।

संजातजंतुः कङ्कला कङ्वा चातिरतिप्रिया” ॥ ४९ ॥

“अकालवाहनाद्वायुः श्वेत्परक्तविमूर्छितः ।

कर्णिका जनयेद्योनी रजोमार्गनिगोषिनीम् ॥ ५० ॥

सा कर्षिनी

त्रिभिर्दोषैर्घोनिगर्भाजयाश्रितः ।

ययास्वोपद्रवकरैर्व्यापत्वा संनिपात्तिकी ॥ ५१ ॥

१ अकाले प्रसवकालिकगूलाभावरूपेऽकाले वाहनात् प्रवाहणात् ।

गर्भोमङ्गले हेतु :--

इति योनिगदा नारी यैः शङ्कं न प्रतीच्छति<sup>१</sup> ।

ततो गर्भं न गृह्णाति रोगाश्चाप्नोति दाहणान् ॥

असुन्दराशौमुत्पादीनाबाभाश्चोन्मिलादिभिः<sup>२</sup> ॥ ५२ ॥

११

## चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ।

प्रसूतिसम्प्रम्--

अथाऽतो गुह्यरोगप्रतिपेधं व्याख्यास्यामः ।

उपदंशचिकित्सा--

“मिदृमध्ये सिरा विध्येदुपदंशे मवात्पिने ।

शीतो बुर्यात् त्रिया दृष्टि विरेकेण यिनेपनः ॥ १ ॥

तिलकम्बघृतक्षौद्रैर्लेपः पक्वे तु पाटिने ।

क्षालनेऽप्याथ :--

जम्बामुमनोनीपक्वेत<sup>१</sup> काञ्चोजिकाकुरान् ॥ २ ॥

घल्लकीषदरीबिल्वपलासातिनिशोद्भवाः ।

त्वचः क्षौरिद्रुमाणा च त्रिफला च जले पक्वे<sup>२</sup> ॥ ३ ॥

म मवायः शालर्ज तेन<sup>३</sup> पक्वं तैलं च रोपणम् ।

लेप :--

तुत्थनीरिक्लोघ्नलामनोह्वानरमात्रनः ॥ ४ ॥

हरेणुपुष्पकामीगमीराष्ट्रौत्तरणोत्तमः ।

लेपः क्षौद्रयुतः सूः मरुतर्दनप्रणापहः ॥ ५ ॥

१ प्रतीच्छति-गृह्णाति । २ काम्बोजिका-मापराणो । ३ तेन क्वाथेन ।

कपाले त्रिफला दग्धा मधुतो रोषणं परम् ।  
 गामान्धं गायनमिदं प्रतिरोषं तु शोफवन् ॥ ६ ॥  
 न च याति मया पानं प्रपतेत स्याद् भृशम् ।  
 पक्वेः स्नायुमिरामांसैः प्रायो नश्यति हि ध्वजः ॥ ७ ॥  
 “अशंसां छिन्नदग्धानां क्रिया कार्योपदेशवत् ।”  
 “सर्पपा लिखिताः मूकमैः कपायैरवचूर्णयेत् ॥ ८ ॥  
 तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेद् अणरोपणम् ।,  
 “क्रियेयमभ्यञ्जयेत् रक्तं स्नायं तथोभयोः,, ॥ ९ ॥  
 “कुंभीकायां हरेदक्तं पकायां शोभिने श्ले ॥,  
 त्रिदुःकान्निफलारोघ्रैर्लेपस्तेलं च रोषणम् ॥ १० ॥  
 “अलज्वां स्नुरक्तायामयमेव” क्रियाक्रमः ।,  
 “उत्तमाश्व्यां सु.पिटिका संटिक्तं बहिस्तोदूषणम् ॥ ११ ॥  
 कल्कश्चूर्णः कपायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ।  
 “क्रमः पित्तविमर्षोक्तः पुष्करम्पूदयोर्हितः,, ॥ १२ ॥  
 “श्वक्पाके स्पर्शहान्मो च सेचयेद्,  
 “शृद्धितं पुनः ।  
 बलातैलेन कोष्णेन मधुरंभोपनाहयेत्,, ॥ १३ ॥  
 “अष्टोलिकां हूते रक्ते श्लेष्मग्रंथिवदाचरेत् ।,

### निवृत्तचिकित्सा—

निवृत्तं सर्पिपाऽभ्यञ्ज्य स्वेदयित्वापनाहयेत् ॥ १४ ॥  
 त्रिरात्रं पंचरात्रं वा सुस्निग्धैः क्षात्वणादिभिः ।  
 स्वेदयित्वा ततो भूयः स्निग्धं चर्म समानयेत् ॥ १५ ॥  
 मणिं प्रपीठ्य दानकैः प्रविष्टे चोरनाहनम् ।  
 मणौ पुनः पुनः, स्निग्धं भोजनं चाऽथ दास्यते” ॥ १६ ॥

१ ध्वजःशिशः । २ कपायैः कपायद्रव्यैः पूर्वोक्तैर्जम्बाभ्रादिभिः । ३ उमयोः  
 सर्पपावमन्ययोः । ४ अयमेव कुंभीकावत् । ५ समानयेत्-प्रापयेत् ।



“अयमेव प्रयोज्यः स्याद्वपाट्यामपि क्रमः ।

**निगृद्धमाणि चिकित्सा—**

नाडीमुभयतो द्वारं निच्छेदं जतुना सूताम् ॥ १७ ॥

स्नेहाक्ता स्रोतमिन्वस्य सिचेत्स्नेहेऽश्रुतापहेः ।

अपहाश्र्यहात्स्फूलवरां न्यस्य नाडी विवर्धयेत् ॥ १८ ॥

स्रोतोद्वारमभिद्धौ तु विद्वान् द्यस्त्रेण पाटयेत् ।

सेवनी वर्जयन् युज्यात्नद्यःसतविधिं ततः,, ॥ १९ ॥

“अ” धितं स्वेदितं नाड्यां क्षिण्योष्णं रूपाहयेत् १,,

“लिपेत्क्यायैः सक्षोद्रेलिलित्वा अतपोमकम्,, ॥ २० ॥

“रक्तविद्रधिर्वत्कार्या चिकित्सा शोषिताशु”दे १,,

“व्रणोपचारं सर्वेषु यथावत्सर्वं प्रयोजयेत् ॥ २१ ॥,,

**योनिव्यापत्सुवातजघः कार्यः—**

योनिव्यापत्सु भूमिर्द्धं वास्यते कर्म वातजिह्व ।

स्नेहनस्वेदवस्त्रादि वातजामु विशेषतः ॥ २२ ॥

**तत्र हेतुः—**

नहि वाताहते योनिर्वनिताना प्रदुष्यति ।

अतो जित्वा तमन्यस्य कुर्यादोपस्य भेषजम् ॥ २३ ॥

**यत्नातैलपानादि—**

पापयेत दलार्तलं मिश्रकं मुकुमारकम् ।

क्षिण्यस्विन्नां तथा योनिं दुःस्थितां स्थापयेत्समाम् ॥ २४ ॥

पाणिनाम्रमयेज्जिह्वा संवृतां व्यधयेत्पुनः ।

प्रवेशयेज्जिह्वतां च विष्टतां परिवर्तयेत् ॥ २५ ॥

स्थानापवृत्ता योनिर्द्धं द्यत्यभूता स्त्रियो भवेत् ।

वर्मभिर्वगनार्द्धं यदुभयोर्योजयेत्त्रयम् ॥ २६ ॥

सर्वतः सुविशुद्धायाः शेषं कर्म विधीयते ।  
वस्त्यभ्यंगपरीषेकप्रलेपपिबुधारणम् ॥ २७ ॥

योनिवातरोगघ्नं घृतम्—

काश्मर्यात्रिफलाद्राक्षकासमर्दनिशाद्वयैः ।  
गुह्यचोर्मयकाभीरुशुक्लासापुनर्नवैः ॥ २८ ॥  
पह्यकेशच विपचेत्प्रस्थमक्षममैष्टृतात् ।  
योनिवातविकारघ्नं तत्पौतं गर्भघ्नं परम् ॥ २९ ॥

वचादिकम्—

वचोपकुञ्चिकाजार्जकृष्णावृषकर्मषवम् ।  
अजमोदायवसारशर्कराचित्रकान्वितम् ॥ ३० ॥  
पिष्ट्वा प्रमथयाऽऽल्लोड्य स्वादेतद्धृतमर्जितम् ।  
योनिपाशवर्जितहृद्रोगमुल्माशौविनिवृत्तये ॥ ३१ ॥  
“वृषकं मातुलुगस्य मूलानि मदयेतिकाम् ।  
पित्रेन्मद्यैः सलवणैस्तथा कृष्णोपकुञ्चिकैः” ॥ ३२ ॥  
“रास्नाश्चर्दंष्ट्रावृषकैः शृतं शूलहरं पयः ।”  
“गुह्यचीत्रिफलादंतीववायैश्च परिषेचनम्” ॥ ३३ ॥  
“नतवार्ताकिनीकुष्ठमैषवामरदारुभिः ।  
सैलात्प्रसाधिताद्वार्यः पिबुर्मोनी रुजापहः” ॥ ३४ ॥

पित्तजयोनिष्ठ्यापञ्चिकात्सा—

पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यंगपिबुक्रियाः ।  
पीणाः पित्तजितः कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ॥ ३५ ॥

घृतलोहः—

शतावरीमूलमुल्माचतुष्पातुष्णवीडितान् ।  
रसेन क्षीरतुन्येन पाचयेत् घृताद्वारम् ॥ ३६ ॥  
श्रीयनीर्यः शतावरी मृदीराभिः पल्पकैः ।  
निष्टैः प्रियान्दशभाशांसीमधुवद्विबलान्वितः ॥ ३७ ॥

सिद्धधीते तु मधुनः पिण्डत्वाच्च पलायकम् ।<sup>१</sup>

धर्कराया दधपलं सिपेहिह्यस्तिपु<sup>२</sup> ततः ॥ ३८ ॥

योग्यसूक्तसूक्तोपपन्नं बुध्यं पुंसवर्नं परम् ।<sup>३</sup>

शतं शयसूक्तपित्तं कासं श्वासं हलीमकम् ॥ ३९ ॥

नमला चातरुधिरं विमर्षं हृच्छिरोघ्नहम् ।

अपस्मारादितायाममदोग्माद्योरच नाशयेत् ॥ ४० ॥

### क्षीरसर्पिणी—

एवमेव पयःसर्पिर्जीवनीयोपमाधिनम् ।

भर्मदं पित्तजाना च रोगाणां परमं हितम् ॥ ४१ ॥

### गर्भदं घृततैलम्—

बलाद्रोणद्वयववाये घृततैलादकं वनेत् ।

क्षीरे क्षतुर्गुणे कृष्णाकाकनामासिनान्वितं ॥ ४२ ॥

जीवतीक्षीरकाकं लीस्मिरावीरं द्विजोष्कीः ।

पयस्माश्चावजीमुद्गपीनुमापास्यगणिभिः ॥ ४३ ॥

चातपित्तमयान् हृत्वा पानात् गर्भं दधाति तत् ।

### रक्तजयोनिचिकित्सा—

रक्तशोण्यामसृग्गर्भरनुबन्धमवेक्ष्य च ॥ ४४ ॥

यथादोषोदयं युज्यात् रक्तस्यापनमोपधम ।

### पुष्पानुगन्धस्युम्—

पाठा जम्बाघ्नपोरस्ति धिलोद्भेदा<sup>१</sup> रसाजनम् ॥ ४५ ॥

<sup>२</sup>ज्वल्लो घातमलीपिच्छो भर्ममां चातकद्वयम् ।

बाह्लीकबिल्यातिविपारोघ्नतोयदधैरिरम् ॥ ४६ ॥

शुण्ठीमधुकमाचीकरक्तवन्दनकटफल्म् ।

वटतृणवत्यकानन्तायानकोमधुकाकुर्वन् ॥ ४७ ॥

१ पितुं कर्षमात्रम् । २ धिलोद्भेदं पाषाणभेदः । अम्बुष्ठा पाठा । घातमली-  
पिच्छा मोक्षरगः । मधुका-मज्जिष्ठा बाह्लीकं-केयरम् । माचीकाद्राणां ।  
शुण्ठीमादौ परके 'तु वटफलं मरिचं शुण्ठीं मृद्धीनां रक्तवन्दनम्' इतिपाठः ।

पुट्ये शृहीत्वा संचूर्ण्य गन्धोद्रे तंदुलाभगा ।  
 पिबेदर्शःस्वतीमारे रक्तं यन्मोपवेश्यते ॥ ४८ ॥  
 दोषा जंतुद्विता ये च बालानां तांश्च नाशयेत् ।  
 योनिदोषं रजोदोषं श्वावश्वेताक्ष्णामितम् ॥ ४९ ॥  
 चूर्णं पुण्यानुमं नाम हितमात्रेययूजितम् ।

**कफजयोनि चिकित्सा—**

योण्यां बलासदुष्टायां सर्वं हृक्षोष्णमीषघम् ॥ ५० ॥

**तैलम्—**

घातनयामलकीपत्रस्रोतोऽमधुकोत्पलैः ।  
 जंघाश्रवारकासीमरोधकट्फलतिदुर्कः ॥ ५१ ॥  
 सीराष्टिकादाडिमस्वगुर्दुबरणलादुभिः ।  
 जलमाश्रैरजामूत्रे क्षीरे च द्विगुणं पचेत् ॥ ५२ ॥  
 तैलप्रस्थं तदम्यगपिबुधस्तिगु योजयेत् ।  
 मूनीसानोभता स्तब्धा पिच्छिला सारवणी तथा ॥ ५३ ॥  
 विष्णुतोपप्लुता योनिः सिद्धर्षश्मम्फोटशूलिनी ।

**चवान्नादि—**

यवान्नमभयारिष्टं सीधुतैलं च क्षीलयेत् ॥ ५४ ॥  
 पिप्पल्ययोरजःपथ्याप्रयोगाश्च समाशिकान् ।

**योनिपैच्छिल्यनाशकश्चूर्णः**

काशीमं त्रिकला काशीमात्रजंघ्रित्यघातकी ॥ ५५ ॥  
 वैच्छिद्ये क्षीद्वसंपुक्तभूर्णी वैशद्यस्तरकः ।

**दुर्गन्धादिनाशकश्चूर्णः—**

पञ्चाशघातकीजंघ्रमंगामोचमर्जजः ॥ ५६ ॥  
 दुर्गन्धे पिच्छिले क्लेदे स्तंभनशूर्ण इव्यते ।  
 आरग्ययादिवर्गस्य कषायः परिपेवनम् ॥ ५७ ॥

## स्तब्धयोनीनां मार्दवकरम्—

स्तब्धानां कर्कशानां च कार्यं मार्दवकारणम् ।  
 धारणं वेमवारस्य कृत्स्नोपायमस्य च ॥ ५८ ॥  
 दुर्गंधानां कषायः स्थातैर्ल वा कल्क एव वा ।  
 चूर्णो वा सर्वगंधानां भूतिगन्धपकर्षणः ॥ ५९ ॥  
 श्लेष्मलानां कटुप्रायाः समुन्ना वस्तयो हृत्ताः ।  
 पिप्पे ममधुकक्षीरा, चाते तैलाम्लसंयुताः ॥ ६० ॥  
 संनिपातसमुत्थायाः कर्म मापारणं हितम् ।

## शुद्धयोनिपुनर्भधारणम्—

एवं योनिपु शुद्धामु पुनर् विदति योपितः ॥ ६१ ॥  
 'अदुष्टे प्राकृते बीजे जीवोपक्रमणे गति ।

## पुरुषस्यापिशुक्रचिकित्सा—

पंचकर्मविशुद्धस्य पुरुषस्यापि वैद्वियम् ॥ ६२ ॥  
 परीक्ष्य वर्णदोषाणां दुष्टं तद्वैरुपाचरेत् ।

## फलसूतम्—

मज्जिष्ठाकुष्ठनगरत्रिफलाशकैरावचाः ॥ ६३ ॥  
 द्वे निसे मधुर्न मेदा दीप्यकः कटुराहिणी ।  
 पयस्याहिगुकाकोलीवाजिगन्धाशतावरीः ॥ ६४ ॥  
 पिष्ट्वासांशैर्धृतप्रस्थ पचेत्सीराघृतुर्गुणम् ।  
 योनिशुक्रप्रदोषेषु तस्मिन्नेषु च दास्यते ॥ ६५ ॥  
 आयुष्य गोष्ठिकं मेध्य धन्यं पुंमवर्त परम् ।  
 फलसर्पिर्निर्मि क्त्वातं पुष्पे पीतं फलाय यत् ॥ ६६ ॥  
 स्निग्धमाणप्रजानां च गर्भिणीनां च पूजितम् ।  
 एतत्पारं च बालानां ग्रहघ्नं देहवर्धनम् ॥ ६७ ॥"

## पंचत्रिंशोऽध्यायः ।

३५ अतः ३८ पर्यन्तमगदतन्त्रम् ।

अथाऽतो विपप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

विपस्यप्रागुत्पत्तिदर्शनम्—

“मध्यमाने जलनिधावमृतार्थं सुरासुरैः ।

जातः प्रागमृतोत्पत्तैः पुर्यां घोरदर्शनः ॥ १ ॥

दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रा हृत्तिकेशाञ्जलक्षणः ।

जगद्विषण्णं तं दृष्ट्वा तेनाऽमौ विपसोन्नितः ॥ २ ॥

हुंङ्गतां ब्रह्मणा मूर्तिस्ततः स्थावरजगमे ।

सोऽभ्यतिष्ठन्निजं रूपमुज्जित्वा बन्धनात्मकम् ॥ ३ ॥

स्थावरविपम्—

स्थिरमत्युत्क्षणं वीर्यं यत्कंदेषु प्रतिष्ठितम् ।

कालकूटैर्द्रवस्माख्यं शृंगोहलाहलादिकम् ॥ ४ ॥

जङ्गमविपम्—

सर्पलतादिदंष्ट्रासु दारणं जंगमं विपम् ।

त्रिविधंविपम्—

स्थावरं जंगमं चेति विषं प्रोक्तमकृत्रिमम् ॥ ५ ॥

कृत्रिमं गरसंज्ञं तु क्रियते विविधोपधैः ।

हन्ति योगवद्वेनाशु चिराच्चिरतराच्च तत् ॥ ६ ॥

१ तं घोरदर्शनं पुर्यं दृष्ट्वा जगन् विषण्णं विषाद मुक्तम् । तेन जगद्विष-  
ण्णम् । २ बन्धनात्मकं वज्रनस्वभाव स्वरूपम् । ३ तन्-गरमंशम् ।

घोषपाण्डुरोन्माददुर्गमादीन् करोति च ।

**विषगुणा :—**

तीक्ष्णोष्णरूक्षविशदं व्यवाय्याशुकरं लघु ॥ ७ ॥

विकाशि मूष्ममव्यक्तरसं विषमपाकि च ।

**जीवितहरं विषम्—**

जोषसो विपरीतं तद् तीक्ष्णाद्यैरन्वितं गुर्जः ॥ ८ ॥

वातपित्तोत्तरं नृणां सद्यो हरति जीवितम् ।

**सप्रहेतु :—**

विषं हि देहं संप्राप्य प्राग्दूषयति क्षोणितम् ॥ ९ ॥

कफपित्तानिन्दाश्वानु समं दोषान्सह्याशयान् ।

ततो हृदयमाश्रय देहोच्छेदाय कल्पते ॥ १० ॥

**स्थावरविषयंगलक्ष्यानि—**

स्थावरस्योपयुक्तस्य वेगे पूर्वं प्रजायते ।

जिह्वायाः श्वाशता स्तम्भो मूर्च्छा वातः क्लमो वमिः ॥ ११ ॥

द्वितीये वेपथुः स्वेदो दाहः कंठे च वेदना ।

विषं चामाशयं प्राप्तं कुरुते हृदि वेदनाम् ॥ १२ ॥

सात्तुशीपस्तृतीये तु दूलं चामाशये भूयम् ।

दुर्मति हरिते शूनं जायते चास्य लोचने ॥ १३ ॥

पञ्चमशयगते तादृहिष्माकासांश्चकूजनम् ।

“यत्पुर्णं जायते वेगे शिरसश्चातिमोरवम्” ॥ १४ ॥

“कफप्रसेको वैवर्ण्यं पर्वभेदश्च पंचमे ।

मर्ददोषप्रकोपश्च पक्वाधाने च वेदना” ॥ १५ ॥

“पठे संज्ञाप्रणाग्नश्च सुभूयं चाऽतिसार्यते ।”

“संघट्टकृटीर्मगो भवेन्मृत्युश्च सप्तमे” ॥ १६ ॥

**विषत्रगाचिकित्सा—**

प्रथमे विषवेगे तु वातं क्षोतावुसेचितम् ।

सर्पिर्मधुम्यां संयुक्तमगदं पाययेद् द्रुतम् ॥ १७ ॥

“द्वितीये पूर्ववद्वातं विरिक्तं चाऽनुपाययेत् १”  
 “तृतीयेऽगदपानं तु हितं नस्यं तथाजनम्” ॥ १८ ॥  
 “चतुर्थे स्नेहसंयुक्तमगदं प्रतियोजयेत् १”  
 “पंचमे मधुकक्वाचमाक्षिकाम्यां युतं हितम्” ॥ १९ ॥  
 “षष्ठेऽतिसारवत्तिदि”

रवपीडस्तु सप्तमे ।

मूत्रि काकपदं कृत्वा सासृग्वा पिशितं क्षिपेत् ॥ २० ॥

विषघ्नी यथागूः—

‘कोशातक्यग्निकः पाठा सूर्यवल्लभमृतामयाः ।  
 शेलुः शिरीषः किणिही हरिद्रौ क्षौद्रसाह्वया ॥ २१ ॥  
 पुनर्नवं त्रिवटुकं बृहत्स्थो सारिरे बला ।  
 एषां यवागू<sup>१</sup> निर्यूहे शीतां सघृतमाक्षिकाम् ॥ २२ ॥  
 युज्याद्देगातरे सर्वविषघ्नी कृतकर्मणः ।  
 सद्गन्धमधुकमधुकपक्षकेसरचंदनैः ॥ २३ ॥

चन्द्रोदय नामागदः—

“अंजनं तगरं कुष्ठं हरितालं मनःशिला ।  
 फलिनो धिन्नु स्पृका नागपुष्पं सकेसरम् ॥ २४ ॥  
 हरेणु मधुकं मासी रोचना काकमालिका<sup>२</sup> ।  
 श्रीवेष्टकं सर्जरसः धवाह्वा कुकुमं बला ॥ २५ ॥  
 तमालपत्रतालीसभूजोशीरनिशादयम् ॥,  
 ‘कन्धोपवामिनी श्राता शुक्लवासा मधुदुर्तः ॥ २६ ॥  
 द्विजानभ्यर्च्य तैः पुण्ये कल्पयेदगदोत्तमम् ।  
 वेषश्चात्र तदा भ्रंजं प्रयतात्मा पठेदिमम् ॥ २७ ॥

१ कोशातकी “तरोई” इति लोके । सूर्यवल्लो-गूर्यभक्तः । क्षौद्र साह्वया-  
 यटमाशिकम् । २ काकमालिका-काकमाचो । ३ उपवामिनी कृतोपवामा,  
 स्नाया शुक्लवासा परिहितशुक्लवस्त्रा ।



“नमः पुरुषसिंहाय नमो नारायणाय च ।

यथासौ नाभिजानाति रणे कृष्णपराजयम् ॥ २८ ॥

एतेन सत्यवाक्येन ह्यगदो मे प्रसिद्धपतु ।

नमो वैदूर्यसात्रे हुशुहुशु रथ मां सर्वविषेभ्यः ॥ २९ ॥

गौरि गाधारि चंडालि मातंगि स्वाहा ।

पिष्टे च हितोयो मंत्रः

ॐ हरिमाचि स्वाहा ॥ ३० ॥

अथोपविषवेतालग्रहकर्मण्यपाम्मु ।

मरकट्याभिदुभिस्तयुद्धाक्षनिभयेषु च ॥ ३१ ॥

पानमस्याञ्जनालेपमणिजघादिभोजितः ।

एष चन्द्रोदयो नाम खातिः स्वस्त्यपन परम् ॥ ३२ ॥

दूर्पीविषविषरक्षाम्—

जीर्णं विषजीवमिभिर्दत्तं वा

दावाङ्घ्रिवात्तपक्षोपितं वा ।

स्वभावतो वा मुमुक्षुर्न मुक्तं

दूर्पीविषालयो विषमभ्युपति ॥ ३३ ॥

वीर्यस्त्रिभावादविभ्राम्यमेत-

त्कफाशृतं वर्षमणानुबन्धि ।

रीनार्द्रितो भिक्षुरीयवर्णो

दुष्टाश्ररोगी वृद्धरोचकावर्तः ॥ ३४ ॥

मूर्छन् वमन् गदगदवारु विगृह्यम्

भवेच्च दूष्योदरलिंगबुद्धः ।

शामाश्रयस्यै कफवातरोगी

पक्षराशस्यैऽनिष्पित्तरोगी ॥ ३५ ॥

श्वेन्नरो ध्वस्तशिरोऽहंगो<sup>१</sup>

विलूनपद्मः स यथा विद्वजः ।

१ ध्वस्तशिरोऽहंगो-ज्वरहृत्पद्मोऽङ्गापरं द्रष्टव्यस्तेन नष्टकेवलोवा ।

रसादिपुस्थितं विकारकरम्—  
स्थितं रसादिष्वथवा विचित्रान्  
करोति घातुप्रभवान् विकारान् ॥ ३६ ॥

दूषीविषसंज्ञायां हेतुः—

प्राग्वाताजीर्णसीताभ्रदिवास्वप्नाहिताशनैः ।  
दुष्टं दूषयते घातूनतो दूषीविषं स्मृतम् ॥ ३७ ॥

लेहोदूषीविचारः—

दूषीविपातं सुस्विन्नमूर्ध्वं चापञ्च शोधितम् ।  
दूषीविपारिमगधं लेहयेन्मधुना प्लुतम् ॥ ३८ ॥  
निष्पत्त्यो घ्यामकं पाप्मी रोघ्रमेला सुवविका ।  
कुटनटं नतं कुण्टं यष्टी चंदनगैरिकम् ॥ ३९ ॥  
दूषीविपारिर्नाम्नाऽर्थं न चाग्न्यत्राऽपि वार्यते ।

विपलिप्तशस्त्रद्वतलक्षणम्—

विपदिगन्धेन विद्धस्तु प्रताम्पति मुहुर्मुहुः ॥ ४० ॥  
विवर्णभावं भजते विपादं चाधु गच्छति ।  
कीटैरिवावृतं चास्य मात्रं त्रिमिचिमायते ॥ ४१ ॥  
श्रोणिपृष्ठशिरःस्पर्शसंघयः स्युः सवेदनाः ।  
कृष्णद्रुष्टालविलावी कृष्णमूर्छाज्वरदाहवान् ॥ ४२ ॥  
दृष्टिकालुष्यवमपुश्वासकामकरः क्षणात् ।  
आरक्तपीतपर्यतः श्यावमध्योतिरुन्मथः ॥ ४३ ॥  
'सूर्यतं पच्यते सद्यो गत्वा भासं च कृष्णताम् ।  
प्रविलग्नं शीर्यतेऽभीक्ष्णं सपिच्छिलपरिस्त्रवम् ॥ ४४ ॥

तत्रचिकित्सा—

कुर्यादमर्मविद्धस्य हृदयावरणं द्रुतम् ।  
शल्पमावृष्य तत्तेन लोहेनानु दहेद्दमणम् ॥ ४५ ॥

अथवा 'मुष्कश्चेतासोमत्वक्ताम्रवह्निः ।  
 निरीपाद् शुघ्नस्वाश्र सारेण प्रतिसारयेत् ॥ ४६ ॥  
 शुक्नासाप्रतिविषाभ्याघ्रोमूलैश्च क्षेपयेत् ।  
 कीटदष्टचिकित्सां च कुर्यात्तस्य यथार्हतः ॥ ४७ ॥  
 यथे शु पुत्रिपिशिते क्रिया पित्तविमर्षवत् ।

विषदातारः—

सौभाग्यार्थं त्रिषो भये राज्ञे वाऽरातिचोदिताः ॥ ४८ ॥  
 गरमाहारसंपृक्तं 'यच्छंस्यामश्नवर्तिनः ।

गर लक्षणम्—

'नानाप्रार्थ्यं गद्यमलविरुद्धोपधिभस्मनाम् ॥ ४९ ॥  
 विषाणां चाल्पवोर्याणां योगो गर इति स्मृत ।

गरपीडित लक्षणम्—

तेन पांडुः कृशोल्पाग्निः कातश्चामज्वरादितः ॥ ५० ॥  
 मायुना प्रतिलोमेन स्वप्रचितापरायणः ।  
 महोदरघट्टरुद्धोही दीनवाम्दुर्बलोऽलमः ॥ ५१ ॥  
 शोफवान्सतयाभ्यातः शुष्कपादकः क्षयी ।  
 स्वप्ने गोमायुमार्जारकुलभ्यालवानरात् ॥ ५२ ॥  
 प्रायः पश्यति शुष्कांश्च धनस्पतिजलाशयान् ।  
 मभ्यते कृष्णमात्मानं गौरो गौरं च कालकः ॥ ५३ ॥  
 विकर्णनासानयनं पश्येत्तद्विहर्तृद्वयः ।  
 एतैरन्यैश्च बहुभिः किलष्टो चोदेषद्रवैः ॥ ५४ ॥  
 गरार्तो नाशमाप्नोति कश्चित्तद्योऽबिकिन्मितः ।

गरातुरस्य कृत्यम्—

गरार्तो वातवान् भुक्त्वा तत्त्वर्ष्यं पानभोजनम् ॥ ५५ ॥  
 शुद्धहृच्छीलेवेष्टेन 'गूदस्थानविधेः स्मरन् ।

१ आशमनतिनः ममीषवर्तिनः । २ घमलंशृङ्ग । ३ गूदस्थानविधिः  
 "गूदे हृदि ततः दाणं हेमचूर्णस्य दापयेत्" इतिविधिस्मरन् ।

## गरध्नो लेहः—

शर्कराक्षीद्रसंयुक्तं चूर्णं ताप्यमुवर्णयोः ॥ ५६ ॥

लेहः प्रशमयत्युग्रं सर्वयोगकृतं विषम् ।

## गरोपहतग्नेः पानम्—

मूर्धामृतानतरुणापटोलीचम्पचित्रकान् ॥ ५७ ॥

वचामुस्तविडंगानि तक्रकीर्णांबुमस्तुभिः ।

पिबेद्रसेन वाम्लेन गरोपहतपावकः ॥ ५८ ॥

## हिमसेवनम्—

पारावतामिषशठीपुष्कराह्वं शृतं हिमम् ।

गरतृष्णारुजाकासश्वासहिष्माज्वरापहम् ॥ ५९ ॥

## विषसङ्कटम्—

विषप्रकृतिकालाभ्रदोषद्रूप्यादिसंगमे ।

विषसंकटमुद्दिष्टं घृतस्यकोऽत्र जीवति ॥ ६० ॥

## विषवर्धनानि—

धुतृष्णाघर्मक्षौर्बल्यक्रोधशोकभयधमैः ।

अजीर्णवचोद्वतः पित्तमास्तबुद्धिभिः ॥ ६१ ॥

तिलपुष्पफलाघ्राणभूबाष्पघनगर्जितैः ।

हस्तिमूर्षिकदादित्रनिःस्वर्णविषसंकटैः ॥ ६२ ॥

पुरोवातोत्पलामोदमदनैर्वर्धते विषम् ।

## विषस्य मन्दवीर्यत्वम्—

वर्षाम्बु चांबुयोनित्वात्संक्लेदं गुडवद्गतम् ॥ ६३ ॥

विसर्पति घनापाये तदगस्त्यो हितस्ति च ।

प्रयाति मन्दवीर्यत्वं विषं तस्मादनात्यये ॥ ६४ ॥

१ विषप्रकृतिः पित्तप्रकृतिः । कालो वर्षा । विषाघ्नमर्पपादि । विषदोषः पित्तम् । दूष्यं रतम् ।

## एवमालोच्य कर्मकरणम्—

इति प्रकृतिमात्म्यतुंस्थानवेगवलावलम् ।

आलोच्य विपुलं बुद्ध्या कर्मानंतरमाचरेत् ॥ ६५ ॥

इत्येष्टिकं वसनैश्चस्नानैश्चैः प्रलेपनैः ।

कपायकटुतिक्तं च भोजनैः क्षमयेद्विभम् ॥ ६६ ॥

सैत्तिकं संतनैः सेकप्रदेहैर्भूषणैः तर्कैः ।

कपायतिक्तमधुरैर्घृतयुक्तं च भोजनैः, ॥ ६७ ॥

घातारमकं जयेत्स्वादुसिगन्धाम्ललवणाम्बितैः ।

सधृतैर्मोक्षनैर्लेपैस्तथैव । पयित्वा च नैः ॥ ६८ ॥

नापृष्टं संमनं वास्तं प्रलेपो मांयमीषयम् ।

## धृतस्य विपनाशकस्ये भेषजा—

मर्षेषु सर्वाविस्थेषु विषेषु च घृतोपमम् ॥ ६९ ॥

विद्यते भेषजे किञ्चिद्विषेयात्प्रवृत्तमिते ।

## सर्वविषेषु माध्यमवादि—

अथवाक्छर्त्तुमिदं साम्यं, यन्नाह पित्तजवाग्रयम् ॥

मुहुःसाध्यमसाम्यं वा वाताशयगतं विषम् ॥ ७० ॥

## षट्त्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः सर्पविपप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

संक्षेपेणसुजङ्घाविधा :—

“दर्शकरा मंडलिनो राजीमंतश्च पद्मगाः ।

त्रिधा समासतो भीमा भिद्यते ते स्वभेकषा ॥ १ ॥

भ्यासतो योनिभेदेन नोन्यतेऽनुपयोगिनः ।

दर्शकरादीनांविषं रूक्षादिगुणम्—

विशेषाद्भूक्षकद्रुकमम्लोष्णं स्वादु दीतलम् ॥ २ ॥

विषं दर्शकरादीनां क्रमाद्वातादिकोपनम् ।

एषां विपोल्लवणत्वप्रकारः—

तारुण्यमध्यवृद्धत्वे वृष्टिशीतातपेषु च ॥ ३ ॥

विपोल्लवणा भवत्येते व्यंतरा<sup>१</sup> ऋतुसंविषु ।

दर्शकरादीनां लक्षणानि—

रसांगलांगलच्छत्रस्वस्तिकाकुशधारिणः ॥ ४ ॥

फणिनः शीघ्रगतयः सर्पा दर्शकराः स्मृताः ।

जेषा मंडलिनोऽमोगा मंडलविविधैश्चिताः ॥ ५ ॥

प्रांशवो मंदगमना,

राजीमंतस्तु राजिभिः ।

क्षिप्वा विचित्रवर्णाभिस्तिर्यग्भूषैर्विचित्रिताः” ॥ ६ ॥

गोवासुतस्तु गोधेरो विषे दर्शकरैः समः ।

चतुष्पाद,

<sup>१</sup>व्यंतरान्विद्यादेतेषामेव संकरात् ॥ ७ ॥

१ व्यंतरा विजातयः सर्पाः ऋतुमन्येषु विपाधिकाः स्युः ।

व्यामिश्रलक्षणास्ते हि सनिपातप्रकोपनाः १,

भुजङ्गदशनेकारणादि—

आहारार्थं भयात्तादस्पृष्टादिति विपात् क्रुधः ॥ ८ ॥

पापवृत्तितया वराद्देवपियमचोदनात् ।

ददाति सर्पास्तेषूक्तं विपाचिक्यं यद्योत्तरम् ॥ ९ ॥

हेतुं विदित्वा यथास्वं तच्चिकित्सा—

आदिष्टात्कारणं ज्ञात्वा प्रतिकुर्याद्यथाययम् ।

व्यंतरः पापशीलत्वान्मागं मात्रित्य तिष्ठति ॥ १० ॥

दंशसंज्ञा—

यत्र लालापारिवलेदमान गात्रे प्रहरयते ।

न तु दंष्ट्रावृत्तं दंशं तत्तुंङ्गाहतमादिशेत् ॥ ११ ॥

एकं दंष्ट्रापदं द्वे वा व्यालीढाखण्डमण्डितम् १,

दंष्ट्रापदे सरक्ते द्वे व्यालुप्तं, त्रीणि तानि<sup>२</sup> तु ॥ १२ ॥

मांसच्छेदादविच्छिन्नरक्तवाहीनि दंष्ट्रकम् ३,

“दंष्ट्रापदानि चत्वारि तद्दृष्टमिपीडितम्” ॥ १३ ॥

निर्विषं<sup>४</sup> द्वयमप्राद्यमसाध्यं पश्चिमं वदेत् ।

सर्पं न विपश्यरक्तप्राप्तस्यैव दूषणम्—

विषं नाहेयमप्राप्य रक्तं दूषयते वपुः ॥ १४ ॥

रक्तमप्यपि तु प्राप्तं वर्धते तैलमंबुक्त् ।

“भीरोस्तु सर्पतत्स्पृष्टाद्भयेन कुरितोऽनिलः” ॥ १५ ॥

कदाचित्कुस्ते दोषं सर्पाणांभिहतं तु तत् ।

१ एतेषां दर्बीकरादीनां संकरात्ममेलनात् व्यन्तरान् व्योः-द्वयोरन्तरं विशेषो  
येषु तान् । विषन्दोऽथद्वयार्थवाचकः । यथा दर्बीकरान्मण्डलिन्यां जातः एव  
मन्यदप्युक्तम् । २ तानि दंष्ट्रापदानि । तद्दृष्टमिव । ३ अथदंशमन्त्रे द्वयमाद्य-  
तुण्डाहतं व्यालीढाख्यं च । पश्चिममन्त्रिमं-दष्ट्रमिपीडिताख्यम् । व्यालुप्तं दंष्ट्रक-  
वृत्तुमात्रम् ।

## शङ्काविषम्—

दुरणकारे विद्धस्य केनचिद्दृष्टशक्या ॥ १६ ॥

विषोद्वेगो ज्वरशब्दिमूर्च्छा दाहोऽपि वा भवेत् ।

ग्लानिमोहोऽतिमारो वा स्रक्छंकाविषमुच्यते ॥ १७ ॥

## सविषनिर्विषदंश लक्षणम्—

तुष्यते सविषो दंशः कङ्कषोफरुजाम्बितः ।

दह्यते प्रणितः किञ्चिद्विपरोतस्तु निर्विषः ॥ १८ ॥

## दर्शकरविषत्रय लक्षणानि—

पूर्वे दर्शकृतां वेगे दुष्टं स्त्रावीभत्रत्यसृक् ।

स्यावता तेन वक्त्रादौ संपतोव च कोटकाः ॥ १९ ॥

द्वितीये ग्रंथयो वेगे, तृतीये मूर्च्छा गौरवम् ।

दुर्गणो दंशविस्फेदः, श्वेतुर्धे घ्रावनं वमिः, ॥ २० ॥

संधिविस्फेपणं तद्वा पंचमे पर्वभेदनम् ।

दाहो हिष्मा च पण्डे च हृत्पोडा गात्रगौरवम् ॥ २१ ॥

मूर्च्छा विनाकोऽतीसारः, प्राप्य शुकं तु सप्तमे ।

स्फंषपृष्ठकटीमंगः सर्वचेष्टानिवर्तनम् ॥ २२ ॥

## मंडलिविषवेगाः—

अथ मंडलिदष्टस्य दुष्टं पीतीभत्रत्यसृक् ।

तेन पीतांगता दाहो, द्वितीये श्वयथूदभवः ॥ २३ ॥

तृतीये दंशविस्फेदः स्वेदस्तृष्णा च जायते ।

श्वेतुर्धे ज्वर्यते दाहः, पंचमे सर्वगात्रगः ॥ २४ ॥

## राजिलदंशवेगाः—

दष्टस्य राजिलदुष्टं पादुतां याति शोणितम् ।

पादुता तेन गात्राणां, द्वितीये मुस्ताऽति च ॥ २५ ॥

तृतीये दंशविस्फेदो नानिवादिमुष्यग्वाः, ।

श्वेतुर्धे गरिमा मूर्च्छा मग्नास्तंभश्च पंचमे ॥ २६ ॥



गान्धर्गो ज्वरः क्षीतः, शेषयोः पूर्ववद्वेत् ।

चिकित्सा निर्देशः—

कुर्यात्पंचसु वेगेषु चिकित्सां, न ततः<sup>१</sup> परम् ॥ २७ ॥

अल्पविषाःसर्पाः—

जलाप्युना रतिघोषा भीता नकुलनिजिताः ।

क्षीतवातातपस्याधिभुतृष्णाध्रमपीडिताः ॥ २८ ॥

तूर्णं देवातरायाता विमुक्तविपकुकाः ।

कुक्षीपधोकंटकवद्ये चरति च काननम् ॥ २९ ॥

देयं च द्विग्याप्युपितं सर्पास्तेऽक्षरविषा मताः ।

असाध्यदष्टलक्षणानि—

<sup>२</sup>श्मशानचिकित्सैत्यादौ पंचमीपक्षसंधिषु ॥ ३० ॥

अष्टमीनवमीसंध्यामभ्यरात्रिदिनेषु च ।

याम्याग्नेयमषाढेपाविशालापूर्वर्नर्हते ॥ ३१ ॥

नैर्हताख्ये मुहूर्ते च दष्टं मर्मसु च त्यजेत् ।,

दष्टमात्रः सितास्यासः क्षीर्यमाणशिरोरुहः ॥ ३२ ॥

हृत्पञ्चजिह्वो मुट्टमूर्च्छन् क्षीतोच्छ्वासो न जीवति ।,

हिम्मा श्वासो वसिः कासो दष्टमात्रस्य देहिनः ॥ ३३ ॥

प्राप्यते युगपद्यस्य स हृत्पूली न जीवति ।,

फेनं वमति निःसंतः श्वावपादकराननः ॥ ३४ ॥

नासावसादां भंगं विक्लेदः श्लुषमंथिता ।

विपपीतस्य दष्टस्य दिग्धेनाभिहतस्य च ॥ ३५ ॥

भवंत्येतानि रुपाणि संश्रान्ते जीवितक्षये ।,

न नस्यञ्चेतना तीक्ष्णैर्न दातास्तत्रागमः ॥ ३६ ॥

१ शेषयोः पष्ठमासमयोः पूर्ववद्वर्णितवत् । २ न ततः परं-ततः पंचवेगेभ्यः परं पष्ठमासमयोऽचिकित्सां न कुर्यात् । ३ चितिः-अग्निचितिः । पशाम्निः पूर्णिमावस्था च । याम्यं भरणी । आग्नेयं वृश्चिक, नैर्हते मूलम् । नैर्हताख्यो मुहूर्तः सप्तम्योदयः ।

दंडाहतस्य नो राजिः प्रयातस्य यमांतिकम् ।,

साध्यत्वेत्तरय.विपशान्तिः कार्या—

अतोऽप्यथा तु त्वरया प्रदीप्तागाग्बद्धमिपक् ॥ ३७ ॥

रसन् कंठगतान् प्राणान् विपमाद्यु शमं नयेत् ।

विपस्यदेहक्रमणे कालः—

मात्राशतं विपं स्थित्वा दंशे दष्टस्य देहिनः ॥ ३८ ॥

देहं प्रक्रमते धातून् रुधिरादीन् प्रदूषयत् ।

एतस्मिन्नतरे कर्म दंशस्योन्मत्तनादिकम् ॥ ३९ ॥

कुर्वाञ्छीघ्रं यथा देहे विपबल्लो न रोहति ।

दष्टपुरुषस्यकर्तव्यम्—

दष्टमाग्रे दग्देदाद्यु समेव पवनंश्चिन्तम् ॥ ४० ॥

लोष्टं मही वा दधानंश्छित्त्वा चाऽनु ससंभ्रम् ।

निष्ठीवेन समातिपेदंश्च कर्णमलेन वा ॥ ४१ ॥

अरिष्टाबन्धनम्—

दंशस्योपरि बध्नीयादरिष्टां चतुरंगुले ।

क्षौमादिभिर्वेणिकया मिदंमैत्रीश्च मश्वित् ॥ ४२ ॥

अंबुवत्सेतुबंधेन बध्नेन स्तम्भ्यते विपम् ।

न वहति सिराश्चाऽस्य विपं बंधाभिरीडिताः ॥ ४३ ॥

पश्चादग्निष्पीडयदंशोद्धरणम्—

निष्पीड्यान् दूरेदंश्च भर्मसंध्यगतं तथा ।

न जायते विपावेगो बीजनासादिवाङ्मुरः ॥ ४४ ॥

दंशदाहादि—

दंशं मंडलिनां मुनत्वा पित्तलत्वादथापरम् ।

प्रतर्ज्हेमलोहाद्येदं देहाशूल्मुकेन वा ॥ ४५ ॥

करोति अस्मभात्मनो बह्निः किं नाम न क्षणाय ।

आचूषेत्सूक्ष्मवन्नो वा मृद्मत्स्मागदगोमर्गः ॥ ४६ ॥

प्रच्छायांतररिष्टायां, मांसलं तु विशेषतः ।  
 अंगं सहेव दशेन लेपयेदग्नेर्मुहुः ॥ ४७ ॥  
 चंदनोशीरमुत्तेन मलितेन च सेचयेत् ।  
 विषे प्रविस्तृते विध्येत्सिरां सा परमा क्रिया ॥ ४८ ॥  
 रक्ते निह्नयमाणे हि कृत्स्नं निह्नयते विषम् ।

सविषाविपरक्त लक्षणम्—

दुर्गन्धं सविषं रक्तमग्नौ चट्चटायते ॥ ४९ ॥  
 यथादोषं विशुद्धं च पूर्ववत्क्षयेदसृक् ।,

शृङ्गादियोजना—

सिरास्वदृश्यमानासु योज्या. शृंगजलौकसः ॥ ५० ॥

सुतशेषलाहितस्यस्तम्भनम्—

क्षोणितं सुतशेषं च प्रविलीनं विपोष्मणा ।  
 लेपतेर्नैरतु बहुशः स्तम्भयेद्भृशधीतलः ॥ ५१ ॥

अस्कन्नेरक्ते मूर्च्छादीनां जयः—

अस्कन्ने विषवेगादि मूर्च्छादिमदहृद्द्रवाः ।  
 भवन्ति तान् जयेच्छीतवीजिभ्यारोगहर्षतः ॥ ५२ ॥  
 स्कन्ने तु रुधिरं सद्यो विषवेगाः प्रशाम्यति ।

घृतादिपानम्—

विषं कर्पति तीक्ष्णत्वाद् हृदयं, तस्य<sup>१</sup> गुप्तये ॥ ५३ ॥  
 पिबेद् घृतं घृतक्षौद्रमगदं वा घृताप्पुतम् ।  
 हृदयावरणे चास्य श्लेष्मा हृद्युपजीयते ॥ ५४ ॥

१ प्रच्छाया-प्रच्छानं कृत्वा, अन्तर्मध्ये मांसलंतुस्थानं विशेषतः प्रच्छाया  
 ज्ञेयम् । २ विशुद्धं रक्तं यथादोषं दोषानुमारेण पूर्ववत् सिराव्यधविघ्नमुत्तेन लक्षणेन  
 विज्ञानीयात् । ३ तस्य हृदयस्य गुप्तये रक्षायै ।

## चमनप्रयोगः—

प्रवृत्तगौरवोत्प्लेखहृत्प्राप्तं चामयेत्ततः ।

द्रवैः कांजिककोलत्पतलमचादिर्वर्जितैः ॥ ५५ ॥

चमनं विपद्दृष्टमिन्द्र नैवं व्याप्नोति तद्वपुः ।

## विशिष्टक्रिया—

मुजंगदोषप्रकृतिस्यानवेगविशेषतः ॥ ५६ ॥

मुमुक्षुं सम्यगालोच्य विशिष्टं वाञ्छरेत्क्रियाम् ।

## औपचारिक—

सिन्दुवारितमूलानि श्वेता च गिरिकर्णिका ॥ ५७ ॥

पानं दूर्वाकरैर्दृष्टे तस्य मधु सपाकलम् ।

कृष्णसर्पेण दष्टस्य लिपेद्द्वयं हृत्प्लेखजि ॥ ५८ ॥

चारटीनाकुलीभ्या वा तीक्ष्णमूलविषेण वा ।

पानं च क्षौद्रमजिष्ठाशुहृधूमयुतं पृथक् ॥ ५९ ॥

तदुलीयककाश्मर्यकिणिहीगिरिकर्णिकाः ।

मातुलुगी सिता सेलुः पाननस्याञ्जनैर्हितः ॥ ६० ॥

अगदः फणिनां घोरै विषे राजीमत्तामपि ।

समाः सुगन्धा शृङ्गीका श्वेताख्या यजदंतिका ॥ ६१ ॥

अर्घाद्यं सीरमं पत्रं कपित्थं बिल्वदाडिमम् ।

सद्योद्रो मंडलिर्विषे विसेपादगदो हितः ॥ ६२ ॥

## हिमवान्नामागदः—

पंचवल्कवरायष्टीनामपुष्पलवानुकम् ।

जीवकर्ममकोशीरं सिता पञ्चकमुत्पलम् ॥ ६३ ॥

सद्योद्रो हिमवान्नाम हन्ति मंडलिनां विषम् ।

सेपान्छत्वमशुवीमर्षविस्फोटज्वरदाहहा ॥ ६४ ॥

३ सिन्दुवारितमूलं निर्गुण्डं मूलम् । पाकलं कुष्ठम् । १ चारटी—गुंजा ।  
ऽर्णयन्मूलविषे तेन । २ सुगन्धा राखा ।

“काशमर्यवटशृंगाणि जीववर्षमकी सिता ।  
 मंजिष्ठा मधुकं चेति दष्टो मंडलिना पिबेत्, ॥ ६५ ॥  
 “वंशत्वम्बीजकटुकपाटलीबीजनागरम् ।  
 शिरीषबीजातिविषे मूलं भावेष्टुकं वचा ॥ ६६ ॥  
 पिष्टो गोवारिणाष्टांगो हन्ति गोनसजं विषम् ।,  
 “कटुकातिविषाकुष्ठगृहघूमहरेणुकाः ॥ ६७ ॥  
 सक्षौद्रव्योपतगरा घ्नन्ति राजीमतां विषम् ।,  
 “निसनेत्काण्डचित्राया दशं यामद्वयं भुवि ॥ ६८ ॥  
 छद्मस्य प्रस्थितं सपिर्धन्यमृम्भां प्रलेपयेत् ।  
 पिबेत्पुराण च घृतं वराचूर्णविवूर्णितम् ॥ ६९ ॥  
 जीर्णे विरिक्ते भुञ्जीत यवान्नं सूषसस्तृप्तम् ।,  
 “वरधीरार्ककुसुममूललावणलिकाकणाः ॥ ७० ॥  
 कल्कयेदारमालेन पाठामरिचसंयुताः ।  
 एष द्व्यंशदष्टानामगदः सार्वकामिकः ॥ ७१ ॥  
 “शिरीषपुष्पस्वरसे मत्तार्हं मरिचं सितम् ।  
 भावितं सर्पदष्टानां पाने नस्याजने हिवम्, ॥ ७२ ॥  
 “द्विपलं नतबुध्याभ्या घृतक्षौद्रचतुष्पलम् ।  
 अपि सप्तकदष्टानां पानमेतत्सुखप्रदम्, ।. ७३ ॥  
 दर्वीकरविषाचाकृत्सा—

अथ दर्वीकृतां वेगे पूर्व विज्ञाभ्य शोणितम् ।  
 अगदं मधुसपिम्बी संयुक्तं स्वरितं पिबेत्, ॥ ७४ ॥  
 द्वितीये वमनं कृत्वा तद्वदेवागदं पिबेत् ।  
 “विषागदैः प्रयुञ्जीत तृतीयैऽजननावने ॥ ७५ ॥  
 “पिबेच्चतुर्थे पूर्वोक्तां यवागू” वमने कृत्वा ।  
 सप्तपंचमयोः शीतैर्दिव्यं सितमभीक्ष्ण्यः ॥ ७६ ॥

१ काण्डचित्रायाः सर्पविषोपस्य दशं यामद्वयं भुवि निसनेत् । घान्यस्यमृत्  
 पान्यमृत् ।

पाययेद्वमनं तीक्ष्णं यवागूं च विपापहेः ।

“अगदं सप्तमे तीक्ष्णं युज्यादजननस्ययोः ॥ ७७ ॥

कृत्वावगाढं दृष्टेण मूर्ध्नि काकपदं ततः ।

मार्गं सद्यश्चिरं तस्य<sup>१</sup> चर्म वा तत्र निक्षिपेत् ॥ ७८ ॥

मण्डलिविपचिकित्सा—

तृतीये वमितः पेयां वेगे मण्डलिना पियेत् ।

“अतीक्ष्णमगदं पृष्ठे गणं वा पक्षकादिकम् ॥ ७९ ॥

राजिलविपचिकित्सा—

आघेवगाढं प्रच्छाय वेगे दष्टस्य राजिलैः ।

अलावुना हरेद्रक्तं पूर्ववच्चागदं पियेत् ॥ ८० ॥

पृष्ठेऽर्जनं तीक्ष्णतममवपीडं च योजयेत् ।

अनुक्तेषु च वेगेषु क्त्रियां दर्वाकरोदिताम् ॥ ८१ ॥

गभिणीवास्त्रवृष्टे<sup>२</sup>षु मृदुं विष्पेत्सिरां न च ।

रैवङ्मनोह्वानिद्ये वक्रं रसः शार्दूलजो नखः ॥ ८२ ॥

सर्पविपघ्नपानम्—

तमालः केसरं क्षीत पीतं तंदुलवारिणा ।

हृति सर्वविपाध्येतद्रज्जिवज्जमिवासुरान् ॥ ८३ ॥

अञ्जनादि—

बित्तस्य मूलं सुरमस्य पुष्पं

फलं करंजस्य नतं<sup>३</sup> गुराह्वम् ।

फलत्रिकं व्योपनिशाद्वयं च

वस्तस्य मूत्रेण मुगूढमपिष्टम् ॥ ८४ ॥

मुज्जग्लूतोदुरवृश्चिकाद्यै-

विपूचिकाजीर्णगरज्वरैश्च ।

१ तस्य दष्टपुष्पस्य । तत्र तस्मिन् काकपदे । काकपदं काकपदवन्द्येदः ।

२ मनोह्वान मनःशिला । शार्दूलो व्याघ्रः । ३ गुराह्वं देवदारु ।

आर्ताघ्नान् भूतविषपिप्तांश्च  
स्वस्थीकरोत्यञ्जनपाननस्त्र्यः ॥ ८५ ॥

निःशेषविषोद्धरणम्—

प्रलेपाच्च निःशेषं दंशादप्युद्धरेद्विषम् ।  
भूयो वेषाम् जायेत शेषं दूषीविषाय च ॥ ८६ ॥

विषनाशकुपितव्यातादीनां चिकित्सा—

विषापायेऽमित्रं क्रुद्धं स्नेहादिभिर्हृत्वाचरेत् ।  
तैलमद्यकुलत्थाम्लवर्ज्यैः पवननाशनैः ॥ ८७ ॥  
पित्तं पित्तज्वरहरैः कफायस्नेहजस्तिभिः ।  
समाश्लिषेण धर्मेण कफमारम्बपादिना ॥ ८८ ॥

सर्पाङ्गाभिहतशङ्काविषादितयोश्चिकित्सा—

सिता वैगन्धिको<sup>१</sup> द्राक्षा पयस्या मधुकं मधु ।  
गाने गमनपूतान्नु प्रोक्षणं गार्वहर्षणम् ॥ ८९ ॥  
सर्पाङ्गाभिहृते दुग्धातथा शंकाविषादिते ।

विषशान्त्यर्थमथ्यादिधारणम्—

कर्कतं मरकतं<sup>२</sup> वध्यं वारणमोक्तिकम् ॥ ९० ॥  
वैदूर्यगर्दभमणि विद्रुकं विषमूषिकाम् ।  
हिमवद्गिरिर्मभूता सोमराजी पुनर्वसाम् ॥ ९१ ॥  
तथा द्रोणा महाद्रोणा मानसी सर्पजं मणिम् ।  
विषाणि विषसांस्पर्षं शीर्यन्ति च धारयेत् ॥ ९२ ॥

रात्रौसंचारेच्छत्रमर्द्धरधारणम्—

छत्री शर्कराणिश्च चरेत्तत्रो विशेषतः ।  
तच्छठायावद्धवित्रताः प्रणश्यन्ति मुञ्च्यमाः ॥ ९३ ॥

१ वैगन्धिकः कीरदूषः । २ कर्कतं पयरागः । मरकतमणिः 'पुष्कराज' ।  
भूयमाणयो विद्याः । शर्करः 'पुष्प' इति हिन्दी । छत्रछायायमानं सोहमयंकष्ट  
काकरम् ।

## सप्तत्रिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतः कीटलूतादिविपप्रतिषेधं व्याख्यास्यामः ।

चतुर्विधाःकीटाः—

सर्पणामेव विष्मूत्रशुक्रांडशक्नोयजाः ।

दोषं व्यस्तैः समस्तैश्च युक्ताः कांटाश्चतुर्विधाः ॥ १ ॥

वायव्यकीटदष्टलक्षणम्—

दष्टस्य कीटैर्वायव्यदंशस्तोदरजोत्वणः ।

आग्नेयकाटदष्टलक्षणम्—

आग्नेयैरल्पसंज्ञावो दाहुरागावसर्पवाक् ॥ २ ॥

पक्षपीलुकलप्रस्थः सर्जूरसदृशोऽयवा ।

कफाधिककाटदष्टलक्षणम्—

कफाधिकैर्मंदरुजः पकोदुंबरसंनिभः ॥ ३ ॥

त्रिदोषाधिककीटदष्टलक्षणम्—

सावाढ्यः सर्वलिगस्तु विवर्ज्यः मानिपातिकैः ।

कीटेषुसर्पवत्खंगाः—

वेगाश्च सर्पवन्धोको वधिष्णुविसरत्तता ॥ ४ ॥

शिरोक्षिगीरवं भूर्छा भ्रमः श्वासोऽविवेदना ।

सर्वेषां दंशानां कर्णिकाद्याः—

सर्वेषां कर्णिका शोको ज्वरः कंठररोचकः ॥ ५ ॥

घृश्चिक ( विच्छिद ) दंशलक्षणम्—

घृश्चिकस्य विषं तोदनमादौ दहति बल्लिवत् ।

ऊर्ध्वमारोहति क्षिप्रं दंशे पश्चात्तु तिष्ठति ॥ ६ ॥



दंशः सद्योऽतिस्वः श्यावस्तुद्यते स्फुटतोव च ।

त्रिविधावृश्चिका :—

ते गवादिशकृत्कोषादिग्न्यदष्टादिकोयतः ॥ ७ ॥

सर्पकोषाच्च संभूता मदगध्यमहाविषाः ।

मंदाः पीताः सिताः श्यावा रुक्मकूर्चुरमेवकाः ॥ ८ ॥

रोमशा घृहार्वाणो लोहिताः पाङ्कुरोदराः ॥

“धूम्रोदरास्त्रिपर्वाणो मध्यास्तु कपिलाश्वाः ॥ ९ ॥

पिपांगा दावलाश्चिवाः शोणिताभाः

महाविषाः ।

अग्न्याभा द्वर्षकपर्वाणो रक्तासितसितांदराः ॥ १० ॥

महाविषवृश्चिकदष्ट लक्षणम्—

संदष्टः दूनरसगः स्तब्धगान्धो ज्वरादितः ।

खैर्वमन् शोणित कृष्णमिद्रियार्पणसविदन् ॥ ११ ॥

स्विघ्नमूर्छन् विद्युत्कास्यो विह्वलो घेदनाबुदः ।

विशौर्यमाणमांसश्च प्रायशो विजहात्यमूर् ॥ १२ ॥

उचिचटिद्वदष्टलक्षणम्—

उचिचटिगस्तु वक्त्रेण ददात्यभ्यधिकव्ययः ।

साध्यतो वृश्चिकात् स्तर्भ शेकतो हृष्टरोमताम् ॥ १३ ॥

करोति सेकमंगाना ददाः क्षीताबुतेव च ।

उष्ट्रधूमः स एवोक्तो रात्रिचाराच्च रात्रिकः ॥ १४ ॥

वातपित्तोत्तराः कीटाः, श्लेष्मिकाः कर्णभोदुराः ।

प्रायो वातोल्बणविषा वृश्चिकाः सोष्ट्रधूमकाः ॥ १५ ॥

१ गवादिशकृत्कोषाज्जातामन्दाः, दिग्धादिजामघ्नाः सर्पकोषत्राश्चतीक्ष्णाः ।

२ साध्यतः साध्यात् वृश्चिकादत्यधिकव्ययः । ३ स उचिचटिगोवृश्चिकः ।

## क्रिया प्रकारः—

यस्य यस्यैव दोषस्य लिङ्गाधिक्यं प्रतर्कयेत् ।

तस्य तस्योपधैः कुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥ १६ ॥

## चातिकादिविपलक्षणानि—

“हृत्पीडोर्ध्वानिलस्तंभः घिरायामोस्त्रिपर्वस्कृ ।

घूर्णनोद्वेष्टनं गात्रश्यावता चातिके विपे,, ॥ १७ ॥

“संज्ञानाद्योष्णनिश्वासी हृद्दाहः कटुकास्यता ।

मांसावदरण शोफो रक्तपीतश्च पैत्तिके,, ॥ १८ ॥

“छर्चरोचकहृत्त्रासप्रसेकोत्प्लेक्षपीनसैः ।

सर्शरयमुखमाधुर्यैर्विद्याच्छ्लेष्माधिकं विपम्,, ॥ १९ ॥

## चिकित्सा—

पिण्याकेन त्रणालेपस्तैलाभ्यंगश्च चातिके ।

नाडीस्वेदः पुलाकाद्यैर्वृहणश्च विधिहितः,, ॥ २० ॥

पैत्तिकं स्तंभयेत्सेकैः प्रदहैश्चातिशीतलैः ।

“लेखनच्छेदनस्वेदवमनैः श्लैष्मिकं जयेत् ॥ २१ ॥

## त्रिविधकीटानां यथास्वं चिकित्सा—

कीटानां त्रिप्रकाराणां त्रिविधेन प्रतिक्रिया ।

स्वेदालेपनसेकास्तु शोष्णान् प्रायोऽवचारयेत् ॥ २२ ॥

अन्यत्र मूर्छिताहंशपाकतः कोषतोऽथवा ।

## विपघ्नधूपनम्—

भृक्शेताः सर्पपाः पीता गुडो जीर्णश्च धूपनम् ॥ २३ ॥

विपदंतस्य सर्वस्य काषयपः परमत्रयोत् ।

## विपघ्नविधिः—

विपघ्नं च विधिं सर्वं कुर्यात्तमशोषनानि च ॥ २४ ॥

साधयेत्सर्पवद्वष्टान् विषोऽग्रेः कीटवृश्चिकं ।

कीटविपेपानम्—

संदुलीयकतुल्यांशां त्रिवृता सर्पिषा पिबेत् ॥ २५ ॥

याति कीटावपैः कर्पं न कलस इवानिलैः ।

लेपः—

क्षीरिष्ठसखगालेषः सृष्ट्व कीटविषापहः ॥ २६ ॥

मुक्तालपो वरः क्षौप्तोऽदाहृज्वरप्रणुत् ।

सर्वकीटविषघ्नोऽगदः—

वचा हिगुविट्गानि संधर्ष गजपिप्पली ॥ २७ ॥

पाठा प्रतिविषा व्याप काश्यपेन विनिर्मितम् ।

दद्यागमगदं पीरवा सर्वकीटविषं जयेत् ॥ २८ ॥

वृश्चिकदशचिकित्सा—

सद्यो वृश्चिकजं धंसं चक्रतलेन सेचयेत् ।

विदारिर्गधासिद्धेन कबोष्णेनेतरेण वा ॥ २९ ॥

सेकः—

रुवणोत्तममुत्तनं सर्पिषा वा पुनः पुनः ।

मिचेत्कोष्णारनालेन मक्षीरलवणेन वा ॥ ३० ॥

उपनाहो घृते घृष्टः कल्काऽजाम्बाः मसैषवः ।

चूणैर्दशचर्पणम्—

आर्द्रं स्वेदितं धूर्जैः प्रच्छाम प्रतिगारयेत् ॥ ३१ ॥

रजनीसंधवव्योपशिरीषफल्गुण्यजैः ।

लोपादि—

मातुलुगाम्लगोमूत्रपिष्टं च सुरमाश्रजम् ॥ ३२ ॥

लेपः मुक्तोष्णाश्च हितः पिण्याको गोमयोऽपि वा ।

पाने सर्पिर्मधुयुतं क्षीरं वा भूरिदधकं ॥ ३३ ॥

शौपधम्—

पारावतशबृत्पथ्या तगरं विश्वभेषजम् ।

३४ ॥

मर्गवल्लोद्दंष्ट्रा च हति वृश्चिकजं विषम् ।

गुटिका—

हिगुना हरितानेन मातुल्लंगरसेन च ॥ ३५ ॥

लेपांजनाभ्यां गुटिका परमं वृश्चिकापहा ।

लेपनम्—

करंजार्जुनशैलूना<sup>१</sup> कटम्बाः कूटजस्य च ॥ ३६ ॥

शिरीषस्य च पुष्पाणि मस्तुना दंशलेपनम् ।

प्रलेपनम्—

यो मुह्यति प्रश्वसिति प्रलपत्युप्रवेदनः ॥ ३७ ॥

तस्य पथ्यानिद्याहृण्णामंजिष्ठातिविषोपणम् ।

सालाबुवृत वार्ताकरसपिष्टं प्रलेपनम् ॥ ३८ ॥

दध्यादिपानादि—

सर्वत्र चौशालिविये<sup>२</sup> पाययेद्दधिसर्पिणी ।

विष्येत्तिरा विदध्याश्च वमनांजननाशनम् ।

उष्णस्निग्धाम्लमधुरं भोजनं चानिलापहम् ॥ ३९ ॥

लेपः—

नागरं गृहकपोतपुरोषं

बीजपूरकरसो हरितालम् ।

सैचवं च विनिर्हृत्यगदोऽयं

लेपतोलिकुलजं विषमाशु ॥ ४० ॥

अने वृश्चिकदृष्टानां समुदीर्णे भृशं विषे ।

विषेणालेपयेद्दंशमुर्ध्विष्टिगेऽन्यथे विधिः ॥ ४१ ॥

<sup>३</sup>नागपुरीषच्छत्रं राहिषमूर्लं च शेलुतोयेन ।

कुर्याद्गुटिका लेपादियमलविषनाशनी श्रेष्ठ ॥ ४२ ॥

१ शैलुः—श्लेष्मातकः । कटभी ज्योतिष्मती । २ चौशालिवियं वृश्चिकविषम् ।  
नागपुरीषच्छत्रं गजपुरीषजातं छत्रम् ( कुकुरमुत्ता ) ।

कीटविषयान्निगदः—

अर्कस्य दुग्धेन शिरःपवीजं  
त्रिर्भावितं पिप्पलिवूर्णमिश्रम् ।  
एषोऽगदो हन्ति विषाणि कीट-  
भुजंभवूर्तोदुरवृश्चिकानाम् ॥ ४३ ॥

विषमंक्रान्तिरुदगदः—

शिरोऽपुष्पं सकरंजवीजं  
काशमीरजं कुष्ठमन-सिते च ।  
एषोऽगदो रात्रिकवृश्चिकानां  
मंक्रान्तिकारो कवितो जिनेन ॥ ४४ ॥

लूतानां ( मकड़ी ) संख्यानिपये मतानि—

कीटेष्वो दाहणतरा लूताः पोष्या सा जगुः ।  
अष्टाविंशतिरित्येके ततोऽप्यन्ये तु भूयसीः ॥ ४५ ॥  
सहस्ररश्मिबुधरा वर्दण्ये महस्रयाः ।  
बहुप्रवररूपा तु लूतैर्कीर विपात्मिका ॥ ४६ ॥

तत्रहेतुः—

रूपाणि नामतस्तस्या दुर्ज्ञेयान्मपित्सकरात् ।  
नास्ति स्थानव्यवस्था च दोषतोऽतः प्रवदते ॥ ४७ ॥

लूतानां कृत्स्नमाध्यतादि—

बुधुमाध्या पृथग्दीपैरसाध्या निचयेन सा ।

लूतानां शोषभेदेन लक्षणानि—

तद्वत् वैचिकी दाहण्टस्फीटव्वरमोहनात् ॥ ४८ ॥

भृशोष्मा रक्तपीताम्बुः श्वेदी श्लाघाकलोरमः ।

रक्षैर्मिकः कठिनः पादुः परुषकफलाकृतिः ॥ ४९ ॥

१ काशमीरजं केसरम् । २ एके आचार्या अष्टाविंशतिमंक्रमाका लूता इति  
वदन्ति । अन्ये तु भूयसीर्वहुतरा जगुः । सहस्ररश्मिः मुर्याः । ३ स्थान व्यवस्था  
स्थितिनिर्णयः ।

निद्रां शीतज्वरं कासं कंठं च कुरुते भृशम् ।

चातिकाः पक्ष्यः श्यावः पर्वभेदज्वरप्रदः ॥ ५० ॥

तद्विभागं यथास्वं च दोषालिगैर्विभावयेत् ।

असाध्यलूतादष्ट लक्षणम्—

असाध्यायां तु हृन्मोहश्वासहिष्माक्षिरोरजाः ॥ ५१ ॥

श्वेताः पीताः सिता रक्ताः पिटिकाः श्वयपूदभवाः ।

वेपपुर्वमपुर्दाहस्तृडांघ्र्यं वज्रनासता ॥ ५२ ॥

श्यावोष्ठश्वयदंतत्वं पृष्ठश्याववर्भजनम् ।

पक्कजंबूसवर्णं च दंशास्त्रवति द्योणितम् ॥ ५३ ॥

सर्वोपि सर्वजा प्रायो व्यपदेशस्तु भूयसा ।

तस्यास्त्रिप्रकारत्वम्—

तीक्ष्णमध्यावरत्वेन सा त्रिषा हंत्युपेक्षिता ॥ ५४ ॥

सप्ताहेन दशाहेन पक्षेण च परं क्रमात् ।

सर्धलूतादंशलक्षणम्—

लूतादंशश्च सर्वोपि दद्रूमडलसंनिभः ॥ ५५ ॥

सितोऽसितोरुणः पीतः श्यावो वा मृदुलभवः ।

मध्ये कृष्णोऽथवा श्यावः पूर्यते जालकावृतः ॥ ५६ ॥

१ - बिसर्पवांश्लोकयुतस्तप्पते बहुवेदनः ।

ज्वरादुपाकविकन्दकोद्यावदरुणान्वितः ॥ ५७ ॥

क्लेदेन यत्स्पृशत्यर्गं तत्राऽपि कुरुते व्रणम् ।

अष्टप्रकारतोलूनाविषोद्धमनम्—

श्वासदंष्ट्राश्चकृन्मूत्रशुक्रज्वालानखातर्वैः ॥ ५८ ॥

अष्टाभिरद्रमत्येषा विषं वक्तव्यविशेषतः ।

लूनाकीटयोर्दशस्थानम्—

लूता नाभेदंशलूध्वंमूध्वं चऽथ अ कीटकाः ॥ ५९ ॥

तद्वृत्तितं च वस्त्रादि देहे पृक्तं विकारवृत् ।

प्रथमादिदिनेषु लक्षणानि—

दिनार्थं लक्ष्यते नैवं दंशो लूताविषोदम्बः ॥ ६० ॥

मूर्धाव्यधवदाभाति ततोऽधो प्रथमेऽहनि ।

अव्यक्तवर्णः प्रचलः किञ्चित्कर्तृहृदयान्वितः, ॥ ६१ ॥

द्वितीयेऽभ्युन्नतोतेषु पिटकैरिव वा चितः ।

व्यक्तवर्णी नतो मध्ये कङ्कमान् ग्रथितनिभः ॥ ६२ ॥

तृतीये सज्जरां रोमहर्षकुद्रक्तमण्डलः ।

शरावरूपस्तोदाढ्यो रोमकूपेषु सल्लवः, ॥ ६३ ॥

महोरचतुर्थे श्वयद्युस्तापश्वामधमप्रदः ।

‘विकारान् कुरुते तास्तान् पञ्चमे विषकीपजान्, ॥ ६४ ॥

षष्ठे व्याप्नोति भ्रमणिं भ्रममे हन्ति जीवितम् ।

इति तीक्ष्णं विषं मध्यं हीनं च विभजेदतः ॥ ६५ ॥

पृक्तविरासिरात्रेण विषं शाम्यति मर्यादा ।

लूतादंशचिकित्सा—

अथाशु लूतादष्टस्य शस्त्रेणादंशमुद्धरेत् ॥ ६६ ॥

दहेच्च जायवौष्ठाद्यैर्न नु पित्तोत्तरं दहेत् ।

कर्कशं भिन्नरोमाणं मर्मसंघ्यादिसंभितम् ॥ ६७ ॥

प्रसृतं सर्वतोदंशं न छिदीत दहेच्च च ।

क्षेपयेद्दग्धमगदीर्मधुर्मधवर्मपुतः ॥ ६८ ॥

मुशीरैः सेचयेच्चानु कषायैः क्षीरिवृषाजैः ।

‘सर्वजोपहरेद्रक्तं शृगालैः सिरयाऽपि वा ॥ ६९ ॥

सेकाक्षेपास्ततः पीतः ॥ बोधिः श्लेष्मातकासकैः ।

कलिनीद्रिनिवासीदसपिभिः ॥ ७० ॥

अनेपलूता कोटानामगदः मार्बकर्मिकः ।

“हरिद्राद्रपस्तं गर्माग्निश्चानतकैरैः ॥ ७१ ॥

१ सर्वतोऽस्तमपहरेद्रक्ते विस्त्रायेत् । २ बोधिः पित्रलः ।

सक्षौद्रसर्पिः पूर्वस्मादधिकश्चंपकाह्वयः ।,

“तद्वद्रोमयनीष्पीडाशर्कराघृतमाधिकः., ॥ ७२ ॥

लृतात्रिपघ्नावगद्दी—

“अपामार्गमनोह्वालदार्वोष्णामकगैरिकैः<sup>३</sup> ।

नतैलाकुष्टमरिचयष्टचाह्वृतमाधिकः ॥ ७३ ॥

अगदो मंदरो नाम तथाऽन्या गंधमादनः ।

नतरोघ्रवचाकट्वीपाठैलायन्नकुंकुमैः ॥ ७४ ॥

विशोधनम्—

विपन्नं बहुदोषेषु प्रयुज्यते विशोधनम् ।

धमनम्—

“यष्टपाह्वमदनाकोल्लजालिनीत्रिदुवारिकाः ॥ ७५ ॥

कफे श्रेष्ठानुना पीत्वा विपमाशु समुद्रमेव ।

विरेचनम्—

शिरीषपत्रवड्मूलफलं वांकोल्लमूलवत् ॥ ७६ ॥

विरेचयेच्च त्रिफलानीलिनीत्रिवृतादिभिः ।

कर्णिकापातनम्—

निवृत्ते दाहघोषादौ कर्णिकां पातयेद्दणात् ॥ ७७ ॥

कुमुभतुष्पं गोदंतः स्वर्णक्षीरी कर्पातविद् ।

त्रिवृता मैषवं दंती कर्णिकापातनं तथा ॥ ७८ ॥

मूलमुत्तरवारुण्या वंशनिर्लेखमंयुतम् ।

तद्वच्च सीषवं कुष्ठं दंती वटुकदीग्विवम् ॥ ७९ ॥

राजकोशातकीमूलं किंशो वा मथितोद्भवः ।

बृंहणम्—

कर्णिकापातममये बृंहयेच्च विपापहैः ॥ ८० ॥



स्नेह प्रयोग विधि :—

स्नेहकार्यमग्रे च सर्पिष्व सगानरेत् ।

विपश्य वृद्धये तैलमग्नेरिव तृणोपुतम् ॥ ८१ ॥

अगदत्रयम्—

“ह्रीवेर्यकंकस्तगोपकन्या-

मुस्ताममीचदनट्टिकानि ।

शैवालनोभोत्पलवक्रपट्टी-

त्वन्नाकुलोपदमकराटमध्यम् ॥ ८२ ॥

( २ )

“रजबीपगमर्पलोचना-

कणशुष्ठीकणमूलचित्रकाः ।

वरुणागुरुबिल्वपाटली-

पिचुर्मदाभयजेलुकेरम्” ॥ ८३ ॥

( ३ )

“बिल्वचदननतोत्पलशुष्ठी-

पिप्पलीनिबुलवेतसकुक्षम् ।

शुक्तिशाकवरपाटलिभार्गी-

मिषुवारकरपाटवरंभम्” ॥ ८४ ॥

पित्तफणिलिनुताः घानाञ्जननस्यलेगमेवेन ।

अगदवरा <sup>१</sup>वृत्तस्थाः कुमतीरिव वारपत्येते ॥ ८५ ॥

१ ह्रीवेरं बालम् । वृत्तं त-सुवावृत्तः । गोपकन्या श्वेतगारिका ।  
ट्टिकाः स्योनाकः, वक्रं तद्वत् । नाकुलो रास्नाभेदः । राठो घदनकम् ।  
२ सर्पलोचना सर्पाग्नी सहदेवी च । कषा पिप्पली । करपाटो मदनः ।  
पाकवरोजीवन्ती । ३ वृत्तस्थाश्छन्दावद्धा अगदवरा । अथवा-अलङ्घितवर्तव्या-  
वर्तव्यमर्पादाः पुरपाः ।

लूताघ्नोऽगदः—

‘रोधं सेव्यं पद्मकं पद्मरेणुः  
कालीयार्घ्यं चंदनं यच्च रत्नम् ।  
कांतापुष्पं दुग्धिनीका मृणालं  
सूताः सर्वा धन्ति सर्वत्रियाभिः ॥ ८६ ॥

## अष्टत्रिंशोऽध्यायः ।

अथातोः मूपिकात्कर्त्रिपतिपेधं व्याख्यास्यामः ।

अष्टादशमूपिकाः ( मूषा )—

“लालनध्वजः पत्रोद्गिरिभ्रिकिरोजिरः ।  
कपायदतः मूलकः फोडिलः कपिलोऽमितः ॥ १ ॥  
अरुणः शवलः श्वेतः कपोतः रलितोदुरः ।  
शुक्लुदरो रमालाह्वो दशाष्टी चेति मूपिकाः ॥ २ ॥

एषां विष प्राप्तिप्रकारः—

शुक्लं पतति यत्रैषां शुक्रदिव्यैः स्पृशति वा ।  
मर्दयमर्गैस्तत्रास्ते दूषिने पांहता गते ॥ ३ ॥  
शंखयः श्वयथुः कोयो मंडलानि भ्रमोऽश्चिः ।  
शीतज्वरोऽतिरक्पादो वेपथुः पर्वभेदनम् ॥ ४ ॥  
रोमहर्षः स्फुतिर्मूर्छा दीर्घकालानुबंधनम् ।  
श्लेष्मानुबद्धबद्धाखुपोतकच्छर्दनं सतृट् ॥ ५ ॥

१ कान्ताघवः प्रियहृगुर्वा । दुग्धिनीका “दूधिया” लोके । २ श्लेष्मयुक्त-  
बहुमूपिकार्भकवमनं प्रमावात् ।

**आसुविपंसर्वदेहव्यापनम्—**

अयाम्यासुविषं कृच्छ्रं भूयो भूयश्च कुप्यति ।

**असाध्यमूपिकदष्ट लक्षणम्—**

मूर्छागदोफवैवर्ध्न्यक्तेदसन्दाश्रुतिज्वराः ॥ ६ ॥

शिरोगुस्त्रवं सालासुवटदिआसाध्यलक्षणम् ।

**असाध्यता—**

धूनवस्ति विवर्णोद्यमाकृताभैर्वैषिचिचितम् ॥ ७ ॥

धुच्छुं देरसर्गं च पञ्चयेदाबुद्धयितम् ।

**विषयुक्तकुक्कुर लक्षणम्—**

धूनः स्नेहमोत्वणा दोषाः नञ्ज्ञां संज्ञावहाश्रिताः ॥ ८ ॥

मुष्णतं कुर्वतं क्षोभं धातूनामतिदाहणम् ।

लालावानंभधिरः सर्वतः<sup>१</sup> सोऽभिधावति ॥ ९ ॥

सस्तपुच्छहनुस्त्रंमशिरोदुःखी नवाननः ।

**अलकदष्टलक्षणम्—**

दंशस्तेन<sup>२</sup> विदष्टस्य मुक्तः कृष्णं दारस्यसूक् ॥ १० ॥

हृच्छिरोदग्ज्वरस्तंभस्तृणामूर्छोद्भवोऽनु च ।

अनेनाम्येऽपि बोद्धव्या ब्याला दक्षाप्रहारिणः ॥ ११ ॥

**सविपनिर्विपालकादिदष्टलक्षणम्—**

कङ्कनिस्तोदर्ववर्धमुत्तिक्तेदज्वरप्रभाः ।

विदाहाराग्रहस्याकथोषमंषिविकुचनम् ॥ १२ ॥

दंशावदरणं स्फोटः कर्णिक मंडलानि च ।

सर्वत्र सखिषे लिङ्गं, विपरीतं तु निर्विषे ॥ १३ ॥

### दंशकर्तुरचेष्टकारणे मरणम्—

दष्टो येन तु तच्चेष्टा रतं कुर्यन्विनश्यति ।  
पश्यंस्तमेव चापस्मादादर्शालिलादिषु ॥ १४ ॥

### जलसंत्रासान्मरणम्—

योऽद्भ्यस्त्रस्मेददष्टोऽपि शब्दसंस्पर्शदर्शनैः ।  
जलसंत्रासनामानं दष्टं तमपि वर्जयेत् ॥ १५ ॥

### भूपिकदंशचिकित्सा—

आधुना दष्टमात्रस्य दर्शं काष्ठेन दाहयेत् ।  
दर्पणेनाथवा तीव्ररुजा स्यात्कर्णिकान्यथा, ॥ १६ ॥  
“दग्धं विस्त्रावयेद्दंशं प्रच्छिन्नं च प्रक्षेपयेत् ।  
शिरीषरजनीषक्रतुं कुमामृतयन्निभिः, ॥ १७ ॥  
“अगारधूममंजिष्ठा रजनीलवणोत्तमैः ।  
क्षेपो जमत्याधुविषं कर्णिकायाञ्च पातनः” ॥ १८ ॥  
“ततोऽम्लैः क्षालयित्वाऽनु तोयैरनु च लेपयेत् ।  
“पालिंदीश्वेतकटभीबित्त्वमूलगृह्णन्निभिः, ॥ १९ ॥  
“अन्यैश्च विपद्यां फल्नैः, सिरां वा मोक्षयेद्दुतम् ।,  
छुर्देनं नीलिनीकार्षः शुकारूपांकोल्लयोरपि ॥ २० ॥  
कोशातकयाः शुकारूपायाः फलं जीमूतकस्य च ।  
मदनस्य च सचूर्णं दध्ना पीत्वा विषं क्षमेत् ॥ २१ ॥  
वचामदनजीमूतकुष्ठं वा मूत्रपेपितम् ।  
पूर्वनल्पेन पातव्यं सर्वोदुरविषापहम् ॥ २२ ॥  
विदेचनं त्रिवृत्तीलीत्रिफलाकल्क इष्यते ।,  
“अंजनं गोमयसो व्योषगृध्रमरजोन्वितः, ॥ २३ ॥  
“कपित्थगोमयसो मधुमानचलोहनम् ।,  
“तंदुलीयममूलेन सिद्धं पाने हितं घृतम्” ॥ २४ ॥

“द्विनिशाकटभोरक्तौघघ्राह्वर्वाभ्रुतान्वितः ।”  
 आस्फोटमूलसिद्धं, वा ‘पंचकापित्थमेव वा, ॥ २५ ॥  
 “मिदुवारनतं शिग्रुबिल्वमूलं पुनर्नवा ।  
 वचाश्वदंष्ट्राजीभूतमेपा क्वाथं समाश्लिकम् ॥ २६ ॥  
 पिवेच्छात्योदनं दध्ना भुञ्जानो भूपिकादितः ।,  
 “तत्रेण घरपुखाया बीजं संपूर्णं वा पिवेत्, ॥ २७ ॥  
 “अंकोल्लमूलकल्की वा वस्तमूत्रेण कल्कितः ।  
 पानालेपनयोर्युक्तः सर्वास्त्रुविपनाशनः, ॥ २८ ॥  
 “कपित्थमप्यतिलकतिलाकोल्लजटाः पिवेत् ।  
 गवां मूत्रेण पयसा मंजरी तिलकस्य वा, ॥ २९ ॥  
 “अथवा सैयंकान्मूलं सद्योद्रं तदुलानुना ।,  
 “कटुकालाबुविन्यस्तं पीतं वाबु निघोषितम्, ॥ ३० ॥  
 “सिदुवारस्य मूलानि बिडालास्थिविषं नतम् ।  
 जलापिष्टो गदो हृति नस्यालंराखुनं विषम्, ॥ ३१ ॥  
 “सशेषं भूपिकविषं प्रकुप्यत्यधदर्शने ।  
 यथायथं वा कालेषु दीपाणा वृद्धिहेतुषु” ॥ ३२ ॥  
 “तत्र सर्वे यथावस्यं प्रयोज्याः स्वरूपक्रमाः ।  
 यथास्वं ये च निदिष्टास्तथा दूषोविषापहारा” ॥ ३३ ॥

अलकदंष्ट्रचिकित्सा—

दंशं हलकदंष्ट्रस्य दग्धमुष्णेन सर्पिषा ।  
 प्रदिग्हादगदंस्तीर्तः पुराणं च घृतं पिवेत् ॥ ३४ ॥  
 ‘अर्कधीरयुतं चाऽस्य योज्यमाद्यु विरेचनम् ।,  
 अंकोल्लात्तरमूलाबु त्रिफलं सहविः पलम् ॥ ३५ ॥  
 पिवेत्पायसतूरफलां श्वेतां वाऽपि पुनर्नवाम् ।  
 “ऐकध्वं” पललं तैलं रूपिकायाः पयो गुडः ॥ ३६ ॥

१ रक्त मजिष्ठा । २ कपित्थस्येमानिकापित्त्यानि पंच च तानि कापित्त्यानि  
 तैः सिद्धं पञ्चकापित्तम् । कपित्थस्य मूलत्वकूपत्रपुष्पफलानीति पञ्च । ३ तिल-  
 कास्यो वृषाः । ४ पललं भृष्टतिलचूर्णम् । रूपिका अर्कः ।

भिनत्ति विषमालर्कं घनबुंदमिवानिलः ।,

समंत्रं सौषधीरत्नं स्नपनं च प्रयोजयेत् ॥ ३७ ॥

चतुष्पदादिनखादिदन्तलिङ्गम्—

चतुष्पादभिद्विपादभिर्वा नखदंतपरिस्सृतम् ।

क्षूयते पच्यते रागज्वरस्त्रावरुज्जान्वितम् ॥ ३८ ॥

तत्रचिकित्सा—

सोयवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपादिका ।

रजन्यो गैरिकं लेपो नखदंतविषापहः ॥ ३९ ॥

इति विषतंत्रं पठं समाप्तम् ।

## एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ।

अथाऽतो रसायनाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

रसायनादीर्घायुःप्रभृतिप्राप्तिः—

“दीर्घमायुः स्मृति मेघामारोग्यं वरुणं वयः ।

प्रभावर्णस्वरीदार्यं देहेंद्रियबलीदयम् ॥ १ ॥

वाक्सिद्धिं वृषतां कतिमवाप्नोति रसायनात् ।

लाभोऽप्यसौ हि धस्तानां रसादीनां रसायनम् ॥ २ ॥

रसायनप्रयोगस्यवयः—

पूर्वं वयसि मध्ये वा उत्तमोर्ज्यं जितात्मनः ।

जिगृहस्य सुतरक्तम्यं विशुद्धस्य च सर्वथा ॥ ३ ॥

१ अत्र मेघाघ्नो सामान्यतो युद्धघर्षवाचकः । मेघार्थस्य स्मृतिघन्देनोपातत्वात् ।

## अविशुद्धशरीरे रसायनं निष्फलम्—

अविशुद्धे शरीरे हि युक्तो रसायनो विधिः ।  
वाजीकरो वा मलिनं बले रंग इवाफलः ॥ ४ ॥

## रसायनां द्विविधः प्रयोगः—

रसायनानां द्विविधं प्रयोगमृपयो विदुः ।  
कुटीप्रावेशिकं मुख्यं वातातपिकमन्यथा ॥ ५ ॥

## कुटी प्रावेशिकविधिः—

निवर्ति निर्मये हर्म्ये प्राप्योपकरणे पुरे ।  
दिग्गुदीनां धुमे देते त्रिगर्भां सुदमलोचनाम् ॥ ६ ॥  
धूमात्परजोभ्यालस्त्रीमूर्खाद्यविलक्षिताम् ।  
सज्जवैद्योपकरणां मुमुक्षा कारयेत्कुटीम् ॥ ७ ॥  
अथ पुण्येऽह्नि संपूज्य पूज्यांस्तां प्रविशेज्जुषिः ।  
तत्र संशोधनं धुदः सुखी जातबलः पुनः ॥ ८ ॥  
ब्रह्मचारी धृतियुतः श्रद्धयानो जितेन्द्रियः ।  
दानशीलदयासत्यप्रतर्धमपरायणः ॥ ९ ॥  
देवतानुस्मृती युक्तो मुक्तद्वेषप्रज्ञागरः ।  
प्रियोपधः पेशलवाक् प्रारभेत रसायनम् ॥ १० ॥

## रसायनार्थशुद्धिकरणम्—

हरीतकीमामलकं सैषर्षं नागरं वधाम् ।  
हरिद्रो पिप्पली बेल्लं गुडं क्षोष्णांनुता पिबेत् ॥ ११ ॥  
क्षिप्यः स्विप्तो नरः पूर्व, तेन सारु विरिज्यते ।  
ततः शुद्धशरीराय कृतसंसर्जनाय च ॥ १२ ॥

१ कुटी प्रावेशेन निर्वृतं कुटीप्रावेशिकं । वातातपाम्नां कृतं वातातपिकम् ।  
त्रिगर्भा-त्रयोगर्भा अन्तराणि यस्याः सा त्रिगर्भा । प्रथमेकगृहं सदस्यन्तरे द्वितीयं  
तरयाभ्यन्तरे तृतीयमेवं त्रिगर्भा । सञ्ज्ञानि-उपस्थापितानि वैद्योपकरणानि-भेषज्या-  
दीनिपस्यां ता । मुमुक्षां लेपादिना शुद्धाम् ।

## इत्थं संस्कृतकोष्ठस्य रसायनं देयम्—

इत्थं संस्कृतकोष्ठस्य रसायनमुपाहरेत् ।  
 यस्य यद्यौमिकं पश्येत्सर्वमालोभ्य सात्त्विकम् ॥ १४ ॥  
 त्रिरात्रं पंचगव्यं वा सप्ताहं वा घृतान्वितम् ।  
 'दद्यादावकमायुर्द्वेः पुराणसंस्कृतोऽप्यथा ॥ १५ ॥

## त्राह्वारसायनम्—

पथ्यासहस्रं त्रिगुणधात्रीफलसमन्वितम् ।  
 पंचानां पंचमूलानां सार्धं पलद्यतद्वयम् ॥ १५ ॥  
 जले दण्डगुणे पक्त्वा दशभागस्थिते रसे ।  
 आपोऽप्य कृत्वा व्यस्थीनि विजयामलकान्यथ ॥ १६ ॥  
 'विनीय तस्मिन्निर्पूहे योजयेत्कुडवांशकम् ।  
 त्वगेलायुस्तरजनीपिप्पल्यगुरुचंदनम् ॥ १७ ॥  
 'भृङ्गकर्णिकनकसंक्षुप्पीवचाश्लवम् ।  
 यष्टपाह्वय विट्मं च चूर्णितं, तुलयाधिकम् ॥ १८ ॥  
 मितोपलार्धभारं च पात्राणि शोणि सर्पिषः ।  
 द्वे च तैलात् पचेत्सर्वं तदष्टौ सेहतां गतम् ॥ १९ ॥  
 अवतीर्णं हिमं युज्याद्विंशः क्षौद्रशतैस्त्रिभिः ।  
 ततः क्षत्रेण मथितं निदध्माद् घृतभाजने ॥ २० ॥  
 या नोपरुष्यादाहारमेकं मात्रास्य सा स्मृता ।  
 पट्टिकः फणसा चाऽत्र जीर्णे भोजनमिव्यते ॥ २१ ॥

—१ यावकं यवकृतमग्नम् । ( जव की वाली ) ।

२ धात्रीफलत्रिगुणसहस्रान्वितम् । दशभागोदस्तांशभागः । आपोऽप्य मृदित्वा ।  
 ३ व्यस्थीनि अस्तिरहितानि । विजया-पथ्या । ४ विनीयप्रक्षिप्य, त्वगेलोदीनि  
 पुण्ड्रप्रमाणानि प्रत्येकंप्राह्वानि । ५ कनकं नागकेसरम् । श्लवोमुस्ता । पात्र-  
 मादकम् ।



वैखानसा बालसित्यास्तथा चाऽन्ये तपोयनाः ।

ब्रह्मणा विहितं घन्यमिदं प्राप्य रसायनम् ॥ २२ ॥

तद्वाश्रमबलमवलीपलितामयवज्रिताः ।

मेधास्मृतिवलोपेता बभ्रुरमितायुषः ॥ २३ ॥

### अभयामलकरसायनम्—

अभयामलकसहस्रं निरामयं<sup>१</sup> पिप्पलीसहस्रयुतम् ।

तत्पुष्पाक्षराक्षरद्वीकृतं स्थापयेद्भाडे ॥ २४ ॥

उपयुक्ते च सारे छायासंयुक्तचूर्णितं योग्यम् ।

पादाशेन मितायाश्चतुर्गुणाम्या मधुघृताभ्याम् ॥ २५ ॥

तद् घृतकुम्भे भूमौ निधाय पण्माससंस्थमुद्धृत्य ।

पाद्वै प्राप्य मयानलमुचिताहारो भवेत्सततम् ॥ २६ ॥

हर्युपयुज्याऽशेषं वर्षशतमनामयो जरारहितः ।

जीवति बलपुष्टिवपुःस्मृतिमेधाद्यन्वितो विशेषेण ॥ २७ ॥

### आमलकरसायनम्—

नीरुमात्रं पलाशस्य छिन्ने धिरसि तत्सतम् ।

अंतर्दिहस्तं गंभीरं पूर्यमामलकैर्नवैः ॥ २८ ॥

आमूलं वेष्टितं दर्भैः पथिनीपक्वलेपितम् ।

आदीप्य गोमयैर्वर्ण्यनिवति स्वेदयेत्ततः ॥ २९ ॥

स्विन्नानि तान्यामलकानि तृपया

खादेन्नरः क्षीद्वृत्तान्वितानि ।

१ चतुर्विधेषुवानप्रस्थेषु वैखानसबालसित्यावितिभेदयम् । एतयोर्लक्षणं षण्ण्वस्मृती यथा—अष्टष्टापथ्यौषधिभिर्षामवहिष्कृताभिरग्निहोत्रादि कुर्वन् वैखानस उच्यते । यस्तु जटावल्कलधारी अष्टौ मासान् कृत्युपार्जनं कृत्वा चातुर्मास्ये सङ्गृहीताद्यो कार्तिवर्षा संगृहीतपुष्पफलत्यागो न बालसित्यः । २ निरामयं निर्दोषम् ।

क्षीरं शृतं चाऽनु पिबेत्प्रकामं  
 तेनैव वर्तेत च मासमेकम् ॥ ३० ॥  
 वर्ज्यानि वर्ज्यानि च तत्र यत्ना-  
 त्स्पृश्यं च शीतानु न पाणिनाऽपि ।  
 एकादशाहेऽस्य ततो व्यतीते  
 पतंति केचा दधना नखाश्च ॥ ३१ ॥  
 अथाल्पकैरेव दिनैः सुरूप-  
 स्त्रीष्वभयः कुंजरतुल्यवीर्यः ।  
 विशिष्टमेघावलबुद्धिसत्त्वो  
 भवत्यसौ वर्षसहस्रजोषा ॥ ३२ ॥

अथवनप्राशोऽवलेहः—

दधमूलवलामुस्तजीवकर्मभक्तोत्पलम् ।  
 पर्णिव्यो पिप्पली शृंगी मेदा तामलकी त्रुटिः ॥ ३३ ॥  
 जीवर्ता जोगकं द्राक्षा पीष्करं चंदनं सठी ।  
 पुनर्नवाद्रिकाकोलीकाकनासाभुवाह्वयाः ॥ ३४ ॥  
 विदारो वृषमूलं च तर्दकघ्नं पलोन्मितम् ।  
 जलद्रोणे पचेत्पंचधात्रीफलघृतानि च ॥ ३५ ॥  
 पादक्षेपं रसं तस्मादभ्यर्च्यन्ध्यामलकानि च ।  
 गृहीत्वा भर्जयेत्तलघृताद् द्वादशभिः पलैः ॥ ३६ ॥  
 भर्त्स्यट्टिकासुलाघेन युक्तं तलेह्वत् पचेत् ।  
 स्नेहार्धं मधु मिद्रे तु तक्क्षीयश्चितुष्पलम् ॥ ३७ ॥  
 पिप्पल्या द्विपलं तद्याद्यनुर्जतं कणार्धितम् ।  
 अतोऽवलेहयेन्मात्रां कुटीस्थः पथ्यभोजनः ॥ ३८ ॥  
 इत्येष च्यवनप्राशो यं प्राश्य च्यवनो मुनिः ।  
 जराजर्जरितोऽप्यासोप्राचीनयवनन्दनः ॥ ३९ ॥

१ तामलकी भूम्यामलकी । २ जीवकमगुह ।

कासं श्वासं ज्वरं शोथं हृद्दोर्गं वातशोणितम् ।  
मूत्रशुक्राश्रयान् दोषान् वैस्वर्यं च व्यपोहति ।  
बालवृद्धदातदोषकृद्धानामेकवर्धनः ॥ ४० ॥

मेघां स्मृतिं कातिमनामयत्व-  
मायुःप्रकर्षं पवनानुलोम्यम् ।  
स्त्रीषु प्रहर्षं बर्लामिद्विधाणा-  
मग्नेश्च कुर्याद्विधिनोपयुक्तः ॥ ४१ ॥

### त्रिफलारसायनम्—

मधुकेन तवक्षीर्या पिप्पल्या सिधुजम्पना ।  
पृथग्लोहेः मुखेनैव वचया मधुसर्पिषा ॥ ४२ ॥  
सितया वा समायुक्ता गमायुक्ता रसायनम् ।  
त्रिफला सर्वरोगघ्नी मेघायुःस्मृतियुद्धिदा ॥ ४३ ॥

### मण्डूकपर्ण्यादिरसायनानि—

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसं यथाग्निं  
क्षीरेण महीमधुवत्स्य भूर्णम् ।  
रसं गुह्ययाः सहमूलपुण्याः  
कर्त्तुं प्रयुञ्जीत च दाक्षपुण्याः ॥ ४४ ॥  
आयुःप्रदानामयनाशनानि  
मलाश्लिवर्णस्वरवर्णनानि ।  
मेघ्यानि चैतानि रसायनानि  
मेघ्या विशेषेण तु दाक्षपुण्या ॥ ४५ ॥

### रसायनं घृतम्—

गलदं मन्दुरोहिणी पयस्या  
मधुकं चंदनसारिवोषणंघाः ।

१ पृथग्लोहाः पञ्चस्थिताः समीकवद्भाययानि । गमायुक्ता मयैः मयैः युक्ता  
सेविता । समायुक्ता युक्तासहिता ममायुक्ता, पूर्णं वर्षं मेविता वा ।

त्रिफला कटुकत्रयं हरिद्रे  
 सपटोलं लवणं च तैः सुपिष्टैः ॥ ४६ ॥  
 त्रिगुणेन रसेन शंसपुष्प्याः  
 सपयस्कर्षं घृतनल्वर्णं विपक्वम् ।  
 उपयुज्य भवेज्जडोऽपि वाम्नी  
 श्रुतघारी प्रतिमानवानरोगः ॥ ४७ ॥

### पञ्चारविन्द घृतम्—

पेप्यैर्मृणालविसर्केसरपत्रबीजैः  
 सिद्धं सहेमशकलं पद्मसा च सर्पिः ।  
 पञ्चारविन्दमिति तत्प्रमितं पृथिव्यां  
 प्रभ्रष्टपोक्ष्यबलप्रतिभैतिपेयम् ॥ ४८ ॥

### क्षतुःकुवलय घृतम्—

यन्मालकंददलकेसरवद्विपक्वं  
 नीलोत्पलस्य तदपि प्रमितं द्वितीयम् ।  
 सर्पिश्क्षतुःकुवलयं सहिरण्यपत्रं  
 मेथ्यं गवामपि भवेत् किमु मानुषाणाम् ॥ ४९ ॥

### जरादिरहितकरंभेषजम्—

ग्राहोवचासैधवशंतपुष्पी-  
 मत्स्यादारुग्रहामुवर्धलेक्षपः ।  
 वैदेहिका च त्रियवाः पृथक्स्फु-  
 र्यंबी गुवर्णस्य तिलो विपत्य ॥ ५० ॥  
 मणिपत्र पलमेकत एत-  
 द्योजयेद्वारिणते च घृताढ्यम् ।  
 भोजनं यमघु वरगरमेवं  
 शीलयप्रधिकर्षास्मृतिमेधः ॥ ५१ ॥

अतिक्रान्तजराव्याधितंद्रालस्यश्चमक्लमः ।

शोबत्पद्मदशतं पूर्णं श्रीतेजःकांतिदीप्तिमान् ॥ ५२ ॥

विशेषतः कुष्ठकिलासगुल्म-

विपज्वरोन्मादगरोदराणि ।

अथर्वमंत्रादिकृताश्च कृत्याः

शाम्पस्यनेनातिबलाश्च वाताः ॥ ५३ ॥

**नागयला ( गुलशकरी-गंगेरज ) प्रयोग :—**

क्षारमुचे नागबलां पुष्पयोगे समुद्धरेत् ।

अक्षमात्रं ततो मूलाच्छूर्णितात्पयसा पिबेत् ॥ ५४ ॥

लिह्यान्मधुघृताभ्यां वा क्षारवृत्तिरनघ्नभृक् ।

एवं वर्षप्रयोगेण जीवेद्वर्षातं बली ॥ ५५ ॥

**गोधुरक ( गोखुर ) रसायनम्—**

१ फलोन्मुखो गोधुरकः समूल-

शृङ्गादिषुष्कः सुविघूर्णिताः ।

मुभावितः स्वेन रमेन तस्मा-

म्प्रात्रा परो प्रासुतिकी पिबेत् ॥ ५६ ॥

क्षीरेण तेनैव च क्षालिमभन्

जीर्णं भवेत्स द्वितुलोपयोगात् ।

क्षतः मुखः सुभगः क्षतायुः

कामी ककुप्सानिव गोकुलस्थः ॥ ५७ ॥

**वाराहीकन्दप्रयोग :—**

वाराहोर्कन्दमाहार्द्धं क्षीरेण क्षीरपः पिबेत् ।

मामं निरयो, मामं च क्षीराप्राप्तो जरां जयेत् ॥ ५८ ॥

तत्कर्दशूष्णचूर्णं -। स्वरसेन मुभावितम् ।

पृथग्दीप्नुते लिह्यात्तत्पर्वं वा घृतं पिबेत् ॥ ५९ ॥

### विदार्यादयोवयःस्थैर्यादिप्रदाः—

तद्दिदार्यातिबलाबलामधुकवायमीः ।  
 श्रेयसी श्रेयसी युक्ताः पथ्याघातोस्थिरामृताः ॥ ६० ॥  
 मंहक्रीशंशकुसुमावाजिगंधाशतावरीः ।  
 उपयुंजोत मेधावी वयःस्थैर्यबलप्रदाः ॥ ६१ ॥

### चित्रक रसायनम्—

यथास्वं चित्रकः पुष्पैर्ज्ञेयः पीतासतामिर्तः ।  
 यथोत्तरं म गुणवान् विधिना च रसायनम् ॥ ६२ ॥  
 छायाद्युष्कं ततो मूलं मांसं चूर्णाकृतं लिहन् ।  
 मपिषा मधुमपिम्यौ पिबन् वा पयसा यतिः ॥ ६३ ॥  
 अमसा वा हिताग्नाशी घृतं जीवति नीरजः ।  
 मेधावी बलवान् कातो वपुष्मान् दीप्तरावकः ॥ ६४ ॥  
 तैलेन लीडो मासेन वांतान् हति सुदुस्तरान् ।  
 मूत्रेण श्वित्रकुष्ठानि पीतस्तक्रेण पायुजान् ॥ ६५ ॥

### भल्लातकरसायनम्—

भल्लातकानि पुष्टानि धान्यराशी निभापयेत् ।  
 ग्रीष्मे संशुष्क्य हेमन्ते स्वादुस्निग्धहिर्मवपुः ॥ ६६ ॥  
 संशुश्य तान्यष्टगुणे सतिग्नेऽष्टी विपाचयेत् ।  
 अष्टांशदिष्टं तत्क्राथं सशीरं क्षीतलं पिबेत् ॥ ६७ ॥  
 वर्धयेत्प्रत्महं चानु तत्रैकैकमष्टकरम् ।  
 सप्तरात्रत्रयं यावत् त्रीणि त्रीणि ततः परम् ॥ ६८ ॥  
 आचरत्वारिशतस्त्वानि ह्लासयेद्वृद्धिवत्ततः ।  
 सहस्रमुपयुंजोत ममाहैरिति सप्तभिः ॥ ६९ ॥

१ तद्वत् वाराहीवन्दवत् । २ सप्तरात्रत्रयमेकविंशतिदिनानि । ततःसप्त-  
 रात्रयावत् ।

यंत्रितात्मा घृतक्षीरशालिपट्टिभोजनः ।  
 तद्विनिर्गुणितं कालं प्रयोगानेऽपि चाचरेत् ॥ ७० ॥  
 आशिषो लगनेऽपूर्वा बह्वेदीति विशेषतः ।  
 प्रमेहकुमिकुष्ठार्शोमिश्रोदोषविर्जितः ॥ ७१ ॥

### भस्मातकस्वरसः—

पिष्टस्वेदनभरुजैः पूर्णं भस्मातकं विजर्जरितैः ।  
 भूमिनिखाते कुम्भे प्रतिष्ठितं कृष्णमृत्तिसम् ॥ ७२ ॥  
 परिवारितं समतात्पचेत्ततो गोमयाग्निना मृदुना ।  
 तत्स्वरसो यश्च्यवते शृङ्खीयार्त्तं दिनेऽन्यस्मिन् ॥ ७३ ॥  
 अनुमुपमुग्य स्वरसं गन्धश्लेष्मभोगिकं द्विगुणतर्विः ।  
 पूर्वविधिर्यत्रितारमा प्राप्नोति गुणान्स्त तानेव ॥ ७४ ॥

### भस्मातकघृतं स्मृत्यादिकरम्—

\*पुष्टानि पाकेन परिष्कृतानि  
 भस्मातकान्मादकर्मनितानि ।  
 घृष्टश्लेष्मार्चूर्णकर्णजलेन  
 प्रक्षाल्य मद्योप्य च मारुतेन । ७५ ॥  
 जर्जरानि विपचेज्जलकुम्भे  
 पादशेषघृतशान्तिवशीते ।  
 तद्वसं पुनरपि त्रययेत्  
 दोग्धकृमिनाहितं खरणस्थे ॥ ७६ ॥  
 सर्पिः पक्वं तेन तुल्यप्रमाणं  
 मुञ्ज्यास्त्रेच्छं शर्कराया रजोभिः ।  
 एकीभूतं तत्स्रजदोभण्डेन  
 स्थाप्य धान्ये सप्तरात्रं मुगुत्सम् ॥ ७७ ॥

**कुष्ठनाशकं तुवरक तैलम्—**

वृक्षास्तुंबरका नाम पश्चिमाखरीरजाः ।  
 वीचीतरंगविशोभमास्तोद्भूतपल्मवाः ॥ ८४ ॥  
 तेभ्यः फलान्याददीत सुषुक्वान्धुदागमे ।  
 मज्जा फलेभ्यश्चादाय शोषयित्वाऽवचूर्ण्य च ॥ ८५ ॥  
 तिलषट् पीडयेद् द्रोण्या कापयेद्वा कुसुमवत् ।  
 तत्तैलं समुत्तं भूयः पचेदासलिलतयात् ॥ ८६ ॥  
 अवशायं करीषे च पत्रमात्रं निपापयेत् ।  
 स्निग्धस्विप्नो हृतमलः पक्षादुद्धृत्य तत्ततः ॥ ८७ ॥  
 चतुर्थमक्तांतरितः प्रातः पाणितलं पिबेत् ।  
 मंत्रेण तेन पूतस्य तैलस्य दिवसे शुभे ॥ ८८ ॥  
 मज्जासारं महावीर्यं सर्वाङ्गं चातून् विशोधय ।  
 शैलपक्वगदापाण्यस्त्वामाक्षपयतेऽश्वयुतः ॥ ८९ ॥  
 तेनारमोर्ध्वमपस्तान्च दोषा योत्स्यमकृततः ।  
 मायमस्नेहलवणां यवागूं क्षीतलां त्रिवेद ॥ ९० ॥  
 पंचाहानि पिबेतैलमिदं वज्रमिति वर्जयेत् ।  
 पक्षं मुद्वरसाप्राप्ती सर्वकुर्ह्यविमुच्यते ॥ ९१ ॥

**खदिरकशार्थसिद्धतैलं कुष्ठहरम्—**

तदैव खदिरकत्राये त्रिगुण्ये माषु माधितम् ।  
 निहितं पूर्ववत्पदां पिबेन्मामं सुषुत्रितः ॥ ९२ ॥  
 तेनाभ्यक्तश्चरीरश्च पुर्वसाहारमीरितम् ।  
 अनेनाद्य प्रयोगेण सागयेत्सुष्ठितं नरम् ॥ ९३ ॥

१ तुवरकः “वातभोगरा” इति लोके । २ चतुर्थमक्तातेन भोजनेनान्तरितो  
 भ्यपहितः । ३ तदेव-तुवरक तैलम् ।



### द्विशतायुष्करं तैलम्—

सर्पिर्मण्युतं पीतं नदेव खदिराद्विना ।  
पक्षं मांसरसाहरं करोति द्विशतायुषम् ॥ ६४ ॥

### त्रिशतायुष्करं तैलम्—

तदेव नस्ये पञ्चाद्याद्विषानुपयोजितम् ।  
वपुष्मत्तं श्रुतधरं करोति त्रिशतायुषम् ॥ ६५ ॥

### पिप्पली प्रयोगः—

पञ्चाष्टौ मस दश वा पिप्पलीर्मधुसर्पिषा ।  
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत् ॥ ६६ ॥  
तिलस्तिक्तस्तु पूर्वाह्ने भुक्त्वाग्रे भोजनस्य च ।

### अन्यः पिप्पली प्रयोगः—

पिप्पल्यः किष्कुक्षारमाविता घृतभर्जिताः ॥ ६७ ॥  
प्रयोज्या मधुममिष्टा रसायनगुणपिषा ।

### वर्धमान सहस्रपिप्पली प्रयोगः—

क्रमवृत्त्या दशाहानि दशपैप्पलिकं दिनम् ॥ ६८ ॥  
वर्धयेत्पयसा सार्धं तर्धवापनयेत्पुनः ।  
जीर्णोपघञ्च भुञ्जीत पष्टिकं क्षीरमपिषा ॥ ६९ ॥  
पिप्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनम् ।  
पिष्टास्ता बलिभिः पेयाः श्रुता मध्यबलैर्नरैः ॥ १०० ॥

१ दशपिप्पल्यो वर्धमाना यस्मिन् दिने सहस्रपैप्पलिकं दिनम् । वृद्ध्या-यथा  
प्रथमदिने १०, द्वितीये २०, तृतीये ३०, चतुर्थे ४०, पञ्चमे ५०, षष्ठे ६०, सप्तमे  
७०, अष्टमे ८०, नवमे ९०, दशमे १०० । संकलनेन ५५० । अपनयेन एकादश-  
दिने ९०, द्वादशदिने ८०, त्रयोदशदिने ७०, चतुर्दशदिने ६०, पञ्चदशदिने ५०,  
षोडशदिने ४०, सप्तदशदिने ३०, अष्टादशदिने २०, उन्विंशदिने १० ।  
संकलनेन ४५० । अयमेवं प्रकारः सहस्रपिप्पलीनां प्रयोगः ।

तद्वच्च छागदुग्धेन द्वे महस्त्रे प्रयोजयेत् ।

एभिः प्रयोगैः पिप्पल्यः कासश्वाभगलग्नहान् ॥ १०१ ॥

यश्ममेहग्रहृष्यर्शः पांडुत्वविपमज्वरान् ।

घ्नन्ति शोफं घर्म हिष्मां ज्वीहानं वातशोणितम् ॥ १०२ ॥

**अन्यः पिप्पली प्रयोगः—**

बित्वाघंमात्रेण च पिप्पलीना

पानं श्लिषेदयतो निशायाम् ।

प्रातः पित्रेत्तत्पलिलाजलिभ्यां

वर्षं यथेष्टाशनपानचेष्टः ॥ १०३ ॥

**शुण्ठ्यादि प्रयोगः—**

क्षुंठीविडंगत्रिफलागुडूची

यष्टीहरिद्रातिबलायलाभ्र ।

मुस्तामुराह्नाशुरुचित्रकाभ्र

सीगंधिकं पक्वजमुत्पलामि ॥ १०४ ॥

धवाश्वकणनिमबा'लपत्र—

सारास्तथा पिप्पलिवत्प्रयोग्याः ।

लोहोपलिताः पृथगेव जीवे—

रममाः घर्तं व्याधिजराविमुक्तः ॥ १०५ ॥

क्षारांजलिभ्यां च रसायनानि

युक्ताभ्यमून्याधमलेपनानि ।

कुर्वन्ति पूर्वोक्तगुणप्रकर्षं-

मायुः प्रकर्षं द्विगुणं ततश्च ॥ १०६ ॥

**सोमराजी (चक्रुची) रसायनम्—**

असनखदिरयूषैर्भाविता सोमराजी

मणुपृतसिखिपध्यालोहचूर्णैस्तेताम् ।

## लशुनभक्षणं कालः—

शीलयेत्तु शुनं शीते, वसनेऽपि कफोत्थयः ।  
 घनादयेऽपि वातातः, सदा वा श्रीष्मलीलया<sup>१</sup> ॥ ११४ ॥  
<sup>२</sup>स्निग्धशुद्धतनुः शीतसधुरोपसृताशयः ।  
 तदुत्तंसावतंसाभ्यां चर्चितानुचराजिरः ॥ ११५ ॥

## गलनाढी-विशुद्धये लशुनस्वरसप्रयोगः—

तस्य कंदान् वतंताते हिमवच्छकदेशजान् ।  
 अपनीतत्वचो रात्री<sup>३</sup> तीमयेग्मदिरादिभिः ॥ ११६ ॥  
 तत्कल्कस्य रसं प्रातः शुचि<sup>४</sup> तातवपोद्धितम् ।  
 मदिराया, मुहृढायास्त्रिभागेन ममन्वितम् ॥ ११७ ॥  
 मद्यस्याग्न्यस्य तैलस्य मस्तुनः काजिकस्य वा ।  
 तत्काल एव वा युक्तं युक्तमालोच्य मात्रया ॥ ११८ ॥  
 तैलसर्पिर्वंसामज्जक्षीरमासरतैः पृथक् ।  
 मवापेन वा मयाभ्यापि रसं केवलमेव वा ॥ ११९ ॥  
 पिबेद्गह्वपमात्रं प्राक् वंठनाढीविशुद्धये ।

## वेदनादौ स्वेदनादि—

प्रतप्तं स्वेदनं चानु वेदनाया प्रशस्यते ॥ १२० ॥

## शोष रसपानम्—

शीतायुक्तैः सहसा यमिमूर्छाययोर्मुखे ।  
 शोषं पिबेत्कलमापाये स्थिरतां गतं ओजसि ॥ १२१ ॥

१ श्रीष्मलीलया-श्रीष्मर्तुचर्याया आचरणेन । २ स्निग्धा शुद्धा च तनुयस्य ।  
 शीतैर्मधुरैरुपसृतः ससृष्ट आशयो यस्य । तस्य लशुनस्योत्तंसावतंसाभ्यां  
 शिरोभूषणकर्णपूराम्भ्याम् । उत्तमः शिरोभूषणम् । अवतंसः कर्णपूरः ।  
 चर्चिता मण्डिता अनुचरराजिरे आङ्गणे यस्यसतया । ३ तीमयेत्स्नेदयेत् ।  
 ४ तान्तर्यं यस्यम् ।

विदाहशान्तयेरीतानुलेपनम्—

विदाहपरिहाराय परं रीतानुलेपनः ।

धारयेत्पांशुकणिका मुक्ताः कर्पूरमालिकाः ॥ १२२ ॥

लशुनस्यमात्रा—

कुडवोऽस्य परा मात्रा तदर्धं केवलस्य तु ।

फलं पिष्टस्य तन्मज्जः समतं प्राक् च शीलेयत् ॥ १२३ ॥

लशुनप्रयोगकाले भोजनम्—

जीर्णशाल्योदनं जीर्णं शंसकुंदेंद्रुपादुरम् ।

शुजीत यूयैः पयसा रसैर्वा धन्वचारिणाम् ॥ १२४ ॥

तृष्णया पानम्—

मद्यमेकं पिवेत्तत्र तृद्वर्धे जलाश्रितम् ।

अमद्यपरत्वारवालं फलाबुपरिसिक्तिकाम् ॥ १२५ ॥

लशुनकल्कभक्षणम्—

तत्कल्कं वा समधृतं धृतपात्रे लज्जाहृतम् ।

स्थितं दद्याद्वाहस्त्रीयैस्तद्वद्वा वमया समम् ॥ १२६ ॥

लशुनप्रयोगः—

विकटकुप्रग्न्यरसोनगर्भान्

सशूल्यमांसान् विविषोपदद्यान् ।

विमर्दकान्वा धृतशुक्तमुक्तान्

प्रकाममचाक्षुषु तुल्यमस्नन् ॥ १२७ ॥

१ परिसिक्तिकामः सट्टकविशेषः । तत्कल्को लशुनकल्कः । २ तद्वत् वमया सह-  
रिपतदद्याद्वाहस्त्रीयैः पिवेत् । ३ विकटकुप्रस्त्यग्रहितः । विमर्दकान्वा धृतशुक्तमुक्तान्  
पठितं तद्यथा—

“नानाद्रव्यैः समायुक्तः पक्वामकिलप्रभविजितः ।

विमर्दको गुरूर्हृद्यो मृष्यो बलवतां हितः ॥” तुल्यमलम् ।

शुद्धवातरोगार्तस्य लशुनात्परं द्रव्यं नास्ति—

पित्तरक्तविनिर्मुक्तमस्तावरणावृते ।

घुद्धे वा विद्यते वायौ न द्रव्यं लशुनात्परम् ॥ १२८ ॥

प्रियजलादेर्नरस्यलशुनो व्यापत्तये—

प्रियांघुमुदुग्धस्य मांसमद्याम्लविद्धिपः ।

अतितिक्षीरजीर्णं च रक्तोनी व्यापदे ध्रुवम् ॥ १२९ ॥

लशुनप्रयोगान्ते विरेचनम्—

पित्तकोपभयादते युंज्यान्मृदु विरेचनम् ।

रसायनगुणानेवं परिपूणन्मिषश्नुते ॥ १३० ॥

शिलाजतुप्रकारः—

घ्राध्मेऽर्कतप्ता गिरयो जतुतुल्यं वर्मति यत् ।

हेमादिपद्माधतुरसं प्रोच्यते तच्छिलाजतु ॥ १३१ ॥

सर्वं च तित्ताज्जटुकं नात्युष्णं कटुपक्वतः ।

छेदनं च बिशेषेण लौहं तत्र प्रदास्यते ॥ १३२ ॥

गोमूत्रगन्धि कृष्णं गुग्गुल्वार्धं विशर्करं मूलम्

लिग्धमनम्लकपायं मृदु गुरु च शिलाजतु श्रेष्ठम् ॥ १३३ ॥

शिलाजतुनोभावना विधिः—

व्याधिष्याधितमात्म्यं

ममनुस्मरन् भावयेदयः पार्श्वं ।

प्राक् केवलजलधीतं

क्षुब्धं ववार्थस्ततो भाव्यम् ॥ १३४ ॥

\*ममगिरिजमष्टगुणिते नि.ववार्थं भावनीपर्थ तोषे ।

तन्निर्मुद्देश्यान्तं पूतोष्णे प्रक्षिपेद् गिरिजम् ॥ १३५ ॥

सत्त्वमरगतौ यातं रंक्षुर्कं प्रक्षिपेद्वसे भूयः ।

स्वैः स्वैरेवं ववार्थं भाव्यं वारान् अवैरमत् ॥ १३६ ॥

१ हेमादीनांपण्यां घातूनारमम् । २ सप्तगिरिजं शिलाजतुमभानं भावनीपपम्

स्निग्धनरस्य दिनत्रयं शिलाजतुसेवनम्—

अथ स्निग्धस्य शुद्धस्य घृतं तित्त्वमाधितम् ।

‘अर्धं युंजीत गिरिजमेकैकेन तथा अर्धम् ॥ १३७ ॥

फलत्रयस्य यूपेण पटोल्या मधुकस्य च ।

योगयोग्यं ततस्तस्य कालापेक्षां प्रयोजयेत् ॥ १३८ ॥

शिलाजमेवं देहस्य भवत्यत्युपकारकम् ।

गुणान्ममपान् कुस्ते सहसा व्यापदं न च ॥ १३९ ॥

शिलाजतुनस्त्रिविधः प्रयोगः—

एकत्रिमसप्ताहं कर्पमर्घपलं पलम् ।

हीनमप्योत्तमो योगः शिलाजस्य क्रमाश्रितः ॥ १४० ॥

रसायनफलः शिलाजतुप्रयोगः—

संस्मृतं संस्मृते देहे प्रयुक्तं गिरिजाह्वयम् ।

युक्तं व्यस्तैः समस्तैर्वा ताम्नायोः स्यहेमभिः ॥ १४१ ॥

क्षीरेणालोढितं कुर्याच्छीघ्रं रामायनं फलम् ।

कुलश्यान् काकमाचीं च कपोतांश्च सदा त्यजेत् ॥ १४२ ॥

सर्वरोगनाशं शिलाजतुरसायनम्—

न सोस्ति रोगो भुवि साध्यरूपो

जत्वश्मजं यं न जयेत्प्रसह्य ।

तत्कालयोगविधिवत्प्रयुक्तं

स्वस्थस्य चोर्जा विपुला दधाति ॥ १४३ ॥

१ अर्धं-तित्त्वमाधितं अर्धसेवेत । तथा एकैकेन वदयमाणेन फलत्रयादिना प्रत्येकं अर्धं शिलाजतुपतेवेत । २ एक त्रिमसप्ताहमिति कालप्रयोगः प्रमादोन्मत्प्योत्तमो योगः ; कर्पदिर्घात्रा प्रयोगः स होनादिः । ३ ऊर्जा-बलम् ।

रसायनस्यद्विविधः प्रयोगः—

कुटीप्रवेशः क्षणिना परिच्छदवतां हितः ।

अतोऽन्यथा नु ये तेषां मूर्ध्ना भवितो विधिः ॥ १४४ ॥

वातातपसहयोगकथनम्—

वातातपमहा योगा वक्ष्यतेऽतो विशेषतः ।

मुखोपचारा भ्रंशेऽपि ये न देहस्य बाधकाः ॥ १४५ ॥

शीतोदकादिरसायनम्—

शीतोदकं पयः क्षीद्रं घृतमेकैकशो द्विशः ।

त्रिंशः मगस्तमपवा प्राक् पीतं स्थापयेद्द्वयः ॥ १४६ ॥

हरीतकी प्रयोगः—

गुडेन मधुना क्षुण्णया कृष्णया लवणेन वा ।

द्वे द्वे स्वादम् सदा पथ्ये जीवेद्द्वयसतं सुखी ॥ १४७ ॥

हरीतकी सपिपि संप्रताप्य

समभ्रतस्तत् पिबतो घृतं च ।

भवेधिरस्थानि बलं शरीरे

सकृत् कृतं माधु यथा कुतश्च ॥ १४८ ॥

धानीरसादिरसायनम्—

धानीरमसौऽक्षिताघृतानि

हिवाशनानां लिहतां नराणाम् ।

प्रणाशमायाति जराविकारा

ग्रंथा विद्याला इव दुर्गृहीताः ॥ १४९ ॥

१ क्षणिनामवकाशवताम् । परिच्छदवतामुपकरणवतां गपरिवारानां वा ।  
अतोऽन्यथा—परिच्छदक्षणविहीनानां सौर्यमावृत्तिको विधिः । २ प्राक् भोजना-  
त्प्राक् । द्विशो यथा—शीतोदकपययो, शीतोदकक्षीरे, पयोःक्षीरे,  
पयोघृते, क्षीरघृते विषममानयुक्ते, एवमेव त्रिंशोऽपि बोध्यम् । ३ यथा विद्याला  
महान्ती ग्रन्था दुर्गृहीतादुःपठिताः ।

घात्रीप्रभृतिसेवनं पुनर्यौवनकरम्—

घात्रीकृमिघ्नापनसारचूर्णं

सतैलमर्पिर्मधुलोहरेणु ।

निपेवमाणस्य भवेन्नरस्य ॥

तारुण्यलावण्यमविप्रणष्टम् ॥ १५० ॥

बलकरोलोहादिचूर्णं लेहः—

लोहं रजो घेस्त्रभवं च सर्पिः

क्षौद्रद्रुत स्वापितमण्डमानम् ।

सामुद्रगके बीजकमारनलुते<sup>१</sup>

लिहन् बली जीवति कृष्णकेशः ॥ १५१ ॥

विडङ्गादीनिनिरामयकराणि—

विडङ्गभङ्गातकनागराणि

येऽभंति मर्पिर्मधुन्युतानि ।

जरानदी रोगतरणिणी तं

लाघव्ययुक्ताः पुर्यास्त्वरति ॥ १५२ ॥

त्रिफलारसायनम्—

सदिरातनूपपभाविताया-

स्त्रिफलाया पृथग्भाक्षिकमुतायाः ।

नियमेन नरा नियेदितारी

यदि जीवंत्यश्नः किमत्र चित्रम् ॥ १५३ ॥

बीजसाररसोजराऽमावकरः—

बीजवग्न्य रममंगुलिहार्य<sup>२</sup>

शर्करामणुपूरितं त्रिफला च ।



शीलयस्म पुण्येषु ज्वरत्वम्  
स्वागतापि विनिवर्तत एव ॥ १५४ ॥

पुनर्नवाकल्पः—

पुनर्नवस्यार्धफलं नवस्य  
पिष्टं पिवेद्यः पयसार्धमासम् ।  
मासद्वयं तन्निगुणं ममां वा  
जीर्णोऽपि भूयः न पुनर्नवः स्यात् ॥ १५५ ॥

मूर्धादीनां पुनर्नवास्तुल्यो विधिः—

मूर्धकृत्स्न्यं शुभतीक्ष्णाना-  
मुक्षोस्पाठायनमारिवाणाम् ।  
कालानुसार्यागुरुचंदनानां  
वदति पीनर्नवमेव कल्पम् ॥ १५६ ॥

शताधरीधृतं विकारनाशकम्—

शताधरीवत्ककणापमिद्धं  
मे मपिरर्भति शिवाद्वितीयम् ।  
तान् जीविताध्वानमभिप्रपन्ना,  
न विप्रमृपति विकारघोराः ॥ १५७ ॥

अश्वगन्धप्रयोगः काश्यहरः—

पीताश्वगन्धा पयसार्धमासं  
धृतेन तैलेन मृत्पात्रे वा ।  
ब्रूयात् पुष्टिं वपुषो निषत्ते  
बालस्य सस्यस्य यथा मुकुटः ॥ १५८ ॥

कृष्णतिजप्रयोगः पुष्टिकरः—

दिने दिने कृष्णतिलप्रबुधं  
ममभना दीतजलानुपानम् ।

पौणः पारीरग्य भयःपनर्वा

हृत्तान्ध्यामरवाप्य दंताः ॥ १५८ ॥

गोक्षुरकादिलेहः—

भूर्ण इषदंज्ञामद्वामृतानां

लिङ्गमर्तामंभुभागमिधम् ।

मृत् मिथरः सातविचारदुःखः

गमाः दानं जीवति कृष्णार्जुनः ॥ १५९ ॥

कृष्णतिलप्रयोगः—

माधं तिलरामलकानि कृष्ण-

रशादि गंधुष हरीऽर्जुनः ।

येऽद्युर्मयूरा इव ते मनुष्या

रम्यं परीणामेवमाप्नुवन्ति ॥ १६० ॥

दीर्घल्यहरः शिलाजत्वादि प्रयोगः—

शिलाजनुशीद्रविडगर्तादि-

लोहाभयापारदवाप्यभक्षः ।

मातूर्यते दुर्बलदेहधातु-

स्त्रिपंचरात्रेण यथा दशोकः ॥ १६१ ॥

मलादिकारकोभृङ्गवाजरसः—

ये माममेकं स्वरमं पिबन्ति

दिने दिने भुंजरजःप्रमुत्पम् ।

क्षीराचिनस्ते बलवीर्ययुक्ताः

गमाः दानं जीवितमाप्नुवन्ति ॥ १६२ ॥

१ रम्यं परीणाम रमणीयं वयःपरिणाममाप्नुवन्ति । दर्शनीया  
भवन्तीत्यर्थः ।

मैधाकरोवचाप्रयोगः—

मामं वचामप्युपसेवमानाः  
क्षीरेण तैलेन घृतेन वाऽपि ।  
भवन्ति रक्षोभिरघृज्यरूपा  
मेवाविनो निर्मलमृष्टवैक्याः ॥ १६७ ॥

बहुजीवनप्रदो मण्डूकपर्णी प्रयोगः—

मंडूकपर्णीमपि भक्षयन्ती  
भृष्टां घृते मासमनघ्नभक्ष्याः ।  
पीयन्ति कालं विपुलं प्रगल्भा-  
स्तारुण्यलावण्यमुणोदयस्थाः ॥ १६८ ॥

गुटिकोपयोगो नीरांगत्वादिकरः—

लागलीत्रिकलालोद्वपलवचाशतीकृतम् ।  
भार्कवस्वरमे पट्ट्या गुटिकानां क्षतत्रयम् ॥ १६९ ॥

छायाविशुद्धं गुटिकाधर्मशा-  
स्त्रैर्वै समस्तामपि ता क्रमेण ।  
भजेद्विरक्तं क्रमदाश्च मड  
पेया विलेपी रसकौश्लं च ॥ १७० ॥  
सापिःस्निग्धं मासमेकं यतात्मा  
मासादूर्ध्वं सर्वथा स्वैरवृत्तिः ।  
वर्ज्यं यत्नात्मवकालं स्वजीर्णं  
वर्षेणैव योगमेवोपयुज्यात् ॥ १७१ ॥

भक्ति विगतरोगो योऽप्यमाप्यामयार्तः  
प्रबलभूतपकारः क्षोभने योऽपि बृद्धः ।  
उपचिन्नपृष्ठुगात्रधोऽनेत्रादिमुक्त-  
स्तरुण इव भवानां पंच जीवेच्छतानि ॥ १७२ ॥

‘अतारं नारसिंहस्य व्याधयो न स्पृशन्त्यपि ।  
चक्रोज्ज्वलमूर्जं भीमा नारसिंहमिवामुराः ॥ १७४ ॥

सृङ्गराज पल्लवप्रयोगः—

भृङ्गप्रवालानमुनैव<sup>१</sup> भृष्टान् .  
पृतेन यः सावति यंयितात्मा ।  
विशुद्धकोष्ठोऽमनसारमिद-  
दुग्धानुपस्तत्कृतभोजनार्थः ॥ १७५ ॥

भासोपयोगात् न मुक्ती जीवत्यद्भुतद्वयम् ।  
शृङ्गाति मृदुदध्युक्तमविलुप्तस्मृतीन्द्रियः ॥ १७६ ॥

तैलोपयोगः—

अनेनैव च कल्पेन यस्तैममुपयोजयेत् ।  
तानेवाप्नोति स गुणान् कृष्णकेशञ्च जायते ॥ १७७ ॥

‘उत्तानि दक्ष्यानि फलान्वितानि  
युगानुष्माणि रसायनानि ।  
महानुत्तमान्यपि चापराणि  
प्राप्त्यादिकष्टानि न कीर्तितानि ॥ १७८ ॥

रसायनभ्रंशो विकारोपशमनम्—

रसायनविभिन्नशास्त्राण्येवं व्याधयो यदि ।  
यथास्वमीपथं तेषां कार्यं भुक्त्वा रसायनम् ॥ १७९ ॥

सत्यादिनियमोरसायनरूपः—

मत्स्यादिनमक्रोधमध्यात्मप्रवर्णेन्द्रियम् ।  
घातं मद्भक्षनिरतं विशान्निस्वरसायनम् ॥ १८० ॥

१ अतारं भोतारम् । २ अमुनैव-नारसिंहपृतेनैव । ३ यानि दक्ष्यानि  
फलान्वितानि युगानुष्माणि च नाम्युत्तानि । अपराणि च महानुत्तमान्यपि  
महाफलान्यपि यानि न कीर्तितानि ।

रसायनसेविनो दीर्घायुष्ट्वादि —

गुणैरेभिः समुदितः सेवते यो रसायनम् ।

■ निर्वृतात्मा दीर्घायुः परब्रह्म च मोदते ॥ १८१ ॥

शास्त्रानुसारित्वादिरसायनम्—

शास्त्रानुसारिणी चर्मा चित्तज्ञाः पार्श्ववर्तिनः ।

बुद्धिरस्त्रलितार्थेषु परिपूर्णं रसायनम् ॥ १८२ ॥

समाप्तं रसायनतन्त्रम् ।

## चत्वारिंशोऽध्यायः ।

कायचिकित्सा

अथाऽतो वाजीकरणाध्यायं व्याख्यास्यामः ।

वाजीकरणौषधग्रहणोपक्रमम्—

वाजीकरणमग्निविच्छेदमतर्हं विषयी पुमान् ।

तुष्टिःपुष्टिरपत्यं च गुणवत्तत्र मन्त्रितम् ॥ १ ॥

अपत्यसंतानकरं यत्प्रसूतः संप्रहर्षणम् ।

वाजीकरणशब्दत्रयवार्थः—

वाजीवाग्निबली येन यात्यप्रतिहृद्योगनाः ॥ २ ॥

१ नवाजी अवाजी अवाजी-वाजी त्रिभुजनेनतद्वाजीकरणम्, अथवा वाजः  
घृष्टं, वाजी घृष्टवान् ।

भवत्यतिप्रियः स्त्रिणां येन<sup>१</sup> येनोपचीयते ।  
तद्बाजीकरणं विद्धि देहस्योर्जस्करं परम् ॥ ३ ॥

ब्रह्मचर्यं नैः श्रेयसकरम्—

धर्म्यं यद्यस्यमायुष्यं लोकद्वयसायनम् ।  
अनुमोदामहे ब्रह्मचर्यमेकातनिर्मलम् ॥ ४ ॥

बाजीकरणमाभ्युदयिकम्—

अल्पसत्त्वस्य तु बलेर्धैर्वाप्यमानस्य रागिणः ।  
शरीरक्षयरक्षार्थं बाजीकरणमुच्यते ॥ ५ ॥

नीरोगस्य पुरुषस्य सर्वतुष्टुं स्त्रीसंभोगः—

<sup>१</sup>कल्पस्योदप्रभवतो बाजीकरणमेकितः ।  
सर्वेष्वनुष्टुप्बहुरहर्षवायो न निवार्यते ॥ ६ ॥

स्निग्धस्यसानुवासननिरुद्धादि—

अथ स्निग्धविशुद्धानां निरुद्धान्सानुवाशनान् ।  
शृततलरगक्षीरशर्कराक्षीरतमृतान् ॥ ७ ॥  
योगविद्योजयेत्पूर्वं क्षीरमास्ररसाग्निनाम् ।  
ततो बार्जाकरान् योगान् शुक्रापत्यविवर्धनान् ॥ ८ ॥

निरपत्यनिन्दा—

अष्टाधः पूतिकुमुदः कनैत रहितो द्रुमः ।  
मर्षैकश्चैकदास्तत्र निरपत्यस्तथा नरः ॥ ९ ॥

अपत्यप्रशंसा

स्थलद्रुमनगव्यसत्त्वचनं भूलिभूमरणम् ।  
अवि तालाविलमुखं हृदयाह्लादकारकम् ॥ १० ॥  
अपत्यं तुल्यता येन दर्शनस्पर्शनादिषु ।  
किं पुनर्यद्यसौधर्ममानर्थाकुलवर्धनम् ॥ ११ ॥

## शुद्धशरीरे वृष्यप्रयोगाः—

शुद्धकाये यथाशक्ति वृष्ययोगान् प्रयोजयेत् ।

## वार्जाकरण प्रयोगः—

शरेक्षुकुदाकाशानां विदार्या<sup>१</sup> वीरणस्य च ॥ १२ ॥

मूलानि कण्टकार्याश्च जीवकर्पभक्तौ बलाम् ।

मेदे द्वे द्वे च काकोल्यौ क्षूर्पपण्यौ शतावरीम् ॥ १३ ॥

अश्वगंधामतिबलामात्मगुप्तां पुनर्वाम् ।

वीरा पयस्या जीवन्ती मृद्वी राज्ञां त्रिकण्टकम् ॥ १४ ॥

मधुकं क्षालिपर्णौ च भागांस्त्रिपलिकान् पृथक् ।

माषाणामाढकं चैतद् द्विद्रोणे साधयेदपाम् ॥ १५ ॥

रसेनाढकमेपेण पचेत्तेन घृताढकम् ।

दत्त्वा विदारीधात्रीधुरत्सानामाढकाढकम् ॥ १६ ॥

घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं पेप्स्याणोमानि<sup>२</sup> चावपेत् ।

वीरौ स्वगुप्ता काकोल्यौ मष्टौ फल्गूनि पिप्पलीम् ॥ १७ ॥

प्राक्षा विदारी क्षूर्जरं मधुकानि शतावरीम् ।

तस्मिद्वपृतं क्षूर्णस्य पृथक् प्रस्थेन योजयेत् ॥ १८ ॥

शर्करायास्तुगामाश्च पिप्पल्याः कुडवेन च ।

मरिचस्य प्रकुचिन पृथग्धूपलोन्मितैः ॥ १९ ॥

त्वमेलाकेसरैः शुष्णैः क्षीदाद् द्विकुडवेन च ।

पलमात्रं ततः खादेत् प्रत्यहं रसदुग्धमृक् ॥ २० ॥

तेमारोहति वाजीव कुलिंग इव हृष्यति ।

## कान्ताशानस्यदर्पघ्नं चूर्णम्—

विदारीपिणलीक्षालिप्रियालेधुरकाद्रजः ॥ २१ ॥

पृथक् स्वगुप्तामूलाश्च कुडवांश्च तथा मधु ।

तुल्यार्धं शर्कराचूर्णात् प्रस्थार्धं नवसपिपः ॥ २२ ॥

सोऽक्षमात्रमतः सादेद्यस्य रामान्तत गृहे ।

**सर्वरात्रौरतिकारकोयोगः—**

सात्मगुप्ताफलान् क्षीरे गोधूमान्साधितान् हिमान् ॥ २३ ॥

मापान्वा सधृतशोढान् खादन् गृष्टिपयोऽनुपः ।

जामतिं रात्रिं सकलामखिन्नः खेदयन्त्रियः ॥ २४ ॥

**कान्ताशतंनसह रसिकारकोयोगः—**

वस्तांडमिदं पयसि भावितानसकृतितान् ।

यः सादेत्ससितान् गच्छेत्स स्त्रीशतमपूर्ववत् ॥ २५ ॥

**कान्ताशतेच्छाकर्तृ चूर्णम्—**

चूर्णं विदार्या बहुधाः 'स्वरसेन' भावितम् ।

क्षीद्रसर्वियुतं लोढ्वा प्रमदाद्यतमृच्छति ॥ २६ ॥

**धृद्धस्यतारुण्यकरोयोगः—**

कृष्णापार्श्वफलरजः स्वरसेन मुभाषितम् ।

कर्करामधुमपिभिर्लोढ्वा योऽनु पयः पिबेत् ॥ २७ ॥

म नरोऽशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यति ।

**व्यवाये नित्यवेगकरो मधुक योगः—**

कयं मधुरचूर्णस्य धृतक्षीद्रममन्वितम् ॥ २८ ॥

पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेगः स ना भवेत् ।

**धृष्ययोगः—**

'कुलीरशृङ्गा यः कल्कमालीढ्य पयसा पिबेत् ॥ २९ ॥

गिताधृतपयोप्राची म नारीषु कृपामने ।

**शुक्राऽक्षयकरोयोगः—**

यः पमस्यां पयःसिद्धां सादेग्मधुघृतान्विताम् ॥ ३० ॥



पिबेद्वाष्कयणं चानु क्षीरं न क्षयमेति सः ।

चूर्णपानंशुकवृद्धिकरम्—

स्वयंगुप्तेक्षुरकयोर्वोजचूर्णं मशर्करम् ॥ ३१ ॥

धारोष्णेन नरः पीत्वा पयसा रामभायते ।

घृद्धस्य सारुण्यापादको योगः—

उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षतावर्याश्च योजयेत् ॥ ३२ ॥

चन्द्रशुभ्रं दधिसरं ससितं पट्टिकीदनम् ।

पटे सुमार्जितं भुक्त्वा वृद्धोऽपि स्रुणायते ॥ ३३ ॥

घृद्धस्य स्त्रीशतगमने शक्तिकरो योगः—

श्वर्दष्टेक्षुरमापातमगुप्ताबीजक्षतावरीः ।

पिवन् क्षीरेण जीर्णोऽपि गच्छति प्रमदाक्षतम् ॥ ३४ ॥

बृध्यस्वरूपम्—

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं बृंहणं बलवर्धनम् ।

मनसो हर्षणं यच्च तत्सर्वं बृध्यमुच्यते ॥ ३५ ॥

द्रव्यैरेवंविधैस्तस्मद्वृत्तितः प्रमदां व्रजेत् ।

आत्मवेगेन चादीर्णः स्त्रीगुणैश्च प्रहृषितः ॥ ३६ ॥

शब्दादयः सेव्याः—

सेव्याः सर्वेन्द्रियसुखा धर्मकल्पद्रमानुराः ।

विषयातिशयाः पंच, शराः कुमुमघन्वनः ॥ ३७ ॥

१ वाष्कयणी चिरप्रसूता घेनुस्तस्या इदं वाष्कयणम् ।

२ उच्चटा—श्वेतगुल्मा । अथवा लोके “उटङ्गन” इति प्रसिद्धं द्रव्यम् ।

३ आत्मवेगेन स्वस्पर्शबलेन । स्त्रीगुणैर्वाविष्यादिभिः । ४ धर्मे—एव बलवृद्धेऽङ्कुरा-  
हवाङ्कुराः । पञ्चविषयाः शब्दस्पर्शादयः । कुमुमघन्वनः कामस्य शराः वाणाः-  
तेविषयाः ।

### स्त्री प्रशंसा—

इष्टा ह्येकैकशोऽप्यर्था हर्षप्रीतिकरा. परम् ।  
किं पुनः स्त्रीशरीरे ये सघातेन प्रतिष्ठिताः ॥ ३८ ॥

नामापि यस्या हृदयोत्सवाय  
यां पश्यतां तृप्तिरनासपूर्वा ।  
सर्वेन्द्रियाकर्षणपाद्यभूता  
कांतानुवृत्तिप्रसदीशिता या ॥ ३९ ॥  
१ कलानिलामागवयोविभूषा  
शुचिः सलज्जा रहमि प्रगल्भा ।  
प्रियंवदा तुल्यमन शया या  
या स्त्री वृषत्वाय परं नरस्य ॥ ४० ॥

### कामशास्त्रानुसारं रतिकरणम्—

आचरेच्च सकला रतिचर्या  
कामधास्त्रविहितामनवद्याम् ।  
देशकालबलशक्त्यनुरोधा-  
२ द्वैद्यतंप्रसमयौक्त्यविरुद्धाम् ॥ ४१ ॥

### विहाररूपं बाजीकरणम्—

अभ्यजनोद्धर्तनमेकयथ-  
३ स्रक्पत्रवस्त्राभरणप्रकाराः ।  
गायवंशम्यादिकथाप्रवीणाः  
गमस्वभावा वरागा वयस्थाः ॥ ४२ ॥

१ अनासपूर्वा—पूर्वनासातृप्तिः । कान्तस्य भर्तुरनुवृत्तिरनुवर्तनं तदेव प्रतंतत्र  
या दीशिता । २ कलाद्य एव विभूषाभूषणयस्याः । कलानृत्यगीतादिरूपा  
चतुःषष्टिभेदभिन्नाः । विलासः—प्रियसमागमेगत्यामनमुखनेत्रादीर्वचिन्त्यम् । रहमि  
मुरते—प्रगल्भा घृष्टा । मनःशयः कामः । ३ अनवद्यामनिन्द्याम् । वैद्येतिवैद्यरु-  
दास्त्राचाराऽविरुद्धाम् । ४ स्रक्माला, वयस्यामिश्राणि ।

१ दीपिका स्वभवनांतनिविष्टा  
 पद्मरेणुमधुमत्ताविहंगा ।  
 नीलमानुगिरिकूटनिर्ज्व  
 २ वाननानि पुरकंठगतानि ॥ ४३ ॥  
 दृष्टिमुखा विविधा सरजातिः  
 श्रोत्रमुखः कलकोकिलनादः ।  
 अंगनुरागुषोण विभूषा  
 चित्तमुखः सकलः परिवारः ॥ ४४ ॥  
 ३ तांबूलमञ्जमदिरा  
 कांता कांता निद्या दद्यांका  
 यद्यपि किंचिदिष्टं  
 मनमो वाजीकरं तत्तत् ॥ ४५ ॥

कामोत्पादकानि—

४ मधुमुखमिव सोत्पलं प्रियायाः  
 ५ कलरणना परिवारिणी प्रियेव ।  
 कुसुमचयमनोरमा च शय्या  
 विसलयिनी लतिकेव पुष्पिताया ॥ ४६ ॥

१ दीपिकावर्षा । स्वभवनान्तनिविष्टा स्वगृहसमीपेस्थिता । पद्मरेणु-  
 मधुम्यां मत्ताविहङ्गा यस्याम् । २ नीलमानु शिखरो यस्य न चानी  
 गिरिस्तस्य कूटस्तस्य नितम्बस्तत्र यानि वाननानि । तानि पुरस्य समीपस्थानि ।  
 कलोमनोहरः श्रवणमुख इत्यर्थः । अङ्गेषु सुप्तानुरोधेन नृत्वमुरोधेन च विभूषा-  
 यलङ्कारः । ३ अञ्जमदिरा निर्मलं मद्यम् । मनःप्रिया सुन्दरी । सचन्द्रा रात्रिः ।  
 एतत् समस्तं वाजीकरणम् । ४ मधु-माद्वोक्स्मद्यं सोत्पलं सकलं स्त्रियामुखमिव ।  
 ५ कलरणना मधुरशब्दा । परिवारिणी वीणा सा प्रिया इव । कुसुमचयमनो-  
 रमा-पुष्पममूहविरचिता रमणीया शय्यापुष्पिताया पल्लववती पुष्पप्रधाना  
 लता इव ।

१देसे दरीरे च न काचिदति-  
रथेषु नात्पोऽनि मनोविधातः ।  
वाजीकराः सन्निहिताश्च योगाः  
कामस्य कामं परिपूरयन्ति ॥ ४७ ॥

अभ्यसङ्ग्रहः—

मुस्तापर्वटकं उवरे, तृपि जलं मृदुल्लोष्ठोदभवं,  
लाजाश्चर्दिषु, बस्तिजेषु गिरिजं, मेहेषु धात्रोनिरो ।  
पांटी श्रेष्ठमयोऽभयानिष्ठकफे, स्त्रीहामये पिप्पली  
१संशाने कृमिजा, विषे शुक्रतरुमंदोऽविले गुग्गुलुः ॥ ४८ ॥

बृपोऽस्त्रपिप्पे, कुटजोऽनिसारे  
भल्लातकोऽर्शःसु, गरेषु हेम ।  
स्थूलेषु तार्क्ष्यं, कृमिषु कृमिध्नं  
शोषे सुराष्ठागपयोऽनुमानम् ॥ ४९ ॥  
अक्षयामयेषु त्रिफला, गुडूची  
धाताक्षरोगे, मथितं मृद्वक्षयाम् ।  
कुण्ठेषु सेव्यः लदिरस्य सारः  
सर्वेषु रोगेषु शिलाह्वयं च ॥ ५० ॥

अभ्यसङ्ग्रहः—  
१ शोकादं घृतमननं, शोकादं मयं, विसंभृतिं शास्त्री ।  
नित्रानार्शं क्षीरं जयति, रमाला प्रतिशयापम् ॥ ५१ ॥  
मोक्षं काश्चर्यं, लघूनाः प्रभञ्जनं, स्तब्धगात्रतां स्वेदः ।  
१गुडमंजरीः सपुरो नस्यात्स्कंधांसबाहुजम् ॥ ५२ ॥

१ देसा इति—स्वस्थोदेयः स्वस्थदरीरं मनोऽनुकूलं धनागमश्चेत्येते पदार्थाः  
कामस्य काममिच्छापरिपूरयन्ति काममुत्पादयन्तीत्यर्थः । सन्निहिताः समीपस्थिता  
वाजीकरायोगा वाजीकरण प्रयोगाः । २ गिरिजं—शिलाजलम् । ३ कृमिजा—लाशा ।  
शुक्रतरु, शिरीषः । तार्क्ष्यं रसाञ्जनम् । मथितं तत्रम् । अननं पुराणं घृतम् । शोकादं  
मयं जयति—मयं शोकनाशकम् । ४ गुडमंजरीं शृण्वन्नात्मली तस्याः सपुरोनिर्वाणः ।  
( गुडुष वा गाद ) ।

नवनीतखंडमदितमौष्टं मूत्र पयश्च हंत्युदरम् ।  
 नस्यं मूर्धेविकारान्, विद्रघिमचिरोत्यमस्रविस्त्रावः ॥ ५३ ॥  
 नस्यं केवलमुखजात्रस्याजनतर्पणानि नेत्ररुजः ।  
 वृद्धत्वं क्षीरघृते, मूलां शांताबुमारुतच्छायाः ॥ ५४ ॥  
 समधुक्ताद्रकमात्रा मंदं घट्टी, श्रमे मुरा स्नानम् ।  
 दुःखसहस्वे स्थैर्यं व्यापामां, गोधुर्घहितः कृच्छ्रे ॥ ५५ ॥  
 कासे निदिग्धिका, पार्श्वशूले पुष्करजा जटा ।  
 वयसः स्थापने पात्रो, विकला गुग्गुलुर्दण्डे ॥ ५६ ॥

वस्तिर्वातविकारान्,  
 पैत्तान् रेकः, कफोदमवान् वमनम् ।  
 र्वाङ्गं जयति बलासं,  
 सर्पिः पित्तं, समीरणं सैलम् ॥ ५७ ॥

इत्यग्र्यं यत्प्रोक्तं रोगाणामौषधं क्षमायालम् ।  
 तद्देशकालबलतो विकल्पनीयं यथायोगम् ॥ ५८ ॥

अग्निवेशप्रश्नः—

<sup>१</sup>इत्याग्नेयादागमम्यार्थमूत्रं  
 तत्पुक्तानां पेशलानामनुसः ।  
 भेडादीनां समतो भक्तिमग्नः  
 पप्रच्छेदं संशयानोऽग्निवेशः ॥ ५९ ॥

दृश्यते भगवन् केचिदात्मवन्तोऽपि रोगिणः ।  
 द्रव्योपस्थातृमपत्रा वृद्धवैद्यमतानुगाः ॥ ६० ॥  
<sup>२</sup>क्षीयमाणामपप्राणा विपरीतौस्मयापरे ।  
 हिताहितविभागस्य फलं तस्मादनिश्चितम् ॥ ६१ ॥

१ आगमस्य ज्ञात्वा । तत्पुक्तानामाग्नेयमुमापितानाम् । पेशलानां मनो-  
 हराणाम् । २ क्षीयमाणामपप्राणाः केचिद्दोगादिपुञ्ज्यमानाः केचिद्विघ्नयमाणाः ।  
 ३ विपरीता-अनात्मवन्तः, द्रव्योपस्थातृरहिताः, वृद्धवैद्यमतानुमारिणश्च तथा-  
 क्षीयमाणामपप्राणाः ।

किं शास्ति शास्त्रमस्मि-

प्रिति कल्पयतोऽग्निवेशमुख्यस्य ।

शिष्यगणस्य पुनर्वमु-

राचख्यो कात्स्न्यतस्तत्त्वम् ॥ ६२ ॥

प्रश्नस्योत्तरम्—

न<sup>१</sup> चिकित्साऽचिकित्सा च तुल्या भवितुमर्हति ।

विनापि क्रियया स्वास्थ्यं गच्छता पोडशांशया ॥ ६३ ॥

आतङ्कपङ्कमग्नानामौषधहस्नावलम्बः—

आतंकपंकमग्नाना हस्तालबो भिपत्रितम् ।

त्रोवितं म्रियमाणाना मर्वेषामेव नीपपात् ॥ ६४ ॥

उपायसाध्यानांसिद्धयम्—

न ह्युपायमपेक्षते<sup>२</sup> सर्वे रोगा न चान्यथा ।

उपायसाध्याः । मम्यति नाहेतुहेतुमात्रं यतः ॥ ६५ ॥

यदुक्तं सर्वसंपत्तिपुक्त्यापि चिकित्मया ।

मृत्युर्भवति तत्रैव नोपायेऽस्त्यनुपायता ॥ ६६ ॥

१ किं शास्ति न किञ्चिदपि घातयतीत्यर्थः । कल्पयतो विचारं कुर्वतः ।  
 २ पोडशांशया पोडशभागया चतुर्गुणवतुष्पादयुक्त्या, क्रियया चिकित्मया  
 विना स्वास्थ्यमपि गच्छतो नराणां, निचिकित्सा चतुष्पात् पोडशगुणयुक्ता,  
 अचिकित्सा च तुल्या भवितुं नार्हति । पोडशभागया चिकित्सया विना  
 यस्य रोगस्पोषशान्तिस्तस्यापि चिकित्मया दोग्धतरं सिद्धिस्तथा चिकित्सा  
 साध्यानां रोहिणिकादीनां चिकित्सा विनाशान्तिर्न भवतीत्यर्थः । ३ मर्वे रोगा  
 अमाध्या रोगाः । उपायमाध्या रोहिण्यादयः, अन्यथा—चिकित्सामन्तरेण नैव-  
 मिदपन्ति, यतोऽहेतुहेतुमात्रं भवति । उपायेऽनुपायतानास्ति । योहियस्योपायः  
 स न तस्यानुपायः । यथा घटस्य मृदण्डचक्रादिमामग्रीविशेषो न कदाचिद-  
 पटस्यानुपायो भवितुमर्हति ।

दैवयोगात् क्वचिदसिद्धिः—

‘अप्येवोपाययुक्तस्य धीमतो जातुचित्क्रिया ।

त सिध्येद्देववैगुण्यात् त्वयं षोडशात्मिका ॥ ६७ ॥

दृष्टान्तः—

कस्यासिद्धोऽग्निर्तोयादिः स्वेदस्तंभादिकर्मणि ।

न शीणनं कर्त्तव्यं वा कस्य क्षीरं गवेषुकम् ॥ ६८ ॥

कस्य मापास्मगुप्तादौ कृष्यत्वे नास्ति निश्चयः ।

विष्णुत्रकरणाक्षेपौ कस्य संशयितौ यवे ॥ ६९ ॥

विषं कस्य जरा याति मेघतंत्रविर्जितम् ।

कः प्राप्तः<sup>१</sup> कल्पतां पथ्याहते रोहिणिकादिषु ॥ ७० ॥

चिकित्सातन्त्रस्य साफल्यम्—

अपि चाकालमरणं सर्वमिदं तनिश्चितम् ।

महतापि प्रयत्नेन धार्यतां कथमन्यथा ॥ ७१ ॥

ज्वरेलङ्घनबृंहणं शास्त्रसिद्धे—

षडनाद्यपि दाहादौ रुद्धमागमपूर्वकम् ।

द्याद्यादेव गतं सिद्धिं ज्वरे लंघनबृंहणम् ॥ ७२ ॥

चिकित्सिते संशयो नैव कर्तव्यः—

चतुष्पादपुनर्मपत्रे मम्यमालोच्य योजिते ।

‘मा<sup>२</sup> कृषा व्याधिनिर्घातं विचिकित्सां चिकित्सिते ॥ ७३ ॥

१ यत्र देवे प्रतिकूलं कदाचिप्रक्रिया मिदृषानि सत्र देवमेव प्रतिबन्धकं कारणं, न तु षोडशात्मिकायाश्चिकित्सायाविकल्परक्षमित्यर्थः । २ अग्निः स्वेदकर्मणि, शीघ्रं च तृष्मने । शीघ्रं शीणनं-तर्पणं, गवेषुर्ग-कोडनाम्नं कर्त्तव्यम् । ३ कल्पता मागेभ्यम् । ४ व्याधिनिर्घातं प्रति विचिकित्सां-मंशयं मातृषाः ।

एतच्छास्त्रमकारणं मृत्युपाशच्छेदनम्—

एतद्धि<sup>१</sup> मृत्युपाशानामकाण्डे छेदनं दृढम् ।

रोगोत्प्रासितभीतानां रक्षामूत्रममूत्रकम् ॥ ७४ ॥

चिकित्साशास्त्रमृत्युञ्जयेऽमृतम्—

एतत्तन्मृतं मासाज्जगत्यायासर्वजितम् ।

याति हालाहलत्वं च सद्यो दुर्भाजनस्थितम् ॥ ७५ ॥

कुर्वेद्यानां त्यागः—

<sup>२</sup>अज्ञातशास्त्रसदभावान् शास्त्रमात्रपरायणान् ।

त्यजेद्दूराद् भियषपाशान् पाशान् वैवस्वतानिव ॥ ७६ ॥

सुर्वेद्यानां भद्रम्—

भियजा साधुवृत्तानां भद्रमागमशालिनाम् ।

अभ्यस्तकर्मणा भद्रं भद्रं भद्राभिलाषिणाम् ॥ ७७ ॥

मन्त्रवदेतस्यप्रयोगः—

<sup>३</sup>इति तन्त्रगुणैर्युक्तं तन्त्रदोषविर्जितम् ।

चिकित्साशास्त्रमखिलं व्यापठ्य परितः स्थितम् ॥ ७८ ॥

विपुलामलविज्ञानमहामुनिमतानुगम् ।

महामागरवर्गभीरमग्रहाधोपलक्षणम् ॥ ७९ ॥

१ एतत् चिकित्सातन्त्रम् । अकाण्डेऽकारणे । असूत्रकमूत्ररहितम् । आयासेन परिश्रमेण व्रजितम् । जगत्प्रसिद्धममृतं तु क्षीरोदं प्रमथ्य सुरामुरंस्त्वादितमिदं-  
चिकित्साशास्त्रममृतं तु आयासरहितम् । २ अज्ञातः शास्त्रस्य सदभावस्तत्त्वार्थो-  
येस्तान् । सामान्यतः शास्त्रपाठमात्रतत्परान्, अदृष्टकर्मणः । भियषपाशान् निन्दित  
वेद्यान् । वैवस्वतान् यममम्बन्धिनः । ३ तन्त्रगुणास्तन्त्रयुक्तयः द्वात्रिंशत्संख्याकाः ।  
तन्त्रदोषैरप्रसिद्धगन्दादिभिर्विजितम् । महामागर इवगम्भीरो यः सङ्ग्रहायोऽष्टाङ्ग  
मण्डहस्तस्योपलक्षणमुपायभूतम् ।



दैवयोगात् क्वचिदसिद्धिः—

१ अप्येवोपाययुक्तस्य घीमतो जातुचित्क्रिया ।  
न सिध्येद्दैववैगुण्यात् त्वयं षोडशात्मिका ॥ ६७ ॥

दृष्टान्तः—

कस्यामिद्धोऽग्निस्तोयादिः स्वेदस्तंभादिकर्मणि ।  
न प्रीणनं कर्शनं वा कस्य क्षीरं गवेषुकम् ॥ ६८ ॥  
कस्य भाषास्मगुप्तादौ वृष्यत्वे नास्ति निश्चयः ।  
विष्मूत्रकरणाक्षेपौ कस्य संशयितौ यवे ॥ ६९ ॥  
विषं कस्य जरां याति मंत्रतंत्रविजितम् ।  
कः प्राप्तः २ कल्पतां पथ्याहते रोहिणिकादिषु ॥ ७० ॥

चिकित्सातन्त्रस्य साफल्यम्—

अपि चाकालमरणं सर्वसिद्धांतनिश्चितम् ।  
महतापि प्रयत्नेन वार्यता कथमन्यथा ॥ ७१ ॥

ज्वरेलङ्घनवृंहणं शास्त्रसिद्धे—

चंदनाद्यपि दाहादौ रुद्धमागमपूर्वकम् ।  
द्यात्वादेव गतं सिद्धिं ज्वरे लंघनवृंहणम् ॥ ७२ ॥

चिकित्सिते संशयो नैव कर्तव्यः—

चतुष्पादगुणसंपत्तेः सम्यगालोच्य योजिते ।  
४ मा कृया व्याधिनिर्घातं विचिकित्सां चिकित्सिते ॥ ७३ ॥

१ यत्र दैवे प्रतिकूलं कदाचिन्नक्रिया गिद्धयति तत्र दैवमेव प्रतिबन्धकं कारणं,  
न तु षोडशात्मिकायाश्चिकित्सायाविफलत्वमित्यर्थः । २ अग्निः स्वेदकर्मणि, तोषं  
च स्तम्भनं । क्षीरं प्रीणनं-तर्पणं, गवेषुकं-श्लोदवान्नं कर्शनम् । ३ कल्पता  
मारोग्यम् । ४ व्याधिनिर्घातं प्रति विचिकित्सा-संशयं भावयति ।

अथ चरकविहीनः प्रक्रियायामस्त्रिः

विमिव खलु करोतु <sup>१</sup>व्याधितानां वराकः ॥ ८४ ॥

आधुनिककविकृतग्रन्थाभ्यासे युक्तिस्तरमाद् मुमतिभिरेतद्प्राज्ञम्—

<sup>२</sup>अग्निनिवेशवशादभियुज्यते

मुमणितेऽपि न यां दृढमूढकः ।

पठतु यत्नपरः पुरुषायुषं

स रालु वैद्यकमाद्यमनिर्विदः ॥ ८५ ॥

वाते पित्ते श्लेष्मशावी च पथ्यं

तैलं सर्पिर्मांशिकं च क्रमेण ।

एतद् ग्रहा भापते ग्रहाजो वा

<sup>३</sup>का निर्मन्त्रे वक्तृभेदोक्तिस्ततिः ॥ ८६ ॥

अभिधातुवशात् । वचा द्रव्यशक्तिर्विशिष्यते ।

अतो <sup>४</sup>मत्सरमुत्तुज्य माध्यस्थ्यमवलम्बताम् ॥ ८७ ॥

१ व्याधितानां-कासश्वासार्शान्भूतानाम् । वाराकोऽम्बबुद्धिः । अष्टाङ्गहृदये तु चरकोक्तप्रक्रियायाः प्रतिपादनात्पुत्रोक्तरोगाभिधानाच्च एतदध्येता रोग-चिकित्सायां प्रवर्तमानो रोगशान्तिं ध्रुव विदयात्येव ।

२ अग्निनिवेशो वस्तुपक्षपातः । नाभियुज्यते मनोयोगं न करोति । आद्य-प्रथमप्रणीतं लक्षमितं ग्रहोक्तं वैद्यकम् । पुरुषायुषं वर्षशतम् । अनिर्विदोऽस्त्रिः ।

३ निर्मन्त्रे मन्त्रभिन्ने-वातादिनाशके तैलादौ । वक्तृभेदो विशेषस्तदुक्त्या शक्तिर्नकाचित् । मन्त्रस्तु ऋषिप्रोक्तःशक्तिमन्त्रः, परं तैलादि वातादिनाशक मितिमहर्षिः कथयेदमवा ऋषिभिर्मन्त्रं न कोऽपि विशेष इत्यर्थः ।

४ मत्सरं द्वेषम् । माध्यस्थ्यं पशुपातराहित्यम् ।

अयं चरकविहीनः प्रक्रियायामस्त्रिभुजः

किमिव खलु करोतु <sup>१</sup>व्याधितानां वराकः ॥ ८४ ॥

आधुनिककविकृतप्रन्थाभ्यासे युक्तिस्वरमाद् सुमतिभिरेतदुपाङ्गम्—

<sup>२</sup>अभिनिवेशवशादभियुज्यते

सुभणितेऽपि न यो हृदमूढकः ।

पठतु यत्नपरः पुरुषायुषं

स खलु वैद्यकमाद्यमनिर्विरः ॥ ८५ ॥

वाते पित्ते श्लेष्मणाती च पच्य

तैलं सपिर्माक्षिकं च क्रमेण ।

एतद् ब्रह्मा भाषते ब्रह्मजो वा

<sup>३</sup>का निर्मन्त्रे वक्तुर्भेदोक्तिशक्तिः ॥ ८६ ॥

अभिधातृवशात् विषा द्रव्यशक्तिर्विशिष्यते ।

अतो <sup>४</sup>मत्सरमुत्सृज्य माध्यस्थ्यमवलम्ब्यताम् ॥ ८७ ॥

१ व्याधितानां—कामश्चामार्गमभूतानाम् । वाराकोऽल्पबुद्धिः । अष्टाङ्गहृदये तु चरकोक्तप्रक्रियायाः प्रतिपादनात्सुश्रुतोक्तरोगाभिधानाच्च एतदध्येता रोगचिकित्सायां प्रवर्तमानो रोगशान्तिं ध्रुव विदधात्येव ।

२ अभिनिवेशो वस्तुपक्षपातः । नाभियुज्यते मनोयोगं न करोति । आद्य-प्रथमप्रणीतं रुग्णमितं ग्रहोक्तं वैद्यकम् । पुरुषायुषं वर्षसप्तम् । अनिविदोऽस्त्रिभुजः ।

३ निर्मन्त्रे मन्त्रभिन्ने-वातादिनाशके तैलादौ । वक्तुर्भेदो विशेषस्तदुक्त्या शक्तिर्नकाचित् । मन्त्रस्तु ऋषिप्रोक्तःशक्तिमन्त्रः, परं तैलादि वातादिनाशकमिति महर्षिः कषयेदपवा ऋषिभिस्तत्र न कोऽपि विशेष इत्यर्थः ।

४ मत्सरं द्वेषम् । माध्यस्थ्यं पशुपातराहित्यम् ।

## टिप्पणीकर्तुर्निवेदनम्

प्रेम्णोन्नीतसदोपप्रीशमनिर्झं पीमूपपूराञ्चितम्  
संहिलष्टं गिरिराजकल्पलतया मृत्युञ्जयं शङ्करम् ।  
नित्यं दिव्यरसायनं सुरतरुं ह्यायुष्यनेरुज्ययो—  
रायुर्वेदशिवं शरण्यमशिवध्वंसाय वन्दामहे ॥ १ ॥

स्फुरद्राजस्थानं भरतवसुधाभालतिलकम्  
समृद्धं यत्रास्ते जयपुरमतिख्यातविह्वलम् ।  
पिलोदग्रामस्तत्सविधमथ गौडद्विजवरेः

श्रितो, यस्मिन् विद्वानजनि जयकृष्णो गुणनिधिः ॥ २ ॥

तदात्मजः श्रोतुपूर्णदत्तः

प्रशस्तविद्याचरितैरमत्तः ।

जालो यशस्वी मुजनाभिवन्द्यो—

वन्द्यो विदामार्जवशोभिशीलः ॥ ३ ॥

शम्भोर्मूर्ति धृतापि मञ्जरणयोः प्रक्षालनं कुर्वती  
गङ्गा हर्षतरङ्गितेव बहते यत्रोत्तरप्रक्रमा ।  
लुप्ता चापि सरस्वती परितरे यस्याधिरात्स्यन्दते ॥  
साविश्वेश्वरवज्रभा विजयते वाराणसी मुक्तिदा ॥ ४ ॥

अस्यां भद्रवती (भदैनी) सुभद्रविबुधावासस्थली पावनी  
यस्यामात भिषग्वरो ममपिता श्री पूर्णदत्ताभिषः ।  
नित्यं पुण्यचिकित्सयाऽत्र जनताव्याधीन्समुद्बल्यं-  
छोके स्थातिमुपेयिवान्निरूपमां सर्वाभिनन्द्यो भवन् ॥ ५ ॥

तस्यात्मजः प्रवीणप्राज्ञानां सेवने सक्तः ।

अधिगतपैद्यकविद्यो निरवद्यो भव्यगोष्ठोपु ॥ ६ ॥

आयुर्वेदाचार्यः श्रीहरिनारायणः शर्मा ।

चौ०एन्० मेहता विद्युत संस्कृत विद्यालयाध्यक्षः ॥ ७ ॥

तेन प्रभाभिधाना रचिता रुचिराय टिप्पणी पुण्या ।

अष्टाद्वदपनामा ग्रन्थो यत्सङ्गतो भाति ॥ ८ ॥

अन्तस्तमो विदामप्यस्येव किरणाङ्कुरो यस्याः ।

सेवा कृतिर्मदीया प्रीत्यै सुगान्महेस्वरस्य ॥ ९ ॥

अयं चरकविहीनः प्रक्रियायामविघ्नः

किमिव खलु करोतु <sup>१</sup>व्याधितानां वराकं ॥ ८४ ॥

आधुनिकविकृतग्रन्थाभ्यासे युक्तिस्तरमाद् सुमतिभिरेतद्भाष्यम्—

<sup>२</sup>अभिनिवेशवशादभिगुज्यते

सुमणितेऽपि न यो दृढमूढकः ।

पठतु यत्नपरः पुण्यायुषं

स खलु वैद्यकमाद्यमनिर्विदः ॥ ८५ ॥

घाते पित्तं श्लेष्मघातौ च पथ्य

तैलं सपिर्माक्षिकं च क्रमेण ।

एतद् ग्रहा भाषते ग्रहाजो वा

<sup>३</sup>का निर्मन्त्रे वक्तुर्भेदोक्तिशक्तिः ॥ ८६ ॥

अभिघातृवशात् । न वा द्रव्यशक्तिर्विशिष्यते ।

अतो <sup>४</sup>मत्तरमुत्सृज्य माध्यस्थ्यमवलम्ब्यताम् ॥ ८७ ॥

१ व्याधितानां-कामश्रवामाद्यभिभूतानाम् । वाराकोऽल्पबुद्धिः । अष्टाङ्गहृदये तु चरकोत्तप्रक्रियायाः प्रतिपादनात्सुश्रुतोक्तरोगाभिधानाद्य एतदध्येता रोग-चिकित्सायां प्रवर्तमानो रोगशान्तिं भ्रुवं विदधात्येव ।

२ अभिनिवेशो वस्तुपक्षपातः । नाभियुज्यते मनोयोगं न करोति । आद्य-प्रथमप्रणीतं लक्षमिदं ग्रहांतं वैद्यकम् । पुण्यायुषं नर्पयतम् । अनिर्विदोऽस्मिन्नः ।

३ निर्मन्त्रे मन्त्रभिन्ने-वातादिनाशके तैलादौ । वक्तुर्भेदो विशेषस्तदुक्त्या शक्तिर्नकाचिद् । मन्त्रस्तु ऋषिप्रोक्तःशक्तिस्मन्त्रः, परं तैलादि वातादिनाशक मिति महर्षिः कथयेदयं वा ऋषिभिन्नस्तत्र न कोऽपि विशेष इत्यर्थः ।

४ मत्तरं द्वेषम् । माध्यस्थ्यं पशपातराहित्यम् ।